कर्नल टॉड कृत

राजस्थान का इतिहास

कर्नल टॉड कृत

राजस्थान का इतिहास

कर्नल टॉड

लेखक
कर्नल जेम्स टॉड

अनुवादक
केशव ठाकुर

सम्पादक
लोकेश शर्मा

भाग
द्वितीय

प्रकाशक
साहित्यागार
धामाणी मार्केट की गली,
चौड़ा रास्ता,
जयपुर

संस्करण
2008

मूल्य
सात सौ पचास रुपये मात्र

I.S.B.N.
81-7711-148-5

लेजर टाईपसैटिंग
साहित्यागार कम्प्यूटर्स

मुद्रक
शीतल ऑफसेट, जयपुर

अनुक्रमणिका

जैसलमेर का इतिहास

मरुभूमि का इतिहास

जयपुर का इतिहास

शेखावटी का इतिहास

बूंदी का इतिहास

कोटा राज्य का इतिहास

ऐतिहासिक यात्रा

जैसलमेर का इतिहास

यदुवंशी भाटियों का जैसलमेर

भारत की मरुभूमि मे फैले हुए राज्य का आधुनिक नाम जैसलमेर है। प्राचीनकाल में इस राज्य का नाम मेर था, जैसाकि इस देश के पुराने भूगोल से प्रकट होता है। राज्य की भूमि बालुकामय पथरीली होने के कारण इसका नाम पहले मेर राज्य था। भारत के सम्पूर्ण मरुक्षेत्र में यही एक राज्य ऐसा है, जिसकी भूमि मे कंकड़-पत्थर बहुत हैं। इस राज्य की अनेक बातें ऐसी हैं, जो ऐतिहासिक अनुसन्धान करने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती है, उनमें यहाँ की खेती, रहने वाली जाति की स्वाभाविकता और राज्य की प्राकृतिक सुन्दरता का विशेष स्थान है।

इस राज्य की भाटी जाति यदुवंशी राजपूतों की एक शाखा है। तीन हजार वर्ष पहले ये भाटी लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे और जो राजा आजकल भारत के इस दूरवर्ती भाग में शासन करता है। वह यदुवंशी राजाओं का वंशज होना स्वीकार करता है। वह जमुना नदी के निकटवर्ती स्थानों से लेकर जगतकुण्ठ तक का राजा है। इस जगतकुण्ठ का नाम बाद में द्वारिकापुरी पड़ा।

इन लोगों का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता, जिससे इनके पूर्वजो के सम्बन्ध मे विस्तार के साथ क्रम मे लिखा जा सके, परन्तु जो कड़ियाँ मिलती हैं, उनसे एक ऐसी शृंखला तैयार हो जाती है जो उनके मौलिक सम्बन्ध को उपस्थित करती है। यदुवंशी भाटी लोगों के इतिहास की खोज करते समय दो अनुमान हमारे मस्तिष्क में क्रमशः उत्पन्न होते है और उन दोनो पर सहज ही अविश्वास करना कठिन मालूम होता है। पहला अनुमान तो यह है कि यदुवंशी भाटी सीथियन लोगो से उत्पन्न हुए हैं और उनके पूर्वज सीथियन जाति के लोग थे। दूसरे अनुमान से यह धारणा होती है कि इन लोगो की मूल उत्पत्ति हिन्दुओं से है। मनुष्य जाति के सम्बन्ध में खोज करते हुए जब हम इतिहास के अत्यन्त प्राचीनकाल मे पहुँच जाते हैं, जब सीथियन और हिन्दुओ के पूर्वज एक ही थे तो हमें इतिहास के इस सत्य पर विश्वास करना पड़ता है कि इन दोनों जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी और उनके आदि पूर्वज एक थे। उन पूर्वजो के वंशज अपने मूल निवास को छोड़कर एक,दूसरे से पृथक् हो गये। कुछ लोग सीथिया में जाकर रहने लगे और वे सीथियन नाम से प्रसिद्ध हुये। दूसरे लोगो ने [illegible]रत मे आकर रहना आरम्भ किया और हिन्दुओ के नाम से प्रसिद्ध हुये। [illegible] कि कास्पियन सागर से लेकर गगा के किनारे तक जितनी जातियाँ इस समय रहती थीं, उन सबकी उत्पत्ति एक ही

विशाल वंश से हुई थी और उस वश के लोगों की एक ही भाषा थी और एक ही धर्म था। जो लोग अपने मूल पूर्वजों के प्राचीन निवास-स्थानों को छोड़कर गङ्गा की तरफ आये, उनका प्रधान बुध का पुत्र भारत नाम का एक व्यक्ति था, जिसने एशिया के इस भाग में आकर अपने राज्य की प्रतिष्ठा की और उसका नाम भारतवर्ष रखा। उसी भारत के वंशज यदुभाटी लोग इस समय इस स्थल के एक कोने में शासन करते हैं।

यहाँ की भूमि में जब भारतवर्ष ने उपनिवेश कायम किया, उस समय यहाँ किसी राजवंश के लोग नहीं रहते थे। बल्कि सूर्यवंश और चन्द्रवंश के पहले भील,गोंड और मीणा आदि कई जातियों के लोग यहाँ पर रहते थे। इन जातियों के लोग भी उसी एक विशाल वंश के वंशज थे। लेकिन राजनीतिक पतन के कारण उनकी यह दशा हो गयी थी। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य का कोई प्रमाण नहीं है, इसलिये हमको यहाँ पर यदुवंशी भाटी लोगो का ऐतिहासिक विवरण देने के लिये हिन्दू ब्राह्मणों के ग्रन्थों का आश्रय लेना पड़ा।

गम्भीरतापूर्वक अध्ययन और अनुशीलन के बाद इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दुओ में जो आज संकीर्णता मिलती है, उसका जन्म मध्य कालीन युग में हुआ है। इसी आधार पर कल्पना की जाती है कि मुसलमानों के भारत पर आक्रमण और अधिकार करने के बाद यह संकीर्णता पैदा हुई है और इसी संकीर्णता से प्रभावित होकर हिन्दुओं का अटक नदी के पार अथवा जहाज पर चढ़कर समुद्र के दूसरी तरफ के देशों में जाना धर्म के विरुद्ध बताया गया है। हिन्दुओं में इस प्रकार की संकीर्णता प्राचीनकाल में न थी। इस सत्य के प्रमाण में बहुत-सी बातं कही जा सकती हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान की आवश्यकता है। हिन्दू जाति के लोग प्राचीन काल में जल युद्ध में क्षमताशाली थे और इसीलिये वे लोग अफ्रीका, अरेबिया और परसिया तक पहुॅचे थे।* यह कहना अत्यन्त भ्रमात्मक है कि हिन्दू जाति सदा से संकीर्ण रही है। क्योंकि हिन्दुओं की मनुसंहिता तथा उनकी प्राचीन धार्मिक और पौराणिक पुस्तकों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वे लोग प्राचीन काल में आक्सस नदी से लेकर गंगा तक के सभी देशों में आते-जाते थे। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार हिन्दुओं ने मध्य एशिया के लोगों को म्लेच्छ कहना आरम्भ किया है। परन्तु वहीं से भारतवर्ष में अनेक प्रकार की विद्या और ज्ञान का प्रचार हुआ है। मनुस्मृति नामक ग्रन्थ में पौराणिक विचारों का समर्थन किया गया है। इसका अर्थ यह है कि उस समय शाक द्वीप से लेकर गंगा के किनारे तक लोगो का एक ही मत था। इस देश के ग्रन्थों में लिखा गया है कि श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद यदुवंश के लोग भारत छोड़कर चले गये। यदुवंश के आदि पुरुप बुध से श्रीकृष्ण तक पचास पीढ़ियॉ व्यतीत हो जाती है। बुध ने भारतवर्ष में आकर सूर्यवंश की कुमारी इला के साथ विवाह किया था।*

---

* प्राचीन हिन्दू साहित्य के सम्बन्ध मे सर विलियम जोम्स के साथ अनुसन्धान करते हुए मि मार्सडन ने स्वीकार किया है कि मेडेगास्कर से पूर्वी द्वीप तक जो मलायन भाषा प्रचलित है, उसमें बहुत-से सस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। ठनकी भाषा की यह अवस्था ठस समय थी, जब वहाँ के लोगो ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया था।

भागवत में इस वात का ठल्लेख मिलता है कि बुध अपने पापों का क्षय करने के लिये भारतवर्ष में आया था। यहाँ आकर ठसने इला नामक सूर्यवंशी कुमारी के साथ विवाह किया था। उस कुमारी से पूरूरवा नामक लड़का पैदा हुआ। ठसने मथुरा में अपनी राजधानी कायम की और अपने राज्य मथुरा में शासन करता रहा। उसके छः लडके पैदा हुए, उनमें बडे लडके का नाम आयु था। ठसने भारत में इन्दुवंश की प्रतिष्ठा की।

उस सूर्यकुमारी से पुरुरवा नामक लड़का पैदा हुआ। उसने मथुरा में अपने राज्य की प्रतिष्ठा की और बहुत समय तक वह उस राज्य पर शासन करता रहा। मथुरा उसके राज्य की राजधानी थी। चन्द्रवंशी यादव प्रयाग के मूल निवासी थे। यदुवंश में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था और द्वारिकापुरी की प्रतिष्ठा की थी। कृष्ण के आठ रानियाँ थीं, इन रानियों में रूक्मणी प्रधान थी। उसके पुत्रों में प्रद्युम्न सब से बड़ा था। उसने विदर्भ की राजकुमारी से विवाह किया था। उस राजकुमारी से अनिरुद्ध और बज्र नाम के दो पुत्र पैदा हुए। बज्र से भाटियों की उत्पत्ति हुई। बज्र के दो लड़के हुए। पहले का नाम था, नाभ और दूसरे का, खेर अथवा क्षेर।

द्वारिका में जब यादव युद्ध कर रहे थे, उनके साथ के बहुत से लोग मारे गये थे और कृष्ण ने स्वर्ग की यात्रा की, उस समय बज्र मथुरा से अपने पिता को देखने के लिए वहाँ जा रहा था। चालीस मील के आगे मार्ग में उसने सुना कि उसके परिवार के सभी लोग युद्ध में मारे जा चुके हैं, यह सुनते ही उसको इतना अधिक मानसिक आघात पहुँचा कि उसकी वहीं पर मृत्यु हो गयी। उसके बाद नाभ मथुरा के सिंहासन पर बैठा और खेर द्वारिका चला गया।

यादवों ने सम्पूर्ण भारत में अपने राज्य का विस्तार करके जिन छत्तीस राजवंशों पर अत्याचार किया था, वे सभी राजवंश अब उनसे अपना बदला लेने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि खेर को द्वारिकापुरी से भागना पड़ा और मरुस्थली में पहुँचकर पश्चिम में उसको राजसिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ तक भागवत में उल्लेख पाया जाता है। इसके आगे का इतिहास लिखने के लिए मथुरा के ब्राह्मण शुक्र धर्म का हम आधार ले रहे हैं।

नाभ के एक बेटे का नाम प्रतिबाहु था। खेर से जाड़ेचा और यदुभानु का जन्म हुआ। यदुभानु जिन दिनों में तीर्थ यात्रा के लिए गया था, मार्ग में उसके वंश की देवी ने प्रसन्न होकर और सोते हुए जगा कर उससे कहा-"तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे मांगो।"

यदुभानु ने कहा-"देवी, तुम मुझे किसी राज्य का राजा बना दो, जिससे मैं संतोष के साथ वहाँ पर रह सकूँ।"

"तुम इन्हीं पहाड़ों पर राज्य करो"-यह कहकर देवी वहाँ से तिरोहित हो गयी।

सवेरा होने पर यदुभानु की नींद खुली। उस समय उसको रात में देखे हुए सपने की याद आयी। उसके बाद ही उससे कुछ दूरी पर मनुष्यों का कोलाहल सुनायी पड़ा। उसने पता लगाया तो मालूम हुआ कि यहाँ के राजा की मृत्यु हो गयी है। उसके कोई पुत्र नहीं है। इसलिए उसके स्थान पर किसको राजा बनाया जाये, लोग इसके लिए आन्दोलन कर रहे हैं।

उस बढ़ते हुए कोलाहल के समय मृत राजा के मंत्री ने कहा- "आज मैंने सपना देखा है कि श्रीकृष्ण का एक वंशज यहाँ पर आया है।"

मंत्री के मुख से इस बात को सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए और कृष्ण के उस वंशज को लोग खोजने निकले। यदुभानु के मिल जाने पर लोग उसे राजधानी में ले गये और

सभी के परामर्श से यदुभानु को उस राज्य के सिंहासन पर बिठाया गया। यदुभानु ने अपने नाम पर वहाॅ यदुगिरि की प्रतिष्ठा की, उसके बाद वह बहुत प्रसिद्ध हुआ।*

नाभ के पुत्र प्रतिबाहु के बाहुबल नाम का एक लड़का पैदा हुआ। उसने मालवा के राजा विजय सिंह की लड़की कमलावती के साथ विवाह किया। उस विवाह मे विजयसिंह ने खुरासान के एक हजार घोडे, एक सौ हाथी, बहुत से हीरे-जवाहरात और सोने के साथ-साथ पॉच सो दासियां दी थी। बहुत से रथो के साथ स्वर्णजड़ित पलंग भी दिये। प्रमार वंश की राजकुमारी कमलावती से सुबाहु नामक एक लडका पैदा हुआ।

घोडे से गिर जाने के कारण प्रतिबाहु के पुत्र बाहुबल की मृत्यु हो गयी। सुबाहु बाहुबल का लडका था। उसने अजमेर के चौहान वंशीय राजा नन्द की लड़की के साथ विवाह किया। उस चौहान राजकुमारी ने विष देकर अपने पति सुबाहु को मार डाला।

सुबाहु के रिज नामक एक लड़का पैदा हुआ। उसने अपने पिता के राजसिहासन पर बैठकर बारह वर्ष तक राज्य किया। उसने मालवा के राजा बैरसी की लड़की के साथ विवाह किया। उसका नाम था सौभाग्य सुन्दरी। जब वह गर्भवती थी, उन दिनो में उसने एक स्वप्न देखा कि मुझसे एक हाथी पैदा हुआ है। इस पर परामर्श देते हुए ज्योतिषियो ने कहा कि रानी से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह अत्यन्त पराक्रमी और शूरवीर होगा। उस रानी से जो लडका पैदा हुआ, पण्डितो के द्वारा उसका नाम गज रखा गया। जिस समय वह पूर्ण अवस्था में पहॅचा, उसके साथ पूर्व देश के राजा यदुभानु ने अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव भेजा। वह मजूर किया गया।

इन्ही दिनों में समाचार मिला कि समुद्र के समीपवर्ती राज्यों के म्लेच्छो की विशाल सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है और उसमे चार लाख अश्वारोहियों का सेनापति खुराना का फरीदशाह भी है। उसी समय यह भी मालूम हुआ कि इस होने वाले भयानक आकमण से घबरा कर राज्य के लोग चारो तरफ भाग रहे हैं। इस प्रकार के समाचारो को सुनते ही राजा रिज ने तुरंत युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना को लेकर वह हरियू नामक स्थान पर पहुॅच गया। वहाॅ से चार मील की दूरी पर शत्रु-सेना का शिविर था।

दोनों ओर की सेनायें आक्रमण के लिए तैयार थीं। उसके फलस्वरूप भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। अत मे आक्रमणकारी यवनों की पराजय हुई और उनके तीस हजार सैनिक युद्ध

---

* इस विषय मे भाटी वश के इतिहास मे जो उल्लेख मिलता है, वह अधिक सतोषजनक मालूम होता है। जैसलमेर के किसी आदमी से यदि पूछा जाए कि यदुगिरि कहाँ पर है तो वह बता नहीं सकता और न वह बिहाड के सम्बन्ध में कुछ जानकारी रखता है। परन्तु मि आरसकिन ने बाबरनामा नामक ग्रन्थ का जो अनुवाद किया है। उसमे यदुपुरी का उल्लेख किया गया है। सन् 1519 ईसवी की 17 फरवरी को बाबर ने सिधु नदी का पार किया और 19 फरवरी को इस नदी और नगर के बीच बिहाड नामक स्थान पर वह पहुँचा, जहाँ पर दो हजार पॉच सौ वर्ष पहले कृष्ण के वशज रहा करते थे। बाबरनामा में लिखा है कि उस स्थान से सात कोस की दूरी पर एक पहाड है। जाफरनामा अर्थात् तैमूर की ऐतिहासिक स्मृतियाँ नामक ग्रन्थ मे और कुछ दूसरी पुस्तकों मे भी उस पहाड का नाम यदुगिरि लिखा गया है। पहले मैं पहाड के नाम से अपरिचित न था, लेकिन इसके बाद खोज करने पर मालूम हुआ कि इस पहाड पर दो वश के लोग रहा करते हैं और वे कृष्ण के वशज हैं। उनमे एक वश यदु के नाम से और दूसरा वश जनजूहा के नाम से प्रसिद्ध था। दोनो वश इस पर्वत के निवासियों पर शासन करते थे। इन दिनो मे दोनो वशो की अनेक शाखायें हो गयी हैं।

क्षेत्र में मारे गये। हिन्दुओं की तरफ से जो मारे गये, उनकी संख्या चार हजार थी। इन म्लेच्छों ने इसके पहले सुवाहु पर आक्रमण किया था।

राजा यदुभानु ने गज के साथ अपनी लड़की का विवाह निश्चित किया था। विवाह की तिथियाँ इन्हीं दिनों में थीं, जव कि म्लेच्छों के आक्रमण का समाचार गज के पिता राजा रिज को मिला था। इस आक्रमण के समाचार का कोई प्रभाव उस विवाह पर न पड़ा। गज अपने विवाह के लिए राजा यदुभानु के राज्य में गया था। वह यदुभानु की कुमारी हंसावती के साथ विवाह करके अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ युद्ध भूमि में आया। युद्ध का अंत हो चुका था। म्लेच्छ सेना के तीस हजार आदमी मारे जा चुके थे। खुरासान का राजा पूर्ण रूप से पराजित हो चुका था। परन्तु उन यवनों को पराजित करने में राजा रिज भयानक रूप से जख्मी हुआ ओर युद्ध भूमि में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

खुरासान का वादशाह पराजित होकर वहाँ से भाग गया और राजा रिज के साथ लगातार दो वार युद्ध करके वह पराजित हुआ। दूसरे युद्ध में जख्मी हो जाने के कारण रिज की मृत्यु हुई, परास्त होने के वाद खुरासान के वादशाह की सहायता के लिए रोम के वादशाह की एक इस्लामी फौज पहुँच गयी थी। यह फौज कुरान और इस्लाम का प्रचार करके अपने राज्य का विस्तार कर रही थी। यवनों की इस सेना के वहाँ पहुँच जाने पर म्लेच्छों ने फिर से युद्ध की तैयारी की। राजा रिज की मृत्यु हो चुकी थी। उसके पुत्र गज ने उसका स्थान लिया और तुरन्त उसने अपने मंत्रियों को वुलाकर परामर्श किया।

म्लेच्छों के साथ जहाँ पर यह युद्ध हुआ था, वहाँ कोई ऐसा सुदृढ़ ओर विशाल दुर्ग न था, जिसका आश्रय लेकर अगणित सैनिकों की विशाल सेना के साथ युद्ध किया जा सके। इसलिए मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार उत्तर दिशा की ओर वाल पहाड़ पर एक मजवूत दुर्ग का निर्माण हुआ इसके वाद कुल देवी से प्रार्थना की गयी। देवी ने भविष्यवाणी की कि हिन्दुओं की शासन शक्ति नष्ट हो जायेगी। देवी ने अपनी भविष्यवाणी में नव निर्मित दुर्ग का नाम गजनी रखने का आदेश दिया। इस दुर्ग के निर्माण का कार्य समाप्त होते-होते राजा गज को समाचार मिला कि रोम और खुरासान की फौजें वहुत समीप आ गयी हैं। उसी समय युद्ध के वाजे वजने लगे और सेना की तैयारी होने लगी। ज्योतिपियों ने युद्ध के लिए रवाना होने के लिये मुहूर्त वताया। उसके अनुसार माघ महीने की सुदी त्रयोदशी वृहस्पति वार के दिन एक पहर के वाद वह शुभ घड़ी थी। उस शुभ मुहूर्त में युद्ध की यात्रा करने के लिए वाजे वजे और राजा गज ने अपनी सेना लेकर सोलह मील के आगे जाकर मुकाम किया। दोनों म्लेच्छ सेनायें युद्ध की प्रतीक्षा कर रही थीं।

जिस दिन राजा गज की सेना ने शत्रु के निकट पहुँचकर मुकाम किया, उसी रात को खुरासान वादशाह के पेट में भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। जव रोम के वादशाह शाह सिकन्दर को यह समाचार मिला तो उसने वहुत रंज किया और अन्त में उसने राजा गज की सेना के साथ युद्ध करने का इरादा कायम रखा। उसने अपनी फौज को तैयार होने की आज्ञा दी और हाथी पर हौदा कसे जाने के वाद वह युद्ध के लिए तैयार होकर उस हौदे पर वैठा। फौज के तैयार होते ही यवन सेना में युद्ध के वाजे वजे। वह फौज आगे की तरफ रवाना हुई।

दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे के करीब पहुँच गयीं। उसी समय भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। अगणित सैनिकों के पदाघातों से पृथ्वी कम्पायमान हो उठी। आकाश की तरफ अन्धकार दिखायी देने लगा। उस समय युद्ध मे लडते हुए सैनिकों की तलवारों की आवाज के सिवा और कुछ सुनायी न पड़ता था। कभी-कभी घोड़ों के बोलने की आवाज कानों में आती। दोनों ओर के अगणित सैनिक अपनी भीषण मार के साथ शत्रुओं का संहार करते हुए आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे। तलवारों की धारों से सैकड़ों शूरवीरों के सिर कट-कट कर भूमि पर गिर रहे थे। कुछ देर के युद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण युद्ध स्थल रक्तमय हो उठा। युद्ध की परिस्थिति लगातार भयानक होती जाती थी। एक तरफ राजपूत सैनिक थे और दूसरी तरफ यवन फौज के खूँखार आदमी थे।

दोनों तरफ की भयानक मार-काट से युद्ध भूमि में लाशों के चारों तरफ ढेर दिखायी देने लगे। बहुत समय तक भयानक मार-काट होती रही और अन्त में यवन सेना भागने लगी। उसके पच्चीस हजार शूरवीर सैनिक इस युद्ध मे मारे गये और सात हजार हिन्दुओं ने शत्रुओं का संहार करते हुए अपने प्राणों की आहुतियां दीं। यवन सेना के भागते ही हिन्दुओं की सेना में विजय का डंका बजा और राजा गज अपनी विजय सेना को लेकर अपनी राजधानी की तरफ लौटा।

अपनी राजधानी में पहुँच कर गज युधिष्ठिर के सम्वत् 3008 के बैसाख महीने के तीसरे दिन रविवार को रोहिणी नक्षत्र मे गजनी के सिंहासन पर बैठा और यदुवंशियों का शासन आरम्भ किया। इस विजय से राजा गज की शक्तियाँ अत्यन्त महान हो गयीं। उसने एक-एक करके समस्त पश्चिमी राज्यों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया और उसके बाद उसने काश्मीर के राजा कंदर्पकेलि को अपने यहाँ बुलवाया। राजा कंदर्पकेलि ने उसके उत्तर में संदेश भेजा कि मैं राजा गज से राजधानी में नहीं, रणभूमि में मिलूँगा। इस प्रकार का उत्तर पाकर राजा गज ने युद्ध की तैयारी की। काश्मीर मे जाकर उसने आक्रमण किया और राजा कंदर्पकेलि को पराजित करके उसकी लड़की के साथ विवाह किया। उस रानी से राजा गज के शालिवाहन नाम का लड़का पैदा हुआ।

शालिवाहन को बारह वर्ष की अवस्था में समाचार मिला कि खुरासान की सेना आक्रमण करने के लिए आने वाली है। इस समाचार को पाकर राजा गज अपने वंश की देवी के मन्दिर में जाकर तीन दिन तक पूजा करता रहा। चौथे दिन आकाशवाणी हुई कि शत्रु की विजय होगी। गजनी का अधिकार शत्रुओं के हाथों में चला जाएगा। परन्तु किसी समय तुम्हारे वंश के लोग उस पर फिर से अधिकार कर लेंगे। लेकिन हिन्दुओं की हैसियत से नहीं, मुसलमानों की हैसियत से। तुम इस समय अपने पुत्र शालिवाहन को पूर्व के हिन्दुओं के पास भेज दो, वहाँ जाकर शालिवाहन एक राजधानी की प्रतिष्ठा करेगा। उसके पन्द्रह लड़के होंगे और उसके वंश की वृद्धि होगी। गजनी के इस युद्ध मे तुम्हारी मृत्यु होगी। लेकिन उससे तुमको स्वर्ग और यश मिलेगा।

इस आकाशवाणी को सुनकर राजा गज ने अपने पुत्र शालिवाहन और परिवार को तीर्थ यात्रा के बहाने पूर्व दिशा में भेज दिया।

इसके बाद खुरासान की फौज रवाना होकर गजनी से दस मील की दूरी पर आ गयी। राजा गज ने गजनी की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने चाचा श्रीदेव को सौंपा और वह अपनी सेना लेकर शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। खुरासान के बादशाह ने अपनी फौज को पॉच भागों में विभक्त करके राजा गज की सेना पर आक्रमण किया। राजा गज अपनी सेना को तीन भागों में बॉट कर शत्रु के साथ युद्ध आरम्भ किया।

उस युद्ध में खुरासान का बादशाह और राजा गज-दोनों ही मारे गये। इस भीषण युद्ध में एक लाख म्लेच्छों और तीस हजार हिन्दुओ ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इसके बाद खुरासान नरेश के लड़के ने गजनी पर आक्रमण किया। उसके साथ युद्ध करते हुए श्रीदेव ने तीस दिन तक गजनी की रक्षा की। इसमें नौ हजार मनुष्यों का सर्वनाश हुआ। इसी समय श्रीदेव ने गजनी में जौहर व्रत की पूर्ति की।*

पिता के मारे जाने का समाचार सुन कर शालिवाहन बारह दिनों तक पृथ्वी पर सोया। उसके बाद पंजाब में आकर एक स्थान पर उसने अपनी नयी राजधानी कायम की और उसका नाम शालिवाहनपुर रखा। उस राजधानी के आस-पास जो भूमिधर रहते थे, उन्होंने वहॉ आकर शालिवाहन को अपना राजा माना। विक्रम सम्वत् 72 के भादो के महीने मे अष्टमी रविवार के दिन शालिवाहनपुर राजधानी की प्रतिष्ठा हुई।×

शालिवाहन ने पंजाब के अनेक राज्यों को जीतकर अपने शासन को शक्तिशाली बनाया। उसके पन्द्रह लड़के पैदा हुए। जिनमें तेरह लड़कों के नाम इस प्रकार हैं- 1. बालन्द 2. रसाल 3 धर्माङ्गद 4. बच्च 5. रूपा 6. सुन्दर 7 लेख 8 जसकर्ण 9. नीमा 10. मात 11. नेपक 12 गाङ्गेव और 13 जागेव। इन सभी राजकुमारों ने अपनी शक्तियों के द्वारा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की।

बालन्द के युवावस्था में पहुॅचने पर दिल्ली के तोमर वंशी राजा जयमाल ने अपनी लड़की के विवाह का उसके साथ प्रस्ताव किया और राजपूतों की प्रचलित प्रणाली के अनुसार नारियल भेजा। बालन्द ने उसको स्वीकार कर लिया। दिल्ली की राजकुमारी के साथ बालन्द का विवाह हो गया। वह अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ दिल्ली से शालिवाहनपुर आया। इन्हीं दिनों में शालिवाहन ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये तैयारियॉ शुरू कर दीं और थोड़े ही दिनों में अपनी सेना लेकर वह अटक नदी को पार करके आगे बढ़ा।

गजनी की म्लेच्छ सेना ने उसके साथ युद्ध किया। शत्रु की तरफ से 20 हजार सैनिक रणभूमि में पहुॅचे। उस भयानक संग्राम में गजनी के म्लेच्छ मारे गये। शालिवाहन ने अपनी सेना लेकर गजनी पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों तक वह गजनी में बना रहा। उसके बाद वहॉ का शासन अपने बड़े पुत्र बालन्द को सौंप कर वह अपनी राजधानी लौट आया। इसके कुछ ही दिनों के बाद तैंतीस वर्ष नौ महीने तक राज्य करके, उसने परलोक की यात्रा की।

---

* जौहर व्रत का वर्णन मेवाड के इतिहास में लिखा जा चुका है।

× अपने परिवार और दूसरे लोगों के साथ शालिवाहन गजनी से भागकर पंजाब में चला आया था और राजा गज के मारे जाने के बाद विक्रम सम्वत 72 के भादो के महीने में सन् 16 ईसवी को शालिवाहनपुर राजधानी की प्रतिष्ठा की। उस स्थान का सही उल्लेख पुराने ग्रन्थों में नहीं मिलता। लेकिन उस समय की अनेक बातों के आधार पर मालूम होता है कि वह स्थान लाहौर के समीप था।

शालिवाहन के बाद उसके राज्य सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र बालन्द बैठा। उसके दूसरे भाइयों ने पंजाब के सम्पूर्ण पहाड़ी भागों पर अपने स्वतंत्र राज्य कायम कर लिए थे। इन दिनों में म्लेच्छों की शक्तियाँ फिर प्रबल हो गयी थीं। उन तुर्कों ने गजनी के आस-पास के सभी नगरों और स्थानों पर अधिकार कर लिया। इन दिनों में बालन्द का कोई मंत्री न था। वह अकेले ही समस्त राज्य का शासन करता था। उसके सात लड़के पैदा हुये- 1. भट्टी 2. भूपति 3. कलूराव 4. झंझू* 5. सहराव 6.भैसडच और 7. मँगरेव। बालन्द के दूसरे पुत्र भूपति से चाकेता नाम का एक लड़का पैदा हुआ। उससे चाकेता वंश की सृष्टि हुई।

चाकेता के आठ लडके पैदा हुए- 1. देवसी 2. भैरों 3. क्षेमकर्ण 4. नाहर 5. जयपाल 6. धरसी 7. बिजलीखान और 8. साहसमन्द।

बालन्द अपने पौत्र चाकेता को गजनी का शासन सौंपकर शालिवाहनपुर चला आया। इन दिनों में जैसाकि ऊपर लिखा गया है, म्लेच्छों अर्थात् तुर्कों की संख्या बढ़ गयी थी। इसलिए चाकेता ने उन लोगों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया और अनेक तुर्क वहाँ के सामन्त बन गये। उन तुर्क सामन्तों और सैनिकों ने चाकेता के सामने प्रस्ताव किया कि यदि आप अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ दें तो हम लोग आपको बलखबुखारा के सिंहासन पर बिठायेंगे।

बलखबुखारा में उजबक जाति के लोग रहते थे और वहाँ के राजा के कोई लड़का न था। उसके एक बहुत सुन्दर लड़की थी। चाकेता ने राज्य के लालच में आकर बलखबुखारा की शाहजादी के साथ विवाह कर लिया और उसके बाद वहाँ के सिंहासन पर बैठकर उसने अट्ठाईस हजार अश्वारोही सेना को अपने अधिकार में रखा। बलख बुखारा से लेकर भारतवर्ष तक चाकेता ने एक विस्तृत राज्य पर शासन किया। इन चाकेता लोगों से ही मुगलों के चगत्त वंश की उत्पत्ति हुई।✓

बालन्द के तीसरे लड़के कलूराव के आठ पुत्र पैदा हुए। उसके वंशज कलर नाम से प्रसिद्ध हुए। बालन्द के आठ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं-1. शिवदास 2. रामदास 3. अस्सो 4. किसतन 5. समोह 6. गंगू 7. जस्सू और 8. भागू। ये सभी लोग इस्लाम धर्म स्वीकार करके मुसलमान हो गये थे। इनके वंश वालों की संख्या अधिक हो गयी थी। ये लोग नदी के पश्चिम में पहाड़ी इलाकों में रहा करते थे।

बालन्द के चौथे पुत्र झंझू के सात लड़के पैदा हुए- 1. चम्पू 2. गोकुल 3. मेघराज 4. हंसा 5. भादोन 6. रासू और 7. जागू। इस वंश के लोग झंझू नाम से पुकारे गये और इन लोगों से अनेक वंशों की उत्पत्ति हुई।

भट्टी बालन्द का सबसे बड़ा लड़का था। वही अपने पिता के राजसिंहासन पर बैठा। भट्टी अत्यन्त पराक्रमी और प्रतापशाली राजा हुआ। उसने चोदह राज्यों को जीतकर उनकी

---

* बादशाह बाबर ने यदुवंश से उत्पन्न यदुगिरि की जिस जनजूही जाति का उल्लेख किया है। वही जोहिया अथवा जदु जाति है। यह झंझू उसी जोहिया जाति का आदि पुरुष था।

✓ यदुवंशी राजा चाकेता ने जिस प्रकार लालच में आकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया है, उसमें किसी को सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। इसलिये कि मुस्लिम तवारीखों में चाकेता लोगों के प्रधान तसृचीन जो चंगेजखाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, का जिक्र किया गया है। इस चंगेजखाँ से भारतीय इतिहास के पाठक अपरिचित नहीं हैं।

समस्त सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली और वहाँ की बहुमूल्य सामग्री और सम्पत्ति चौबीस हजार खच्चरों पर लाद कर वह ले गया। साठ हजार अश्वारोही और अगणित पैदल सैनिकों की सेना उसके अधिकार में थी।

राजा भट्टी ने सिंहासन पर बैठने के बाद लाहोर में अपनी सेना एकत्रित की और कनकपुर के राजा वीरभानु बवेले के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में वीरभानु के चालीस हजार सैनिक मारे गये।

भट्टी की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र मंगलराव सिंहासन पर बैठा। इसके शासन काल में गजनी के राजा धुन्धी ने अपनी विशाल सेना लेकर लाहौर पर आक्रमण किया। मंगलराव युद्ध से घबराकर अपने बड़े पुत्र के साथ नदी के तट पर स्थित जंगल में भाग गया। शालिवाहनपुर में उसके परिवार के लोगों को शत्रुओं ने जाकर घेर लिया। जब मंगलराव ने यह सुना तो वह जिस जंगल में जाकर छिप गया था, वहाँ से भाग कर वह लक्खा जंगल में चला गया। वहाँ पर किसानों की आबादी थी। इसलिये मंगलराव ने उनको अपनी अधीनता में लेकर वहाँ पर अपना राज्य कायम किया। उसके दो लड़के पैदा हुये। एक का नाम था, अभयराव और दूसरे का नाम, शरणराव।

अभय राव ने वहाँ के समस्त नगरों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया। इसके बाद उसके वंशजों की संख्या बढ़ी और वे लोग आभोरिया भट्टी के नाम से प्रसिद्ध हुये। शरणराव अपने भतीजे से लड़कर कहीं चला गया। भट्टी के बड़े पुत्र मंगलराव ने तुर्कों के भय से पिता की राजधानी शालिवाहनपुर को छोड़ दिया था और वहाँ से भागकर वह जंगल में चला गया। उसके छः लड़के थे, जो इस प्रकार हैं- 1. मंडमराव 2. कलरसी 3. मूलराज 4. शिवराज 5. फूल और 6. केवल।

राजधानी से मंगलराव के भाग जाने पर उसके पुत्रों और परिवार के लोगों की रक्षा उसकी प्रजा ने की। तक्षक वंशी सतीदास नाम का वहाँ पर एक भूमिधर रहता था। उसके पूर्वजों के साथ भट्टी राजाओं ने भयानक अत्याचार किये थे। उसने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिए विजयी तुर्कों से जाहिर किया कि मंगलराव के पुत्र और कुटुम्ब के लोग इसी नगर के एक घर में रहते हैं। उसकी इस बात को सुनकर कुछ तुर्क सैनिक उसके साथ गये। सतीदास ने तुर्क सैनिकों को लेकर श्रीधर महाजन के यहाँ मंगलराव के लड़कों को कैद कराया और वे राजकुमार तुर्क सेना के सामने लाये गये। उस सेना के प्रधान ने श्रीधर से कहा :-

"शालिवाहन के प्रत्येक राजकुमार को तुम मेरे सामने लेकर आओ, नहीं तो मैं तुम्हारे परिवार में किसी को जिन्दा न छोड़ूँगा।"

इस बात को सुनते ही श्रीधर अत्यन्त भयभीत हुआ और घबरा कर उसने कहा- "मेरे यहाँ अब राजा का कोई लड़का नहीं है। जो लड़के मेरे यहाँ रहते हैं, वे एक भूमिधर के बालक हैं। वह भूमिधर इस युद्ध के भय से भाग गया है।" तुर्कों के सेनापति ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया और जिन लड़कों के रहने की बात उसने कही, उसने उनको लाने का आदेश दिया।

जब श्रीधर महाजन ने देखा कि राजकुमारों के प्राणों की रक्षा का अब कोई उपाय नहीं है, तो उसने तुर्क सेनापति की आज्ञा का पालन किया। यदुवंशी राजकुमार किसान बालकों

की वेष-भूषा में तुर्क सेनापति के सामने लाये गये और उसने राजकुमारों को किसान बालक मान कर वहाँ के भूमिधरों की लडकियों के साथ उनके विवाह करवा दिये। इस तरीके से शालिवाहन के वंश में उत्पन्न होने वाले राजकुमार केलर के पुत्र कलोरिया जाट भुर्द राज और शिवराजत नाम से प्रसिद्ध हुए। राजकुमार फूल और केवल का परिचय नाई और कुम्हार बालक के रूप में दिया गया था। इसलिए उन दोनों के वंशज नाई और कुम्हार वंश में माने गये।

भट्टी वंश के इतिहास में लिखा है: "मंगलराव जिस गाडा नदी के समीपवर्ती जंगल में चला गया था, उसने उस जंगल को छोड़कर एक नवीन स्थान पर जाकर अपना राज्य स्थापित किया। इस समय उस नदी के किनारे बराहा जाति के लोग रहते थे।* उनके पहले वहॉ पर बूता वंश के राजपूतों का राज्य था। पूंगल के प्रमारों के अतिरिक्त वहॉ पर सोटा और लुद्रा वंश के राजपूत भी रहा करते थे। मंगलराव ने वहॉ पहुॅच कर और वहॉ के राजाओ से मिल कर वहीं पर रहना आरम्भ किया। मंगलराव की मृत्यु हो जाने पर उसका लडका मंडमराव अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ।"

यह पहले लिखा जा चुका है कि मंगलराव अपने बड़े पुत्र मण्डमराव को अपने साथ लेकर शालिवाहनपुर से भागा था। यहॉ पहुॅच कर धोरे के राजपूतों ने उसको अपना राजा बनाया और अभिषेक के समय उन लोगों ने उसे मूल्यवान सामग्री और सम्पत्ति भेंट में दी। अमरकोट के सोढावंशी राजा ने मन्डमराव के साथ अपनी लड़की के विवाह का इरादा किया। मण्डमराव द्वारा स्वीकृति देने पर अमरकोट की राजधानी में बडी धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। मंडमराव के तीन लड़के पैदा हुये-1. केहर 2 मूलराज और 3. गोगली।

केहर नामक बालक आरम्भ से ही तेजस्वी और साहसी था। किसी समय पॉच सौ घोड़े व्यावसायिक चीजों से लदे हुए आरोर से मुलतान जा रहे थे। केहर ने अपने कुछ वीरों को उनके पीछे रवाना किया। ये लोग व्यवसायी बन कर और ऊॅटों पर बैठकर उनके पीछे चले। पंचनद के किनारे पहुॅच कर इन लोगों ने उन व्यवसायियों पर आक्रमण किया और उन घोड़ों की समस्त सामग्री लूट ली। इसके बाद वे लोग लौटकर चले आये। इन्हीं दिनों में वहॉ पर केहर का नाम प्रसिद्ध हुआ। कुछ दिनों के बाद जालौर के आलनसिंह देवरा ने मंडमराव के वयस्क पुत्रों के विवाह का संदेश भेजा। मंडमराव ने उसे स्वीकार कर लिया और विवाह का कार्य बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। इसके बाद केहर ने दुर्ग बनवाने का कार्य आरम्भ किया और उसका नाम उसने अपनी कुल देवी के नाम के आधार पर रखने का विचार किया। दुर्ग तैयार होने के पहले ही मंडमराव की मृत्यु हो गयी।

केहर अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ। उसके बनवाये हुए दुर्ग का नाम तन्नो देवी के नाम पर तनोट का दुर्ग रखा गया। इन्हीं दिनों में बराहा वंश के यशोरथ राजा ने अपनी सेना लेकर तनोट के दुर्ग पर आक्रमण किया और कहा कि यह दुर्ग हमारे राज्य की सीमा के भीतर बनाया गया है। मूलराज ने बड़ी बहादुरी के साथ तनोट दुर्ग की रक्षा की और यशोरथ की सेना पराजित होकर भाग गयी इसके बाद केहर और यशोरथ में सन्धि हो गयी और उस सन्धि के फलस्वरूप मूल राज की लड़की के साथ यशोरथ का विवाह हो गया।

---

* बराहा राजपूतों की एक शाखा है। इस वश के लोगो ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इसीलिये वे मुसलमान कहे जाते थे।

यदुभाटी लोगों की राजधानी कायम होने के बाद इस प्राचीन वंश का ऐतिहासिक वर्णन समाप्त करके उसका साराँश अत्यन्त संक्षेप में दिया जाता है :-

1. श्रीकृष्ण यदुवंशियों के प्रसिद्ध पूर्वज।

2. जो यदुवंशी अपने मूलनिवास से भाग कर सिन्धु नदी के पश्चिम की तरफ चले गये थे, उन्होंने मरुस्थली में जाकर उपनिवेश कायम किया और रोम तथा खुरासान के बादशाहों के साथ युद्ध किया।

3. जबूलिस्तान अर्थात् गजनी से भागने पर उन लोगों ने पंजाब में अपना उपनिवेश कायम किया और शालिवाहन पुर नामक राजधानी की प्रतिष्ठा की।

4. पंजाब से भागने पर मरुभूमि के पर्वत के ऊपर पहुँच कर तनोट का दुर्ग बनवाया।

चगताई लोगो की उत्पत्ति यदुवंशियों से हुई है, यह अनुमान ऐतिहासिक आधार पर कम महत्वपूर्ण नहीं है। मेवाड़ के सिसोदिया वंश के आदि पुरुष बप्पा रावल को भी चित्तौड़ में अपनी राजधानी कायम करने के बाद मध्य भारतवर्ष को छोड़ कर खुरासान जाना पड़ा था। इन सभी बातों से जाहिर होता है कि हिन्दू धर्म भारत से लेकर अत्यन्त सुदूरवर्ती देशों और राज्यों तक उन दिनों में फैला हुआ था और मध्य एशिया के साथ भारतवर्ष के सभी प्रकार सम्पर्क थे।

□

अध्याय-49
भट्टी वंशों का वास्तविक इतिहास

पिछले परिच्छेद में वर्णन की गयी घटनाओं के जो समय लिखे गये हैं, वे सही नहीं मालूम होते। इसलिए इस परिच्छेद में भट्टी जाति के इतिहास का वर्णन यथासंभव प्रामाणिक लिखने की हम चेष्टा करेंगे। गजनी के यदुवंशी राजा ने युधिष्ठिर के सम्वत् 3000 में रोम और खुरासान* के बादशाहों को पराजित किया था। इसके समय पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता और विक्रम सम्वत् 72 में शालिवाहन ने अपने परिवार के लोगों के साथ जबूलिस्तान से भाग कर पंजाब में आश्रय लिया था, यह समय भी संदेहपूर्ण है। जिन ऐतिहासिक ग्रंथों मे लिखा गया है कि यदु भट्टी लोगो ने मरुभूमि मे जाकर अपना उपनिवेश कायम किया और सम्वत् 787 सन् 731 ईसवी में तनोट का दुर्ग बनाया, इस समय मे किसी प्रकार का सन्देह मालूम नहीं होता।

भाटी जाति के इतिहास मे जो केहर नाम आया है और जिसके साहस तथा शौर्य की प्रशंसा की गयी है वह खलीफा बलीद का समकालीन था। उसी ने सबसे पहले भारतवर्ष मे अपना राज्य कायम किया और उत्तरी सिन्ध के आरोर नामक नगर मे अपनी राजधानी बनायी। केहर के पॉच लड़के पैदा हुए-तनू, उतेराव, चहा, खाफरिया और आथहीन। इन लड़कों के जो पुत्र पैदा हुए उन्होने अपने पिता की उपाधि लेकर अलग-अलग शाखायें चलायीं।

उतेराव के पाँच लड़के पैदा हुए- सुरना,सेहसी, जीवा, चाको और अजो। इसके वंशधर उतेराव के नाम से प्रसिद्ध हुए। केहर से उत्पन्न होने वाले पॉचों लड़के साहसी और शूरवीर थे। उन्होंने राजपूतों के बहुत से नगरो को जीत कर अपने अधिकार मे कर लिया। राजपूतों का चन्न वंश अब नष्ट हो गया है। उन लोगो ने केहर पर आक्रमण किया था और उसे जान से मार डाला।

केहर की मृत्यु के पश्चात् तनू राज्य का अधिकारी हुआ। उसने सिंहासन पर बैठने के बाद बराहा और मुलतान के लंगा लोगो के राज्यों पर आक्रमण किया और भयानक रूप से उनका विध्वंस किया। लेकिन लोहे के बख्तर पहनकर हुसैनशाह ने लंगा लोगों के साथ दूदी, खीची, खोकर, मुगल, जोहिया, जूद और सैद जाति के दस हजार अश्वारोही सैनिक लेकर यादवो से युद्ध करने की तैयारी की। उसकी सेना ने वराहा राज्य पहुँच कर मुकाम किया। तनू ने जब यह सुना तो वह अपनी सेना लेकर युद्ध करने के लिये रवाना हुआ। दोनों तरफ से चार दिन तक बराबर युद्ध होता रहा और पॉचवे दिन उसने अपने दुर्ग के द्वार खोल देने का आदेश

* बादशाह बाबर ने लिखा है कि भारतवर्ष के लोग सिधु नदी की पश्चिमी सीमा के आगे के राज्य को खुरासान कहते थे।

दिया। दुर्ग का फाटक खुलते ही अपने पुत्र विजय राव के साथ सेना को लेकर तनू ने आक्रमणकारियों पर एक साथ भयानक आक्रमण किया। उस समय की भीषण मार-काट से शत्रु की सेना परास्त होकर युद्ध के क्षेत्र से भाग गयी। वराहा लोगों के युद्ध-क्षेत्र से भागते ही म्लेच्छ लोग भी वड़ी तेजी के साथ इधर-उधर भागे। युद्ध में विजयी होकर तनू ने शत्रुओं के शिविर पर आक्रमण किया और उनके साथ की समस्त सम्पत्ति और सामग्री लूट ली। मुलतान और लंगा लोगों की सेना के पराजित हो जाने पर बूता राजपूतों के राजा जीजू ने विवाह के लिए तनू के पास नारियल भेजा। इस विवाह के पश्चात् मुलतान के राजा के साथ तनू की मैत्री हो गयी।

तनू से पाँच लड़के पैदा हुए- 1.विजयराव 2. मुकुर 3. जयतुंग 4. आलन और 5. राखेचा। दूसरे पुत्र मुकुर के माहपा नाम का एक लड़का पैदा हुआ। माहपा के महोला और दिकाऊ नामक दो वालक पैदा हुए। दिकाऊ ने अपने नाम पर एक झील खुदवायी। उसके वंशज मुकुर सुतार के नाम से सम्वोधित किये जाते हैं।

तीसरे पुत्र जैतुंग के दो वालक पैदा हुए-रत्नसी और चोहर। रत्नसी वीकमपुर में जाकर रहने लगा। चोहर के कोला और गिरिराज नामक दो वालक पैदा हुए। इन दोनों ने अपने-अपने नामो पर कोलासर और गिर राजसर नामक दो नगर वसाये।

चौथे पुत्र आलन के चार लड़के पैदा हुए-1. देवसी 2. त्रिपाल 3. भवानी और 4. राकेचा। देवसी के वंशज ऊँटों के व्यवसायी हो गये और राकेचा के वंशजों ने व्यवसाय आरम्भ किया। इसलिए भविष्य में ये ओसवाल के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तनू को विजसनी देवी के आशीर्वाद से एक स्थान पर वहुत वड़ी छिपी हुई सम्पत्ति मिली। तनू ने उस सम्पत्ति से एक विशाल दुर्ग वनवाया और उसका नाम विजनोट दुर्ग रखा। उस दुर्ग मे उसने सन् 757 ईसवी में उस देवी की मूर्ति की स्थापना की। अस्सी वर्ष तक राज्य करने के वाद उसकी मृत्यु हो गयी।

834 ईसवी में विजयराव अपने पिता के सिंहासन पर वैठा और उसके वाद उसने अपने वंश के परम शत्रु वराह जाति से युद्ध करने का निश्चय किया और वराह लोगों पर आक्रमण करके उनकी सारी सम्पत्ति लूट ली। सन् 836 ईसवी में वूता वंश की रानी से देवराज नामक एक वालक पैदा हुआ।

विजय राव से वदला लेने के लिए वराह और लंगा जाति के लोग आपस मे मिल गये और विजय राव पर आक्रमण किया। उस युद्ध मे विजय राव ने उनको पराजित किया। उस दशा में युद्ध से निराश होकर इन दोनों जातियों के लोगों ने षड्यंत्र करके विजयराव के सर्वनाश का विचार किया। उन लोगों ने इन दिनों की शत्रुता को भुलाकर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार आरम्भ किया और वराह लोगों के राजा ने विजयराव के लड़के देवराज के साथ अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव रखा।

विजयराव को उन लोगो के षड्यंत्र का कुछ भी ज्ञान न था। इसलिए उसने विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अपने वंश के आठ सौ आदमियों को लेकर अपने पुत्र देवराज के साथ विजयराव राजा वराह की राजधानी भटिण्डा मे पहुँच गया। उसके वहाँ पहुँचते

ही बराहों की सेना ने एक साथ आक्रमण किया और उन सबको जान से मार डाला। लेकिन देवराज अभी तक सुरक्षित था। उसने मृत्यु का संकट अपने निकट देखकर राजा बराह के पुरोहित की शरण ली। जब बराह लोगों को मालूम हुआ तो उन लोगों ने पुरोहित के घर पर आक्रमण किया।

यह दृश्य देखकर पुरोहित घबरा उठा। परन्तु शरण मे आये हुए देवराज के प्राणों की वह रक्षा करना चाहता था। इसलिए उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने देवराज को जनेऊ पहना दिया और उसने आक्रमणकारियों से कहा- " जिसको आप खोज रहे हैं, वह हमारे घर पर नहीं है।" पुरोहित ने देवराज पर आक्रमणकारियों को सन्देह करने का अवसर नहीं दिया। उसने उसी समय सबके सामने देवराज के साथ एक थाली मे भोजन किया। यह देखकर आक्रमणकारियो का सन्देह दूर हो गया। वे लोग पुरोहित का घर छोड़कर चले गये और अपने विशाल दल के साथ भाटी लोगो की राजधानी तनोट पर उन्होंने आक्रमण किया। वहाँ के दुर्ग में जितने भी आदमी थे, सब मार डाले गये और कुछ दिनो के लिए भाटी जाति का नाम मिटा दिया गया।

बराह लोगो के भय से देवराज बहुत दिनों तक छिपकर वहीं रहा और अवसर पाने पर वह वहॉ से निकलकर अपने नाना बूतावन के राज्य में चला गया। ननिहाल मे पहुँचकर देवराज अपनी माता से मिला। तनोट के दुर्ग में बराह लोगो के द्वारा जो लोग मारे गये थे, उनमे से देवराज की मॉ ने किसी प्रकार वहॉ से भागकर अपने प्राणों की रक्षा की। माता ने अपने पुत्र देवराज को देखकर और अनन्त सन्तोष का अनुभव करके कहा- "बेटा जिस प्रकार शत्रुओ ने हमारे वंश का सर्वनाश किया है, इसी प्रकार शत्रुओं का भी सर्वनाश होगा।"

देवराज कुछ दिनों तक ननिहाल में रहा। उसके बाद उसने अपने जीवन-निर्वाह के लिए नाना से एक ग्राम मॉगा। उसके नाना ने इसे स्वीकार कर लिया। जब राजा के परिवार वालों को मालूम हुआ कि वह देवराज को एक ग्राम देकर उसके रहने की सुभीता कर रहा है तो उन लोगों ने देवराज के नाना को समझा कर कहा-"यदि आपने देवराज के रहने के लिए ग्राम दिया तो निश्चय जानिये कि आपके इस राज्य का भयानक रूप से विनाश होगा।"

उस राजा की समझ मे यह बात आ गयी। लेकिन देवराज उसका दौहित्र था। इसलिए उसने अपने यहॉ उसको कोई ग्राम न देकर मरुभूमि में एक साधारण स्थान उसे दे दिया। देवराज वहॉ जाकर रहने लगा और वहाँ पर उसने एक दुर्ग बनवाया। जिसका निर्माण कार्य केकय नामक एक चतुर शिल्पी के द्वारा हुआ। उसने उस दुर्ग का नाम भटनेर का दुर्ग रखा। इसके बाद उसने एक दूसरा विशाल दुर्ग बनवाया जिसकी सन् 653 के जनवरी महीने के पॉचवें दिन सोमवार को प्रतिष्ठा की गयी।

जब बूता के राजा को मालूम हुआ कि मेरे दौहित्र देवराज ने वहॉ अपने रहने के लिए कोई स्थान न बनाकर दुर्ग बनवाया है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और उस दुर्ग को गिरवा देने के लिए उसने एक सेना भेजी। जब यह समाचार देवराज को मालूम हुआ तो उसने दुर्ग की चाबी अपनी माता को देकर अपने नाना के पास भेज दिया और जो सेना दुर्ग को गिराने के लिए आ रही थी, उसको दुर्ग पर अधिकार करने के लिए बुलवाया। बूता राज्य की सेना के

एक सौ बीस शूरवीरों ने देवराज के साथ परामर्श करने के लिए दुर्ग में प्रवेश किया। उनके भीतर पहुँचते ही एक साथ उन पर आक्रमण हुआ। वे सब के सब मार डाले गये। जो सेना दुर्ग के वाहर रह गयी थी वह सेनापति के अभाव में घवरा कर वहाँ से भाग गयी। जो लोग दुर्ग के भीतर मारे गये थे, उनकी लाशों को देवराज ने दुर्ग के वाहर फिंकवा दिया।

जिन दिनों में देवराज वराहों के राज्य में छिप कर रहा था, उन्हीं दिनों में उसे एक योगी वहाँ पर मिला और उसने उसके प्राणों को वचाने में वड़ी सहायता की थी। इन दिनों में योगी वहाँ पर आकर देवराज से मिला और उसने देवराज को सिद्ध पुरुष की पदवी दी। वह योगी अपनी शक्ति से किसी भी धातु को स्वर्ण बना देता था। बराह राज में देवराज गुप्त रूप मे जिस घर में रहता था, उसी घर में वह योगी भी रहा करता था। एक दिन वह योगी अपने रासायनिक घड़े को वहीं पर रखकर वाहर चला गया। उस वड़े में एक प्रकार का रासायनिक रस भरा हुआ था। उस रस की एक बूँद के स्पर्श से देवराज की सम्पूर्ण तलवार स्वर्ण की हो गई देवराज उसी अवसर पर उस घर से निकला और बराह राज्य से भाग कर अपने नाना के यहाँ पहुँचा और वहाँ से मरुभूमि में पहुँच कर एवं वड़े में भरे हुए रासायनिक तत्वों की सहायता से उसने अपरिमित सम्पत्ति अपने अधिकार मे कर ली, जिससे वह उस मरुभूमि में विशाल दुर्गो का निर्माण करा सका।

देवराज के चले आने के वाद बहुत दिनों में उस योगी ने सुना कि देवराज आजकल एक राज्य का अधिकारी है तो उसने देवराज के पास आकर और उससे भेंट करके उसने कहा- ''आपने मेरी जिस सम्पत्ति का अपहरण किया है,उसको मैं केवल इस शर्त पर कहीं प्रकट न करूंगा यदि आप मेरे चेले हो जाएँ और मेरी तरह योगी का वेश धारण करें।''

देवराज ने उसी समय योगी की वात को स्वीकार कर लिया। उसने गेरुए वस्त्र पहने। कानों में कुण्डल पहने और हाथ में कमण्डल लेकर उसने अपने वंश वालों के दरवाजे पर जाकर भीख माँगना आरम्भ किया। उसका वह कमण्डल सोने की वहुमूल्य चीजों से भर जाता था। यदुवंशियों की उपाधि बहुत पहले से राय थी। लेकिन इस योगी से सम्पर्क के बाद यदुवंशियों की उपाधि रावल हो गयी। इस रावल की उपाधि को देकर योगी ने जिस विधान से देवराज का राजतिलक किया उस विधान को राजतिलक के समय मानने के लिए देवराज को विवश किया गया, जब तक यदु का वंश रहेगा। देवराज ने हर्ष पूर्वक इसे स्वीकार किया। इसके बाद वह योगी अदृश्य हो गया।

देवराज के जीवन की सभी परिस्थितियाँ बदल गयी थीं और उसने अपने आपको शक्तिशाली बना लिया था। इसलिए यदुवंशियों का विनाश करने वाली वराह जाति के लोगों से बदला लेने की उसने तैयारी की और आक्रमण करके उसने बराह लोगों को परास्त किया। इसके साथ-साथ उसने उनके राजमहलों में प्रवेश करके सभी प्रकार के अत्याचार किये और उन लोगों से बदला लेकर वह देवरावल लौट आया। इसके बाद उसने लंगा लोगों पर आक्रमण किया। लंगा का युवराज अपनी सेना के साथ विवाह के लिए अलीपुर जा रहा था। इसी अवसर पर देवराज अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और उन लोगों पर आक्रमण करके उनके एक हजार आदमियों को मार डाला। परास्त होकर लंगा के युवराज ने देवराज की अधीनता स्वीकार कर ली।

यदु भाटी वंश के पंजाब से भागने के समय से लेकर मरुभूमि में उनकी राजधानी के कायम होने के समय तक प्रत्येक संघर्ष में लंगा जाति के लोगों ने यदु भाटी लोगों की बराबर सहायता की थी। इसीलिए उस जाति के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

लंगा जाति के लोग वास्तव में राजपूत थे और वे अग्निकुल की चार शाखाओं में चालुक्य अथवा सोलंकी राजपूतों से सम्बन्ध रखते थे। वे लौकोट के प्राचीन निवासी थे। इससे प्रकट होता है कि आबू पर्वत से आने के बाद और हिन्दू धर्म स्वीकार करने के पहले वे लौकोट में रहते थे।

सम्वत् 787 सन् 731 ईसवी में यदु भाटी लोगों के द्वारा तनोट के दुर्ग के निर्माण से लेकर सम्वत् 1530 सन् 1474 ईसवी तक सात सौ तैंतालीस वर्षों का एक लम्बा समय होता है। इन दिनों में लगातार भाटी जाति के साथ लंगा लोगों का संघर्ष और युद्ध चला था। उसके बाद वह संघर्ष एक साथ समाप्त हो गया और उसके थोड़े दिनों के पश्चात् बाबर ने भारतवर्ष में आक्रमण किया। उन दिनों में इस जाति का अस्तित्व तिरोहित हो गया था। तवारीख फरिश्ता में इस जाति के लोगों को मुलतान के राजवंशी कहकर उल्लेख किया है और कुछ ऐसी बातें भी लिखी गयी हैं, जो इस वंश के सम्बन्ध में जानने के योग्य हैं।

इस वंश के पाँच राजाओं में से पहला राजा हिजरी सम्वत् 847 सन् 1440 ईसवी में रावल चाचक से मरने के तीस वर्ष पूर्व राज्य करता था। तवारीख फरिश्ता के अनुसार जब तक खिजर खाँ सैयद दिल्ली के सिंहासन पर रहा, शेख यूसुफ को अपना प्रतिनिधि बनाकर मुलतान भेजा। शेख यूसुफ ने मुलतान में जाकर जिन राजाओं के साथ सम्बन्ध कायम किये, उनमें लंगा जाति का राजा राय सेहरा भी एक था। राय सेहरा ने मुलतान में जाकर शेख यूसुफ के साथ अपनी लडकी के विवाह का विचार प्रकट किया और उसकी अधीनता को स्वीकार करने के लिए भी वह राजी हो गया।

शेख युसूफ ने राय सेहरा की बात को मंजूर कर लिया। राय सेहरा के इस प्रस्ताव का अभिप्राय क्या था, यह बाद में लोगों को मालूम हुआ। अपने उस प्रस्ताव के बहाने उसने शेख युसूफ को कैद करके दिल्ली भेज दिया और अपना नाम कुतुबुद्दीन रखकर वह मुलतान का अधिकारी बन गया।

फरिश्ता ने अपने इतिहास में राय सेहरा और उसके वंश वाले लंगा को अफगान माना है। सेवी राज्य के रहने वाले नूमरी जाति के थे और यही नूमरी जाति प्रसिद्ध जाट वंश की एक शाखा थी। भाटी वंश के इतिहास लेखक ने लंगा लोगों को अपने ग्रन्थ में कहीं पर पठान और कहीं पर राजपूत लिखा है। पठान अथवा अफगान प्राचीन काल में, विशेषकर राय सेहरा के दिनों में मुसलमान थे। राय शब्द राय सेहरा के हिन्दू होने का परिचय देता है। प्रसिद्ध इतिहासकार एलफिन्सटन ने अफगानों की उत्पत्ति यहूदी लोगों से मानी है। यदुवंश और यहूदी वंश में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। ऐसा मालूम होता है कि एक ही वंश के दो नाम किसी प्रकार बन गये हैं।

देवरावल की दक्षिणी सीमा पर लोद्र राजपूत रहते थे। उनकी राजधानी का नाम लुद्रवा था। यह नगर अत्यन्त विशाल था। उस राजधानी में बारह फाटक थे। लुद्रवा के राजपुरोहित

ने अपने राजा से अप्रसन्न होकर देवराज के यहाँ जाकर आश्रय लिया। उसने लुद्रवा के राजा के विरुद्ध देवराज को उकसाया। उसकी बातों से प्रोत्साहित होकर देवराज ने लुद्रवा नृपभानु के पास उसकी लड़की के साथ विवाह करने का सन्देश भेजा। राजा नृपभानु ने इस प्रस्ताव को सम्मान के साथ स्वीकार कर लिया। इसलिए बारह सौ साहसी अश्वारोही सेना को लेकर विवाह के लिए देवराज लुद्रवा राजधानी पहुँच गया। वहाँ के राजा ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया परन्तु राजधानी में पहुँचते ही देवराज के अश्वारोही सैनिकों ने वहाँ पर आक्रमण किया और लुद्रवा के राजा को परास्त करके देवराज वहाँ के राजसिंहासन पर बैठ गया। इसके बाद उसने नृपभानु की लड़की के साथ विवाह किया और अपने साथ के सैनिकों का एक दल वहाँ पर छोड़कर वह देवरावल लौट आया। उसके अधिकार में इस समय छप्पन हजार अश्वारोही सेना थी, जिस पर वह शासन करता था।

यशोकर्ण नाम का व्यवसायी देवरावल से धारा नगरी में जाकर रहने लगा था। यहाँ के राजा ब्रिजभानु ने उसे सम्पत्तिशाली समझ कर कैद करवा लिया और उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली। यशोकर्ण ने देवरावल में आकर रोते हुए देवराज से प्रार्थना की कि- "राजन, नगरी के राजा ने बिना कोई अपराध के मुझे कैद कर लिया, मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीनकर अनेक प्रकार के कष्ट मुझे दिये और उसने बाद में मुझे छोड़ दिया। कैद करने के समय मेरे गले में रस्सी बाँधी गयी थी, जिसके निशान अब तक मेरी गर्दन पर मौजूद हैं।"

देवराज ने यशोकर्ण की प्रार्थना को सुनकर उसकी गर्दन पर रस्सी के निशान देखे। वह मन ही मन सोचने लगा कि यशोकर्ण के साथ जो यह अपमानपूर्ण व्यवहार किया गया है, वह मेरा अपमान है। इसलिए क्रोध में आकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं इस अपमान का जब तक बदला न ले लूँगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।

देवराज ने धारानगरी के राजा से अपमान का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की। परन्तु उस समय उसने देवरावल और धारा नगरी की दूरी का विचार नहीं किया। बिना अन्नग्रहण किये तो कोई भी मनुष्य कई दिनों तक रह सकता है। परन्तु बिना जल के एक दिन भी काटना कठिन हो जाता है इसलिए देवरावल से धारानगरी पहुँचने और उसको विजय करने के लिए समय की आवश्यकता थी। उतने समय तक बिना जल के कोई मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इस दशा में देवराज की प्रतिज्ञा का क्या परिणाम होगा, इस प्रश्न को सोचकर देवराज के मंत्री एक साथ चिन्तित हो उठे।

इस विषय में मंत्रियों ने देवराज के पास जाकर बातचीत की और जो संकट सामने था,उस पर विचार करने के लिए देवराज से प्रार्थना की। उनकी बातों को सुनकर देवराज ने क्षण भर कुछ सोचा और अपने मंत्रियों की तरफ देखकर कहा- "फिर अब क्या होना चाहिये?"

मन्त्रियों ने आपस में परामर्श करके और एक मत होकर देवराज से कहा- "राजन्, सब कुछ हो सकता है। धारा नगरी के निवासी प्रमार राजपूत हैं। वहाँ का राजा भी इस वंश का है। आपकी सेना में बहुत से सैनिक प्रमार वंशी हैं। मिट्टी की एक धारा नगरी तैयार करवायी जाये। आपकी सेना के प्रमार राजपूत अपने हाथों में तलवारें लेकर इस धारा नगरी की रक्षा करे और आप अपनी सेना के साथ उन पर आक्रमण करें। उस समय आप के प्रमार वंशी सैनिक पराजित हों और इस प्रकार विजयी होकर आप अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करे।"

मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार धारा नगरी के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। देवराज की सेना के सभी प्रमार सैनिक तलवारें और भाले लेकर उस नगरी की रक्षा करने के लिये पहुँच गये। इसके बाद देवराज ने पूर्व निश्चय के अनुसार सेना लेकर उस नगरी पर आक्रमण किया। रक्षा करने वाले प्रमार सैनिकों ने देवराज के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। उसी समय प्रमार सैनिको ने कहा-

जँह पँवार तँह धार है, जहाँ धार वहाँ पँवार।
धारक बिना पँवार नहिं, नहिं पँवार बिन धार।

जहॉ पर प्रमार रहते हैं, धारानगरी वहीं पर है। जहॉ प्रमार नहीं रहते,धारा नगरी वहॉ नहीं है।

प्रमार सैनिकों ने बड़े साहस और शौर्य के साथ उस कृत्रिम धारानगरी की रक्षा करते हुए देवराज के साथ युद्ध किया। तेजसिंह और सारंग नामक प्रमार सैनिक उनका नेतृत्व कर रहे थे। उस युद्ध में समस्त प्रमार सैनिक-जो संख्या में एक सौ वीस थे- मारे गये और उनको जीत कर देवराज ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। जो प्रमार सैनिक युद्ध करते हुए मारे गये, उनके सिद्धान्त और शौर्य से प्रसन्न होकर उनके परिवार के जीवन निर्वाह के लिए देवराज ने आर्थिक सहायता दी।

इसके पश्चात् देवराज ने धारानगरी के राजा पर आक्रमण करने की तैयारी की। जिस समय वह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर रवाना हुआ, उसके साथ युद्ध करने के लिए राजा ब्रिजभानु ने अपनी सेना भेजी। धारानगरी की सीमा के बाहर भीपण युद्ध हुआ। उसमें धारानगरी के बहुत से सैनिक मारे गये और जो सेना बाकी रह गयी, वह युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर भागी। देवराज ने अपनी सेना लेकर धारानगरी पर आक्रमण किया। राजा ब्रिजभानु ने अपनी सेना के साथ पॉच दिन तक बराबर युद्ध किया और अंत में अपने आठ सौ सैनिकों के साथ वह युद्ध में मारा गया। देवराज ने प्राचीन धारानगरी के दुर्ग पर अपनी विजय का झंडा फहराया। इसके बाद वह लुद्रवा नगर चला गया।

देवराज के मूँद और छेद नामक दो लड़के पैदा हुए। उसके दूसरे लड़के के-जिसकी स्त्री बराह वंश मे पैदा हुई थी- पॉच लडके पैदा हुए। वे लोग छेदूवंशी राजपूतो के नाम से प्रसिद्ध हुए। देरावल की निकटवर्ती भूमि में देवराज ने अनेक विशाल तालाब खुदवाये थे। तनोट नामक नगर में जो तालाब खुदवाया, उसका नाम तनोटसर रखा और एक विशाल तालाब खुदवा कर उसका नाम अपने नाम पर उसने देवसर रखा। एक दिन देवराज अपने आदमियों के साथ शिकार खेलने गया था। वहाँ पर छानिया जाति के बलोचों ने देवराज पर आक्रमण

× राजपूतों मे लुद्र लोगों का वंश क्या है, इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख हमे पढ़ने को नहीं मिला। परन्तु सम्भवतः प्रत्येक अवस्था मे ये लोग प्रमार वंशी राजपूत थे, जिन्होंने किसी समय भारतवर्ष की सम्पूर्ण मरुभूमि को अपने अधिकार मे कर लिया था। जिन दिनों मे भाटी जाति के लोगों के द्वारा जैसलमेर में राजधानी कायम हुई थी, उसके पहले तक लुद्रवा भाटी लोगां की राजधानी थी। यह बहुत प्राचीन नगर माना जाता है। परन्तु अब यह नगर बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। इन दिनो में वहाँ पर गड़रिया लोगों की आबादी है। लगातार युद्धो के कारण मरुभूमि के सभी प्राचीन नगर विध्वस हो गये हैं। लुद्रवा में दसवीं शताब्दी का ताम्र पत्र मुझे मिला था, वह ब्रिजराज अथवा बीजीराज के समय का था। वह जैन भाषा में था।

किया और उसे जान से मार डाला। उसने स्वाभिमान और गौरव के साथ बावन वर्ष तक राज्य किया।

देवराज की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का मूँद उसके राज सिंहासन पर बैठा। उसने पिता का श्राद्ध कार्य किया। उसके बाद उसका राज्याभिषेक हुआ। उसने अड़सठ कुओं के जल से स्नान किया। अभिषेक के समय राज्य के पुरोहित ने आशीर्वाद दिया और सामन्तों ने उसको अपनी-अपनी भेंट दीं। सिंहासन पर बैठने के बाद मूँद ने अपने पिता का बदला लेने के लिए तैयारी की।

जिन लोगों ने देवराज को मारा था, वे पहले से ही सतर्क थे। मूँद ने उन पर आक्रमण करके उनके आठ सौ सैनिकों का संहार किया। मूँद के बाछू नाम का एक लड़का पैदा हुआ। जब उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी, पट्टन के राजा सोलंकी राजपूत बल्लभसेन ने उसके साथ अपनी लड़की का विवाह करने के लिए नारियल भेजा। इसके पश्चात् सोलंकी राजकुमारी के साथ राजकुमार बाछूराव का विवाह हुआ।

मूँद के परलोक यात्रा करने पर सम्वत् 1035 श्रावण कृष्ण पक्ष द्वादशी शनिवार के दिन बाछूराव सिंहासन पर बैठा। उसके पाँच बालक पैदा हुए- 1. दूसा 2. बापेराव 3 सिंह 4. इनवे और 5. मूलअपसा। इन पाँचों लड़कों के वंशधर कई शाखाओं में विभक्त होकर प्रसिद्ध हुए।

एक घोड़ों का व्यवसायी अपने साथ एक सौ घोड़े लिये जा रहा था। उन घोडो में एक घोड़ा बहुत श्रेष्ठ था। उस व्यवसायी ने एक लाख रुपये में उसको बेचने का निश्चय किया। सिंधु नदी की पश्चिमी सीमा पर रहने वाला गाजीखॉ नाम का एक पठान उस घोड़े का मालिक था। दूसा ने अपनी सेना लेकर गाजी खॉ पर आक्रमण किया और उसको मारकर वह उसके उस श्रेप्ठ घोड़े को अपने साथ ले आया।

सिंह के एक बालक पैदा हुआ, उसका नाम सच्चाराय था। उसके पुत्र बल्ला के रत्न और जग्गा नामक दो लड़के पेदा हुए। उन्होंने मन्डोर के परिहार राजा जगन्नाथ पर आक्रमण किया और उसके पाँच सौ ऊँटों को जीतकर अपने राज्य में ले आये। सिंह के वंशज सिंहराव राजपूत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बापेराव के दो बालक हुए। एक का नाम था, पाहुर और दूसरे का नाम था,मॉदन। पाहुर के विरम और तोलर नामक दो लड़के हुए। उनके वंशज पाहुर राजपूत के नाम से प्रसिद्ध हुए। पाहुर राजपूतों ने जोहिया के समस्त नगरों से देवीछाल तक अधिकार कर लिया और पूगल में राजधानी बनाकर वहॉ पर बहुत से कुएँ खुदवाये। ये कुएँ पाहुर कूप के नाम से प्रसिद्ध है।

मारवाड़ के नागौर जिले में खाचो के करीबी खींची वंश के लोग रहते थे। उनमें जिद्रा नामक एक आदमी बड़ा साहसी था। उसने पूगल की सीमा तक पहुँचकर लूटमार की और जयतुग भट्टियों का सर्वनाश किया। इन लुटेरों से बदला लेने के लिए दूसा अपने साथ कुछ साहसी वीरों को लेकर रवाना हुआ और उनके नगरों में पहुँचकर उसने नौ सौ लुटेरों का सर्वनाश किया।

गहिलोत राजा प्रताप सिह खडाल राज्य मे रहता था। दूसा अपने तीन भाइयो के साथ वहाँ पहुँचा और उनकी तीन लड़कियो के साथ विवाह किया। इसके कुछ दिनों के बाद खडाल राज्य में बिलोचियों के अत्याचार आरम्भ हुए। उन्हीं दिनों में उनके साथ युद्ध हुआ, जिसमें पाँच सौ बिलोची मारे गये और बाकी सब भाग गये। बाछूराव की मृत्यु के बाद उसका बडा पुत्र दूसा सन् 1044 में यदुवंशियों के सिंहासन पर बैठा।

दूसा के सिंहासन पर बैठने के थोडे दिनो बाद सोढ़ा जाति के राजा हमीर सिंह ने दूसा के राज्य पर आक्रमण किया और वहां के कई नगरो को लूट लिया। यह देखकर दूसा अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और उसने हमीर सिह पर उसकी राजधानी में जाकर आक्रमण किया। उस लडाई मे हमीर सिंह की पराजय हुई।

दूसा के जयसलदेव और विजयराव नामक दो बालक पैदा हुए। उसकी वृद्धावस्था मे तीसरा लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम लंगा विजयराव रखा गया। दूसा के मरने पर राज्य के सामन्तों ने उसके तीसरे पुत्र लंगा विजयराव को राजसिंहासन पर बिठाया। राज्य का अधिकार प्राप्त करने के पहले लंगा विजयराव ने सोलंकी वंश के सिद्धराज जयसिह की लडकी के साथ विवाह किया था। उस विवाह के अवसर पर जयसिंह की रानी ने लंगा विजयराव के मस्तक पर तिलक करते हुए कहा था- "प्रिय, उत्तर दिशा मे रहने वाले लोग इस राज्य से ईर्ष्या रखते हें और वे प्राय: इस राज्य पर अत्याचार किया करते हैं। इसलिए उन लोगों से इस राज्य की रक्षा करना।"

सोलंकी राजकुमारी से लंगा विजयराव के एक बालक पैदा हुआ। उसका नाम भोजदेव रखा गया। अपने पिता की मृत्यु के बाद पच्चीस वर्ष की अवस्था में भोजदेव लुद्रवा का राजा हुआ। दूसा के अन्य लड़के इस समय वयस्क हो चुके थे। जयसल की अवस्था पैंतीस वर्ष और विजयराव की आयु बत्तीस वर्ष की थी।

भोजदेव के लुद्रवा के सिहासन पर बैठने के बाद उसके चाचा जयसलदेव ने ईर्ष्यालु होकर उसके विरुद्ध षड्यंत्र आरम्भ किया। पॉच सौ सोलंकी राजपूतों के द्वारा सुरक्षित रहने के कारण जयसलदेव भोजदेव को किसी प्रकार की क्षति पहुँचा न सका। इन दिनों मे शहाबुद्दीन गोरी ठठ्ठा नामक राज्य को जीतकर पाटन के राजा के साथ युद्ध कर रहा था। जयसलदेव ने शहाबुद्दीन गौरी से मिल कर भोजदेव को पराजित करने की चेष्टा की। उसने शहाबुद्दीन के साथ मित्रता की और उसकी सहायता लेकर उसने अनहिलवाड़ा पट्टन पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसका अनुमान था कि पट्टन के पॉच सौ सोलंकी राजपूत जो सदा भोजदेव की रक्षा में रहा करते हैं, वे पट्टन पर आक्रमण होते ही भोजदेव को छोड़कर चले जाएँगे। उस समय भोजदेव के विरुद्ध हमारा मार्ग साफ हो जाएगा। इस प्रकार सोच-विचार कर उसने अपने साथ के दो सौ अश्वारोही सैनिको को तैयार किया और उनको लेकर वह पंजाब की तरफ रवाना हुआ। इन्ही दिनो मे शहाबुद्दीन गौरी ठठ्ठा राज्य मे विजयी होकर सिंध की प्राचीन राजधानी अरोड नगर को जा रहा था। जयसल देव शहाबुद्दीन से मिलने के लिए आया। शहाबुद्दीन ने उसका बहुत आदर किया। जयसलदेव ने स्वीकार कर लिया। दोनो में मित्रता हो गयी। शहाबुद्दीन गौरी ने अपने कई हजार सैनिकों की एक सेना करीम खॉ नाम के सेनापति को

देकर जयसलदेव की सहायता में भेजी। गौरी की उस सेना को लेकर जयसलदेव भोजदेव को पराजित करने के लिए लुद्रवा राज्य की तरफ रवाना हुआ और वहॉ पहुॅच कर जयसलदेव ने एक साथ लुद्रवा पर आक्रमण किया। इस युद्ध में भोजदेव मारा गया और उसकी वची हुई सेना ने जयसलदेव की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद करीमखाँ की फौज ने लुद्रवा में लूट की और वहाँ से बहुत बड़ी सम्पत्ति अपने अधिकार में लेकर करीमखॉ भक्खर की तरफ चला गया।

जयसलदेव ने लुद्रवा के राज सिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया। लेकिन इन्हीं दिनों में उसे आभास हुआ कि लुद्रवा की राजधानी सुरक्षित नहीं है। यहाँ पर शत्रुओं का कभी भी आक्रमण हो सकता है। इसलिए उसने एक सुरक्षित स्थान की खोज की और इसके लिए जो स्थान निश्चित किया गया, वह लुद्रवा से दस मील की दूरी पर था। जयसल ने उस स्थान के पत्थर पर किसी ब्राह्मण को बैठा देखा। वहॉ पर ब्रह्मसर नामक एक तालाब था। उसी के निकट उस ब्राह्मण की कुटी थी।

जयसल ने उस ब्राह्मण से बातचीत की। उसको उत्तर देते हुए ब्राह्मण ने कहा– "त्रेता युग में काग नाम का एक योगी इस तालाब के समीप रहता था। यहाँ से एक नदी निकली थी। उस योगी के नाम से वह नदी काग नदी के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह तालाब बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन था। कृष्ण के साथ आकर अर्जुन ने इसके दर्शन किये थे। इसे देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि आज से बहुत दिनों के बाद हमारा कोई वंशज इस पर्वत पर अपनी राजधानी की प्रतिष्ठा करेगा।

कृष्ण की इस बात को सुनकर अर्जुन ने कहा– "राजधानी बनने के वाद यहाँ पर जो लोग रहेंगे, उनको जल का बहुत कष्ट रहेगा। क्योकि इस नदी का पानी स्वच्छ नहीं है।"

अर्जुन की इस बात को सुनकर कृष्ण ने अपने चक्र से पर्वत को स्पर्श किया। उससे स्वादिष्ट जल की एक नदी प्रवाहित हुई। उस नदी के किनारे एक पत्थर लगा हुआ था। उस पर कुछ पंक्तियॉ खुदी हुई थी। उस ब्राह्मण ने उन पंक्तियों को पढ़कर जयसल को सुनाया। उनका आशय इस प्रकार था–

1 हे प्रतापी यदुवंशी राजन्, आप यहॉ पर आइए और इस पर्वत के ऊपर अपना दुर्ग बनवाइए।

2 लुद्रवा की राजधानी नष्ट हो गयी है और जयसल राज्य यहॉ से दस मील की दूरी पर है, जो सुदृढ और सुरक्षित है।

3. हे यदुवंशी राजन् आप, जयसल ओर लुद्रवा को त्याग कर यहॉ पर आइए और अपनी राजधानी की प्रतिप्ठा करिए।

पत्थर पर लिखी हुई ये पंक्तियॉ संस्कृत भापा के श्लोको में थीं। इनकी जानकारी उस ब्राह्मण के सिवा और किसी को न थी। उसने जयसल से यह भी कहा कि आप यहाँ पर अपनी रक्षा के लिए जिस दुर्ग के निर्माण का विचार कर रहे हैं। वह दो बार बाहरी जातियो के द्वारा विध्वंस किया जाएगा। युद्ध होगा, रक्त के नाले वहेंगे और आपके उत्तराधिकारी उसे अपने अधिकार से खो देंगे।

सम्वत् 1212 के श्रावण महीने की वदी द्वादशी रविवार के दिन सन् 1156 ईसवी को जैसलमेर की राजधानी की प्रतिष्ठा हुई। इसके बाद लुद्रवा के निवासी अपने परिवारों के साथ वहाँ आकर रहने लगे। जयसल के केलन और शालिवाहन नाम के दो बालक पैदा हुए। जयसल ने एक पाहुवंशी विद्वान को अपना मंत्री नियुक्त किया। भट्टी लोगों के पुराने शत्रु राजपूतों ने इन्ही दिनो में फिर खडाल राज्य पर आक्रमण किया और उसके फलस्वरूप, उन लोगों को भयानक क्षति उठानी पड़ी। इस घटना के बाद जयसल पाँच वर्ष तक जीवित रहा। उसके मरने के बाद उसका छोटा लड़का शालिवाहन द्वितीय उसके राज सिंहासन पर बैठा।

अध्याय-50
जैसलमेर के सिंहासन पर शालिवाहन

जयसल ने अपनी बनवाई हुई राजधानी का नाम जैसलमेर रखकर बारह वर्ष तक वहाँ शासन किया। जैसलमेर अब तक यदुवंशी लोगों के अधिकार मे था। जयसल के शासनकाल में जैसलमेर राज्य की उन्नति हुई।

जयसल की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़े पुत्र केलन राज्य का अधिकारी था। वह पिता के राजसिंहासन पर बैठा। परन्तु राज्य का प्रधान मंत्री पाहु उससे प्रसन्न न था। इसलिए उसने केलन का विरोध किया और राज्य से उसे निर्वासित करके जयसल के छोटे पुत्र शालिवाहन द्वितीय को सबके परामर्श से सन् 1168 ईसवी में राज सिंहासन पर बिठाया। शासन का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के बाद शालिवाहन ने ऐसे कार्य आरम्भ किये, जिनसे उसकी कीर्ति बढने लगी।

जालौर और अरावली के बीच के स्थानो में काठी नाम की एक जाति के लोग रहते थे। जगभानु उस जाति के लोगों का राजा था। सिंहासन पर बैठने के बाद शालिवाहन ने राजा जगभानु से युद्ध करने का निश्चय किया। इन दोनों राजाओ में युद्ध हुआ और उस युद्ध मे काठी जाति का राजा जगभानु परास्त होने के बाद मारा गया।[x] शालिवाहन ने विजय प्राप्त करने के बाद काठी राजा जगभानु के घोड़ों और ऊँटों को अपने अधिकार मे कर लिया और फिर वह अपनी राजधानी लौट आया। शालिवाहन के तीन बालक पैदा हुए- बीजलदेव, बानर और हंसू।

यदुवंशी शालिवाहन प्रथम ने गजनी से पंजाब में आकर शालिवाहनपुर राजधानी की प्रतिष्ठा की थी। उसके लड़के ने बद्रीनाथ पहाड़ के ऊपर एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। जैसलमेर के सिंहासन पर जिन दिनों मे शालिवाहन द्वितीय बैठा था, उन्हीं दिनों में बद्रीनाथ पर्वत के यदुवंशी राजा की मृत्यु हो गयी। उसके कोई लडका न था। इसलिए उसके मन्त्रियो और सामन्तों ने किसी यदुवंशी बालक को उस सिंहासन पर बिठाने के लिए शालिवाहन द्वितीय से परामर्श किया।

रावल शालिवाहन ने अपने वंश के एक राज्य की रक्षा करने के लिए वहाँ के मंत्रियो और सामन्तों की माँग के अनुसार अपने तीसरे पुत्र हंसू को बद्रीनाथ भेज दिया। परन्तु संयोगवश वहाँ पहुँचने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। हंसू की स्त्री गर्भवती थी। बद्रीनाथ वह अपने पति

सिकन्दर महान के भारतवर्ष मे आक्रमण करने पर जिस काठी जाति ने उसका सामना किया था, यह वही काठी जाति थी, जिसके लोग उन दिनो मे मुलतान के आस-पास रहते थे। ये लोग युद्ध करने मे सदा साहसी और पराक्रमी थे। यदुभट्टी लोगो ने उन पर आक्रमण किया था।

के साथ जा रहा था। रास्ते मे उसको प्रसव की पीड़ा हुई। वहीं पर एक पलाश के पेड़ के नीचे उसके एक बालक पैदा हुआ। जिसका नाम पलाश रखा गया। यही राजकुमार पलाश बद्रीनाथ के राज्य का अधिकारी हुआ। उसी के नाम के आधार पर उस राज्य का नाम पलाशिया राज्य रखा गया। उसके वंशज पलाशिया भट्टी नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिरोही के देवरावंशी मानसिंह ने रावल शालिवाहन के साथ अपनी लड़की के विवाह का विचार किया और ऐसा निश्चय करके राजपूतो की प्रणाली के अनुसार उसने नारियल भेजा। शालिवाहन ने उस विवाह को स्वीकार कर लिया और अपने बड़े पुत्र बीजलदेव को राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व देकर सिरोही विवाह करने चला गया। शालिवाहन के चले जाने के बाद बीजलदेव के धाभाई अर्थात् धात्री माता के लड़के ने यह अफवाह उडा दी कि सिरोही के रास्ते मे रावल शालिवाहन ने एक चीते पर आक्रमण किया था। उसमे वह सफल न हुआ और वह चीते के द्वारा मारा गया।

उस धाभाई ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि बीजलदेव को सिंहासन पर बिठा दिया जाये। बीजलदेव पहले से ही अपने इस धाभाई के साथ विशेष अनुराग रखता था और उस पर बहुत विश्वास करता था। बीजल देव सिंहासन पर बिठा दिया गया। सिरोही से लौटने के बाद रावल शालिवाहन जब अपने नगर में आया तो उसने देखा कि बीजलदेव ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया है। इसी समय उसने बीजलदेव की तरफ से अक्षम्य अशिष्टता का व्यवहार देखा। बीजलदेव ने शालिवाहन के लौटने पर उससे साफ-साफ कह दिया- "जैसलमेर के सिहासन पर अब आपका कोई अधिकार नहीं।"

शालिवाहन ने देखा कि राज्य की प्रजा बीजलदेव का पक्ष ले रही है और उसको हमारा कुछ भी ख्याल नहीं है। इस दशा में सभी प्रकार निराश होकर वह खडाल राज्य चला गया। यह राज्य देरावल की अधीनता में था। वहाँ पहुँचकर शालिवाहन अधिक समय तक जीवित न रहा। वहाँ पर खिजरखाँ नामक एक बलोची ने विद्रोह किया। शालिवाहन उसका दमन करने के लिए रवाना हुआ और अपने तीन सौ आदमियों के साथ वहाँ पर वह मारा गया।

इस प्रकार शालिवाहन द्वितीय का सर्वनाश हुआ परन्तु विश्वासघाती उसका पुत्र बीजलदेव भी अधिक दिनों तक जीवित न रहा। धाभाई के साथ उसका द्वेषभाव उत्पन्न हुआ। उसमे बीजलदेव पूरी तौर पर उसका शत्रु बन गया। उसने एक बार अपने धाभाई पर तलवार लेकर आक्रमण किया। लेकिन अपने इस आक्रमण से लज्जित होकर बाद मे बीजलदेव ने आत्महत्या कर ली।

शालिवाहन और उसके लडके बीजलदेव के न रहने पर जैसलमेर का राज्य सिंहासन सूना हो गया। उस पर अब किसको बिठाया जाये, यह प्रश्न पैदा हुआ। शालिवाहन के बडे भाई राजकुमार केलन को राज्य से निकाल दिया गया था। सभी के परामर्श से सन् 1200 ईसवी मे उसी को लाकर, उसकी पचास वर्ष की अवस्था मे जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाया गया। केलन के छः बालक पैदा हुए-1. चाचकदेव 2. पाल्हन 3. जयचन्द 4. पीतमसी 5. पीचमचंद और 6 ओसराड। दूसरे और तीसरे लड़के-पाल्हन और जयचन्द के बहुत-सी संतानें पैदा हुई, जो जेसर और सिहाना राजपूतों के नाम से प्रसिद्ध हुई।

खिजरखाँ ने अपने साथ पॉच हजार सवारो की सेना लेकर सिंधु नदी को पार किया और उसने दूसरी बार खडाल राज्य पर आक्रमण किया। इसी खिजरखॉ ने रावल शालिवाहन को पहले आक्रमण मे पराजित किया था। उसके आक्रमण का समाचार सुनकर केलन सात हजार यदुवंशियों की सेना लेकर रवाना हुआ और खिजरखॉ के साथ उसने भयानक युद्ध किया। संग्राम में अपने पॉच सौ सैनिकों के साथ बलोच खिजरखॉ मारा गया और वृद्धावस्था में केलन को अपने शत्रु पर विजय प्राप्त हुई। जैसलमेर के सिंहासन पर बैठकर उसने उन्नीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गई।

रावल केलन की मृत्यु के बाद उसके बड़े लड़के चाचकदेव को- सम्वत् 1275 सन् 1216 ईसवी में राज्य सिंहासन पर बिठाया गया। इसके थोडे ही दिनों बाद चाचक देव ने चन्ना राजपूतों के साथ युद्ध किया और शत्रु के दो हजार राजपूतों का संहार करके उनकी चौदह सौ गायें छीन लीं। चन्ना राजपूत पराजित हो जाने के बाद अपने राज्य को छोड़कर जोहिया राज्य में जाकर रहने लगे।

रावल चाचकदेव ने चन्ना राजपूतों को परास्त करने के बाद सोढ़ा के राजा राणा अमरसी के राज्य पर आक्रमण किया। राजा अमरसी को इस आक्रमण से बहुत आश्चर्य हुआ और चाचक देव का सामना करने के लिये अपने चार हजार सवारों की सेना को लेकर वह रवाना हुआ। इस युद्ध में चाचक देव से पराजित होकर प्रमार राजपूत अपनी राजधानी अमरकोट भाग गये और उनके राजा अमरसी ने चाचकदेव के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

इन्हीं दिनों में राठौर राजपूतों ने मरुभूमि में आकर खेड नाम का एक नया राज्य बसाया था। वहाँ पर राठौरें ने अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किये, इसलिये रावल चाचक ने उन राठौरों को दमन करने का विचार किया। जसोल और बालोतरा नामक दो राज्यों पर राठौरों ने अधिकार कर लिया। रावल चाचक अपनी और सोढ़ावंशी लोगों की सेना लेकर राठौरों के विरुद्ध रवाना हुआ और उसने राठौरों से युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में राठौरों ने संधि की और चाचक के साथ राठौर राजकुमारी का विवाह कर दिया।

बत्तीस वर्ष तक राज्य करने के बाद रावल चाचक की मृत्यु हो गयी। उसका इकलौता येटा तेजराव उसके सामने ही बयालीस वर्ष की आयु में चेचक रोग से पीड़ित होकर मर गया। तेजराव के जैतसी और कर्णसी नाम के दो बालक थे। कर्णसी छोटा था। रावल चाचक इस छोटे बालक के साथ अधिक स्नेह करता था। मरने के समय उसने मन्त्रियों, सामन्तों और परिवार के लोगों को वुला कर कहा- "मेरे मरने के बाद राजकुमार कर्णसी को राज सिंहासन पर बिठाना। मेरी इस बात मे किसी प्रकार का अन्तर न पड़े।"

रावल चाचक के निर्णय के अनुसार राज्य के सामन्तों ने छोटे राजकुमार कर्णसी को जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाया। इस सिंहासन का वास्तव में अधिकारी बड़ा लड़का जैतसी था। अपने अधिकारों की अवहेलना देखकर व्यथित और लज्जित होकर वह अपने राज्य से चला गया और गुजरात के मुस्लिम बादशाह के यहॉ जाकर रहने लगा। रावल कर्णसी के सिंहासन पर बैठने के बाद नागौर मे हिन्दुओं के साथ मुजफ्फर खॉ के अत्याचार हुए। नागौर से तीस मील की दूरी पर बराहवंशी भगवतीदास नामक एक राजा रहता था। उसके

अधिकार में एक हजार पाँच सौ अश्वारोही सेना थी। भगवतीदास की लड़की अपने सौन्दर्य के लिए वहुत प्रसिद्ध हो रही थी। मुजफ्फर खाँ ने अपना एक आदमी भेजकर भगवतीदास से उस लड़की की माँग की। भगवतीदास जब मुजफ्फर खाँ की आज्ञा का पालन न कर सका और उसके साथ युद्ध करने में भी भगवतीदास ने अपने आपको असमर्थ समझा तो उसने परिवार के साथ जैसलमेर चले जाने का निर्णय किया और जब वह अपने परिवार को लेकर जैसलमेर जा रहा था, मुजफ्फर खाँ ने अपनी फौज लेकर मार्ग में उस पर आक्रमण किया। भगवतीदास के साथ जो सेना थी, उसने मुजफ्फर खाँ की फौज के साथ वहुत देर तक युद्ध किया। उसमें चार सौ वराहवंशी राजपूत सैनिक मारे गये और मुजफ्फर खाँ ने भगवतीदास के साथ की समस्त स्त्रियों को कैद कर लिया। उनमें वह लड़की भी गिरफ्तार हो गयी।

मुजफ्फर खाँ इन सब को कैद करके अपने साथ ले गया। भगवतीदास ने जैसलमेर जाकर रावल कर्णसी से मुजफ्फर खाँ के इस अत्याचार का वर्णन किया। कर्णसी को अत्यधिक क्रोध मालूम हुआ। उसने उसी समय अपनी सेना को तैयार होने के लिए आदेश दिया और एक शक्तिशाली सेना लेकर मुजफ्फर खाँ पर आक्रमण करने के लिए वह रवाना हुआ। मुजफ्फर खाँ की फौज के साथ जैसलमेर की सेना ने भयानक युद्ध किया और उनके तीन हजार सैनिकों का संहार करके मुजफ्फर खाँ से भगवतीदास की लड़की और स्त्रियों के साथ-साथ समस्त सम्पत्ति छीन ली और जैसलमेर में भगवतीदास को लाकर सौंप दी।

अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करने के वाद रावल कर्णसी ने परलोक की यात्रा की। उसके वाद उसका पुत्र लाखनसेन सन् 1271 ईसवी में जैसलमेर के सिंहासन पर वैठा। उसके वुद्धिमानी के व्यवहारों को सुनकर कोई भी हँसेगा। एक दिन रात की वात है आवादी के वाहर वहुत से सियार चिल्ला रहे थे। लाखन के पूछने पर वताया गया कि ये सियार सर्दी के कारण चिल्ला रहे हैं। यह सुनकर लाखनसेन ने प्रत्येक सियार को एक-एक कम्वल देने का आदेश दिया। इसके वाद भी जब कि राज्य की तरफ से कम्वलों का प्रवन्ध हो चुका और उनका चिल्लाना जारी रहा तो लाखनसेन ने फिर पूछा- "अव ये क्यों चिल्ला रहे हैं?"

इसके उत्तर में लाखनसेन को वताया गया कि उनके पास रहने के लिए घर नहीं हैं इसलिए चिल्ला रहे हैं। लाखनसेन ने उनके लिए घर वनवाने की आज्ञा दी। आज्ञा के अनुसार उनके लिए मकान वनवाये गये। राजा लाखनसेन के द्वारा इस प्रकार जो घर वनवाये गये थे, उनमें से कुछ अव तक वहाँ पर पाये जाते हैं।

लाखनसेन कनाडदेव सोनगरा का समकालीन था। उसकी रानी ने एक वार उसके प्राणों की रक्षा की थी। उसकी रानी सोढा वंश में उत्पन्न हुई थी। राज्य में उसी का प्रभुत्व काम कर रहा था। उसके पिता की राजधानी अमरकोट में थी। वहाँ से उसने वहुत से आदमियों को वुलवाकर राज्य में अच्छे पदों पर रखे थे। लाखनसेन ने चार वर्ष तक सिंहासन पर वैठकर राज्य किया।

पुण्यपाल लाखनसेन का लड़का था। पिता के वाद वह सिंहासन पर वैठा। उसका व्यवहार अच्छा न था। इसलिए राज्य के सामन्तों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और जैतसी को जो गुजरात में जाकर रहने लगा था, सिंहासन पर विठाया। पुण्यपाल अपने राज्य से निकल

कर जैसलमेर से कुछ दूरी पर जाकर रहने लगा। वहाँ पर उसके लाखनसी नाम का एक लड़का पैदा हुआ। इस लाखनसी के रणिगदेव नाम का एक बालक पैदा हुआ। वयस्क होने पर खरल वंशी एक राजपूत के साथ मिल कर उसने एक षड़यंत्र आरम्भ किया। उसने जोहिया लोगों से मिल कर मरोट और जाति के अधिकारों से पूगल राज्य छीन कर अपना राज्य कायम किया और थोरी लोगों के राजा को कैद कर लिया। उसने पूगल में अपने परिवार के लोगों को रखा। राव रणिगदेव के सहदोल नामक एक लड़का पैदा हुआ। सन् 1276 ईसवी में जैतसी जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। मूलराज और रत्नसी नाम के दो बालक उसके पैदा हुए। मूलराज के पुत्र देवराज ने जालौर के सोनगड़े वंशी राजा की लड़की के साथ विवाह किया।

बादशाह मोहम्मद खूनी ने मन्डोर के परिहार राणा रूपसी के राज्य पर आक्रमण किया। राणा रूपसी ने उससे पराजित होकर अपनी बारह लड़कियों के साथ जैसलमेर में आकर आश्रय लिया। यहाँ आने पर उसे परिवार के साथ बारू नामक स्थान पर रखा गया।

देवराज के तीन बालक पैदा हुए-जड्डन, सिखन और हमीर। हमीर अत्यन्त शूरवीर था। उसने मेहवा के कंपो हुसैन पर आक्रमण किया और वहाँ की बहुत सी सम्पत्ति लूटकर वह अपने साथ ले आया। हमीर के तीन बालक पैदा हुए-जैतू, लूनकर्ण और नीरो।

इन दिनों में मोहम्मद गौरी ने भारत के राजाओं के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया था। मुलतान और ठट्ठा उस समय दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के अधिकार में थे। इन दोनों नगरों पर आक्रमण करके और वहाँ की लूटी हुई सम्पत्ति और सामग्री पन्द्रह सौ घोड़ों और पन्द्रह सौ खच्चरों पर लादकर भक्खर से दिल्ली के बादशाह के पास भेजी गयी थी। इसका समाचार जेतराव के लड़के को मिला। उसने उस सम्पत्ति को लूट लेने का निश्चय किया। उसने अपने साथ सात सौ अश्वारोही और बारह सौ ऊँटों पर सवार सैनिकों को लेकर चलने की तैयारी की और छिपे तौर पर वह अपनी सेना को लेकर उस रास्ते पर पहुँच गया, जहाँ से होकर लूट की सम्पत्ति दिल्ली जाने को थी।

पंचनद में एक नदी के समीप पहुँच कर उसने देखा कि जो सम्पत्ति और सामग्री दिल्ली जा रही है, उसकी रक्षा में चार सौ मुगल और चार सौ पठान सवारों की सेना है। भाटी लोगों ने बादशाह की सेना के पीछे पहुँचकर कुछ दूरी पर मुकाम किया। उनसे कुछ फासले पर आगे बादशाह की सेना ने मुकाम किया था। रात को मुगलों और पठानों के सो जाने पर भाटी लोगों ने एक साथ उन पर आक्रमण किया और उनको मारकर उनके साथ की सम्पूर्ण सम्पत्ति वे लोग जैसलमेर ले आये। बादशाह के जो सैनिक बच गये थे, उन्होंने बादशाह के पास जाकर इस लूट का हाल बताया।

बादशाह ने इस घटना को सुनकर भाटी राजकुमार से बदला लेने के लिए आदेश दिया और बादशाह की फौज जैतसी पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने लगी। यह समाचार जैसलमेर पहुँचा और यह भी मालूम हुआ कि जो सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है, वह अजमेर के निकट सागर तक पहुँच चुकी है। यह सुनकर जेतसी ने भी अपने यहाँ सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। वहाँ के दुर्ग में बहुत दिनों के लिए खाने-पीने की व्यवस्था की गयी और उसके सभी रास्ते मजबूत पत्थरों से बन्द करवा दिये गये। साथ ही दुर्ग के भीतर

पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ो का एक बहुत बड़ा ढेर तैयार किया गया और निश्चय किया गया कि शत्रु के आक्रमण करने पर पत्थरों के इन टुकड़ों की मार की जायेगी।

राजमहलों से परिवार के सभी लोगों को मरुभूमि के एक दूरवर्ती स्थान पर भेज दिया गया। इसके बाद रावल जैंतसी अपने दो लड़कों और पाँच हजार सैनिकों के साथ दुर्ग में रहने लगा। देवराज और हमीर एक सेना को लेकर शत्रु का सामना करने के लिए अपनी राजधानी से निकले। उस समय बादशाह अलाउद्दीन अजमेर की तरफ चला गया और भादो के महीने में अपनी खुरासानी फौज को लेकर उसने जैसलमेर को घेर लिया। जैसलमेर के छप्पन बुर्जो की रक्षा करने के लिए तीन हजार सात सौ शूरवीर तैयार थे और आवश्यकता के लिए दो हजार सैनिक दुर्ग के भीतर थे।

खुरासानी फौज के आते ही भाटी लोग सभी प्रकार से तैयार हो गये और शत्रु के द्वारा घेरा डालते ही भाटी सैनिकों ने जो मार आरम्भ की, उससे सात हजार शत्रु के आदमी मारे गये। मीर महबूब खाँ और अली खाँ नामक दोनों सेनापति अपनी बची हुई फौज के साथ हुए युद्ध के क्षेत्र में मौजूद रहे। शत्रु की फौज दो वर्ष तक जैसलमेर पर घेरा डाले पड़ी रही। इसके बाद उसके सामने खाने-पीने की कठिनाई पैदा होने लगी। क्योंकि मन्डोर मे जो रसद उनके लिए आती थी, उसे देवराज और हमीर रास्ते में ही लूट लेते थे। दुर्ग में भाटी सैनिकों के सामने खाने-पीने की कठिनाई न थी। इसके लिए उन लोगों ने पहले से ही प्रबन्ध कर लिया था। लेकिन युद्ध की इस अवस्था मे धीरे-धीरे आठ वर्ष बीत गये। इन्हीं दिनों मे जैसलमेर के राज जैतसी की मृत्यु हो गयी और उसके मृत शरीर का अग्नि-संस्कार दुर्ग के भीतर ही किया गया।

जैसलमेर के इस युद्ध के दिनो में बादशाह के सेनापति नवाब महबूब खाँ और रत्नसी मे मित्रता पैदा हुई। जैतसी की मृत्यु हो चुकी थी। सम्वत् 1350 सन् 1294 ईसवी में जैतसी के पुत्र मूलराज तृतीय का राजतिलक दुर्ग के भीतर हुआ। इस अभिषेक के समय मूलराज का छोटा भाई रत्नसी खोजडा वृक्ष के नीचे सेनापति नवाब महबूब खां के साथ बातें कर रहा था। इस मित्रता के सिलसिले मे रत्नसी प्राय: इसी वृक्ष के नीचे उसके साथ बातें किया करता था।

दुर्ग में जो उत्सव हो रहा था, उसके सम्बन्ध मे सेनापति महबूब खॉ ने प्रश्न किया। उत्तर देते हुये रत्नसी ने कहा कि "पिता जी की मृत्यु हो जाने के कारण दुर्ग में बड़े भाई मूलराज का अभिषेक हो रहा है।"

इस समय सेनापति महबूब खॉ ने रत्नसी से कहा "इस पेड़ के नीचे मैं आप के साथ प्राय: आपसे बातें किया करता हूँ और युद्ध आरम्भ होने पर हम दोनो अपनी-अपनी सेनाओ में युद्ध के लिए पहुँच जाते हैं। परन्तु इसकी असलियत बादशाह को जाहिर नहीं की गयी और उसे बताया गया है कि मेरे कारण जैसलमेर के दुर्ग पर अभी तक बादशाह का अधिकार नहीं हो सका इसलिए दुर्ग पर तुरन्त अधिकार करने के लिए मुझे आज्ञा मिली है। ऐसी दशा मे कल प्रात:काल अपनी फौज लेकर में दुर्ग पर अधिकार करने आऊँगा।"

नवाब महबूब खॉ की इस बात को सुनकर रत्नसी चुपचाप बना रहा। उसके ऊपर उसकी बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। कुछ समय के बाद वह उस स्थान से चलकर दुर्ग में पहुँच गया।

दूसरे दिन सवेरा होते ही सेनापति महबूब खॉ अपनी शक्तिशाली सेना लेकर रवाना हुआ और उसने दुर्ग पर जोरदार आक्रमण किया। भीषण संग्राम आरम्भ हो गया शत्रु की सेना दुर्ग पर अधिकार करने की पूरी कोशिश कर रही थी और यदुवंशी सेना दुर्ग की रक्षा कर रही थी। इस युद्ध में बादशाह के नौ हजार आदमी मारे गये। नवाब महबूब खाँ घबराकर अपनी बची हुई सेना के साथ युद्ध से भाग गया। इसके बाद उसने बादशाह की एक नयी सेना लेकर जैसलमेर के दुर्ग को फिर से घेर लिया। इसके बाद एक वर्ष और बीत गया।

उस दुर्ग में जैसलमेर की जो सेना मौजूद थी, अब उसके सामने खाने-पीने का कष्ट बढ़ने लगा और जब उसके लिए कोई व्यवस्था न हो सकी तो मूलराज ने अपने सामन्तों को बुलाकर कहा- "राजधानी की रक्षा करते हुये हम लोगों ने इतने दिन बिता दिये हैं। इन दिनों में खाने-पीने के कष्टों का किसी प्रकार सामना किया गया हैं। लेकिन अब कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी हैं। शत्रुओं ने जैसलमेर के सभी रास्तों पर अधिकार कर लिया हें और बाहर से खाने-पीने की सामग्री का आ सकना अब असम्भव हो गया है। इस दशा में अब क्या होना चाहिए?"

राजा मूलराज के इस प्रश्न को सुनकर सिहर और बीकमसी नामक दो सामन्तों ने कहा-"राजमहलों की सभी राजकुमारियाँ और रानियॉ जौहर व्रत का पालन करें और हम सब लोग युद्ध-भूमि में शत्रुओं से लड़ते हुये अपने प्राणों की बलि दें। इसके सिवा इस समय दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता।"

जैसलमेर के दुर्ग में जिस समय राजा मूलराज अपने सामन्तों के साथ इस प्रकार का परामर्श करता था, इसका कुछ भी पता बादशाह की फौज को न था। सेनापति महबूब खाँ और उसके साथियों को मालूम था कि जैसलमेर के दुर्ग में खाने-पीने की जो व्यवस्था है, वह अभी बहुत दिनों तक काम करेगी। इसलिए सेनापति महबूब खॉ स्वयं अधीर हो उठा और निराश होकर वह जैसलमेर से अपनी सेना के साथ चला गया।

बादशाह की फौज के चले जाने के बाद रत्नसी ने महबूब खॉ के छोटे भाई को जैसलमेर के दुर्ग में बुलाया और उसका बड़ा सत्कार किया। महबूब खॉ के भाई ने दुर्ग में पहुँचकर वहाँ की जो परिस्थितियॉ देखीं, उससे यह बात छिपी न रही कि भोजन की कमी के कारण यदुवंशी सेना दुर्ग में भयंकर कठिनाइयों का सामना कर रही है। वहॉ की परिस्थिति को समझकर महबूब खॉ का छोटा भाई तुरन्त दुर्ग से चला आया ओर बादशाह की फौज में जाकर उसने दुर्ग की सब हालत बतायी।

नवाब महबूब खाँ उस समाचार को सुनकर अपनी फौज के साथ उसी समय जैसलमेर की तरफ रवाना हुआ ओर बड़ी तेजी के साथ उसने फिर दुर्ग को जाकर घेर लिया। यह देखकर मूलराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके बाद ही उसे मालूम हुआ कि सेनापति महबूब खॉ का भाई दुर्ग में आया था और रत्नसी के द्वारा उसको यहॉ की सम्पूर्ण परिस्थिति मालूम हुई है।

मूलराज को रत्नसी पर बड़ा क्रोध मालूम हुआ। उसने उसे बुलाकर कहा- "तुम्हारे अपराध से हम सबका सर्वनाश होने जा रहा है। तुमने दुर्ग की परिस्थिति महबूब खॉ के भाई को बतायी है। उसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह की जो फौज निराश होकर यहाँ से चली गयी थी उसने फिर लौटकर दुर्ग पर आक्रमण किया है। इस समय जैसलमेर के सम्पूर्ण राज्य का प्रश्न है। हमारे महलों की राजकुमारियों और रानियों के धर्म की रक्षा कैसे होगी?"

बड़े भाई मूलराज के मुख से इन भयानक बातो को सुनकर रत्नसी ने स्वाभिमान के साथ कहा- "हम लोग इस समय मृत्यु के सामने हैं। दुर्ग के भीतर खाने-पीने का कोई प्रबंध नहीं है और दुर्ग के बाहर बादशाह की फौज ने घेरा डाल रखा है। बादशाह की विशाल सेना को पराजित करना हम लोगों के लिए असम्भव है। अब तक दुर्ग में बन्द रहकर उसका सामना किया है। लेकिन कुछ दिनों से दुर्ग में खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं रह गयी है। ऐसी दशा में दो ही रास्ते हम लोगों के सामने हैं। या तो हम लोग बिना भोजन के तड़प-तड़पकर दुर्ग में प्राण दे देंगे अथवा शत्रुओं के द्वारा मारे जायेंगे। इन दोनों परिस्थितियों में राजपूतों के लिए युद्ध करते हुए प्राणो का त्याग करना सब प्रकार से श्रेष्ठ है। इसलिए बलिदान होने के पहले हमें महलों में रानियों को जौहर व्रत की आज्ञा दे देनी चाहिए। इसलिए कि हम सब लोगों के मारे जाने के बाद जेसलमेर में यवन बादशाह का राज्य होगा और उसके द्वारा यदुवंशियों का सम्पूर्ण गौरव नष्ट हो जाएगा। इसलिए महलों की राजकुमारियाँ और रानियॉ जौहर व्रत का पालन करे और उनकी चिताओ के जलने के साथ-साथ जैसलमेर के राजमहलों में आग लगा दी जाये। सम्पूर्ण सम्पत्ति जला डाली जाये। इसके पश्चात् हम सब लोग अपने-अपने हाथों में तलवारें लेकर युद्ध भूमि में प्रवेश करें और शत्रुओं का संहार करते हुए अपने-अपने प्राणों की बलि दें। यदुवंशियों के गौरव की रक्षा का इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता।"

रत्नसी के मुख से इन शब्दों को सुनकर मूलराज को संतोष मिला। उसने अपने सामन्तों, परिवार के लोगों और अन्य प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर कहा- "आप सब का जन्म राजपूतों में हुआ है और आपके पूर्वजों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए सदा अपने प्राणों का मोह छोड़ा है। इस समय फिर आपके सामने परीक्षा का समय है। इस समय पूर्वजों के गौरव की रक्षा के लिए एक बार फिर अपने हाथों में तलवारों को पकड़ना है।"

इस प्रकार उत्तेजना पूर्ण बातें करके मूलराज महलों की तरफ रवाना हुआ। वहाँ की रानियों, राजकुमारियों और उनकी सहेलियों को एकत्रित करके मूलराज ने कहा- "हमारे वंश के पूर्वजों के सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा का समय उपस्थित हुआ है। अपने धर्म और गौरव को सुरक्षित बनाये रखने के लिए हम सबको अपने-अपने प्राणो की आहुतियॉ देनी हैं। अब अन्तिम समय है। आप सब जौहर व्रत की तैयारी करे।"

इसी समय सोढावंशी मूलराज की प्रधान रानी ने कहा- "जौहर व्रत के लिए आज रात को हम सब तैयारी कर लेंगी और कल प्रात:काल इस संसार को छोड़कर हम सब स्वर्ग की यात्रा करेंगी।"

प्रधान रानी के इन शब्दों को सुनकर राजमहलों की रानियॉ, राजकुमारियॉ और सामन्तों की स्त्रियॉ हर्ष के साथ जौहर व्रत की तैयारी करने लगीं।

प्रातःकाल होते ही रंग महलों के द्वार पर हृदय विदारक दृश्य उपस्थित हुआ। जितनी भी रानियों और ललनाओं ने जौहर व्रत के लिए तैयारी की थी, सभी ने स्नान करके रेशमी वस्त्र पहने और अपने देवता की पूजा करके वे सभी एक स्थान पर एकत्रित हुईं। प्रत्येक स्त्री ने जातीय गौरव का स्मरण करके अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा ओर भक्ति के साथ नतमस्तक होकर प्रणाम किया और उसके बाद वह जौहर व्रत के लिए आगे बढ़ी। सभी ने इसका अनुसरण किया। प्रज्जवलित अग्नि मे कूद-कूदकर सभी बलिदान होने लगीं। जेसलमेर की चौबीस हजार ललनाओं ने प्रज्जवलित अग्नि की होली में प्रवेश करके अपने प्राणो की आहुतियाँ दीं। इस जौहर व्रत के भयानक, किन्तु पवित्र दृश्य को राज्य के सभी लोगो ने देखा।

रावल मूलराज अब सब के साथ शत्रु से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। उसने सिर पर तुलसी की कुछ पत्तियाँ और गले में शालिगराम की मूर्ति बाँधी। इसके बाद तीन हजार आठ सौ यदुभट्टी लोगों ने शत्रुओं के साथ युद्ध किया और उनमें से सभी ने प्राण उत्सर्ग किये।

रत्नसी के दो बालक थे। एक का नाम था घडसी और दूसरे का नाम था कानड। घडसी की आयु बारह वर्ष थी। रत्नसी ने अपने इन दोनों बालकों को प्राणों की रक्षा के लिए सेनापति महबूब खाँ के पास भेज दिया और संदेश भेजा कि आप मेरे इन दोनों बालकों की रक्षा करें।

जो दूत रत्नसी के दोनों बालकों को वहॉ पर लेकर गया था, उसके सामने सेनापति महबूबखॉ ने शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि इन दोनों लड़कों की रक्षा मैं करूंगा। इसके बाद अपने दो आदमियों के साथ सेनापति ने उन दोनों बालको को बड़े सम्मान के साथ अपने यहॉ रखा ओर विश्वासी ब्राह्मणों की निगरानी में उसने दोनों बालकों को दे दिया। यह सब जैसलमेर के अन्तिम विनाश के पहले ही हो चुका था।

जौहर व्रत के बाद जैसलमेर के जिन शूरवीरों ने बादशाह की फौज के साथ अपने जीवन का अन्तिम युद्ध किया था, उनके द्वारा बादशाह के बहुत से आदमी मारे गये। केवल रत्नसी ने अपनी तलवार से एक सौ बीस शत्रुओं का संहार किया था और उसके बाद वह मारा गया। रावल मूलराज ने शत्रुओं के बहुत आदमियों को मार कर युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दिये। इस संग्राम में मारे गये रावल मूलराज और रत्नसी के मृत शरीरों को रणभूमि से मँगवाकर उनके वंश की प्रणाली के अनुसार सेनापति महबूब खॉ ने उनका अन्तिम संस्कार करवाया।

सन् 1295 ईसवी में यदुवंशियों का पूर्ण रूप से विध्वंस ओर विनाश हो गया। जैसलमेर का प्रसिद्ध सामन्त देवराज यदु भाटी सेना के आगे चला करता था और युद्ध-स्थल में अपनी सेना पर नियन्त्रण रखता था, ज्वर से बीमार हो जाने के कारण उसकी भी मृत्यु हो गयी। यदुवंश को विध्वंस करके बादशाह की फौज दो वर्ष तक जेसलमेर के दुर्ग मे रही। इसके बाद दुर्ग को मजबूती के साथ बंद करके और उसमे ताले लगाकर वहॉ से वह चली गयी।

जैसलमेर का दुर्ग इसके बाद बहुत दिनों तक पतित अवस्था में बना रहा। क्योंकि वहॉ पर जो यदु भाटी लोग रह गये थे, वे न तो दुर्ग का फिर से निर्माण और रक्षा कर सकते थे और न उनमे उसकी रक्षा करने की सामर्थ्य ही थी।

अध्याय-51
लूट की सम्पत्ति से जैसलमेर का निर्माण

भाटी राज्य के विनाश के कुछ वर्षो के बाद महेवा के सामन्त मालवी जी राठौर के लड़के जगमल ने जैसलमेर की राजधानी पर अधिकार करने का निश्चय किया और अपनी सेना के साथ सात सौ गाड़ियों पर रसद और दूसरी सामग्री को लादकर वह जैसलमेर पहुँच गया। जब यह समाचार भाटी राजवंश के जसहड के दोनों पुत्रो-दूदा और तिलोकसी ने सुना कि राठौर वंश के राजपूत हमारी राजधानी पर अधिकार करने के लिए आ गये हैं तो उन्होंने अपने आदमियों को संगठित करके राठौरों का सामना करने की तैयारी की और वे जैसलमेर में आ गये। भाटी लोगों ने जैसलमेर पहुँचकर राठौरों की सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट ली और उनको मारकर जैसलमेर से भगा दिया।

राठौरो के चले जाने के बाद दूदा ने जैसलमेर की राजधानी अधिकार मे ले ली। वहॉ की प्रजा ने इस पर सन्तोप प्रकट किया और उसे अपना राजा मानकर उसे रावल की उपाधि दी। दूदा ने जैसलमेर के राज्य सिंहासन पर बैठकर वहॉ के टूटे हुए मकानों के निर्माण का कार्य आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों के बाद जैसलमेर की परिस्थितियॉ बदल गयीं।

रावल दूदा के पॉच बेटे पैदा हुए। उसका भाई तिलोकसी अपने पराक्रम के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसने बलोचियों, मुसलमानों, मंगोलियों तथा देवरा जाति के लोगों और आबू पर्वत तथा जालौर के सोनगढ़ो को जीतकर अपनी शक्तियों का परिचय दिया। अनेक जातियों को लगातार पराजित करने के बाद उसका साहस बढ़ गया और उसने अपनी सेना लेकर अजमेर की तरफ की यात्रा की। दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह के बहुत से श्रेष्ठ घोड़े अजमेर से अनासागर स्नान कराने के लिए लाये गये थे। तिलोकसी ने आक्रमण करके बादशाह के समस्त घोड़े छीन लिए और वह जैसलमेर लौट आया।

बादशाह फीरोजशाह ने जब यह घटना सुनी तो उसने जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिए अपनी एक फौज रवाना की। बादशाह की सेना के साथ युद्ध करने की क्षमता दूदा मे न थी। इसलिए दिल्ली की इस फौज के पहुँचते ही जैसलमेर पर भयानक विपद आ गयी। जब दूदा ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखा तो उसने अपने यहॉ की सोलह हजार रानियो और दूसरी ललनाओं को अग्नि मे जला कर अपने सत्रह सौ आदमियो के साथ युद्ध में प्राण दे दिये। उसने जैसलमेर के सिंहासन पर बैठकर दस वर्प तक राज्य किया।

सम्वत् 1362 सन् 1306 ईसवी मे अपने परिवार के लोगो के साथ दूदा युद्ध मे मारा गया। उन्हीं दिनो मे नवाब महबूबखॉ की मृत्यु हो जाने के कारण रत्नसी के दोनों राजकुमारो की रक्षा का भार महबूबखॉ के दोनों लडको गाजी खॉ और जुलफकार खाँ पर पड़ा। इन्ही

दिनों मे कानड छिपकर एक वार जैसलमेर चला आया और उसके बड़े भाई घडसी ने पश्चिम के महेवा में जाकर राठौर राजकुमारी विमला के साथ विवाह किया। जिन दिनो मे घडसी अपने विवाह की धुन में था, उसके सम्बन्धी सोनिगदेव ने आकर उससे भेंट की। सोनिगदेव शरीर से लम्बा-चौड़ा और शक्तिशाली था। विवाह के बाद घडसी अपने साथ सोनिगदेव को दिल्ली ले गया।

भीमकाय सोनिगदेव को देखकर दिल्ली के बादशाह ने आश्चर्य किया और उसने उसकी शक्ति की परीक्षा लेने का विचार किया। खुरासान के बादशाह ने किसी समय दिल्ली के बादशाह को सुदृढ़ लोहे का बना हुआ एक धनुष भेंट में दिया था। बादशाह ने उस धनुष को मँगाकर सोनिगदेव के हाथों में दिया और उस धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए कहा। यह सुनकर सोनिगदेव ने धनुप पर बाण न केवल चढ़ाने की कोशिश की वल्कि उसने उसको यहॉ तक खीचा कि वह लोहे का धनुष टूट गया। यह देखकर बादशाह उससे वहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसकी बहुत प्रशंसा की।

इन्हीं दिनों में दिल्ली पर तैमूर बादशाह ने आक्रमण किया। उस अवसर पर बादशाह की तरफ से घडसी ने अपनी बहादुरी का ऐसा परिचय दिया कि जिससे तैमूरशाह का सम्पूर्ण साहस शिथिल पड़ गया और वह दिल्ली से लौट गया। बादशाह ने घडसी के साहस और पराक्रम को देखकर प्रसन्नता प्रकट की और पुरस्कार के रूप मे जैसलमेर के शासन का अधिकार उसने उसको दे दिया। घडसी ने जैसलमेर का अधिकार प्राप्त करके वहाँ पर अनेक प्रकार के सुधार किये और अपनी शक्तियो का निर्माण किया।

घडसी ने इन दिनो में बड़ी वुद्धिमानी से काम किया। उसने अपने साहस और पुरुषार्थ के पुरस्कार में जैसलमेर का अधिकार प्राप्त किया था। उसके वंश के जो लोग वहॉ पर रहते थे, उन सब को बुलाकर उसने बातचीत की और महेवा के राजा जगमल की सहायता से उसने अपनी एक सेना तैयार की। उसने जैसलमेर और उसके आस-पास शांति तथा सुव्यवस्था कायम करने की चेष्टा की। हमीर और उसके पक्ष के लोगो ने सम्मान देने के साथ-साथ उसको राजा के रूप में स्वीकार किया। परन्तु जसहड के लडके ने इसको मानने से इन्कार कर दिया।

देवराज ने मंदोर के राजा राणा रूपडा की लड़की के साथ विवाह किया। उस राजकुमारी से देवराज के केहर नाम का एक बालक पैदा हुआ था। वादशाह की सेना के द्वारा जैसलमेर के घेरे जाने पर केहर को उसकी माता के साथ मंदोर भेज दिया गया। बारह वर्ष की अवस्था में केहर अपने ननिहाल में ग्वालो के साथ जंगल में जाता और अपनी अवस्था के लडकों के साथ खेला करता। एक दिन की बात है कि केहर जंगल मे खेलते हुए एक स्थान पर लेट गया, वहॉ पर एक सॉप की बांबी थी। केहर को नींद आ गयी। उसी समय बाँबी से एक सॉप निकला और केहर के मस्तक पर पहुॅच कर फन की छाया करके वह बैठा रहा उसी रास्ते से उस समय एक चारण निकला। उसने अपने नेत्रों से उस सुन्दर बालक के मस्तक पर फन फैलाये हुए सॉप को देखा। उसने मन्डोर के राजा से जाकर यह घटना बतायी। उसको सुनकर राणा तुरन्त रवाना हुआ और वहॉ पहुॅचने पर उसने देखा कि दौहित्र के मस्तक पर

अभी तक अपना फन फैलाये हुए साँप बैठा है। उसने उसी समय इस बात का विश्वास किया कि यह दृश्य बालक के उज्ज्वल भविष्य का परिचय दे रहा है कि केहर किसी समय राजसिंहासन पर बैठेगा।

घडसी को जैसलमेर में शासन करते हुए कई वर्ष बीत चुके थे, परन्तु उसके कोई सन्तान पैदा न हुई। इसलिए उसको मानसिक खेद रहने लगा। इस विषय में निराश हो जाने के बाद उसने अपनी रानी विमला देवी को किसी बालक को गोद लेने का परामर्श दिया।

उसकी रानी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और गोद लेने के लिए किसी बालक की खोज होने लगी। वह बालक यदु भाटी वंश का होना चाहिये। अनेक बालकों की बातचीत होने के बाद रावल घडसी ने केहर को गोद लेने का निश्चय किया। यह समाचार बड़ी तेजी के साथ जैसलमेर और उसके आस-पास के स्थानों में फैल गया। इसे सुनकर जसहड के दोनों लड़के बहुत असंतुष्ट हुए और घडसी के विरुद्ध कोई षड्यंत्र करने के लिये वे उपाय सोचने लगे।

इन्हीं दिनों में जैसलमेर राज्य की तरफ से एक विशाल सरोवर खुदवाया जा रहा था। उसको देखने के लिये रावल घडसी रोज वहाँ जाता था। एक दिन जसहड के दोनों लड़कों ने उस पर आक्रमण किया और उसे जान से मार डाला।

घडसी की मृत्यु का समाचार सुनकर विमला देवी ने भली-भाँति समझ लिया कि जसहड के लड़को ने जैसलमेर राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिये ही यह अपराध किया है। इसलिये उसने केहर को गोद लेने और जैसलमेर का उसे राजा बनाने की घोषणा कर दी। इसलिए जसहड के पुत्रों का उद्देश्य संकट में पड गया।

घडसी के मृत शरीर के साथ रानी विमला के सती न होने का कारण यह हुआ कि रावल घडसी के द्वारा जो विशाल सरोवर बनवाया जा रहा था, उसका कार्य अभी बहुत बाकी था और उसे पूरा करना रानी विमला का कर्त्तव्य था। एक कारण और था। स्वामी के हत्यारों के उद्देश्य को असफल बनाने के लिए जिस केहर को गोद लेने की उसने घोषणा की थी, उसकी सहायता करना भी उसके लिये कुछ दिनों तक जरूरी कार्य था।

रावल घडसी के मारे जाने के बाद छः महीने में उस विशाल सरोवर के निर्माण का कार्य समाप्त हो गया। विधवा विमलादेवी ने अपने पति के नाम से उस सरोवर का नाम घडसीसर रखा। जिन लोगों ने रावल घडसी की हत्या की थी, वे अब केहर के सर्वनाश का उपाय सोचने लगे। घडसीसर का कार्य समाप्त हो जाने पर विधवा रानी विमला ने सती होने का निर्णय किया और अग्नि में भस्मीभूत होने के पहले उसने अपना निर्णय सब को सुनाया कि "हमीर के पुत्र केहर के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी हो सकते हैं।" हमीर के दो लडके थे। बड़े लड़के का नाम था जेतसी और छोटे का नाम था लूनकर्ण।

जेतसी के वयस्क होने पर चित्तौड़ के राणा कुम्भ ने उसके विवाह के लिए नारियल भेजा। उसका निश्चय हो जाने पर अपने बहुत-से आदमियों के साथ विवाह के लिये जेतसी मेवाड़ के लिए रवाना हुआ। अरावली पर्वत से चौबीस मील के आगे सालवनी का प्रसिद्ध सरदार सांकला मीराज मिला। भाटी राजकुमार ने उस दिन उसके यहाँ विश्राम किया और

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सब के साथ राजकुमार जेतसी मेवाड़ की तरफ चला। कुछ दूर आगे जाने पर भाटी राजकुमार जेतसी के दाहिनीं ओर तीतर के बोलने की आवाज सुनायी पड़ी। सांकला मीराज इस प्रकार की बातों का अर्थ समझता था। उसने दाहीने हाथ की तरफ तीतर का बोलना अपशकुन बताया।

राजकुमार जेतसी ने अपशकुन की बात को सुनकर अपने घोड़े को रोका और सब के साथ उसने उस दिन वहीं पर विश्राम किया। वह तीतर पक्षी साथ के लोगों के द्वारा पकड़ लिया गया। उस समय मालूम हुआ कि उस तीतर के एक ही ऑख है। दूसरे दिन प्रातःकाल जेतसी सबके साथ फिर रवाना हुआ। कुछ दूर आगे जाने पर बाघिनी के गरजने की आवाज सुनायी पड़ी। जेतसी ने सॉकल मीराज से इसका अभिप्राय पूछा। उसने कोई बात स्पष्ट न कहकर जेतसी को सलाह दी कि आप सब लोग यहीं पर विश्राम करें और नाई को भेजकर कुम्भलमेर का समाचार मालूम कर लें जो आदमी भेजा जावे, वह आदमी वहॉ की परिस्थितियों का पता लगाकर आवे।

इस परामर्श के अनुसार एक युवक नाई की स्त्री का भेप धारण करके कुम्भलमेर की तरफ रवाना हुआ। उसने वहॉ पहुॅचकर किसी प्रकार रानियों के महलों में प्रवेश किया और उसने वहॉ से लौटकर जो वर्णन किया, उससे मालूम हुआ कि वहॉ का समाचार अच्छा नहीं है। यह सुनकर जेतसी ने उसकी बातों पर विश्वास किया और राणा कुम्भ से अप्रसन्न होकर उसने सॉकल की लडकी मारू के साथ विवाह कर लिया।

राणा कुम्भ ने जब सुना कि भाटी राजकुमार जेतसी ने साँकल की लड़की के साथ विवाह कर लिया है, तो उसने अत्यधिक अपमान और क्रोध अनुभव किया परन्तु उसने शांति से काम लिया और गागरोन के प्रसिद्ध खींची राजा अचलदास के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। जेतसी विवाह के बाद सेना लेकर पूगल-राज्य पर अधिकार करने गया और अपने भाई लूनकर्ण तथा साले के साथ वहॉ के युद्ध में मारा गया। पूगल के राजा वृद्ध रनिगदेव को इसके पहले की परिस्थितियों का कुछ ज्ञान न था। उसके प्रायश्चित करने पर रावल केहर ने उसे क्षमा कर दिया।

केहर के आठ बालक पैदा हुए-(1) सोम (2) लखमन (3) केलण (4) किलकर्ण (5) सातुल (6) बीजू (7) तन्नू और (8) तेजसी। सोम के बहुत सी संतानें पैदा हुई जो सोमभट्टी नाम से प्रसिद्ध हुई। केलण ने अपने बड़े भाई सोम से जबरदस्ती बीकमपुर छीन लिया और उस दशा मे सोम बसी[×] लोगों के साथ गिरप नामक स्थान में जाकर रहने लगा। सातुल ने अपने नाम पर सातुलमेर राजधानी की प्रतिष्ठा की।

× बसी लोगों के सम्बन्ध में पहले वर्णन किया जा चुका है। बसी नाम की वहाँ पर गुलामों की एक जाति थी। अपनी दरिद्रता और सभी प्रकार की असमर्थता के कारण जो लोग सदा के लिए अपनी स्वाधीनता बेच देते थे, वे लोग बसी कहलाते थे। उनका मालिक उनके सिर के बालों को चाँद के आकार में काट देता था। उनके गुलाम होने की यह पहचान थी। ये लोग पशुओं की भाति खरीदे और बेचे जाते थे। राजस्थान के अन्य राज्यों की अपेक्षा मरुभूमि के राज्यों में ये गुलाम अधिक पाये जाते थे। प्रत्येक बडा आदमी अपने अधिकार में इस प्रकार के गुलाम रखता था। गुलामों की सख्या उसके बडप्पन का परिचय देती थी। श्यामसिंह चम्पावत पोकर्ण के पास दो सौ गुलाम थे। ब्राह्मण, राजपूत और अन्य सभी जातियों के लोग गुलाम हो जाते थे।

नागौर के राठौर राजा से अपने पिता का बदला लेने के लिये रनिगदेव के लड़कों ने जब इस्लाम धर्म स्वीकार किया तो ये पूगल और मेरोट के अधिकारो से वंचित हो गये और आभोरिया भाटी लोगों के साथ जाकर वे लोग मिल गये। उसके बाद वे लोग मोमन अर्थात् मुस्लिम भट्टी लोगों के नाम से विख्यात हुये। रावल केहर के तीसरे लड़के केलण ने पूगल और मेरोट के बाद बीकमपुर मे भी अपना अधिकार कर लिया और पदुमभट्टी लोगों की निर्बल अवस्था मे उसने देरावल नगर को छीन लिया।

केलण ने अपने पिता के नाम से एक दुर्ग बनवाया। केरोर उसका नाम रखा। यहीं से जोहिया और लंगा लोगों के साथ भाटी लोगों का झगड़ा पैदा हुआ। लंगा लोगों के सरदार अमीर खॉ कुराई ने केलण पर आक्रमण किया। इस युद्ध मे अमीर खॉ की पराजय हुई। केलण से इन दिनों में चाहित्व, मोहिल और जोहिया लोग भयभीत रहते थे। केलण ने अपनी शक्तियो के द्वारा दूर-दूर तक ख्याति पायी थी और पंचनद तक उसने अपना विस्तार कर लिया था।

इन्हीं दिनों में केलण ने समावंश की राजकुमारी के साथ विवाह किया। इसके बाद उस वश में सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए घरेलू विद्रोह पैदा हुआ। केलण ने उस विद्रोह को शांत करने मे बड़ी सहायता की। उसने सुजाअतजाम नाम के समावंशी का पक्ष लिया था। दो वर्षो के बाद सुजाअत की मृत्यु हो गयी। उसके बाद केलण ने उस वंश के सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया। उसके राज्य का विस्तार सिंधु नदी तक पहुॅच गया। बहत्तर वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी।

केलण के परलोकवासी होने पर चाचकदेव उसके सिंहासन पर बैठा। भाटी लोगों का विस्तार इन दिनों में गाडा नदी के समीप तक पहुॅच गया था। यह देखकर मुलतान के मुस्लिम राजा को बहुत असंतोप हुआ। परन्तु वह कुछ कर न सका। इसलिये चाचकदेव ने मेरोट में अपनी राजधानी कायम की और वह वहीं पर रहने लगा।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् मुलतान के राजा ने यदुवंशी लोगों पर आक्रमण करने का इरादा किया और इसके लिए उसने तैयारी आरम्भ कर दी। लंगा, जोहिया, खीची आदि जितनी भी जातियॉ भाटी लोगो से शत्रुता रखती थीं, सभी ने मिलकर एक शक्तिशाली संगठन किया। मुलतान का राजा उस सगठन का प्रधान था। इस संगठन के द्वारा होने वाले आक्रमण का समाचार चाचकदेव को मिला। उसने बड़ी सावधानी के साथ इस आने वाले संकट का सामना करने की तैयारी की।

चाचकदेव मुलतान के राजा के साथ युद्ध करने के लिए अपने साथ सत्रह हजार अश्वारोही और चौदह हजार पैदल सेना को लेकर रवाना हुआ और व्यास नदी के पास पहुॅचकर उसने मुकाम किया। इसके पश्चात् दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। इस सग्राम में मुलतानी फौज की पराजय हुई। वहॉ का राजा युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। चाचकदेव ने शत्रुओं के शिविर में जाकर बहुत सा युद्ध का सामान लूटा, इसके बाद वह मेरोट मे लौट आया।

मुलतान का राजा पराजित होने के बाद शांत होकर नहीं बैठा। वह युद्ध की तैयारी करता रहा। अपनी शक्तियों को उसने अधिक जोरदार बनाया। जो लोग भाटी जाति के विरोधी

थे, उनका संगठन उसने फिर किया और दूसरे वर्ष अपनी शक्तिशाली सेना लेकर मुलतान से रवाना हुआ। चाचक देव ने अपनी सेना के साथ चलकर उसके साथ युद्ध आरम्भ किया। इस लड़ाई में सात सौ चवालिस भाटी और तीन हजार मुलतानी सैनिक मारे गये। चाचकदेव ने दूसरी बार फिर मुलतान के राजा को पराजित किया और इस विजय से उसके राज्य का विस्तार अधिक हो गया। उसने कई नगरों पर अधिकार कर लिया और असनीकोट नामक दुर्ग में अपनी एक सेना रखकर उसका अधिकार अपने लड़के को सौंपा। इसके बाद वह पूगल चला आया।

इसके कुछ दिनों के बाद चाचकदेव ने दूदी के राजा महिपाल पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। वहाँ से लौटकर जैसलमेर में उसने अपने भाई लखमन से भेंट की और जो सम्पत्ति वह लूटकर लाया था, उसके द्वारा उसने जैसलमेर मे कई निर्माण के कार्य किये। इन्हीं दिनो मे जंजराम नाम के एक आदमी ने उससे भेंट की। आदमी बकरियों और भेड़ों को पालने का काम करता था। बरजांग नाम का एक राठौर लुटेरा उसके यहॉ पहुँचकर प्राय: भेड़ों और बकरियों को चुरा ले जाता था। अपने इस विपद के लिए उसने चाचकदेव से प्रार्थना की और अनेक बकरों और भैंसो को उसे भेंट में दिया। जजराज स्वयं नेक साहसी था। उसने प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर सातुलमेर पर अधिकार कर लिया था। बरजांग ने अपने अत्याचारो से मरुभूमि के रहने वालों को भयभीत कर रखा था। रावल चाचकदेव ने जंजराज को संतोष देने की चेष्टा की और विश्वास दिलाया कि यदि बरजाग अब फिर तुम्हारे साथ किसी प्रकार का अत्याचार करेगा तो मैं उसे दण्ड दूँगा।

इसके बाद कुछ दिन बीत गये। चाचकदेव एक बार जंजराज के गॉव में पहुँचा। उस समय जंजराज ने बरजांग के अत्याचारों का फिर से वर्णन किया। उनको सुनकर चाचकदेव ने बरजांग को दमन करने का निर्णय किया। उसने सीता जाति के राजा सूमर खॉ के साथ मित्रता की। सूमर खॉ अपने तीन हजार अश्वारोही सैनिकों को लेकर चाचकदेव के पास आया। उस लुटेरे राठौर का नियम यह था कि जहॉ पर वे लूट करने के लिए जाते थे, वहाँ नगर से बाहर छिपकर वे इस बात को समझने की चेष्टा करते थे कि नगर के विशेष लोग कब बाहर जाते हैं।

चाचकदेव ने बरजांग के विरुद्ध एक योजना बना डाली और जो लोग बरजांग की लूट मे सहायक होते थे, उन सबको चाचकदेव ने कैद करवा दिया। बरजाग के साथ-साथ बहुत से महाजन लोग भी कैद किये गये। उन लोगों ने धन देकर अपने छुटकारे के लिए चेष्टा की। परन्तु चाचकदेव ने ऐसा नहीं किया ओर उसने उन महाजनों से कहा यदि तुम लोग उस नगर को छोडकर और अपने परिवार के लोगों को लेकर जैसलमेर में जाकर रह सको तो तुमको इस कैद से छुटकारा मिल सकता है। चाचकदेव की इस बात को सुनकर वहॉ के तीन सौ पैंसठ महाजन अपनी सम्पत्ति और सामग्री लेकर जैसलमेर चले गये और वहीं पर रहने लगे।

बरजांग के तीन लडके कैद किये गये थे। चाचकदेव ने उसके सबसे छोटे और मझले बेटे को छोड़ दिया। परन्तु उसके बड़े बेटे मेरा को नहीं छोडा। चाचकदेव ने इन्हीं दिनों

में सीता वंश के राजा की प्रपौत्री सोनलदेवी के साथ विवाह किया। लड़की के पितामह ने विवाह के उपलक्ष मे चाचकदेव को पचास घोड़े, दो सौ ऊँट, चार पालकियाँ और पैंतीस गुलाम दिये। इस दहेज के साथ चाचकदेव ने सोनल देवी के साथ विवाह का कार्य सम्पन्न किया और उसे विदा कराके अपने साथ ले गया।

इस विवाह के दो वर्ष बीत जाने के बाद पीलबंग के राजा के साथ चाचकदेव का युद्ध आरम्भ हुआ। इसका कारण यह था कि भाटी राजपूत से उसका श्रेष्ठ घोड़ा छीन लिया गया था। चाचकदेव ने पीलबंग के राजा को पराजित करके उसकी राजधानी को लूट लिया। इन्हीं दिनों में यदुवंशियों के पुराने शत्रु लंगा लोगो ने अवसर पाकर चाचकदेव के दीनापुर के दुर्ग पर आक्रमण किया ओर दुर्ग की सेना को पराजित किया।

चाचकदेव को अपना सम्पूर्ण जीवन लगातार युद्धों में व्यतीत करना पड़ा। उसने अनेक राजाओं के साथ युद्ध किया और विजय प्राप्त की। उसने पंजाब तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। बुढ़ापे के दिनों में वह चेचक की बीमारी से रोगी हुआ। उस समय उसे भय हुआ कि इस रोग से मैं अब ठीक न हो सकूंगा, यह सोचकर वह मन ही मन बहुत दु:खी हुआ। उसका विश्वास था कि रोग से पीड़ित होकर चारपाई पर मरने वाले राजपूतों को नरक और युद्ध करते हुए प्राण देने वाले राजपूतों को स्वर्ग मिलता है। राजपूतों का यही धर्म है और इसी धर्म के पालन मे उनको गौरव प्राप्त होता है।

बीमारी के दिनो मे चाचक देव ने अपने शत्रु के साथ युद्ध आरम्भ करने की इच्छा की। उसने मुसलमान लंगा जाति के राजा के पास अपना दूत भेजा और उस दूत ने वहॉ पहुॅच कर कहा-"चाचकदेव की बीमारी के दिन चल रहे हैं। परन्तु वह बीमारी में मरने की अपेक्षा शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मरना पसन्द करता है। इसलिए आपके साथ युद्ध करने का चाचकदेव ने निर्णय किया है।"

मुलतान के राजा ने दूत की इन बातों पर विश्वास नहीं किया और उसने सोच डाला कि चाचकदेव अपनी किसी छिपी हुई अभिलाषा को पूरा करने के लिए हमे युद्ध-क्षेत्र में बुलाना चाहता है। इस प्रकार की बात अपने मन में सोचकर उसने चाचक देव के दूत से कहा- "तुमने अपने राजा के सम्बन्ध में जो बात कही है, मैं उस पर विश्वास नहीं करता। इसलिए मेरा उत्तर यही हैं कि मैं चाचकदेव के साथ युद्ध नहीं करूंगा।"

दूत ने इस उत्तर को सुन शपथ ग्रहण करते हुए कहा- "राजन आपको इस दूत पर विश्वास करना चाहिए। सही बात यह है कि राजा चाचकदेव का रोग असाध्य हैं और इस प्रकार मरने की अभिलाषा चाचक देव की नही है। इसलिए अपने सात सौ सैनिकों के साथ राजा चाचक देव ने युद्ध में आने का निर्णय किया है। आप किसी प्रकार का संदेह न करें, मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूॅ, उस पर विश्वास करे।"

मुलतान के राजा ने दूत की बात को स्वीकार कर लिया। उसके बाद दूत ने वहॉ से लोट कर चाचकदेव को उसकी स्वीकृति की सूचना दी। उसे सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने विश्वासी शूरवीरों को सात सौ की संख्या में लेकर उसने युद्ध में जाने की तैयारी की। जाने के पहले उसने राज्य की व्यवस्था की। सीतावंश की रानी से गजसिंह नामक बालक

पैदा हुआ था। उसको चाचकदेव ने उसके ननिहाल भेज दिया। सोढा वंश की रानी लीलावती से वरसल, कम्ब्रोह और भीमदेव नाम के तीन वालक पैदा हुए और चौहान वंश की रानी सूरजदेवी से रत्तू और रणधीर नामक दो वालक पैदा हुए। इन पाँच पुत्रों में वड़े पुत्र वरसल को उसने अपने राज्य का उत्तराधिकारी वनाया, खडाल राज्य को छोड़कर, तेरावर जिसका प्रधान नगर था। यह खण्डाल राज्य उसने रणधीर को दे दिया। इसके वाद उसने दोनों के मस्तक पर राजतिलक किया और दोनों के राज्यों को अलग-अलग कर दिया। वरसल सत्रह हजार सैनिकों की सेना को लेकर अपनी राजधानी की ओर चला गया।

अपने राज्य को दो लड़कों में वाँटकर चाचकदेव सात सौ सैनिकों के साथ दीनापुर की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर उसे मालूम हुआ कि मुलतान का राजा वहाँ से चार मील की दूरी पर अपनी सेना के साथ मौजूद है। चाचकदेव ने सुख और संतोष के साथ स्नान करके अपने देवता का पूजन किया और संसार के माया-मोह से अपने चित्त को हटाकर उसने भगवान का स्मरण किया।

इसके थोड़ी देर के वाद उसके कानों में युद्ध के वाजों की आवाज सुनायी पड़ी। चाचकदेव ने तुरन्त अपनी सेना को तैयार किया और कई हजार मुलतानी सेना के साथ उसने युद्ध आरम्भ कर दिया। उस भयानक संग्राम में मुलतान के दो हजार सैनिकों का संहार करके चाचकदेव के सात सौ वीरों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इसी समय युद्ध करते हुए चाचकदेव मारा गया और उसके वाद मुलतान का राजा लौटकर अपनी राजधानी चला गया।

देवरावल में रणधीर जिस समय अपने पिता का श्राद्ध कर्म कर रहा था,चाचकदेव का एक दूसरा पुत्र कुम्भा पिता के शोक में दुःखी हो उठा और उसने उपस्थित लोगों के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं मुलतान के राजा से अपने पिता का यह वदला लूँगा।

इसके वाद कुम्भा अपने एक अनुचर के साथ राजा मुलतान के कैम्प में गया। इस स्थान के आस-पास चारों तरफ वाईस हाथ चौड़ी एक खाई थी। कुम्भा ने वड़े साहस के साथ अपने घोड़े पर वैठे हुए रात्रि के अँधकार मे उस खाई को पार किया और दूसरी तरफ जाकर वह चुपके से अपने घोड़े को वाहर वाँधकर मुलतान के राजा के कैम्प में पहुँच गया और वड़ी सावधानी के साथ राजा कल्लूशाह के पास पहुँच कर उसने उसकी गर्दन पर तलवार मारी। राजा कल्लूशाह गहरी नींद में सो रहा था। उसकी गरदन कटकर अलग हो गयी। उसके वाद कुम्भा तुरन्त वहाँ से निकलकर और वाहर आकर घोड़े पर वैठा। वहाँ से चल कर वह देवरावल आ गया। वरसल दीनापुर पर अधिकार करके केरोद चला गया। वहाँ पर लंगा लोगों ने हैवतखाँ की सहायता से उस पर आक्रमण किया। परन्तु उनकी पराजय हुई। इस युद्ध में कई हजार लंगा लोग मारे गये। इसके वाद ही हुसैन खाँ ने वीकमपुर पर आक्रमण किया और वह वरसल के साथ युद्ध करके पराजित हुआ। सन् 1474 ईसवी में वरसल ने वीकमपुर के महलों को वनवाया।

इसके वाद यहाँ पर कोई वड़ी लड़ाई नहीं हुई। युद्ध की जिन घटनाओं के उल्लेख पाये जाते हैं, वे केवल रावल केलण के वंशजो और पंजाव के सामन्तों से सम्वन्ध रखते हैं। दोनो पक्षों की क्रमशः हार-जीत होती रही। कोई ऐतिहासिक मूल्य न होने के कारण उनका

वर्णन करना हमने यहाँ पर आवश्यक नहीं समझा। अंत में केलण के वंशज गारा नदी के समीप तक विस्तार और विभाजन करके स्वाधीनता के साथ शासन करते रहे। इसके कुछ दिनों के बाद दिल्ली के बादशाह बाबर ने लंगा जाति से मुलतान छीनकर अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ पर अपना शासक नियुक्त कर दिया। केरोट, दीनापुर, पूगल और मरोट के भाटी लोगों ने कदाचित अपना अधिकार कायम रखने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। भाटी राज्य वंश के सबल सिंह के शासनकाल में जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियों में असाधारण परिवर्तन आरम्भ हो गये थे।

□

अध्याय-52

जैसलमेर का पतन

अचानक विश्वासघात के द्वारा घडसी के मारे जाने पर उसकी विधवा रानी विमलादेवी ने केहर को गोद लेने की घोषणा की थी और जैसलमेर के राज्य सिंहासन पर उसे बिठाया था। सती होने के पहले उसने यह निर्णय भी कर लिया था कि हमीर के दोनों पुत्र केहर के उत्तराधिकारी होंगे। उसके इस निर्णय के कारण, केहर के आठ पुत्रों के होने पर भी, उसके उत्तराधिकारी हमीर के दोनों बेटे-जैतसी और लूनकर्ण माने गये। परन्तु सिंहासन पर बैठने का अवसर आने के पहले ही जैतसी पूगल के युद्ध में भाई लूनकर्ण के साथ मारा गया और उसके कोई बेटा न था। इसलिए लूनकर्ण के वंशज उस राज्य के अधिकारी बने।

लूनकर्ण के तीन बेटे थे। (1) हरराज (2) मालदेव और (3) कल्याणदास। केहर की मृत्यु के बाद लूनकर्ण का बड़ा बेटा हरराज जैसलमेर राज्य का अधिकारी था। परन्तु उसकी मृत्यु केहर के जीवन काल में ही हो चुकी थी। इसलिए उसका इकलौता बेटा भीम वहाँ के राज सिंहासन पर बैठा। लूनकर्ण के वंशजों का वर्णन निम्न प्रकार है।
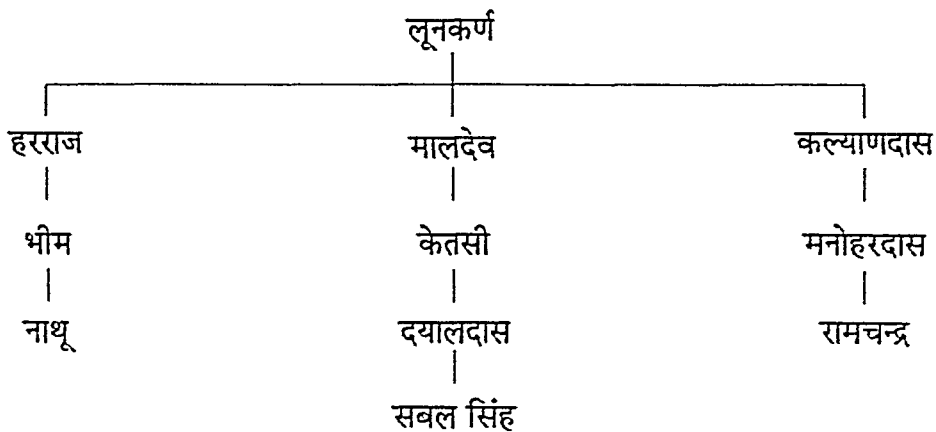
भीम की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा नाथू जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। राज्याधिकार प्राप्त करने के थोड़े ही दिनों के बाद नाथू बीकानेर की राजकुमारी के साथ विवाह करने के लिए गया और वहाँ से लौटने पर जैसलमेर राज्य के फलौदी नगर में जब वह ठहरा हुआ था, कल्याण दास के बेटे मनोहर ने राज्य के लोभ में एक स्त्री के द्वारा उसको विष खिलाया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। नाथू की इस प्रकार मृत्यु हो जाने पर मनोहरदास वहाँ के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने बेटे रामचन्द्र को राज्य का अधिकारी बनाने की बड़ी चेष्टा की। परन्तु उसको सफलता न मिली और उसके बाद लूनकर्ण के मंझले बेटे मालदेव का

प्रपौत्र तथा दयालदास का बेटा सबल सिंह वहाँ के सिंहासन पर बैठा। रामचन्द्र स्वभाव से जितना ही उपद्रवी और अयोग्य था, सबल सिंह उतना ही योग्य और सुशील था। इसलिए राज्य की प्रजा सबल सिंह के पक्ष में थी और उसी को राजा बनाना चाहती थी।

सबल सिंह आमेर के राजा का भाञ्जा था। वह राजा आमेर के संरक्षण में यवनों की राजधानी पेशावर राज्य में एक पदाधिकारी था। किसी समय पहाड़ों पर रहने वाले अफगानी लुटेरों ने यवन-सम्राट का खजाना लूटने की चेष्टा की थी। परन्तु साहसी सबल सिंह ने उनको असफल बना दिया था और उसके कारण सम्राट को कुछ भी हानि न हुई थी। उस समय से सम्राट सबल सिंह का बहुत सम्मान करने लगा था। अपने स्वभाव, व्यवहार और दूसरे गुणों के कारण सबल सिंह ने अन्य राजाओं से भी आदर प्राप्त किया था।

जैसलमेर के सिंहासन पर सबल सिंह के बैठने के जो कारण थे, उनमें एक यह भी प्रधान कारण था कि उसकी योग्यता, सज्जनता और व्यावहारिकता के कारण हिन्दू राजाओं से लेकर यवन सम्राट तक-सभी उससे प्रसन्न और प्रभावित थे। इसलिए मनोहरदास के बाद जब रामचन्द्र सिंहासन पर बैठ गया था, उस समय यवन बादशाह ने जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह को आदेश दिया था कि आप तुरन्त रामचन्द्र को उतार कर सबल सिंह को वहाँ के सिंहासन पर बिठावें। राजा जसवन्त सिंह ने यही किया। उसने सबल सिंह को जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए सेनापति नाहर खाँ के साथ एक सेना भेजी और सबल सिंह ने वहाँ के सिंहासन पर बैठकर सेनापति नाहर खाँ को सदा के लिए पोकर्ण का राज्य इनाम में दे दिया। उसी समय से पोकर्ण जैसलमेर से पृथक् होकर जोधपुर राज्य में शामिल हो गया।

सेनापति नाहर खाँ को जो पोकर्ण राज्य दिया गया, उसी से जैसलमेर राज्य का पतन आरम्भ हुआ और उसके पश्चात् लगातार उस राज्य के नगर उससे निकलते गये। भारत में बादशाह बाबर की विजय के पहले जैसलमेर राज्य की सीमा उत्तर में गारा नदी तक थी, पश्चिम में मेहराणा अथवा सिंधु नदी तक, पूर्व और दक्षिण में बीकानेर और मारवाड़ तक थी। लगभग दो सौ वर्षों से जैसलमेर राज्य के नगर और ग्राम बीकानेर और मारवाड़ राज्य में शामिल होते चले आ रहे थे। रावल सबल सिंह ने सिंहासन पर बैठकर बड़ी योग्यता के साथ अपने राज्य का शासन किया।

रावल सबल सिंह के परलोकवासी होने पर उसका लड़का अमरसिंह सिंहासन पर बैठा और उसने उसके बाद बलोचियों के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की। उसका राज तिलक उसी युद्ध-क्षेत्र में हुआ था। सिंहासन पर बैठने के बाद अमर सिंह ने अपनी लड़की के विवाह के लिए राज्य की प्रजा से धन लेने की चेष्टा की। परन्तु उसके मंत्री रघुनाथ ने इसका विरोध किया। इसलिए अमर सिंह ने उसे मरवा डाला। इसके थोड़े दिनों के बाद राज्य के उत्तरी और पूर्वी स्थानों पर चन्ना राजपूतों के अत्याचार फिर से बढ़ने लगे। यह देखकर रावल अमर सिंह ने अपनी सेना लेकर उनको इस प्रकार पराजित किया कि वे भविष्य में फिर इस प्रकार उपद्रव न कर सकें।

कुछ दिनों के उपरान्त जैसलमेर और बीकानेर के सामन्तों में संघर्ष पैदा हुआ। बीकानेर के कांधलोत राठौर बहुत दिनों से जैसलमेर के नगरों और ग्रामों पर अनेक प्रकार के

अत्याचार कर रहे थे। इसीलिए जैसलमेर राज्य के बीरमपुर के सुन्दरदास और दलपति के सामन्त ने उनके अत्याचारों का फल देने का निश्चय किया और अपनी-अपनी सेनायें लेकर दोनों सामन्तों ने बीकानेर राज्य की सीमा के जाजू नामक नगर पर आक्रमण किया और उसको लूट लेने के बाद उस नगर में आग लगा दी।

काँधलोत राठौरों ने यह देखकर जैसलमेर वालों से बदला लेने की तैयारी की और जैसलमेर की सीमा के गाँवों और नगरों पर आक्रमण करके अपने नगर जाजू का वदला लिया। इस प्रकार के संघर्ष के परिणामस्वरूप दोनों राज्यों के वीच तनातनी बढ़ती गयी और अन्त में दोनों राज्यों के बीच कठिन संग्राम हुआ। उस युद्ध में बीकानेर के दो सौ राठौर मारे गये और उस राज्य की सेना पराजित होकर भाग गयी। अपने राज्य के सामन्तों की विजय को देखकर रावल अमर सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई।

उन दिनों में बीकानेर का राजा दिल्ली के बादशाह की तरफ से दक्षिण गया हुआ था। उसने सुना कि जैसलमेर के सामन्तों ने बीकानेर के दो सौ आदमियों को मारकर बाकी सेना को भगा दिया है तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपनी राजधानी में संदेश भेजा कि राज्य के समस्त राठौर जैसलमेर के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हों। अनूपसिंह का यह आदेश मिलने पर बीकानेर राज्य में मुनादी करवा दी गयी। उसके अनुसार राज्य के राठौर युद्ध के लिए तैयार होकर राजधानी में एकत्रित होने लगे। इन्हीं दिनों में राजा अनूप सिंह ने राठौरों की सहायता के लिए हिसार से पठानों की एक फौज भेजी।

जैसलमेर में रावल अमर सिंह को बीकानेर की इस तैयारी का समाचार मिला। इसलिए उसने बीकानेर के राठौरों के साथ युद्ध की तैयारी की। उसने भाटी सेना को भेजकर बीकानेर के नगरों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। भाटी सेना ने राठौरों पर आक्रमण करके और उनको पराजित करके पूगल नगर अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद उस सेना ने बाडमेर तथा कोटडा के सामन्तों को जैसलमेर की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।

सन् 1702 ईसवी में अमर सिंह की मृत्यु हो गयी। उसके आठ लड़के थे। बड़े लडके का नाम यशवंत सिंह था। शेष सात लड़कों में केवल हरीसिंह के नाम का उल्लेख मिलता है। यशवंत सिंह के एक लड़की थी। उसका विवाह मेवाड़ के राजकुमार के साथ हुआ।

अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात् जैसलमेर की अवनति आरम्भ हुई। यहाँ के राजाओं ने अपनी शक्तियां के द्वारा राज्य के गौरव की रक्षा की थी और रावल अमरसिंह ने उसको सुरक्षित बनाये रखने की चेष्टा की। उसके परलोक यात्रा करने पर राज्य की शक्तियाँ एक साथ ही क्षीण हो गयीं। उस दुर्वलता का बीकानेर के राठौरों ने लाभ उठाया और उन लोगों ने आक्रमण करके पूगल, बाडमेर, फलोदी और दूसरे अनेक नगरों को छीनकर बीकानेर राज्य में मिला लिया।

इन्हीं दिनों में शिकारपुर के एक अफगानी दाऊद खाँ ने जैसलमेर के नगरों पर आक्रमण किया और उन पर अपना अधिकार कर लिया। रावल अमरसिंह के वाद जैसलमेर

में कोई ऐसी शक्ति न रह गयी थी, जो आक्रमणकारी शत्रुओं के साथ लड़कर राज्य की रक्षा कर सकती थी। इसलिए थोड़े ही दिनो मे जैसलमेर राज्य के कितने ही नगर दूसरे राज्यों मे चले गये और उसके परिणामस्वरूप जैसलमेर राज्य को भयानक रूप से आघात पहुँचा।

अमरसिह के पश्चात् उसका लडका यशवतसिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। उसके पाँच लड़के पैदा हुए-(1) जगतसिंह (2) ईश्वरीसिंह (3) तेजसिंह (4) सरदार सिंह और (5) सुलतान सिंह। जगतसिह ने आत्महत्या कर ली थी। उसके तीन लड़के पैदा हुये-(1) अखयसिंह (2) बुधसिंह और (3) जोरावर सिंह। बुधसिह की चेचक की बीमारी मे मृत्यु हो गयी।

यशवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसका प्रपौत्र अखयसिंह सिहासन का अधिकारी था। लेकिन उसके बालक होने के कारण उसके चाचा तेजसिंह ने सिंहासन पर हठपूर्वक अधिकार कर लिया। अखयसिंह और जोरावरसिंह दोनों भाई-भाई थे। वे तेजसिंह से भयभीत होकर दिल्ली चले गये। यशवन्तसिंह का भाई हरीसिंह दिल्ली के बादशाह के यहाँ रहा करता था। अखयसिंह और जोरावरसिंह ने उसी के यहाँ आश्रय लिया। हरीसिंह ने उन दोनों भाइयों के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं जैसलमेर जाकर तेजसिंह को सिंहासन से उतार दूँगा और उसे अधिकारी न रहने दूँगा।

इसके बाद हरीसिंह जैसलमेर गया। वहाँ का एक नियम यह था कि वर्ष के अन्तिम दिन जैसलमेर का राजा सब सामन्तों, परिवार के लोगों और सैनिकों के साथ घडसीसर जाता था और वहाँ पहुँचकर सरोवर की बालू की एक मुट्ठी लेकर बाहर फेंकता था, उसके बाद राज्य के सभी एकत्रित लोग उस सरोवर की बालू को बाहर फेंकने का कार्य करते थे। राज्य मे इस प्रकार की एक प्रथा बन गयी थी, जो ह्रास के नाम से प्रसिद्ध थी।

हरीसिंह इसी अवसर पर जैसलमेर आया था। उसने सोचा कि घडसीसर के इस उत्सव में तेजसिंह पर आक्रमण करने का बड़ा अच्छा मौका है। उस उत्सव में नियमानुसार सबके साथ तेजसिंह घडसीसर गया। हरीसिंह अपने अवसर की ताक में था। अनुकूल समय पर उसने तेजसिंह पर आक्रमण किया। उसके शरीर मे इतने गहरे आघात आ गये कि उसकी मृत्यु हो गयी। परन्तु इससे हरीसिंह को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली।

तेजसिंह के मर जाने पर उसका तीन वर्ष का बालक सवाई सिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। इस अवसर पर अखय सिंह ने राज्य के समस्त भाटी सरदारों के पास एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा-

"आपको मालूम है, राज्य के सिंहासन का नैतिक रूप से अधिकारी मैं हूँ। तेजसिंह ने मेरे साथ अन्याय किया और स्वयं सिंहासन पर बैठ गया। जो बालक इस समय राज सिंहासन पर बिठाया गया है, वह उसका अधिकारी नहीं है। मै अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए सभी प्रकार से तैयार हूँ और उसके लिए मैं सभी प्रकार का बलिदान करूँगा। अपनी राजभक्त प्रजा की मैं सहायता चाहता हूँ।"

अखय सिंह के इस पत्र को पाकर जैसलमेर के भाटी सरदार बहुत प्रभावित हुए और वे अखय सिंह से आकर मिले। उन सरदारों की सहायता को पाकर अखय सिंह ने जैसलमेर

राज्य के दुर्गों पर आक्रमण किया और राज्य के तीन दुर्गों पर अधिकार कर लिया। इसके थोड़े दिनों के वाद सवाई सिंह की मृत्यु हो गयी। इसलिए अखय सिंह जेसलमेर के सिंहासन पर वैठा।

रावल अखय सिंह ने सिंहासन पर वैठकर चालीस वर्ष तक राज्य किया। उसके शासन काल में दाऊद खॉ के लड़के भावल खाँ ने जैसलमेर राज्य के खडाल नगर पर आक्रमण किया और उसे अपने भावलपुर राज्य मे मिला लिया। रावल अखय सिंह के वाद सन् 1762 ईसवी में मूलराज राज्य के सिंहासन पर वैठा। उसके तीन वालक पैदा हुए- (1) रायसिंह (2) जैतसिंह और (3) मानसिंह।

मूलराज जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। लेकिन वह इसके लिए योग्य न था। उसकी अयोग्यता के कारण उसके मंत्री स्वरूप सिंह ने सभी प्रकार से राज्य का सर्वनाश किया। स्वरूप सिंह जैन धर्मावलम्बी वैश्य था और वह मेहनता जाति में पैदा हुआ था। मंत्री स्वरूप सिंह अत्यन्त स्वेच्छाचारी और स्वार्थी था। उसने राज्य के सामन्तों के सम्मान की भी परवाह न की और राज्य में उसने अनेक प्रकार के अत्याचार किये। उसके कार्यों से राज्य में वहुत असंतोप पैदा हुआ। राज्यों के सामन्तों ने एक तरफ से उसका विरोध किया। परन्तु मूलराज पर इसका कोई प्रभाव न पडा। रावल मूलराज ने सिंहासन पर बैठने के वाद राज्य का कोई प्रवन्ध स्वयं न देखा इसीलिए मन्त्री स्वरूप सिंह को राज्य में मनमानी करने का अवसर मिला।

मंत्री स्वरूप सिंह के सम्बन्ध में एक और भी घटना चल रही थी। वह एक वेश्या से प्रेम करता था और वह वेश्या सरदार सिंह नाम के राजपूत से प्रेम करती थी। इसलिए स्वरूप सिंह सरदार सिंह से बहुत ईर्ष्या करता था और अनेक उपायों से वह उसको क्षति पहुॅचाने की चेष्टा करता था। मंत्री स्वरूप सिंह के द्वारा सरदार सिंह अनेक प्रकार की उलझनों का सामना कर चुका था। अंत में उसने अपनी विपदायें युवराज राय सिंह के सामने उपस्थित कीं। रायसिंह स्वयं मंत्री स्वरूप सिंह से वहुत अप्रसन्न था। इसलिए कि स्वरूप सिंह उससे खुश न रहता था। कुछ इस प्रकार के कारणों से स्वरूप सिंह ने रायसिंह के साथ भी अडंगे लगाये थे और युवराज को खर्च के लिए जो रुपये मिलते थे, मंत्री स्वरूप सिंह ने उनमें कमी कर दी थी।

सरदार सिंह के प्रार्थना करने पर युवराज रायसिंह ने न केवल स्वरूपसिंह का विरोध करने के लिए निर्णय किया बल्कि उसके अपराधों का दण्ड देने के लिए उसने निश्चय कर लिया। एक दिन की बात है। मंत्री स्वरूप सिंह राज दरबार में बैठा था और रावल मूलराज भी वहॉ पर मौजूद था। राज्य के सामन्तों की उपस्थिति में युवराज रायसिंह वहॉ पहुॅचा और उसने म्यांन से तलवार निकाली। यह देखते ही स्वरूप सिंह कॉप उठा, उसने उसी समय घवराये हुए नेत्रों से रावल मूलराज की तरफ देखा। इसी क्षण रायसिंह की तलवार से स्वरूप सिंह का मस्तक कटकर नीचे गिर गया। सामन्तों को मालूम था कि मंत्री स्वरूप सिंह के अत्याचारों का मूल कारण रावल मूलराज है। इसलिए दण्ड उसको भी मिलना चाहिए। वे लोग इस प्रकार सोच रहे थे कि उसी समय मूलराज भयभीत होकर वहॉ से भागा और रानियों के महलों में पहुँच गया।

राज्य के सामन्तों ने राज सिंहासन पर बैठने के लिए युवराज रायसिंह से प्रार्थना की। युवराज केवल राज्य-भार स्वीकार करने के लिए तैयार हुआ। रावल मूलराज इसी मौके पर कैद कर लिया गया और राज्य का प्रबन्ध रायसिंह के नाम पर होने लगा। मूलराज सिंहासन से उतार दिया गया और उसको कैद करने के बाद तीन महीने चार दिन बीत गये। राज्य के सामन्तों में उससे कोई प्रसन्न न था। इसलिए किसी ने उसको कैद से छुड़ाने की चेष्टा न की। परन्तु एक स्त्री किसी प्रकार उसको कैद से छुड़ाना चाहती थी। यह स्त्री एक षड्यंत्रकारी की पत्नी थी और वह षड़यंत्रकारी रायसिंह का गुप्त सलाहकार था। उसने माहेचा वंश में जन्म लिया था। यह वंश राठौरो की एक शाखा है। उस वंश का प्रधान सामन्त जिञ्झियाली का अनूप सिंह है। उसकी पत्नी रावल मूलराज का छुटकारा चाहती थी। इसके लिए उसने अपनी सभी प्रकार की कोशिशें आरम्भ कर दीं।

अनूपसिंह इस राज्य का प्रधान सामन्त था और मन्त्री स्वरूप सिंह तथा रावल मूलराज के विरुद्ध जो षड़यंत्र चल रहा था, उसका वह प्रधान नायक था। उसकी पत्नी मूलराज की मुक्ति के लिए इतनी बड़ी कोशिश में थी कि अपने इस उद्देश्य की सफलता के लिए यदि उसको अपने पति अनूप सिंह के लिए भी अनुचित कदम उठाना पड़े तो भी उसको कुछ चिंता न थी। वह सोचती थी कि रायसिंह ने पिता को कैद करके अच्छा काम नहीं किया। इसलिए रायसिंह को भी सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं मिलना चाहिये।

अनूप सिंह राठौर की स्त्री रावल मूलराज को कैद से छुड़ाने के लिए क्यों इतनी विह्वल हो रही थी, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए उसका कारण उस स्त्री की राजभक्ति भी मानी जा सकती है। उस स्त्री ने जब कोई दूसरा उपाय मूलराज के छुटकारे का न पाया तो उसने अपने बेटे जोरावर सिंह को बुलाकर अपनी बात कही। जोरावर सिंह ने माता के आदेश को स्वीकार कर लिया। यह जानकर उस स्त्री को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने आवेश में आकर कहा- "बेटा, तुम्हें किसी प्रकार रावल मूलराज को कैद से छुड़ाना है और इस कार्य में यदि तुम्हारें पिता बाधक बने तो तुम उनकी भी परवाह न करना और अपने उद्देश्य की सफलता में तुम यदि किसी प्रकार का संकट देखना तो अपने पिता को भी मार डालना। यदि ऐसा हुआ तो तुम्हारे पिता के मृतक शरीर को लेकर मैं चिता में बैठूंगी और सती होकर स्वर्ग जाऊँगी।"

जोरावर सिंह अपनी माता के मुख से इस प्रकार की बातों को सुनकर रावल मूलराज को कैद से छुड़ाने के लिए तैयार हो गया। इसके बाद उसकी माता ने अपने देवर अर्जुन सिंह और बारू के सामन्त मेघसिंह को बुलाकर परामर्श किया और सभी प्रकार उनको समझा-बुझाकर रावल मूलराज के छुटकारे के लिए उनसे प्रतिज्ञा करायी।

मूलराज कारागार में बन्द था। उसको अपनी मुक्ति की कोई आशा न थी। रायसिंह के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत दूषित हो चुकी थी। उसके छुटकारे के लिए जो कोशिश हो रही थी, उसका उसे कोई ज्ञान न था। जोरावर सिंह ने रावल मूलराज के छुटकारे के लिए अपनी माता से प्रतिज्ञा की थी। इसलिए उसने अपनी तैयारी आरम्भ की और अर्जुनसिंह तथा मेघसिंह ने उसका साथ दिया। ये लोग अपनी-अपनी सेनायें लेकर आ गये और एक साथ

उनकी सेनाओं ने कारागार पर आक्रमण किया। मूलराज को कैद से छुड़ाकर वे लोग कारागार से उसे लाने की कोशिश करने लगे। रावल मूलराज की समझ में यह न आया कि मुझे कैद से कौन छुड़ा रहा है। उसने युवराज रायसिंह पर संदेह किया और सशंकित होकर उसने कारागार से निकलने से इनकार कर दिया। इस पर जोरावर सिंह ने अपनी माता की सभी बातें उसको बताई। उन पर विश्वास करके मूलराज कारागार से बाहर निकला और फिर अपने राजसिंहासन पर बैठा।

रावल मूलराज के सिंहासन पर बैठने के समय रायसिंह अपने महल में सो रहा था। नगाड़ों के बजते ही उसकी नींद खुल गयी। जागने पर उसने सुना कि पिता जी ने कारागार से निकलकर और सिंहासन पर बैठकर राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है। इसी समय एक राज कर्मचारी निर्वासन के दण्ड की आज्ञा लेकर रायसिंह के पास आया और उसने लिखा हुआ आदेश रायसिंह को दिया। साथ ही उसने कहा- "काला घोड़ा बाहर तैयार खड़ा है।"

राजपूतों में प्रचलित प्रथा के अनुसार निर्वासन का दण्ड पाने पर निर्वासित को काले घोड़े पर बैठकर राज्य से निकल जाना पड़ता था। उसके वस्त्र, उसकी पगड़ी और उसकी सभी दूसरी चीजें काले रंग की होनी चाहिये। रायसिंह ने दण्ड को स्वीकार किया। वह नियम के अनुसार काले घोड़े पर बैठकर जैसलमेर से बाहर निकला। जो सामन्त और दूसरे लोग रायसिंह के पक्षपाती थे। वे सभी जैसलमेर से निकलकर उसके साथ चले गये। राज्य की दक्षिणी सीमा के अन्त में कोटरा नामक स्थान पर पहुँचकर सामन्तों ने रायसिंह से बातचीत की और आपस मे वे लोग निश्चय करने लगे कि इस नगर को लूट लेना चाहिए। रायसिंह ने इस बात का विरोध किया और कहा- "राज्य की समस्त भूमि हमारी जननी है। इसे हम मातृभूमि कहते हैं। इसलिए हम लोग अपनी मातृभूमि पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकते। जो अत्याचार करेगा, वह हमारा शत्रु होगा।" रायसिंह की इन बातों को सुनकर सभी सामन्त चुप हो गये। फिर किसी ने ऐसी बात नहीं की।

निर्वासित होकर रायसिंह जोधपुर चला गया और वहाँ पर उसने दो वर्ष छः महीने व्यतीत किये। जोधपुर के राजा विजय सिंह ने सम्मान के साथ अपने यहाँ उसको स्थान दिया। यद्यपि रायसिंह अपने अप्रिय स्वभाव के कारण उस सम्मान को पाने का अधिकारी न था। जोधपुर में रहकर उसने उस राज्य के एक महाजन से कर्ज लिया और बहुत दिनों तक जब उस कर्ज की अदायगी न हुई, तो उस महाजन ने रास्ते में रायसिंह को रोककर उस समय अपने रुपयों की माँग की, जब वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ राजा विजय सिंह के साथ शिकार खेलने जा रहा था।

उस महाजन ने रायसिंह के घोडे की लगाम पकड़कर और उसको रोककर अपनी प्रार्थना की थी। रायसिंह ने लगाम को छोड़ देने के लिए कहा। लेकिन महाजन ने लगाम न छोड़ी और वह बिगड़ कर बाते करने लगा। यह देखकर रायसिंह ने अपनी तलवार से उस महाजन का सिर काटकर जमीन पर गिरा दिया और उसके बाद वह जैसलमेर की तरफ यह कहते हुए आगे बढा- "दूसरे राज्य में सम्मानपूर्वक रहने की अपेक्षा अपने राज्य में गुलाम होकर रहना भी अच्छा है।"

रायसिंह के अचानक जैसलमेर की राजधानी में आ जाने से वहॉ के लोगों में एक कौतूहल पैदा हुआ और प्रत्येक मनुष्य उसको देखने के लिए लालायित हो उठा। रावल मूलराज को जब मालूम हुआ तो उसने अपने दूत से पूछा- "रायसिंह जैसलमेर क्यों आया है?"

दूत ने रायसिंह के पास जाकर इस बात को जानने की कोशिश की। उसने दूत के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- "मैं तीर्थ यात्रा करने जा रहा हूँ। इसलिए अपनी जन्म भूमि को देखने आया हूँ।"

दूत ने जब मूलराज के पास जाकर यह बात कही तो उसने रायसिंह की इस बात पर विश्वास नही किया। उसको इस बात की शका होने लगी कि रायसिंह अपने किसी पड्‌यंत्र के लिए यहॉ पर आया है। इसलिए मूलराज ने रायसिह के साथियों के अस्त्र-शस्त्र ले लेने का आदेश दिया और रायसिंह को देवा के दुर्ग में रहने के लिए भेज दिया।

मंत्री स्वरूप सिह रायसिंह के द्वारा मारा गया था। इसलिए मूलराज ने राज्य की पुरानी प्रथा के अनुसार उसके बेटे सालिम सिह को मंत्री बनाया। स्वरूप सिंह के मारे जाने के समय सालिम सिंह की आयु ग्यारह वर्प की थी। उस छोटी अवस्था में ही सालिम सिंह के मनोभावो मे प्रतिहिंसा की भावना पैदा हो गयी थी। जैसलमेर राज्य में जो लोग उसके पिता के विरोधी रहे थे, सालिमसिंह उनके और उनके परिवार के लोगो के साथ कटु व्यवहार कर रहा था। उसका शरीर ओर स्वभाव देखने में प्रिय मालूम होता था। परन्तु हदय उसका बहुत कठोर था। मंत्री होने के कारण राज्य में उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। परन्तु वह लोगो के साथ ऐसा व्यवहार न करना चाहता था, जिससे लोग उसको असम्मान की दृष्टि से देखते।

अपने पिता की तरह सालिम सिंह भी जैन धर्मावलम्वी था। लेकिन उसके स्वभाव की क्रूरता पर जैन धर्म का कोई प्रभाव न पड़ा था। जैनधर्म के अनुसार रात्रि के अधंकार में रहना अच्छा है। परन्तु पतंगों और दूसरे कीड़ों के जलने के डर से दीपक जलाना धर्म के विरुद्ध है। सालिम सिह उस धर्म के इस प्रकार के सिद्धान्तों को मानता था। परन्तु मनुष्य के साथ अप्रिय और क्रूर व्यवहार करके उसको दु:ख तथा पीड़ा पहुँचाने में कभी संकोच न करता था।

सालिम सिंह जन्म से जैन धर्मावलम्बी था। परन्तु उसके कार्य बिल्कुल राक्षसों के से थे। जैसलमेर राज्य मे बाहरी जातियो के आक्रमण से भाटी लोगो का उतना संहार न हुआ। जितना सर्वनाश सालिम सिह के थोड़े दिनों के मंत्रित्व काल में इस राज्य के लोगों का हुआ। रायसिंह के निर्वासन के समय जो सामन्त उसके साथ राज्य छोड़कर चले गये थे, वे लौटकर फिर अपने नगरो मे आ गये।

इन्ही दिनो में मारवाड के राजा विजय सिंह की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर भीमसिंह सिंहासन पर बैठा। अभिपेक के दिन जैसलमेर के रावल मूलराज ने अपने यहॉ से प्रतिनिधि बनाकर मत्री सालिम, सिंह को वहॉ भेजा। सालिम सिंह मारवाड़ के अभिपेक से लौट कर जब जैसलमेर आ रहा था, मार्ग में राज्य के सामन्तों ने उसे पकड कर कैद कर लिया और उसको मार डालने की चेष्टा की। उस समय घबराकर सालिम सिह रो उठा और उसने अपनी पगडी जोरावर सिंह के चरणों पर रख कर अपने प्राणों की भिक्षा मांगी। इस अवस्था में उन सामन्तो ने उसको छोड दिया। जिस स्त्री ने कारागार से मूलराज को निकालने के लिए

अपनी पूरी शक्तियों का प्रयोग किया था, उसी के बेटे जोरावर सिंह ने इस समय सालिम सिंह के प्राणों की रक्षा की। जिस जोरावर सिंह ने अपनी सेना के साथ आक्रमण करके मूलराज को कारागार से निकाला था और फिर उसे सिंहासन पर बिठाया था, उसी मूलराज के मंत्री सालिम सिंह ने इन सारी बातो को जानते हुए भी, मंत्री-पद पाने के बाद जोरावर सिंह के साथ भयानक अन्याय किया और जो सामन्त राज्य से निर्वासित किये गये थे, उनके साथ जोरावर सिंह को भी राज्य से निकाल दिया गया। जिस सालिम सिंह ने जोरावर सिंह के साथ इस प्रकार के अत्याचार किये थे, उस सालिम सिंह के प्राणों की रक्षा करने वाला एक मात्र जोरावर सिंह ही था। यदि उस समय जोरावर सिंह न होता तो मारवाड़ के अभिषेक से लौटने के बाद मार्ग में जैसलमेर के सामन्तों ने उसको जान से मार डाला होता।

सालिम सिंह की यह घटना उस समय की है, जब जैसलमेर के निर्वासित सामन्त राज्य से बाहर थे। सालिम सिंह ने छुटकारा प्राप्त करके निर्वासित सामन्तों को उनकी जागीरें दीं। परन्तु राज दरबार में वे सामन्त अपने पूर्व के अधिकारों से अब भी वंचित बने रहे।

जैसलमेर की राजधानी में रायसिंह के लौट कर आने पर रावल मूलराज ने उसे देवा के दुर्ग में भेज दिया और उसे वहाँ पर कैद कर लिया गया। रायसिंह के लड़के अभय सिंह और धौकल सिंह निर्वासित सामन्तों के साथ बाडमेर में रहते थे। मूलराज ने अपने दूतों के द्वारा सामन्तों के पास संदेश भेजकर अपने दोनों पौत्रों को बुलवाया था। लेकिन सामन्तों के न भेजने पर मूलराज ने अपनी सेना भेजकर बाडमेर को चारों तरफ से घेर लिया।

वहाँ पर जो निर्वासित सामन्त रहते थे, उन्होंने छः महीने तक वहाँ के दुर्ग की रक्षा की। अन्त में खाने-पीने का कोई प्रबन्ध न रहने के कारण उन सामन्तों ने आत्म-समर्पण कर दिया। सामन्तों ने रायसिंह के दोनों बालकों को मूलराज के बुलाने पर भी न भेजा, इसका कारण था। उनको मूलराज पर विश्वास न था। इसलिए जोरावर सिंह के आश्वासन देने पर दोनों राजकुमार मूलराज के पास भेज दिये गये। मूलराज ने उन दोनों लड़कों को देवा के दुर्ग में रायसिंह के साथ रहने के लिए भेज दिया। उसी दुर्ग में रायसिंह की स्त्री भी उसके साथ रहती थी। अचानक आग लग जाने के कारण उस दुर्ग में रायसिंह और उसकी स्त्री जल गयी। अभयसिंह और धौकलसिंह दोनों उस आग से किसी प्रकार बच गये।

सालिम सिंह ने जोरावर सिंह के संरक्षण में अभय सिंह और धौकल सिंह को जैसलमेर से दूरवर्ती रामगढ़ नगर में भेज दिया। इसमें मंत्री सालिम सिंह की दूरदर्शिता थी। रायसिंह के राजकुमारों के नाम पर राज्य के सामन्त किसी भी समय मूलराज के साथ विद्रोह कर सकते थे। इस संकट से मूलराज को सुरक्षित रखने के लिए सालिमसिंह मेहता ने उन दोनों बालकों को राज्य से दूर भेज दिया था।

रायसिंह के दोनों राजकुमारों को जैसलमेर लाने के समय जोरावर सिंह ने आश्वासन दिया था। इसलिए जब उन दोनों राजकुमारों को राज्य से सुदूरवर्ती स्थान पर भेजने का आदेश हुआ, उस समय जोरावर सिंह को सन्देह पैदा हुआ। इसी संदेह के आधार पर जोरावर सिंह ने राज दरबार में निर्भीक होकर मूलराज से कहा: "आपके सिंहासन के उत्तराधिकारी राजकुमार अभयसिंह के जीवन का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। जिस राजकुमार को राज्य के सिंहासन पर किसी समय बैठना है उसको किसी दूरवर्ती स्थान पर भेज देने की अपेक्षा राजधानी में रखकर उसे राज्य के शासन की शिक्षा देना आपका कर्त्तव्य है।"

जोरावर सिंह के निर्भीक शब्दों को सुनकर मेहता सालिम सिंह भयभीत हो उठा। वह सोचने लगा कि राज दरबार में जोरावर सिंह जैसे शक्तिशाली सामन्त का इस प्रकार कहना मेरे लिए किसी प्रकार अच्छा नहीं है। इसलिए वह किसी षड़यंत्र के द्वारा जोरावर सिंह को मार डालने का उपाय सोचने लगा।

जोरावर सिंह का एक भाई था। खेतसी उसका नाम था। सालिम सिंह ने खेतसी की स्त्री के साथ बहन का सम्बन्ध कायम किया और उसे अपने यहाँ बुलाकर उसने कई बार सम्मानित किया। उसको प्रभावित करने के बाद सालिम सिंह ने एक दिन अपने यहाँ उससे बड़ी बुद्धिमानी के साथ बातें कीं और कहा- "हमारी इच्छा तुम्हारे पति खेतसी को प्रधान सामन्त बनाने की है। क्या तुम इस बात को पसन्द करोगी?"

मंत्री सालिम सिंह की बात को सुनकर खेतसी की स्त्री बहुत प्रसन्न हुई और जब उसने इसे स्वीकार कर लिया तो सालिम सिंह ने सावधानी के साथ उसको समझाते हुए कहा- "इसके लिए मैं जैसा तुम्हें बताऊँ, तुम्हें करना पड़ेगा।"

वह स्त्री उत्सुकता के साथ सुन रही थी। सालिम सिंह ने गम्भीर होकर फिर उससे कहा- "मैं जैसा चाहता हूँ, तुम्हें भी उतना ही उसके लिए तैयार होना चाहिये। साहस से तुमको काम लेने की आवश्यकता है। इसके लिए मैं तुम्हें एक चीज दूँगा और तुम्हे उसका तरीका बताऊँगा। तुम इस चीज को जोरावर सिंह के भोजन मे मिला देना। उसे खाकर जोरावर सिंह मर जाएगा। बस तुम्हारा रास्ता साफ हो जाएगा। उसके बाद मैं तुम्हारे पति खेतसी को इस राज्य का प्रधान सामन्त बना दूँगा।"

अपने पति के गौरव को बढ़ाने के लिए उस स्त्री ने भोजन में सालिम सिंह का दिया हुआ विष मिलाकर जोरावर सिंह को खिला दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद खेतसी जिझियाली का प्रधान सामन्त बना दिया गया।

मन्त्री सालिम सिंह के सामने जो संकट और भय था, जोरावर सिंह के मर जाने पर वह खत्म हो गया। अब उसका किसी प्रकार की चिंता न रह गयी। इसलिए उसने शासन में अपना एक मात्र आधिपत्य आरम्भ किया। उसके कार्यों से राज्य का कोई सामन्त प्रसन्न न था। परन्तु रावल मूलराज के चुप रहने के कारण कोई उसका विरोध नहीं करता था। सालिम सिंह के बढ़ते हुए अत्याचारों को देख कर जिन सामन्तों से नहीं रहा गया और उन्होने उसके विरुद्ध सिर उठाने का साहस किया, सालिम सिंह ने सहज ही अपनी कूटनीति के द्वारा उनको इस संसार से विदा कर दिया। इस प्रकार जो सामन्त मारे गये, उनमें बारू और डाँगरी आदि के सामन्त प्रमुख थे।

जोरावर सिंह के मर जाने के बाद राज्य में खेतसी को प्रधान सामन्त का पद मिला था, इस पद का वह अधिकारी कसे हुआ, इस बात को वह स्वयं कुछ न जानता था। यह तो किसी से छिपा न था कि जोरावर सिंह को विष दिया गया। परन्तु वह विष किसने दिया और उसमें किसका षड़यंत्र था, यह किसी को जाहिर न हुआ। जोरावर सिंह के स्थान पर खेतसी प्रधान सामन्त बनाया गया था। इसलिए बड़े भाई जोरावर सिंह के कर्त्तव्यों का उत्तरदायित्व खेतसी पर आ पड़ा। इस कर्त्तव्य पालन के कारण ही सालिम सिंह के साथ खेतसी का विवाद हो गया।

जोरावर सिंह के मर जाने के बाद रायसिंह के पुत्रों की अब बात कहने वाला कोई न रह गया था। उन दोनों बालकों के प्राणों की रक्षा का भार जोरावर सिंह ने अपने ऊपर लिया था, उसे मंत्री सालिम सिह मेहता ने संसार से विदा कर दिया था। इसलिए सालिम सिंह अब पूर्ण रूप से निर्भीक हो गया। उसने मूलराज के बाद राज्य का उत्तराधिकारी अभय सिंह के स्थान पर उसके लड़के मानसिंह के बेटे गजसिंह को बनाने की चेष्टा की और जिस समय इस प्रकार का प्रस्ताव राज दरबार में उपस्थित किया गया, उस समय खेतसी चुपचाप बैठा रहा। राज्य के पुराने नियमों के अनुसार मंत्री सालिम सिंह का यह प्रस्ताव पूर्ण रूप से अनैतिक था। राज-दरबार में उस प्रस्ताव का उसे समर्थन न मिल सका। इस प्रकार के अनैतिक कार्यो में प्रजा की सहानुभूति पर भी सालिम सिंह संदेह करने लगा। इस दशा में गजसिंह को उत्तराधिकारी बनाने के लिए एक ही उपाय रह गया था कि रायसिंह के दोनों बालकों को मारकर इस संसार से विदा कर दिया जाये। इसके लिए वह प्रयत्न करने लगा।

सालिम सिंह संसार के नेत्रों में जैन धर्मावलम्बी था। उसने उस धर्म को स्वीकार किया था, जिसके अनुसार बिना जाने एक चींटी और पतंगे के मर जाने से भी भयानक पाप होता है। सालिम सिंह स्वरूप सिंह का बेटा था और जैन धर्मावलम्बी होने के बाद भी उसने संसार का कोई पाप और अपराध बाकी न रखा था। सालिम सिंह उसी स्वरूप सिंह का लड़का था। इसने मंत्री होने के बाद किस प्रकार के अत्याचार किये और षड्यंत्र करके लोगों की हत्यायें कीं, इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

रावल मूलराज ने सालिम सिंह के अत्याचारों के प्रति अपने दोनों नेत्र बंद कर लिए थे। जिस मूलराज ने सालिम सिंह को सभी प्रकार स्वत्वाधिकारी बना दिया था, उस सालिम सिंह का भी कुछ कर्त्तव्य मूलराज के प्रति था। उसने मूलराज के प्रपौत्र गजसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। राज्य का वास्तव में उत्तराधिकारी रायसिंह का बेटा अभयसिंह था। रायसिंह अपनी पत्नी के साथ आग से जलकर मर चुका था। अब गजसिंह के जीवन में अभय सिंह कांटा था। न केवल उस अभयसिंह को, बल्कि रायसिंह के दूसरे बालक धौंकल सिंह को भी मरवा डालने का सालिम सिंह ने निश्चय किया।

लगातार पाप और अपराध करने के बाद मनुष्य के हृदय का भय नष्ट हो जाता है। सालिम सिंह की भी यही अवस्था थी। अब उसने हृदय में किसी बात का भय न रह गया। उसने अपने षड्यंत्र द्वारा जोरावर सिंह के स्थान पर खेतसी को राज्य का प्रधान सामन्त बनाया था। वह खेतसी पर अपना यह उपकार समझता था। उसका कदाचित् यह विश्वास था कि मैं जो कुछ कहूँगा, खेतसी उसको पूरा करेगा। अपने इसी विश्वास के कारण उसने रायसिंह के दोनों बालकों को मार डालने के लिए खेतसी को आदेश दिया।

खेतसी प्रधान मंत्री सालिम सिंह के इस आदेश को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने सालिम सिंह को उत्तर देते हुए कहा- "मैं अपने वंश में किसी के भी प्रति इस प्रकार की बात सुनना भी पसन्द न करूंगा।"

खेतसी की इस बात को सालिम सिंह ने सुना। उसने कुछ उत्तर न दिया। इसके कुछ दिनो बाद खेतसी बालोतरा राज्य के फूलिया नामक स्थान पर एक निमन्त्रण में गया। जब वह वहाँ से लौट रहा था, मन्त्री सालिम सिह के भेजे हुए राज्य के कुछ आदमी उसे

जैसलमेर की सीमा के भीतर मिले और सालिम सिंह की योजना के अनुसार विश्वासघात करके उन लोगो ने खेतसी को मार डाला। यह समाचार जब खेतसी की स्त्री को मिला तो वह अश्रुपात करती हुई सालिम सिंह के यहाँ पहुँची। इसलिए कि वह सालिम सिंह को अपना सब से अधिक शुभचिन्तक समझती थी। परन्तु उसे वहीं पर यह मालूम हो गया कि मेरे स्वामी के मारे जाने मे इसी सालिम सिंह का षड्यंत्र था तो प्रतिहिंसा की भावना से उस स्त्री के अन्तरतम में आग की लपटे उठने लगीं। सालिम सिंह को जब यह मालूम हुआ तो उसने खेतसी की स्त्री को भी मरवा डाला।

सालिम सिंह ने इन दिनों में लगातार उन लोगो की हत्यायें कीं, जो लोग उसके विरोधी बने। उसने रायसिंह के लडके अभय सिंह और धौंकल सिंह को भी विष देकर मरवा डाला और उसने गजसिंह को जैसलमेर राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया। गजसिंह के चार भाई और थे। वे अपने प्राणों के भय से बीकानेर से चले गये।

मूलराज के तीन लडके थे-रायसिंह, जैतसिंह और मानसिंह। रायसिंह आग में जलकर मर गया। जैतसिंह काना था और मानसिंह घोडे से गिरकर मर गया था। रायसिंह के दो लड़के थे, जो विष देकर मार दिये गये। जैतसिंह के एक लड़का था, महासिंह। यह काना था। मानसिंह के पाँच लड़के थे-तेजसिंह, देवीसिंह, गजसिंह, केशरी सिंह और फतेह सिंह। इनमें गजसिंह को छोड़कर शेष चारों लड़के राज्य से निर्वासित कर दिये गये थे। हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अनुसार काने को राज सिंहासन का अधिकार नहीं मिलता। इस दशा मे गजसिंह ही उस राज्य का अब एक मात्र उत्तराधिकारी रह गया था।

राजस्थान के जिन राज्यों मे मन्त्रियो का आधिपत्य रहा और राजा कठपुतली बनकर सिंहासन पर बैठे रहे, उन राजाओं को अधिक समय तक शासन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कोटा राज्य के भूतपूर्व राजा ने भी अपने सिंहासन पर बैठकर पचास वर्ष से अधिक शासन किया था और रावल मूलराज ने जैसलमेर में अपने शासन के अट्ठावन वर्ष व्यतीत किये। उसके पिता का शासन चालीस वर्ष तक रहा था। रावल मूलराज के पितामह जसवंत सिंह के शासन काल में जैसलमेर के राज्य का विस्तार हुआ था। उत्तर की सीमा गाडा नदी तक और पश्चिम में पञ्चनद तक बढ़ी हुई थी। इसके पहले राज्य की इस सीमा का और भी अधिक विस्तार हुआ। जैसलमेर के दक्षिण मे धात राज्य है। पूर्वी सीमा के फलौदी, पोकर्ण और अनेक दूसरे नगर बीकानेर राज्य में चले गये हैं। भावलपुर राज्य आजकल एक स्वतंत्र राज्य बन गया है। परन्तु किसी समय वह जैसलमेर की राजधानी का एक भाग था।

इस राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ जितनी ही निर्बल होती गयीं और उसके सिंहासन पर बैठे हुए राजाओं ने जितनी ही अपनी अयोग्यता और कायरता का परिचय दिया, राज्य के उतने ही ग्राम और नगर उनके अधिकारो से निकल कर दूसरे राज्यों में चले गये। जैसलमेर की इस दुरवस्था का एकमात्र कारण यह था कि पतन के इन दिनो मे जो लोग उसके राज-सिंहासन पर बैठे, वे अयोग्य थे और उनमे शासन की शक्तियो का पूर्ण रूप से अभाव था।

अध्याय-53
सालिम सिंह के पैशाचिक कार्य

कृष्ण के स्वर्गवासी होने पर यदुवंश का इतिहास इस परिच्छेद में पहले वहुत कुछ लिखा जा चुका है और शेष आगामी पृष्ठों में लिखा जाएगा। जैसलमेर का यदुवंशी रावल मूलराज कृष्ण वंशज था और उसने वहॉ के सिंहासन पर वैठकर, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया। परन्तु वह नाम के लिये राजा था। उसके शासन के आरम्भ मे मेहता स्वरूपसिंह राज्य का प्रधान मंत्री वना। मूलराज आरम्भ से अन्त तक अपने प्रधानमंत्री के हाथ का खिलौना रहा। उसमें शासन की योग्यता न थी और एक राजपूत में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनका उसके जीवन मे पूर्ण रूप से अभाव था। यही कारण था कि उसके मन्त्रियों ने राज्य को रसातल मे पहुॅचा दिया और जो सामन्त अथवा मूलराज के वंश के लोग राज्य के शुभचिंतक थे, उनकी हत्यायें करवाई गई। इन सब वातों के परिणामस्वरूप जैसलमेर राज्य का पूरे तौर पर पतन हुआ और जो यदुवंश अपने गौरव के लिए वहुत प्रसिद्ध हो चुका था, भयानक रूप से उसका अध:पतन हुआ।

सन् 1818 ई. मे मूलराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि की और उसके दो वर्ष बाद सन् 1820 ई में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके वाद उसका प्रपौत्र गजसिंह जैसलमेर के सिंहासन पर वैठा। प्रधानमंत्री सालिमसिंह ने राज्य के दूसरे उत्तराधिकारियो का सर्वनाश करके राजकुमार गजसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया था। राज्य के प्रधानमंत्री का यह कार्य पूर्ण रूप से अनैतिक था। परन्तु उसे सफलता मिली और मूलराज के मरने पर वही गजसिंह-जिसको प्रधानमंत्री सालिम सिंह सिंहासन पर विठाना चाहता था-राज्य का शासक बना।

रावल मूलराज के शासनकाल मे राज्य का संचालक प्रधानमंत्री था और उस प्रधानमंत्री ने मूलराज के बाद भी शासन की सत्ता को अपने हाथ में वनाये रखने के लिये गजसिंह का समर्थन किया। राज्य के दूसरे उत्तराधिकारियों से सालिमसिंह को पहले से ही कोई आशा क्यों न थी और उसने गजसिंह से अपने सम्बन्ध में पूरी आशायें किस आधार पर रखी थीं, इसको स्पष्ट करने के लिए प्राचीन ग्रन्थो में कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन यह बात सही है कि प्रधानमंत्री सालिम सिंह ने गजसिंह से जो आशाये की थीं,वे पूरे तौर पर पूरी हुई। गजसिंह सालिमसिंह के बल पर राज्य सिंहासन पर बैठा और राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद वह सालिमसिंह के हाथों की कठपुतली बनकर रहा।

गजसिंह की शिक्षा-दीक्षा का कार्य उसकी छोटी आयु से ही सालिमसिंह के हाथ मे रहा था। उसने गजसिंह को जिस सॉचे में ढ़ालना चाहा था, गजसिंह उसी सॉचे में ढ़ला। पुराने

ग्रन्थो मे इस बात के उल्लेख पाये जाते हैं कि बचपन से ही गजसिंह का सम्पर्क सालिमसिंह के साथ अधिक था। सालिमसिंह का पिता मेहता स्वरूपसिंह राज्य का प्रधानमंत्री था और उस दशा मे गणसिंह के साथ सालिमसिंह का सम्पर्क रहना अत्यन्त स्वाभाविक था। शुरू से ही गजसिंह का विश्वास सालिमसिंह ने प्राप्त किया था और उसके जीवन की गति मन को देखकर सालिमसिह ने पहले से ही सभी प्रकार के अनुमान लगा लिये थे। सिंहासन पर बैठने के पहले तक गजसिंह सालिमसिंह को छोड़कर कदाचित दूसरां को जानता भी न था और उसके सिंहासन पर बैठने क्रे बाद भी सालिमसिंह ने उसकी यही अवस्था कायम रखी। प्रधानमंत्री ने गजसिंह को उन राज-कर्मचारियों के सम्पर्क मे रात-दिन रखा, जो सभी प्रकार सालिमसिंह के पक्षपाती थे और उनके जीवन का प्रधान कार्य यह था कि वे रावल गजसिंह से सालिमसिंह की खूब प्रशंसा करते रहे। वे राज कर्मचारी इसके लिए प्रधानमंत्री सालिम सिंह से बराबर पुरस्कृत होते रहते थे।

रावल मूलराज के समय प्रधानमंत्री सालिमसिंह को जो अधिकार प्राप्त थे, रावल गजसिह के समय उनमे अपार वृद्धि हो गयी थी। उसके अधिकारो के सम्बन्ध मे यह कहना अतिशयोक्ति नहीं हैं कि प्रधानमंत्री सालिमसिंह के हाथो में न केवल राज्य के सब अधिकार थे, बल्कि रावल गजसिंह और उसके परिवार के लोगो को भी सालिमसिंह की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता था। उस समय जैसलमेर का राजवंश पूर्ण रूप से प्रधानमंत्री की अधीनता में जीवन बिता रहा था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ राजस्थान के जितने राज्यों की संधियाँ हुई थीं। उनमें सबसे पीछे जैसलमेर की संधि हुई। इस देर सबेर का कारण था वहॉ का प्रधानमंत्री सालिमसिंह कम्पनी के साथ संधि करने के पक्ष मे न था। उसे भय था कि अंग्रेजों के साथ इस प्रकार की संधि हो जाने के बाद मेरे अधिकार छिन जाएगे और उस दशा मे मैं अपनी इच्छा के अनुसार इस राज्य में कुछ न कर सकूँगा। इस भय से उसने बहुत समय तक जैसलमेर की संधि को रोकने की कोशिश की। यद्यपि जैसलमेर राज्य की परिस्थितियॉ इतनी खराब हो चुकी थीं कि जिनके कारण कम्पनी के साथ उसकी सन्धि बहुत पहले हो जानी चाहिए थी। परन्तु सालिमसिंह ने ऐसा नहीं होने दिया। उस प्रधानमंत्री की शक्तियां राज्य मे इतनी प्रबल थीं कि कोई भी उसके विरुद्ध वहा पर कुछ कर न सकता था। रावल मूलराज ने स्वयं उसको शासन की सत्ता सौंप रखी थी और वह चुप होकर बैठा रहा।

प्रधानमंत्री सालिम सिंह की यह चेष्टा बहुत दिनों तक न चल सकी। इसके दो कारण थे। पहला कारण यह था कि जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियॉ दिन-पर-दिन भयानक होती जाती थी और दूसरा कारण यह था कि राजस्थान मे जैसलमेर को छोडकर और कोई ऐसा राज्य न रह गया था, जिसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि न की हो। इन दोनों कारणों से जैसलमेर को भी अंग्रेजों के साथ संधि करनी पड़ी और उसका कार्य 12 दिसम्बर सन् 1818 ईसवी को सम्पन्न हो गया। इस संधि पत्र के हो जाने और उसके कार्यान्वित होने के बाद सालिम सिंह को जो भय था और जिसके कारण उसने अब तक इस संधि को रोके रखा था, वह बहुत कुछ दूर हो गया। बल्कि कुछ ऐसी परिस्थितियॉ भी संधि के द्वारा राज्य मे पैदा हुई, जो पूर्ण रूप से सालिम सिंह के पक्ष में थीं।

इस संधि के पहले सालिम सिंह को बराबर भय बना रहता था कि गजसिंह के जो भाई जैसलमेर छोड़कर बीकानेर चले गये हैं, वे संगठित होकर किसी भी समय इस राज्य पर आक्रमण कर सकते हैं और वह समय मेरे लिए बड़ा भयानक होगा। अंग्रेजों के साथ जैसलमेर की संधि हो जाने के बाद सालिम सिंह के मन का यह भ्रम दूर हो गया। क्योंकि संधि में एक शर्त यह भी थी कि राज्य पर बाहर से किसी के आक्रमण करने पर अंग्रेजी सेना जैसलमेर की सहायता करेगी। प्रधानमंत्री को इसके सम्बन्ध में एक बड़ी आशंका रहा करती थी, संधि के बाद यह मिट गयी और सालिम सिंह निर्भीकता के साथ अपना शासन करता रहा। अब उसके सामने कोई बाधा न थी।

इस संधि के पहले जैसलमेर राज्य की जो परिस्थितियाँ चल रही थी, उनमें इस बात का कोई अनुमान नहीं हो सकता था कि यह राज्य कब तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा। अंग्रेजों की इस संधि के बाद राज्य की शक्तियों में तुरन्त कोई निर्माण नहीं हुआ। फिर भी उसकी कमजोरियों के कारण आशंकायें पैदा हो रही थीं, अब उनका कोई भय न रह गया। यह बात किसी से छिपी न थी कि जैसलमेर का शासन बहुत दिनों से शिथिल पड़ गया था और राज्य की सीमा इतनी कम हो गयी थी कि अब उसमें उसकी केवल राजधानी दिखायी देती थी। राज्य के समस्त उत्तरी ग्रामों और नगरों को मिलाकर भावलपुर का राज्य बन गया था और सिंध, बीकानेर और मारवाड़ के राज्य लगातार जैसलमेर के नगरों पर कब्जा करते चले जा रहे थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि हो जाने के बाद जैसलमेर के इस पतन का अंत हो गया। जो पड़ोसी राज्य उसके नगरों और ग्रामों पर लगातार अधिकार कर रहे थे, वे सब बन्द हो गये। यदि इस प्रकार की संधि न हुई होती तो अपनी रक्षा करने के लिए जैसलमेर में सैनिक शक्ति न रह गयी थी। एक समय वह था, जब जैसलमेर का व्यवसाय बढ़कर गंगा और सिंधु नदी के किनारे बसे हुए नगरों तक पहुँच गया था। परन्तु आपसी फूट, ईर्ष्या और अंतिम दिनों में सिंहासन पर बैठने वालों की अयोग्यता से राज्य का यह सारा वैभव थोड़े दिनों में ही छिन्न-भिन्न हो गया और राज्य पतन की उस दुरावस्था में पहुँच गया, जब उसकी स्वाधीनता संकट में दिखायी देने लगी।

कम्पनी से इस संधि के बाद प्रधानमंत्री सालिम सिंह के सभी भय नष्ट हो गये। राज्य में अब उसका अत्याचार फिर से बढ़ने लगा। राज्य की सम्पूर्ण प्रजा उसको कोस रही थी। परन्तु उसके अत्याचारों को सहन करने के सिवा उनके अधिकार में कुछ न था। राज्य में कोई ऐसी शक्ति न थी, जहाँ पर प्रजा पहुँच कर अपना रोना रो सकती और अपने कल्याण के लिए प्रार्थना कर सकती। सालिम सिंह के कठोर अत्याचारों से अब राज्य के निवासियों को किसी अच्छाई की आशा न रह गयी थी।

संधि के पश्चात् आरम्भिक दिनों में प्रधानमंत्री सालिम सिंह ने प्रजा के साथ ऊपरी सहानुभूति प्रकट करने की कोशिश की। लेकिन उसके इन व्यवहारों का प्रजा पर कोई प्रभाव न पड़ा। लोगों का असंतोष इस प्रकार उस पर बढ़ा हुआ था कि उससे लोग अब किसी प्रकार की आशा न रखते थे। सालिम सिंह भी प्रजा के इस अविश्वास को जानता था। जब उसने

देखा कि लोग मेरा विश्वास नहीं करते तो वह खुलकर लोगों के साथ अत्याचार करने लगा। इसके पहले उसने प्रजा के साथ सहानुभूति का जो एक दिखावा आरम्भ किया था, उसका भीतरी उद्देश्य यह था कि वह राज्य के प्रधानमंत्री पद पर अपने बाद अपने उत्तराधिकारी को ही रखना चाहता था। इसके लिए उसने प्रजा के साथ झूठी सहानुभूति आरम्भ की थी और इन्हीं दिनों में उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने इस प्रकार का एक प्रस्ताव भी रखा था।

सालिम सिंह को अपनी इन दोनों चेष्टाओं से असफल होना पड़ा। प्रजा के अविश्वास में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और अंग्रेज अधिकारियों के नेत्रों से उसके काले कारनामे छिपे न थे। इसलिए असफल हो जाने के बाद सालिम सिंह ने जैसलमेर राज्य में अपनी भयानक क्रूरता आरम्भ की। उन क्रूर और पैशाचिक अत्याचारों ने अंग्रेजी दूत को जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियों पर अपनी सरकार को रिपोर्ट भेजने के लिए विवश किया।

अंग्रेजी दूत ने 17 दिसम्बर, सन् 1821 ईसवी को अपनी सरकार से प्रार्थना की– ''संधि के बाद जैसलमेर में जो निष्ठुर परिस्थितियां उत्पन्न हुई हैं, वे हमारी संधि के लिए अपमानजनक हैं। प्रधानमंत्री सालिम सिंह से इसके सम्बन्ध में प्रार्थनायें की गयी है। परन्तु वे व्यर्थ हो चुकी हैं। वह अपनी न्यायप्रियता और दयालुता का ऊँचे स्वर में वर्णन करता है। परन्तु प्रार्थनाओ के बाद उसने अपनी क्रूरता और पैशाचिकता को पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ा दिया है। उसके अत्याचारों से राज्य की सम्पूर्ण प्रजा में त्राहि–त्राहि मची हुई है। जैसलमेर राज्य की प्रजा के साथ समस्त राजस्थान के राज्यों की सहानुभूति है। जैसलमेर के व्यवसायी, जो पीलीवालो से कर्ज में रुपये लेकर व्यवसाय करते हैं, सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। यह व्यावसायिक श्रेणी–जो पॉच हजार परिवारो में विभक्त है–विवश होकर राज्य से निर्वासित हो चुकी है। जो वनिए तथा महाजन व्यवसाय के लिए बाहर जाते हैं, अपने राज्य को लौटकर आने मे घबराते हैं। राज्य की खेती का व्यवसाय इसलिए नष्ट हो गया कि उसकी रक्षा का राज्य में कोई प्रबन्ध नहीं है। राज्य की मालगुजारी कृपकों से जबरदस्ती वसूल की जाती है। लोगो का सही अनुमान यह है कि प्रधानमत्री सालिम सिंह ने बीस वर्पो मे दो करोड़ से अधिक रुपये की सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली है और इस सम्पत्ति से दूसरे देशों मे रियासतें खरीदी हैं। यह अपरिमित सम्पत्ति उसने लूट, अपहरण, नीति और भीषण क्रूरता के द्वारा एकत्रित की है। राज्य के सभी अच्छे परिवारो ने कम्पनी की सरकार के पास प्रार्थना पत्र भेजकर मांग की हैं कि हमारे परिवारों को सुरक्षित अवस्था में इस राज्य से निकालकर बाहर कर दिया जाये।''

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ राजस्थान के राज्यों की जो संधियाँ हुई थीं, उनके अनुसार जव राज्यो मे झगड़े पैदा होगे तो कम्पनी की सरकार मध्यस्थ बनकर निर्णय करेगी। इन दिनों में जैसलमेर की सीमा पर संघर्प पैदा हुआ और उसके फलस्वरूप युद्ध होने की सम्भावना हो गयी। उसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मध्यस्थ बनना पड़ा। यह संघर्प बारू राज्य के मालदेवोत लोगो से सम्बन्ध रखता था।

मालदेवोत, केलन, वरसंग, पोहर और तेजमालोत भाटी वंश के है। परन्तु लूटमार की नीति अपनाने के कारण अकुज्जाक और पिण्डारियों की तरह वे भी लुटेरों में प्रसिद्ध हो

गये थे। बारू राज्य खारीपट्टा के नजदीक है। बीकानेर के राठौरों ने भट्टी लोगों से खारी पट्टा को लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। राठौरों के साथ भट्टी लोगों के झगड़े का कारण यह है कि राठौरों ने भट्टीवंश के बहुत-से स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार की घटनायें पच्चीस वर्ष पहले हो चुकी थीं। राठौरों ने बारू राज्य पर आक्रमण करके भाटी लोगों का एक तरह से संहार किया। नगरों और ग्रामों को लूटकर बुरी तरह विध्वंस किया और वहाँ के निवासियों के साथ अनेक प्रकार के अत्याचार किये। भाटी वंश के जो लोग उस सर्वनाश से बच गये थे, वे मरुभूमि के एक दूरवर्ती स्थान पर जाकर रहने लगे।

इस घटना के बाद धीरे-धीरे बहुत दिन बीत गये। भाटी वंश के जो लोग बच गये थे, मरुभूमि के उस स्थान पर-जहाँ पर जाकर वे रहने लगे थे-उनके वंश की वृद्धि हुई। जैसलमेर के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सन्धि हो जाने पर वे भाटी लोग अपने प्राचीन नगरों में आकर बस गये। प्रधानमंत्री सालिम सिंह को जब यह मालूम हुआ तो वह उन भाटी लोगों पर बहुत क्रोधित हुआ और मालदेवोत लोगों का विध्वंस करने के लिए उसने राठौरों से परामर्श किया। सालिम सिंह ने जैसलमेर के जब अनेक सामन्तों का नाश किया, तो उस समय वह एक प्रकार से राक्षस बन चुका था और उसने बारू के सामन्त की भी हत्या करायी थी। बारू का सामन्त राजकुमार हृदय से रायसिंह का पक्षपाती था और समय-समय पर उसने रायसिंह की सहायता भी की थी। उसके इस अपराध से जलकर सालिम सिंह ने उसको भी मरवा डाला। प्रधानमंत्री की यह शत्रुता बारू राज्य के प्रत्येक व्यक्ति के साथ पैदा हो गयी थी।

सालिम सिंह बारू के सर्वनाश की बात बराबर सोचा करता था। इसके लिए उसे अवसर मिल गया। पेशवा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के युद्ध के दिनों में पेशवा का एक राज कर्मचारी ऊँट खरीदने के लिए जैसलमेर आया और चार सौ ऊँट खरीद कर जिस समय वह जैसलमेर से बीकानेर राज्य मे पहुँचा,उस समय बारू राज्य के सरदार ने अपने सैनिकों के साथ पेशवा के आदमी पर आक्रमण किया और उसके ऊँट लेकर अपने अधिकार में कर लिए।

इस समाचार को सुनकर बीकानेर के राजा ने मालदेवोत लोगों के विरुद्ध अपनी एक सेना भेजी। इस अवसर पर सालिम सिंह ने बीकानेर के राजा को मालदेवोत लोगों के विरुद्ध उकसाने का काम किया था; अन्यथा बीकानेर के राजा ने उनके विरुद्ध अपनी सेना न भेजी होती। सालिम सिंह अत्यन्त धूर्त था। उसने छिपे तौर पर बीकानेर के राजा को मालदेवोत लोगों पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया। परन्तु जाहिर तौर पर इस झगड़े को रोकने की वह कोशिश करता रहा। सालिम सिंह ने इस अवसर पर अपनी कूटनीति का प्रयोग किया। वह इसका जो फल देखना चाहता था, उसका उलटा हुआ। बीकानेर की सेना ने मालदेवोत लोगों के नोखा और बारू में पहुँच कर भयानक उत्पात किया। वहाँ के सामन्तों को मार डाला और उस ग्राम के सभी कुएँ बन्द करवा दिये।

इसके बाद बीकानेर की सेना बीरमपुर की तरफ रवाना हुई और जैसलमेर राज्य के कई स्थानों पर अत्याचार किया। इस समाचार को सुनकर सालिम सिंह ने कम्पनी के अंग्रेजों से सहायता माँगी। संधि के अनुसार जैसलमेर की रक्षा करने के लिए अंग्रेजों की सेना आयी और उसके फलस्वरूप बीकानेर की सेना अपनी राजधानी लौट गयी। इस प्रकार सालिम सिंह ने बीकानेर के राजा को उकसाकर बारू के सामन्त के प्राण लिए।

रावल मूलराज के बाद गजसिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। उसके बड़े भाइयों ने वीकानेर मे जाकर अपने प्राणो की रक्षा की। मूलराज की तरह गजसिंह भी प्रधानमत्री सालिम सिंह के हाथ का खिलौना बनकर रहा। उसकी अयोग्यता और कायरता की बाते पहले लिखी जा चुकी हैं। सालिम सिह अनेक दूसरे तरीको से गजसिंह को प्रसन्न करने का उपाय किया करता था। उसकी चेष्टा से मेवाड के राणा ने गजसिंह के साथ अपनी लडकी के विवाह का प्रस्ताव किया और नारियल भेजा। गजसिंह ने उसे स्वीकार कर लिया। मेवाड़ के राजा ने इन्हीं दिनों में अपनी दूसरी लड़की के विवाह के लिए बीकानेर के राजा के पास और प्रपौत्री के विवाह के लिए कृष्णगढ़ के राजा के पास प्रस्ताव भेजा। ये तीनो विवाह एक साथ तय हो गये और तीनो राज्यो से सेनायें लेकर वर–पक्ष के लोग उदयपुर पहुँच गये। समयानुसार विवाहो के कार्य सम्पन्न हुए। गजसिंह मेवाड़ की राजकुमारी के साथ जैसलमेर में आकर रहने लगा। उस राजकुमारी से गजसिंह के एक लड़का पैदा हुआ। इससे गजसिंह की रानी को बहुत सम्मान मिला और सालिम सिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी के साथ गजसिंह का विवाह कराने के कारण अपने आपको बहुत गौरवान्वित समझा।

अध्याय-54
जैसलमेर की अन्य परिस्थितियाँ

पिछले परिच्छेदों में इस राज्य के राजनीतिक इतिहास का वर्णन किया गया है। जैसलमेर राज्य के इतिहास का यह अन्तिम परिच्छेद है। इसमें वहाँ की भौगोलिक प्रकृति, सामाजिक और कुछ दूसरी आवश्यक बातें लिखी गयी हैं, जिनके इस राज्य के इतिहास के साथ-साथ जानना और समझना आवश्यक है।

जैसलमेर राज्य की भूमि नीची-ऊँची है और राज्य की सम्पूर्ण भूमि पन्द्रह हजार वर्ग मील में है। इस राज्य के ग्रामों और नगरों की संख्या दो सौ पचास के करीब अनुमान की जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि उनकी संस्था तीन सौ से कम नहीं है। सन् 1815 ईसवी में जैसलमेर की जितनी जनसंख्या थी, उसकी तालिका इसी परिच्छेद के अन्त में दी गयी है।

इस राज्य की भूमि कुछ थल अथवा रोही और कुछ उजाड़ एवं जँगली है। जोधपुर की सीमा पर बसे हुए लोबार से सिन्धु की सीमा से खाड़ा तक इस राज्य की भूमि पूर्ण रूप से रेतीली और जलहीन है। इसके बीच के भागों में रेतीले स्तूप पाये जाते हैं और उसके कुछ भागों में जङ्गल है। लोबार से खाड़ा तक जो राज्य का हिस्सा है, उसने जैसलमेर राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया है। यह भूमि उपजाऊ नहीं है। उसमें कोई भी चीज पैदा नहीं होती। उत्तरी दिशा की भूमि भी उजाड़ है। दक्षिण में मगरा और रोई नाम के दो छोटे-छोटे पहाड़ हैं। उनके दृश्य देखने में बड़े सुहावने मालूम होते हैं। इन छोटे पर्वतों का रूप राज्य में सर्वत्र एक-सा नहीं है। उसके कुछ स्थानो के दृश्य ऐसे हैं, जो देखने मे पर्वत नहीं मालूम होते। जैसलमेर की राजधानी के मध्य भाग मे इन पर्वतो की ऊँचाई दो सौ पचास फुट है। उसको देखने से एक पर्वत का आभास होता है। भाटी लोगों की राजधानी पर्वत के बिल्कुल नीचे है और वहाँ से पन्द्रह, सोलह मील तक पर्वत की शाखायें फैली हुई हैं। एक शाखा जैसलमेर से पैंतीस मील उत्तर-पश्चिम की तरफ रामगढ़ तक चली गयी है और दूसरी पूर्व की तरफ से चलकर जोधपुर राज्य होती हुई पोकर्ण तक पहुँच गयी है और वहाँ से उत्तर की तरफ फलौदी तक गयी है। इस प्रकार राज्य के अनेक भागों में पर्वत की शाखायें फैली हुई हैं। पर्वत के ऊपर रेतीले पत्थर हैं। वहाँ पर गेरू मिट्टी पैदा होती है। जैसलमेर के निवासी अपने पहनने के कपड़ों को इसी गेरू मिट्टी मे रङ्गा करते हैं।

इस राज्य के पर्वत के ऊपर कोई चीज पैदा नहीं होती। वहाँ पर कोई भी वृक्ष नहीं है। उसके किसी-किसी स्थान पर वट के वृक्ष दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण जैसलमेर राज्य में ऐसी एक भी नदी नहीं है जो प्रवाहित होती रहती हो। पर्वत के रेतीले शिखरों से बरसात के दिनों में खारे पानी की कुछ धाराये निकलती है, जिनका पानी राज्य के स्थानो पर एकत्रित होकर छोटे

तालाबों का रूप धारण करता है। उन दिनों वहाँ के निवासी ऊँचे घेरे बनाकर उस पानी को रोकने की कोशिश करते हैं। अधिक वर्षा होने के कारण इन छोटे-छोटे तालाबों में इतना अधिक जल एकत्रित हो जाता है जो साल भर तक लोगों के काम आता है। इस प्रकार के तालाबों मे कानोदसर एक तालाब का नाम है। यह बहुत बड़ा है और कानोद से मोहनगढ़ तक अट्ठारह मील मे इस तालाब मे बराबर पानी बना रहता है। बरसात के दिनों मे इसमें इतना अधिक पानी एकत्रित हो जाता है कि उससे एक छोटी-सी नदी निकल कर पूर्व की तरफ तीस मील तक प्रवाहित होती है। इस तालाब से कुछ नमक भी पैदा होता है और उससे राज्य को कुछ अधिक लाभ भी हो जाता है।

खेतों की पैदावार-यद्यपि इस राज्य की भूमि रेतीली होने के कारण अनुपजाऊ है, परन्तु इस भूमि से पैदावार की शक्ति का बिल्कुल लोप नहीं हुआ। राज्य की कुछ भूमि कुछ अनाजों की पैदावार के लिए बड़ी अच्छी समझी जाती है और उसमे बाजरे की पैदावार अधिक होती है। वहॉ पर यदि कोई बाधा न पड़ी तो इतना अधिक बाजरा पैदा हो जाता है कि वहॉ के लोग तीन वर्ष तक उसे अपने खाने के काम में लेते हैं। इस राज्य मे सिंध से गेहूँ आता है।

यहॉ के किसानो को बाजरे की खेती करने में अधिक सुविधा रहती है। बाजरे की फसल मे दो-तीन बार अच्छा पानी हो जाने से भी उसकी पैदावार अच्छी हो जाती है। भारतवर्ष के अन्य स्थानो की अपेक्षा जैसलमेर का बाजरा अच्छा माना जाता है। वह स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है। फसल के दिनों में यहॉ पर बाजरे का भाव एक रुपये का डेढ़ मन तक साधारण तौर पर हो जाता है। परन्तु यह भाव फसल के बाद नहीं रहता। यहॉ पर ज्वार भी पैदा होती है। परन्तु उसकी पैदावार साधारण रहती है। पहाड़ी स्थानों के करीब कहीं-कहीं पर कुछ फलो के पेड पाये जाते हैं। वे खाने में स्वादिष्ट होते हैं और राज्य के बाहर भी भेजे जाते हैं। जैसलमेर की राजधानी के आस-पास के स्थानो में, जहॉ पर खेती में जल का उपयोग किया जा सकता है, अच्छे गेहूँ की पैदावार होती है। इस राज्य में चावल नही पैदा होता और आवश्यकता के लिये चावल सिंध से मंगाया जाता है।

राज्य में जहॉ की मिट्टी मुलायम होती है, वहॉ पर खेती के लिए साधारण हल का प्रयोग किया जाता है। इन हलों में बैल और ऊँट-दोनो काम करते हैं। एक हल में दो बैल अथवा दो ऊँट जोते जाते हैं।

शिल्प-कार्य-इस राज्य में शिल्प से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यावसायिक कार्य नहीं होता। कुछ लोग कपड़ा बुनने का काम करते है और उनसे जो कपड़ा तैयार होता है, वह बहुत साधारण होता है। कपडा बुनने के लिये उत्तम श्रेणी की रुई राज्य से बाहर चली जाती है। राज्य में भेडों के बालों से लोई, कम्बल और कुछ दूसरे कपड़े तैयार किये जाते है। यहॉ पर आचारी नाम की एक खान भी है। उसकी काली मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनाये जाते हैं और वे बर्तन खाने-पीने के काम में आते हैं।

वाणिज्य-जैसलमेर राज्य के निवासियों का कोई विशेष वाणिज्य नहीं है। भारत के दूसरे नगरों की जो चीजे सिंध की तरफ बिकने के लिए आती हैं, उनका रास्ता जैसलमेर होकर है। हैदराबाद, रोडी, भक्खर, शिकारपुर और कुछ दूसरे स्थानों से वाणिज्य की चीजें इस

तरह आती हैं। गङ्गा के निकटवर्ती नगरों और पंजाब के अनेक स्थानों से बहुत से पदार्थ विकने के लिये जैसलमेर आते हैं। दुआबे का नील, कोटा और मालवा की अफीम, बीकानेर का गुड़ और जयपुर की बनी हुई लोहे की चीजें जैसलमेर के रास्ते से शिकारपुर और सिंध के अनेक नगरो में जाती हैं। सिन्ध से अफ्रीका के बने हुए हाथी दाँत के अनेक पदार्थ, रंग, नारियल, अनेक औषधियाँ और चन्दन की लकड़ी राज्य में आती हैं।

मालगुजारी और कर- जैसलमेर राज्य की मालगुजारी पहले चार लाख रुपये से अधिक होती थी। इसमें तीन लाख रुपये के करीब भूमि की मालगुजारी होती थी। प्राचीन काल में वाणिज्य के शुल्क से राज्य को एक बंधी हुई आमदनी होती थी। परन्तु प्रधान मंत्री सालिम सिंह के अत्याचारों के कारण उस शुल्क के द्वारा होने वाली आमदनी बिल्कुल नष्ट हो गयी। किसी समय इस शुल्क के द्वारा राज्य को लगभग तीन लाख रुपये की आमदनी होती थी। इस शुल्क को वहाँ पर दान और इस शुल्क एकत्रित करने वालों को दानी कहा जाता था।

खेती का कर- राज्य के किसान खेती के द्वारा जितना अनाज पैदा करते हैं। उसका पाँचवाँ भाग और कुछ लोग सातवाँ भाग राजा को कर में देते हैं। यह कर राज्य की मालगुजारी के रूप में वसूल होता है। कुछ ऐसा भी नियम है कि किसान के खेतों में जो अनाज अधिक पैदा होता है, कृपक उसी अनाज को राज्य की मालगुजारी में देता है। किसानों के इस अनाज को पल्लीवाल ब्राह्मण और बनिया लोग नकद रुपये देकर खरीद लेते है। उसके बाद वह रुपया राज्य के खजाने में चला जाता है।

धुआँ कर- इस कर के द्वारा राज्य को एक बँधी हुई आमदनी होती है। यह धुआँ कर एक प्रकार का ईंधन कर अथवा भोजन कर है, जो प्रत्येक परिवार से वसूल किया जाता है। इस कर को थाली कर भी कहा जाता है। थाली का अभिप्राय उस वर्तन से है, जिसमें परोस कर भोजन किया जाता है। यह कर प्रत्येक परिवार को देना पड़ता है। इस कर से राज्य को वीस हजार रुपये की आमदनी होती है, जो एक प्रकार से निश्चित रहती है।

दण्ड कर-इस नाम से भी राज्य में एक कर वसूल किया जाता है। इसकी वसूली अनिश्चित रूप से होती है। इसका कोई बँधा हुआ नियम नहीं है। राजा को आवश्यकता होने पर राज्य में दण्ड़-कर बढ़ा दिया जाता है और उसकी आवश्यकता को इस कर से पूरा किया जाता है। इसलिए इस कर में न्याय को अधिक स्थान नहीं मिलता। जैसलमेर राज्य में दण्ड कर सन् 1774 ईसवी में प्रचलित हुआ था। उस समय इसके अतिरिक्त धुआँ अथवा थाली कर निर्धारित किया गया था।

व्याज पर रुपया देने वाले वैश्यों से भी कर लिया जाता था और उनसे राज्य को सत्ताईस सौ रुपयों की आमदनी होती थी। माहेश्वरी वैश्यों से यह कर आसानी से वसूल हो जाता था। परन्तु ओसवाल वैश्यों के साथ इस कर के वसूल करने में सख्ती करनी पड़ती था और इसके लिए उन्हें जेल भी भेजना पड़ता था। रावल मूलराज के समय इन वैश्यों ने इस कर की अदायगी के समय वड़ी कठोरता से काम लिया था और अत्यन्त विवश अवस्था में वे लोग इस कर को अदा करते थे। यों तो रावल मूलराज से राज्य में कोई प्रसन्न न था। लेकिन ओसवाल वैश्य अपना असंतोष प्रकट करने के लिए उस समय अपनी दुकान बन्द कर देते थे, जब

मूलराज अपनी राजधानी से नगर की सड़कों पर निकलता था। इन वैश्यों के असन्तोषपूर्ण व्यवहारों को मूलराज जानता था। उसने इन वैश्यों को प्रसन्न करने की कोशिशें भी की थीं। उसने इसके सम्बन्ध में निर्णय किया था कि अगर वैश्यों से बराबर धुआँ कर मिलता रहे तो दण्ड कर लेना बन्द कर दिया जाएगा। ओसवाल वैश्यों ने रावल मूलराज के इस निर्णय को स्वीकार कर लिया था। सम्वत् 1841 मे मूलराज ने ओसवाल वैश्यों से सत्ताईस हजार और सम्वत् 1852 में चालीस हजार रुपये ऋण में लिए थे। ये रुपये कुछ दिनों के बाद दे दिये गये थे।

गजसिंह को सिहासन पर बिठाने के बाद से प्रधानमंत्री सालिम सिंह ने दण्ड कर में चौदह लाख रुपये वसूल किये थे। इस राज्य में वर्द्धभान नाम का एक सम्पत्तिशाली आदमी रहता था। राजस्थान में उसकी बड़ी ख्याति थी। यह ख्याति उसके पूर्वजों के समय से चली आ रही थी। सालिम सिंह ने उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति लेकर अपने अधिकार में कर ली थी।

जैसलमेर राज्य के व्यय का उल्लेख इस प्रकार मिलता है, जो वहॉ के राजा का पारिवारिक व्यय समझा जाता था :-

बार	20000 रुपये
रोजगार सरदार	40000 रुपये
वैतनिक सेना में	75000 रुपये
राजा के निजी घोड़े, हाथी, ऊँट आदि	35000 रुपये
पॉच सौ अश्वारोही	60000 रुपये
रानियों का व्यय	15000 रुपये
तोशा खान	5000 रुपये
दान	5000 रुपये
पाकशाला	5000 रुपये
अतिथि	5000 रुपये
उत्सव	5000 रुपये
वार्षिक ऊँट व घोड़ों की खरीद	2000 रुपये
जोड़	**272000 रुपये**

जैसलमेर के राजा के व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक व्यय का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसमें बार के नाम से जो रुपये व्यय होते हैं, उसमें राजा के निजी अनुचर, शरीर रक्षक, खरीदे हुए गुलाम आदि सभी आ जाते हैं। वेतन में ये लोग खाने-पीने की सामग्री पाते हैं। इन लोगों की संख्या लगभग एक हजार तक होती है।

जो सामन्त राजधानी में रह कर राज्य का काम करते हैं, उनके सभी खर्चो का प्रबन्ध, जिसमें भोजन भी शामिल है, राज्य को करना पडता है और उसका नाम रोजगार सरदार है।

राज्य के मंत्रियों और अधिकारियों में कुछ लोगों को भूमि और कुछ लोगों को वाणिज्य शुल्क दिया जाता है। राज्य का व्यय किसी-किसी वर्ष में वाणिज्य शुल्क से पूरा हो जाता है जिसकी वार्षिक आय लगभग तीन लाख रुपये होती है।

राज्य की जातियाँ-इन दिनों में भाटी वंश के जो लोग जैसलमेर में रहते थे, वे सभी हिन्दू थे। लेकिन फूलरा और गाडा की तरफ रहने वाले भाटी लोगों ने बहुत पहले इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। राज्य के भाटी लोग अधिक साहसी और शूरवीर पाये जाते थे। चाहे वे राठौरों की तरह शक्तिशाली न हों और कछवाहों की तरह लम्बे-चौड़े शरीर न रखते हों, परन्तु शरीर के गठन में वे इन दोनों वंशों से अच्छे पाये जाते थे। राजस्थान के सभी राजपूतो के साथ भाटी राजपूतों के वैवाहिक सम्वन्ध होते थे।

वस्त्र-भाटी लोग अधिकतर छींट का सफेद जामा पहनते थे, जो उनकी रानों के नीचे घुटनों तक लम्बा होता था, कमर में कमरबन्द बाँधते थे। तंग मोरी का पाजामा पहनते थे। उनके पाजामें ऊपर से घेरदार होते थे। कुमकुम रंग की सिर पर पगड़ी बांधते थे। कमर में प्रत्येक भाटी एक कृपाण रखता था। उनके साथ ढाल और तलवार रहती थी। साधारण श्रेणी का आदमी धोती पहनता था और पगड़ी बाँधता था। भाटी लोगों की स्त्रियाँ आमतौर पर दस गज लम्बा रेशमी कपड़े का घाघरा पहनती है और प्रायः उसी कपड़े का उनका दुपट्टा होता हैं। उनकी स्त्रियों में हाथी दांत की चूड़ियाँ पहनने का अधिक रिवाज था। इन चूड़ियों से उनका पूरा हाथ ढका रहता था। एक जोड़ा चूड़ी का मूल्य सोलह रुपये से लेकर पैंतीस रुपये तक होता था। भाटी स्त्रियाँ हाथों में चाँदी के कड़े भी पहनती थीं। नीच जाति की स्त्रियाँ दूसरों के घरों पर काम करती थीं और वे खेती के कामों में भी वड़ा परिश्रम करती थीं।

अफीम- दूसरे राजपूतों की तरह भाटी राजपूत भी अफीम खाते था। अफीम को शरबत की तरह पीते थे और उसके वाद तम्वाकू खाते थे। अफीम खाने के बाद वे प्रायः नशे में वेहोश हो जाते थे।

पल्लीवाल ब्राह्मण-जैसलमेर में पल्लीवाल ब्राह्मण रहते थे और उनकी संख्या प्रायः भाटी लोगों के बराबर पायी जाती थी। पल्लीवाल ब्राह्मण आमतौर पर धनिक होते थे। राठौरों के द्वारा मारवाड़ की प्रतिष्ठा के पहले इन पल्लीवाल ब्राह्मणों के पूर्वज पाली अथवा पल्ली नामक स्थान पर रहा करते थे। बारहवीं शताब्दी में कन्नौज से निकलकर सिया जी ने मारवाड़ में पल्ली लोगों को पराजित किया था। परन्तु उसने इनका विनाश नहीं किया था। उसके बाद एक मुस्लिम बादशाह ने पल्ली पर आक्रमण किया और जीतकर उसने पल्ली वालों से कर मांगा। पल्ली वालों ने पराजित होने के वाद भी कर देने से इन्कार किया और कहा कि हम लोग ब्राह्मण हैं। आज तक किसी बादशाह और राजा ने हम लोगों से कर नहीं लिया।

इन ब्राह्मणों के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुनकर बादशाह को बहुत क्रोध आया। उसने पल्ली वालों के सरदारों को कैद करवा लिया। परन्तु उन लोगों ने इसके बाद भी कर नहीं दिया। इस दशा में बादशाह ने उनको पल्ली राज्य से निकाल दिया। उसके बाद ये लोग वहाँ से भागकर जैसलमेर आ गये और इनके बहुत से आदमी बीकानेर, धात और सिंध में जाकर रहने लगे। जैसलमेर में पल्लीवाल ब्राह्मण प्रसिद्ध व्यवसायी समझे जाते थे। वहाँ का व्यवसाय इन्हीं लोगों के हाथों में था। ये लोग व्यवसाय कुशल पाये जाते थे। राज्य के किसानों को ये लोग कर्ज में रुपये देते थे और वे लोग जो कुछ पैदा करते थे, उसे पल्लीवाल लोग सस्ते भावों में खरीदकर दूसरे राज्यों को भेज देते थे।

पोकर्ण ब्राह्मण-जैसलमेर मे इस नाम के ब्राह्मणों की एक जाति है। इनकी संख्या लगभग दो हजार होगी। मारवाड और बीकानेर में भी पोकर्ण ब्राह्मण रहते थे। ये लोग खेती करते थे और पशु पालते थे। इन लोगों ने पुष्कर में जाकर वहाँ की झील को खोदने का काम किया था। उस समय से ये लोग पोकर्ण ब्राह्मण के स्थान पर पुष्कर ब्राह्मण कहे जाने लगे। जैसलमेर राज्य मे जाटों के सिवा दूसरी अनेक जातियाँ रहती थीं, जिनका विस्तार के साथ वर्णन आगामी मरुभूमि के परिच्छेद मे किया गया है। अन्य राज्यो की तरह यहाँ के जाट भी खेती का काम करते थे।

जैसलमेर की मरुभूमि में वहाँ के राजा का एक दुर्ग है, जो दो सौ पचास फीट ऊँचे शिखर पर बना हुआ है। उस दुर्ग के चारों तरफ एक बहुत मजबूत दीवार का घेरा है। दुर्ग में चार विशाल द्वार हैं। परन्तु उस दुर्ग मे तोपखाने नहीं है। दुर्ग के उत्तर की तरफ राजधानी है और सम्पूर्ण राजधानी तीन मील लम्बी एक ऊँची दीवार से घिरी हुई है। उसमें तीन बड़े द्वार और दो छोटे दरवाजे हैं।

राजधानी मे व्यवसायियो के कुछ अच्छे मकान थे। परन्तु साधारण घरों और झोपड़ियों की संख्या अधिक है। राजा और उसके परिवार के रहने के लिए एक वैभवशाली महल भी है। सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार होने के दिनो मे आवश्यकता के समय राजा पाँच हजार पैदल और एक हजार अश्वारोही सेना का प्रबन्ध कर सकता था। लेकिन अप्रिय व्यवहारों और अत्याचार के दिनों में जैसा कि रावल मूलराज के समय से प्रधानमंत्री ने कर रखा था- राज्य की रक्षा के लिए इससे आधी सेना का प्रबन्ध हो सकना भी सन्देहपूर्ण मालूम होता है।

जैसलमेर का इतिहास अब समाप्त हो रहा है। इसके अंत मे पाठकों की जानकारी के लिए राज्य की जनसंख्या दी गयी है। यह जनसंख्या सन् 1815 ईसवी के अनुसार है। इसके पहले राज्य की जनसंख्या अधिक रही होगी, यह बात आसानी के साथ कही जा सकती है। क्योंकि राजनीतिक पतन के साथ-साथ जनसंख्या का लगातार कम होना स्वाभाविक होता है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री के अत्याचारों से राज्य की जनसंख्या भयानक रूप से कम हो गयी थी।

कुल जनसख्या की तालिका मे जो दो सौ पच्चीस गाँवों की जनसंख्या शामिल की गयी है। उसमे छोटे-से छोटे गाँवो की जनसंख्या भी शामिल है। इनमें कुछ गाँव तो ऐसे हैं कि उनमें घरों की संख्या चार से अधिक नही है। उनमे रहने वालो को भी राज्य की इस जनसंख्या में जोड लिया गया है।

जैसलमेर राज्य की जनसंख्या की तालिका

नगर	शासन	घर	जनसंख्या	विशेष विवरण
जैसलमेर	राजधानी	7000	35000	
बीकमपुर	सामन्त शासन	500	2000	24 ग्राम पृथक् निवासी
सेरूरो	सामन्त शासन	300	1200	केलण भट्टी रायलोत
नचना	सामन्त शासन	400	1600	सामन्त

नगर	शासन	घर	जनसंख्या	विशेष विवरण
कटोरी	सामन्त शासन	300	1200	
कबाह	सामन्त शासन	300	1200	
कोलदरू	सामन्त शासन	200	800	
सत्तोह	सामन्त शासन	300	1200	
जिञ्जियाली	सामन्त शासन	300	1200	अधिकारी प्रधान सामन्त
देवीकोट	राजा का शासन	200	800	
भाप	राजा का शासन	200	800	
बलाना	सामन्त शासन	150	600	
सतियाहसोह	सामन्त शासन	100	400	
वारू	सामन्त शासन	200	800	नवासी मानदेवोत
चान	सामन्त शासन	200	800	
लोहरकी	सामन्त शासन	150	600	रावलोत वंश
नानतल्लो	सामन्त शासन	150	600	रावलोत वंश
लहती	सामन्त शासन	300	1200	रावलोत वंश
डॉगरी	सामन्त शासन	150	600	रावलोत वंश
बीजोराय	राज्य शासन	200	800	
मुन्दाई	राज्य शासन	200	800	
रामगढ़	राज्य शासन	200	800	
वरसलपुर	सामन्त शासन	200	800	
गिराजसर	सामन्त शासन	150	600	
			56400	
225 गॉवों की		18000		
		जोड़–	**74400**	

मरुभूमि का इतिहास

मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मन्डोर

मरुभूमि मे मन्डोर से आगे जाने का मुझे अवसर नहीं मिला। मन्डोर नगर मरुभूमि की पुरानी राजधानी है। हिसार का प्राचीन दुर्ग इसके उत्तर पश्चिम में है और आवू नहरवाला एवं भुज दक्षिण में है। मरुभूमि का वर्णन करने से पहले मैं इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि अनुसंधान करने वाली मेरी समिति ने प्रत्येक दिशा में पहुँचकर उसकी ऐतिहासिक सामग्री को प्राप्त करने की चेष्टा की है और इस कार्य में जो चीजें प्राप्त हुई हैं, उनमें आवश्यक सामग्री का अभाव न था, फिर भी बड़े परिश्रम के साथ मैंने तैयार करके जो कुछ पाठकों के सामने उपस्थित किया है, वह काफी नहीं है। मैं समझता हूँ कि भविष्य में जो विद्वान इसके सम्बन्ध में खोज का कार्य करेंगे, मेरी यह सामग्री उनके लिए सहायक सिद्ध हो सकेगी। इस कार्य के सम्बन्ध में यात्रा के दिनों में मिली हुई सामग्री का मैंने पूरा भर लाभ उठाया है।* यद्यपि उससे ऐतिहासिक तथ्य निकालने का कार्य सरल न था, फिर भी मैंने अपने प्रयत्न में कुछ वाकी नहीं रखा। इस सामग्री के साथ-साथ भटनेर से अमरकोट और आबू से आरोर तक के ऐसे बहुत से निवासी मेरी समिति के द्वारा मेरे पास आये हैं, जिन्होंने अपनी जानकारी से मेरी बड़ी सहायता की है। इतना सब होने पर भी मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इस विपय में जो कुछ उपस्थित कर रहा हूँ, पर्याप्त नहीं है। मुझे केवल इतना संतोप है कि मेरे इस कार्य से अभाव के दिनो में लोगों को बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी।

ऊपर लिखी हुई बातों को स्पष्ट करने के बाद मैंने मरुभूमि का वर्णन विस्तार के साथ लिखने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि यदि इस कार्य में मेरे साथ कुछ अभाव न होते तो यहाँ पर जो मैंने वर्णन किया है, वह इस पुस्तक के भूगोल सम्बन्धी वर्णन में सम्मिलित कर दिया जाता। कुछ लोगों की दृष्टि में यह वर्णन ऐतिहासिक महत्व न रखे यह सम्भव हो सकता है। परन्तु यहाँ की मरुभूमि की जानकारी के सम्बन्ध में इसका एक विशेप

---

* मध्य और पश्चिमी भारत के साथ-साथ इस देश के दूसरे मार्गों के सम्बन्ध में जो पुस्तके मुझे मिली हैं, वे ग्यारह भागों में विभाजित हैं। उनकी सहायता से यहाँ के राज्यों के मार्गों पर प्रामाणिक नक्शे तैयार किये जा सकते हैं। ऐसा करने का मेरा इरादा भी था। परन्तु लगातार विगड़ने वाला मेरा स्वास्थ्य मेरे इस कार्य में बाधक हुआ है। इसलिए जो पुस्तकें इस विपय मे मुझे प्राप्त हुई हैं वे अव कम्पनी के दफ्तर में रख दी गयी हैं। यदि बुद्धिमानी और परिश्रम से काम लिया गया तो भारत का प्रामाणिक नक्शा तैयार करने मे इन पुस्तकों से वहुत वडी सहायता मिलेगी।

स्थान होगा, मैं इस बात पर विश्वास करता हूँ। निरीक्षण और अध्ययन के बाद मैंने जो परिणाम निकाले हैं उनका समर्थन अँग्रेजी राजदूत मिस्टर एलफिन्स्टन के उन कार्यो के द्वारा होता है जो उसने काबुल जाते हुए अपनी प्राप्त सामग्री के आधार पर किया है। इस समर्थन से मुझे संतोप मिला है।

यहाँ पर मुझे यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक मालूम होता है कि मरुभूमि के वर्णन में कुछ बातें ऐसी भी आ गयी हैं जिनका वर्णन बीकानेर के इतिहास में किया जा चुका है। मरुभूमि होने के कारण उस राज्य के इतिहास में उनका उल्लेख करना भी आवश्यक था और वह उल्लेख आवश्यकतानुसार यहॉ पर भी जरूरी हो गया है। यद्यपि ऐसे स्थलों के वर्णन मे मैंने बड़ी सावधानी से काम लिया है।

मरुभूमि मरुस्थली का दूसरा नाम है। इसका अर्थ यह है कि वह भूमि अथवा स्थल जो बालुकामय हो। थल अथवा स्थल प्राय: सूखी भूमि को कहते हैं। काबुल का थल, गोगा का थल और खेती करने के योग्य थल, इस प्रकार आमतौर से थल अथवा स्थल के प्रयोग होते हैं। प्राय: कहा जाता है जल और स्थल अर्थात् पानी और सूखी जमीन। बाघ के बदन पर जिस प्रकार लम्बी काली धारियॉ होती हैं उसी प्रकार मरुभूमि में रेत की पंक्तियाँ-सी बन जाती हैं और इस प्रकार की विस्तृत भूमि पर अगणित गॉवों और नगरों की आबादी दिखाई देती है। मरूभूमि के उत्तर में एक लम्बा-चौड़ा मैदान है। दक्षिण में नमक का एक विशाल दलदल रिन और कोलीवरी है। पूर्व में अरावली और पश्चिम में सिंधु नदी की घाटी है। पूर्व और पश्चिम की सीमायें अधिक विशेपता रखती हैं। क्योंकि पूर्व में अरावली पर्वत ने रेत के मार्ग को न रोका होता तो मध्य भारत भी बालुकामय होता। अरावली पर्वत की दीर्घाकार श्रेणी समुद्र के किनारे से दिल्ली तक चली गयी है। फिर भी बीच में जहाँ कहीं रास्ता मिल गया है वहीं से रेतीली भूमि प्रवेश कर आगे बढ़ गयी है और पर्वत को पार कर उसने अपना एक स्थान बना लिया है। जिन लोगों ने टोंक के पास बनास को पार किया है, जहाँ पर कोसो की दूरी में केवल रेत ही रेत दिखाई देती है उनकी समझ में यह आसानी से आ जाएगा।

मरुभूमि का विस्तार समुद्र की तरह अनन्त प्रतीत होता है जिसके ओर-छोर का कहीं पता नहीं चलता। हैदराबाद से ओच तक उत्तर की तरफ चलने पर बहुत दूर तक पूर्व की ओर बालू के विशाल दुर्ग दिखाई देते हें, जिनकी ऊँचाई नदी की सतह से लगभग दो सौ फीट तक है। बालू के इन ऊॅचे ओर विस्तृत दुर्गो को देखकर मनुष्य अनेक प्रकार की बाते सोच सकता है।

प्राचीन काल मे प्रमार वंश के राजा इस मरुभूमि में शासन करते थे। इसका समर्थन करते हुए भट्ट ग्रन्थों में नौ दुर्गो का उल्लेख किया गया हैं। पूगल का दुर्ग उत्तर में हे। मन्डोर मरुभूमि के बीच में है। आबू, खेरालू और परकर दक्षिण में। चोटन, अमरकोट, आरोर ओर लुद्रवा पश्चिम में है। मरुभूमि के इन नौ दुर्गो के अधिकारियों मे से राजा पर आक्रमण करने की शक्ति किसी में न थी। वहाँ की प्राचीन ऐतिहासिक बातो की जानकारी किसी को नहीं हे। जिन ग्रन्थो में उसके उल्लेख पाये जाते हैं, उनमें भी इस प्रकार की बातों का एक बहुत बडा अभाव मिलता है। वहॉ के बडे-बड़े नगरों के नामों को भी लोग नहीं जानते। लुद्रवा और

आरोर के प्राचीन नगरों के अस्तित्व अब तक मौजूद हैं। फिर भी उनके नामों को वही लोग मुश्किल से जानते है, जिन्होंने मरुभूमि की यात्रा की है और वहाँ की भौगोलिक जानकारी प्राप्त की है। चोटन और खेरालू आदि नगरों के नाम भी नक्शो में नहीं पाये जाते। भट्ट ग्रन्थों के छन्दों मे इस प्रकार के नामों का संकेत पाने पर हमें प्रोत्साहन मिला और हमने उनके सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की। उस खोज में जो मिला, उसे हमने यहाँ पर स्पष्ट रूप मे लिखने की कोशिश की है।

मरुभूमि की समस्त प्राकृतिक और अप्राकृतिक बातो का उल्लेख करना यहां पर हमारा उद्देश्य है। उसके साथ उसके प्रसिद्ध नगरों का भी हमने वर्णन किया हैं। फिर चाहे वे वर्तमान मे मौजूद हो अथवा नष्ट हो गये हो। इसके पश्चात् जैसलमेर आने-जाने वाले रास्तों का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण बीकानेर और अरावली पर्वत के उत्तर में बसा हुआ शेखावाटी का हिस्सा भी इस मरुभूमि मे सम्मिलित हैं। कानोड नगर से मरुभूमि की शुरूआत होती है। इस बात को मिस्टर एलफिन्स्टन ने भी स्वीकार किया है। दिल्ली से कानोड नगर की दूरी कम्पनी के राज्य मे लगभग एक सौ मील थी। उसका वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। उसके सम्बन्ध में इतना ही जान लेना जरूरी है कि भूमि रेतीली होने पर भी खेती के लिये अच्छी है।

कानोड पहुँचने के बाद हमको मरुभूमि का दृश्य देखने को मिला। उसको देखने की मुझे पहले से ही उत्सुकता थी। कानोड से तीन मील के पहले से ही बालू की पहाड़ियाँ दिखायी दे रही थीं। दूर से वे झाड़ियो से घिरी हुई मालूम होती थीं। लेकिन आगे बढ़ने पर समुद्र की लहरों के समान वे दिखायी देने लगीं। कहीं-कहीं पर जमीन की सतह पर बालू के ऊँचे ढेर दिखायी पडते थे। बालू के ऊँचे टीलो पर जो रास्ते बने थे, वे पशुओ के चलने के कारण मजबूत हो गये थे। मार्ग से इधर-उधर हटने पर हमारे घोड़े घुटनों तक बालू में धंस जाते थे। मरुभूमि का यह पहला दृश्य था, जो हमारे सामने आया। सिंगाना और झुंझुनूं से चूरू का रास्ता गया था। हम लोगो ने वहाँ पहुँचकर बीकानेर में प्रवेश किया। शेखावाटी के सम्बन्ध में मिस्टर एलफिन्स्टन ने लिखा है- ''शेखावाटी को मरुभूमि मे शामिल करने पर जब उसकी तुलना दो सौ अस्सी मील लम्बे मैदान के साथ-जो कि पश्चिमी सीमा से बहावलपुर तक हैं- की जाती है तो वह अपने स्वत्व को खोता हुआ मालूम होता है। इसलिए कि इस विस्तृत मैदान के अंतिम एक सौ मील मे कहीं पर कोई मनुष्य दिखायी नहीं देता और न कहीं पर कोई वृक्ष तथा जल ही मिलता है।''

शेखावाटी से पूगल तक हम लोगों का मार्ग बालू की पहाड़ियो और धसकती हुई रेत की घाटियो से होकर था। ये पहाडियाँ कुछ इस प्रकार थीं, जैसे समुद्र के किनारे कभी-कभी आँधी के द्वारा पानी की ऊँची दीवारें पहाडियों के समान खडी हो जाती हैं और जिनकी ऊँचाई बीस फीट से लेकर एक सौ फीट तक होती है। वहाँ के ये रास्ते सदा एक से नहीं रहते, समय-समय पर उनमें अन्तर पड जाते हैं। गर्मी के दिनो में इन रास्तों पर चलना बहुत मुश्किल हो जाता है। उड़ती हुई बालू के कारण ये रास्ते उन दिनो में अत्यन्त भयानक हो जाते हैं। मैंने सर्दी के दिनो मे वहाँ की यात्रा की थी। इसलिए उन दिनों मे यह कठिनाई अधिक भयानक न

थी। उन दिनों में वहाँ फोक, बबूल और बट के जो वृक्ष मिलते थे, उनके ऊपर हरी-हरी घास पैदा हो गयी थी। उस घास को दूर से देखने पर मालूम होता था कि उन वृक्षों पर हरी चद्दरें ढक दी गयी हैं।

बालू की इन भयानक पहाड़ियों के बीच में कहीं-कहीं पर गाँव दिखायी देते थे। उन गाँवों के घरों की दीवारें छोटी-छोटी थीं और घरों के नाम पर घास-फूस की झोंपड़ियों के सिवा और कुछ न था। भाषा की सादगी और घटनाओं के यथार्थ वर्णन में एलफिन्स्टन साहब ने बड़ी ख्याति पायी है। मरुभूमि के उत्तरी भाग का उसने जो वर्णन किया है उसी के आधार पर हम आगे वर्णन करने की कोशिश करेंगे। यहाँ पर मन्डोर के स्थान पर जैसलमेर को मरुस्थली की राजधानी मान लेना अधिक उपयोगी मालूम होता है। यहाँ की उपजाऊ भूमि में ऐसे बहुत-से स्थान हैं, जिनमें से कितने ही 40 मील तक की चौड़ाई में हैं। वहाँ पर न तो किसी मनुष्य के दर्शन होते हैं और न वहाँ पर खाने-पीने की कोई चीज ही मिलती है। जैसलमेर से मारवाड़ पहुँचकर और लूनी को पार न करके जालौर तथा सेवांची का वर्णन करेंगे। पारकर और बीरवाह चौहान राजाओं की अधीनता में है। राणा उन राजाओं की उपाधि है। जिस पहाड़ी पर जैसलमेर बसा हुआ है, उसका नाम त्रिकूट है। इस पर्वत के पश्चिम की ओर सिंधु नदी के नीले जल पर दृष्टिपात करने से हैदराबाद से ओच तक रेतीली पहाड़ियों पर कहीं-कहीं आसानी के साथ जल मिल सकता है। वहाँ छोटे-छोटे गाँवों की आबादी मिलती है। चार सौ से पाँच सौ मील लम्बे और एक सौ मील के चौड़े सम्पूर्ण राज्य में झोंपडे वाले छोटे-छोटे गाँव हैं। उनमें मरुभूमि को जोतकर उसमें खेती करते है। वहाँ गडरिये अपनी भेड़ों को चराया करते हैं और उपजाऊ भूमि पर ऊँटों की एक लम्बी श्रेणी मिलती हैं। उसे इस देश में काफिला कहा जाता है। इन ऊँटों पर बहुत से लोग मिलकर चलते हैं, इसलिए कि उनको रास्ते में लुटेरों का भय रहता है। जो लोग इस प्रकार रवाना होते हैं, उनको खाने-पीने का बडा कष्ट रहता है। यदि उनको दो दिनों में एक बार भी खाने के लिए किसी प्रकार की सामग्री और के लिए स्वादहीन झरनों का जल मिल जाता है तो वे लोग अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं और भगवान को धन्यवाद देते हैं।

सम्वत् 1100 सन् 1044 ईसवी में दूसौज जैसलमेर के राजसिंहासन पर बैठा था। वह हमीर का समकालीन था। घग्गर नदी वलूक से निकलकर हाँसी हिसार मे प्रवाहित होती है। वह किसी समय भटनेर की दीवारों के नीचे बहती थी। भटनेर के बाद घग्गर नदी रंगमहल, बुल्लर और फूदल के समतल मैदानों से होकर बहती हुई आगे जिस तरफ जाती है, उसके सम्बन्ध में दो प्रकार के मत हैं। किसी का कहना है कि वह बहती हुई ओच के नीचे चली गयी है। लेकिन अबूबरकत के अनुसार-जिसे सन् 1809 ईसवी में अनुसंधान के लिए भेजा था और जिसने शाहगढ़ के समीप नदी के सूखे मार्ग को जो सागर कहलाता है, पार किया था-जैसलमेर कथनानुसार वह और रोरी भक्खर के बीच में प्रवाहित होती है। ऐसा मालूम होता है कि सगर नदी घग्गर नदी में मिल गयी और उसके बाद सगर का नाम मिटकर केवल घग्गर नाम प्रचलित हो गया। छोटी नदियाँ जब बड़ी नदियों से मिल जाती हैं तो उन सब की यही दशा होती है।

मरुभूमि मे लूनी नदी की विशेषता है। इसी नदी को खारी नदी भी कहते हैं। वह अपनी अनेक सहायक नदियो के साथ अरावली पर्वत की झीलो और झरनो से निकलती है। मारवाड मे उपजाऊ भूमि और मरुभूमि के बीच मे लूनी नदी प्रवाहित होती है। मारवाड़ के आगे वह चौहानों के थल विभाग की तरफ बढती है और चौहान वंश के राजपूतों का विभाजन करती है। इस नदी के द्वारा उनकी सीमा का निर्माण होता है। उसका पूर्वी भाग शिववाह नामक राज्य के नाम से है और पश्चिमी भाग पारकर के नाम से। उसके दक्षिण की तरफ अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं। नमक का लम्बा चौड़ा दलदल-जो चौड़ाई में डेढ सौ मील से अधिक है-विशेष तौर पर लूनी नदी के द्वारा बना है।

यहाँ पर थल और रो शब्दो से पाठकों को परिचित हो जाना चाहिए। इसलिए कि दोनों शब्दों के प्रयोग यहाँ पर कई बार किये गये हैं। उनकी जानकारी न होने से समझने में बड़ी कठिनाई पैदा होगी। थल सूखी भूमि का उपयोगी भाग कहलाता है। उसमे विस्तृत मैदान भी सम्मिलित है। रो भूमि मरुभूमि का वह भाग है, जिसमे कुछ घासो के सिवा और कोई चीज पैदा नहीं होती। उसे मरुभूमि की बंजर जमीन कह सकते हैं।

लूनी नदी का थल-यह थल नदी के दोनों किनारो पर है, जिसमें जालौर और उसके अधीनस्थ राज्य बसे हुए हैं। नदी के दक्षिण भाग को इसमे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। फिर भी उस पर बसे हुए राज्य के साथ इतना अधिक निकटवर्ती सम्बन्ध है कि उसका वर्णन हमे बहुत आवश्यक मालूम होता है।

जालौर-यह राज्य मारवाड़ के श्रेष्ठ भागों में से एक है। सुक्री और खारी नदियाँ जालौर को सेयाञ्ची से पृथक करती हैं। बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ अरावली और आबू पर्वत से निकलकर मारवाड़ के इस भाग में बहती हुई उसके तीन सौ साठ नगरों और गाँवों की भूमि को उपजाऊ बनाती है। उनसे मारवाड़ को मालगुजारी मिलती है। मरुभूमि के नौ दुर्गो में से जालौर एक प्रसिद्ध दुर्ग था। उन दिनो मे मरुभूमि में प्रमार वशी राजपूतों का शासन था। प्रमार राजाओं के हाथ से जालौर कब निकल गया, इसका वर्णन करने के लिए हमारे पास कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। बहुत दिनो तक यह जालौर चौहान राजपूतो के अधिकार मे रहा और चौहानों ने सन् 1301 ईसवी में जो युद्ध अलाउद्दीन के साथ किया था, उसका वर्णन फरिश्ता और भाटो के ग्रन्थों में मिला है। चौहानों की यह शाखा मल्लिनी के नाम से मशहूर थी। हाडौती के साथ चौहान राजपूतों के राज्य का वह भाग शामिल था, जो हथराज कहलाता था। उसकी राजधानी जूनाचोटन थी। अजमेर से पारकर तक लूनी नदी के किनारे की समस्त भूमि मे जो गॉव और नगर बसे थे, उनमे इस वंश का राज्य था। इससे जाहिर होता है कि चौहानो ने प्रमार राजाओ का सर्वनाश करके खारी नदी के किनारे पारकर तक अपना अधिकार कर लिया था।

सोनगिरि अथवा स्वर्णगिरि इस दुर्ग का पुराना नाम है। चौहान राजाओं ने अपने वंश मल्लिनी का नाम बदलकर सोनगिरि के नाम पर सोनीगुर रख लिया था। यहाँ पर उन्होने माली के देवता मल्लिनाथ का मन्दिर बनवाया था। सिया जी के वंशजो के आने के समय तक वहाँ पर चौहानों का शासन कायम रहा। उनके आने पर सोनगिरि दुर्ग का नाम जालौर रखा गया।

सिया जी के वंशजों के आने पर सानीगुरी का शासन वहाँ पर समाप्त हो गया और वे लोग निर्वासित अवस्था में चित्तलवाना में जाकर रहने लगे।

भद्राजून, महेवा, जैसोल और सिन्द्री की वड़ी-वड़ी जागीरों के अतिरिक्त सेवांची, मीनमल, साँचोर और मोरसेन के छोटे-छोटे जिले जालौर राज्य में शामिल हैं। उनकी भूमि उपजाऊ है, पानी की सुविधायें हैं और उन सब की लम्वाई-चौडाई नव्वे मील है। वहाँ पर अच्छे प्रवन्ध की आवश्यकता है, जिससे वहाँ की भूमि अधिक उपयोगी बन सके। यदि ऐसा किया जा सके तो वहाँ की आमदनी से जोधपुर के राजा का निजी खर्च भली प्रकार चल सकता है। परन्तु राज्य की ओर से अच्छा प्रवन्ध न होने के कारण वहाँ पर अराजकता वढ़ गयी है, राज्य की ओर से जो कर्मचारी प्रबन्ध करते हें, वे वहुत अधिक वेईमान हो गये हैं और पहाड़ी जातियों के लुटेरों के कारण वहाँ की भयानक अवनति हुई हैं। इन सभी जागीरो और छोटे-छोटे जिलों में अनेक पहाड़ियाँ हैं। उन्हीं पहाड़ियों में से एक पर दुर्ग वना हुआ है। इन पहाड़ियों का सिलसिला आवू पर्वत तक पाया जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के जंगली वृक्ष पाये जाते हैं।

जालौर का दुर्ग मारवाड़ की दक्षिणी सीमा के ऊपर वहुत-कुछ सहायक सिद्ध हुआ है। जिस पहाड़ी पर यह दुर्ग वना है, वह उत्तर की ओर सिवाना तक चली गई है और उसकी ऊँचाई तीन सौ से चार सौ फीट तक है। दुर्ग की बुर्जो पर तोपें रखी हुई हैं। इस दुर्ग के चार विशाल द्वार हैं। नगर की तरफ का द्वार सूरजमेल कहलाता है। उत्तर-पश्चिम का द्वार वालपोल कहलाता है। वहाँ पर जैनियों के गुरू पारसनाथ का मन्दिर है। दुर्ग के भीतर बहुत-से कुए और दो बड़ी-बड़ी बावडियाँ हैं। उत्तर की पहाड़ी नदियों को बॉधकर छोटी-सी झील वनायी गयी हें। परन्तु उसका एकत्रित जल मुश्किल से छः महीने तक काम देता हैं। नगर मे तीन हजार सत्रह घर हैं। यह नगर दुर्ग के उत्तर और पूर्व की ओर वसा हुआ हैं। पूर्व की तरफ लगभग एक मील की लम्वाई में सुक्री नाम की नदी प्रवाहित होती हैं। रक्षा के लिए इस नगर के चारों तरफ मजबूत दीवार वनी हुई है और एक दुर्ग है, जिस पर तोपें रखी रहती हैं। नगर में अनेक जातियों के लोग रहते हैं। आश्चर्य की वात यह है कि इस बड़ी आवादी में राजपूतों के केवल पॉच परिवार रहते हैं। सन् 1813 में मेरी एक समिति ने यहाँ की जो मनुष्य गणना की थी वह इस प्रकार है-

जाति	घरों की संख्या
माली	140
तेली	100
कुम्हार	60
ठठेरा	30
धोबी	20
व्यवसायी	1156
मुसलमान	936

खटीक	20
नाई	16
कुलाल	20
जुलाहा	100
रेशम बनाने वाले जुलाहा	15
जैन पुरोहित	2
ब्राह्मण	100
गूजर	40
राजपूत	5
भोजक	20
मीणा	60
भील	15
हलवाई	8
लुहार, बढ़ई	14
मनिहार	4

लूनी और मुक्री के बीच का भाग सेवाञ्ची कहलाता है। जिस पहाड़ी पर जालौर नगर बसा हुआ है, उसी पहाड़ी की श्रेणी में एक शिखर पर सिवाना नाम का एक दुर्ग बना है। वहीं पर इस राज्य की राजधानी है। इसके सम्बन्ध में वर्णन करने के लिए कोई नयी सामग्री हमारे सामने नहीं है। प्राचीन काल में यह नागौर मे होने के कारण मारवाड़ के युवराज की जागीर थी लेकिन धौंकल सिंह को सिंहासन पर बिठाने के बाद इसे मारवाड़ राज्य में मिला लिया गया।

माचोल और मोरसेन के राजा जालौर के अधीन हैं। मीणा लोगो की लूट और उनके अत्याचारों से सुरक्षित रहने के लिए माचोल के दक्षिण पूर्व मे एक दुर्ग बना हुआ है। मोरसेन की जागीर जालौर की पश्चिमी सीमा पर है। वहाँ पर भी एक दुर्ग है। उस नगर में पाँच सौ घरों की आबादी है। दक्षिण की तरफ बीनमल और साँचोर दो बड़े उपभाग है। ये दोनों मिलकर लगभग एक प्रान्त के बराबर हो जाते हैं। प्रत्येक उपभाग में आठ ग्राम हैं। कच्छ और गुजरात को जाने वाले मार्गों पर होने के कारण ये दोनों नगर बहुत पहले से व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। बीनमल में पन्द्रह सौ घरों का अनुमान किया जाता है और साँचोर में वहाँ से लगभग आधे घरों की आबादी है। लेकिन यहाँ पर धनी और महाजन अधिक रहा करते थे। परन्तु रक्षा का कोई उपाय न होने के कारण इन दोनों नगरों को बहुत बड़ी क्षति पहुँची है। वहाँ पर वाराह का एक मन्दिर है। यह मन्दिर शूकरावतार के सिद्धान्त पर बनवाया गया था और उस मन्दिर में शूकर की मूर्ति पत्थर में खुदवाकर रखवाई गयी है। साँचोर नगर साँचोरा नामक ब्राह्मणो की जन्मभूमि है, इस प्रकार लोगों का विश्वास है कि ये ब्राह्मण मन्दिरों के पुरोहित नियुक्त किये जाते हैं।

भद्राजून–यह नगर जालौर की एक प्रसिद्ध जागीर है। इस नगर में पाँच सौ घरों की आवादी है। उनमें एक चोथाई मीणाओं की वस्ती है। यह नगर पहाड़ियों के बीच में है और उनमें एक दुर्ग वना हुआ है। वहाँ का सरदार जोधावंशी है। उसकी जागीर जालौर से पाली तक चली गयी है।

महेवा–यह नगर लूनी नदी के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। राठौरों ने यहाँ आकर पहले पहल जिनको विजय किया था, उनमें से यह एक है। यह नगर सेवॉची में शामिल है और यहॉ से सेवाँची को कर मिला करता है। महेवा के सरदार की उपाधि रावल है, वह जैसोल में रहा करता है। वर्तमान राजा का नाम सूरतसिंह है। उसके सम्बन्धी सूरजमल की उपाधि भी रावल है। जैसोल से बाईस मील दक्षिण में लूनी नदी के तट पर सिन्द्री का दुर्ग और वहॉ की जागीर उसके अधिकार में है। उन दोनों में आपसी द्वेप रहता है। इसीलिए उन दोनों में से कोई भी राजधानी महेवा में नहीं रहा करता। आपसी द्वेप के कारण उनके चरित्रों का इतना पतन हुआ है कि वे डकैती जैसे कार्यो को करने भी अपना अपमान नहीं समझते। सन् 1813 ई. तक उनके जीवन की जो परिस्थितियॉ थीं, उनका मैंने यहाँ पर उल्लेख किया है। सम्भव है, भविष्य में उनके जीवन का सुधार हो। खारी नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि उनके द्वारा खेती के काम मे आती है और वहाँ पर गेहूँ, ज्वार और वाजरा अच्छा पैदा होता है।

वालोतरा और तिलवारा यहाँ के दो प्रसिद्ध नगर हैं। वर्प मे एक बार यहॉ पर मेला लगा करता है। यह मेला राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। यह वालोतरा का मेला कहलाता है। लेकिन वह लूनी नदी के एक द्वीप के करीब तिलवारा में लगता है। यह तिलवारा महेवा वालों के एक सम्बन्धी की जागीर में है और बालोतरा मारवाड़ के प्रधान सामन्त की अहवा जागीर का अंग है।

□

अध्याय-55
मरुभूमि के चौहान व उनका राज्य

चौहान राज्य राजस्थान के दूरवर्ती एक कोने पर बसा हुआ है। मरुभूमि की अन्यान्य रियासतों में चौहानों का राज्य अनेक अच्छाइयों और विशाल होने के कारण साम्राज्य मालूम होता है। यह चौहान राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसके उत्तर-पूर्व में मारवाड़ राज्य की भूमि है और दक्षिण-पूर्व मे कोलीवाड़ा है। दक्षिण में नमक की झील है और पश्चिमी सीमा पर रेगिस्तान है। चौहान राज्य दो भागों में विभाजित है। पूर्वी चौहान राज्य बीरबाह के नाम से प्रसिद्ध है और पश्चिमी भाग लूनी नदी की दूसरी तरफ है। मरुभूमि के इन चौहानों को अपनी प्राचीनता का बड़ा गर्व है और अपने वंश की श्रेष्ठता पर वे अभिमान करते है। वे अजमेर के मानकराय और बीसलदेव को एवं दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज को अपना पूर्वज बतलाते हैं। लेकिन जितने भी प्राचीन ग्रन्थ हमे प्राप्त हो सके हैं, उनके आधार पर हम सहज ही यह कह सकते हैं कि चौहानों की उत्पत्ति सोढ़ा और प्रमार वंश के राजपूतों के बाद में हुई है। क्योकि सिकन्दर के सिन्धु नदी की तरफ आने के दिनों में उन वंशों के लोग शासन कर रहे थे।

आठवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक चौहान राज्य अजमेर से सिन्ध की सीमा तक फैला हुआ था। उसकी राजधानियॉ अजमेर, नादोल, जालौर, सिरोही और जूनाचोटन थी। यों तो साधारण तौर पर वे सभी स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करते थे। परन्तु उनको अजमेर की अधीनता कुछ बातों में स्वीकार करनी पड़ती थी। इसके लिए हमारे पास ऐतिहासिक आधार है। गजनी के महमूद से लेकर अलाउद्दीन द्वितीय और सिकन्दर के समय तक जो मुस्लिम इतिहास लिखे गये हैं, उन सब में इन चौहान राज्यों के वर्णन पाये जाते हैं। अपने बारहवें आक्रमण में मुलतान से अजमेर की तरफ जाते हुए महमूद नादोल के पास से गुजरा था। उसने वहाँ पर लूटमार भी की थी। महमूद के आक्रमण की कथायें अब तक जूनाचोटन के लोगों में कही जाती हैं। वहॉ के लोग उन सुरंगों को अब तक जाहिर किया करते हैं, जिनके द्वारा वहॉ का पहाड़ी दुर्ग उड़ाया गया था।

इतिहास की घटनायें जो हमें जानने को मिलती हैं, उनमें कितनी ही बातें स्पष्ट नहीं हो पातीं। इसलिए उनका स्पष्टीकरण करना हमारे लिए कठिन हो जाता है और हमें उन बातों को यों ही छोड़ देना पड़ता है। नादोल की लूट और जूनाचोटन के दुर्ग के पतन के सम्बन्ध में विस्तार के साथ में लिखने के लिए हमारे पास सामग्री नहीं है। लेकिन इतिहास से यह बात साफ मालूम होती है कि अपने अन्तिम आक्रमण में गजनी के महमूद ने सिन्ध होकर लौटने का इरादा किया था और उस समय सम्पूर्ण सेना के साथ उसके सर्वनाश की परिस्थितियाँ पैदा हो गयी थीं। ऐसा मालूम होता है कि जूनाचोटन पर उसके आक्रमण के

कारण उसके सामने संकट पैदा हो गया था। काफिरों को मुसलमान बनाना उसका मुख्य कार्य था। सम्भव है, उन दिनो में नहरवल्ल का निर्वासित राजवंश खेरधर की रेतीली पहाड़ियों के बीच में रहने वाले चौहानों के आश्रय में आ गया हो। पारकर के राजा ने बीरबाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। यद्यपि वह बीरबाह के राजा को कर में कुछ देता था। उन दोनों की उपाधि राणा थी और दोनों ने वीरता तथा बहादुरी के लिए ख्याति पायी थी। इस राज्य के थल की लम्बाई-चौड़ाई इसलिए लिखना अनावश्यक मालूम होता है कि वह सदा घटती-बढ़ती रहती है। लेकिन इस राज्य के प्रसिद्ध नगरों का वर्णन करना आवश्यक है। इससे वहाॅ के मनुष्यों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि चौहान राज्य दो भागों में बँटा हुआ है। प्रथम भाग में सूई बाह, धरणीधर, बड्कसिर, थेराड, हितीगाँव और चीतलवाना प्रसिद्ध नगर हैं। राज्य के दोनों भागों के आस-पास बबूल तथा कॉटेदार पेड़ों का परकोटा है। इसको वहाॅ की भाषा में काठ का कोट कहा जाता है। यह परकोटा शत्रु के आक्रमण को रोकने मे बहुत बड़ा काम करता है। अपने रेतीले राज्य से राणा नारायण राव की वार्षिक आमदनी तीन लाख रुपये है। इसमें से तृतीयांश अर्थात् एक लाख रुपये उसे जोधपुर को कर के रूप में देना पड़ता है। परन्तु यह बिना युद्ध के जोधपुर को कभी नहीं मिला, इस राज्य की जो भूमि लूनी नदी के जल के द्वारा सीची जाती है, उसमें अनाज की पैदावार अच्छी होती है। गरमी के दिनो मे उस नदी का जल सूख जाता है। उस दशा में नदी के जल-मार्ग में कुएँ खोदकर पानी निकाला जाता है और उसके द्वारा जल के अभाव की पूर्ति की जाती है। यही अवस्था कोहरी नदी में होती है। मैंने ग्वालियर के जिले में देखा है कि लोग कोहरी नदी के जल-मार्ग को खोजकर पानी निकाल लेते हैं और उससे अपना काम चलाते हैं।

पारकर की राजधानी नगर अथवा सरनगर है। वहाँ पर पन्द्रह सौ घरों की आबादी है। सन् 1814 ई. में इन घरों की आबादी लगभग आधी रह गयी थी। नगर के दक्षिण-पश्चिम की तरफ एक छोटा-सा पहाड़ी दुर्ग है। उसकी ऊँचाई दो सौ फीट कही जाती है। कुएँ और वावड़ी के बीच नदी के प्रवाह का मार्ग है। बीरबाह के राजा की तरह पारकर के राजा की उपाधि भी राणा है। हमें यह नहीं मालूम कि उनके आपसी सम्बन्ध क्या हैं। फिर भी इस बात के प्रमाण हमारे पास हैं कि दोनों एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। दोनों एक ही वंश के हैं। सरनगर के मुकाबिले में बक्सर दूसरी श्रेणी का है। कुछ समय पहले यह एक वैभवशाली नगर था। परन्तु सन् 1814 ईसवी में इसके घरों की संख्या केवल तीन सौ साठ थी। नगर के राजा का लड़का यहीं पर रहा करता है और अपने पिता के समान वह राणा की उपाधि का प्रयोग करता है। यहाँ पर हम छोटे-छोटे नगरों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते।

थेराड लूनी के चौहानों का दूसरा भाग है, जिसका प्रधान नगर उसी नाम से सूई बाह के उत्तर की तरफ कुछ कोसों की दूरी पर है और वह पारकर की तरह नाम मात्र के लिए परतन्त्र है।

चौहान राज्य की आकृति-जैसा कि ऊपर लिखा गया है, यहाॅ की भूमि ऊसर और पहाड़ी है। वह जूनाचोटन से जैसलमेर तक फैली हुई है। वह बड्कसर के पश्चिम की तरफ

चार मील की दूरी पर पायी जाती है। लूनी नदी के दोनों किनारों की भूमि मे गेहूँ और दूसरे अनाजों की पैदावार होती है। बीरबाह में अनेक थल हैं। फिर भी सूई से सत्रह कोस तक और खास तौर पर राधूपुर की ओर एक लम्बा मैदान है। लूनी के पार के थल ऊँचे टीलों के रूप में पाये जाते हैं। जूनाचोटन से बक्सर तक सम्पूर्ण भाग ऊसर है और उसमें रेत की बहुत-सी ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं।

पानी और पैदावार-समस्त चौहान राज्य में और विशेपकर उस हिस्से मे जहाँ आबादी अच्छी है, भूमि से साधारण गहराई पर पानी मिल जाता है। कुओ की गहराई दस से बीस पुरुपा तक है। मरुभूमि में पुरुपा की एक माप है। औसत दर्जे का एक पुरुप खड़ा होकर यदि अपने दोनों हाथो को सिर के ऊपर सीधा करे तो उसके पैरों से लेकर हाथों की उँगलियों तक एक पुरुपा कहलाता है। पुरुप की इस प्रकार ऊँचाई के आधार पर इस माप का नाम पुरुपा पड़ा है। दूसरे शब्दो में इस गहराई को लगभग पैंसठ से एक सौ तीस फीट तक कहा जा सकता है। यह गहराई धात के कुओं के मुकाविले में कुछ भी नहीं है। क्योकि वहाँ के कुओं की गहराई कही-कहीं पर लगभग सात सौ फीट तक पायी जाती है।

लूनी नदी के किनारे की भूमि में गेहूँ, तिल, मूँग, मोठ, दालें और बाजरा अच्छा पैदा होता है। परन्तु यहाँ के लोग लूट-मार के अधिक अभ्यासी हैं और उन्होंने इसे अपना एक व्यवसाय बना लिया है। जो भूमि खेती के लिए अच्छी नहीं होती, उसे ऊँटों के चरने के लिए छोड़ दी जाती है। ऊँट अधिकतर कांटेदार झाड़ियाँ खाकर रहा करते हैं। यहां भेड़ें और बकरियाँ अधिक सख्या मे पायी जाती हैं। बैल और घोड़े तिलवारा के मेले मे बिकने के लिए आते हैं।

निवासी-सिकन्दर के शत्रु मल्लि अथवा पृथ्वीराज के वंशजों के नाम का हम यहाँ वर्णन करेंगे। जोधपुर के लोगों के द्वारा यहाँ के लोगों को जो अत्याचार सहने पड़ते थे, उनका बदला लेने के लिए इन लोगों ने लूट-मार को अपना एक व्यवसाय बना लिया था और उसके लिए ये लोग सिन्ध गुजरात और मारवाड तक जाते थे। चौहान राज्य मे प्रायः सभी जातियाँ पायी जाती हैं। परन्तु उनमें सहरी, खोसा, कोली और भील जाति के लोग शक्तिशाली हैं और इन्हीं जातियों के लोग अधिकतर लूट-मार का कार्य करते हैं। यहाँ का शासन चौहानों के हाथों में है परन्तु प्रत्येक गाँव के रहने वालो में उनकी संख्या बहुत कम पायी जाती है। कोली, भील और पिथिल लोगों की संख्या अधिक है। पिथिल लोगों की गणना नीच जातियो में है परन्तु वे व्यवसायी हैं। खेती के साथ-साथ वे गोंद का व्यवसाय करते हैं। अनेक प्रकार के वृक्षो में से वे लोग गोंद एकत्रित करते है और फिर उसे वे बेच डालते है। अन्य राजपूतों की तरह चौहान लोग जनेऊ नहीं पहनते। ब्राह्मणों के सम्पर्क से जिन लोगों ने अनेक व्यावहारिक प्रणालियों को अपना लिया है, उनकी तरह चौहानों के जीवन की परिस्थितियाँ नहीं है। आचार-विचार सम्बन्धी बहुत-सी बातों में चौहान भिन्न पाये जाते हैं। पूर्वी चौहानो की अपेक्षा यहाँ के चौहान नैतिक गुणों में श्रेष्ठ हैं। उनमें बाल-हत्या के अपराध नहीं पाये जाते हैं। खाने-पीने के विचार में वे लोग बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते हैं। वे किसी प्रकार के पाखण्ड को अपने जीवन में आश्रय नहीं देते। वे चौका लगाकर भोजन बनाने का काम करते हैं। बचा हुआ भोजन वे लोग रख देते हैं और उसके बाद वे उसे खाते हैं। इम प्रकार के विचारो में यहाँ के चौहान बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते हैं।

कोली और भील–कोली जाति के लोग यहाँ अधिक पाये जाते हैं। उनकी गणना अछूतों में है। वे लोग मनुष्य के अधिकारों से वञ्चित कर दिये गये हैं। हिन्दू समाज में उनका स्थान अत्यन्त घृणापूर्ण है। ऊँची जाति के हिन्दू लोग पशुओं से भी गिरा हुआ व्यवहार उनके साथ करते हैं। कोली जाति के लोग सभी के घरों का भोजन करते हैं और मुर्दा खाने में भी वे लोग परहेज नहीं करते। इतना सब होने पर भी वे अपनी जाति को राजपूतों के साथ जोड़ते हैं। ये लोग चौहान कोली, राठौर कोली, परिहार कोली आदि नामों से अपना परिचय देते हैं। कपडा बुनना कोली जाति के लोगों का प्रधान व्यवसाय हैं और आमतौर पर भारतवर्ष के कहीं के भी कोली यह कार्य अधिक करते हैं।

भील लोगों की परिस्थितियाँ भी कोली लोगों की तरह है। बल्कि बहुत-सी बातों में ये लोग कोलियों से भी पतित पाये जाते हैं। भील लोग सभी प्रकार के कीड़े, लोमड़ी, सियार, चूहे और साँपों को खाते हैं इसलिए कि जिस देवी की वे पूजा करते हैं, उसको ऊँट और मुर्गे का माँस चढ़ाया जाता है। उनके खाने-पीने की आदतें पतन की चरम सीमा तक पहुँच गयी है। कोलियों और भीलों का वैवाहिक सम्बन्ध नहीं है और वे एक दूसरे के साथ भोजन करने में परहेज करते हैं, परन्तु बहुत कम।

पिथिल लोग यहाँ पर खेती का कार्य करते हैं। उनकी मर्यादा वैश्यों की तरह है। वे गायों और बैलों के साथ भेड़ें पालने का काम करते हैं। इनकी संख्या कोलियों और भीलों की तरह अधिक हैं। भारत के कुर्मी और मालवा तथा दक्षिण के कोलम्वी लोगों के साथ पिथिल लोगों की तुलना की जाती है। यहाँ पर रेवारी जाति की तरह और भी अनेक जातियाँ रहती हैं। रेवारी लोग ऊँटों को पालने का कार्य करते हैं।

धात और ओमुरसुमरा राजस्थान की मरुभूमि को छोड़कर अब हम सिन्ध की मरुभूमि अथवा उस भूमि का वर्णन करेंगे, जो पश्चिम में राजस्थान की सीमा नदी की घाटी तक और उत्तर की तरफ दाऊदपोतरा से रिन के किनारे बुलारी तक फैली हुई है। इस भूमि की लम्बाई लगभग दो सौ मील है और चौड़ाई लगभग अस्सी मील। यहाँ की सम्पूर्ण भूमि थल के रूप में है। उसमें गाँव बहुत कम पाये जाते हैं। यह बात जरूर है कि वहाँ गड़रियों के कुछ छोटे-छोटे गाँव मिलते हैं। लेकिन नक्शे में उनका कहीं स्थान नहीं है। इसका कारण है कि इन छोटे-छोटे गाँवों में रहने वाले गड़रिये बहुत आसानी के साथ अपने स्थानों को बदल देते हैं और नये स्थानों पर पहुँचकर वे रहने लगते हैं। उनके स्थान परिवर्तन का कारण पानी की असुविधा है। जहाँ इस प्रकार की वे सुविधा पाते हैं, अपने पुराने स्थानों को छोड़कर वे उन स्थानों पर पहुँच जाते हैं। उनकी ये सुविधायें स्थायी रूप से बहुत दिनों तक काम नहीं देती। इसलिए उनको फिर स्थान बदल देना पड़ता है। जहाँ पर ये लोग रहते हैं, वह समस्त भूमि एक विशाल रेगिस्तान के रूप में है और पचास-पचास मील तक पानी नहीं मिलता। इसलिए बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी के साथ इस भूमि की यात्रा की जाती है। बालू की पहाड़ियाँ छोटे-छोटे पहाड़ों के रूप में मिलती हैं। यहाँ पर जो कुए मिलते भी हैं, वे बहुत लम्बे-गहरे होते हैं। पानी के अभाव में न जाने कितने मनुष्य तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। इन कुओं की गहराई सत्तर से पाँच सौ फीट तक पायी जाती है। इसको जानकर अनुमान लगाया जा सकता है कि मरू

चार मील की दूरी पर पायी जाती है। लूनी नदी के दोनों किनारों की भूमि में गेहूँ और दूसरे अनाजों की पैदावार होती है। वीरवाह में अनेक थल हैं। फिर भी सूई से सत्रह कोस तक और खास तौर पर राधूपुर की ओर एक लम्बा मैदान है। लूनी के पार के थल ऊँचे टीलों के रूप में पाये जाते हैं। जूनाचोटन से वक्सर तक सम्पूर्ण भाग ऊसर है और उसमें रेत की वहुत-सी ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं।

पानी और पैदावार-समस्त चौहान राज्य में और विशेषकर उस हिस्से में जहाँ आवादी अच्छी है, भूमि से साधारण गहराई पर पानी मिल जाता है। कुओं की गहराई दस से वीस पुरुपा तक है। मरुभूमि में पुरुपा की एक माप है। औसत दर्जे का एक पुरुप खड़ा होकर यदि अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर सीधा करे तो उसके पैरों से लेकर हाथों की उँगलियों तक एक पुरुपा कहलाता है। पुरुप की इस प्रकार ऊँचाई के आधार पर इस माप का नाम पुरुपा पड़ा है। दूसरे शब्दों में इस गहराई को लगभग पेंसठ से एक सौ तीस फीट तक कहा जा सकता है। यह गहराई धात के कुओं के मुकाविले में कुछ भी नहीं है। क्योंकि वहाँ के कुओं की गहराई कहीं-कहीं पर लगभग सात सौ फीट तक पायी जाती है।

लूनी नदी के किनारे की भूमि में गेहूँ, तिल, मूँग, मोठ, दालें और वाजरा अच्छा पैदा होता है। परन्तु यहाँ के लोग लूट-मार के अधिक अभ्यासी हैं और उन्होंने इसे अपना एक व्यवसाय वना लिया है। जो भूमि खेती के लिए अच्छी नहीं होती, उसे ऊँटों के चरने के लिए छोड़ दी जाती है। ऊँट अधिकतर कांटेदार झाड़ियाँ खाकर रहा करते हैं। यहां भेड़ें और वकरियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। वैल और घोड़े तिलवारा के मेले में विकने के लिए आते हैं।

निवासी-सिकन्दर के शत्रु मल्लि अथवा पृथ्वीराज के वंशजों के नाम का हम यहाँ वर्णन करेंगे। जोधपुर के लोगों के द्वारा यहाँ के लोगों को जो अत्याचार सहने पड़ते थे, उनका वदला लेने के लिए इन लोगों ने लूट-मार को अपना एक व्यवसाय वना लिया था और उसके लिए ये लोग सिन्ध गुजरात और मारवाड़ तक जाते थे। चौहान राज्य मे प्रायः सभी जातियाँ पायी जाती हैं। परन्तु उनमें सहरी, खोसा, कोली और भील जाति के लोग शक्तिशाली हैं और इन्हीं जातियों के लोग अधिकतर लूट-मार का कार्य करते हैं। यहाँ का शासन चौहानों के हाथों में है परन्तु प्रत्येक गाँव के रहने वालों में उनकी संख्या वहुत कम पायी जाती है। कोली, भील और पिथिल लोगों की संख्या अधिक है। पिथिल लोगों की गणना नीच जातियों में है परन्तु वे व्यवसायी हैं। खेती के साथ-साथ वे गोंद का व्यवसाय करते हैं। अनेक प्रकार के वृक्षों में से वे लोग गोंद एकत्रित करते हैं और फिर उसे वे वेच डालते हैं। अन्य राजपूतों की तरह चौहान लोग जनेऊ नहीं पहनते। ब्राह्मणों के सम्पर्क से जिन लोगों ने अनेक व्यावहारिक प्रणालियों को अपना लिया है, उनकी तरह चौहानों के जीवन की परिस्थितियाँ नहीं हैं। आचार-विचार सम्वन्धी वहुत-सी वातों में चौहान भिन्न पाये जाते हैं। पूर्वी चौहानों की अपेक्षा यहाँ के चौहान नैतिक गुणों में श्रेप्ठ हैं। उनमें वाल-हत्या के अपराध नहीं पाये जाते हैं। खाने-पीने के विचार में वे लोग वड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते हैं। वे किसी प्रकार के पाखण्ड को अपने जीवन में आश्रय नहीं देते। वे चौका लगाकर भोजन वनाने का काम करते हैं। वचा हुआ भोजन वे लोग रख देते हैं और उसके वाद वे उसे खाते हैं। इस प्रकार के विचारों में यहाँ के चौहान वड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते हैं।

कोली और भील-कोली जाति के लोग यहाँ अधिक पाये जाते हैं। उनकी गणना अछूतों में है। वे लोग मनुष्य के अधिकारों से वञ्चित कर दिये गये हैं। हिन्दू समाज में उनका स्थान अत्यन्त घृणापूर्ण है। ऊँची जाति के हिन्दू लोग पशुओं से भी गिरा हुआ व्यवहार उनके साथ करते हैं। कोली जाति के लोग सभी के घरों का भोजन करते हैं और मुर्दा खाने में भी वे लोग परहेज नहीं करते। इतना सब होने पर भी वे अपनी जाति को राजपूतों के साथ जोड़ते हैं। ये लोग चौहान कोली, राठौर कोली, परिहार कोली आदि नामों से अपना परिचय देते हैं। कपड़ा बुनना कोली जाति के लोगों का प्रधान व्यवसाय है और आमतौर पर भारतवर्ष के कहीं के भी कोली यह कार्य अधिक करते हैं।

भील लोगों की परिस्थितियाँ भी कोली लोगों की तरह है। बल्कि बहुत-सी बातों में ये लोग कोलियों से भी पतित पाये जाते हैं। भील लोग सभी प्रकार के कीड़े, लोमड़ी, सियार, चूहे और साँपों को खाते हैं इसलिए कि जिस देवी की वे पूजा करते हैं, उसको ऊँट और मुर्गे का माँस चढ़ाया जाता है। उनके खाने-पीने की आदतें पतन की चरम सीमा तक पहुँच गयी है। कोलियों और भीलों का वैवाहिक सम्बन्ध नहीं है और वे एक दूसरे के साथ भोजन करने में परहेज करते हैं, परन्तु बहुत कम।

पिथिल लोग यहाँ पर खेती का कार्य करते हैं। उनकी मर्यादा वैश्यों की तरह है। वे गायों और बैलों के साथ भेड़ें पालने का काम करते हैं। इनकी संख्या कोलियों और भीलों की तरह अधिक हैं। भारत के कुर्मी और मालवा तथा दक्षिण के कोलम्वी लोगों के साथ पिथिल लोगों की तुलना की जाती है। यहाँ पर रेवारी जाति की तरह और भी अनेक जातियाँ रहती हैं। रेवारी लोग ऊँटों को पालने का कार्य करते हैं।

धात और ओमुरसुमरा राजस्थान की मरुभूमि को छोड़कर अव हम सिन्ध की मरुभूमि अथवा उस भूमि का वर्णन करेंगे, जो पश्चिम में राजस्थान की सीमा नदी की घाटी तक और उत्तर की तरफ दाऊदपोतरा से रिन के किनारे वुलारी तक फैली हुई है। इस भूमि की लम्बाई लगभग दो सौ मील है और चौड़ाई लगभग अस्सी मील। यहाँ की सम्पूर्ण भूमि थल के रूप में है। उसमें गाँव बहुत कम पाये जाते हैं। यह बात जरूर है कि वहाँ गड़रियों के कुछ छोटे-छोटे गाँव मिलते हैं। लेकिन नक्शे में उनका कहीं स्थान नहीं है। इसका कारण है कि इन छोटे-छोटे गाँवों में रहने वाले गड़रिये बहुत आसानी के साथ अपने स्थानों को वदल देते हैं और नये स्थानों पर पहुँचकर वे रहने लगते हैं। उनके स्थान परिवर्तन का कारण पानी की असुविधा है। जहाँ इस प्रकार की वे सुविधा पाते हैं, अपने पुराने स्थानों को छोड़कर वे उन स्थानो पर पहुँच जाते हैं। उनकी ये सुविधायें स्थायी रूप से बहुत दिनों तक काम नहीं देती। इसलिए उनको फिर स्थान वदल देना पड़ता है। जहाँ पर ये लोग रहते हैं, वह समस्त भूमि एक विशाल रेगिस्तान के रूप में है और पचास-पचास मील तक पानी नहीं मिलता। इसलिए बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी के साथ इस भूमि की यात्रा की जाती है। बालू की पहाड़ियाँ छोटे-छोटे पहाड़ों के रूप में मिलती हैं। यहाँ पर जो कुए मिलते भी हैं, वे बहुत लम्बे-गहरे होते हैं। पानी के अभाव में न जाने कितने मनुष्य तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। इन कुओं की गहराई सत्तर से पाँच सौ फीट तक पायी जाती है। इसको जानकर अनुमान लगाया जा सकता है कि मरू

प्रदेश में यात्रा करना कितना संकटमय होता है। जयसिंह देसिर का एक कुआ पचास पुरुषा गहराई में जाकर पानी देता है। इसी प्रकार धात की बस्ती का कुआ और गिरप कुआ साठ पुरुपा के नीचे पानी देता है। हमीर देवरा के कुए में सत्तर और जिझियाली के कुए में पछत्तर से अस्सी पुरुपा तक की गहराई में पानी मिलता है।

पराजित होकर सम्राट हुमायूँ के भागने का इतिहासकार फरिश्ता ने जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त रोमाञ्चकारी है उसने लिखा है- "सम्राट हुमायूँ अपने साथ के लोगों को लेकर मरुभूमि की तरफ भागा। वहॉ पर सैकड़ों कोस की लम्बाई-चौड़ाई में केवल बालू थी। उस मरुभूमि में पानी न मिलने के कारण सम्राट और उसके साथियो को भयानक कष्ट हुआ। कितने ही लोग प्यास के कारण त्राहि-त्राहि करने लगे और कुछ लोग जमीन पर गिर गये। तीन दिनों तक लगातार पानी की एक बूँद से भेट न हुई। चौथे दिन उनको एक कुआ मिला। उसका पानी बहुत गहराई में था। पानी का बरतन बैलों के द्वारा खींचा जाता था और जो आदमी बैलो के द्वारा उस पानी को खींचता था, उस बरतन के ऊपर आ जाने पर ढोल बजाकर लोगों को सूचना दी जाती थी। उस कुए के पास पहुँचने पर सम्राट और उसके साथी प्यास के कारण अधीर हो उठे थे और बिना किसी नियंत्रण के उनका प्रत्येक आदमी पानी के लिए चिल्ला रहा था। जल का बरतन ऊपर आते ही सबके सब एक साथ पानी पीने की चेष्टा करने लगे। कुए के ऊपर पानी के पहुँचते ही एक साथ बहुत से आदमी उस पर टूट पडे। उस समय तक पानी का बरतन कुए के ऊपर निकालकर रखा भी न गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत-से आदमी कुए में गिर गये। इसके दूसरे दिन जो लोग कुए में गिरने से बच गये थे, उनको पानी का एक छोटा-सा नाला मिला। साथ के ऊँटों को पानी पीने के लिए उस नाले की तरफ कर दिया गया। बिना पानी के उन ऊँटों के कई दिन बीत गये थे। इसलिए अधिक पानी पी जाने के कारण उनमें से कुछ ऊँट मर गये। इस प्रकार अकथनीय कष्टों को सहता हुआ सम्राट हुमायूँ अपने बचे हुये साथियो के साथ अमरकोट पहुँचा। वहॉ के राजा ने इस प्रकार की विपद मे पड़े हुये सम्राट हुमायूँ की सभी प्रकार से सहायता की।

इन कष्टों के साथ सम्राट हुमायूँ जिस राज्य में पहुँचा था, उसकी राजधानी अमरकोट में थी और इसी अमरकोट में हुमायूँ के लड़के अकबर ने जन्म लिया। अकबर जब अपनी माता के गर्भ मे था, उसी समय से उसके जीवन में भयानक विपदायें आरम्भ हुईं। जन्म लेने के बाद उसको और उसके माता-पिता को संसार में टिकने के लिए कहीं स्थान न मिल रहा था। ये विपदायें सम्राट हुमायूँ और अकबर के जीवन में बहुत दिनों तक रही। उनके फलस्वरूप अकबर भारतवर्ष का महान् सम्राट बना।"

दुर्भाग्य के दिनों में मरुभूमि की तरफ भागकर और किसी प्रकार प्राणों की रक्षा करके सम्राट हुमायूँ ने जहॉ आश्रय लिया था, उसका राजा नाम मात्र के लिए अमरकोट का शासक था और चार गॉवों का अधिकारी था। अमरकोट धात-राज्य की राजधानी है। यह राज्य प्राचीनकाल से प्रमार राजपूतों के अधिकार में चला आ रहा था। वहाँ पर सोढ, ओमरूसुमुरा जाति के लोग अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इधर बहुत दिनों से ओमरूसुमुरा को मिलाकर इस राज्य के उत्तरी थल का नाम ओमुर सुमरा हो गया है और अब इसी नाम से प्रसिद्ध है।

आरोर के सम्बन्ध में हम पहले वर्णन कर चुके हैं। यह नगर सिन्धु नदी के दूसरी तरफ बेखर से छः मील पूर्व की ओर नक्शे में देखा जाता है और यह ओमुरसुमरा के अन्तर्गत था। प्राचीनकाल में ओमुरसुमरा की क्या दशा थी, यह हमें नहीं मालूम। पाँच सौ वर्ष पहले सुमरा जाति के राजपूतों का यहाँ पर शासन था। उनके निर्वल पड़ जाने पर और विरोधी सिन्ध तुम्भा के शक्तिशाली हो जाने पर राज्य की परिस्थितियाँ वदलीं। परन्तु सिंध तुम्भा के राजाओं को भाटों लोगों के द्वारा पराजित होना पड़ा। उसके वाद इस राज्य का नाम भाटी पोह हुआ। परन्तु उसके प्राचीन नाम ओमुरसुमरा को अव तक लोग भूल नहीं सके। वहाँ पर गड़रियों के छोटे-छोटे गाँव अव तक पाये जाते हें। यहाँ के राज्यों में मध्यवर्ती और पश्चिमी राजस्थान के भट्टी लोगों, चावड़ा लोगों, सोलंकियों, गहिलोतों और राठौरों की वस्तियाँ पायी जाती हैं।

आरोर को कुछ लोग अलोर भी कहते हैं। अवुल फजल ने लिखा है-"मरुभूमि के नौ भागों में आरोर एक भाग था और वहाँ पर प्रमार वंशी राजपूत शासन करते थे। इन प्रमारों की कई शाखायें हैं और सोढा वंश भी प्रमारों की शाखा है। वेखर अथवा मानसूरा का टापू आरोर से कुछ मील पश्चिम की तरफ है और वह सोदगी की राजधानी कही जाती है।" सोदगी और सोढा एक ही नाम है। सोढा राजवंश के पूर्वज रेगिस्तान पर शासन करते थे, उन्हीं दिनों में भाटी लोग उत्तर से यहाँ पर आये थे। उनके आने के बाद का उल्लेख ग्रन्थों में कुछ नहीं मिलता। इस दशा में फरिश्ता और अवुल फजल ने जो कुछ लिखा है, उसका हमें आधार लेना पड़ता है। अवुल फजल ने लिखा है-

"प्राचीनकाल में सेहरीस नामक नरेश आरोर में राज्य करता था। उसके राज्य का विस्तार उत्तर में काश्मीर, पश्चिम में तेहरान और दक्षिण में समुद्र तक था। ईरानी फौज ने इस राज्य पर आक्रमण किया था। उस युद्ध में आरोर का राजा मारा गया और ईरानी फौज लूटमार करने के वाद वापस चली गयी। आरोर के राजा के मारे जाने पर रायसा अथवा सोढा वहाँ के राज सिंहासन पर वैठा। इस वंश के लोग वलीद के खलीफा के समय तक वहाँ पर शासन करते रहे। उन्हीं दिनों में ईराक के गवर्नर होजोज ने सन् 717 ईसवी में मोहम्मद विन कासिम को रवाना किया। उसने हिन्दू राजा दाहिर को पराजित किया। दाहिर उस युद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् अनसेरी का वंश वहाँ पर राज्य करता रहा। उसके पश्चात् सुमरा वंश का शासन चला और आखिर मे समावंश के लोगों ने वहाँ पर शासन किया। उन लोगों ने अपने आपको जमशेद का वंशज कह कर जाम की उपाधि प्राप्त की।"

इसी प्रकार का वर्णन करते हुए फरिश्ता ने लिखा है- "मुहम्मद विन कासिम के मर जाने के वाद अनसेरी वंश के लोगों ने सिन्ध में अपना राज्य कायम किया। उसके पश्चात् जमींदारों ने उस राज्य को छीनकर अपने अधिकार में कर लिया और पाँच सौ वर्षों तक वे लोग शासन करते रहे। सुमरा लोगों ने सुमना वंश के राज्य को नष्ट कर दिया। सुमना लोगों के सरदार की पदवी जाम थी। अवुल फजल ने इस वंश का नाम सुम के स्थान पर समा लिखा है। साहना वंश की उत्पत्ति अनैतिक मानी जाती है। उस वंश के लोग सिन्ध में वेखर और तत्ता के वीच में रहा करते थे। वे लोग अपने आपको जमशेद का वंशज कहते हें। खोज करने के वाद मालूम होता है कि सुमना, सेमना और सामा एक ही वंश का नाम है और वह वास्तव में

प्रसिद्ध यदुवंश की सुमा शाखा है। इस शाखा को भिन्न-भिन्न नामो से लिखा गया है। उसकी राजधानी सुमा का कोट अथवा नगरी थी। महेवा परिवार के एक सम्बन्धी की जागीर तिलवारा है और बालोतरा मारवाड़ के प्रधान सामन्त अहवा की जागीर में थी। बालोतरा और सिन्द्री की प्रसिद्धि कुछ दूसरी बातो मे है। इन दोनों पर प्रसिद्ध दुर्गादास का अधिकार था। मरुभूमि में दुर्गादास का नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है उसके वंशजो का अधिकार अब तक सिन्द्री नगर पर पाया जाता है। महेवा जागीर की वार्षिक आय पचास हजार रुपये मानी जाती है। वहाँ का सरदार कभी-कभी अपने दरबार मे आता है। राज्य पर जब कोई संकट आता है अथवा असाधारण प्रसंग पैदा होता है तो उसकी सूचना उसे दी जाती है और उस समय उसका आना आवश्यक होता है।"

इन्दुवती-यहाँ पर इन्दु जाति के राजपूतों की बस्ती है और उनका वंश परिहारों की एक प्रसिद्ध शाखा है। इन्दुवती बालोतरा के उत्तर की तरफ जोधपुर की राजधानी से पश्चिम की तरफ है। इसके उत्तर की तरफ गोगा का थल पाया जाता है। इन्दुवती का थल लगभग तीन कोस के घेरे मे है।

गोगादेव का थल-गोगा का थल चौहानों के इतिहास से विशेष सम्बन्ध रखता है। यह थल इन्दुवती के उत्तर की तरफ है। इन दोनो की परिस्थितियाँ बिल्कुल एक हैं। यहाँ पर रेत के टीले बहुत ऊँचे पाये जाते हैं। आबादी बहुत कम है। बहुत थोडे से गाँव उसमें पाये जाते है। भूमि की सतह से पानी बहुत गहराई मे मिलता है। यहाँ पर जंगल अधिक हैं। जो लोग यहाँ रहते हैं, वे बरसात के पानी को टैंकों में एकत्रित करते हैं और बडी सावधानी से उसे खर्च करते हैं। उस पानी के सड़ जाने पर जो लोग उसे पीने के काम में लाते हैं, उनकी आँखों मे रतौंधी की बीमारी हो जाती है।×

तिरूरो का थल गोगादेव और जैसलमेर की सीमाओं के बीच में हैं। पहले यह थल जैसलमेर राज्य मे शामिल था। पोकरण तिरूरों के साथ-साथ समस्त मरुभूमि की राजधानी है और वह मरुस्थल की दो राजधानियो के बीच में बसा हुआ है। ऊपर जिस भाग का वर्णन किया जा चुका है, इस थल का दक्षिणी भाग उससे पृथक नहीं है। उत्तरी भाग में और विशेषकर पोकरण नगर के चारों तरफ सोलह से बीस मील तक नीची-ऊँची चट्टानों की पंक्तियाँ पायी जाती हैं। इन्हीं चट्टानो के एक भाग पर भाटी लोगो की राजधानी बसी हुई हैं। चट्टानो की पंक्तियों के कारण इस भूमि का नाम चट्टानी अथवा चन्दानी है। कुछ लोग इसे चन्द्रानि भी कहते हैं।

पोकरण नगर में दो हजार घरो की आबादी है। यहीं पर सलीम सिंह का निवास स्थान है। यह नगर पत्थरों से बनी हुई मजबूत दीवार से घिरा हुआ है और उसके किले पर पूर्व की तरफ कितनी ही तोपें रखी हुई हैं। नगर से पश्चिम की तरफ बरसात के दिनों मे जल का अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। वहाँ की रेत इस पानी को थोड़े ही समय मे सोख लेती है। कुछ

× यहाँ के लोगों का विश्वास है कि इस रोग में एक पतला धागा-सा आँख में पड जाता है और वह एक कीडा होता है। इस प्रकार का कीडा घोडे के नेत्रों मे भी पैदा हो जाता है। जिन घोडों की आँखों में यह बीमारी थी, उनको मैंने स्वयं देखा है। एक पतले धागे के समान रोग का कीडा आँखों में दौडा करता है। जिसे कीचड़ या आँसू के साथ निकाला जाता है।

लोगों का कहना है कि जल कनोड के तालाव से आता है और कुछ लोग उसको पहाड़ी झरनों से आता हुआ बतलाते हैं। यहाँ के रहने वाले जल के प्रवाह-मार्ग में खोदकर पीने के योग्य जल निकाल लेते हैं। यहाँ का सरदार चौबीस गाँवों के अतिरिक्त लूनी और बाँदी नदियों के बीच की भूमि का भी मालिक है।

दूनरा और मझिल प्रसिद्ध दुर्गादास की जागीरें थीं। लेकिन अब वे देशद्रोही सलीम के अधिकार में हैं। पोकरण से तीन कोस उत्तर की ओर रामदेवरा नाम का एक गाँव है। इस गांव में रामदेवरा का मन्दिर होने के कारण इस गॉव का नाम रामदेवरा हो गया है। उस गाँव में भादो के महीने में एक मेला लगता है। उस मेले में बहुत दूर-दूर से आदमी आते हैं। कराची, मुलतान, शिकारपुर और कच्छ के व्यवसायी आकर यहॉ पर क्रय-विक्रय का काम करते हैं। यहॉ के लोग घोड़े, ऊँट और बेल अधिक रखते हैं। सन् 1813 ईसवी के अकाल का यहाँ पर बुरा प्रभाव पड़ा है। राजा मानसिंह के शासनकाल में जो अराजकता उत्पन्न हुई थी, उससे यहाँ का व्यापार नष्ट हो गया।

खावर का थल- यह थल जैसलमेर के बीच में है और गिरो के निकट धात की मरुभूमि से जाकर मिल जाता है। यह थल मारवाड़ के एक दूरवर्ती किनारे पर पाया जाता है। यहॉ पर मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। लेकिन यह विस्तृत स्थान में पाया जाता हैं। उसके कई एक नगर पहाड़ी चोटियों पर वसे हुये हैं। उनमें शिव और कोटरा अधिक विशाल हैं। ये दोनों नगर उन पहाड़ी चोटियों पर हैं, जो भुज से जैसलमेर तक फैली हुई हैं। शिव में तीन सौ घरों की आवादी है और कोटरा में पॉच सौ घरों की। इन दिनों इन नगरों पर राठौर् सरदारों का अधिकार है। वे सरदार वहुत साधारण जोधपुर-राज्य की अधीनता में माने जाते हैं। कुछ समय पहले अनहिलवाड़ा पट्टन और इस नगर में व्यावसायिक सम्बन्ध था। परन्तु लुटेरों के अत्याचारों के कारण वह व्यवसाय बिल्कुल नष्ट हो गया। यहॉ पर भेड़ों और भैंसों के चरने के लिए बहुत-सी भूमि पायी जाती है।

मल्लिनाथ का थल- इस थल का नाम बरमेर भी है। प्राचीनकाल में यहाँ पर मल्लि अथवा मालिनी जाति के लोग रहते थे। बहुत से लोगों में वे लोग राठौर वंश के नाम से प्रसिद्ध हैं। लेकिन वास्तव में वे लोग चौहान हैं और यह वही वंश है, जिसमें जूनाचोटन के राजा ने जन्म लिया था। पिछले दुष्काल के पूर्व बरमेर की आवादी बारह सौ घरों से कम की न थी और उनमें सभी जातियों के लोग रहते थे। उनकी चौथाई आवादी सॉचोर ब्राह्मणों की थी। बरमेर उसी पहाड़ी पर वसा हुआ है, जिस पर शिव और कोटरा आवाद हैं। बरमेर के पास उस पहाड़ी की ऊँचाई कहीं पर दो सौ फीट और कहीं पर तीन सौ फीट तक है। शिव कोटरा से लेकर बरमेर तक एक विस्तृत मैदान है। वहॉ पर अनाज की अच्छी पैदावार होती है। बरमेर का सरदार पद्मसिंह उसी वंश का है, जिसमें शिव कोटरा और जैसोल के राजाओं ने जन्म लिया है। इन नरेशों का वंश एक ही है। बरमेर जागीर में चौंतीस ग्राम हैं।

खेरधूर- खेर का उल्लेख कई बार किया जा चुका है। गोहिलों को पराजित करके सबसे पहले राठौरों ने यहाँ पर अधिकार किया था। गोहिल लोग यहॉ से भागकर खम्भात की तरफ चले गये थे। वे लोग अब गोगा और भावनगर में शासन करते हैं। ऊँटों पर यात्रा करने

वाले काफिलों को लूट लेना उन लोगों का एक व्यवसाय बन गया था। मरुभूमि में नौ दुर्ग थे, जिनका उल्लेख किया जा चुका है। राजधानी खेरल का दुर्ग उनमें से एक था और वह दुर्ग प्रमार राजपूतों के अधिकार में था। लेकिन उसका विनाश बहुत दिनों से हो रहा था और अब वह एक साधारण गॉव रह गया है। इन दिनों मे वहाँ पर जो घर हैं, उनकी संख्या चालीस से अधिक नही है। काले रंग की पहाड़ियों ने उसे चारों तरफ से घेर रखा है। जूना चोटन को बहुत से लोग प्राचीन चोटन भी कहते हैं। वास्तव मे जूना और चोटन दो अलग-अलग स्थान हैं। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में वहॉ पर हथ-राज्य की राजधानी थी। हथ राज्य के सम्बन्ध में कोई विशेप उल्लेख नहीं मिलता। केवल इतना ही मालूम होता है कि वहॉ पर चौहानों का शासन था। वहॉ की बहुत-सी बातें इस बात का प्रमाण देती हैं कि पूर्वकाल में यह एक प्रसिद्ध राज्य था और उसके नगर बहुत बड़े-बड़े थे। प्राचीनकाल में जूना चारों तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ था और प्रवेश करने के लिए केवल एक तंग रास्ता था। उसके सामने छोटा-सा एक दुर्ग टूटी-फूटी अवस्था मे अब भी पाया जाता है। उस पहाडी के शिखर पर दो अन्य दुर्गों के टूटे-फूटे भाग दिखायी देते हैं।

जिस पर्वत पर जूना और चोटन बसे हुए हैं, उसके दूसरे सिरे पर धोरिमन नाम का एक नगर है। वहॉ पर एक पवित्र स्थान है, जहाँ पर पूजा करने के लिए श्रावण सुदी तीज को बहुत-से लोग एकत्रित होते हैं। इस प्रकार की कुछ बातों को छोडकर वहॉ के सम्बन्ध मे कोई विशेप उल्लेख नहीं मिलता।

नागर और गुरु- ये दोनों नगर लूनी नदी के किनारे पर बसे हुए हैं और वें वहॉ के चौहानों के राज्य की सीमा समझी जाती है। पहले किसी समय दोनों नगर चौहानों के राज्य मे थे। यहॉ पर मारवाड़ के पश्चिमी थलों का वर्णन समाप्त होता है। मारवाड़ स्वयं एक मरुभूमि का ऐसा भाग है, जहॉ पर अनाज की पैदावार का कोई सहारा नहीं रहता। उस पर भी सन् 1812 के दुष्काल ने उसको एक भयानक दुरावस्था में पहुँचा दिया था। इसके अतिरिक्त पिछले तीस वर्पो से राज्य की व्यवस्था ठीक न होने के कारण लुटेरों ने अत्याचार करके जो सकट उत्पन्न कर दिया है, वह अत्यन्त रोमांचकारी है।

अमरकोट- मरुभूमि में ओमर लोगों का यह एक प्रसिद्ध दुर्ग था और पिछले कुछ वर्पो तक सोढा राजाओं की यहॉ पर राजधानी थी। दो सौ वर्ष पहले इसका विस्तार सिन्धु की घाटी मे उत्तर की तरफ लूनी नदी तक था। लेकिन मारवाड़ के राठौरों और सिन्ध के वर्तमान राजवंश ने सोढा लोगो के इस राज्य को बहुत निर्बल और सीमित बना दिया। इन दिनों में अमरकोट का प्राचीन गौरव नष्ट हो गया और वहॉ की आबादी में पाँच हजार मकानो के स्थान पर केवल दो सौ पचास मकान झोपड़ो के रूप में रह गये थे। वहॉ पर पुराना दुर्ग नगर के उत्तर-पश्चिम में है। वह ईटों से बना हुआ है। उसके अतिरिक्त वहॉ पर दूसरे दुर्ग भी हे, जिनकी संख्या अठारह बतायी जाती है। वे पत्थरों से बने है। नगर मे एक दुर्ग भीतर भी है। राज परिवार के रहने का सुदृढ़ प्रासाद है। किले के उत्तर की तरफ एक पुरानी नहर है, जिसका पानी वर्प के कुछ दिनों तक बराबर काम देता है। अमरकोट में राजा मान के समय अनेक गॉवो की प्रतिष्ठा हुई थी। लेकिन वहॉ के गृह-युद्ध के कारण उनकी हालत खराब हो गयी

और अमरकोट का अधिकार कुलोरों और राठौरों के हाथों में चला गया। इसके बाद उनमें झगड़े पैदा हो गये, जिनका यहाँ पर संक्षेप में कुछ वर्णन करना आवश्यक मालूम होता है।

मारवाड़ में विजयसिंह के शासनकाल में नूर मोहम्मद कुलोरा सिन्ध में शासन करता था। कन्धार की फौज के आक्रमण करने पर वह अपने राज्य से भागकर जैसलमेर चला गया और वहाँ पर उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बड़े लड़के अन्तूर खाँ ने अपने भाइयों के साथ बहादुर खाँ खैरानी के पास जाकर शरण ली। उन्हीं दिनों में उसके एक अनैतिक बन्धु गुलामशाह ने अवसर पाकर हैदराबाद के राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया। दाऊद पोतरा के सरदारों ने उमर खाँ के पक्ष का समर्थन किया। बहादुर खाँ, सश्जल खाँ, अली मोराद, महमूद खाँ, कायम खाँ और अली खाँ खैरानी सरदारों ने युद्ध की तैयारी की और अन्तूर खाँ के साथ वे लोग हैदराबाद के लिए रवाना हुये।

गुलामशाह उनका मुकाबला करने के लिए अपनी फौज के साथ चला। भाईयों के बीच युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में अन्तूर खाँ और उसके साथियों को सफलता न मिली। उनकी सहायता के लिए जो खैरानी सरदार युद्ध में गये, उनमें सभी मारे गये। अन्तूर खाँ कैद कर लिया गया और वह गुजा के दुर्ग में जन्म भर कैद होकर रहा। यह दुर्ग सिन्ध के टापू हैदराबाद से चौदह मील दक्षिण की तरफ है। गुलामशाह ने उसका राज-सिंहासन उसके लड़के सर फीरोज को दिया। थोडे ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद अब्दुल नबी उसके सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में शिवदानपुर के उत्तर में चौदह मील की दूरी पर अभयपुर नामक एक नगर था। उसमें तालपुरी वंश का एक सरदार रहता था। यह वंश बालोच की एक शाखा है। उस सरदार का नाम गोराम था। बीजर और सोभान नाम के उसके दो लड़के थे। सर फीरोज ने गोराम की लडकी से विवाह करने की माँग की। लेकिन गोराम ने उसको लड़की देने से इन्कार कर दिया। इसके फलस्वरूप उसका परिवार नष्ट कर दिया गया। बीजर खाँ वहाँ से भाग गया और हैदराबाद के निरकुश शासक को वहाँ के सिंहासन से उतार कर वह स्वयं वहाँ का अधिकारी बन गया। कुलोर लोग छिन्न-भिन्न हो गये। बीजर खाँ ने वहाँ पर एकाधिपत्य शासन करने का इरादा किया। इसलिए अमरकोट में अधिकार करने के सम्बन्ध में राठौरों के साथ उसकी शत्रुता पेदा हो गयी। राठौर लोग मारवाड़ में शासन कर रहे थे। बीजर खाँ ने मारवाड से केवल कर ही नहीं माँगा, बल्कि राठौर राजा की लड़की के साथ विवाह करने के लिए उसने राजकुमारी की माँग भी की। इसके परिणामस्वरूप राठौरों के साथ दुगारा में उसका युद्ध हुआ। यह स्थान धरनीधर से दस मील की दूरी पर था। उस युद्ध मे राठौरों ने बालोच सेना को बुरी तरह पराजित किया। राठौरों ने इतने पर ही सन्तोप नहीं किया। बीजर खाँ ने मारवाड़ से दो माँगें की थीं। एक तो राठौरों के राज्य मारवाड़ से कर माँगा था और विवाह करने के लिए मारवाड़ की राजकुमारी माँगी थी। इन दोनों माँगों का पुरस्कार बीजर खाँ को देने के लिए राठौर राजपूत तैयारी करने लगे। उसी समय भाटी और चन्दावत दो सरदारो ने बीजर खाँ को पुरस्कार देने के लिए प्रतिज्ञायें कीं और वे दोनों मारवाड़ राज्य के राजदूत बनकर बीजर खाँ के दरबार में गये। बीजर खाँ के सामने एक लिखा हुआ कागज उन सरदारों ने उपस्थित किया। उस कागज को देखते ही बीजर खाँ ने समझा कि मारवाड़ के राजदूत अपने राजा की सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हैं। उसने बड़ी तेजी से साथ उस कागज

पर लिखी हुई पंक्तियों को देखा और उसने उसी समय मुँह बनाते हुए धीरे-धीरे कहा- 'इस कागज में राजकुमारी के डोला देने का तो कोई जिक्र ही नहीं।' उसके इस वाक्य के समाप्त होने के साथ-साथ चन्दावत सरदार ने बड़ी तेजी के साथ अपनी तलवार का प्रहार बीजर खॉ के वक्ष स्थल पर किया और कहा- "यह डोला है" और "यह कर है", कहकर उसने अपनी तलवार का दूसरा प्रहार उस पर किया। बीजर खॉ भयानक रूप से जख्मी होकर सिंहासन पर गिर गया। उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। बीजर खॉ के गिरते ही वहॉ पर दोनों राजपूत सरदारों पर आक्रमण हुआ। उस आक्रमण में चन्दावत सरदार ने इक्कीस और भाटी सरदार ने पाँच आक्रमणकारियों का संहार किया। इसके बाद आक्रमणकारियों ने उन दोनों सरदारों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

बीजर खॉ के मारे जाने पर उसका भतीजा, सोभान का बेटा फतेह अली वहॉ के राजसिंहासन पर बैठने के लिए चुना गया। कुलोरा का पुराना परिवार भाग कर भुज और राजपूताना चला गया और उसने कन्धार का आश्रय ग्रहण किया। वहॉ पर शाह ने पच्चीस हजार सेना पर उसे अधिकारी बना दिया। उस सेना के द्वारा उसने सिन्ध को विजय किया और भयानक अत्याचार करके उसने वहाँ पर अपनी अमानुपिकता का परिचय दिया। फतेहअली ने-जो भागकर भुज चला गया था-अपने अनुयायी साथियों को एकत्रित करके शाह की फौज पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके शिकारपुर के बाहर उसने भीपण नर-संहार किया। इसके बाद उसने वहॉ पर अधिकार कर लिया। फतेहअली वहॉ से लौटकर हैदराबाद चला गया। निर्दयी कुलोरा लोगों ने एक बार फिर शाह पर आक्रमण किया और अपनी भयानक नीचता का व्यवहार करके उन लोगों ने शाह को वहॉ से भगा दिया। वह इधर-उधर घूमता हुआ मुलतान होकर जैसलमेर चला गया और पोकरण में जाकर वह रहने लगा। वहॉ पर उसकी मृत्यु हो गयी। पोकरण का सरदार उसका उत्तराधिकारी बना। उसने सिन्ध के स्वर्गीय बादशाह की सम्पत्ति पर अधिकार करके उस निर्वासित शाह की कब्र नगर के उत्तर की तरफ बनवायी।

इन घटनाओं का सम्बन्ध मारवाड़ और सिन्ध के इतिहास के साथ है। लेकिन सोढा राजाओं के अन्तिम प्रभाव को प्रकट करने के लिए यहॉ पर उनका उल्लेख किया गया है। यह सब उस वजीर ने किया जिसका सर्वनाश विजयसिंह के सरदारों ने राजपूत बनकर किया। सोढा राजा अमरकोट से भागकर चला गया था। वहॉ पर सिन्धी और भाटी लोगों ने मिलकर अधिकार कर लिया। लेकिन सिन्धी फौज के पराजित होने पर विजयसिंह ने सोढा राजा को अमरकोट के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए फिर से तैयार किया। इसके फलस्वरूप अमरकोट पर आक्रमण हुआ और वहॉ पर भयानक रूप से नर-संहार करके अफगानों के द्वारा नगरों की लूट हुई। उसके बाद आक्रमणकारियों ने अमरकोट पर अधिकार कर लिया। इस आक्रमण में विजयसिंह की सेना ने भी युद्ध किया था। इसलिए कन्धार की अफगानी फौज के सेनापति फतेहअली ने उस सहायता की कीमत में विजयसिंह को अमरकोट का अधिकार दे दिया। उस समय से लेकर अन्तिम गृह-युद्ध के दिनो तक वहॉ पर राठौरो का झण्डा फहराता रहा। उसके पश्चात् सिन्धी लोगों ने राठौरों को वहॉ से निकाल दिया।

चोर–अमरकोट के पतन के बाद सोढ़ा राजा अपनी राजधानी से उत्तर-पूर्व की तरफ पन्द्रह मील की दूरी पर चोर नामक नगर में आकर रहने लगा। उसकी उपाधि राणा थी। निर्वासित होने के बाद भी वह अपनी इस पदवी को धारण किये रहा। जिस वंश के पूर्वजों ने किसी समय सिकन्दर मेनाण्डर और कासिम का–जो खलीफा वलीद का गवर्नर था–सामना किया था और जिन्होंने बादशाह हुमायूँ को उस समय अपने यहाँ शरण दी थी, जब वह पराजित होकर भारतवर्ष का सिंहासन छोड़कर भागा था, आज उस वंश के राजा परिवार की यह अवस्था थी कि वह रोटी के टुकड़ों के लिए अपनी लड़कियों और बहनों का विवाह अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कर देते थे। उनके इस पतन का कारण उनकी क्षुधा थी, जिसको मिटाने के लिए उस वंश के लोगों के पास कोई दूसरे साधन न थे। अमरकोट के बाद सोढ़ा वंश के लोग जहाँ पर जाकर रहे थे, वहाँ उनका कोई व्यवसाय न था, जीवन-निर्वाह के लिए उनके अधिकार में कोई साधन न था। वह स्थान मरुभूमि का एक भाग था, जहाँ कुछ पैदा न होता था। प्रत्येक तीसरे वर्ष वहाँ अकाल पड़ता था, जिसके कारण सर्व साधारण का जीवित रहना कठिन हो जाता था। इस दशा में जिनके पास खाने-पीने का सुभीता न होता था, वे अपने सम्पन्न पड़ोसियों का आश्रय लेते थे और अधिक संख्या में लोग सिन्धु की घाटियों में जाकर वहाँ के लोगों की शरण लेते। उनके इन दुर्दिनों में जो सहायता करते, उनको वे अपनी लड़कियाँ और बहनें देकर उनके उपकार का बदला देते। यह सोढ़ा वंश हिन्दू जाति का एक अङ्ग था, जिसने अपने दुर्दिनों में इस्लाम धर्मावलम्बियों की समय-समय पर शरण ली थी और उनके साथ अपनी बेटियों के विवाह करके अपने वंश की पवित्रता को नष्ट किया था। इस प्रकार सोढ़ा और आसीजा की कड़ियों ने हिन्दू मुसलमानों को एक में जोड़कर जञ्जीर बनाने का काम किया था। भूख से मरता हुआ मनुष्य क्या नहीं करता। वह धर्म और कर्म की रक्षा उसी समय तक करता है, जब तक उसके प्राण सुरक्षित रहते हैं। लेकिन जब वह भूख से तड़पने लगता है तो उस समय वह सब कुछ भूल जाता है। अमरकोट से भागने के बाद और चोर नगर में जीवन निर्वाह करने के दिनों में सोढ़ा वंश के लोगों की इस प्रकार दुरवस्था हो गयी थी। उनके अन्तस्तल के सुदृढ़ धार्मिक तथा सामाजिक बन्धन ढीले पड़ गये थे और क्षुधा की पीड़ा में वे उन कार्यों को करने के लिए विवश हुये थे, जो उन्हें न करने चाहिए थे। इतना सब होने पर भी वे अपने हृदय से धार्मिक और सामाजिक नियमों को [illegible] उन्होंने अपनी जिन प्यारी लड़कियों और बहनों के विवाह इस्लाम धर्मावलम्बियों के साथ किये थे, उनको उन्होंने फिर अपने परिवार में कभी आने नहीं दिया था। इस प्रकार [illegible] की जो लड़कियाँ इस प्रकार गयीं, वे फिर से अपने जीवन में [illegible] आयीं। सोढ़ा वंश के वर्तमान राणा ने [illegible] लोगों को अपनी लड़कियाँ देकर उस वंश के अन्य लोगों के [illegible] था। इस दशा में [illegible] कर देते हैं, क्योंकि वे उस [illegible] लड़कियाँ [illegible] नहीं [illegible] हो सकता है, [illegible] अपनी लड़कियाँ [illegible]

जातियाँ- मरुभूमि और सिन्धु की घाटियों में जो जातियाँ रहती हैं, यदि उनके ऐतिहासिक जीवन की खोज की जाये तो अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का पता लग सकता है। खोज करने वाले इस बात को आसानी के साथ जान सकेगे कि मरुभूमि की अनेक जातियाँ आज के पहले कुछ और थीं और संकटों में पड़कर उनके जीवन का वातावरण आज कुछ और हो गया है। जीवन की ये परिस्थितियाँ मरुभूमि की अनेक जातियों के सम्बन्ध में मिलेंगी। जिन वंशों का जन्म हिन्दू जाति से हुआ था, वे वंश आज किसी दूसरे ही धर्म की चादर से ढके हुए दिखायी देते हैं। इस विषय में अधिक विस्तार देना आवश्यक नहीं मालूम होता। जीवन के संकटो में इस प्रकार के परिवर्तन बहुत अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते। इसलिए इस वर्णन को हम यहाँ पर समाप्त किये देते हैं।

मुसलमानों में कुलोरा और सेहरी नाम की दो जातियाँ ऐसी हैं, जिनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं लिख सकते। जून, राजूर, ओमुरा, सुमरा, मेरमोर अथवा मोहर, बलोच, लुमरिया, मालूका, सुमेचा, मंगुलिया, दाहिया, जोहिया, कैरो, मगुरिया, ओदुर, बेरोबी, बाबुरी, ताबुरी, चरेन्दी, खोसा, सुदानी और लोहाना आदि जातियों ने अपने प्राचीन धर्म को छोड़कर इस्लाम को स्वीकार कर लिया है। मरुभूमि की इस प्रकार न जाने कितनी जातियाँ-जो प्राचीनकाल में हिन्दू थी-आज इस्लाम के आवरण में दिखायी देती हैं। ऐसा क्यों हुआ है, इसका उत्तर आसानी के साथ नही दिया जा सकता है। एक विस्तृत खोज के बाद जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वही उसका उत्तर हो सकता है। उनके सम्बन्ध मे बहुत आसानी के साथ, यह कहा जा सकता है कि जीवन की परिस्थितियों और उनके संकटो ने उनमें इस प्रकार के परिवर्तन कर दिये हैं। लेकिन यह बहुत सम्भव है कि ऐतिहासिक खोज के बाद यह उत्तर सही साबित न हो।

भाटीयों, राठौरों और चौहानों तथा उनकी शाखाओ मालिनी और सोढा वंश का वर्णन संक्षेप में किया जा चुका है। यहाँ पर सोढा वंश की कुछ विशेप बातो का वर्णन करना आवश्यक मालूम होता है।

सोढा हिन्दू-जाति का एक अङ्ग है। परन्तु इस वंश के लोगों के आचरण अब हिन्दुओं के से नहीं रह गये। ये लोग खाने और पीने के विचारों मे अब मुसलमानों के बहुत निकट पहुँच गये हैं। उदाहरण के तौर पर सोढा वंश के लोग उस बरतन मे बिना किसी संकोच के पानी पी लेते हैं, जिसमे उनके सामने मुसलमानों ने पानी पिया हो। यही अवस्था हुक्का पीने के सम्बन्ध में भी है। इस वंश के लोग बहुत दिनो से निर्धन होते जा रहे है और अपनी आर्थिक निर्बलता में उन लोगों ने चोरी और लूट के कार्य को भी अपना लिया।

सोढा लोग जितने ही गरीब होते जाते हैं, उनका उतना ही नैतिक पतन होता जाता है। इस गरीबी में वे लुटेरे और चोर बन गये हैं। सेहरीस और खोसा लोग संगठित होकर जहाँ कहीं अवसर पाते हैं, लूटमार करते हैं। सोढा लोग भी उनके संगठन में सम्मिलित हो गये हैं। इस संगठन के लोग दाऊदपोतरा से लेकर गुजरात तक लूट किया करते हैं। सोढा लोग तलवार और ढाल को अपने साथ रखते है। उनकी कमर में एक तेज और भयानक कटार भी रहती है। इनमें से कुछ लोग बन्दूकें भी रखते हैं। उनकी पोशाक भाटी और मुसलमानो से मिलती-

जुलती है। वे लोग अपनी पगड़ी से पहचाने जाते हैं। मरुभूमि में ये फैले हुये पाये जाते हैं। इस वंश की बहुत-सी शाखाये है। सुमाचा उन शाखाओं में अधिक प्रसिद्ध है।

कौरव- कौरव राजपूत धात के थल में पाये जाते हैं। ये लोग भी लूट-मार करते है। लेकिन ये परिश्रमी होते है। इनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं होता। ये लोग बड़ी संख्या में भेडे लिये हुये घूमा करते है और जहाँ कही अपनी भेड़ों के चरने के लिए अच्छा स्थान और पानी का सुभीता पाते हैं, वही पर ये लोग ठहर जाते है। रहने के लिए ये झोपड़ियाँ बना लेते हैं, जो पत्तों से ढकी होती हैं। उन झोपडों के भीतर मिट्टी का प्लास्टर लगा रहता है। लुटेरे सेहरीस लोग जंगलों में घूमा करते है और इस प्रकार के स्थानों में रखा हुआ अनाज चोरी करके अथवा लूटकर ले जाते हैं। इनमे से कुछ लोग ऊँट, गायें, भैंसे और बकरियाँ पालते है और वे लोग अपने इन पशुओं को चारन तथा अन्य व्यवसायियो को बेच देते हैं। दूसरे राजपूतों की तरह ये लोग भी अफीम का सेवन करते हैं। ये लोग इस बात का विश्वास करते है कि अफीम के सेवन से शरीर में रोग नही पैदा होता और जो रोग पैदा होता है वह सेहत हो जाता है।

धात अथवा धाती- यह वंश भी राजपूतों की एक शाखा है। इस वंश के लोग धात मे रहते है। इनकी संख्या कौरवों की अपेक्षा अधिक नही है। इनकी आदतें बहुत कुछ कौरवों से मिलती हैं और ये गड़रियो का जीवन व्यतीत करते हैं। ये लोग खेती भी करते हैं। लेकिन उसकी पैदावार बरसने वाले पानी पर निर्भर करती है। ये लोग अपना तैयार किया हुआ घी देकर उसके बदले में अनाज और दूसरी आवश्यक चीजें लेते हैं। राबड़ी और छाछ यहाँ का अच्छा भोजन माना जाता है।

लोहाना- इस वश के लोग धात और तावपुरा में अधिक पाये जाते हैं। पहले ये लोहाना राजपूत कहलाते थे। लेकिन व्यवसाय करने के कारण ये लोग अब वैश्य कहे जाते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी कार्य करने में वे संकोच नही करते। बिल्ली और गाय के अतिरिक्त अन्य सभी पशुओं का वे लोग मॉस खाते हैं।

अरोरा- लहना लोगों की तरह इस जाति के लोग भी खेती और व्यापार करते हैं। बहुत-से लोग नौकरी भी करते हैं। सिन्ध मे ये छोटी-छोटी नौकरियों में देखे जाते हैं। खाने-पीने की साधारण चीजों पर ये लोग अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। हम यह ठीक से नहीं जानते कि अरोर में रहने के कारण इन लोगों का नाम अरोरा पड़ गया है।

भाटिया- इस जाति के लोग पहले अश्वारोही हुआ करते थे। लेकिन अब जब से वे लोग व्यवसाय करने लगे हैं, उससे उनको बहुत लाभ हुआ है और उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ पहले की अपेक्षा अच्छी हो गयी हैं। इनके जीवन की बहुत-सी बातें अरोरा लोगों के समान हैं। सम्पत्ति मे इनका स्थान अरोरा लोग [illegible] है। शिकारपुर, हैदराबाद, सूरत और जयपुर में अरोरा तथा भाटिया लोगों की [illegible] बनी हुई हैं।

ब्राह्मण- मरुभूमि और [illegible] धर्म को अपना धर्म [illegible] मनु के सिद्धान्तो का यथा सम्भव [illegible] की लिखी हुई बातें जो नहीं होती, उनकी वे उपेक्षा कर [illegible] बातो को ही [illegible]

मानते हैं। वे लोग जो कुछ कहते हैं, उसी को वे सत्य समझते हैं। ब्राह्मण जनेऊ पहनते हैं। साधारण तौर पर वे खेती का कार्य करते हैं। आवश्यक चीजों को खरीदने के समय मूल्य में वे अपने घरों का घी देते हैं। इनकी संख्या धात में अधिक है। चोर नगर में-जहाँ पर सोढा राणा रहता है-एक सौ घर इन ब्राह्मणों के हैं। कुछ घर अमरकोट में भी पाये जाते हैं। ये लोग मछली नहीं खाते और हुक्का भी नहीं पीते। माली और नाई के हाथ का बना हुआ भोजन वे कर लेते है। भोजन के समय वे चौका नहीं लगाते। सिन्ध में रहने वाली सभी हिन्दू जातियाँ भटियारिन के हाथ का बना हुआ भोजन करती है। इन जातियो के लोग एक दूसरे के बरतनों को खाने-पीने के काम मे लाने के लिए किसी प्रकार का विचार नहीं करते। उनमें मुरदे जलाये नहीं जाते। बल्कि दरवाजे की देहरी के पास जमीन में गाड़ दिये जाते हैं। जिनके पास रुपये-पैसे का सुभीता होता है, वे एक चबूतरा भी बनवा देते हैं। इस प्रकार जो चबूतरा बनता है, उस पर शिव की मूर्ति और उसके ऊपर जल का भरा हुआ कलश रखा जाता है। यहाँ पर कोली और लोहाना लोगों के सिवा सभी हिन्दू जातियों के लोग जनेऊ पहनते हैं। परन्तु भारतवर्ष मे केवल द्विजाति के लोगों को जनेऊ पहनने का अधिकार माना जाता है।

रेवारी- भारतवर्ष में रेवारी के नाम से सभी लोग परिचित हैं। मरुभूमि में रेवारी उन लोगों को कहते हैं, जो ऊँटो का पालन करते है। भारतवर्ष मे मुसलमान साधारण तौर पर ऊँट रखा करते हैं। मरुभूमि में ऊँटो के पालन और उनके व्यवसाय का काम करने वाली एक विशेष जाति कहलाती है, जिसे रेवारी कहते हैं। यह हिन्दू जाति हैं और इस जाति के लोग ऊँटो का पालन और व्यवसाय करते हैं। कहा जाता है कि ऊँटों की चोरी करने में ये लोग बड़े होशियार होते हैं और इसके लिए भाटी लोगों के साथ ये लोग दाऊदपोतरा तक जाते हैं। उनके द्वारा ऊँटों की चोरी करने के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उन लोगों को जब कोई ऊँटों का चरता हुआ समुदाय मिल जाता है तो उनके साथ का शक्तिशाली और अनुभवी आदमी उस ऊँट को अपना भाला मारता है। जिसके निकट वह पहले-पहल पहुँचता है। उस ऊँट के खून में कपड़े को भिगोकर वह अपने भाले की नोक पर रख देता है और दूसरे ऊँट के पास जाकर अपने भाले के द्वारा उसे वह खून सुँघाता है ऐसा करके वह आदमी तेजी के साथ भागता हैं और ऊँटों का समुदाय उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगता है।

जाखूर, शियध और पूनिया जीत वंश की शाखायें हैं। इन शाखाओं के बहुत से लोगों मे अब तक सामाजिक और धार्मिक पुराने विश्वास पाये जाते हैं। लेकिन अधिक संख्या में लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया है। लेकिन अपने वंश की शाखाओं को उन लोगों ने अब तक नष्ट नहीं किया। ये लोग सीधे-सादे और परिश्रमी होते हैं। मरुभूमि और घाटी में ये लोग पाये जाते हैं। इनके बहुत से प्राचीन घराने इधर-उधर जाकर बस गये हैं। ऐसे घरानों में सुलतान और खमरा हमारे सामने ऐसे नाम हैं, जिनके ऐतिहासिक उल्लेख हमें नहीं मिले। जोहिया और सिन्दिल आदि ऐसे अनेक नाम हैं, जिनके उल्लेख मरुस्थली के इतिहास मे हम कर चुके हैं।

सेहरी, कोसर, चन्दी, सुदानी- मरुभूमि की मुस्लिम जातियो में सेहरी का प्रधान स्थान है। लोगों का कहना है कि इसकी उत्पत्ति हिन्दू जाति से हुई और इस जाति के लोग

अरोरा वंश के लोगों से उत्पन्न माने जाते हैं। निश्चित रूप से इसकी उत्पत्ति के बारे में कोई बात नहीं लिखी जा सकती। अरबी में सेहरा मरुभूमि को कहते हैं। सम्भव है उसी सेहरा शब्द से इस जाति का नाम सेहरी रखा गया हो। जो भी हो, इसका निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

कोसर अथवा खोसा सेहरी की एक शाखा है। कोसर और सेहरी लोगों में एक-सी आदतें पायी जाती हैं। लूट-मार इन लोगों का प्रमुख कार्य हो गया है और अपने इस कार्य को उन लोगों ने बहुत कुछ नियमित और संगठित बना लिया है। इस वंश के लोगों ने कौरी नाम का एक कर वसूल करने की व्यवस्था की है। उस कर के द्वारा जो धन एकत्रित होता है, उससे संकट पड़ने पर लुटेरों की रक्षा और सहायता की जाती है। इस कर के अनुसार प्रत्येक हल पर एक रुपया और पाँच घड़े अनाज एकत्रित किया जाता है! किसानों के सिवा गड़रियों से भी यह कर वसूल होता है। इस वंश के लोग प्राय: ऊँटों पर सवारी करते हैं। कुछ लोग घोड़ों को भी सवारी के काम में लाते हैं। तलवार और ढाल उनके विशेष हथियार हैं। बहुत कम लोगों के पास बन्दूक पायी जाती है। लूटने के लिए ये लोग सैकड़ों कोसों की दूरी पर और कभी-कभी जोधपुर तथा दाऊदपोतरा के राज्यों में भी चले जाते हैं। ये लोग राजपूतों के साथ युद्ध करने में डरते हैं। मरुभूमि के दक्षिणी भाग में ये लोग विशेष रूप से रहा करते हैं और नवकोट तथा मित्ती के पास बुलेरी तक वे लोग पाये जाते हैं। इस जाति के बहुत से लोग उदयपुर, जोधपुर और दूसरे राज्यों में नौकरी की खोज किया करते हैं। ये लोग कायर और अविश्वासी समझे जाते हैं।

सोढा वंश के जिन लोगों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था, सुमाचा लोग भी उन्हीं में से हैं। वे थल और घाटी में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। वहाँ पर उनके बहुत से गाँव हैं। उनकी आदतें घाती लोगों की तरह है। उनमें अधिकांश लोग सेहरी लोगों के साथ सम्पर्क रखने के कारण चोरी और लूट किया करते हैं। वे लोग अपने सिर के बालों को कभी मुंडवाते नहीं हैं। इसलिए वे देखने में पशु मालूम होते हैं। उन लोगों के यहाँ कोई भी पशु रोगी होकर नहीं मरता। क्योंकि बीमार पशु के सेहत होने की आशा न होने पर वे लोग उसे मार डालते हैं। उनकी स्त्रियाँ बड़ी लड़ाकू और असभ्य होती हैं। वे पर्दा नहीं करतीं।

राजूर- इस वंश के लोग भाटी कहे जाते हैं और ये मरुभूमि तथा जैसलमेर की सीमाओं पर रहा करते हैं। ये लोग जैसलमेर और सिन्ध के बीच के थल तक आते जाते रहते हैं। ये लोग खेती करते हैं, भेड़ें चराते हैं और चोरी करते हैं। जिन लोगों ने इस्लाम को स्वीकार किया है, उनमें ये लोग अधिक पतित माने जाते हैं।

ओमुर और सुमरा- ये लोग प्रमारों के वंशज हैं और अब वे लोग इस्लाम धर्म पर विश्वास रखते हैं। ये लोग जैसलमेर और ओमुरसुमरा के थल में पाये जाते हैं। इनकी संख्या अधिक नहीं है। इन लोगों के सम्बन्ध में हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं।

कुलोरा और तालपुरी-सिन्ध में ये दोनों जातियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। सिन्ध राज्य का पिछला शासक कुलोरा वंश में ही उत्पन्न हुआ था और वहाँ का वर्तमान शासक तालपुरी जाति का है। इनमें से एक ने ईरान के अब्बशैद से अपनी उत्पत्ति बतलाई है। दूसरे ने पैगम्बर

साहब से अपनी उत्पत्ति का दावा किया है। कहा जाता है कि ये दोनों बलोच हैं और उनकी मूल उत्पत्ति जिन वंश से हुई है। तालपुरी लोगों की संख्या लोहरी लोगों की संख्या की चौथाई मानी जाती है। उनका सम्बन्ध हैदराबाद राज्य के साथ है। वे थल में नहीं पाये जाते।

नुमरी, लुमरी अथवा लुक्का- यह बलोच की शाखा है। अबुल फजल ने इसको कुलमानी से नीचे माना है। युद्ध में तीन सौ सवार और सात हजार पैदल सेना को लाने की इस वंश के लोग शक्ति रखते हैं। इस जाति को विभिन्न लेखको ने विभिन्न नामों से लिखा है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी एक मत नहीं है। इसलिए उस विवाद में पड़ना हमको आवश्यक नहीं मालूम होता है।

जीहूत, जूत अथवा जित- यह एक प्राचीन जाति है और वह समस्त राजपूतों की संख्या से भी अधिक पायी जाती है। सम्पूर्ण सिन्ध में समुद्र के किनारे से दाऊदपोतरा तक इस वंश के लोग फैले हुए हैं। थल में उनकी धावनी नहीं है। जिन वंश के लोगों ने पहले पहल इस्लाम धर्म स्वीकार किया था, ये लोग उन्हीं में से हैं।

मैर अथवा मेर- इस नाम की एक पहाड़ी जाति है जो सिन्ध की घाटी मे पायी जाती है। इसके सम्बन्ध में जितना मुझे मालूम हुआ। उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यह भाटी वंश की शाखा है।

मोहर अथवा मोर- इस वंश के लोग भी भट्टी माने जाते हैं।

जताबुरी, बोरिया- इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई वात निश्चित रूप से नहीं लिखी जा सकती। इनके जीवन का व्यवसाय अच्छा नहीं है। वातुरी, खेनगढ़ और सम्पूर्ण राजस्थान में फैली हुई जो जातियां केवल चोरी का काम करती है, उन्हीं में इनकी भी गणना है। कोई भी अधम और अपराध का कार्य करने में वे संकोच नहीं करते। इन्हीं कार्यों को उन लोगों ने अपनी आमदनी का साधन वना लिया है। वे लोग दाऊदपोतरा, विजनोर, नोक, नवकोट और ओदुर के थलों में पाये जाते हैं। वे लोग ऊँट रखते है और उनको किराये पर चलाते हैं। कारवों की रक्षा करने के लिए भी उनकी नियुक्ति होती है।

जोहिया, दहिया और मंगुलिया- ये जातियॉ पहले राजपूतो की शाखायें मानी जाती थीं, परन्तु अव उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया है। घाटी और मरुभूमि में वे पाये जाते हैं। उनकी संख्या अधिक नहीं है।

बैरोवी- यह बलोच की एक शाखा है। इसकी तरह खैरोवी, जनग्री, ओंदुर और बावी नामक अनेक जातियॉ हैं। इन सवके पूर्वज प्रमार और शॉकला राजपूत थे। इनकी संख्या बहुत कम है और ये लोग कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं रखते।

दाऊदपोतरा- यह एक छोटा-सा राज्य है। उसकी गणना हिन्दू धर्म में नहीं की जाती। लेकिन उसे मरुस्थली की सीमा के भीतर माना जाता है। जैसलमेर के भाटी राज्य के कुछ भागों से दाऊदपोतरा बना है। दाऊदपोतरा की नींव डालने वाला सिन्धु नदी के पश्चिम में शिकारपुर का निवासी दाऊद खॉ था और उसने एक साधारण आदमी की हैसियत से रहकर अपने जीवन के बहुत दिन व्यतीत किये थे। उसने इन दिनो में अपनी बहुत बडी शक्ति का सम्पादन कर लिया था, जिसको दमन करने के लिए कन्धार के बादशाह ने अपनी फौज भेजी

थी। उस फौज का वह सामना न कर सका। इसलिए उसने अपनी जन्मभूमि को छोड़ दिया और अपने परिवार को लेकर सिन्धु नदी के दूसरी तरफ चला आया। बादशाह की फौज ने उसका पीछा किया। भाग जोने के बाद भी वह बच न सका। सूती अल्लाह नामक स्थान पर बादशाह की फौज ने उसे घेर लिया। उस समय उसके सामने दो रास्ते थे और उनमें से वह एक को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। वह या तो अपने आपको शत्रुओं के हवाले कर दे अथवा अपने परिवार के साथ-साथ अपनी आत्महत्या कर ले। इस संकट के समय उसने साहस और धैर्य से काम किया और शत्रु से लड़कर मर जाना उसने अच्छा समझा। उसके इस साहस को देखकर बादशाह की फौज ने उस पर आक्रमण नहीं किया और वह उसे छोड़कर चली गयी।

इसके बाद दाऊद खॉ अपने साहसी साथियों के साथ सिन्ध के मैदान में जाकर रहने लगा और उसने अवसर पाकर अपनी शक्तियॉ बढ़ायीं। उसके राज्य की सीमा इन दिनों में थल तक पहुॅच गयी। दाऊद खॉ के बाद मुबारक खॉ उसके राज्य का अधिकारी हुआ और उसके बाद उसका भतीजा भावल खॉ उसकी मसनद पर बैठा। उसका लड़का सादिक मोहम्मद खॉ भावलपुर अथवा दाऊदपोतरा का आजकल शासक है। मुबारक खॉ ने भाटी लोगों से खादल का जिला लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। इसका उल्लेख जेसलमेर के इतिहास में किया जा चुका है। उसकी राजधानी देरावल है। इसकी नींव आठवीं शताब्दी में रावल देवराज ने डाली थी और वहीं पर दाऊद खॉ के वंशज रहने लगे थे। उन दिनों में भट्टी लोगों की एक शाखा देरावल में रहती थी। उसके सरदार की उपाधि रावल है।

भावल खॉ ने दाऊदपोतरा की राजधानी बसायी और उसका नाम अपने नाम पर रखा। वहॉ पर पहले भाटी नगर था। इसके तीस वर्प बाद कन्धारी फौज ने दाऊदपोतरा पर आक्रमण किया और देरावल को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद एक सन्धि हुई और उसके अनुसार भावल खॉ को देरावल वापस दिया गया। भावल खॉ को एक बार अदाली शाह की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उस समय भावल खॉ को अपना लडका मुबारक खॉ अदाली शाह के साथ भेजना पडा। मुबारक खॉ तीन वर्प तक काबुल में रहा। उसके बाद वह स्वतन्त्र कर दिया गया। मुबारक खॉ स्वाधीन होकर अपने राज्य की स्वतन्त्रता के लिए चेष्टा करने लगा। इस दशा में भावल खॉ ने उसे कैद करा लिया और वह किञ्जर के दुर्ग में कैद करके रखा गया। वह भावल खॉ की मृत्यु के समय तक वहॉ पर बन्दी होकर रहा। भावल खाँ के मर जाने के बाद दाऊदपोतग के सरदारों के द्वारा वह दुर्ग से निकाला गया। स्वतन्त्र होकर वह मुरार मे पहुॅचा। अपनी राजधानी में आ जाने के बाद विरोधियों ने धोखे से उसे मरवा डाला। उसके बाद सादिक खॉ उसकी मसनद पर बैठा। उसने मुबारक खॉ के लड़कों को अपने छोटे भाई के साथ-साथ देरावल के दुर्ग में बन्द करवा दिया। लेकिन वे वहॉ से निकलकर भागे और राजपूतो तथा पुरविया लोगों की सेना लेकर उन्होंने देरावल पर अधिकार कर लिया। सादिक खॉ दुर्ग की दीवार पर चढ़ गया। उस समय उसके साथ के लोगों ने उसकी रक्षा न की और उसके दोनों भाई और एक भतीजा युद्ध में मारा गया। उसका दूसरा भतीजा दीवार पर चढ़ गया। परन्तु वह पकड़ लिया गया। सादिक खॉ ने उसे मरवा डाला। सादिक खॉ ने जिस नसीर खॉ की सहायता से मसनद पर बैठने का अधिकार पाया था, उसने उसको भी मरवा डाला।

सादिक मोहम्मद खाँ मे उसके पिता की तरह के अच्छे गुण नहीं थे। मारवाड़ का विजयसिंह उसके पिता को अपना भाई कहकर सम्बोधित करता था। दाऊदपोतरा के सरदारों में मेल नहीं रहता। वे एक-दूसरे के साथ लडा करते है। वहाॅ के लोग भाटी लोग चोरी और लूट का काम करते हैं और उसके बदले में दाऊदपोतरा के सरदारों को कर देते हैं। लेकिन इन भाटी लोगो के दिलो में उन सरदारों के लिए कोई विशेप सम्मान नहीं है। भावलपुर के सरदार को कन्धार से अब किसी प्रकार की आशका नही रहती। वह सरदार अपने पड़ौसी राज्यो के साथ मिलकर चलता रहता है। लाहौर के रणजीत सिंह की धमकियाँ कभी-कभी उसे मिलती हैं। उनसे भावलपुर का सरदार कभी-कभी भयभीत हो उठता है।

बीमारियाँ- मरुभूमि में अनेक प्रकार के रोग पाये जाते हैं। इन रोगों का वहुत-कुछ कारण यह भी हे कि वहाॅ के लोगों को अच्छा भोजन नहीं मिलता। वहाॅ पर ऐसे लोगों की संख्या अधिक है, जो पेट-भर भोजन नहीं पाते। इस अभाव के कारण उनको जो कुछ मिलता है, खा लेना पड़ता है। पीने का जल स्वच्छ और स्वास्थ्य जनक नहीं मिलता। इसका परिणाम यह है कि रतौंधी, नारू और इस प्रकार के दूसरे रोगो ने वहाॅ के निवासियो का स्वास्थ्य नष्ट कर डाला है। रतोधी और वेरी कोस के रोग उन्हीं लोगों को अधिक होते हैं, जिनको मरुभूमि में अधिक दौड़ना-धूपना और चलना पड़ता है। मरुभूमि की जलती हुई धूप ने उनके शरीर के रंग को काला वना दिया है। मरुभूमि का जीवन इन गरीबों के लिए अत्यन्त संकटपूर्ण है। उनके शरीर के अंगों को अनेक प्रकार की क्षति पहुॅचती है। लेकिन वहाॅ के निवासी इन सब बातों के ऐसे अभ्यासी हो गये हैं कि वे कभी अपने इस संकटपूर्ण जीवन की आलोचना तक नहीं करते।

मरुभूमि के लम्बे मैदानों में अधिक चलने के कारण वहाॅ के लोगों के पैरो की नसे इतनी मोटी और भद्दी हो जाती हैं कि मालूम होता है कि उनकी पिण्डुलियों मे पट्टियाॅ वॅधी हैं। अधिक चलने के कारण उनके पैरों की नसों का यह दृश्य हो जाता है। नारू रोग से तो यहाँ के किसी भी आदमी का बचाव नहीं हो पाता। यह रोग एक किसान से लेकर राज परिवार के लोगों तक में पाया जाता है। कदाचित ही यहाॅ का कोई मनुष्य इस नारू रोग से वच पाता है। मरुभूमि, पश्चिमी राजस्थान और उसके बीच के राज्यो में यह रोग नही होता परन्तु अरावली पर्वत की दूसरी तरफ रहने वालों मे यह रोग इतना अधिक होता है कि वहाँ के लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तो वे उनसे इस रोग का हाल सबसे पहले पूछते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वहाॅ पर रहने वालों में यह रोग बहुत अधिक पाया जाता है। इस रोग में इतनी अधिक पीड़ा होती है, जिसकी सहन करने की शक्ति वहुत कम लोगो में पायी जाती है। शरीर के रोमछिद्रों में सूक्ष्म रेत के प्रविष्ट हो जाने से यह रोग पैदा होता है। चर्म के भीतर उस रेत के अणुओं के पहुॅच जाने पर उस स्थान की खाल के ऊपर एक दाग पैदा होता है। वह धीरे-धीरे बढ़ कर सम्पूर्ण शरीर में जलन और सूजन पैदा करता है। उस समय शरीर के भीतर कीड़ा पैदा हो जाता है और वह चलता-फिरता है। उस कीड़े की गति कभी-कभी अधिक तेज हो जाती है। उस दशा मे रोगी को असह्य कष्ट होता है। इसके लिए अनुभवी चिकित्सक बुलवाया जाता है। वह सूई के पतले धागे द्वारा उस कीड़े के सिर को पकड़कर निकालने की चेष्टा करता है। शरीर के भीतर उस धागे के टूट जाने अथवा रह जाने से कई गुना सूजन और जलन बढ़कर मवाद देने लगती है। रोगी की यह दशा बड़ी भयानक होती है।

भारतवर्ष के दूसरे स्थानों की तरह यहाँ पर भी शीतला और तिजारी के रोग पाये जाते हैं। शीतला का रोग प्राय: छोटे बच्चों को अधिक होता है। इस रोग की यहाँ पर चिकित्सा नहीं की जाती है। उसका सेहत होना शीतला माता के ऊपर छोड़ दिया जाता है। तिजारी और इस प्रकार के दूसरे रोगों की चिकित्सा होती है। परन्तु उपचार के लिए प्राचीन विचारों पर लोग अधिक विश्वास करते हैं।

दुर्भिक्ष– अकाल अथवा दुर्भिक्ष मरुभूमि के लिए एक साधारण रोग है। वहाँ के लोग कहा करते हैं कि भूखी माता के आने से दुर्भिक्ष अथवा अकाल पड़ता है। यहाँ पर ग्यारहवीं शताब्दी में एक अकाल पड़ा था और वह बारह वर्ष तक रहा था। उसके कारण राजस्थान के अनेक राज्यों को भीषण क्षति पहुँची थी। यो तो मरुभूमि में तीसरे–चौथे वर्ष अकाल पड़ा ही करता है। सन् 1812 ईसवी में जो अकाल पड़ा, वह चार वर्ष तक बराबर रहा। उसमें न जाने कितने लोगों की जानें गयी थीं। गरीब लोगों के समूह अपने–अपने स्थानों को छोड़कर गंगा के निकट मैदानों में चले गये थे और वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने अपने बच्चों को बेचकर अनाज प्राप्त किया था। मरुभूमि के राज्य के लिए दुर्भिक्ष और अकाल कितने भयानक होते हैं, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

फसल, पशु और वृक्ष– मरुभूमि के पशुओं में ऊँट विशेष स्थान रखता है। वह हल में जोता जाता है, उसके द्वारा कुए से पानी खींचा जाता है। ऊँट अपने मालिक के लिए मरुभूमि की यात्रा में पीने के लिए मश्कों में पानी ले जाता है और वह पानी कई दिनों तक काम देता है। ऊँट के पैरों की बनावट ऐसी होती है, जिससे वह मरुभूमि में चल सकता है। उसके मुख की बनावट ऐसी होती है, जिससे वह काँटेदार पेड़ों की पत्तियों को खाकर मरुभूमि में जीवित रह सकता है। यही कारण है कि वहाँ के लोग अधिकतर ऊँट रखते है। यह भी एक प्रकृति की विशेपता है कि अन्य स्थानों की अपेक्षा मरुभूमि के ऊँट अधिक श्रेष्ठ होते हैं। वहाँ के राज्यों में ऊँट युद्ध के काम में आते हैं। इसलिये सभी राजा अपने यहाँ अधिक ऊँट रखते हैं। जैसलमेर की सेना में ऊँटों की संख्या दो सौ है। वहाँ के सभी सरदार अपनी सेना रखते है और उस सेना में ऊँट भी होते हैं। प्रत्येक ऊँट पर दो आदमी बैठते हैं। एक का मुख ऊँट की तरफ और दूसरे का उसकी पूँछ की तरफ होता है। युद्ध में ऊँटों के प्रयोग कई प्रकार से होते हैं।

खर अर्थात् गधा– मरुभूमि में अन्य पशुओं में गधा भी पाया जाता है। नील गाय, सिंह और हिरन भी मरुभूमि के कुछ भागों में मिलते हैं। यहाँ पर बाघ, लोमड़ी, सियार और सिंह भी पाये जाते हैं। पालतू पशुओं में ऊँटों के अतिरिक्त घोड़े, बैल, गायें, भेड़ें और बकरियाँ भी पायी जाती हैं। गधे हल जोतने में भी काम आते हैं। बकरियों और भेड़ों को लोग अधिक संख्या में यहाँ पर पालते हैं। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि बकरियाँ कार्तिक से लेकर चैत तक बिना पानी के रह सकती है। लोगों का यह विश्वास सही नहीं है। हरी पत्ती और हरी घास खाने के कारण वे कई–कई दिनों तक बिना पानी के बनी रहती हैं, यह सम्भव है। दांऊदपोतरा और भट्टी पोह के थलों की बकरियाँ और भेड़ें गर्मी के आरम्भ में सिन्ध के मैदानों में चली जाती हैं, उनको रखने वाले गड़रिया लोग उनके दूध का मट्ठा बनाकर पीते हैं और उनके

मक्खन से जो घी तैयार करते हैं, उसे वे अनाज तथा दूसरी चीजों के बदले में दे देते हैं। ऊँटों के चराने वाले उनका दूध पीकर अपनी रक्षा करते हैं और रोटी के स्थान पर जंगली फल खाते हैं।

वृक्षों में करील अथवा खैर का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। खेजरी के वृक्ष के छिलके को सुखाकर आटा तैयार किया जाता है। इसको वहाँ की भाषा में सांग्री कहते हैं। झल के वृक्ष बैसाख और जेठ में फल देते हैं। पीलू भोजन के काम में आता है। वहाँ के लोग बबूल के गोंद को एकत्रित करते हैं। वहाँ बेरों के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के वृक्षों की संख्या वहाँ अधिक होती है। जवास के रस का गोंद तैयार किया जाता है, वह औषधियों में काम आता है।

करील वृक्ष को भारतवर्ष में सभी लोग जानते हैं। इसे कैर भी कहते हैं। भारत के दूसरे स्थानों में इसका अचार डाला जाता है। लेकिन मरुभूमि में वह भोजन के लिए एकत्रित किया जाता है। यह एक तरह की झाड़ी का वृक्ष है। इसकी ऊँचाई दस फीट से पन्द्रह फीट तक होती है। इसकी हरी-हरी शाखाओं में पत्तियाँ नहीं होतीं। उनमें लाल रंग का फूल निकलता है और फल काले रंग का होता है। खाने के पहले एकत्रित किये हुए करील के फल चौबीस घण्टे तक पानी में भिगोकर रखे जाते हैं। उसके बाद उस पानी को फेंककर दो बार दूसरे पानी से धोया जाता है। इसके पश्चात् उसे उबालकर नमक के साथ खाया जाता है। धनिक लोग घी में इसे तैयार करके रोटी के साथ खाते हैं। सभी लोग अपने घरों पर इसे सुखाकर रखा करते हैं।

सज्जी– यह एक छोटा सा पेड़ है। यह विशेषकर मरुभूमि के उत्तरी भाग में पैदा होता है। जैसलमेर के खदल नामक स्थान में इसके वृक्ष अधिक पाये जाते हैं और भी स्थान हैं, जिनमें सज्जी के पेड़ बहुत अधिक पाये जाते हैं। साफ सज्जी के छोटे-छोटे पेड़ों को जमीन खोदकर भर देते हैं और लगातार तीन-तीन, चार-चार दिनों के बाद जो सज्जी निकाली जाती है, उसको साफ करते हैं। इस निकाली हुई सज्जी का बहुत से लोग व्यवसाय करते हैं। सज्जी रुपये की एक सेर बिकती है। चारू और मारवाड़ के रहने वाले इसको खरीद लेते हैं और वे फिर दूसरे दुकानदारों को बेचकर लाभ उठाते हैं। यह सज्जी तैयार करके देश के सभी भागों में जाकर बिकती है। सिन्ध में इसका व्यवसाय अधिक होता है। यहाँ पर खरबूजा बहुत पैदा होता है। चिपरा, वामन और गोवर नाम की उनकी तीन किस्में होती हैं। यह खरबूजा खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है।

□

जयपुर का इतिहास

जयपुर राज्य की स्थापना व मुगल सम्बन्ध

अंग्रेज लेखकों ने राजस्थान का इतिहास लिखने में राज्य का नाम न देकर उसकी राजधानी का नाम शीर्षक में देकर लिखा है, जेसे मारवाड़ के स्थान पर जोधपुर और मेवाड़ के स्थान पर उदयपुर का नाम दिया है। जिस राज्य को हाडौती के नाम से लिखना चाहिए था, उसे उन्होंने कोटा और बूँदी का नाम दिया है। इसी प्रकार दूसरे राज्यों के सम्बन्ध में भी किया गया है। इसलिए पाठकों के सामने किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न होना चाहिए।

कछवाहा राजपूत जिस राज्य में रहते हैं, वह सर्वसाधारण में जयपुर के नाम से प्रसिद्ध है। चौहान और राठौर राजपूतों ने जिस प्रकार मरुभूमि की पुरानी जातियों को पराजित करके अपने राज्य कायम किये थे, ठीक उसी तरह जयपुर राज्य की भी स्थापना हुई थी। इस राज्य की प्रतिष्ठा करने वालों ने वहाँ के छोटे-छोटे राजाओ के शासन को मिटाया और उन सबके स्थान पर अपने राज्य की सृष्टि की। आज का विस्तृत जयपुर राज्य पहले ढूँढाड के नाम से प्रसिद्ध था। प्राचीन ग्रन्थों से मालूम होता है कि ढूँढाड वहाँ के एक प्राचीन स्थान का नाम था। उन ग्रन्थों से पता चलता है कि प्राचीन काल में बनेर नामक स्थान के पास ढूँढ नाम का एक प्रसिद्ध शिखर था। उसी से ढूँढाड नाम की उत्पत्ति हुई है। ढूँढ शिखर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि चौहान वंश के प्रसिद्ध राजा अजमेर के नरेश बीसलदेव ने इसी शिखर पर तपस्या की थी। उसने अपनी प्रजा के साथ भयानक अत्याचार किये थे। इसीलिए वह राक्षस होकर पैदा हुआ। इस जन्म में भी वह पहले के समान प्रजा का संहार करता रहा। वह अपने राज्य की प्रजा को खा जाया करता था। उसकी इस दशा में राज्य के लोगों ने उसके पौत्र को उसके सामने पहुँचा दिया। उसे देखकर वह सचेत हो उठा। अपने पौत्र का वह संहार न कर सका ओर जमुना नदी के किनारे पर जाकर उसने आत्महत्या कर ली।

यह जनश्रुति अब तक लोगों में चली आ रही है। ऐसा मालूम होता है कि राजा बीसलदेव अत्याचारी था और इसीलिए लोग उसे राक्षस कहा करते थे। वह प्रजा के साथ जिस प्रकार अत्याचार करता था, उसको प्रजा का संहार करना स्वाभाविक रूप से कहा जा सकता है। अपने वंशज पर इस प्रकार का अवसर आने के समय उसको ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए ढूँढ के शिखर पर जाकर तपस्या करने लगा। उस जनश्रुति का अभिप्राय कुछ इस प्रकार जान पड़ता है।

अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी। वहाँ के राजा रामचन्द्र के दूसरे पुत्र कुश से कुशवाहा अथवा कछवाहा वश की उत्पत्ति हुई। कुश के किसी वंशज ने अपने पूर्वजों की राजधानी को छोडकर शोण नदी के किनारे रोहतास नाम का एक दुर्ग बनवाया था। उसके बहुत दिनों बाद उसी वश के राजा नल ने सन् 295 ई में नरवर अथवा निषध नाम की राजधानी कायम की।[1]

राजा नल के उत्तराधिकारियो ने 'पाल' की उपाधि धारण की थी। राजा नल से तेंतीस पीढ़ियों के बाद सोढासिंह के पुत्र धोलाराय को उसके पिता के राज्य मे निकाला गया और उसने सन् 967 ईसवी मे ढूँढाड नाम की राजधानी कायम की।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि जयपुर का प्राचीन नाम ढूँढाड था। अंग्रेज लेखकों ने जयपुर को अम्बेर के नाम से लिखा है। अम्बेर आमेर के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस राज्य का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री हमे मिली हैं, उसी का हमे आश्रय लेना पड़ता है। राजा नल से इकतीस पीढीयों के बाद सोंढादेव ने नरवर मे शासन किया। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके भाई ने अपने भतीजे धोलाराय के-जो उस समय केवल शिशु अवस्था मे था-अधिकारो को छीन लिया और सिंहासन पर बैठा। धोलाराय की माँ अपने देवर का अत्याचार देखकर घबरा गयी और अपने पुत्र के प्राणो की चिन्ता करने लगी। वह किसी प्रकार अपने बालक की रक्षा करना चाहती थी। उसे अपने देवर से बहुत भय उत्पन्न हो गया था। उसको उससे सभी प्रकार की आशंकाये थीं। इसलिए उस माता ने अपने छोटे बच्चे के प्राणों की रक्षा के लिए भिखारिणी का रूप धारण किया और अपने बालक धोलाराय को कपड़ों में लपेट कर वह अपने नगर से निकल गयी। अपने बालक को लिये हुए भिखारिणी माता जयपुर राज्य से पाँच मील की दूरी पर खोह गाँव में पहुँची। उस गाँव में मीणा लोगों की आबादी थी। उस गाँव के बाहर एक स्थान पर रुककर उसने कुछ देर विश्राम करने का इरादा किया। इस प्रकार के कष्टों का सामना करने के लिए उसके जीवन मे यह पहला अवसर था। वह भूख और प्यास से पीडित हो रही थी। पैदल चलने के कारण वह बहुत थक गयी थी। अपने चारों तरफ विपदाओ का पहाड़ देखकर वह बहुत घबरा रही थी। उसकी समझ मे न आता था कि मेरे और मेरे बच्चे के भविष्य मे क्या होने वाला है? उसके छोटे बालक का मुख सूख रहा था, उसकी यह दुरवस्था देखकर भिखारिणी राजमाता की घबराहट बहुत बढ़ गयी। उस स्थान के निकट एक वृक्ष था। उसमे कुछ फल दिखायी पडे। रानी ने उसके फलों को लाकर अपनी क्षुधा मिटाने की इच्छा की। जिस पेड़ के नीचे वह रुकी थी, वहाँ पर अपने वस्त्रों मे छोटे बालक को लिटा कर वह फल लेने के लिए गयी।

कुछ लेखकों का कहना है कि बिहार का रोहतासगढ राजा हरिशचन्द्र के पुत्र रोहिताश्व का बनवाया हुआ है। साधारण तौर पर यह बात सही भी मालूम होती है। —अनु

एक दूसरे ऐतिहासिक विवरण से प्रकट होता हैं कि राजा नल ने सम्वत् 315 में नरवर की स्थापना की थी। परन्तु नल से धोलाराय तक तेंतीस पुरुषों का जन्म होता हैं। यदि इनमे से प्रत्येक ने बाईस वर्ष तक राज्य किया तो 736 वर्ष होते हैं। धोलाराय सम्वत 1023 मे निकाला गया था। इसलिए 276 को घटा देने से 297 वर्ष बाकी रहते हैं। इस प्रकार 54 वर्ष का अन्तर पडता है। यदि उनके शासन काल को 21 वर्ष का मान लिया जाये तो बहुत कम अन्तर रह जाता हैं और सम्वत् 351 में निषध राजधानी की स्थापना सही मालूम होती है।

फल लेकर राजरानी ने लौटते हुए दूर से देखा कि उसके बालक के मस्तक पर अपना फन फैलाये हुए एक साँप बैठा है। इस दृश्य को देखकर वह एक साथ काँप उठी और चिल्ला कर रो उठी। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ पर आ पहुँचा। रानी की इस दुरवस्था को देखकर उसने कहा- "आप घबराये नहीं। घबराने का कोई कारण भी नहीं है। बालक के मस्तक पर साँप का यह दृश्य उसके उज्जवल भविष्य की सूचना दे रहा है। आपका बालक किसी समय राज सिंहासन पर बैठेगा।"

ब्राह्मण के मुख से इस बात को सुनकर रानी को बहुत सन्तोष मिला। उसने ब्राह्मण से कहा- "इस समय मेरा यह बालक बहुत भूखा है।" वह कुछ और भी कहना चाहती थी, उसी समय उस ब्राह्मण ने खोह गाँव की तरफ संकेत किया। उसने बताया कि वहाँ जाने पर आपकी सभी प्रकार व्यवस्था हो जायेगी।

यह कहकर ब्राह्मण वहाँ से चला गया। बालक के मस्तक से साँप पहले ही हटकर चला गया था। रानी ने ब्राह्मण की बातों पर विश्वास किया और वह अपने बालक को लेकर खोह गाँव की तरफ रवाना हुई। उस नगर में प्रवेश करके रानी ने एक स्त्री से बातें कीं और पूछा- "क्या मुझे कोई नौकरानी बनाकर रख सकता है? मैं केवल भोजन और कपड़ा चाहती हूँ।"

वह स्त्री खोह गाँव के मीणा राजा के यहाँ महल में दासी थी। रानी की बात को सुनकर वह उसे अपने साथ महल में ले गयी और अपनी रानी से उसने बातें कीं। मीणा रानी ने धोलाराय की माँ को अपने यहाँ दासी बनाकर रख लिया और उसे अपनी दासियों के साथ रहने की आज्ञा दी। धोलाराय की माँ प्रसन्नता के साथ मीणा रानी की दासियों के साथ रहने लगी। उसने वहाँ पर किसी को अपना परिचय नहीं दिया। वहाँ रहते हुये उसको बहुत दिन बीत गये। एक दिन धोलाराय की माँ को वहाँ पर भोजन बनाने का कार्य करना पड़ा। उसका बनाया हुआ भोजन मीणा राजा लालनसी को बहुत पसन्द आया। राजा ने भोजन की प्रशंसा करते हुये कहा- "आज का भोजन बहुत स्वादिष्ट और मधुर बना है।"

मीणा राजा के इस प्रकार भोजन की प्रशंसा करने पर धोलाराय की माँ बुलायी गयी। उस समय धोलाराय की माँ को अपना परिचय देना पड़ा। मीणा राजा ने परिचय जानकर उसका बड़ा सत्कार किया और उस दिन से वह धोलाराय की माँ को बहन कहकर सम्बोधित करने लगा। धोलाराय उस दिन से मीणा राजा का भाञ्जा होकर वहाँ पर रहा। लगातार उसका आदर और सम्मान बढ़ता गया। अपनी अवस्था के अनुसार धोलाराय ने वहाँ पर रहकर क्षत्रियोचित योग्यता प्राप्त की। इन दिनों में दिल्ली के सिंहासन पर तोमर वंशी राजा था। उसने समस्त भारतवर्ष में अपनी प्रभुता का विस्तार किया था। दूसरे राजा उसे कर दिया करते थे। चौदह वर्ष की अवस्था मे धोलाराय को कर देने के लिए मीणा राजा ने दिल्ली भेजा। धोलाराय को इस कार्य के सम्बन्ध में पाँच वर्ष तक दिल्ली में रहने का अवसर मिला। इन्हीं दिनों में एक मीणा कवि के साथ उसका परिचय हुआ। धोलाराय एक राजपूत था। उसने राजवंश में जन्म लिया था। इसलिये उसके शरीर की रगों और नसों में राजपूती रक्त लहरें मार रहा था।

उसके मनोभावों में शासन की अभिलापा सजीव और शक्तिशाली हो रही थी। उसके जीवन में ऐसा होना सभी प्रकार स्वाभाविक था। मीणा कवि के साथ मित्रता वढ़ जाने पर धोलाराय ने उससे अपनी अभिलापा प्रकट की। कवि धोलाराय के मन के भावों से अपरिचित न था। किसी प्रकार की अभिन्नंता न होने के कारण दोनों मे सभी प्रकार की वातें प्रायः हुआ करतीं। उसके साथ परामर्श करने में धोलाराय कभी संकोच का अनुभव न करता। उसके मन की अभिलापा को समझकर मीणा कवि ने कहा- "मीणा राजा को नप्ट करके आप उसके सिंहासन के अधिकारी वन सकते हैं।"

धोलाराय को अन्धकार में प्रकाश दिखायी दिया। वह इसी प्रकार का परामर्श चाहता था। उसके मन की गम्भीरता को समझकर कवि ने कहा- "चिरकाल से प्रचलित प्रथा के अनुसार दीवाली के दिन सभी मीणा राज्य के सरोवर में स्नान करते हैं। उस समय यहॉ का राजा भी स्नान करने के लिए आता है। ऐसे अवसर पर अपने सैनिको को लेकर आप अकस्मात् उस पर आक्रमण कीजिए। उसके मारे जाने पर आपको यहॉ के सिंहासन पर वैठने का अवसर मिलेगा।"

कवि के इस परामर्श को सुनकर धोलाराय ने गम्भीरता के साथ विचार किया और उसने एक योजना वना डाली। दीवाली का त्यौंहार आने पर धोलाराय ने वड़ी सावधानी और वुद्धिमानी से काम लिया। उसने दिल्ली पहुँच कर सैनिक सहायता प्राप्त की ओर अपनी योजना के अनुसार वह एक राजपूत सेना के साथ खोह गॉव के समीप पहुॅच गया। मीणा लोगों के साथ स्नान के लिए सरोवर में प्रवेश करने पर धोलाराय ने एक साथ उस पर आक्रमण किया। राजा के वहुत से रक्षक सरोवर के भीतर मारे गये। धोलाराय ने अपने हाथ से मीणा राजा का संहार किया और इसी समय उसने मीणा कवि को भी-जिसने धोलाराय को इस प्रकार का परामर्श दिया था-मार डाला। उसको मारने के समय धोलाराय ने कहा- "जो अपने राजा के साथ विश्वासघात कर सकता है, वह संसार में किसी का विश्वासपात्र नहीं हो सकता।" धोलाराय ने मीणा राजा को मार कर खोह गॉव का अधिकार प्राप्त कर लिया। यही से दूँढाड़, आमेर अथवा वर्तमान जयपुर राज्य की सृष्टि हुई।

खोह गॉव पर अधिकार करने के वाद धोलाराय ने अपने राज्य को विस्तार देने की चेष्टा की। उन दिनों में जयपुर से तीस मील पूर्व की तरफ वाण गंगा के समीप दिओसा नामक स्थान में वड़गूजर राजपूत रहा करते थे। धोलाराय ने अपनी सेना लेकर उनके दुर्ग के पास जाकर वड़गूजर के राजा के पास सन्देश भेजा- "आप अपनी लडकी का विवाह मेरे साथ कर दें।"

वड़गूजर के राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और कहा कि हम दोनों ही सूर्यवंशी हैं। इसलिए यह विवाह नहीं हो सकता। लेकिन दोनों तरफ की वातचीत होने के पश्चात् वड़गूजर के सरदार ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उसने अपनी लड़की का विवाह धोलाराय के साथ कर दिया। वड़गूजर के राजा के कोई पुत्र न था। इसलिए उसने धोलाराय को अपने राज्य का उत्तराधिकारी वना दिया और उसके वाद उसने धोलाराय के हाथों में राज्य का प्रवन्ध सौंप दिया।

इस विवाह के उपरान्त धोलाराय की शक्तियाँ पहले की अपेक्षा अधिक विशाल हो गयीं। उसने अपने राज्य को बढ़ाने की इच्छा की। माची नामक स्थान में राव नाटू नाम का एक मीणा राजा रहता था। धोलाराय ने उसको पराजित करने का विचार किया और माची पर उसके आक्रमण करने पर दोनों ओर से युद्ध हुआ। उस युद्ध में धोलाराय की विजय हुई। मीणा लोगों की सेना मारी गयी। धोलाराय ने माची राज्य में पहुँचकर अपना अधिकार किया और खोह गाँव की अपेक्षा उस नगर को उसने अधिक पसन्द किया। इसी आधार पर वह अपनी राजधानी खोह गॉव से माची ले आया और वहॉ पर उसने एक नया दुर्ग बनवाया। उस दुर्ग का नाम उसने रामगढ़ रखा। इसके थोड़े ही दिनों के बाद धोलाराय ने अजमेर की राजकुमारी भारोनी के साथ विवाह किया। एक दिन धोलाराय अपनी रानी के साथ देवी के मन्दिर में दर्शन करने के लिए गया था। वहाँ से उसके लौटने पर ग्यारह हजार सशस्त्र मीणा सैनिकों ने एकत्रित होकर मार्ग में उसका सामना किया। धोलाराय निर्भीक और साहसी था। उसने एकत्रित मीणा लोगो के साथ युद्ध किया। शत्रुओं की सेना अधिक थी। इसलिए युद्ध करते हुए धोलाराय मारा गया। उसके मर जाने पर वे सैनिक वहॉ से भाग गये। धोलाराय की रानी गर्भवती थी इसलिए वह किसी प्रकार वहाँ से बच कर निकल गयी।

धोलाराय की मृत्यु के बाद उसकी विधवा रानी से एक बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम कॉकिल रखा गया। कॉकिल ने सिंहासन पर बैठकर ढूँढाड राज्य का उद्धार किया। उसका पुत्र मेदल भी अत्यन्त शूरवीर और पराक्रमी था। उसने अपनी सेना के साथ आमेर राज्य पर आक्रमण किया और मीणा लोगों को पराजित करके उसने आमेर पर अधिकार कर लिया। मेदल राव ने अपने पिता के राज्य की लगातार वृद्धि की। उसने नान्दला लोगों को जीतकर उनके स्थान गातूरगाती पर भी अधिकार कर लिया।

धोलाराय के वंशधर इन दिनों में अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। मेदलराव की मृत्यु हो जाने पर हणदेव ने उसके सिंहासन पर अधिकार किया। उसके राज्य के आस-पास दूर तक मीणा लोग स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। हणदेव ने लगातार उन लोगों के गाथ युद्ध किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का कुन्तल सिंहासन पर बैठा। उसने पहाडी लोगों पर अपना शासन कायम किया। भूडवाड़ नामक स्थान पर इन दिनों में एक चौहान राजा रहता था। कुन्तल के साथ उसकी लड़की के विवाह का प्रस्ताव आया। राव कुन्तल ने उसे स्वीकार कर लिया और जिस समय वह सेना लेकर भूडवाड़ जाने के लिए तैयार हुआ, मीणा लोगों ने उस समय उसके पास सन्देश भेजा कि "अगर आप हम लोगों के बीच से गुजरें तो अपनी पताका और नगाड़ा हम लोगो के अधिकार में छोड़ जावें।" राव कुन्तल ने मीणा लोगों के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसके फलस्वरूप राव कुन्तल को विरोधी मीणा लोगों के साथ युद्ध करना पडा। उस युद्ध में बहुत-से मीणा मारे गये और शेष पराजित होकर भाग गये।

राव कुन्तल की मृत्यु हो जाने पर पजून नामक कछवाहा राजपूत उसके सिंहासन पर बैठा। प्रसिद्ध कवि चन्दरबरदाई ने अपने ग्रन्थ में इसक वीरता का अद्भुत वर्णन किया है।

ढूँढाड में कछवाहों का उदय होने के पहले वहॉ पर बड़े विस्तार के साथ मीणा जाति के लोग रहते थे और यह जाति पॉच शाखाओं में विभक्त थी। अजमेर से लेकर जमुना

नदी तक विस्तृत पर्वत माला काली खो के नाम से प्रसिद्ध थी। मीणा लोग वहीं के मूल निवासी हैं। वे लोग अम्बादेवी के पुजारी थे और उसी के नाम से उन लोगों ने अपने राज्य का नाम अम्बेर अथवा आमेर रखा। वहाँ की पर्वत माला में जो लोग रहा करते थे, लोहवाँव, माची और वहुत से प्रसिद्ध नगर उनके अधिकार में थे। वावर और हुमायूँ तथा भारमल्ल के शासनकाल में मीणा लोग अत्यंत शक्तिशाली थे। राजपूत लोग उनसे सदा सशंकित रहते थे। उन स्वतंत्र मीणा लोगों के अधिकार में नाहन नाम का एक प्राचीन नगर भी था। भारमल्ल ने मुगलों की सहायता से उस नगर का विध्वंस और विनाश किया था। वहाँ पर जो मीणा लोग रहते थे, उनके वल और पराक्रम की प्रशंसा ग्रन्थों में पढ़ने को मिलती है। नाहन नगर में जो मीणा राजा रहता था, उसने अपने राज्य में वावन दुर्ग और तोरण द्वार वनवाये थे। दिल्ली के सिंहासन पर सवसे पहले जो मुसलमान वादशाह वैठा उस समय मीणा लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे। भारमल्ल ने नाहन का विध्वंस करके उसके स्थान पर मालिवाण नाम का नगर वसाया।

कुन्तल के वाद पजून उसके राजसिंहासन पर वैठा। उसके वल-विक्रम का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उसके साथ चौहान सम्राट पृथ्वीराज की वहन का विवाह हुआ था।* सिंहासन पर वैठने के समय पृथ्वीराज ने एक सौ अस्सी राजाओं को अपने यहाँ आमंत्रित किया था और आने वाले राजाओं में राव पजून को ऊँचा स्थान दिया गया। पृथ्वीराज के साथ अनेक युद्धों में राव पजून ने संग्राम किया और दो संग्रामों में इसको वहुत वड़ी ख्याति मिली। शहावुद्दीन गौरी को प्रथम युद्ध में पराजित करने का श्रेय वहुत-कुछ राव पजून को भी था। संग्राम से भागने के वाद पजून ने गौरी का पीछा किया और वह गजनी तक उसका पीछा करता हुआ गया था। चन्देलों के नगर महोवा पर अधिकार कर लेने से राव पजून की वड़ी प्रसिद्धि हुई थी। वह महोवा का शासक भी नियुक्त किया गया था। पृथ्वीराज ने कन्नौज के राजा जयचन्द की लड़की संयुक्ता को वलपूर्वक लाकर उसके साथ विवाह किया। उस समय पृथ्वीराज और जयचन्द में जो भीपण युद्ध हुआ था। उस युद्ध में पृथ्वीराज की तरफ से जिन चौंसठ राजाओं ने युद्ध किया, उन चौंसठ राजाओं मे एक राव पजून भी था। वह युद्ध भयानक रूप से लगातार पाँच दिन तक हुआ था। उस युद्ध में राव पजून ने कन्नौज की विशाल सेना के साथ भयानक संग्राम किया और उसके कारण पृथ्वीराज संयुक्ता को लेकर सफलतापूर्वक दिल्ली चला गया। उस युद्ध में यद्यपि राव पजून मारा गया, लेकिन पृथ्वीराज की सफलता का वहुत कुछ कारण राव पजून था। उसने प्राण देकर युद्ध मे पृथ्वीराज को विजयी वनाया। उसकी वीरता का वर्णन कवि ने अपने ग्रन्थ में वहुत अधिक किया है। राव पजून के साथ मेवाड़ का गहिलोत सामन्त भी उस युद्ध में शामिल था और वे दोनों एक साथ युद्ध करते हुए मारे गये। राव पजून के युद्ध की प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध कवि चन्द ने लिखा है- "जिस समय पृथ्वीराज का एक शूरवीर गोविन्दराय मारा गया, उस समय शत्रु पक्ष के लोग वहुत प्रसन्न हुये। परन्तु उसके कुछ ही समय के वाद राव पजून अपने दोनों हाथों से भीपण मार-काट करता हुआ आगे वढ़ा। उस समय चार सौ शत्रुओ ने एक साथ पजून पर आक्रमण किया। यह देखकर पीपा, अजान, वाहु, नरसिंह, कच्चरराय आदि सामन्तों ने पजून राव की सहायता में शत्रुओं के आक्रमण को रोकने

* दूसरे लेखकों के अनुसार पजून पृथ्वीराज का वहनोई नहीं, साला था। — अनुवादक

की चेष्टा की। दोनों ओर से तलवारें और भाले चल रहे थे और रणभूमि में सहस्त्रों की संख्या में शूरवीर घायल होकर गिरते हुये दिखायी दे रहे थे। रक्त की नदी बह रही थी। राव पजून ने एतमाद्र पर जोर के साथ आक्रमण किया। उसका कटा हुआ सिर नीचे गिरा। उसके गिरते ही शत्रुओं के सैंकड़ों भाले एक साथ राव पजून पर चले। पजून अपनी रक्षा न कर सका और वह भयानक रूप से घायल होकर गिर पड़ा। गोविन्दराय और राव पजून के मारे जाने के समय एक घड़ी दिन बाकी रह गया था। राव पजून के गिरते ही शूरवीर पाल्हन ने युद्ध में प्रवेश किया। राव पजून के भाई पाल्हन के पहुँचते ही युद्ध की गति फिर भयानक हो उठी। कुछ देर के संग्राम के बाद कन्नौज की सेना की गति मन्द पड़ गयी।''

राव पजून युद्ध में पृथ्वीराज की ढाल होकर रहता था। उसने अनेक भयानक अवसरो पर पृथ्वीराज की रक्षा की थी। कन्नौज की सेना के साथ होने वाले युद्ध में भी उसने अपनी जिस वीरता का परिचय दिया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने अगणित शूरवीरो का संहार किया था। उसके मारे जाने के बाद उसके भाई और उसके पुत्र ने युद्ध में एक बार शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे। राव पजून के पुत्र मलैसी के शरीर पर उस युद्ध में तलवारो के साथ जख्म भयानक रूप से हुये थे और उसके शरीर से इतना अधिक रक्त निकल रहा था कि उस रक्त से उसका घोडा भीग गया था।

चन्द कवि ने मलैसी की वीरता का भी बहुत वर्णन किया है। राव पजून के बाद उसका लडका मलैसी आमेर के सिंहासन पर बैठा। मलैसी के बाद आमेर के सिंहासन पर जो ग्यारह राजा बैठे, वे इस प्रकार हैं- (1) बीजलदेव (2) राजदेव (3) कल्हण (4) कुन्तल (5) जोणमी (6) उदयकर्ण (7) नरसिंह (8) वनवीर (9) उद्धरण (10) चन्द्रसेन और (11) पृथ्वीराज।

इन ग्यारह राजाओ मे दस राजाओं का कोई उल्लेख इतिहास में नही मिलता। पृथ्वीराज के सम्बन्ध में लिखा गया है कि उसके सत्रह लड़के पैदा हुये। उनमे पॉच की अकाल मृत्यु हो गयी थी, शेष बारह पुत्रो में पृथ्वीराज ने अपने राज्य को बाँट दिया था। उन दिनो मे आमेर राज्य की भूमि बहुत थोड़ी थी और यह राज्य बहुत छोटा समझा जाता था। इस राज्य के बारह टुकडे हो चुके थे और उसका प्रत्येक भाग पृथ्वीराज के एक-एक लड़के को मिला था। उदयकर्ण के शासनकाल में पारिवारिक संघर्ष पैदा हुआ। उसके पुत्र बालाजी ने अपना राज्य छोड़कर अमृतसर नामक नगर के साथ-साथ कुछ अन्य राज्यों की स्थापना की। शेखावाटी का विस्तार उस समय दस हजार वर्ग मील था। इस राज्य का वर्णन आवश्यकतानुसार आगे किया गया है।

पृथ्वीराज ने सिन्ध नदी के तट पर बसे हुये देवल नामक स्थान को विजय किया था। लेकिन वह अपने ही पुत्र भीम के द्वारा मारा गया। जिस भीम ने पिता को मारकर अक्षम्य अपराध किया था, उसका बदला उसके पुत्र आसकर्ण ने उसको दिया और वह भी अपने लड़के के द्वारा मारा गया। पिता की हत्या करने के बाद भीम सभी की ऑखों मे अपराधी बन गया था ओर इसलिये लोगो के उकसाने पर उसके पुत्र आसकर्ण ने उसकी हत्या की। आमेर राजवंश के इतिहास में पिता की हत्या करने वाले भीम और आसकर्ण का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

धोलाराय से लेकर पृथ्वीराज तक इस वंश के प्रत्येक राजा ने स्वतन्त्रतापूर्वक शासन किया। सम्राट पृथ्वीराज के समय राव पजून का शासन दिल्ली की अधीनता मे था। परन्तु पृथ्वीराज की तरफ से उसके शासन में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ। वल्कि सम्बन्धी होने के कारण सम्राट पृथ्वीराज के दरबार में राव पजून को सम्मानपूर्ण स्थान मिला था। आमेर के राजाओं में भारमल्ल ने सबसे पहले मुस्लिम शासन के प्रति अपना मस्तक नीचा किया और यवन सम्राट के साथ उसने सामाजिक सम्वन्ध कायम किया। वावर के शासनकाल में भारमल्ल ने उसकी अधीनता स्वीकार की और हुमायूँ के समय वह पाँच सहस्त्र सेना पर अधिकारी बनाया गया।

भारमल्ल के लड़के भगवानदास ने सिंहासन पर बैठने के वाद यवन सम्राट के साथ सामाजिक घनिष्ठता पैदा की। उसके फलस्वरूप वह बादशाह अकवर के दरवार में सम्मानपूर्ण माना गया। सम्राट अकबर शूरवीर, साहसी, दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। अपनी राजनीति के बल पर उसने राजपूत राजाओं पर अधिकार प्राप्त किया था। उसने राजपूतों को अपना शुभचिन्तक बनाने के लिए तलवार का ही नहीं, राजनीति का भी आश्रय लिया था। वह जानता था कि तलवार के बल पर जो अधिकार और प्रभुत्व प्राप्त किया जाता है, वह बहुत दिनों तक नही चलता। इसलिए उसने राजपूतों को मिलाने और उन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए जिस नीति का प्रयोग किया था, वह सर्वथा सफल हुई और उसके फलस्वरूप वह भारतवर्प का सबसे बडा सम्राट माना गया। अपनी इस नीति का श्रीगणेश अकवर ने भगवानदास से आरम्भ किया था। उसने किन उपायो से कछवाहा राजा भगवानदास को मिलाकर अपना लिया था, उसका विशेप उल्लेख मुझे कहीं पढने को नहीं मिला। सम्मान देकर कोई भी किसी के हृदय पर अधिकार कर सकता है, मालूम होता है कि अकवर ने भगवानदास के साथ इस नैतिक बल का प्रयोग किया था और उससे राजा भगवानदास इतना प्रभावित हुआ था कि उसने शाहजादा सलीम के साथ जो बाद मे जहाँगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपनी लडकी का विवाह कर दिया। उस लडकी से जहाँगीर के लडके खुसरो का जन्म हुआ।*

भगवानदास के भतीजे उत्तराधिकारी मानसिंह को अकबर के दरबार मे श्रेष्ठ स्थान मिला था। भगवानदास ने उस दरबार मे सम्मानित होकर सदा मुगल शासन का हित किया था और अनेक अवसरों पर अपने आपको सकट मे डालकर मुगल शासन का हित किया। खुतन से लेकर समुद्र तक कितने ही राज्यो मे अपनी तलवार से विजय करके वहाँ पर उसने मुगलों की पताका फहरायी थी। मानसिह ने उडीसा और आसाम को जीतकर उनको बादशाह अकबर

---

* मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा है कि हिजरी 993 सन् 1586 ईसवी में भगवानदास की लडकी का विवाह शाहजादा सलीम के साथ हुआ था। उस समय राजा भगवानदास, उसका गोद लिया हुआ पुत्र मानसिह और मानसिह का लडका-तीनो सम्राट की सेना में सम्मानपूर्ण स्थान पा चुके थे। मानसिह को अधिक गौरव मिला था, क्योंकि उसने कई अवसरों पर बादशाह की प्रशसनीय सहायता की थी।

मूल लेखक की उपरोक्त टिप्पणी का समर्थन दूसरे लेखको के द्वारा नहीं होता। उन लेखको का कहना है कि मानसिह भगवानदास का गोद लिया हुआ लडका नहीं था। बल्कि भगवन्तदास का लडका था और भगवानदास भगवन्तदास का भाई था। इस समय की सही घटनाये ये हैं कि राजा भारमल्ल ने अकबर के साथ अपनी लडकी का विवाह किया था। उसके बाद उसके बेटे भगवानदास ने अपनी लड़की का विवाह शाहजादा सलीम के साथ किया।

—अनुवादक

के अधीन बना दिया था। राजा मानसिंह से भयभीत होकर काबुल को भी अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। अपने इन कार्यों के फलस्वरूप मानसिंह बंगाल, बिहार, दक्षिण और काबुल का शासक नियुक्त हुआ था।

बादशाह अकबर ने राजपूत राजाओं पर प्रभुत्व कायम करने के लिए जिस नीति का आश्रय लिया था और उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़े थे, वह नीति किसी समय संकटपूर्ण भी हो सकती है, इसका स्पष्ट प्रमाण मानसिंह के द्वारा बादशाह अकबर को मिला था। जिन दिनों में बादशाह अकबर भयानक रूप से बीमार होकर अपने मरने की आशंका कर रहा था, मानसिंह ने अपने भाञ्जे खुसरो को मुगल सिंहासन पर बिठाने के लिए षड्यन्त्रों का जाल बिछा दिया था। उसकी यह चेष्टा दरबार में सबको मालूम हो गयी और वह बंगाल का शासक बनाकर भेज दिया गया। उसके चले जाने के बाद शाहजादा खुसरो को कैद करके कारागार में रखा गया। मानसिंह चतुर और दूरदर्शी था। वह छिपे तौर पर अपने भाञ्जे का पक्ष समर्थन करता रहा। मानसिंह के अधिकार में बीस हजार राजपूतों की सेना थी। इसलिए बादशाह ने प्रकट रूप में उसके साथ शत्रुता नहीं की। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि बादशाह ने दस करोड़ रुपये देकर मानसिंह को अपने अनुकूल बना लिया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा है कि हिजरी 1024 सन् 1615 ईसवी में मानसिंह की बंगाल में मृत्यु हुई। परन्तु दूसरे इतिहासकारों से पता चलता है कि वह उत्तर की तरफ खिलजी बादशाह से युद्ध करने के लिए गया था। वहाँ पर 1617 ईसवी में वह मारा गया।

राजा भगवानदास की मृत्यु हो जाने पर मानसिंह जयपुर के सिंहासन पर बैठा। मानसिंह के शासनकाल में आमेर राज्य ने बड़ी उन्नति की। मुगल दरबार में सम्मानित होकर मानसिंह ने अपने राज्य का विस्तार किया। उसने अनेक राज्यों पर आक्रमण करके जो अपरिमित सम्पत्ति लूटी थी, उसके द्वारा आमेर राज्य को शक्तिशाली बना दिया। धोलाराय के बाद जो आमेर राज्य एक साधारण राज्य समझा जाता था, मानसिंह के समय वह एक शक्तिशाली और विस्तृत राज्य हो गया था। भारतवर्ष के इतिहास में कछवाहों अथवा कुशवाहा लोगों को शूरवीर नहीं माना गया, परन्तु राजा भगवानदास और मानसिंह के समय कछवाहा लोगों ने खुतन से समुद्र तक अपने बल, पराक्रम और वैभव की प्रतिष्ठा की थी। मानसिंह बादशाह की अधीनता में था। लेकिन उसके साथ काम करने वाली राजपूत सेना बादशाह की सेना से अधिक शक्तिशाली समझी जाती थी। मानसिंह के मर जाने के बाद उसका बेटा राव भावसिंह आमेर के राज सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने स्वयं उसका अभिषेक किया और पञ्चहजारी मनसब का पद देकर उसको सम्मानित किया। लेकिन भावसिंह बुद्धिमान न था। वह मदिरा पीने का अधिक अभ्यासी था। सिंहासन पर बैठने के कई वर्ष बाद हिजरी 1030 मे अधिक मदिरा पीने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। इतिहास में उसके शासन का अधिक कोई विवरण नहीं लिखा गया।

भावसिंह के मरने के बाद उसका बेटा महासिंह राज सिंहासन पर बैठा।* महासिंह भी विलासी और अधिक मदिरा सेवी था। इसलिए थोडे ही दिनो के बाद उसकी भी मृत्यु हो

---

* महासिंह भावसिंह का बेटा नहीं था, बल्कि मानसिंह का पोता था। ऐसा कुछ लेखकों का कहना है।– अनु

गयी। मानसिंह के बाद आमेर के सिंहासन पर जो बैठे, उनकी अयोग्यता के कारण आमेर राज्य निर्बल पड़ गया। इन दिनों में जोधपुर के राजाओं ने मुगल दरबार में अपनी प्रतिष्ठा बना ली थी। महासिंह के मर जाने पर आमेर के सिंहासन पर क़ौन बैठेगा, उस राज्य में यह प्रश्न पैदा हुआ।

मानसिंह के बाद जिन दो अयोग्य उत्तराधिकारियों ने आमेर के सिंहासन पर बैठकर, राज्य को क्षीण और दुर्बल बनाया था, उसकी पूर्ति जयसिंह ने की। जयसिंह मिर्जा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा जयसिंह ने कई बातों में मानसिंह का अनुकरण किया। राजा मानसिंह ने बादशाह अकबर की सहायता करके जिस प्रकार मुगल दरबार में सम्मानपूर्ण पद प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार मिर्जा राजा जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के साथ उपकार किये। अनेक युद्धों में औरंगजेब के साथ रहकर जयसिंह ने उसके शत्रुओं से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। बादशाह औरंगजेब जयसिंह की वीरता और ईमानदारी को देखकर बहुत सन्तुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर उसने जयसिंह को छः हजारी मनसब का पद दिया।

मिर्जा राजा जयसिंह ने सभी प्रकार से मुगल-साम्राज्य की सहायता की। बादशाह के प्रभुत्व को बढ़ाने के लिए अनेक अवसरों पर उसने अद्‌भुत कार्य किये। दक्षिण में जिस शिवाजी के कारण बादशाह को बहुत समय से कोई सफलता न मिल रही थी और कई एक युद्धों में जिस शिवाजी ने बादशाह की फौज को छिन्न-भिन्न किया था, उस शिवाजी को बादशाह औरंगजेब के यहाँ कैदी बनाकर लाने का कार्य आमेर के राजा जयसिंह ने किया। कैद करने के समय राजा जयसिंह ने शूरवीर मराठा शिवाजी को वचन दिया था कि बादशाह के द्वारा आपका कोई अहित न होगा, इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। शिवाजी पर जयसिंह की इस बात का प्रभाव पड़ा था और उसने पूर्णरूप से जयसिंह का विश्वास किया था। लेकिन शिवाजी के बन्दी होकर आ जाने पर औरंगजेब ने उसके साथ विश्वासघात करने की चेष्टा की। शिवाजी उस समय बन्दी अवस्था में बादशाह की अधीनता मे था। उसने जयसिंह का विश्वास किया था। उसको जयसिंह पर किसी प्रकार का सन्देह न था। बादशाह औरंगजेब के पास आने पर उसने जयसिह के द्वारा कई एक अच्छी बातों की आशा की थी। परन्तु औरंगजेब उसका उलटा हुआ। जीवन की इस भीपण अवस्था में जयसिह ने अपने वचनों का पालन किया। उसने शिवाजी को विश्वास दिलाया था। वह शिवाजी के साथ विश्वासघात न कर सका। जयसिंह ने बादशाह के भय की परवाह न की और उसने दिल्ली से शिवाजी के भाग जाने में निर्भीक होकर सहायता की। इसका परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब से वह रहस्य अप्रकट न रह सका। बादशाह छिपे तौर पर जयसिंह से अप्रसन्न रहने लगा।

इन्हीं दिनो मे मुगल-सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए बादशाह औरगजेब के यहॉ संघर्ष पैदा हुआ। मिर्जा राजा जयसिह ने आरम्भ मे सुलतान दारा के पक्ष का समर्थन किया। लेकिन उसके बाद उसने दारा का पक्ष छोड दिया। औरंगजेब जयसिंह से बहुत ईर्ष्या करने लगा था और छिपे तौर पर उसके सर्वनाश की चेष्टा कर रहा था। भारतीय इतिहासकारों के अनुसार मिर्जा राजा जयसिह के अधिकार मे बाईस हजार अश्वारोही सेना थी और प्रथम

श्रेणी के बाईस प्रधान जागीरदार उसके नियन्त्रण में काम करते थे। जयसिंह ने एक दिन अपने बाईस शूरवीर जागीरदारों के साथ मुगल-दरबार में बैठकर अपने दोनों हाथों में एक-एक गिलास लेकर कहा- "मेरे हाथों का एक गिलास दिल्ली और दूसरा सितारा है।" जिस गिलास को उसने दिल्ली कहा, उसे पृथ्वी पर पटक दिया और दूसरे को टुकड़े-टुकड़े करके उसने कहा- "सितारा का पतन हो जाने से दिल्ली का सौभाग्य मेरे दाहिने हाथ में है। यदि मैं चाहूँ तो आसानी के साथ मैं दिल्ली का पतन कर सकता हूँ।"

दरबार में कही हुई जयसिंह की यह बात बादशाह औरंगजेब तक पहुँच गई। उसमें सब कुछ करने की क्षमता इन दिनों में थी। वह दिल्ली का सम्राट था। उसने न जाने कितने राजपूत राजाओं का सर्वनाश किया था। उसने जिस तरह से जसवन्तसिंह के जीवन का नाश किया था, उसी घृणित तरीके से उसने जयसिंह का सर्वनाश करने का निश्चय किया। औरंगजेब भयानक षड़यन्त्रकारी था, उसने जयसिंह के विरुद्ध एक विषैले षड़यन्त्र की रचना की। राजस्थान की प्रथा के अनुसार, बड़े राजकुमार को ही पिता का सिंहासन प्राप्त होता है। जयसिंह के दो लड़के थे-रामसिंह और कीरतसिंह। बड़ा होने के कारण रामसिंह पिता का उत्तराधिकारी था। लेकिन बादशाह औरंगजेब ने छोटे लड़के कीरतसिंह को उकसा कर कहा- "जयसिंह के मरने के बाद आमेर का राज्याधिकार रामसिंह को मिलेगा। लेकिन यदि तुम अपने पिता जयसिंह को मार डालो तो राजस्थान की प्रथा का उल्लंघन करके मैं तुमको आमेर के राज सिंहासन पर बिठाऊँगा। इस बात का मैं तुमको वचन देता हूँ।"

राजकुमार कीरतसिंह को संसार का ज्ञान न था। वह राजनीति की कलुषित चालों से अपरिचित था। बादशाह औरंगजेब ने सिखा-पढ़ाकर राजकुमार कीरतसिंह को जयसिंह के विरुद्ध तैयार कर दिया और कीरतसिंह ने अफीम के साथ विष मिलाकर अपने पिता जयसिंह को पिला दिया। उससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार पिता का सर्वनाश करके राज-सिंहासन प्राप्त करने के लिए कीरतसिंह बादशाह औरंगजेब के पास गया। बादशाह का मनोरथ पूरा हो चुका था। अब उसको कीरतसिंह की खुशामद करने की आवश्यकता न थी। उसने उसके साथ उपेक्षा पूर्ण व्यवहार किया और आमेर के राज सिंहासन पर बिठाने के बजाय बादशाह ने कीरत सिंह को कामा नामक एक जिला जागीर में दे दिया।

जयसिह की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का रामसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। जयसिंह को मुगल दरबार में छः हजारी मनसब का पद मिला था। परन्तु रामसिंह को दरबार में चार हजारी मनसब का पद दिया गया। इसके बाद उसे आसाम के युद्ध में जाना पड़ा। सन् 1690 में रामसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का विशन सिंह आमेर के राज सिंहासन पर बैठा।

जयसिह के बाद आमेर राज्य का फिर से पतन आरम्भ हुआ। इन दिनों में वहाँ का शासन मुगल बादशाह की उंगलियों पर चल रहा था। बादशाह औरंगजेब किसी का शुभचिन्तक न था। जिसने अपने पिता, भाइयो और बहनों का सर्वनाश किया था, वह किसी दूसरे का शुभचिन्तक कैसे हो सकता था। स्वाभिमानी जयसिंह ने कभी औरंगजेब के षड़यन्त्रों की परवाह न की थी। उसने शिवाजी को जो वचन दिया था, उसकी उसने पूर्ण रूप से रक्षा की और

उसके फलस्वरूप उसके प्राणों की हत्या हुई। अपनी ईमानदारी का यह पुरस्कार बादशाह औरंगजेब से जयसिंह को मिला।

इन दिनों में आमेर का राज्य बहुत निर्बल पड़ गया था। दिल्ली दरबार में उस राज्य को जो सम्मान प्राप्त हुआ था, वह भी अब पहले का-सा न रह गया था। इसलिए विशन सिंह को तीन हजारी मनसब का पद मिला। वह बहुत दिनों तक जीवित न रहा। सन् 1700 में वह बहादुर शाह के साथ काबुल के युद्ध में गया था। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

अध्याय-56

राजा सवाई जयसिंह व आमेर राज्य

प्रथम राजा जयसिंह ने जिस प्रकार मिर्जा राजा जयसिंह के नाम से प्रसिद्धी पायी थी, ठीक उसी प्रकार द्वितीय राजा जयसिंह सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बादशाह औरंगजेब के शासन के चवालीसवें वर्ष सन् 1699 ईसवी मे वह सिंहासन पर बैठा। इसके छः वर्ष के बाद औरंगजेब की मृत्यु हुई। सवाई जयसिंह ने दक्षिण के युद्ध में अपने साहस और शौर्य का परिचय दिया था। औरंगजेब की मृत्यु के पहले मुगल दरबार में सिंहासन का संघर्ष पैदा होने पर सवाई जयसिंह ने आजमशाह के लड़के शाहजादा बेदार बख्त का पक्ष लिया और उसकी सहायता के लिए वह धौलपुर के युद्ध में गया था। उस संग्राम में बेदार बख्त मारा गया और शाह आलम बहादुर शाह के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। सवाई जयसिंह ने बेदार बख्त का पक्ष लेकर शाह आलम का विरोध किया था। इसलिए आमेर का राज्य मुगल साम्राज्य से अलग कर दिया गया और सम्राट शाह आलम की तरफ से एक व्यक्ति आमेर राज्य का शासक बनाकर भेज दिया गया। सवाई जयसिंह ने बादशाह के इस कार्य को सहन नहीं किया। उसने कछवाहों की सेना लेकर मुगलों का सामना किया और उसने बादशाह की फौज को पराजित करके भगा दिया। इस घटना के बाद सवाई जयसिंह और बादशाह के बीच भयानक शत्रुता पैदा हो गयी। सवाई जयसिंह ने उस शत्रुता की परवाह न की और मुगलों का सामना करने के लिए उसने मारवाड़ के राजा अजीत सिंह के साथ सन्धि कर ली।

सवाई जयसिंह ने चवालीस वर्ष तक आमेर के सिंहासन पर बैठकर शासन किया। इस बीच में उसे कई बार युद्ध करने पड़े। वह मेवाड़ और बूंदी राज्य का कठोर शत्रु था। उसकी इस शत्रुता का वर्णन मेवाड़ और बूंदी राज्य के इतिहास में किया गया है। सवाई जयसिंह के शासनकाल में मुगल-साम्राज्य में अराजकता की वृद्धि हो रही थी और उसके फलस्वरूप तैमूर के वंशजों का शासन बड़ी तेजी के साथ छिन्न-भिन्न होता जा रहा था। सवाई जयसिंह स्वाभिमानी राजपूत था और अपने स्वाभिमान के कारण ही उसको कई वार युद्ध करना पड़ा। उन युद्धों में उसने सदा अपने गौरव की रक्षा की। मुगलो की विशाल शक्तियाँ उसे मिटा न सकीं।

शासन में राजनीति और न्याय के नाम पर सवाई जयसिंह का स्थान ऊँचा है, इसमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि विदेशी इतिहासकारों ने निष्पक्ष होकर उसके गौरव का वर्णन नहीं किया। सवाई जयसिंह ने अपने नाम पर जयपुर नामक राजधानी की स्थापना की। उस राजधानी में शिल्प और विज्ञान की वहुत उन्नति हुई। जिसके कारण प्राचीन आमेर की राजधानी का गौरव फीका पड़ गया। इन दोनो राजधानियों मे छः

मील की दूरी थी और यह दूरी बने दुर्गों की श्रेणी के द्वारा मालूम न पड़ती थी। उसका निर्माण वैज्ञानिक रूप से किया गया था। उसमे बने हुए राज मार्ग अनेक प्रकार से सुविधापूर्ण थे। कहा जाता है कि विद्याधर नामक एक बंगाली ने इस राजधानी का नक्शा तैयार किया था। सवाई जयसिंह ने ज्योतिष विज्ञान और इतिहास में बड़ी योग्यता प्राप्त की थी। विद्याधर बंगाली उसके कार्य मे प्रधान सहयोगी था। यों तो अनेक राजपूत राजाओं ने ज्योतिष ज्ञान प्राप्त किया था परन्तु सवाई जयसिह ने विशेष रूप से ज्योतिष में अधिकार प्राप्त किया। अपनी शिक्षा और अध्ययन के द्वारा वह एक अच्छा वैज्ञानिक बन गया। ज्योतिष में उसकी बढ़ी हुई योग्यता को देखकर दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह ने पंचांग के संशोधन का कार्य उसको सौंपा था। राजा सवाई जयसिंह को चन्द्रमा, सूर्य और दूसरे ग्रहों तथा नक्षत्रों के सम्बन्ध में बहुत अच्छा ज्ञान था। इसके लिए उसने अनुभव और ज्ञान से अनेक प्रकार के यंत्रों की रचना की थी और दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा आदि प्रसिद्ध नगरों मे विशाल मंदिर बनाकर उसने अपने समस्त यंत्रों को वहाँ पर रखा था। इस प्रकार के कार्य में सवाई जयसिंह को अत्यधिक रुचि थी और उस रुचि के कारण उसे प्रशंसनीय सफलता मिली। भारत के अनेक प्रसिद्ध नगरों मे उसके द्वारा जो मान-मन्दिर बने थे और उनमें उसके द्वारा जो यंत्र रखे गये, उनकी प्रशंसा उस विषय में अनेक विदेशी विद्वानों ने की है।* जयसिंह ने अपने यंत्रों का आविष्कार करने के पहले समरकन्द के राज-ज्योतिषी उलगबेग के बनाये हुये यन्त्रों का प्रयोग किया था। परन्तु उससे उनको संतोष न मिला। इसके बाद सात वर्ष तक अनेक प्रकार की परीक्षायें और अनुभव करके उसने अपने यन्त्रों की रचना का कार्य आरम्भ किया। इन्हीं दिनों में मैन्युअल नामक एक मिशनरी पादरी पुर्तगाल से भारत में आया था। उससे मिलकर सवाई जयसिंह ने पुर्तगाल-राज्य की ज्योतिष के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की और इस कार्य के लिए उसने अपने कई योग्य सहयोगियो को उस पादरी के साथ पुर्तगाल भेजा था। वहाँ के राजा ने जेवियर डिसिल्वा नामक एक व्यक्ति को भारत मे भेजा। उसने जयपुर में आकर पुर्तगाल के डि ला हायर के बनाये हुये यन्त्र सवाई जयसिंह को दिये थे। उन यन्त्रों की परीक्षा करके सवाई जयसिंह ने चन्द्रमा के स्थान के सम्बन्ध में आधी डिग्री की भूल साबित की और इस बात को स्वीकार किया कि दूसरे ग्रहों के सम्बन्ध में इन यन्त्रों में इस प्रकार की भूल नहीं है। सवाई जयसिंह ने एक तुर्की ज्योतिषी के बनाये हुये यन्त्रो के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार का निर्णय दिया था।

ज्योतिष-विज्ञान में उन्नति करने और मान मन्दिर बनवाने के सिवा सवाई जयसिंह ने यात्रियो की सुविधा के लिए अपने राज्य में बहुत-सा धन व्यय करके अनेक धर्मशालायें बनवायी हैं। इसमे सन्देह नहीं कि उसके हृदय मे सार्वजनिक हितो के लिए उदारता थी। उसके अनेक कार्यो के द्वारा उसके इस उज्जवल हृदय का प्रमाण मिलता है। यह बात सही है कि राजस्थान के अनेक राजपूत वीरो मे सवाई जयसिंह की अपेक्षा अधिक साहस और शौर्य था। लेकिन अन्य गुणों के सम्बन्ध में जो ख्याति सवाई जयसिंह को मिली, किसी दूसरे को नहीं मिली। उसके शासनकाल में सम्पूर्ण देश मे अविराम युद्ध हो रहे थे और मुगल बादशाह के

* काशी के मान मदिर मे जाने का जिनको अवसर मिला है, उन्होने वहाँ पर इस प्रकार के अनेक यत्र और उसकी दूसरी सामग्री देखी होगी। यह बात अवश्य है कि इतना समय बीत जाने के बाद उसके यत्रों आर उपकरणो की अवस्था पहले की सी न रह गयी हो। उन यत्रो को देखकर अनेक पश्चिमी ज्योतिषियो ने सवाई जयसिंह की प्रशसा की है।

दरवार में पड़यन्त्रों का अटूट जाल बिछा हुआ था, उस समय सवाई जयसिंह वर्तमान युद्धों और पड़यन्त्रों से अपने आपको पृथक न रख सका। कदाचित ऐसा सम्भव भी न था। मुगल साम्राज्य की शक्तियाँ क्षीण पड़ गयी थीं, चारों ओर अराजकता बढ़ रही थी और वाहरी जातियों लूट-मार करके देश का सर्वनाश कर रही थीं, उन संकटपूर्ण दिनों में भी सवाई जयसिंह ने आमेर राज्य की सम्पत्ति और उन्नति की अनेक प्रकार से रक्षा की थी। इससे उसकी योग्यता का प्रमाण मिलता है। सवाई जयसिंह से यह छिपा ना था कि निकट भविष्य में मुगल साम्राज्य का पतन होने जा रहा है, लेकिन उस समय भी अपने राज्य को सुरक्षित रखने के साथ-साथ उसने अवसरवादी वन कर कुछ लाभ नहीं उठाया। उसने वादशाह के साथ कभी विश्वासघात करने का विचार नहीं किया। अवसरवादी होकर नाम कमा लेने से मनुष्य की श्रेष्ठता का परिचय नहीं मिलता और न इस प्रकार प्राप्त की हुई उन्नति अधिक समय तक स्थाई होकर रहती हैं। जिस समय मुगल दरवार में फर्रूखसियर का संहार करके राज्याधिकार छीन लेने का पड़यन्त्र चल रहा था, उस समय कई एक राजाओं ने उसका साथ दिया था। उन राजाओं में सवाई जयसिंह भी एक था। फर्रूखसियर में कई एक निर्वलतायें थीं। वह अपने पूर्वजों की तरह योग्य और साहसी न था। यदि उसमें कमजोरियाँ न होतीं तो सवाई जयसिंह की तरह के राजाओं की सहायता से उसका कभी अकल्याण न होता।

मेवाड़ के राजवंश के साथ सवाई जयसिंह ने राजनीतिक और सामाजिक सम्वन्ध थे। इस प्रकार की वातों का वर्णन मेवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है। जिस समय सैयद वन्धुओं ने फर्रूखसियर को मारकर अपना प्रभुत्व कायम किया था, उस समय राजस्थान का कोई भी राजा सभी प्रकार का लाभ उठा सकता था। लेकिन जयसिंह ने ऐसा नहीं किया। फर्रूखसियर को अयोग्य समझ कर और उसके मारे जाने पर वह अपनी राजधानी लौट आया और ज्योतिष-सम्वन्धी वातों के अध्ययन तथा मनन में लीन रहने लगा। फर्रूखसियर के मारे जाने के वाद मुगल राज्य में राजनीतिक विप्लव हुये। तीन वर्षो के वाद सन् 1721 ईसवी में वादशाह मोहम्मदशाह के द्वारा दोनों सैयद वन्धु मारे गये। इसके वाद जितने भी विप्लव हो रहे वे, शान्त हो गये। विप्लव के तीन वर्षो में सवाई जयसिंह अपनी राजधानी में रहकर ज्योतिष विज्ञान की उन्नति में लगा था। राज्य में शान्ति की व्यवस्था करने पर वादशाह ने सवाई जयसिंह को अपने यहाँ वुलाया और उसको आगरा तथा मालवा का शासक नियुक्त किया। जयसिंह ने शान्तिपूर्ण दिनों में मान मन्दिरों के निर्माण का कार्य किया था। मान मन्दिरों का निर्माण सवाई जयसिंह के जीवन का एक श्रेष्ठ कार्य था।* उसे इस विषय से इतना स्नेह था कि वह संसार

---

* सवाई जयसिंह ने अपने लेखों में स्वीकार किया है कि मैंने सन 1728 ईसवी में ज्योतिष गणना और यन्त्र वनाने के कार्य को समाप्त किया। इसके पहले सात वर्षों तक मैं इस कार्य में विशेष रूप से लवलीन रहा। उन दिनों में मैंने और कोई विशेष कार्य नहीं किया।

डाक्टर डब्ल्यू हण्टर ने भारत में आने पर सवाई जयसिंह के वनवाये हुए मान मन्दिरों और ज्योतिष यंत्रों की परीक्षा करके जयसिंह की योग्यता की प्रशंसा की। उज्जैन जाने पर डाक्टर हण्टर ने ज्योतिष के एक युवक पण्डित से वातचीत की। उस युवक का पितामह राजा सवाई जयसिंह का घनिष्ठ मित्र था और उसे ज्योतिषराय की उपाधि मिली थी। राजा जयसिंह ने उसे पाँच हजार रुपये वार्षिक की जागीर भी दी थी। मराठों के अत्याचारों से वह जागीर अव नष्ट हो गयी है। डाक्टर हण्टर ने उस युवक के साथ ज्योतिष के सम्वन्ध में वातचीत करके उनकी योग्यता को स्वीकार किया और उसकी प्रतिभा की प्रशंसा की। डाक्टर हण्टर के उज्जैन से चले जाने के वाद सन 1793 ईसवी में राजा सवाई जयसिंह की जयपुर में मृत्यु हो गयी।

प्रसिद्ध लेखक स्काट ने वादशाह औरंगजेव के उत्तराधिकारियों पर एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। उसमें लेखक ने राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु का मार्मिक वर्णन किया है।

के दूसरे देशों से ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वानों को अपने यहाँ बुलाया करता था और उनका बहुत सम्मान करता था। उसके साथ देश के अनेक विद्वान ज्योतिषी रहा करते थे और राज्य की तरफ से उनको जागीर मिली हुई थी।

ज्योतिष के अध्ययन और मनन में लगे रहने पर भी सवाई जयसिंह ने अपने राज्य आमेर की अनेक प्रकार से उस समय रक्षा की थी, जब भारतवर्ष में आपसी विद्रोह के साथ-साथ आक्रमणकारी जातियों के लगातार अत्याचार हो रहे थे। मुगल बादशाह के दरबार मे रहकर चिरकाल से चले आ रहे जजिया कर को खत्म करा देने का उसने सफल प्रयत्न किया था। आमेर राज्य के निकट अधिक सख्या मे शक्तिशाली जाट लोग रहते थे और उनके द्वारा आमेर राज्य मे भयानक उत्पात हुआ करते थे। राजा सवाई जयसिंह ने बडी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता के साथ उनका दमन किया।

सन् 1732 ईसवी मे शासक नियुक्त होने पर जयसिंह को मराठों के साथ संघर्ष करना पडा था। उन दिनो मे सगठित होकर उन लोगों ने देश मे भयानक अत्याचार आरम्भ कर दिये थे। मराठों की संगठित शक्तियों को देखकर सवाई जयसिंह ने समझ लिया कि उनको रोक सकना बहुत कठिन है। इसलिए उसने मराठो के नेता बाजीराव के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के सम्बन्ध मे इतिहास में कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, जिससे उसका स्पष्टीकरण हो सके। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस सन्धि का कारण क्या था। इस देश के एक ऐतिहासिक ग्रन्थ से पता चलता है कि वे दोनों एक ही देश के रहने वाले थे और उन दोनों का एक ही धर्म था, इसलिए उनमें सन्धि हो गयी। यद्यपि यह बात बहुत संगत नहीं मालूम होती। हमारा अनुमान है कि उन दोनो के बीच सन्धि हो जाने का कोई विशेष कारण था। लेकिन वह कारण क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। बाजीराव के साथ उसकी सन्धि हुई और उसके फलस्वरूप कोई संघर्ष नही बढा। सवाई जयसिंह की सहायता से ही बाजीराव मालवा का सूबेदार बना था। उस समय की घटनाओ के आधार पर इस देश के कुछ लेखको ने लिखा है कि सवाई जयसिह ने राजस्थान में मराठो के आने का रास्ता खोल दिया था। यह धारणा भी बहुत सही नहीं मालूम होती। इसलिये कि सवाई जयसिंह की सन्धि के बाद मराठों के आक्रमण और अत्याचार कुछ दिनों के लिए खत्म हो गये। यद्यपि उसके कुछ समय बाद वे फिर से आरम्भ हुए और दिल्ली तक वे आक्रमण पहुँच गये। सन् 1739 ईसवी में नादिरशाह के भारत पर आक्रमण करने पर राजपूत राजाओ ने मुगलो की तरफ से उसके साथ युद्ध नहीं किया। इसके कई कारण थे। नादिरशाह ने जिस विशाल सेना को लेकर भारत पर आक्रमण किया था, उसका सामना करना और उसे पराजित करना आसान न था। इस बात को राजपूत राजा जानते थे। एक कारण यह भी था कि राजपूतो के साथ मुगल बादशाहो के जो सम्बन्ध बहुत पहले से चले आ रहे थे, वे बहुत दिनो से निर्बल और शिथिल पड गये थे।

राजा सवाई जयसिह के जीवन की अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके कारण उसे गौरव मिला। यहाँ पर उनमें से कुछ घटनाओ का उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। राजा विशन सिह के दो लडके पैदा हुये थे। एक का नाम था जयसिह और दूसरे का नाम था विजय सिह। दोनो का जन्म सौतेली माताओ से हुआ था। इस सम्बन्ध के कारण किसी अमंगल से विजय सिह को क्षति न पहुँच सके, इसके लिए उसकी माता सतर्क रहती थी। उसने बहुत

कुछ सोच-समझकर अपने पुत्र को अपने पिता के यहाँ भेज दिया। पुत्र के बड़े होने पर बादशाह की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उसने विजय सिंह को मुगल-दरबार में भेजा और इसके लिए उसने अपने बहुमूल्य आभूपण दरबार के प्रधान लोगो को पुत्र के द्वारा भेजे। वे आभूपण वहाँ पर उपहार में दरबार के अमीरों, उमराओं और अधिकारियों को दिये गये। इस प्रकार मुगल प्रधानमन्त्री कमरुद्दीन की सहानुभूति विजय सिंह के पक्ष में प्रास की गई। आमेर राज्य में बसवा नाम का नगर अधिक उपजाऊ और दूसरी बातों में भी बहुत प्रसिद्ध था। विजय सिंह उस नगर का अधिकार प्राप्त करना चाहता था और इसी उद्देश्य से उसने अपने पक्ष नं मुगल-दरबार की सहानुभूति प्राप्त की थी। यह बात मालूम होने पर आमेर के राजा जयसिंह ने अपने भाई विजय सिंह की अभिलापा बिना किसी प्रकार के संकोच के पूरी कर दी। विजय सिंह को इससे बहुत संतोप मिला। लेकिन दोनों भाइयों की माताओं में संतोप के स्थान पर ईर्ष्या भाव बढ़ने लगा। विजय सिंह की माता ने एक दिन अपने पुत्र से कहा- ''तुम प्रधानमन्त्री कमरुद्दीन के पास जाओ और कहो कि बादशाह से कहकर तुम्हें आमेर के सिंहासन पर बिठावे। प्रधानमंत्री यदि चाहे तो वह यह कार्य तुरन्त करा सकता है। इस सहायता के लिए पाँच करोड़ रुपये देने का तुम प्रधानमंत्री से वादा करो। बादशाह से यह भी वादा करना कि उसके आदेश पर मैं पॉच हजार अश्वारोही सेना लेकर सदा मुगल-राज्य की सेवा करूँगा।''

विजय सिंह ने अपनी माता की आज्ञा का पालन किया। वह प्रधानमंत्री के पास गया और माता के समझाने के अनुसार उसने सब कुछ उससे कहा। प्रधानमंत्री विजय सिंह को लेकर बादशाह के पास गया। बादशाह ने विजय सिंह की बातों को सुना। उसने प्रधानमंत्री से पूछा- ''विजय सिंह के इन वादों की जमानत कौन देगा?''

प्रधानमंत्री ने तुरन्त बादशाह से कहा, ''विजय सिंह के इन वादों की जमानत मैं दूँगा। मैं उसकी तरफ से आपको यकीन दिलाता हूँ कि आमेर राज्य के सिंहासन पर बैठने पर विजय सिंह आपको पॉच करोड़ रुपये देगा और आपके हुक्म पर अपने पॉच हजार अश्वारोही सैनिकों के साथ वह सदा तैयार रहेगा।''

प्रधानमंत्री की इन बातों को सुनकर बादशाह ने विजय सिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसने विजय सिंह को आमेर का राज्य देने के लिए अपने प्रधानमंत्री से सनद तैयार करने के लिए कहा। इससे पहले किसी समय सवाई जयसिंह ने खान दौरान खॉ नामक मुसलमान अमीर से पगड़ी बदलकर उसके साथ भाई का सम्बन्ध कायम किया था। वह खान इन दिनों मे बादशाह के यहॉ उच्चाधिकारी था। उसने जब सुना कि बादशाह जयसिंह को सिहासन से उतार कर विजय सिंह को राज्य का अधिकार देने की तैयारी कर रहा है तो उसने कृपाराम नामक दूत को बुलाकर यह समाचार सुनाया और उसने कृपाराम को जयसिंह के पास भेज दिया।

इन दिनों मे कमरुद्दीन खॉ का बादशाह के दरबार में बहुत प्रभाव था और उसने अपने कार्यो के द्वारा दरबार मे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था। जयसिंह उस समाचार को पाकर चिन्तित हो उठा। उसने तुरन्त अपने मन्त्री को बुलाकर दूत के द्वारा आया हुआ पत्र दिया। उसके मन्त्री ने बडी गम्भीरता के साथ सोचकर कहा कि वर्तमान सकटपूर्ण परिस्थिति

में तलवार की सहायता नहीं ली जानी चाहिए। ऐसे समय में राजनीतिक कौशल से ही सफलता प्राप्त हो सकती है। विजय सिंह ने जिस प्रकार षड़यन्त्र का आश्रय लिया है, वह राजनीतिक चालों से ही छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। अपने मन्त्री के परामर्श के अनुसार, सवाई जयसिंह ने अपने सामन्तों को बुलाने के लिए सन्देश भेजा। सवाई जयसिंह का सन्देश पाने पर नाथावत वंश के प्रधान सामन्त मोहन सिंह, बॉसखो के सामन्त दीपसिंह, कुम्भानी, ब्रह्म शिव पोता सामन्त जोरावर सिंह, नरूका सामन्त हिम्मत सिंह, धूला के सामन्त कुशल सिंह, मोजावाद के सामन्त भोजराज और माओली के सामन्त फतेह सिंह आदि आमेर राज्य की राजधानी में आकर एकत्रित हुए। उन सबके आने पर राजा सवाई जयसिंह ने दरवार में बैठकर कहा- "आप सबने मुझे आमेर के राज-सिंहासन पर बिठाया है। मेरा भाई विजय सिंह वसवा नगर प्राप्त करने के लिए बादशाह के यहाँ चेष्टा कर रहा था। मैंने जव सुना तो हर्षपूर्वक वह नगर मैंने उसको दे दिया। अब नवाब कमरुद्दीन खॉ बलपूर्वक इस सिंहासन से मुझे उतार कर राज्य का अधिकार मेरे भाई विजयसिंह को देना चाहता है।"

राजा जयसिंह की बातो को सुनकर कुछ समय तक सामन्तों ने आपस में परामर्श किया और फिर एक मत होकर उन लोगों ने कहा- "वसवा नगर देकर आपने अपने भाई के साथ उदारता का परिचय दिया है। उस नगर को दे देने के बाद हम सव लोग एक मत होकर इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि जैसे भी हो सकेगा, विजय सिंह द्वारा होने वाले उपद्रवों को हम लोग शान्त करेंगे।"

सामन्तों की इस बात को सुनकर सवाई जयसिंह ने बसवा नगर का अधिकार-पत्र लिख कर सामन्तो को दे दिया। इसके बाद सभी सामन्तों ने अपने प्रतिनिधियों को भेजकर विजय सिंह के उपद्रव को शान्त करने की चेष्टा की। उन सब के उत्तर में विजय सिंह ने कहा- "मुझे अपने भाई के दिये हुए अधिकार-पत्र पर विश्वास नहीं है।"

विजय सिंह का उत्तर पाकर सभी सामन्तों ने उसको विश्वास दिलाते हुए प्रतिज्ञा की कि "यदि राजा जयसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा भंग की तो हम सब लोग आपका समर्थन करेंगे और राज्य के सिंहासन पर आपको बिठावेंगे।"

सामन्तो की इस प्रतिज्ञा पर विजय सिंह राजी हो गया और उसने राजा जयसिंह का दिया हुआ अधिकार-पत्र स्वीकार कर लिया। उस अधिकार-पत्र को लेकर विजय सिंह कमरुद्दीन खॉ के पास गया और उस अधिकार-पत्र को दिखा कर उसने सब बाते कहीं। कमरुद्दीन खॉ को उस अधिकार-पत्र पर सतोष न हुआ। लेकिन उसने बसवा नगर पर अधिकार करने के लिए विजय सिंह से कहा और उसकी सहायता के लिए खान दौरान खॉ और कृपा राम को साथ भेजा।

विजय सिह के बसवा नगर को स्वीकार कर लेने पर आमेर राज्य के सामन्तों को प्रसन्नता हुई। उन लोगों ने दोनो भाइयो मे प्रेम और सहानुभूति पैदा करने के लिए चेष्टाएँ कीं। उन लोगो ने विजय सिह को राजधानी लाकर राजा जयसिह से मिलाने की कोशिश की। परन्तु विजय सिंह राजधानी में आने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह जयपुर से पश्चिम की तरफ छः मील की दूरी पर सॉगानेर नामक नगर मे जाकर रहने लगा।

सामन्तों के परामर्श के अनुसार विजय सिंह से भेंट करने के लिए जिस समय राजा जयसिंह चलने के लिए तैयार हो रहा था, उसी समय उसके मन्त्री ने कहा- "आपकी माता ने मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि दोनों भाइयों में जो परस्पर मेल और स्नेह पैदा होने जा रहा है, उस शुभ अवसर को देखने से मुझे क्यों वंचित किया जाता है।"

मन्त्री की इस बात को सुनकर सामन्तों ने कहा- "हम लोगों को इसमें कोई आपत्ति नहीं है। वे जरूर चल सकती हैं।" सामन्तों की इस बात को सुनकर मन्त्री ने राजमाता से जाकर कहा। वह अपने चलने के लिए तैयारी करने लगी। उसके साथ चलने वाली अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए तीन सौ रथ सजाये गये। जिस पालकी में राजमाता को बैठना चाहिए था, उसमें उसके स्थान पर भाटी सामन्त उग्रसेन बैठा और प्रत्येक रथ के भीतर स्त्रियों के बदले दो-दो शस्त्रधारी सैनिक तैयार होकर बैठे। सामन्त लोग पहले ही राजा जयसिंह के साथ चले गये थे। उनको राजमाता की इस तैयारी का कुछ भी पता न था। यह तैयारी जयसिंह और उसके बुद्धिमान मंत्री के द्वारा हुई थी। उग्रसेन और रथों में बैठे हुए सैनिकों के अतिरिक्त प्रजा में इस बात की किसी को भी जानकारी न थी। पालकी और तीन सौ रथों के रवाना होने पर राजस्थान की प्रथा के अनुसार पालकी पर सोने के सिक्कों की वर्षा की गई। दोनों ओर दरिद्रों ने मोहरों को लूट कर राजा और राजमाता की जय-जयकार की। राजमार्ग पर एकत्रित स्त्री-पुरुषों ने दोनों भाइयों के स्नेहपूर्ण मिलन को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

राजा जयसिंह के साथ सामन्त लोग पहले ही साँगानेर पहुँच गये थे और वे लोग राजमाता के आने का रास्ता देख रहे थे। इसी समय एक दूत ने आकर कहा- "राजमाता साँगानेर के महल में चली गयी है।" यह सुनते ही जयसिंह घोड़े पर बैठा और महल की तरफ चला गया। रास्ते में विजय सिंह से भेंट हो गयी। दोनों भाई स्नेहपूर्वक एक-दूसरे से मिले। इसी समय जयसिंह ने विजयसिंह को प्रसन्न होकर बसवा नगर के शासन की सनद दी और कहा- "यदि तुमको आमेर राज्य के सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा है तो मैं हर्षपूर्वक तुम्हारे लिये सिंहासन छोड़ दूँगा और बसवा में जाकर रहने लगूंगा।"

जयसिंह के मुख से इस उदारतापूर्ण बात को सुनकर विजयसिंह ने कहा- "राज सिंहासन पर बैठने की अब मेरी इच्छा नहीं है। आप इस बात का विश्वास रखें।"

इसके बाद दोनों भाई सामन्तों के बीच में बैठकर स्नेहपूर्वक बातें करते रहे। उसी पत्थर पर जयसिंह के मन्त्री ने आकर सामन्तों से कहा- "राजमाता ने आप लोगों के पास मुझे भेजकर कहा है कि यदि आप लोग कुछ देर के लिए यहाँ से चले जावें तो राजमाता यहाँ आकर दोनो भाइयों को प्रेम से बातें करते हुए देखना चाहती हैं।"

दूत की इस बात को सुनकर सामन्त कुछ देर तक आपस में बातें करते रहे। सबकी सलाह से दोनों भाई महल के उस कमरे मे चले गये, जिसमें राजमाता पहले से मौजूद थी। कमरे के द्वार पर एक पहरेदार खड़ा था। जयसिंह ने अपनी कमर से तलवार निकालकर पहरेदार को दे दी और कहा कि माता के पास जाने में तलवार की क्या आवश्यकता है। विजय सिंह ने भी अपने भाई का अनुकरण किया और उसने भी अपनी तलवार निकाल कर पहरेदार को दे दी। इसी समय म [illegible] ने क[illegible] [illegible]रवाजा खोला। विजय सिंह उस कमरे के

भीतर पहुँच गया। उसने माता के स्थान पर भाटी सामन्त उग्रसेन को देखा। ठग्रसेन ने उसी समय विजय सिंह के हाथों और पैरों को बांध कर पालकी में वैठा दिया और पालकी साँगानेर से आमेर राजधानी की ओर रवाना करवा दी। बाहर के सभी लोगों ने समझा कि राजमाता की पालकी राजधानी वापस जा रही है।

एक घन्टे के पश्चात् जयसिंह को समाचार मिला कि विजय सिंह कैदी होकर दुर्ग मे आ गया है। इसके कुछ समय बाद सैनिकों के साथ जयसिंह को अकेले आता हुआ देखकर सामन्तो ने पूछा- "विजय सिंह कहॉ है?"

सामन्तो के इस प्रश्न को सुनकर जयसिंह ने कहा- "मेरे पेट में है। अपने पिता के हम दोनों वेटे हैं। बडा होने के कारण राज्य का मैं अधिकारी हूँ। राज सिंहासन से उतारने के लिए उसने मेरे साथ जो पड़यन्त्र किया था, उसका बदला मुझे विश्वासघात के द्वारा देना पड़ा। उसने हम सबका सर्वनाश करने के लिए आमेर राज्य में शत्रुओं को आमन्त्रित किया था। मैंने जो कुछ किया है, इसके सिवा मेरे पास और कोई उपाय न था।"

जयसिह के इस उत्तर को सुनकर सभी सामन्त आश्चर्यचकित हो उठे। किसी ने कुछ उत्तर न दिया। वे सभी उस स्थान से चले गये। सॉगानेर के बाहर मुगल वादशाह की छः हजार अश्वारोही सेना खडी थी। प्रधानमंत्री कमरुद्दीन खॉ ने उस सेना को विजयसिंह की सहायता के लिए भेजा था। विजय सिह को न पाने के वाद मुगल सेना के अधिकारी ने जयसिंह से पूछा- "विजय सिंह कहॉ है?"

जयसिंह ने रोप में आकर उत्तर दिया- "तुम्हे इसके पूछने का क्या अधिकार है? तुम लोग यहॉ से वापस चले जाओ, नहीं तो तुम सबके घोड़े छीन लिए जाएँगे।" उस सेना के अधिकारी ने कुछ उत्तर न दिया और मुगल सेना वहाँ से वापस लौट गयी। विजयसिंह इस प्रकार कैदी हो गया।

सवाई जयसिह के समय कछवाहो के राज्य ने सभी प्रकार की उन्नति की। इसके पहले वहॉ पर जो लोग आमेर के सिहासन पर वैठे, उन्होंने मुगल वादशाह के दरवार में सम्मान प्राप्त किया था। लेकिन उनमे से किसी ने सवाई जयसिंह की तरह अपने राज्य की उन्नति नही की। बादशाह वावर से लेकर औरंगजेब के समय तक मुगल वादशाह का आमेर के राजाओ के साथ पारिवारिक सम्बन्ध रहा। परन्तु कोई कछवाहा राजा अपने राज्य की सीमा का विस्तार नहीं कर पाया था। औरंगजेव की मृत्यु के वाद मुगलों की शक्ति कमजोर पड़ गयी और मुगलो का शासन बहुत-से टुकडो में विभक्त होता जा रहा था। इसके पहले मुगल साम्राज्य मे आमेर राज्य का कोई विशेप स्थान न था। औरंगजेब के मर जाने के वाद मुगलो के राज मे बहुत-से उपद्रव पैदा हो गये थे। उन दिनो में सवाई जयसिंह को बादशाह की तरफ से आगरा का शासक नियुक्त किया गया था। इस समय की सुविधाओं का लाभ उठाकर सवाई जयसिह ने अपने राज्य की उन्नति की।

राजा जयसिह के आमेर के सिहासन पर बैठने के समय आमेर, दौसा और बिसाऊ नामक केवल तीन परगने उस राज्य में थे और इन्ही तीनों नगरो से बने हुए राज्य का नाम आमेर अथवा अम्वेर राज्य था। इसके पश्चिम की तरफ के सभी नगर बादशाह के अधिकार

में थे और वे अजमेर के साथ शामिल थे। शेखावटी का राज्य आमेर राज्य से अधिक शक्तिशाली था। उसकी चारों सीमायें इस प्रकार थी–

दक्षिण में चाकस नामक दुर्ग था, पश्चिम में साँभर की झील थी, उत्तर की तरफ हस्तिना और पूर्व में दौसा तथा विसाऊ का इलाका था। वहाँ के बारह प्रधान सामन्त जिस भूमि के अधिकारी थे, वह कोटरी बन्द के नाम से प्रसिद्ध थी। उस इलाके की भूमि बहुत साधारण थी।

देवती नाम का एक छोटा-सा प्राचीन राज्य था। राजोर उसकी राजधानी थी। उसमें बड़गूजर जाति का राजा शासन करता था। कछवाहा राजपूत जिस प्रकार रामचन्द्र के वंशज कहे जाते हैं, बड़गूजर राजपूत अपने आपको रामचन्द्र के पुत्र लव का वंशज कहते हैं। बड़गूजर राजपूतों ने कभी भी मुसलमान बादशाहों को अपनी लड़कियाँ नहीं दीं और इसीलिए राजपूतों में उनका स्थान अधिक सम्मानपूर्ण माना जाता था। जिस समय कछवाहा राजा ने मुगल बादशाह के वंश को लड़की दी थी और राजपूतों के मस्तक पर कलंक का टीका लगाया था, उस समय बड़गूजर राजपूतों ने अपनी स्त्रियों, बहनों और बेटियों की मर्यादा को सुरक्षित बनाये रखने के लिए उन्हें आग की जलती हुई होली में फूंक कर भस्मीभूत कर दिया था। कछवाहों ने बादशाह के साथ सामाजिक और वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर सांसारिक गौरव प्राप्त किया था। लेकिन बडगूजर राजपूतों ने अपने जीवन का भयानक त्याग और बलिदान करके अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। इसलिए शताब्दियों के बाद आज भी इस विशाल देश में कछवाहों की निन्दा और बड़गूजरों की प्रशंसा की जाती है। मनुष्य का गौरव सदा त्याग और बलिदानों से बढ़ता है।

जिन दिनों में देवती-राज्य का बड़गूजर वंशी राजा अपनी सेना के साथ गंगा के समीप अनूप शहर में बादशाह की फौज की अधीनता में था, उस समय सवाई जयसिंह बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से उसके राज्य में काम कर रहा था। बड़गूजर राजा ने राजोर की रक्षा का भार अपने छोटे भाई को सौंप दिया था। उसने एक दिन जंगल में जाने और शूकर का शिकार करने का इरादा किया। उसने भावज के पास जाकर जल्दी से भोजन करना चाहा। उसकी उतावली को देखकर भावज ने कहा– "मालूम होता है कि आप युद्ध में जयसिह को भाला मारने के लिए जा रहे हैं।" बड़गूजर राजा के हृदय में इस बात से एक ऐसा आघात पहुँचा कि वह अन्यमनस्क होकर कुछ देर तक सोचता रहा। उस स्त्री के द्वारा कही गयी बात का सम्बन्ध एक पुरानी घटना के साथ है। कछवाहों के पूर्वज धोलाराय ने नरवर से निकल कर बड़गूजरों के दौसा नामक नगर पर अधिकार किया था। भावज की बात सुनकर बडगूजर राजा के भाई ने उस घटना का स्मरण किया और उसने तुरन्त प्रतिज्ञा करते हुए कहा– "मैं अपने देवता की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जयसिंह के सीने में भाले का आघात करके ही आपके हाथों का भोजन पाऊँगा।"

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके स्वाभिमानी बड़गूजर अपने साथ दस सशस्त्र अश्वारोही वीरों को लेकर आमेर की तरफ रवाना हुआ और उसके समीप पहुँचकर उसने मुकाम किया। वहाँ पडे हुए उसको पूरा एक मास बीत गया। उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर न

मिला। वह फिर भी वहीं पर पड़ा रहा और वहाँ पर उसको कई महीने बीत गये। उसके पास जो कुछ था, उसे उसने खाने-पीने में खर्च कर डाला। इसके बाद वह अपने साथ के घोड़ों को बेचकर दिन काटने लगा। इसके बाद भी उसे अपनी अभिलाषा पूरी करने का अवसर न मिला। उस दशा में उसने अपने साथ के सैनिकों को भेज दिया और अकेले रहकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इस बीच में उसने अपने अस्त्र-शस्त्र बेच डाले और उनसे जो कुछ मिला, उनके द्वारा उसने अपना समय व्यतीत किया। इसके बाद भी उसको अवसर न मिला। अब उसके पास केवल एक भाला रह गया था। उसने तीन दिन बिना भोजन के काटे और चौथे दिन उसने अपनी पगड़ी बेच डाली। अब उसके पास बेचने के लिए कोई वस्तु न रह गयी थी। उसने अकस्मात् राजा जयसिंह को दुर्ग से बाहर निकल कर मोरा नामक मार्ग की तरफ जाते हुए देखा। उसी समय उसने अपना भाला फेंककर राजा जयसिंह को मारा। वह भाला जयसिंह को नहीं लगा। उसके साथ के एक सैनिक ने उस बड़गूजर को पकड़ लिया और अपनी तलवार से उसने उसका सिर काट लेने का इरादा किया। उसी समय राजा जयसिंह ने जोर के साथ कहा- ''इसको राजधानी में पकड़ कर ले आओ, यहाँ पर उसका प्राण नाश न करो।''

बड़गूजर को पकड़ कर आमेर राजधानी में लाया गया। उसको देखकर राजा जयसिंह ने उससे प्रश्न किया- ''तुम कौन हो और तुमने भाले का प्रहार किसलिये मेरे ऊपर किया?''

उस बड़गूजर ने उत्तर देते हुए कहा- ''मैं देवती के बडगूजर राजा का छोटा भाई हूँ। मैंने अपनी भावज के सामने आपकी छाती में भाला मारने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए इस राजधानी के समीप आकर और छिपे तौर पर रह कर मैं बहुत दिनों से पड़ा रहा। अवसर आने पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मैंने भाले का प्रहार आपके ऊपर किया है। अपने प्रहार मे मुझे सफलता नहीं मिली। आज मैं आपके सामने कैदी बनाकर लाया गया हूँ। आपको दण्ड देने का पूर्ण अधिकार है।''

राजा जयसिंह उसकी बातों को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और बिना किसी प्रकार का दण्ड दिये हुए उसने उसको छोड़ दिया। राजा जयसिंह ने उसकी इन दिनों की विपदा का हाल सुनकर उसे मूल्यवान वस्त्र दिये ओर पचास अश्वारोही सैनिकों के संरक्षण में उसको उसके राज्य भेज दिया। उसने अपने राज्य मे आकर सभी बातें अपनी भावज से कहीं। उन बातों को सुनकर उसकी भावज ने कहा- ''आपने सोते हुए विषैले साँप को उकसाया है। इसके फलस्वरूप अब यह राज्य नष्ट हो जायगा।''

राजोर के अनेक अनुभवी लोगों की सम्पति से बड़गूजर वंश के परिवार को अनूप शहर में बड़गूजर राजा के पास भेज दिया गया और देवती राज्य के राजोर के दुर्ग में युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। इसलिए कि वहाँ पर सबको विश्वास हो गया कि सवाई जयसिंह का शीघ्र ही आक्रमण अब इस राज्य पर होगा।

ऊपर लिखी हुई घटना के चौथे दिन सवाई जयसिंह ने अपने सभी सामन्तों को बुलाया और अपने दरबार मे बैठकर उनसे कहा- ''देवती राज्य पर तुरन्त अधिकार कर लेने की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए मैं पानों का बीड़ा रखता हूँ। आप लोगो में से जो इसके लिए तैयार हो, वह इस बीड़े को उठा ले।''

राजा जयसिंह की इस वात को सुनकर आमेर के प्रधान सामन्त चौमूं के अधिकारी मोहन सिंह ने कहा- "देवती राज्य के विरुद्ध आक्रमण करना संकट पूर्ण है। इसका कारण यह है कि वड़गूजर राजा वादशाह के दरवार का एक सदस्य है और वह इन दिनों में अपनी सेना के साथ वादशाह की फौज के साथ है।"

प्रधान सामन्त मोहनसिंह की इस वात को सुनकर उपस्थित सामन्त भयभीत हो उठे और किसी ने युद्ध के वीड़े को उठाने का साहस न किया। इसके वाद एक महीना वीत गया। राजा जयसिंह ने देवती राज्य पर आक्रमण करने के लिए फिर प्रश्न उपस्थित किया। परन्तु किसी सामन्त ने युद्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने का साहस नहीं किया। सभी को चुप देखकर सामन्त फतेहसिंह ने हाथ से उस वीड़े को उठाया और उसने देवती राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की। राजा जयसिंह ने फतेहसिंह की अधीनता में पाँच हजार अश्वारोही सेना भेजने का प्रवन्ध किया। उस सेना को लेकर फतेहसिंह देवती राज्य की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने सुना कि वड़गूजर राजा का भाई राजोर से गणगौर नामक मेले में गया है। यह सुनकर वह मेले की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने अपना दूत उसके पास भेजा। दूत ने वहाँ जाकर वड़गूजर राजा के भाई के हाथ में एक पत्र दिया। उस पत्र को पढ़ते ही उसने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि इस दूत का सिर काट लिया जाये। इसी समय आमेर की सेना ने वहाँ पहुँचकर वड़गूजर राजा के भाई को कैद कर लिया। उस समय उसके साथ राजोर के जो सैनिक थे, वे सब मारे गये।

राजोर की रानी चौमूं के कछवाहा सामन्त की वहन थी। वह गर्भवती थी और फतेहसिंह की सेना के राजोर पर आक्रमण करने के समय वह प्रसव वेदना से पीड़ित थी। रानी ने फतेहसिंह के पास कहला भेजा- "प्रिय वन्धु मेरे गर्भ के कारण वालक के प्राणों की रक्षा करना।"

इसी समय रानी को स्मरण हुआ कि राजोर पर इस आक्रमण के होने का मूल कारण मैं हूँ। मेरी ही वात को सुनकर मेरे देवर ने राजा जयसिंह पर भाले का वार किया था। इस दशा में मेरे जीवित रहने की आवश्यकता नहीं है। अपने मन में इस वात को सोचकर रानी ने तलवार से अपनी आत्महत्या कर ली। वड़गूजर राजा का भाई कैद हो चुका था। उसको मारकर और उसके कटे हुए मस्तक को एक कपड़े में लपेट कर फतेहसिंह वहाँ से लौटा और आमेर की राजधानी में आ गया। राजा जयसिंह के आदेश से वह कटा हुआ मस्तक उसके सामने दरवार में लाया गया। आमेर राज्य के प्रधान सामन्त मोहन सिंह ने अपने आत्मीय का कटा हुआ सिर देखकर अपनी आँखें वन्द कर लीं और उसके नेत्रों से आँसू निकल-निकल कर गिरने लगे। मोहनसिंह का यह क्रन्दन देखकर राजा जयसिंह को वहुत असन्तोप मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन सोच डाला कि इसी मोहनसिह ने देवती राज्य पर आक्रमण करने के प्रस्ताव पर सब सामन्तों के सामने विरोध किया और आज हमारे शत्रु के कटे हुये मस्तक को देखकर वह अश्रुपात कर रहा है। यह हमारे राज्य का प्रधान सामन्त होकर भी राजद्रोही और विश्वासघाती है। राजा जयसिंह ने उस समय उसमे कुछ न कहा। लेकिन कुछ दिन वीत जाने के वाद मोहनसिंह का अपमान करते हुये उसने कठोर शव्दों में कहा- "आपने

उस दिन हमारे शत्रु के कटे हुये सिर को देखकर आँसू बहाये थे। लेकिन जब उस शत्रु ने हमारे ऊपर भाले का वार किया था, उस समय आपके नेत्रों में एक भी आँसू की बूँद दिखाई नहीं पड़ी थी।" यह कहकर राजा जयसिंह ने मोहनसिंह की जागीर को आमेर राज्य में मिला लेने का आदेश दिया और मोहनसिंह को अपने राज्य से निकाल दिया। मोहनसिंह आमेर से निकल कर उदयपुर के राणा के यहाँ चला गया। राजा जयसिंह ने देवती और राजोर पर अधिकार करके उनको अपने राज्य में मिला लिया।* वे मिले हुये दोनों नगर मावेड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुये।

राजा जयसिंह के चरित्र मे अनेक अच्छाइयाँ थीं। परन्तु उसमें मदिरा पीने का दोप था। वह मधुसजात अथवा चावल की मदिरा पिया करता था। इस प्रकार की कुछ निर्वलताओं के होने पर भी राजा जयसिंह एक श्रेष्ठ पुरुप था, इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता।

सवाई जयसिंह के पहले आमेर का राजमहल मानसिंह ने बनवाया था। उन दिनो की अपेक्षा आमेर की अवस्था जयसिंह के शासन के दिनों में बहुत बदल गयी थी। पहले का आमेर बहुत कुछ इन दिनों की अपेक्षा गौरवहीन था। मिर्जा राजा जयसिंह ने वहाँ के महल में कई एक कमरे बनवाये थे। परन्तु वे कमरे एक राजमहल के लिए अनुकूल न थे। इसलिए सवाई जयसिंह ने उनके सम्पर्क में एक दर्शनीय महल बनवाया, जिसको देखकर सभी लोगों ने प्रशंसा की। सन् 1726 ईसवी में सवाई जयसिंह ने जयपुर नाम की नवीन राजधानी कायम की। वहाँ के एक इतिहास से प्रकट होता है कि उन दिनों में राजा मल्ला सवाई जयसिंह के यहाँ मुसाहिब पद पर नियुक्त था और कृपाराम जयपुर का दूत बनकर दिल्ली में रहता था। बुधसिंह कुम्भानी दक्षिण में सम्राट के यहाँ दूत बनाकर नियुक्त किया गया था। जयपुर का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में लिखा गया है।

राजा जयसिंह राजनीति और शासन में बहुत योग्य था। उसने सामाजिक बातों में कई एक सुधार किये थे। राजस्थान में लड़कियों के विवाहों और श्राद्ध जैसे कार्यो में राजपूतों के यहाँ बहुत अधिक धन खर्च किया जाता था और इस प्रकार के खर्चों के कारण ही राजपूतों में लड़कियों को जन्म के बाद मार डालने की एक पुरानी प्रथा प्रचलित थी। कुछ इस प्रकार के वीभत्स कार्यो के कारण वहाँ पर न जाने कितनी स्त्रियों को आत्म-हत्यायें करनी पडी थीं। राजा सवाई जयसिंह ने इस प्रकार के अनिष्ट कार्यों में बहुत सुधार किया और उनके खर्चो में बहुत कमी कर दी। उसने इस प्रकार के बहुत से सामाजिक नियम बनाये थे और अपने राज्य में उसने लोगों को उन नियमों पर चलने के लिए बाध्य किया था। विवाह और श्राद्ध आदि कार्यो के अवसरों पर जो वहाँ अत्यधिक खर्च किया जाता था, उन खर्चों को उसने अपने राज्य में बहुत कम करवा दिया। राजपूतों में प्रचलित पुरानी और अनावश्यक प्रथाओं में संशोधन का कार्य कितना जरूरी था, इसे सवाई जयसिंह ने भली प्रकार अनुभव किया और इसीलिये उसने उनमें आवश्यक सुधार किये। उसके इन कार्यों से साफ जाहिर होता है कि वह न केवल

---

* राजोर एक बहुत पुराना नगर था। वहाँ पर देवती राज्य की राजधानी थी। कई शताब्दियों से बडगूजर वश के राजपूत वहाँ पर रहते थे। इस वश के लोगो की बहादुरी की प्रशसा चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ मे की है। सम्राट पृथ्वीराज के समय इस वंश के लोग युद्ध करने में बहुत प्रसिद्ध थे।

एक अच्छा शासक था, बल्कि सार्वजनिक हितों की रक्षा करना भी वह खूब जानता था। उसके राज्य में जैन सम्प्रदाय के लोगों को आवश्यक प्रोत्साहन मिला था। विद्याधर नामक व्यक्ति जो उसके ज्योतिप विज्ञान के कार्य में सहयोगी था और जिसकी सहायता और योग्यता से जयपुर राजधानी का निर्माण हुआ, वह जैन धर्मावलम्बी था। सवाई जयसिंह योग्य और विद्वान पुरुपों को अपने यहाँ आदरपूर्वक स्थान देना आवश्यक समझता था। उसने प्रसिद्ध पण्डित हेमाचार्य को अपने यहाँ मन्त्री का पद दिया था। विद्याधर उसी हेमाचार्य का वंशज था।

अन्यान्य योग्यताओं के साथ-साथ सवाई जयसिंह एक अच्छा शासक था। उसकी इस योग्यता का एक वड़ा प्रमाण यह भी है कि उसने अपने शासनकाल में अश्वमेघ यज्ञ करने का इरादा किया था। इस यज्ञ का इरादा वही राजा करता है जो अन्य राजाओं की अपेक्षा अपने आपको अधिक शक्तिशाली समझता है। ऐसा मालूम होता है कि उसका यह इरादा उन दिनों में हुआ था, जब मुगल साम्राज्य की शक्तियाँ निर्वल पड़ गयी थी और दूसरे राजाओं का उसे कोई भय न रह गया था। पाण्डु वंश के जनमेजय से लेकर कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द तक जितने राजाओं ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, उन सभी का सर्वनाश हो गया। मुगल बादशाह के दरबार में जितने राजा थे, सवाई जयसिंह उन सभी मं अधिक शक्तिशाली था। इस यज्ञ का निर्माण करके उसने यदि घोड़ा छोड़ा होता, जैसा कि उस यज्ञ का नियम है तो सम्भव है कि अन्य राजा उसका घोड़ा पकड़ने का साहस न करते। लेकिन उस घोड़े के मरुभूमि की तरफ जाने पर राठौर राजा अवश्य ही उसको पकड़वा लेता और यही अवस्था चम्वल नदी के किनारे हाड़ा राजा के राज्य में भी होती। वह घोड़ा वहाँ पर भी पकड़ा जाता। सवाई जयसिंह ने बहुत-सा धन खर्च करके यज्ञशाला बनवाई थी और उसके स्तम्भो तथा छत को चाँदी के पत्तरों से मढ़वाया था। इन चाँदी के मूल्यवान पत्तरों को उसके वंशज स्वर्गीय जगतसिंह ने निकवाकर उनके स्थान पर साधारण चाँदी के पत्तर लगवा दिये। जयसिंह ने जिन ग्रन्थों का संग्रह करने मे अत्यधिक परिश्रम और धन व्यय किया था, उनके दो भाग कर दिये थे। उनका एक भाग किसी प्रकार जयपुर की एक साधारण वेश्या के अधिकार मे पहुँच गया था।

चवालीस वर्पो तक राज्य करके सम्वत् 1799 से 1743 ईसवी में सवाई जयसिंह की जयपुर मे मृत्यु हो गयी। उसकी तीन विवाहिता रानियाँ और अनेक उपपत्नियाँ उसके शव के साथ जल कर सती हुई। उसने जिस विज्ञान की अपने जीवन भर उन्नति की थी, उसकी मृत्यु के बाद वह एक साथ लोप हो गयी।

□

अध्याय-57
ईश्वरीसिंह से जगतसिंह तक का इतिहास

सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका लड़का ईश्वरी सिंह जयपुर के सिंहासन पर बैठा। इन दिनों में जयपुर का राज्य भारतवर्ष के राज्य में विशाल और शक्तिशाली समझा जाता था। उस राज्य की सेना ने अनेक अवसरों पर अपनी शक्ति का परिचय देकर सम्मान प्राप्त किया था। इन दिनों में जयपुर राज्य की सीमा अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक बड़ी हो गयी थी। राजकोष में सम्पत्ति की कमी न थी। शासन में राजनीतिज्ञ और बुद्धिमान मन्त्री काम कर रहे थे। वहाँ की सेना भी शक्तिशाली थी। ईश्वरी सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद राज्य में कोई विशेष घटना नहीं हुई।

सन् 1747 ईसवी में ईश्वरीसिंह अब्दाली की विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए सतलज नदी के किनारे गया था। उस युद्ध में उसके पक्ष के प्रधान सेनापति कमरुद्दीन खाँ के मारे जाने पर ईश्वरीसिंह अपनी सेना के साथ भागा और जब वह लौटकर अपनी राजधानी में आया तो उसकी रानी ने युद्ध से भागने का समाचार सुनकर बहुत असन्तोष प्रकट किया।

अपने पिता सवाई जयसिंह की तरह ईश्वरी सिंह बुद्धिमान और राजनीति कुशल न था। सिंहासन पर बैठने के बाद अपनी प्रजा को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने के लिए वह कार्य न कर सका। राज्य के सरदार और सामन्त भी उसके व्यवहारों और कार्यो से थोड़े ही दिनों में असन्तोष अनुभव करने लगे। ईश्वरीसिंह के लिए राज्य की इस प्रकार की परिस्थितियाँ आगे चलकर अच्छी साबित न हुई।

मेवाड़ के इतिहास में लिखा जा चुका है कि दिल्ली के मुगल बादशाह के विरुद्ध होकर मेवाड़, मारवाड़ और आमेर राज्यों ने सन्धि की थी। उस सन्धि के अनुसार उन तीनों राजवंशों मे वैवाहिक सम्बन्ध भी होने लगे थे। उस सन्धि के परिणामस्वरूप मारवाड़ के राजा ने बादशाह अधीनस्थ के गुजरात के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया था, आमेर राज्य के सवाई जयसिंह ने उन सभी स्थानों को अपने राज्य में मिला लिया था, जो आमेर के आस-पास कुछ दूरी तक फैले हुये थे और उन्हीं दिनों में उसने शेखावाटी के राजा को कर देने के लिए विवश किया था। उस समय आमेर राज्य को अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने के लिए सभी प्रकार का अवसर था और उसकी सीमा साँभर झील से लेकर जमुना नदी के किनारे तक पहुँच गई थी। इसका कारण यह था कि जो सन्धि हुई थी, उसने इन तीनों राज्यों को शक्तिशाली बना दिया था। लेकिन सन्धि के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध शुरू होने का परिणाम अच्छा साबित नहीं हुआ।

आमेर और मारवाड़ के राजाओं ने मुगल बादशाह के वंश में अपनी लड़कियाँ देकर अपने जातीय गौरव को क्षीण बना लिया था। राजस्थान के दूसरे राजाओं ने भी इस

प्रकार के प्रतिष्ठा के विरुद्ध कार्य किये थे। परन्तु मेवाड़ का एक राणा वंश ही ऐसा था, जिसने उन दिनों में अपना मस्तक ऊँचा रखा था और इस प्रकार का ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे इस वंश की प्रतिष्ठा को किसी प्रकार का आघात पहुँच सकता। इस सन्धि के पहले आमेर और मारवाड़ के राजाओं ने जो इस प्रकार अप्रतिष्ठापूर्ण कार्य किये थे, उनसे उनके मेवाड़ के राणा वंश के साथ वैवाहिक सम्वन्ध वन्द हो गये थे। लेकिन इस सन्धि के वाद वे फिर आरम्भ हो गये। विवाह के सम्वन्ध को प्रचलित करने के लिए सवाई जयसिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी के साथ विवाह किया था। लेकिन विवाह होने से पहले ही दोनों ओर से इस वात का निर्णय हो गया कि आमेर राज्य में मेवाड़ की राजकुमारी का विवाह होने पर यदि उससे वालक पैदा होगा तो वह अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। राजस्थान की प्रथा के अनुसार वड़ा लड़का राज्य का अधिकारी होता है। लेकिन मेवाड़ की राजकुमारी से उत्पन्न होने वाले वालक पर वहाँ की इस प्रथा का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उस राजकुमारी से लड़की उत्पन्न होगी तो वह किसी भी अवस्था में और किसी भी परिस्थिति में मुगल वादशाह के वंश में नहीं दी जाएगी। सवाई जयसिंह और मारवाड़ के राजा ने मेवाड़ के राणा की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया था। उसके वाद राणा वंश की राजकुमारी का विवाह सवाई जयसिंह के साथ हुआ था। विवाह के वाद उस राजकुमारी से एक वालक पैदा हुआ। उसका नाम माधव सिंह रखा गया। राजा जयसिंह ने अपने जीवनकाल में ही उस वालक के सम्मान की रक्षा के लिए आमेर राज्य के टोंक, रामपुरा, फागी और मालपुरा नामक चार परगने माधवसिंह को दे दिये और उन्हीं दिनों में मेवाड़ के राणा ने भी माधव सिंह को मेवाड़ राज्य के रामपुरा और भानपुरा नामक नगर दिये। माधव सिंह को मिले हुये इन नगरों की वार्षिक आय चौरासी लाख रुपये थी।

सिंहासन पर वैठे हुये ईश्वरी सिंह को कई वर्ष वीत गये। आरम्भ से ही सामन्तों के साथ उसका व्यवहार सन्तोषजनक नहीं रहा। इसलिये राज्य के सभी सामन्त ईश्वरी सिंह को सिंहासन से उतार कर माधव सिंह को राज्य का अधिकार देने का विचार करने लगे। ईश्वरी सिंह को सामन्तो के इन षड़यन्त्रों का कुछ भी पता नहीं था। उसके व्यवहारों के कारण ही राज्य की प्रजा भी उससे प्रसन्न न थी। पिता और राणा से जो नगर माधव सिंह को मिले थे, उनको लेकर वह सन्तोषजनक अपना जीवन विता रहा था। ईश्वरी सिंह से लगातार अप्रसन्न और असन्तुष्ट होकर आमेर राज्य के मन्त्रियों और सामन्तों ने मेवाड़ के राणा के पास माधव सिंह को सिंहासन पर विठाने के लिए संदेश भेजा और उस संदेश के आधार पर राणा ने अपने दूत के द्वारा ईश्वरी सिंह को कहला भेजा– ''विवाह के पहले सवाई जयसिंह और मेरे वीच यह निर्णय हो गया था कि राणा राजवंश की राजकुमारी के साथ विवाह करने से जो वालक पैदा होगा, किसी भी दशा में वह अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसके वाद मेवाड़ की राजकुमारी के साथ जयसिंह का विवाह हुआ था। मरने के पूर्व भी सवाई जयसिंह ने निर्णय किया था कि अवस्था में छोटा होने पर भी मेरे वाद आमेर के सिंहासन पर माधव सिंह वैठेगा। इसलिए आमेर राज्य का सिंहासन आप माधव सिंह को दे दे।''

राणा का यह संदेश पाकर ईश्वरी चिन्तित हो उठा। उसने अपनी सहायता के लिए मराठों से मदद लेने का विचार किया और उसके वाद आपा जी सिंधिया के साथ उसने सन्धि

कर ली। मराठों के सरदार आपा जी सिंधिया ने ईश्वरी सिंह के पक्ष का समर्थन किया। यह बात मेवाड़ के राणा से छिपी न रही। उसने ईश्वरी सिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। कोटा और बूंदी के राजाओं ने माधव सिंह का पक्ष समर्थन करके मेवाड़ की सेना का साथ दिया। राजमहल नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। मराठों की शक्तियाँ उन दिनों में बढ़ी हुई थीं। इसलिए कोटा, बूंदी और मेवाड़ की सेनायें युद्ध में भयानक हानि उठाकर पराजित हुईं।

युद्ध में जीतकर ईश्वरी सिंह का उत्साह बढ गया। कोटा और बूंदी के राजाओं ने उसके विरुद्ध युद्ध में मेवाड़ का साथ दिया था। इसलिये ईश्वरी सिंह ने उन दोनों राज्यों पर आक्रमण किया। कोटा के राजा ने शक्ति भर युद्ध करके शत्रुओं का सामना किया। उस युद्ध में आपा जी सिंधिया का एक हाथ कट गया। परन्तु अन्त में कोटा और बूंदी के राजाओं की पराजय हुई। उन दोनों राज्यों के अनेक गॉवों और नगरों पर आपा जी सिंधिया ने अधिकार कर लिया। युद्ध के बाद दोनों राजाओं को कर देना मन्जूर करके आपा जी सिंधिया के साथ सन्धि करनी पड़ी।

आपा जी सिंधिया की सहायता मिल जाने के कारण मेवाड़ के साथ युद्ध मे ईश्वरी सिंह को सफलता मिली थी। इसलिए मेवाड़ के राणा ने ईश्वरी सिंह के विरुद्ध होलकर का आश्रय लिया और उसके साथ सन्धि करके आमेर के राज्य पर माधव सिंह को बिठाकर चौरासी लाख रुपये के बदले राणा ने माधव सिंह की तरफ से आरम्भ में उसको मिले हुये परगने होलकर को दे दिये।

सिंहासन पर बैठकर माधव सिंह ने आरम्भ से ही अपनी योग्यता का परिचय दिया। राज्य में जो कमजोरियॉ पैदा हो गयी थीं। उनको उसने दूर करने की कोशिश की। वह मराठों के नेता होलकर की सहायता से अपने पिता के सिंहासन पर बैठा था और उसकी सहायता के मूल्य में उसको चौरासी लाख रुपये की आय के प्रसिद्ध परगने उसे देने पड़े थे। राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद वह यह बात भूल न सका। वह समझता था कि होलकर का किसी भी समय दमन करना हमारा एक आवश्यक कर्त्तव्य होगा। वह अपने इस निश्चय के अनुसार राठौरों और जाटों की सहायता से ऐसा कर सकता था। लेकिन उसके राज्य के पड़ौसी शत्रुओं ने उसकी कल्पनायें बेकार कर दीं।

जाटो के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ में अन्यत्र दिया जा चुका है। जाटों का वंश राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में एक वंश था। उस वंश का बाद में पतन हुआ। लेकिन पराधीन होने के बाद भी जाटों ने सदा स्वाधीन होने की चेष्टा की। इस जाति के लोग अत्यन्त लड़ाकू थे। चूडामणि नामक उनका सरदार उनको प्रोत्साहित किया करता था। इस जाति के लोगों ने संगठित होकर थून और सिनसीनी नामक स्थानों पर दुर्ग बनाने का कार्य आरम्भ किया था। वे आमतौर पर खेती करने का कार्य करते थे। लेकिन अवसर पाकर लूट-मार का कार्य भी करते थे। उनके संगठन में जाटों की बहुत बडी संख्या थी। उन लोगों ने दिल्ली तक लूटमार करने का कई बार साहस किया था। इन जाटो के बढ़ते हुये अत्याचारों को देखकर बादशाह के दरबार मे सवाई जयसिंह से उनका दमन करने के लिए कहा गया था। राजा

सवाई जयसिंह ने अपनी सेना लेकर थून और सिनसिनी को जाकर घेर लिया। उस समय जाटों ने भयंकर युद्ध किया और अपने दुर्गों की रक्षा की। राजा जयसिंह को निराश होकर वहाँ से लौट आना पड़ा।

चूड़ामणि जाट सरदार था। छोटे भाई वदन सिंह के साथ उसका संघर्ष आरम्भ हुआ। अन्त में चूड़ामणि के द्वारा वदन सिंह कैद कर लिया गया और वह कई वर्ष तक वन्दी अवस्था में रहा। इसके पश्चात् आमेर के राजा जयसिंह के मध्यस्थ होने पर चूड़ामणि ने अपने छोटे भाई वदन सिंह को कैद से छोड़ दिया। वदन सिंह छूटकर जयपुर में पहुँचा। उसने थून पर अधिकार करने के लिए राजा जयसिंह को प्रोत्साहित किया। जयसिंह ने अपनी सेना लेकर जाटों के नगर थून को जाकर घेर लिया। चूड़ामणि ने वड़े साहस के साथ छः महीने तक युद्ध किया। अन्त में वह अपने पुत्र मोहन सिंह के साथ दुर्ग से भाग गया। राजा जयसिंह ने थून के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और वदन सिंह को वहाँ के जाटों का राजा घोषित किया। घोषणा डीग नामक स्थान पर की गई।

वदन सिंह के कई लड़के पैदा हुये थे। उनमे सूर्यमल्ल, शोभाराम, प्रताप सिंह और वीर नारायण नामक चार पुत्र अधिक प्रसिद्ध हुए। वदन सिंह ने जाटों के उन कई नगरों पर भी अधिकार कर लिया, जिन पर मुगल वादशाह का अधिकार चल रहा था। वदन सिंह ने वेर नामक स्थान पर एक दुर्ग वनवाया और अपने वड़े लड़के सूर्यमल्ल को उसने सव अधिकार दे दिये।

वदन सिंह का वड़ा वेटा सूर्यमल्ल सभी प्रकार योग्य और पराक्रमी था। पिता के अधिकारों को प्राप्त करने के वाद उसने भरतपुर पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा जाट वंशी था। सूर्यमल्ल ने युद्ध में उसको पराजित किया और भरतपुर पर अधिकार कर लिया।

सूर्यमल्ल की शक्तियाँ धीरे-धीरे विशाल होती गईं। उसने साहस और वुद्धिमानी के साथ अपना संगठन वनाया और सन् 1764 ईसवी में सूर्यमल्ल ने वादशाह की राजधानी दिल्ली को लूट लेने का विचार किया। परन्तु कुछ कारणों से वह ऐसा न कर सका। जिस समय वह शिकार खेलने गया था, विलोचों के एक समूह ने आकर एकाएक उस पर आक्रमण किया। उस समय वह जान से मारा गया। जवाहिर सिंह, रईन सिंह, नवल सिंह, नाहर सिंह और रणजीत सिंह नामक उसके पाँच लड़के पैदा हुये। सूर्यमल्ल एक दिन जव शिकार खेलने गया था, रास्ते में उसको हरदेश वख्श नामक एक छोटा वालक मिला। उसे लाकर सूर्यमल्ल ने उसको भी अपना वालक वनाकर रखा। ऊपर लिखे हुये पाँच लड़कों में पहला और दूसरा कुर्मी जाति की विवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था। तीसरा पुत्र मालिन जाति की स्त्री से और शेष दो जाट वंशी स्त्रियों से पैदा हुये थे।

सूर्यमल्ल की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का जवाहिर सिंह अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ। वह माधवसिंह का समकालीन था। सिंहासन पर वैठने के वाद जवाहिरसिंह ने माधव सिंह के साथ विरोध भाव पैदा किया। इसके दो मुख्य कारण थे। पहला कारण यह था कि माधव सिंह मराठों पर आक्रमण न कर सके और दूसरा कारण यह था कि जयपुर के अधीन माचेड़ी के सामन्त को निकालकर वहाँ पर अपना अधिकार कर ले। हिजरी सन् 1182

में जवाहिरसिंह ने आमेर के राजा से कांमा नामक राज्य दे देने के लिये कहा। परन्तु राजा माधवसिंह ने उसकी माँग की कुछ परवाह न की। इस अवस्था मे जवाहिर सिंह क्रुद्ध होकर माधव सिंह के साथ युद्ध करने के लिये अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। वह किसी भी दशा में माधवसिंह के साथ युद्ध करना चाहता था। इसलिए उसने स्वयं अवसर पैदा करने की चेष्टा की। उसने जाटों की एक सेना तैयार की और पुष्कर तीर्थ जाने के लिये वह अपनी सेना के साथ जयपुर राज्य से होकर गुजरा। उसका ऐसा करना राजनीति के सर्वथा विरुद्ध था। जब एक राजा अपनी सेना के साथ दूसरे राज्य की भूमि से होकर निकलना चाहता है तो उसे नियम के अनुसार उस राजा से आज्ञा ले लेनी चाहिये। परन्तु जवाहिर सिंह ने ऐसा नहीं किया। वह अपनी सेना के साथ जयपुर राज्य के स्थानों से होकर पुष्कर चला गया। वहाँ पर मारवाड़ के राजा विजय सिह के साथ उसकी भेंट हुई। दोनों ने स्नेहपूर्वक पगड़ी बदली।

इन दिनों मे आमेर का राजा माधवसिंह बीमार था। उसके दोनो भाई हरसहाय और गुरुसहाय उसके आदेश के अनुसार शासन का प्रबन्ध करते थे। दोनों भाइयों ने जब सुना कि जवाहिर सिंह अपनी सेना के साथ पुष्कर जाते हुये बिना आदेश के जयपुर राज्य से होकर गुजरा है तो उन भाइयो ने माधवसिंह के पास जाकर कहा और पूछा, "ऐसे अवसर पर क्या होना चाहिये।"

अपने भाइयों के मुख से जवाहिरसिंह के अहंकारपूर्ण व्यवहार को सुनकर माधवसिंह को क्रोध मालूम हुआ। उसने उसी समय अपने भाइयों से कहा- इसके सम्बन्ध मे जवाहिरसिंह को एक पत्र लिखो और उससे कहो कि उसका यह कार्य सर्वथा नियम के विरुद्ध है। इसलिये दूसरी बार फिर से ऐसा न होना चाहिये। लेकिन यदि जवाहिरसिंह दूसरी बार फिर ऐसा करता है तो अपने सामन्तो को सेनाओं के साथ उस पर आक्रमण करने को कहो।

राजा माधवसिंह के आदेश के अनुसार उसके दोनो भाइयों ने तुरन्त प्रबन्ध किया। उसने राज्य के सामन्तों को सारी बातें लिखकर युद्ध के लिए तैयार होने का अनुरोध किया। जयपुर राज्य से निकलने में जवाहिरसिंह का अपना एक उद्देश्य था। वह माधवसिंह के साथ युद्ध करने के लिये कोई कारण पैदा करना चाहता था। उसकी चाल से कारण पैदा हो गया। राजा माधवसिंह के भाइयों का भेजा हुआ पत्र पुष्कर मे जवाहिरसिह को मिला। उसने उस पत्र की पूर्ण रूप से उपेक्षा की और पुष्कर से लौटते हुए वह फिर जयपुर राज्य से होकर गुजरा। राजा माधवसिंह के सभी सामन्त अपनी सेनाओ के साथ युद्ध के लिये तैयार होकर आ चुके थे। जयपुर में जवाहिरसिंह की सेना के प्रवेश करते ही सामन्तों ने उस पर आक्रमण किया। जवाहिरसिंह इस होने वाले आक्रमण को पहले से ही जानता था और वह युद्ध के लिये तैयार होकर पुष्कर से लौटा था और दोनों ओर से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। अन्त में जवाहिरसिंह युद्ध से भागा और इस संग्राम का परिणाम यद्यपि जयपुर के पक्ष में रहा लेकिन आमेर राज्य के कितने ही प्रधान सामन्त उस युद्ध में मारे गये।

जवाहिरसिंह के मर जाने पर उसका छोटा भाई रतनसिह सिंहासन पर बैठा। इन्ही दिनों में वृन्दावन के एक गोस्वामी के साथ रतनसिह की भेट हुई। गोस्वामी ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए रतनसिंह से कहा-"किसी भी धातु को मै सोना बनाना जानता हूँ। लेकिन

ऐसा करने में पहले वहुत सा धन खर्च करना पड़ता है।" गोस्वामी की इस वात को सुनकर रतनसिंह ने उस पर विश्वास किया और उसकी मॉग के अनुसार उसने उसको रुपये दिये। गोस्वामी ने उन रुपयों को लेकर सोना देने के लिये एक निश्चित दिन वता दिया। उस वताये हुये दिन को उसे न तो सोना मिला और न उसके दर्शन हुये। लेकिन उसके बाद उसी गोस्वामी ने अवसर पाकर रतनसिंह पर आक्रमण किया और उसके प्राण ले लिये।

रतनसिंह के मारे जाने पर उसका छोटा लड़का केशरी सिंह सिंहासन पर वैठा। उसकी अवस्था छोटी थी। इसलिये रतनसिंह का छोटा भाई नवलसिंह शासन की देख- भाल करने लगा। केशरी सिंह के वाद रणजीतसिंह जाटों के सिंहासन पर वैठा। उसने अपने शासन काल मे अधिक ख्याति पायी। उन्हीं दिनों में अंग्रेज सेनापति लार्ड लेक ने भरतपुर पर आक्रमण किया। उसके साथ रणजीतसिंह ने भयानक युद्ध किया। सन् 1805 ईसवी में रणजीतसिंह की मृत्यु हो गयी। रणधीर सिंह, वलदेव सिंह, हरदेव सिंह और लक्ष्मण सिंह नाम के रणजीतसिंह के चार लड़के थे। रणधीरसिंह अपने पिता के सिंहासन पर वैठा। उसके वाद उसका छोटा भाई भरतपुर के सिंहासन पर वैठा। उसके शासनकाल में अंग्रेजों ने फिर भरतपुर पर आक्रमण किया और कुछ दिनों तक वहॉ के दुर्ग को घेरे रहकर अंग्रेजों ने विजय प्राप्त की। भरतपुर राज्य को अधिकार में लेकर अंग्रेजों ने राज्य में धन और सम्पत्ति लूट ली।

यहॉ पर जाटों की कुछ वातों पर प्रकाश डालना जरूरी है। माचेड़ी आमेर राज्य की अधीनता में था। नरूका वंश का प्रतापसिंह माचेड़ी में शासन करता था। माधवसिंह ने प्रतापसिंह से माचेड़ी का राज्य लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। प्रतापसिंह माचेड़ी से जाटों के राजा जवाहरसिंह की शरण में गया। उसने प्रतापसिंह को अपने यहॉ आश्रय दिया और उसके जीवन निर्वाह के लिये उसने उसको भूमि भी दी।

प्रतापसिंह के चले जाने पर उसके स्थान पर खुशहाली राम नामक व्यक्ति माचेड़ी का सामन्त वनाया गया और उन्हीं दिनों में जयपुर दरबार में नन्दाराम नाम का एक आदमी दूत के स्थान पर नियुक्त किया गया।

सत्रह वर्ष तक राज्य कर पेट की वीमारी से माधवसिंह ने परलोक की यात्रा की। शासन पर वैठने के वाद उसने जो संकल्प किये थे, उन्हें वह पूरा न कर सका। उसकी मृत्यु के वाद शिशु अवस्था में उसका पुत्र सिंहासन पर बैठा। इसलिये माधवसिंह के वाद जयपुर की अवस्था थोड़े ही दिनों में वहुत निर्वल हो गई। राजा माधवसिंह ने अपने शासन काल में कई नगर वसाये थे। उनमें रणथम्भौर नामक एक नगर अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसके दुर्ग के पास माधवसिंह ने अपने नाम पर माधवपुर नामक नगर बसाया था। वह नगर कई बातों में वहुत सुन्दर था। माधवसिंह की दोनों रानियों से पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह नामक दो वालक पैदा हुये थे। माधवसिंह की मृत्यु के वाद छोटा वालक पृथ्वीसिंह जयपुर के सिंहासन पर वैठा। पृथ्वीसिंह की माता छोटी रानी और प्रतापसिह की मॉ वड़ी रानी थी। इसलिए प्रताप की माता पृथ्वी सिंह के वालक होने के कारण शासन का प्रवन्ध करने लगी। वह चन्द्रावत वंश में पैदा हुई थी। शासन की महत्वाकाक्षा पहले से ही उसके हृदय में थी। वड़ी रानी होने के कारण इसके लिये वह अधिकारिणी भी थी। उसके आचरण में दृढ़ता थी। शासन को अपने

हाथ में लेने के बाद बड़ी रानी ने फीरोज नामक महावत को दरबार का सदस्य नियुक्त किया। रानी का यह कार्य राज्य के सामन्तों को अच्छा न लगा। महावत की इस नियुक्ति से दरबार के सदस्यों का अपमान होता था। इसलिए सामन्तों ने रानी के इस कार्य का विरोध किया। परन्तु उसके कुछ परवाह न करने पर राज्य के समस्त सामन्त अप्रसन्न होकर राजधानी से अपनी-अपनी जागीरों में चले गये। बड़ी रानी ने उनके चले जाने की कुछ परवाह न की और उसने मराठों से मिलकर अम्बाजी की अधीनता में एक वैतनिक सेना अपने राज्य में रखी। उस सेना ने मालगुजारी वसूल करने का काम किया। इन दिनों में आरतराम नामक व्यक्ति आमेर का प्रधानमन्त्री था और खुशहाली राम बोरा राज्य का एक मन्त्री था। बोरा राजनीति मे अत्यन्त कुशल था। लेकिन फीरोज के प्रभुत्व ने उसकी मर्यादा को भी क्षीण बना दिया था। रानी ने प्रभावित होकर एक साधारण महावत को अपने मन्त्रिमण्डल में रखा था। लेकिन रानी से विशेप अनुराग रखने के कारण उसका प्रभाव मन्त्रिमण्डल से लेकर सम्पूर्ण राज्य पर हो गया, इस दशा में राज्य के शासन का कार्य नौ वर्पो तक चलता रहा।

इन्हीं दिनो में आमेर का राजा पृथ्वीसिंह घोड़े से गिर कर मर गया। इस दुर्घटना से राज्य के सर्वसाधारण में यह अफवाह फैल गयी कि बड़ी रानी ने अपने लड़के प्रतापसिंह को राज्य के सिंहासन पर बिठाने के लिए विप देकर पृथ्वीसिंह को मरवा डाला है। यद्यपि इस अफवाह का आधार सही नही था क्योंकि पृथ्वीसिंह के न रहने पर राज्य का उत्तराधिकारी उसका भाई और बड़ी रानी का लड़का प्रतापसिंह नहीं हो सकता था। इसीलिए कि पृथ्वीसिंह का विवाह कृष्णगढ़ की राजकुमारी से विवाह हुआ था और उससे मानसिंह नामक एक लडका पैदा हुआ था। पृथ्वीसिंह के बाद राज्य का उत्तराधिकारी यह बालक मानसिंह था। इस दशा में बड़ी रानी के द्वारा पृथ्वीसिंह को मारे जाने का कोई अर्थ नहीं निकलता। वास्तव में वह घोड़े से गिर कर मरा था।

पृथ्वीसिंह के मर जाने पर मानसिंह की माता को अपने पुत्र के सम्बन्ध में भय उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने अपने बालक को कृष्णगढ़ भेज देने का इरादा किया। लेकिन वहॉ पर भी उसे सन्देह हुआ। इसलिए वह अपने बालक को लेकर सिंधिया के यहाँ चली गयी और वही पर बालक मानसिंह का पालन-पोपण होने लगा। पृथ्वीसिंह के परलोकवासी होने पर आमेर के सूने सिंहासन पर बड़ी रानी का लड़का प्रतापसिंह बैठा। खुशहाली राम इन दिनों में आमेर का प्रधानमन्त्री था। उसने अभिपेक के समय प्रतापसिह की सभी प्रकार सहायता की। खुशहाली राम को राजा की उपाधि दी गयी थी और वह प्रधानमन्त्री की हैसियत से आमेर राज्य में काम कर रहा था। संयोग की बात है कि फीरोज के साथ उसका भीतर ही भीतर विरोध चल रहा था। प्रधानमंत्री खुशहाली राम ने फीरोज के प्रभुत्व को मिटा देने का प्रयत्न किया। इसके लिए उसने जिन उपायों का आश्रय लिया, उनसे माचेड़ी के सामन्त को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में बडी सहायता मिली। प्रतापसिंह के अभिपेक के समय आमेर राज्य के सभी सामन्तों ने भाग लिया था। लेकिन माचेड़ी का सामन्त राजधानी मे नहीं आया था। प्रधानमन्त्री खुशहाली राम की राजनीतिक चाले फीरोज के विरोध मे चल रही थी और इसके लिए उसने जो कुछ कर रखा था, उसमे प्रमुख बात यह थी कि उसने आमेर के मन्त्रिमण्डल से फीरोज को हटाने के लिए दिल्ली के मुगल बादशाह से भी भेट की थी।

नजफ खाँ दिल्ली के मुगल बादशाह के यहाँ प्रधान सेनापति था और इन दिनों में दिल्ली के आस-पास जाटों के उपद्रव बढ़ रहे थे। उनके आगरा पर आक्रमण करने पर प्रधान सेनापति नजफ खाँ ने बादशाह के साथ परामर्श किया और मराठों की सहायता लेने के लिए उसने उनके सरदार से बातचीत की। इसके पश्चात् मुगलों की एक फौज लेकर वह जाटों का दमन करने के लिए रवाना हुआ। खुशहाली राम राजनीति से काम लेना चाहता था। उसके परामर्श से माचेड़ी का सामन्त भी अपनी सेना लेकर बादशाह के प्रधान सेनापति की सहायता के लिए पहुँच गया। जाटों के विरुद्ध मराठा सेना भी आ गयी थी। नजफ खाँ ने जाटों पर आक्रमण किया। जाटों की सेना पराजित होकर आगरा से अपनी राजधानी भरतपुर की तरफ भागी। मुगल सेना ने अन्य सेनाओं के साथ भरतपुर राज्य पर आक्रमण किया। नवलसिंह इन दिनों में जाटों का सरदार था। मुगलों के साथ जाटों को पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में माचेड़ी के सामन्त ने बादशाह की फौज का साथ दिया था और उसके इस कार्य के बदले में बादशाह ने खुश होकर उसको राव राजा की उपाधि दी। इसके साथ-साथ जयपुर की अधीनता से निकल कर मुगलों की अधीनता में शासन करने के लिए बादशाह ने उसे एक सनद भी लिख दी। इस प्रकार माचेड़ी का सामन्त जयपुर राज्य की अधीनता से अलग हो गया।

खुशहाली राम के परामर्श का पूरा लाभ माचेड़ी के सामन्त ने उठाया। अब वह जयपुर राज्य की अधीनता से अलग हो चुका था। उसका सीधा सम्बन्ध मुगल बादशाह के साथ हुआ। खुशहाली राम ने इन दिनों में माचेड़ी के सामन्त से एक नया परामर्श किया और उसके द्वारा उसने अपने शत्रु फीरोज का नाश करने के लिए संकल्प किया। खुशहाली राम ने अपनी सेना के साथ बादशाह के यहाँ जाने की तैयारी की। बड़ी रानी ने इसको बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया और उसने खुशहाली राम के स्थान पर फीरोज महावत को आमेर की सेना का अधिकारी बना कर भेजा। खुशहाली राम ने इसमें किसी प्रकार की आपत्ति न की। फीरोज आमेर की सेना को लेकर बादशाह के प्रधान सेनापति के यहाँ गया। खुशहाली राम ने इसके पहले ही माचेड़ी के राव राजा से एक गुप्त षड़यन्त्र कर लिया था। फीरोज महावत के वहाँ पहुँचने पर माचेड़ी के सामन्त ने उससे भेंट की और उसने उसके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। फीरोज महावत ने माचेड़ी के राव राजा का पूर्ण रूप से विश्वास किया। इसी अवसर पर खुशहाली राम का षड़यन्त्र सफल हुआ। माचेड़ी के राव राजा ने फीरोज महावत को विष देकर उसके जीवन का अन्त कर दिया। उसके मर जाने के बाद माचेड़ी का सामन्त फीरोज के स्थान पर आमेर मन्त्रिमण्डल का सदस्य बनाया गया।

फीरोज के मर जाने के बाद बड़ी रानी ने उसका अनुसरण किया और उसने अपने प्राण त्याग दिये। प्रतापसिंह की अवस्था इस समय भी बहुत थोडी थी। वह बिना किसी दूसरे की सहायता के राज्य का शासन नहीं कर सकता था। इस परिस्थिति को खुशहाली राम पहले से ही जानता था और माचेड़ी के राव राजा के साथ वह पहले ही परामर्श कर चुका था। उसने अपनी राजनीति का जो जाल बिछाया था, वह आमेर राज्य में इस समय पूर्ण रूप से सफल हो रहा था। परन्तु कूटनीति और विश्वासघात थोड़े ही समय के बाद संकटपूर्ण साबित होता है। खुशहाली राम के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ। उसने अपनी राजनीतिक चालों से आमेर के राज्य को अपने नियन्त्रण में रखने की चेष्टा की थी। इसके लिए अब तक के उसके सभी प्रयत्न

सफल हुये थे। उसका विरोधी फीरोज विप देकर मारा गया और उसके प्रभाव में रहने वाली राज्य की बड़ी रानी भी इस संसार से चली गयी थी। यहाँ तक सफलता प्राप्त करने के बाद खुशहाली राम ने आमेर के विरुद्ध एक नया पड़यन्त्र किया और उसके फलस्वरूप हमदानी खाँ के नेतृत्व में बादशाह की एक सेना ने आमेर में प्रवेश किया। उस समय आमेर के मन्त्रिमण्डल मे यह प्रश्न पैदा हुआ कि अब आमेर की रक्षा कैसे की जाए। इसी समय मन्त्रिमण्डल के कुछ लोगों ने मराठो के साथ सन्धि करने की सलाह दी। यह सन्धि हो गयी। लेकिन दूसरे ही दिन वह सन्धि भंग कर दी गयी। इसका परिणाम यह निकला कि राज्य में कुछ दिनों तक भयानक अशान्ति रही। चारों तरफ अत्याचार होते रहे और गरीब प्रजा लूटी जाती रही थी। दुर्भाग्य से इन दिनों को पार करके प्रतापसिंह समर्थ हुआ। उसने शासन अपने हाथ में लिया और जिन लोगो के कारण राज्य की यह दुरवस्था हुई थी, उनको निकाल कर उसने अत्याचारी मराठों का दमन करने की प्रतिज्ञा की।

इन दिनो में मराठों के अत्याचार भारतवर्प के अनेक स्थानों पर हो रहे थे। उन लोगों ने राजस्थान के विभिन्न राज्यों पर लगातार आक्रमण करके पैशाचिक अत्याचार किये थे और भयानक रूप से राज्यो को लूटा था। प्रतापसिह ने इन्ही दिनों में आमेर राज्य का शासन-प्रबन्ध अपने हाथो में लिया था। युवक प्रतापसिंह अत्यन्त स्वाभिमानी और साहसी था। मराठों के द्वारा चारों ओर जो अत्याचार हो रहे थे, उनको सुनकर उसका खून उबल रहा था। सन् 1787 ईसवी के इन दिनो में विजयसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर था। प्रतापसिंह ने बहुत सोच-समझकर अपना एक पत्र दूत के द्वारा विजयसिंह के पास भेजा। उसमें उसने लिखा- "मराठों के द्वारा होने वाले अत्याचारों से आप अपरिचित न होंगे। इन मराठों ने चारों ओर जिस प्रकार निष्ठुर अत्याचार कर रखे है, उनको देखकर मेरे हृदय में बडी पीड़ा हो रही है और मैं किसी भी अवस्था में उनका दमन करना आवश्यक समझता हूँ। इसके लिए यदि समस्त राजपूत राजा मिलकर मराठों पर आक्रमण करें तो शत्रुओं की पराजय आसानी के साथ हो सकती है। इन अत्याचारी मराठों के साथ युद्ध करने के लिए मैं स्वयं अपनी सेना के साथ जाऊँगा। यदि आप हमारी सहायता में अपने राज्य की राठौर सेना भेज सकें तो शत्रुओं का विनाश और पराजय बिना किसी सन्देह के हो सकती है। एक बार ऐसा कर देने से राजस्थान के सभी राजाओं की स्वाधीनता सुरक्षित रह सकेगी।"

प्रतापसिंह के इस पत्र को पढ़कर विजयसिंह प्रभावित हुआ। मारवाड़-राज्य में एक नया उत्साह पैदा हुआ। वहाँ की सेना आमेर की सेना के साथ मिलकर अत्याचारी मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार होने लगी। उन्हीं में मारवाड़ के राजा विजयसिंह ने मराठों के अधिकार से अपना आमेर का राज्य वापस लेने का निर्णय किया। राठौर सेना मारवाड़ से चलकर आमेर की सेना के साथ जाकर मिल गयी।

तुंगा नामक स्थान पर मराठों के साथ आमेर और मारवाड़ की सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। सिंधिया मराठा सेना का सेनापति था और उसके साथ फ्रॉसीसी सेनापति डीवाईन भी मौजूद था। मराठो और राजपूतो में कुछ समय तक भयंकर संग्राम हुआ। अन्त में सिधिया की पराजय हुई। वह अपनी युद्ध की सामग्री और अस्त्र-शस्त्र भी छोड़कर बची हुई सेना के

साथ भाग गया। कछवाहा और राठौर सेना ने मराठों की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में सिंधिया के साथ युद्ध करने के लिए प्रतापसिंह स्वयं गया था। सन् 1789 ईसवी के इस युद्ध में विजयी होकर प्रतापसिंह ने एक विशाल उत्सव किया और उसने चौबीस लाख रुपये दीनों-दरिद्रों को दान में दिये।

तुंगा के युद्ध में विजयी होने के बाद प्रतापसिंह के राजस्थान में बहुत ख्याति मिली। मराठों की पराजय से चारों ओर के राज्यों में शान्ति कायम हुई। लेकिन यह परिस्थिति बहुत दिनों तक न रही। कई वर्षों के बाद माधवजी सिंधिया एक नयी सेना संगठित करके रवाना हुआ और उसने मारवाड़ को विध्वंस करने का निश्चय किया। यह समाचार पाकर विजयसिंह ने प्रतापसिंह के पास अपना दूत भेजा। राजा प्रतापसिंह ने मराठा सेना के आने का समाचार सुनते ही अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दिया और तुरन्त मराठों के साथ युद्ध करने के लिए राठौर और कछवाहों की सेना ने संयुक्त मोर्चा तैयार किया। उन दिनों मे एक ओर मराठों के साथ युद्ध आरम्भ हुआ और दूसरी ओर राठौर कवियों ने राठौर सैनिको को प्रोत्साहित करने लिए जो गीत गाए, उनमें केवल राठौरों की प्रशंसा थी। कछवाहा सैनिकों पर इसका दूषित प्रभाव पड़ा। इसका प्रभाव यह हुआ कि आमेर की सेना युद्ध में उदासीन हो गयी। कछवाहा सैनिकों की सहायता न मिलने के कारण इस युद्ध मे राठौरों की पराजय हुई।

राठौर राजा विजयसिंह के साथ आमेर राज्य की जो सन्धि हुई थी, वह टूट गयी। इसलिए सन् 1791 ईसवी मे तुको जी होलकर ने जयपुर राज्य पर आक्रमण किया। उस युद्ध में प्रतापसिंह की पराजय हुई और उसे होलकर को वार्षिक कर देना स्वीकार करना पड़ा। बाद में अमीर खॉ उस कर को वसूल करने का अधिकारी बना दिया गया। उस समय से लेकर प्रताप की मृत्यु के समय सन् 1833 ईसवी तक जयपुर राज्य की दशा बहुत खराब रही। इन दिनों में मराठा और फ्राँसीसी सेना ने भयानक रूप से जयपुर का विनाश किया।

प्रतापसिंह ने आमेर के सिंहासन पर बैठकर पच्चीस वर्ष तक शासन किया। वह साहसी और दूरदर्शी था। लेकिन लुटेरे शत्रुओ के कारण वह अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। माचेड़ी राज्य के निकल जाने के कारण जयपुर राज्य की आमदनी बहुत कम हो गयी थी। मराठों के कई बार आक्रमण होने पर प्रतापसिंह को लाखों रुपये उनको देने पड़े थे, इससे आमेर राज्य का खजाना खाली हो गया। मराठो ने उस राज्य से सब मिलाकर अस्सी लाख रुपये वसूल किये।

राजपूतों की अधोगति का कारण उनकी संकुचित विचारधारा थी। मराठों ने जिस प्रकार अत्याचार करके राजस्थान के राज्यो का विध्वंस और विनाश किया, उसका बदला लेने के लिए स्वाभिमानी प्रतापसिंह ने अपने राज्य का शासन अपने हाथों में लेते ही जो योजना तैयार की थी और जिसके अनुसार मारवाड़ के राजा विजयसिंह ने एक बार उसका साथ दिया, उसके द्वारा प्रतापसिंह ने निश्चित रूप से मराठों को सदा के लिए निर्बल कर दिया होता। लेकिन सिंधिया के दूसरी बार आक्रमण करने पर मारवाड़ के कवियों ने जिस संकुचित विचारधारा से काम लिया, उसके फलस्वरूप न केवल मारवाड का बल्कि आमेर राज्य का भी पतन हुआ। उसका विवरण ऊपर लिखा जा चुका है।

अध्याय-58

जयपुर राज्य की अंग्रेजों के साथ संधि व अन्य बातें

प्रतापसिंह के वाद सन् 1833 ईसवी में जगतसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। इन दिनो में आमेर के साथ-साथ वहाँ के समस्त राजपूत राज्यों की अवनति हो गयी थी। मराठों के अत्याचारों से राजस्थान का प्रत्येक राज्य अशान्ति के दिन व्यतीत कर रहा था। कहीं पर भी प्रजा सुखी न थी। सर्वत्र व्यवसाय को भयानक क्षति पहुँची थी। किसानों की खेती लगातार नष्ट हो रही थी। चारों तरफ मराठों की लूटमार चल रही थी। उनको रोकने के लिए राजपूत राजाओं के पास कोई साधन न था। मराठों के दो संगठित दल थे। एक का नेतृत्व होलकर कर रहा था और सिंधिया दूसरे दल का सेनापति था। पठानों का सेनापति अमीर खाँ मराठों का सहायक हो रहा था। इन दिनों में राजपूतो की अवस्था अच्छी न थी। पठानों और मराठों के शक्तिशाली संगठन लगातार उनका विनाश कर रहे थे। जगतसिंह के सामने भयानक संकट था। अपने राज्य की रक्षा के लिए उसे कहीं कुछ दिखायी न देता था। राजपूत राजा संगठित होकर शत्रुओं का सामना न कर सकते थे। वे अपने संस्कारों मे एकता को लेकर ससार में नहीं आये थे। इधर वहुत दिनों से राजपूत राजाओं को मुगल बादशाह का आश्रय मिल रहा था। उनकी वादशाहत भी इन दिनों में मृतप्राय हो रही थी। समुद्र पार करके जो अंग्रेज इस देश में आये थे, केवल उनकी शक्ति इन दिनों में सजीव और जागृत हो रही थी। इस दशा में जगतसिंह की आँखें बार-बार इन अंग्रेजों की तरफ देख रही थी। उसने सोच-समझकर सन् 1803 ईसवी में अंग्रेजों के साथ सन्धि कर ली। वह सन्धि सात शर्तो के साथ लिखी गयी थी। उसका सारांश इस प्रकार है-

(1) इस सन्धि के द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी और राजा जगतसिंह व उसके उत्तराधिकारियों में स्थायी रूप से मित्रता कायम होती है।

(2) इस सन्धि के अनुसार एक पक्ष का शत्रु दोनों पक्षों का शत्रु होगा और किसी एक पक्ष का मित्र दोनों पक्षों का मित्र समझा जाएगा।

(3) राजा जगतसिंह को अपने राज्य में शासन करने का पूर्ण अधिकार होगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उसमें कभी हस्तक्षेप नहीं करेगी।

(4) कम्पनी के अधिकृत राज्यों पर अगर इस देश की कोई शक्ति आक्रमण करेगी, तो आमेर की सेना कम्पनी की सेना के साथ आक्रमणकारी के साथ युद्ध करेगी।

(5) इस सन्धि को स्वीकार करके राजा जगतसिंह ने कम्पनी के अधिकारों को मन्जूर किया है। यदि किसी समय किसी के साथ राजा जगतसिंह का संघर्ष पैदा होगा तो सन्धि के अनुसार उस संघर्ष का कारण जगतसिंह कम्पनी के अधिकारियो के सामने उपस्थित करेगा। कम्पनी उस संघर्ष को दूर करने की चेष्टा करेगी।

(6) किसी भी आवश्यकता के समय आमेर की सेना कम्पनी की सेना के साथ रहकर युद्ध करेगी।

(7) कम्पनी के अधिकारियों के आदेश के बिना राजा जगतसिंह को किसी देशी अथवा विदेशी शक्ति के साथ सन्धि अथवा मेल करने का अधिकार न होगा।

ऊपर लिखी हुई सन्धि पर सन् 12 दिसम्बर 1803 ईसवी को दोनों पक्षों की तरफ से हस्ताक्षर किये गये और उस पर मोहर लगायी गयी।

इस प्रकार कम्पनी के साथ राजा जगतसिंह ने सन्धि करके मित्रता की। लेकिन वह मैत्री अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। अंग्रेज लेखकों ने राजा जगतसिंह पर दोषारोपण करते हुए इनके सम्बन्ध में लिखा- "जयपुर के राजा ने सन्धि में लिखी हुई शर्तो की अवहेलना की। इसलिए लार्ड कार्नवालिस को इस सन्धि को तोड़ देने का विचार करना पड़ा।"

अंग्रेज लेखको का राजा जगतसिंह पर यह झूठा दोषारोपण था। इसका प्रमाण आचिसन साहब के एक लेख से मिलता है। उसने लिखा है- "लार्ड कार्नवालिस ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जगतसिंह के साथ की गई सन्धि को तोड़ देने का आदेश दिया। इसके पहले राजा जगतसिंह ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था, जिससे उसकी तरफ से सन्धि की शर्तो की अवेहलना प्रकट होती। सन्धि टूटने के पहले होलकर की सेना के साथ कम्पनी का युद्ध हुआ था। उस समय राजा जगतसिंह ने लार्ड लेक की सेना के साथ जाकर मराठों से युद्ध किया था।" इस लेख से साफ जाहिर होता है कि सन्धि टूटने का अपराध राजा जगतसिंह पर नहीं, कम्पनी पर था। कम्पनी का हित इसी में था कि उसने राजा जगतसिंह के साथ जो सन्धि की है, वह टूट जाए। उस सन्धि के टूट जाने से जयपुर को भयानक क्षति उठानी पड़ी। मराठो के अत्याचार फिर से जयपुर में आरम्भ हो गये। इनके आरम्भ होने का कारण यह था कि सन्धि के अनुसार जयपुर के राजा जगतसिंह ने अंग्रेज सेनापति जनरल लेक का साथ देकर होलकर के साथ युद्ध किया था। इसके बाद कम्पनी ने जयपुर की सन्धि तोड़ दी और उसका परिणाम जयपुर को भोगना पड़ा।

जगतसिंह जिन दिनों में आमेर के सिंहासन पर बैठा था, उन दिनों में मेवाड़ में राणा भीमसिह का और मारवाड़ मे राजा मानसिंह का शासन चल रहा था। ये तीनो समकालीन राजा थे। राजा मानसिंह से उसके सामन्त प्रसन्न न थे। उन्हीं दिनों में पोकर्ण के सामन्त सवाईसिंह ने राजा मानसिंह के साथ संघर्ष पैदा किया। सवाईसिंह किसी प्रकार मानसिंह को सिंहासन से उतार देने की चेष्टा कर रहा था। उसकी इस चेष्टा को शक्तिशाली बनाने वाले कई कारण पैदा हो गये थे। मानसिंह के पहले राजा भीमसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर था। उसके मरने के बाद उसकी गर्भवती रानी से एक लड़का पैदा हुआ था। उसका नाम धौकलसिंह था। सवाईसिंह

मानसिंह से अप्रसन्न था। इसलिए उसके सिंहासन पर बैठने के बाद सवाईसिंह ने धौकलसिंह का पक्ष लेकर मानसिंह का विरोध किया और एक भयानक संघर्ष पैदा कर दिया। वह राजनीति में बहुत चतुर था। इसलिए उसने मानसिंह के विरुद्ध एक षड़यन्त्र की रचना की और उसके अनुसार उसने आमेर और मारवाड़ के राजाओ मे संघर्ष पैदा कराने का सफल प्रयत्न किया। उसका अनुमान था कि इन दोनों राजाओं की शत्रुता बढ़ जाने से मेरी चेष्टा सफल होगी और मारवाड के सिंहासन से मानसिह को उतार कर धौकलसिंह को बिठाने में मैं सफल हो सकूँगा। सामन्त सवाईसिंह के द्वारा पैदा होने वाले संघर्ष का वर्णन विस्तार के साथ इस पुस्तक में पहले किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पर फिर उसका उल्लेख करना किसी प्रकार आवश्यक नहीं।

राजा जगतसिंह ने ऊपर लिखी हुई सन्धि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ की थी। वह सन्धि उसी समय तक चली, जब तक कम्पनी के अंग्रेजों को उसकी आवश्यकता रही। उस सन्धि को तोड़ देने से जिस समय कम्पनी को अपना लाभ मालूम हुआ तो वह बिना किसी आधार के तोड़ दी गयी और उसका अपराधी राजा जगतसिंह को बनाया गया। इन दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्तियाँ बराबर बढ़ रही थीं। राजस्थान के सभी राजाओं ने क्रम-क्रम से कम्पनी के साथ सन्धियाँ कीं। उस दशा में जयपुर के राजा को फिर विवश होकर सन् 1818 ईसवी की 2 अप्रैल को कम्पनी के साथ नयी सन्धि करनी पड़ी।

जगतसिंह न केवल शासन में बल्कि अन्य बातों में भी अयोग्य था। उसकी इस अयोग्यता के कारण जयपुर राज्य का पतन हुआ। अयोग्य मनुष्य को सांसारिक ज्ञान के अभाव में अपने ऊपर भी विश्वास नहीं रहता और इसीलिए उसको दूसरे के इशारों पर चलना पड़ता है। इस दशा में उससे उचित और अनुचित कोई भी लाभ उठा सकता है। जगतसिंह की यही अवस्था थी। अपनी निर्बलता के कारण उसको होलकर की सेना के एक अधिकारी अमीर खाँ की सहायता लेनी थी। अमीर खाँ दूसरे को लूटने में एक असाधारण पुरुष था। उसने अपनी सेना के खर्च के नाम पर जयपुर राज्य से अपरिमित सम्पत्ति ली थी और उसके बाद भी उसने जयपुर राज्य के कितने ही ग्रामो और नगरो पर अधिकार कर लिया था। इन दिनों में केवल अमीर खाँ जयपुर राज्य की अधोगति का कारण बन गया था। वह कूटनीति का पण्डित था। उसने जयपुर में भयानक रूप से अशान्ति पैदा कर दी थी। अमीर खाँ एक तरफ अंग्रेजों का मित्र बनने की कोशिश करता था और दूसरी तरफ वह जयपुर के राजा जगतसिंह को अंग्रेजों के विरुद्ध उत्तेजित किया करता था। उसकी भलाई इसी में थी कि अंग्रेजों के साथ जगतसिंह की सन्धि चल न सकी। वह भयानक रूप से तिकड़मबाज था। अंग्रेजो से जगतसिंह की निन्दा किया करता था और जगतसिंह को अंग्रेजो से सदा सावधान रहने की चेतावनी दिया करता था। जगतसिंह उसकी इन चालो को समझ न सका। उसमे न तो इतनी योग्यता थी और न आत्म-विश्वास था। अपनी इन निर्बलताओ के कारण वह राज्य के सामन्तो और मन्त्रियों पर भी विश्वास न करता था। उसकी इन कमजोरियों का अनुचित रूप से लाभ अमीर खाँ ने उठाया। उसने जगतसिह को अंग्रेजो के साथ सन्धि न करने के लिए सदा तैयार किया। वह जगतसिह का मित्र न था। उसकी अयोग्यता के कारण अमीर खाँ इन दिनों में जयपुर को असहाय समझता था। इसलिए इन दिनों में उसने जयपुर के अत्यन्त समीप माधव राजपुरा नामक स्थान पर गोलों की वर्षा की थी। जिससे घबराकर जगतसिंह को दूसरी बार अंग्रेजों के

साथ सन्धि करनी पड़ी। इस बार की सन्धि में जयपुर राज्य पहले की अपेक्षा अधिक जकड़ा गया। पहली सन्धि में उससे कर लेने की कोई शर्त न रखी गयी थी। दूसरी बार की सन्धि में जयपुर राज्य को कर देना स्वीकार करना पड़ा। यह सन्धि दस शर्तों में तैयार की गयी। विस्तार के भय से सन्धि की शर्तो का उल्लेख हम यहॉ नहीं करना चाहते। इस दूसरी सन्धि के अनुसार राजा जगतसिंह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कर के रूप में आठ लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया और इस सन्धि को मंजूर करके उसने जयपुर राज्य की अधीनता का अन्त कर दिया। यद्यपि उन दिनों में राज्य की परिस्थितियॉ इतनी भयानक हो गयी थी कि अंग्रेजों की सन्धि के विना जयपुर राज्य का कार्य किसी प्रकार चल न सकता था और यदि उसने ऐसा न किया होता तो आक्रमणकारी लुटेरों ने उसकी बची हुई जिन्दगी का भी विनाश कर दिया होता।

आमेर के सिंहासन पर बैठकर जगतसिंह ने अपने पूर्वजों के गौरव के अनुसार एक भी कार्य न किया। उसके शासनकाल में प्राय: नित्य ही एक-न-एक ऐसी घटना हुआ करती थी, जो उस राज्य को तेजी के साथ पतन की ओर ले जाने का कार्य कर रही थी। उसके समय में अनेक वार राज्य पर आक्रमण हुए, राज्य लूटा गया। शत्रुओं ने भयानक रूप से प्रजा का विध्वंस और विनाश किया। जगतसिंह अपनी अयोग्यता के कारण इस दुरावस्था में राज्य की रक्षा न कर सका। उसने ऐसे अवसरों पर आत्म-समर्पण किया और युद्ध का खर्च देकर जान बचायी। वह राजपूत था लेकिन क्षत्रियोचित उसमे शौर्य स्वाभिमान न था। अपने अनुचित कार्यो से उसने व्यक्तिगत चरित्र को भी कलङ्कित किया था। रसकपूर नामक एक वेश्या की लड़की से उसने प्रेम किया था, जिसके कारण उसको सिंहासन से उतार देने के लिए कुछ मन्त्रियों और सामन्तों ने तैयारी की थी। रसकपूर से अप्रसन्न होकर राज्य के अधिकारियों ने उसे नाहरगढ़ के दुर्ग मे भेज देने का निर्णय किया। उस दुर्ग में राज्य के अपराधी भेजे जाते थे। लेकिन राजा जगतसिंह के कारण रसकपूर वहॉ भेजी न जा सकी।

राजा जगतसिंह ने उस मुस्लिम लड़की को अपनी रखैल बनाकर अपने यहाँ रखा और आधे राज्य का उसको अधिकारी बना दिया। राजा जगतसिंह ने अपने राज्य में रसकपूर के नाम से सिक्का चलाया। एक बार वह रसकपूर के साथ घूमने के लिए निकला और अपने सामन्तो से उसने उसके प्रति उसी प्रकार का सम्मान प्रकट करने के लिए आदेश दिया, जिस प्रकार का सम्मान सामन्त लोग अपने राजवंश की महिलाओ के प्रति प्रकट किया करते थे। सामन्तों ने उसकी इस आज्ञा को स्वीकार नहीं किया। उसके दरबार में शिवनारायण मिश्र नाम का एक ब्राह्मण था। वह राज्य के प्रधानमंत्री के पद पर इसीलिए नियुक्त किया गया था कि वह रसकपूर को लडकी कहकर पुकारता था। राजा जगतसिंह की आज्ञाओं का विरोध करके दूनी के सामन्त चॉदसिंह ने आवेश में आकर कहा था- "मैं किसी भी उस आयोजन में भाग न लूँगा जिसमें रसकपूर मौजूद होगी।"

चॉदसिंह की इस बात को सुनकर जगतसिह ने उस पर दो लाख रुपये का जुमाना किया। जुर्माने की यह रकम उसकी जागीर दूनी की चार वर्ष की आमदनी थी।

मनु ने अपनी पुस्तक मनुस्मृति में राजा को सिंहासन से उतार देने की व्यवस्था का वर्णन किया है। आमेर के सामन्तों ने उस व्यवस्था का आश्रय लेकर जगतसिंह को सिंहासन मे

उतारने का प्रयास किया। जगतसिंह को इसका पता लग गया। वह अपने वचने की कोशिश करने लगा। कुछ सामन्त और मन्त्री इस अपमान से जगतसिंह की रक्षा भी करना चाहते थे। किसी प्रकार रसकपूर को कारागार में भेज दिया गया और राजा जगतसिंह से जो सम्पत्ति उसे मिली थी, उसे छीन लेने का आदेश दिया गया। जिस दुर्ग के कारागार में रसकपूर भेजी गयी, वहाँ से वह किसी प्रकार निकलकर भाग गयी। जगतसिंह ने उसके भाग जाने पर उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न की। 21 दिसम्बर सन् 1818 ईसवी को जगतसिंह की मृत्यु हो गई।

राजा जगतसिंह के कोई लड़का न था। उसने अपने जीवनकाल मे किसी को उत्तराधिकारी भी नहीं बनाया था। राजा के पुत्रहीन मरने पर गोद लेने की व्यवस्था बहुत प्राचीनकाल से राजस्थान में चली आ रही हैं। इस प्रकार जो बालक गोद लिया जाता है, उसी के द्वारा मृत राजा की दाह-क्रिया का संस्कार कराया जाता है। राजा जगतसिंह के मर जाने पर नरवर के राजा के लड़के मोहनसिंह को गोद लेकर आमेर राज्य के सिंहासन पर बिठाने का निश्चय हुआ।

21 दिसम्बर को जगतसिंह की मृत्यु हो जाने पर राज्य में गोद लेकर शासन का कार्य सम्हालने का निश्चय हुआ। लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है, जैसा कि अंग्रेजों के साथ की गई सन्धि मे स्वीकार किया गया है, इस पर राज्य के मन्त्री और सामन्त आपस में परामर्श करने लगे। जयपुर राज्य के मन्त्रिमण्डल के सामने यह एक कठिन समस्या पैदा हुई। ऐसे अवसर पर मैं मन्त्रिमण्डल की सहायता करना चाहता था। लेकिन राज्य की पुरानी और प्रचलित प्रथाओं का ज्ञान न रखने के कारण मैंने जो हस्तक्षेप किया, उसे राज्य के लोगों ने अच्छा नहीं समझा और वहाँ के सरदारों को इसके लिए अपनी असमर्थता प्रकट करनी पड़ी।

इन दिनों में जयपुर के मन्त्रि-मण्डल के सामने राज्य के उत्तराधिकारी के अभाव की जो समस्या थी, उस पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। साधारण तौर पर राजा के बड़े पुत्र को उत्तराधिकारी होने का पद मिलता है। राजपूतों में प्रचलित यह एक पुरानी प्रथा है। यद्यपि कभी-कभी इस प्रथा का उल्लघंन होता हुआ भी देखा गया है। लेकिन बहुत कम। इसके सम्बन्ध में मनु ने अपने ग्रन्थ में निर्णय किया है। यद्यपि बहुत से राजपूतों ने मनु की इन आज्ञाओं का अनुसरण नहीं किया। राजा के बडे लड़के को पाटकुमार अथवा राजकुमार के नाम से पुकारा जाता है और वही अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी माना जाता है। राजकुमार के दूसरे भाई कुमार नाम से सम्बोधित होते हैं। राज्य की सबसे बड़ी रानी को अर्थात् राजा का विवाह जिसके साथ सबसे पहले होता है, उसे पटरानी कहा जाता है। अन्य रानियों की अपेक्षा पटरानी के अधिकार अधिक होते हैं। छोटी अवस्था मे राजकुमार के सिंहासन पर बैठने पर पटरानी राज्य का शासन करती है।

यदि कोई राजा पुत्रहीन अवस्था में मरता है तो उस वश के किसी निकटवर्ती सम्बन्धी के बालक को गोद लेने की राजस्थान में बहुत पुरानी व्यवस्था है। ऐसे प्रश्न पर सगे भाई के बालक को सबसे पहले गोद लेने का नियम है। उसके अभाव मे वश के किसी निकटवर्ती बालक की खोज की जाती है। इस प्रकार की प्रचलित प्रणाली के अनुसार मेवाड़ राज्य मे

उत्तराधिकारी के अभाव में राणावत वंश के वालक को गोद लिया जाता है। मारवाड़ राज्य में जोधावंशी वालक को गोद लेने की व्यवस्था है। बूंदी राज्य में दुगारी वंश, कोटा-राज्य में आपजी वंश, वीकानेर में महाजन गाँव के सामन्त वंश का वालक गोद लिया जाता है।

जगतसिंह की मृत्यु के वाद दूसरे दिन मोहनसिंह नाम का वालक जयपुर के सिंहासन पर वेठा। वह वालक नरवर राज्य के भूतपूर्व राजा मनोहरसिंह का लड़का था। सिंधिया ने मनोहरसिंह को राज्य से निकाल दिया था। वह जयपुर राज्य का वंशज था। उसके पूर्वज आठ सौ वर्प पहले जयपुर राजवंश से पृथक हुये थे। इसलिए मोहनसिंह का अभिपेक प्रचलित प्रथा के विपरीत हुआ। क्योंकि वर्तमान प्रथा के अनुसार झिलॉय के सामन्त का वंशज आमेर राज्य के पद पर आने का अधिकारी था। उस वंश के किसी बालक के न मिलने पर दूसरे कई सामन्त वंश इसका अधिकार रखते थे। उन वंशों के किसी वालक की खोज न करके मोहनसिंह को गोद लिये जाने का एक कारण था। जगतसिंह की मृत्यु के समय उसके अन्तःपुर में मोहन नाम का एक नाजिर था।* उस समय शासन की वागडोर उसी के हाथ में थी। वह बड़ा चतुर था और स्वार्थ साधन करना वह खूव जानता था। वड़ी वुद्धिमानी के साथ उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की थी और राज्य के शासन में अपना अधिकार पैदा कर लिया था। वह स्वार्थ परायण था। अवसर का लाभ उठाना जानता था। जिस मोहनसिंह को आमेर राज्य का उत्तराधिकारी वनाया गया ओर वहाँ के सिंहासन पर विठाया गया, उसकी अवस्था केवल नौ वर्प की थी। इस बालक के सिंहासन पर वैठने से नाजिर मोहन को वहुत समय तक राज्य से लाभ उठाने का मौका था। इसलिए राजस्थान की प्रथा के अनुकूल न होने पर भी वालक मोहनसिंह को आमेर के सिंहासन पर विठाने की नाजिर मोहन ने चेप्टा की थी और उसमें उसको सफलता भी मिली थी।

जयपुर राज्य के श्रेष्ठ सामन्तों मे डिग्गी के मेघराज सिंह सामन्त की मित्रता उस नाजिर के साथ थी। सामन्त मेघराजसिंह ने नाजिर की मित्रता का पूरे तौर पर लाभ उठाया था और राजा की खास भूमि पर अधिकार करके स्वतन्त्रता के साथ उसका उपयोग किया था! शासन में नाजिर का आधिपत्य था और उस नाजिर के साथ मेघसिंह की मैत्री थी। अन्तःपुर से लेकर राज्य के छोटे-वड़े सभी कर्मचारियों तक जो लोग नाजिर के मेल के थे, वे सभी राज्य में मनमानी कर रहे थे। उन पर किसी का नियन्त्रण न था। छोटे वालक के सिंहासन पर बैठने से राज्य में शासन का अधिकार नाजिर के हाथ मे रहेगा और अधिकार वने रहने से अनुकूल कर्मचारी और राज्य के अधिकारी बिना किसी अंकुश के रहेंगे। इसीलिए वे सव नाजिर के समर्थक हो रहे थे और नाजिर की इच्छानुसार वालक मोहनसिंह वहाँ के सिंहासन पर विठाया गया था।

नाजिर ने नरवर से मोहनसिंह को लाने और अभिपेक करके सिंहासन पर उसे विठाने के लिए किसी से परामर्श नहीं किया। अपनी समझ में उसको परामर्श करने की जरूरत भी नहीं थी। दरवार से लेकर राज्य तक सर्वत्र उसका आधिपत्य था। इसीलिये उसने न तो रानियों

* मुगल वादशाहों के महलों में जो मनुष्य रक्षक के पद पर रखा जाता था'' उसे नाजिर कहा जाता था। राजपूत राजाओं में जयपुर और बूँदी के राजाओं ने उनका अनुकरण करके अपने अन्तःपुर के रक्षक को नाजिर की उपाधि दी थी।

से कुछ पूछा था और न सामन्तों से कुछ बातचीत की। केवल अपने अधिकारियों के बल पर बालक मोहनसिंह को लेकर उसने जगतसिंह का दाह-संस्कार कराया और उसके बाद दूसरे दिन मोहनसिंह को मानसिंह के नाम से सिंहासन पर बिठाकर कछवाहों का राजा बना दिया। इसके बाद जयपुर की राजधानी में जो सामन्त उपस्थित थे, उनकी सम्मति लेकर उसने राज्य की मोहर लगाने का प्रयास किया। उस समय उसके पक्षपाती सामन्त ही वहाँ पर मौजूद थे। लेकिन उन लोगों ने भी इसे पसन्द न किया और उन लोगों ने सोच-समझकर ऐसा कर दिया, जिससे बालक मोहन के अभिषेक में न तो उनकी सम्मति जाहिर होती थी और न उनका विरोध ही प्रकट होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक उस अभिषेक के सम्बन्ध में किसी ओर से आलोचना न हो सकी। जो लोग इस कार्य को नाजिर की अधिकार चेष्टा समझते थे, वे भी कुछ न कहकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे चाहते थे कि कम्पनी के अधिकारी नाजिर के इस कार्य मे दखल दें। नाजिर बहुत समझदार था। विरोधी अवसरो को वह अनुकूल बनाना जानता था। दिल्ली में अंग्रेज रेजीडेन्ट को उसने अपना एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसके अनुसार कम्पनी की तरफ से एक कर्मचारी जयपुर राज्य मे आया। राजा जगतसिंह की मृत्यु के बाद छः दिन बीत चुके थे। कम्पनी ने अपने उस कर्मचारी के द्वारा निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की कोशिश की थी-

1. नरवर राज्य के बालक मोहनसिंह को जयपुर राज्य का अधिकारी किस प्रकार बनाया गया?
2. मोहनसिंह के वंश का विवरण क्या है?
3. मोहनसिह के वंश का जयपुर राज्य के राजवंश से क्या सम्बन्ध है?
4 बालक मोहनसिंह के पूर्वजो की नामावली और उसके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण।
5 मोहनसिंह को इस राज्य के सिहासन पर बैठने का अधिकार कैसे मिला और उसके इस अधिकार को किस आधार पर स्वीकार किया गया?
6. इस बात का कैसे निर्णय हुआ कि बालक मोहनसिंह इस राज्य के सिंहासन पर बैठने का अधिकारी है।
7 जिनके द्वारा इस प्रकार का निर्णय हुआ, उनका नाम और परिचय।
8 अभिषेक के सम्बन्ध मे अन्तःपुर की रानियों से क्या परामर्श किया गया और यदि किया गया तो उसका प्रमाण क्या है?
9 इस बालक को सिंहासन पर बिठाने के लिए कितने सामन्तो ने सम्मति दी और अभिषेक के समय समारोह मे भाग लिया?
10 जिनकी सम्मतियो और परामर्शो से बालक मोहनसिंह को सिहासन पर बिठाया गया, क्या उनके हस्ताक्षर लिये गये और यदि लिये गये तो वे कहाँ हैं?
11 क्या अभिषेक समारोह में राज्य की समस्त प्रजा और उसके प्रतिष्ठित लोगों को आमन्त्रित किया गया?

नाजिर ने अंग्रेज रेजीडेन्ट के पास प्रार्थना-पत्र भेजकर उसको अपने अनुकूल बनाये रखने का प्रयास किया, लेकिन रेजीडेन्ट ने कम्पनी की तरफ से एक कर्मचारी भेजा। उसने

जयपुर राज्य में आकर ऊपर लिखे हुये प्रश्नों के आधार पर परिस्थितियों को समझने की चेष्टा की। नाजिर ने अपने सफल प्रयत्नों के द्वारा कम्पनी के उस कर्मचारी को भी अनुकूल बना लिया। उसने जयपुर से लौटकर अपने अधिकारियों को ऐसी रिपोर्ट दी, जिससे सन्तुष्ट होकर बालक मोहनसिंह के पक्ष में कम्पनी की स्वीकृति नाजिर के पास आ गयी। कम्पनी का वह पत्र दरबार में सबके सामने उपस्थित किया गया और नाजिर ने प्रसन्नता के साथ उसे पढ़कर सबको सुनाया। इस स्वीकृति के मिलने के बाद मोहनसिंह को राज-सिंहासन मिलने के सम्बन्ध में नरवर मे खुशियाँ मनायी गई।

नाजिर को अब भी थोड़ा बहुत सामन्तों पर सन्देह था। उसको दूर करने के लिए उसने सामन्तों से प्रश्न किया- "आप लोगों की क्या सम्मति है?"

सामन्त लोग नाजिर की चालाकी को खूब जानते थे। इन दिनों में उसी के इशारों पर राज्य का शासन चल रहा था। नाजिर जिसे चाहता था अधिकारी बना देता था और जिसे चाहता था, उसे मिटाने की कोशिश करता था। इन परिस्थितियो में जान बूझकर सामन्त लोग उसके शत्रु नहीं बनना चाहते थे। इसीलिए उन लोगों ने बुद्धिमानी के साथ एक निर्णय करके नाजिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- "जोधपुर के राजा की बहन आजकल इस राज्य की पटरानी है। उसकी मर्यादा को सम्मान देना हम सबका कर्त्तव्य है। इसलिए इस प्रश्न के सम्बन्ध में हम लोगों का उत्तर पटरानी के उत्तर पर निर्भर है।"

सामन्तों के इस उत्तर को सुनकर नाजिर चौंक पड़ा। उसे उन सामन्तों से इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी। पटरानी नाजिर से प्रसन्न न थी। उसने न केवल नाजिर का विरोध किया, बल्कि इस मामले में जो लोग उसके पक्षपाती थे और जिस किसी ने बालक मोहनसिंह को सिंहासन पर बिठाने के लिए अपनी सम्मति दी थी, पटरानी ने साहसपूर्वक उनका विरोध किया। एक फरवरी को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से मोहनसिंह का समर्थन नाजिर को प्राप्त हो गया था। लेकिन पटरानी के विरोध से दरबार की परिस्थिति पलटने लगी। सामन्तों ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ पटरानी का आश्रय और आधार लेकर ऐसा उत्तर दिया, जिससे बहुत साफ-साफ बालक मोहनसिंह को सिंहासन देने का विरोध प्रकट होता था। इन सब बातों का परिणाम यह निकला कि फरवरी के अन्त तक नाजिर की विरोधी शक्तियाँ बढ़ने लगीं और मोहनसिंह का जो अभिषेक किया गया था, उसके प्रति राज्य की प्रजा में असन्तोष पैदा हो गया। झिलायँ का राजावत सामन्त इस सिंहासन को पाने का अधिकारी था। वह अपने स्वत्व की रक्षा के लिए युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। सिवाडा और ईसरदा के दोनों सामन्तों ने उसका साथ देने की प्रतिज्ञा की। पृथ्वीसिंह का पुत्र इन दिनो में ग्वालियर में रहता था, उसको आमेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए कुछ लोगों की राय होने लगी। इस प्रकार राज्य में नाजिर का विरोध आरम्भ हुआ। अभी तक वह समझता था कि अंग्रेज कम्पनी की स्वीकृति मिल जाने के बाद विरोध करने का किसी में साहस नहीं हो सकता। लेकिन उसके बाद जो विरोध और विद्रोह पैदा हुआ, उसको असफल बनाने के लिए उसने सभी प्रकार के उपाय सोच डाले।

इन दिनों में जयपुर राज्य में कोई शक्तिशाली सामन्त न था। नहीं तो नाजिर जैसे व्यक्ति ने राज्य में अपना आधिपत्य कायम न किया होता। उसकी चालाकी की सीमा न थी।

वह अन्तःपुर का एक साधारण संरक्षक था। लेकिन अपनी कूटनीति के द्वारा उसने दरवार से लेकर राज्य तक सवको अपनी मुट्ठी में वॉध रखा था। उसने अंग्रेज रेजीडेन्ट को भुलावे में रखा और उसकी तरफ से आने वाले कर्मचारी से अपने पक्ष के समर्थन का काम लिया। इन दिनों में पटरानी ने यदि साहस करके उसका विरोध न किया होता तो मोहनसिंह के अभिषेक का राज्य में कोई विरोधी न था। पटरानी के विद्रोह करने पर नाजिर का मायाजाल निर्वल पड़ने लगा। उसके पास कूटनीति के अस्त्रो की कमी न थी। उसने पटरानी को अपने पक्ष में करने के लिए एक रास्ता निकाला। वह जोधपुर के राजा की वहन थी।* नाजिर जोधपुर के राजा मानसिंह के पास पहुँचा और जयपुर राज्य की परिस्थितियों को वड़ी वुद्धिमानी के साथ उसके सामने रखकर सभी प्रकार का शिष्टाचार और सम्मान प्रदर्शित किया। उसका विश्वास था कि पटरानी अपने भाई के आदेश को जरूर मानेगी। राजा मानसिंह की अपने पक्ष में सम्मति ले लेना वह जरा भी कठिन कार्य नहीं समझता था। नाजिर ने राजा मानसिंह से प्रार्थना करते हुए कहा- "राजा जगतसिंह ने मरने के पहले आमेर के सिंहासन पर वालक मोहनसिंह को विठाने का आदेश दिया था। अपने राजा की आज्ञानुसार ही राज्य में मोहनसिंह का अभिषेक किया गया है। हमारी पटरानी को इसमें कुछ भ्रम हो गया है। इसलिए आप उसे सुलझा देने की कृपा करें। पटरानी के विरोध से राज्य में अशान्ति उत्पन्न हो रही है और यह अशान्ति राजा जगतसिंह के सम्मान के विरुद्ध है।"

नाजिर ने सभी प्रकार की वातें कह कर राजा मानसिंह को प्रभावित करने की चेष्टा की। लेकिन उस राजा पर नाजिर का कोई प्रभाव न पड़ा। राजा मानसिंह ने उसको उत्तर देते हुए कहा- जयपुर के सिंहासन पर इस समय किसको विठाया जाये, इसका निर्णय करने के लिए प्रचलित प्राचीन प्रथाओं के अनुसार राजा के प्रधान सामन्त अधिकारी हैं। आप उन सामन्तों की सम्मति उनके हस्ताक्षरों के साथ ले लीजिये। इसके वाद आपको पटरानी की सम्मति की आवश्यकता न रहेगी और यदि होगी तो मैं उसके हस्ताक्षर करवा दूँगा।

राजा मानसिंह के उत्तर को सुनकर नाजिर ने आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखा। यह उसका अन्तिम अस्त्र था। उसके प्रयोग में वह पूर्ण रूप से असफल हुआ। जोधपुर से लौटकर नाजिर ने एक नया षड़यंत्र रचा। राज्य के सामन्तों और पटरानी का विरोध करने के लिये उसने एक शक्तिशाली राजपूत राजा को खोजना आरम्भ किया। उसने विश्वास किया वह मोहनसिंह का समर्थन करेगा तो आज जो विरोध पैदा हुए हैं, वे अपने आप सव खत्म हो जायेंगे।

वहुत कुछ सोच समझकर नाजिर ने उदयपुर के राणा को अपने पक्ष में लाने की कोशिश की। उसने राणा की पोती के साथ मोहनसिंह के विवाह का प्रस्ताव अपने दूत के द्वारा भेजा। राणा को इसके रहस्य की कोई जानकारी न थी। उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। राणा के जो प्रतिनिधि दिल्ली में मौजूद थे, नाजिर ने उनकी सम्मति भी प्राप्त कर ली। लेकिन राणा के दरवार में कुछ वुद्धिमान व्यक्तियों ने विवाह के प्रस्ताव का विरोध किया। उसका फल यह हुआ कि राणा ने विवाह के उस प्रस्ताव को नामन्जूर कर दिया। नाजिर अपने

* कुछ लेखकों ने पटरानी को जोधपुर के राजा की पुत्री माना है।

षड्यंत्र की सफलता में इसके बाद भी लगा रहा। उसके सामने अभी तक निराशा का कोई कारण न था।

सन् 1818 ईसवी के दिसम्बर की 21 तारीख को राजा जगतसिंह की मृत्यु हुई थी। सन् 1819 ईसवी की 24 मार्च को सुनने को मिला कि राजा जगतसिंह की भाटियानी रानी को आठ महीने का गर्भ है। यह बात कई महीने तक नाजिर से छिपा कर रखी गयी थी। इन्हीं दिनो में एक दिन राजा जगतसिंह की सोलह विधवा रानियाँ राज्य के प्रधान सामन्तों की पत्नियों को लेकर भाटियानी रानी के महल में गयी। उन सबने देख सुनकर और सभी प्रकार समझकर इस बात को स्वीकार किया कि भाटियानी रानी गर्भवती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। राज्य के सामन्तों ने इस निर्णय को सुनकर अत्यधिक सन्तोष प्रकट किया और सभी ने मिलकर प्रतिज्ञा की कि अगर भाटियानी रानी से बालक पैदा होगा, तो हम सब लोग उसको अपना राजा मानकर स्वीकार करेंगे।

इस प्रतिज्ञा-पत्र पर सभी सामन्तों के हस्ताक्षर हो गये। उसके बाद वह पत्र नाजिर के पास भेजा गया और उससे भी उस पर हस्ताक्षर करने के लिये कहा गया। नाजिर को अभी तक रानी के गर्भवती होने का समाचार मालूम न था। इसलिये उस प्रतिज्ञा-पत्र को असंगत और सारहीन समझकर उसने भी हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद रानी के गर्भवती होने का समाचार राज्य में फैलने लगा। राजा जगतसिंह की मृत्यु के चार महीने और चार दिन बीत जाने पर 25 अप्रैल को प्रातःकाल भाटियानी रानी से बालक पैदा हुआ। इस समाचार को सुनकर राज्य के सभी सामन्त बहुत प्रसन्न हुए। राजधानी में अनेक प्रकार के उत्सव किये गये। लेकिन उस बालक के जन्म से नाजिर पर वज्राघात हुआ। भाटियानी रानी से उत्पन्न हुआ बालक राजसिहासन पर बिठाया गया। उसका अभिषेक हुआ और बालक मोहनसिंह को सिंहासन से उतारकर नरवर भेज दिया गया।

□

शेखावटी का इतिहास

बालो जी व उसका शेखावत वंश

इस राज्य का इतिहास शेखावत वंश के इतिहास के साथ आरम्भ होता है। इस वंश का सम्बन्ध आमेर के सामन्तों के साथ है और इस वंश का शेखावटी राज्य जयपुर के समान महत्व रखता है। यह बात जरूर है कि इस राज्य के नियम और कानून लिखे हुए नहीं हैं और न उसका कोई अधिकारी अथवा राजा ऐसा है, जिसे सभी स्वीकार करते हों। इस राज्य में कोई एक व्यवस्था नहीं है। लेकिन उसके सभी सामन्तों में एकता है। इस वंश के लोगों मे कोई निश्चित राजनीति नहीं पायी जाती। उनको जब कभी किसी समस्या के निर्णय की जरूरत होती हे, उस समय शेखावटी के सभी सामन्त उदयपुर में एकत्रित होकर निर्णय करते हैं और उनके द्वारा जो निश्चय होता है, उसे सभी स्वीकार करते हैं।

आमेर के राजा उदयकर्ण के तीसरे पुत्र बालोजी को सन् 1388 ईसवी मे सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ था। शेखावत लोग उसी के वंशज हैं। उन दिनों आमेर की राजनीतिक अवस्था केसी थी, यदि उस पर ध्यान दिया जाता है तो साफ जाहिर होता है कि उस समय चौहान ओर नरवर राजवंश के सामन्त उस राज्य के विभिन्न भागों पर शासन करते थे। उनकी शक्तियॉ अलग-अलग थीं। यही कारण था कि मुसलमानों के आक्रमण के समय उनको सभी प्रकार के अत्याचार सहने पडे थे।

इस समय जो शेखावत वंश विशेप रूप से प्रसिद्ध है, बालोजी इस वंश का आदि पुरुप था। बालोजी का पोता अमरसर मे शासन करता था। वहॉ का शासन उसे किस प्रकार मिला था, इसको समझने के लिये हमारे पास कोई सामग्री नहीं है। उसके तीन लड़के पैदा हुए थे। पहले का नाम था मोकलजी, दूसरे का नाम था खेमराज और तीसरे का नाम था खारद। मोकल अपने पिता के स्थान पर अमरसर का शासक हुआ। दूसरे पुत्र खेमराज के वंशज वाला पोता के नाम से प्रसिद्ध हुए। खारद के नूमन नाम का एक बालक पैदा हुआ। उसके वंशज कुम्भावत नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दिनों में कुम्भावत लोगों का नाम प्राय: लोप सा हो गया है।

मोकल के बहुत समय तक कोई सन्तान पैदा नहीं हुई। एक मुसलमान फकीर का नाम था, शेखबुरहान अन्त मे उसके आशीर्वाद से पैदा होने वाले बालक का नाम शेखाजी रखा गया। राजस्थान में इस समय जो शेखावत वंश प्रसिद्ध है उसका आदि पुरुप यही शेखाजी था।

उस मुसलमान फकीर की दरगाह अवरोल से छः मील की दूरी पर मोकल के निवास स्थान से चौदह मील की दूरी पर बनी हुई थी। यह दरगाह अब तक उस स्थान पर देखी जा सकती है। यह घटना भारत में तैमूर के आक्रमण करने के थोड़े ही दिनो बाद की है, जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है:-

शेख बुरहान भ्रमण करता हुआ किसी समय अमरसर की सीमा के एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया,जहाँ पर मोकल जी मौजूद था। फकीर ने उसके पास जाकर साधारण अभिवादन के बाद पूछा: "क्या आप मुझे कुछ देंगे?" मोकल जी ने नम्रता के साथ उत्तर दिया- "आप किस चीज की इच्छा करेंगे।"

मोकल जी के इस उत्तर को सुनकर फकीर ने थोड़ा-सा दूध माँगा। मोकल जी की आज्ञा से उस फकीर के पास एक ऐसी भैंस लायी गयी,-जिसका दूध कुछ ही पहले दुह लिया गया था। फकीर ने भैंस के थनों से इस प्रकार दूध निकालना शुरू किया जैसे किसी झरने से पानी निकलता है। यह देखकर मोकल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे विश्वास हो गया कि फकीर में कोई देवी शक्ति है। उसने प्रभावित होकर बड़ी नम्रता के साथ कहा- "मेरे कोई सन्तान नहीं है। उस फकीर की दुआ से मोकल जी के एक लड़का पैदा हुआ। उस लड़के का नाम फकीर के नाम के आधार पर शेखा रखा गया। फकीर ने उस बालक के सम्बन्ध में कहा- यह बालक हमेशा अपने गले में गण्डा नामक तागा बाँधेगा। आवश्यकता पड़ने पर वह गण्डा दरगाह के किसी ऊँचे स्थान पर रखा जाएगा। यह बालक नीले रंग की टोपी और दूसरे वस्त्र पहनेगा। कभी शूकर अथवा दूसरे मांस का सेवन नहीं करेगा।"

इन बातों के साथ-साथ फकीर ने मोकल से कहा कि शेखावतों में किसी बालक के उत्पन्न होने पर बकरे की बलि दी जायेगी। कुरान का कलमा पढ़ा जाएगा और उस बकरे के रुधिर के छींटे बालक पर डाले जायेंगे। मोकल ने फकीर की इन बातों को स्वीकार किया। इस घटना को चार सौ वर्ष बीत चुके हैं लेकिन फकीर की कही हुई बातों का उसके वंश के लोगों मे आज तक पालन होता है।

मोकल के वंशज दस हजार वर्ग मील की भूमि में फैले हुये है। शेखावत लोगों में प्राचीन बातों का प्रचलन अब कम हो गया है। लेकिन इस वंश के बालकों को जन्म से दो वर्ष तक नीले रंग के वस्त्र पहनाये जाते हैं। इस वंश में आज भी उस फकीर का महत्व बहुत कुछ देखा जाता है और उसके सम्मान में ही वे लोग अपने पीले रंग की पताका के किनारे नीला फीता लगाते हैं। गण्डा पहनने की प्रथा उस समय से लेकर अब तक शेखावतों में देखी जाती है। अमरसर और उसके आसपास के नगर अथवा ग्राम आमेर राज्य के अधिकार में थे। परन्तु शेख बुरहान की दरगाह अब तक स्वतंत्र मानी जाती है। उस दरगाह की शरण में जो पहुँच जाता है, राजा की तरफ से वह कैद नहीं किया जाता है। दरगाह के समीप ताला नाम का एक नगर है। उस नगर में एक सौ से अधिक उसके वंशज रहते हैं। जिस भूमि पर वे खेती करते हैं। उसका वे लगान नहीं देते।

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् शेखा वहाँ का अधिकारी हुआ और थोड़े ही दिनो में उसने अपने आस-पास के तीन सौ साठ ग्रामो पर अधिकार कर लिया। यह समाचार मिलने

पर आमेर के राजा ने उस पर आक्रमण किया। उस समय जो युद्ध हुआ, उसमें शेखा को यूनान के बादशाह से सहायता मिली और पठानों की मदद पाकर शेखा ने आमेर की सेना को पराजित किया। वह लौटकर चली गयी।

यहाँ का प्रत्येक सामन्त आमेर के राजा का आधिपत्य स्वीकार करता था। उनके यहाँ घोड़ों के जो बच्चे पैदा होते थे, वे कर के रूप में आमेर राज्य को दे दिये जाते थे।* लेकिन शेखा ने आमेर राज्य के तीनों दुर्गों को छीन लिया था और पूर्ण रूप से अपनी स्वतंत्रता कायम की थी। इसी समय से शेखावटी राज्य स्वतंत्र हो गया और आमेर राज्य के साथ उसका कोई सम्बन्ध न रह गया था। सवाई जयसिंह के समय तक शेखावटी राज्य स्वतंत्र रहा। परन्तु सवाई जयसिंह ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ सम्मानित होकर शेखावटी पर आक्रमण करने का इरादा किया और बादशाह की फौज लेकर उसने शेखावटी के स्वतंत्र सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। इसके बाद शेखावटी के सामन्तों ने आमेर की अधीनता फिर से स्वीकार की और वे लोग आमेर को कर देने लगे।

शेखावटी राज्य में शेखा ने बहुत दिनों तक अपने प्रभुत्व को कायम रखा। उसके मरने के बाद उसका लड़का रायमल्ल उसके स्थान पर अधिकारी हुआ। रायमल्ल के शासन का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता। रायमल्ल के बाद सूजा अमरसर के सिंहासन पर बैठा। उसके तीन लड़के पैदा हुये-पहला नूनकरण, दूसरा रायसल और तीसरा गोपाल। उसका बड़ा लड़का नूनकरण उसके अधीन तीन सौ ग्रामों का अधिकारी हुआ। रायसल को लाम्बी नामक और गोपाल को झाडली नाम की जागीर मिली। रायसल के द्वारा शेखावटी की उन्नति बड़ी तेजी के साथ हुई।

शेखावटी के राजा नूनकरण का मंत्री देवीदास नाम का एक वैश्य था। वह अत्यन्त बुद्धिमान और दूरदर्शी था। एक दिन अपने स्वामी के साथ विवाद करते हुए देवीदास ने कहा- "पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की अपेक्षा अपने बल-पौरुष से अपनी उन्नति करना मनुष्य का श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। पिता की सम्पत्ति और जायदाद पर अधिकार पा जाने से उसकी श्रेष्ठता का परिचय नहीं मिलता।" देवीदास की इस बात को सुनकर प्रतिवाद करते हुए नूनकरण ने कहा- "आपकी यह बात कुछ महत्व नहीं रखती। यदि ऐसी ही बात है तो हमारे भाई रायसल के पास लाम्बी में जाकर आप रहिये और अपनी श्रेष्ठता का परिचय दीजिये।"

नूनकरण ने देवीदास को मंत्री के पद से हटा दिया। वह अमरसर को छोड़कर अपने परिवार के साथ लाम्बी चला गया। उसके वहाँ पहुँचने पर रायसल ने बड़े सम्मान के साथ उसे लिया। लेकिन देवीदास इस बात को अनुभव करने लगा कि रायसल की आमदनी बहुत साधारण है। इसलिये मेरे यहाँ रहने से रायसल के ऊपर खर्च की वृद्धि हो जाएगी। उसने यह भी सोचा कि जिस उद्देश्य से अमरसर छोड़कर मैं यहाँ आया हूँ, उसमें यहाँ रहकर मैं सफलता प्राप्त न कर सकूँगा। इस प्रकार की बातें सोच-समझकर देवीदास ने रायसल से कहा-

---

* इसी प्रकार की प्रथा प्राचीन फारस में भी प्रचलित थी। उस राज्य के अन्तर्गत जो छोटे-छोटे राजा अथवा सामन्त दूरवर्ती स्थानों पर शासन करते थे, वे अपने घोड़ों के बच्चों को कर के रूप में फारस राज्य में भेजते थे। हैरोडाटस ने लिखा है कि आरमेनिया से कर के रूप में एक वर्ष में बीस हजार घोड़ों के बच्चे वहाँ भेजे गये थे।

"मैं दिल्ली में मुगल बादशाह के यहाँ जाना चाहता हूँ।" इसके साथ उसने रायसल को भी दिल्ली चलने के लिये कहा। रायसल की समझ में आ गया। वह साहसी और आशावादी था। अपने बीस सवारों के साथ वह दिल्ली पहुँच गया।

इन दिनों में अफगानों के आक्रमण को रोकने के लिये दिल्ली में बादशाह की एक फौज तैयार हो रही थी। रायसल किसी से बिना कुछ कहे-सुने अपने बीस सवारों के साथ युद्ध क्षेत्र पर गया। उस लड़ाई में रायसल के द्वारा अफगानों का एक प्रसिद्ध सेनापति मारा गया। उसके गिरते ही युद्ध में मुगलों की विजय हुई। मुगल सेनापति को रायसल के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी न थी। उसने साधारण तौर पर इस बात का अनुसन्धान किया कि अफगानों के सेनापति को मारने वाला कौन व्यक्ति है। लेकिन कुछ पता न चला। इस दशा में मुगल सेनापति ने जियाफत नाम से अपने समस्त सैनिकों की एक सभा का आयोजन किया। उसके सम्बन्ध में बताया गया कि जो लोग अफगानों के इस युद्ध में लडने के लिये गये थे, वे सभी इस जियाफत में शरीक हों और मुगल प्रधान सेनापति के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें।

मुगल सेना में जियाफत का आयोजन किया गया। उसमें सभी प्रमुख व्यक्तियों और शूरवीरों ने प्रधान सेनापति के सामने आकर अपना-अपना सम्मान प्रकट किया। रायसल के पहुँचने पर उसे लोगों ने जान लिया। जियाफत का आयोजन समाप्त होने पर रायसल से उसका परिचय पूछा गया। अमरसर का राजा नूनकरण भी अपनी सेना के साथ वहॉ उपस्थित था। रायसल के साथ उसको ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने रायसल से कहा- "मेरे आदेश के बिना आप यहॉ पर कैसे आये?" रायसल ने उसके इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया। रायसल से परिचित होकर प्रधान सेनापति उसे अपने बादशाह के पास ले गया और अकबर बादशाह के निकट पहुँच कर प्रधान सेनापति ने रायसल की प्रशंसा करते हुए उसका परिचय दिया। बादशाह अकबर ने उसी समय रायसल को "रायसल दरबारी" की उपाधि दी और देवासो तथा कासली नाम के नगरो का अधिकार उसे दिया। यहीं से रायसल के सौभाग्य का उदय हुआ। कुछ दिनों के बाद बादशाह के बुलाये जाने पर वह फिर दिल्ली गया। उस समय भटनेर में युद्ध करने के लिये मुगलों की सेना जा रही थी, बादशाह ने रायसल को भी उस युद्ध में भेजा। भटनेर के संग्राम मे रायसल ने अपने जिस शौर्य का प्रदर्शन किया। उससे खुश होकर बादशाह ने खण्डेला तथा उदयपुर के शासन की सनद भी उसे दी। ये दोनों नगर निर्वाण राजपूतों के अधिकार मे थे। परन्तु उन्होने सम्राट के प्रति अपने विद्रोही व्यवहार प्रकट किये थे।

बादशाह ने जो अन्तिम दो नगरों का अधिकार रायसल को दिया था, उसे वहॉ के शासक राजपूतो को पराजित करके उनके प्रभुत्व को वहॉ पर नष्ट करना था। रायसल ने भटनेर के संग्राम में जाने के पहले खण्डेला के राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। उस विवाह में रायसल को दहेज बहुत कम मिला था। इसलिये रायसल ने खण्डेला के राजा से दहेज को पूरा करने के लिये कहा। इसके उत्तर मे उसने कहा- "अधिक देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। मेरे अधिकार में एक शिखर है। यदि आप चाहे तो उसे ले सकते है।"

इसके बाद रायसल भटनेर के युद्ध में गया और वहॉ से लौटने पर वह अपनी सेना के साथ खण्डेला की तरफ बढ़ा। सेना के साथ रायसल को आता हुआ सुनकर खण्डेला का

राजा भयभीत हुआ और वह अपना नगर छोड़कर भाग गया। खण्डेला के निवासियों ने रायसल की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद खण्डेला शेखावटी में मिला लिया गया। रायसल के वशज रायसलोत नाम से प्रसिद्ध हुये। वे सभी शेखावटी के दक्षिणी स्थानों मे रहते थे। उन दिनों मे सिद्धानी वंश के लोग शेखावटी के उत्तर की तरफ रहा करते थे। रायसल ने खण्डेला को शेखावटी में मिलाकर उदयपुर को अपने अधिकार में कर लिया। उदयपुर पहले कसुम्बी नाम से प्रसिद्ध था और वहॉ पर निर्वाण राजपूतों का अधिकार था।*

बादशाह अकबर के साथ मेवाड के राणा प्रतापसिंह का जो युद्ध हुआ था। उसमें रायसल आमेर के राजा मानसिंह के साथ बादशाह के पक्ष मे राणा प्रतापसिंह से युद्ध करने गया था। काबुल के अन्तर्गत कोहिस्तान के अफगानियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये दिल्ली से मुगलों की एक फौज गयी थी, रायसल को उस फौज के साथ वहाँ पर युद्ध करने के लिये भेजा गया था। रायसल ने सभी युद्धो में अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन किया था और उसके लिये बादशाह ने उसको पुरस्कृत किया था।

रायसल ने अपने अधिकार के नगरों और ग्रामों पर शान्तिपूर्वक शासन करने के बाद इस संसार को छोडकर परलोक की यात्रा की। मरने के पहले उसने अपने राज्य के सात भाग कर दिये थे और उन सातो भागों को उसने अपने सातों पुत्रों में बाँट दिया था। उसके पुत्रों के वंशजो से अगणित परिवारो और बहुत से वंशो की सृष्टि हुई। रायसल के सातों लड़को के नाम और उनको हिस्से में मिले हुए राज्य इस प्रकार हैं।

1.	गिरिधर	खण्डेला और रेवासा
2.	लाडखान	खाचरियावास
3.	भोजराज	उदयपुर
4.	तिरमलराव	कांसली और चौरासी ग्राम
5.	परशुराम	बिवाई
6.	हरीराम	मूँडरू
7.	ताजखान	कोई स्थान नही मिला।

गिरिधर रायसल का बडा लड़का था। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण उसको राज्य का बड़ा हिस्सा प्राप्त हुआ था। वह अपने पिता के समान तेजस्वी और शूरवीर था। दिल्ली के बादशाह से उसे खण्डेला राजा की उपाधि मिली।

इन दिनों में बादशाह के राज्य मे बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। मेवाड के पहाड़ी इलाकों पर मेव जाति के पहाड़ी लुटेरों ने लूटमार आरम्भ कर दी थी और वे कभी-कभी राजधानी के समीप तक आ जाते थे। उनको दमन करने के लिये बादशाह ने गिरिधर को

---

* चौहान राजपूतो की एक शाखा निर्वाण के नाम से प्रसिद्ध थी। इस वश के राजपूतों ने अपनी शक्तियो को मजबूत बना लिया था। उदयपुर का नाम पहले कसुम्बी था। वहाँ पर निर्वाण राजपूतों की राजधानी थी। इस उदयपुर में ही आवश्यकता पडने पर अपनी समस्याओं का निर्णय करने के लिये शेखावटी के सामन्त एकत्रित हुआ करते थे।

तैयार किया। उन पहाड़ी लुटेरों को दमन करने के लिये गिरिधर ने अपनी तैयारी आरम्भ की। उसने सोचा यदि हम एक बड़ी सेना लेकर उन लुटेरों के विरुद्ध जाएँगे तो वे भयभीत होकर पहाड़ की कन्दराओं में छिप जाएँगे और हमारे लौट आने पर उनके अत्याचार फिर होने लगेंगे। इसलिये उनका दमन करने के लिये इतनी छोटी सेना साथ लेकर जाने की जरूरत है कि जिससे वे लोग युद्ध करने के लिये सामने आवें।

गिरिधर ने यही किया। वह अपने साथ एक साधारण सेना लेकर रवाना हुआ और पर्वत पर पहुँच कर वह घूमने लगा। एकाएक वहाँ पर लुटेरों का एक दल दिखायी पड़ा। गिरिधर ने तुरन्त उन पर आक्रमण किया। दोनों ओर से मार-काट आरम्भ हो गयी उसने लुटेरों के दल से बहुत देर तक युद्ध किया। अन्त में उन लुटेरों का सरदार मारा गया और उनकी पराजय हुई। गिरिधर की इस सफलता पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और गिरिधर को राजा की उपाधि दी गई। गिरिधर इसके बाद बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहा। जमना नदी में स्नान करने के समय मुगल बादशाह के दरबार के एक पदाधिकारी मुसलमान के द्वारा वह मारा गया। यह घटना इस प्रकार है-

"एक दिन खण्डेला राजा गिरिधर का एक कर्मचारी दिल्ली के एक लुहार की दूकान पर बैठा हुआ अपनी तलवार की मरम्मत करा रहा था। उस समय दूकान के सामने से होकर एक मुसलमान गुजरा। उसने इस कर्मचारी को एक अन्य असभ्य आदमी समझकर और लुहार की दुकान पर बैठकर उसे चिढ़ाना आरम्भ किया। वह कर्मचारी राजपूत था। उसने राजस्थानी भाषा में धीरे से उत्तर दिया। इसके बाद उस मुसलमान ने आग का एक टुकड़ा उस कर्मचारी की पगड़ी पर डाल दिया। आग से जब पगड़ी जलने लगी तो उस राजपूत कर्मचारी को क्रोध आया। उसने अपनी तलवार उठाकर उस मुसलमान के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।"

जो मुसलमान उस राजपूत कर्मचारी के द्वारा मारा गया, वह बादशाह के दरबार के एक प्रसिद्ध अमीर का नौकर था। जब उस अमीर ने यह घटना सुनी तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। अपने साथ कुछ आदमियों को लेकर वह अमीर खण्डेला राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा। गिरिधर उस समय वहाँ पर न था। वह जमना नदी के उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर गिरिधर नहा रहा था। अमीर ने उस पर आक्रमण किया, जिससे खण्डेला राजा गिरिधर स्नान करता हुआ मारा गया।"

गिरिधर के कई पुत्र थे। द्वारिकादास सब से बड़ा था। इसलिए वही अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। इसके थोड़े ही दिनों के बाद द्वारिकादास एक षड़यंत्र में फँस गया। नूनकरण का एक वंशज मनोहरपुर में शासन करता था। वह द्वारिकादास के साथ एक पुरानी शत्रुता मानता था। दिल्ली का बादशाह एक दिन शिकार खेलने गया था। जंगल से वह एक शेर को पकड़ लाया। बादशाह ने अपने दरबार के लोगों से पूछा- "इस शेर के साथ कौन युद्ध कर सकता है?"

मनोहरपुर के राजा ने बादशाह से कहा- "रायसलोत वंशी द्वारिकादास प्रसिद्ध शूरवीर नाहर सिंह का शिष्य है। वह इस सिंह के साथ युद्ध कर सकता है।"

मनोहरपुर के राजा ने द्वारिकादास का उपहास कराने के लिए बादशाह से यह बात कही थी। लेकिन बादशाह ने उसे गम्भीरता देकर द्वारिकादास को सिंह से युद्ध करने के लिए आज्ञा दी। द्वारिकादास भली प्रकार इस बात को समझता था कि बादशाह से मनोहरपुर के राजा ने जो इस प्रकार की बात कही हैं, उसके दो अभिप्राय हैं, एक तो यह कि इस प्रकार बादशाह के आदेश देने पर मैं सिंह के साथ युद्ध करने से इनकार करुंगा, उससे मेरा उपहास होगा। दूसरा अभिप्राय उसका यह हो सकता है कि यदि मैंने इनकार न किया तो सिंह के द्वारा मेरा प्राणनाश होगा। बादशाह का आदेश सुनकर द्वारिकादास जरा भी भयभीत न हुआ और उसने शेर के साथ युद्ध करना स्वीकार कर लिया।

बादशाह की सम्पूर्ण राजधानी में यह बात फैल गयी कि जंगल से जो शेर पकड़ कर लाया गया है, द्वारिकादास उसके साथ युद्ध करेगा। बादशाह की तरफ से युद्ध के लिए स्थान तैयार किया गया। निश्चित समय से पहले ही दर्शकों की एक अपार भीड़ वहाँ पर एकत्रित हो गयी। द्वारिकादास अपनी तैयारी करने लगा। स्नान करके पीतल के एक पात्र में पूजा की सामग्री लेकर वह आराधना के लिए बैठा और पूजा का कार्य समाप्त करने के बाद द्वारिकादास शेर से लड़ने के लिये उस स्थान पर पहुँचा, जो उसके लिए तैयार किया गया था। उसके वहाँ पहुँचते ही उसके सामने शेर छोड़ा गया। मनोहरपुर के राजा का विश्वास था कि द्वारिकादास को सामने देखते ही शेर मार डालेगा। लड़ाई के इस दृश्य को देखने के लिए उस स्थान पर बादशाह भी आया था। शेर के सामने पहुँच कर द्वारिकादास ने उसके मस्तक पर चन्दन लगाया, उसके गले में माला डाली और उसके सामने बैठकर वह पूजा करने लगा। शेर द्वारिकादास के समीप चुपचाप खड़ा हो गया और अपनी जीभ से वह उसको चाटने लगा। द्वारिकादास निर्भीकता के साथ उसके सामने बैठा रहा। उपस्थित दर्शकों ने आश्चर्य के साथ यह दृश्य देखा। बादशाह के विस्मय का ठिकाना न रहा। इसके बाद बादशाह का आदेश पाकर द्वारिकादास शेर के सामने से उठ कर चला आया। शेर अपने स्थान पर चुपचाप खड़ा रहा। उसने द्वारिकादास पर किसी प्रकार का आघात नहीं किया।

बादशाह ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ इस दृश्य को देखा। उसकी समझ में न आया कि ऐसा क्यो हुआ। वह विश्वास पूर्वक सोचने लगा कि द्वारिकादास में कोई दैवी शक्ति है। उसने उसे बुला कर कहा- "आप जो चाहें मुझसे माँग सकते हैं, मैं वही आप को दूँगा।"

बादशाह की इस बात को सुनकर द्वारिकादास ने कहा- "इस विपदा से भगवान ने मेरी रक्षा की है। भविष्य में आप किसी को भी इस प्रकार की विपदा में न डालें, यही आप से मेरी प्रार्थना है।"

द्वारिकादास अपने समय के अत्यन्त शूरवीर खानजहाँन लोदी के द्वारा मारा गया। ग्रंथों से मालूम होता है कि वे दोनों ही एक दूसरे के द्वारा मरे। यह घटना इस प्रकार है- "द्वारिकादास और खानजहाँन लोदी में परस्पर मित्रता थी। कुछ कारणों से दिल्ली का बादशाह खानजहाँन से बहुत चिढ़ गया और उसने द्वारिकादास को खानजहाँन पर आक्रमण करने और उसको दरबार में लाने का आदेश दिया। बादशाह की इस आज्ञा को सुनकर द्वारिकादास बड़े असमंजस में पड़ गया। खानजहाँन उसका मित्र था। फिर वह उस पर कैसे आक्रमण कर

सकता था। बहुत सोच समझकर द्वारिकादास ने खानजहाँन लोदी को संदेश भेजा कि बादशाह ने आपके विरुद्ध अत्यन्त अनुचित कार्य मुझे सौंपा है। मैं बड़े असमंजस में हूँ। आप या तो बादशाह के सामने आकर आत्म-समर्पण करें अथवा भाग जावें। खानजहॉन ने द्वारिकादास का यह संदेश पाया। वह एक शूरवीर था। द्वारिकादास के परामर्श के अनुसार न तो उसने आत्म-समर्पण करना चाहा और न भाग जाना ही उचित समझा। इन दोनों बातों की अपेक्षा उसने मित्र के हाथों से मारे जाने पर अपनी श्रेष्ठता समझी। फरिश्ता ने अपने इतिहास में इस घटना का वर्णन करते हुए दोनों वीरों की प्रशंसा की है। युद्ध-क्षेत्र में पहुँच कर दोनों लड़े और दोनों ही एक-दूसरे की तलवार से मारे गये।"

द्वारिकादास के बाद उसका लड़का वीरसिंह देव उसके स्थान पर बैठा। वीरसिंह देव अपनी सेना के साथ मुगल बादशाह की आज्ञा से दक्षिण के युद्ध में गया था। वहॉ पर उसके युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसको परनाला का शासक बना दिया। खण्डेला के एक ऐतिहासिक ग्रंथ से पता चलता है कि वीरसिंह देव आमेर के राजा की अधीनता में न रह कर स्वतंत्र रूप से शासन करता था। परन्तु उस समय की परिस्थितियों से यह बात सम्भव नहीं मालूम होती। क्योंकि मिर्जा राजा जयसिंह उन दिनो में सम्राट के यहॉ सम्मानपूर्ण पद पर था। इसलिए वीरसिंह देव उसकी अधीनता में अपने राज्य पर शासन करता था, यह अधिक सम्भव मालूम होता है।

वीरसिंह देव के सात लड़के पैदा हुए। (1) बहादुर सिंह (2) अमर सिंह (3) श्याम सिंह (4) जयदेव (5) भूपाल सिंह (6) मोकर सिंह और (7) प्रेमसिंह। वीरसिंह देव ने अपने जीवन काल में ही बहादुर सिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था और शेष छः पुत्रों को एक-एक जागीर दे दी थी। राजा वीरसिंह देव बहादुर सिंह को अपने राज्य का अधिकार देकर अपनी सेना के साथ बादशाह की सेना में सम्मिलित होकर दक्षिण गया था। वहॉ पर उसे समाचार मिला कि उसका बड़ा लड़का बहादुर सिंह राजा की उपाधि लेकर राज्य का शासन करने लगा है। यह सुनकर बहादुर सिंह पर वीरसिंह देव बहुत क्रोधित हुआ और अपने चार सवारों को साथ लेकर दक्षिण से वह अपने राज्य की तरफ रवाना हुआ। अपने राज्य खण्डेला से चार मील की दूरी पर आकर एक ग्राम की किसी जाट स्त्री के यहॉ वीरसिंह देव ने मुकाम किया और उस स्त्री से उसने भोजन तैयार करने के लिए कहा। साथ ही उसने यह भी कहा कि "हमारे घोडों की देखभाल करना, कहीं कोई उनको खोलकर ले न जाये।" वीरसिंह देव की इस बात को सुनकर उस जाट की स्त्री ने कहा- "आप इस बात की चिंता न करे। राजा बहादुर सिंह का यहाँ पर शासन है। रास्ते में आप सोना छोड़कर चले जाइए, कोई उसे छू भी नहीं सकता।"

अपने लड़के के शासन की इस प्रकार प्रशंसा सुनकर वीरसिंह देव बहुत प्रसन्न हुआ। वहॉ से वह फिर दक्षिण लौट आया और वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

वीरसिंह देव के मर जाने के बाद बहादुर सिंह विधान के अनुसार पिता के सिंहासन पर बैठा। नियमित रूप से उसका अभिषेक हुआ और उसने शासन का कार्य आरम्भ किया। मुगल बादशाह औरंगजेब अपनी सेना के साथ उन दिनों दक्षिण में था। बहादुर खॉ नामक

एक प्रसिद्ध मुसलमान के द्वारा बहादुर सिंह का अपमान हुआ। उससे अपने अपमान का बदला न पा सकने के कारण बहादुर सिंह दक्षिण से लौटकर चला आया। इसलिए मनसबदार सरदारों की सूची से उसका नाम काट दिया गया।

शेखावटी के राजा बहादुर सिंह का जिस मुसलमान बहादुर खॉ ने अपमान किया था,वह मुगल बादशाह के यहॉ सेनापति था। बहादुर सिंह के साथ शत्रुता हो जाने के कारण बहादुर खॉ ने बादशाह से खण्डेला राज्य मे जजिया कर वसूल करने का आदेश मॉगा और आज्ञा लेकर वह खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। बहादुर सिंह को जब मालूम हुआ कि बहादुर खॉ अपनी सेना के साथ इस राज्य में आ रहा है तो वह अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। बादशाह की फौज लेकर बहादुर खॉ खण्डेला राजधानी के समीप पहुँच गया। वहॉ के समस्त शेखावत लोगों को मालूम हुआ कि बादशाह की फौज के आने का समाचार पाकर बहादुर सिंह खण्डेला से भाग गया है। बादशाह की फौज ने वहाँ पहुॅचकर खण्डेला के मन्दिरों को विध्वंस करने का कार्य आरम्भ किया। रायसल का दूसरा लड़का भोजराज का वंशज सुजान सिंह छापोली का अधिकारी था। उसने जब सुना कि बादशाह की फौज ने खण्डेला में पहुँच कर मंदिरों को गिराने के साथ-साथ भयानक अत्याचार आरम्भ किया है तो उसने प्रतिज्ञा की कि मैं खण्डेला के मन्दिरो की रक्षा करूंगा और अपने इस कर्त्तव्य-पालन में मैं अपने प्राणों की बलि दूॅगा।*

खण्डेला में बादशाह की सेना के प्रवेश करने के समय सुजानसिंह मारवाड़ में विवाह करने के लिए गया था। वहॉ से लौटकर सुजान सिंह ने अपनी माता और नवविवाहिता पत्नी से खण्डेला जाने के लिए विदा मॉगी। इस समय उनके परिवार के दूसरे लोग भी वहॉ पहुॅचकर सुजान सिह से कहने लगे-"खण्डेला में बादशाह की सेना के आक्रमण करने पर राजा बहादुर सिंह को वहॉ की रक्षा करनी चाहिए। आपको वहॉ पर हस्तक्षेप की क्या आवश्यकता है।"

इस बात को सुनकर सुजान सिह ने कहा- "क्या मै रायसल का वंशज नहीं हूॅ? खण्डेला के मन्दिरो के तोड़े जाने पर क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है कि मै वहॉ जाकर उन मन्दिरों की रक्षा करूँ। इस प्रकार के अत्याचारो के समय कोई भी राजपूत चुप होकर नहीं बैठ सकता।"

सुजान सिंह की इस बात को सुनकर किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ। उसके वीरोचित वाक्यों को सुनकर उसके वंश के साठ शूरवीर उसकी सहायता के लिए साथ चले। अपने साथियो के साथ सुजान सिंह ने खण्डेला राजधानी में प्रवेश किया। सेनापति बहादुर खॉ ने सुजान सिंह के आने का समाचार सुना। उसने इस विपय में सुजान सिंह से बातचीत

---

* औरगजेब के आदेश से इस प्रकार के अत्याचारो के साथ अगणित देवाल्य और मन्दिर नष्ट किये गये थे, उसका प्रमाण मन्दिरो की टूटी-फूटी इमारतों और मूर्तियां के टुकडो से ही भली भॉति हो सकता है। लाहौर से लेकर कन्याकुमारी तक एक भी ऐसा मन्दिर नहीं है, जो औंरगजेब के हुक्म से नप्ट न किया गया हो। नर्मदा के एक छोटे-से टापू पर ओंकार जी का एक प्रसिद्ध मदिर है। उस मदिर की मूर्ति के तोडे जाने के समय की घटना यहाँ पर देने के योग्य है। औरङ्गजेब ने उस मदिर की मूर्ति के सामने जाकर कहा: "यदि तुममें वास्तविक कोई शक्ति हो तो तुम उसे मेरे सामने प्रकट करो और मेरे आदेश को शक्तिहीन बना दो।" इस घटना का उल्लेख करने वाले ग्रन्था मे लिखा है कि ओकार जी के मस्तक पर आघात होते ही उनकी नाक और मुख से तेजी के साथ खून गिरना आरम्भ हो गया। इस दशा मे दूसरा आघात करने का साहस नहीं हुआ। उस समय से ओंकार जी का महत्व लोगों में अधिक बढ़ गया।

करने के लिए उसके दो आदमियों को अपने यहाँ बुलवाया। उसके आने पर बहादुर खॉ ने कहा- "बादशाह ने खण्डेला के देव-मन्दिरों को विध्वंस करने का हमें आदेश दिया है। लेकिन यदि खण्डेला राजा बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेता है और अपने मन्दिरों के समस्त सोने के कलशों को हमें दे देता है तो हम मन्दिरों को विध्वंस नहीं करेंगे।"

बहादुर खॉ के मुख से इस बात को सुनकर सुजान सिंह के दोनों प्रतिनिधियों ने नम्रता के साथ उससे बातें की और बहुत-सा धन उसको देना मंजूर किया। लेकिन बहादुर खॉ उस पर राजी न हुआ और उसने स्पष्ट शब्दों में कहा-"आपको किसी भी दशा में यहॉ के मन्दिरों के कलश देने पड़ेंगे।" सेनापति बहादुर खाँ की इस हठ को सुनकर स्वाभिमानी दोनों राजपूतों को क्रोध मालूम हुआ। उन्होंने गीली मिट्टी का एक-एक कलश बनाकर उसके सामने रखा और एक ने कहा- "मन्दिरों से सोने के कलशों की बात तो बहुत दूर है, इस मिट्टी के कलश को ले लेने का अधिकार किसमें है, यह मैं देखना चाहता हूँ।"

इस प्रकार दोनों ओर से आवेश पूर्ण बातें हुई। बहादुर खॉ के साथ दोनों राजपूत कुछ निर्णय न कर सके। वे अंत में इस बात को समझकर कि युद्ध होना अनिवार्य है। वहॉ से चले गये।

उन दिनों में खण्डेला में कोई दुर्ग न था। वहॉ का राज-प्रसाद एक ऊँचे शिखर पर बना हुआ था। उस शिखर से एक रास्ता सरदारों के निवास-स्थान की तरफ गया था। उस रास्ते पर मन्दिर बना हुआ था। सुजान सिंह ने अपने साथ के कुछ लोगों को शिखर के सभी रास्तों पर रखा और वह स्वयं साथ के दूसरे आदमियों को लेकर मन्दिर की रक्षा करने के लिए तैयार हुआ। सुजान सिंह भली प्रकार इस बात को समझता था कि बादशाह की इतनी बडी सेना के सामने हम लोग कुछ कर न सकेंगे और अन्त में मारे जाएंगे। लेकिन अपने मन्दिरों की रक्षा करने में प्राणोत्सर्ग करना वह राजपूतों का एक परम धर्म समझता था। इसलिए अपने थोड़े से आदमियों को लेकर निर्भीकता के साथ वह तैयार हो गया। इसके बाद बादशाह की सेना ने आगे बढ़कर उन राजपूतों पर गोलियों की वर्षा आरम्भ की, जो मन्दिर की रक्षा के लिए खड़े हुए थे। राजपूतों ने भी साहस के साथ मुगल सेना के आक्रमण का जवाब दिया। युद्ध आरम्भ होने के थोड़े समय बाद लड़ते हुए वे राजपूत मारे गये। इसके बाद मुगल सैनिक मन्दिर की तरफ बढे। यह देखकर सुजान सिंह और उसके साथियों ने एक बार मन्दिर की मूर्ति को प्रणाम किया और फिर वे शत्रु के साथ युद्ध करने लगे। कुछ देर के बाद शेप राजपूतो के साथ सुजान सिह भी मारा गया। मुगल सैनिकों ने मन्दिर को तोड़कर उसकी मूर्ति के टुकडे-टुकड़े कर डाले। बहादुर खॉ ने सुजान सिंह और उसके साथियों को मारकर खण्डेला पर अधिकार कर लिया और वहॉ का प्रबन्ध करने के लिए उसने अपने साथ के सैनिकों की एक सेना छोड़ दी।

खण्डेला से भागकर बहादुर सिंह कुछ दूरी पर बसे हुए एक ग्राम में जाकर रहने लगा था। अपने दीवान की सहायता से वह बहादुर खॉ से मिल गया और आमदनी का कुछ साधन पैदा करके वह अपने दिन काटने लगा। इसके बाद बादशाह की तरफ से उसको कुछ और सुविधा मिली। उसने अपने रहने के लिए बादशाह से महल भी प्राप्त कर लिया।

इन दिनों में वादशाह के दरवार में सैयद वन्धुओं का आधिपत्य चल रहा था। वहादुर सिंह उनसे मिल गया और उनको प्रसन्न करके उसने अपना राज्य प्राप्त कर लिया। लेकिन इसके वाद भी खण्डेला राजधानी में दिल्ली की एक सेना का मुकाम रहा और उस सेना का खर्च वहादुर सिंह ने देना मन्जूर किया। राजा वहादुर सिंह के तीन लड़के थे-केशरी सिंह, फतेह सिंह और उदय सिंह।

वहादुर सिंह की मृत्यु के वाद केशरी सिंह पिता के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने पिता का अनुकरण किया और वादशाह के दरवार में जाकर वहाँ की सेना के संरक्षण में रहने की अभिलाषा प्रकट की। इन्हीं दिनों में मनोहरपुर के राजा ने वादशाह से मिलकर अपने राज्य का उद्धार किया। उसे जव मालूम हुआ कि केशरी सिंह वादशाह के दरवार में आया है तो उसको उसके प्रति ईर्षा पैदा हुई। वह नहीं चाहता था कि वादशाह के दरवार में केशरी सिंह को कोई स्थान मिले। उसने केशरी सिंह के विरुद्ध षड्यंत्र पैदा किया और उसके भाई फतेह सिंह से मिल कर उसने कहा- "आप भी वहादुर सिंह के लड़के हैं। खण्डेला में केवल केशरी सिंह को राज्य का अधिकारी वनकर रहने का हक नहीं है। आप केशरी सिंह से आधे राज्य पर अपना अधिकार लीजिये।"

फतेहसिंह उसके वहकावे में आ गया और उसने अपने भाई केशरी सिंह के साथ झगड़ा शुरू कर दिया। खण्डेला का दीवान समझदार था। उसने दोनों भाइयों को समझाने की कोशिश की। लेकिन उसको सफलता न मिली। उसने देखा कि दोनों भाइयों के झगड़े से खण्डेला का सर्वनाश होगा और शत्रु लोग इसका लाभ उठायेंगे तो उसने खण्डेला राजधानी में जाकर राजमाता से वातें की और उनको सभी प्रकार समझाकर कहा कि आप को ऐसा करना चाहिए, जिससे दोनो भाइयों में झगड़ा न हो। यदि फतेह सिंह नहीं मानता तो दोनों में राज्य का वँटवारा कर देना अच्छा है।

राजमाता ने दीवान के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। खण्डेला राज्य पाँच भागों में विभाजित किया गया। तीन भाग केशरी सिंह को और दो भाग फतेहसिंह को दिये गये। इस विभाजन के अनुसार दोनों भाई राजधानी में वरावर के अधिकारी वन गये परन्तु इसके वाद भी दोनो भाइयों के वैर की शांति न हुई। केशरी सिंह खण्डेला को छोड़कर कावटा नामक स्थान में जाकर रहने लगा। दोनों भाइयों में यहाँ तक शत्रुता वढ़ गई कि वे एक दूसरे को देखना तक नहीं चाहते थे। केशरी सिंह जव खण्डेला राजधानी में आता तो फतेह सिंह वहाँ से चला जाता।

मनोहरपुर के राजा का यही अभिप्राय था कि केशरी सिंह और फतेह सिंह कभी मिलकर न रह सकें। इसलिए उसने षड्यंत्र रचा था। इसमें उसको सफलता मिली। केशरी सिंह के दीवान को भली-भाँति यह मालूम था कि इन दोनों भाइयों के लड़ने में मनोहरपुर के राजा का षड्यंत्र काम कर रहा है। उसने पूरी चेष्टा इस वात की कि दोनों भाइयों में किसी प्रकार का झगडा न हो और वे प्रेम से रहें। इसीलिए उसने राजमाता से मिल कर राज्य का वँटवारा करा दिया था। लेकिन उसके वाद भी वे दोनों एक दूसरे के शत्रु वने रहे। इस प्रकार की परिस्थितियों को देख कर दीवान ने सोचा कि फतेह सिंह कभी केशरी सिंह के लिए संकट

हो सकता है। इसलिए उसने केशरी सिंह को गुप्त रूप से सलाह दी कि फतेह सिंह पूरी तौर पर मनोहरसिंह के राजा के संकेतों पर काम कर रहा है और मनोहरपुर का राजा खण्डेला का परम शत्रु है। इसलिए किसी षड़यंत्र के द्वारा फतेह सिंह के जीवन का अन्त कर दिया जाये। परन्तु केशरी सिंह इसके लिए तैयार न हुआ।

केशरी सिंह का दीवान अब भी उसी वात को सोचता रहा। उसने कावटा में दोनों भाइयों को एकत्रित करके मेल कराने की कोशिश की। फतेह सिंह कावटा में पहुँच गया। वहाँ पर आक्रमण करके फतेह सिंह को मार डाला गया। दीवान ने स्वयं तलवार लेकर आक्रमण किया था। संयोग और सौभाग्य की वात है कि फतेह सिंह के साथ-साथ दीवान भी जख्मी होकर मर गया।

फतेह सिंह के मर जाने के बाद केशरी सिंह ने सम्पूर्ण खण्डेला पर अधिकार कर लिया। रेवासी नगर का कर अजमेर और खण्डेला का कर नारनोल जाता था। केशरी सिंह ने इसको भेजना बन्द कर दिया। सैयद अव्दुल्ला इन दिनों में दिल्ली के मुगल वादशाह का प्रधानमंत्री था। वह केशरी सिंह के इस व्यवहार से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसको इसका बदला देने के लिए सैयद अव्दुल्ला ने दिल्ली से एक मुगल सेना भेजी। केशरी सिंह ने इन दिनों में अपनी शक्तियों को अधिक सुदृढ़ वना लिया था। बादशाह की फौज के आने का समाचार सुनकर केशरी सिंह ने समस्त शेखावत सामन्तों को सेनाओं के साथ बुलाया। उस समय जो सामन्त एकत्रित हुए, उनमें एक केशरी सिंह का परम शत्रु मनोहरपुर का सामन्त भी बादशाह की फौज के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार होकर आया। केशरी सिंह ने युद्ध की पूरी तैयारी की। मुगल सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह रवाना हुआ। खण्डेला राज्य की सीमा पर बसे हुए देवली नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध हुआ। केशरी सिंह को बादशाह की सेना से पराजित होने की कोई आशंका न थी। लेकिन युद्ध शुरू होने के कुछ समय बाद उसकी वंशगत शत्रुता सजीव हो उठी। इस युद्ध में उसकी सहायता करने के लिए कुछ ऐसे सामन्त भी आये थे, जिनके साथ केशरी सिंह की कभी शत्रुता रह चुकी थी। इस प्रकार के लोगों में शत्रुता का भाव जागृत हुआ। कासली का सामन्त केशरी सिंह की सहायता के लिए आया था। वह एक शूरवीर योद्धा था और केशरी सिंह उस पर वहुत विश्वास करता था। वह इस युद्ध में मारा गया। दाँता राज्य के लाडखानी वंश का सामन्त भी केशरी सिंह की सहायता के लिए आया था। उसने मौका पाकर केशरी सिंह के खासा नगर पर अधिकार कर लेने का विचार किया और वह युद्ध क्षेत्र से निकल कर उस तरफ चला गया। इस प्रकार की विरोधी परिस्थितियों के कारण युद्ध में केशरी सिंह का पक्ष निर्वल पड़ने लगा। इस भीषण समय में केशरी सिंह को अपने भाई फतेह सिंह की याद आयी। अपने पक्ष को कमजोर होते हुए देख कर भी केशरी सिंह को घबराहट नहीं हुई। वह बड़े साहस के साथ युद्ध करता रहा। उस समय दोनों तरफ से भयानक मारकाट हो रही थी।

युद्ध की गति देख कर केशरी सिंह ने अपने भाई उदयसिंह को बुलाया और युद्ध छोड़कर तुरन्त चले जाने के लिए उससे उसने कहा। उदयसिंह इसके लिए तैयार न हुआ। उसके इनकार करने पर केशरी सिंह ने उसको समझाते हुए कहा- "मैं जानता हूँ कि एक

राजपूत को युद्ध से भागना नहीं चाहिए। लेकिन तुममे ऐसा कहने का कुछ अभिप्राय है। मैं इस युद्ध में अन्तिम समय तक रहूँगा। लेकिन तुम यहाँ से चले जाओ। क्योंकि तुम्हारे भी मारे जाने से हमारे पिता का वंश नष्ट हो जाएगा। केशरी सिंह के सामन्तों ने भी इस बात का समर्थन किया और उन लोगों ने केशरी सिंह को भी चले जाने की बात कही। लेकिन अपने सामन्तों के इस परामर्श का उत्तर देते हुए केशरी सिंह ने कहा- "युद्ध से हम दोनों भाइयों का चला जाना किसी प्रकार अच्छा नहीं हो सकता। इस युद्ध में यदि पराजय होती है तो उसमें मेरा मारा जाना अनुचित नहीं है। राज्य की रक्षा करते हुए बलिदान हो जाना राजा का कर्त्तव्य होता है। मेरे कारण मेरे भाई फतेह सिंह की हत्या हुई थी। इस युद्ध में लड़कर और प्राण देकर मुझे उसका प्रायश्चित करना चाहिये। लेकिन उदय सिंह का चला जाना आवश्यक है।" इसके बाद उदय सिंह युद्धस्थल से चला गया।

मुगल-सेना के साथ राजपूतो ने शक्ति भर युद्ध किया। अन्त में युद्ध करता हुआ केशरी सिंह मारा गया। उसके बाद खण्डेला की सेना युद्ध-क्षेत्र से भाग गई। विजयी मुगल सेना ने खण्डेला पर अधिकार करके उदय सिंह को कैद कर लिया और उसे तीन वर्ष तक बन्दी बना कर अजमेर के दुर्ग में रखा। इसके बाद दो शेखावत सामन्तों ने खण्डेला राज्य को स्वतंत्र करने का इरादा किया। उन्होंने गुप्त रूप से अजमेर में कैदी उदय सिंह के पास सन्देश भेजा: "हम लोगों ने मुगलो से लड़कर खण्डेला राज्य को स्वतंत्र कराने की योजना बनायी है। हमारे ऐसा करने से आपके ऊपर भयानक संकट पैदा होने की पूरी सम्भावना है। इसलिए आप पहले ही ऐसा करिए जिससे आपको बादशाह हमारे साथ शामिल न समझे। इसके लिए आप ऐसा कर सकते हैं कि हम लोगों की इस कोशिश की सूचना आप पहले से ही बादशाह के प्रधानमंत्री को कर दें। इससे वह आपके ऊपर सन्देह न करेगा।"

इसके कुछ दिनो के बाद उदयपुर और कासली के दोनों सामन्तों ने अपनी सेनायें लेकर एकाएक खण्डेला मे बादशाह की सेना पर आक्रमण किया और उसे परास्त करके उसके सेनापति देवनाथ को मार डाला। यह समाचार दिल्ली पहुँचा। उदय सिंह ने अपने सामन्तों के परामर्श के अनुसार पहले ही कार्यवाही कर ली थी। इसलिए दिल्ली के दरबार में किसी को भी उदयसिंह पर सन्देह पैदा न हुआ। खण्डेला में मुगल सेना के परास्त हो जाने के कारण बादशाह का प्रधानमंत्री फिर से खण्डेला पर अधिकार करने की बात सोचने लगा। उसने इसके सम्बन्ध में उदय सिह से परामर्श किया। उसको उत्तर देते हुए उदय सिंह ने कहा- "यदि आप मुझको कैद से छोड़ दें तो मैं खण्डेला को फिर बादशाह के अधिकार में करा सकता हूँ।"

उदय सिंह की इस बात को सुनकर मुगलों के प्रधानमंत्री ने कहा- "मैं आपको कैद से छोड़ सकता हूँ। परन्तु आपकी सहायता से खण्डेला पर फिर से मुगलो का अधिकार हो जाएगा, इस पर कैसे विश्वास किया जाये?"

प्रधानमंत्री की इस बात को सुनकर उदय सिंह ने कहा: "मेरे परिवार मे वृद्ध माता को छोड़ कर और कोई नहीं है। मेरे स्थान पर आप मेरी माता को कैदी बना कर रख लीजिये।"

प्रधानमंत्री इस पर राजी हो गया। उदयसिंह की माता कैदी के रूप मे अजमेर मे रखी गई और उदय सिंह को छोड़ दिया गया। उदयसिंह ने इस मौके पर बडी बुद्धिमानी से

काम लिया। उसने ऐसा कार्य किया, जिससे मुगल प्रधानमंत्री को वहुत संतोष मिला और उसने खण्डेला का अधिकार उदय सिंह को सौंप दिया और उदयसिंह उसके बाद फिर अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। खण्डेला का राज्याधिकार पाकर उदयसिंह ने अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत करने की कोशिश की। वह भली प्रकार इस बात को समझता था कि खण्डेला राज्य के पतन का कारण मनोहरपुर का राजा है इसलिये उसने उससे वदला लेने का निश्चित इरादा किया। अपनी सेना को प्रबल वना कर उदयसिंह ने मनोहरपुर राज्य पर आक्रमण किया। मनोहरपुर के राजा को जब यह समाचार मिला तो उसने अपने धाभाई के अधिकार में सेना देकर युद्ध के लिए भेजा। वह मनोहरपुर की सेना को लेकर रवाना हुआ। लेकिन युद्ध शुरू होने के पहले ही वह भाग गया। इस दशा में उदय सिंह ने अपनी सेना को लेकर मनोहरपुर को घेर लिया।

मनोहरपुर का राजा युद्ध करने की अपेक्षा धोखा देने और विश्वासघात करने में अधिक चतुर था। उसे मालूम हुआ कि कासली का सामन्त दीपसिंह भी अपनी सेना को लेकर उदयसिंह के साथ हमारे विरुद्ध युद्ध करने आया है। इसलिए उसने अपने दो अत्यन्त चतुर और विश्वासी दूतो के द्वारा दीपसिंह के पास अपना एक पत्र भेजा। उसमे उसने दीपसिंह को लिखा- "उदय सिंह न केवल मनोहरपुर में अधिकार करेगा, वल्कि इसके वाद कासली को भी अधिकार में लेने का उसका एक निश्चित इरादा है। इस वात को आप निश्चित समझिए।"

इस पत्र को पाकर और पढ़ कर दीपसिंह ने उस पर विश्वास कर लिया। सवेरा होते ही उदय सिंह ने युद्ध के वाजे बजवाये और उसने मनोहरपुर पर आक्रमण करने की तैयारी की। इसी समय दीपसिंह अपनी सेना के साथ उस स्थान को छोड़ कर अपनी राजधानी कासली की तरफ चला गया। उदय सिंह की समझ में न आया कि दीपसिंह ने ऐसा क्यों किया। उदय सिंह ने अपनी सेना लेकर दीपसिंह का पीछा किया। दीपसिंह ने जब यह देखा तो उसको मनोहरपुर के राजा के पत्र का पूरा विश्वास हो गया। दीपसिंह घवरा कर जयपुर के राजा के यहां चला गया। उदय सिंह ने कासली पहुँच कर उस पर अधिकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनोहरपुर में उदय सिंह का जो आक्रमण होने वाला था, वह खत्म हो गया।

राजा जयसिंह इन दिनों में आमेर के सिंहासन पर था। दीपसिंह के वहाँ पहुँचने पर राजा जयसिह ने कहा: "यदि आप हमारी अधीनता स्वीकार कर लें तो हम आपकी सहायता करेगे और कासली का अधिकार फिर से आपको मिल जाएगा।"

दीपसिंह के सामने अपने उद्धार का कोई और रास्ता न था। उसने राजा जयसिंह की बात को स्वीकार कर लिया और जयपुर राज्य की अधीनता स्वीकार करने के लिये हस्ताक्षर करते हुए उसने चार हजार रुपये वार्षिक कर मे देना भी मंजूर किया।

इस तरह शेखावत सामन्तों पर जयपुर के राजा के आधिपत्य का फिर से सूत्रपात हुआ। शेखावत सामन्तों की संख्या बहुत थोडी थी और उनके अधिकारो में जो सेनायें थी, वे भी अधिक न थीं। कासली के सामन्त दीपसिंह के अधीनता स्वीकार कर लेने पर कई दिनों के बाद आमेर के राजा जयसिंह ने सूर्य ग्रहण के समय गंगा-स्नान के लिए जाने की तैयारी की। उसके साथ दीपसिंह भी रवाना हुआ। गंगा के किनारे पहुँचकर जयसिंह ने स्नान किया और

किया और अधीनता के पत्र पर उसने हस्ताक्षर कर देने के बाद वार्षिक एक लाख रुपये कर के रूप में देना भी स्वीकार किया। लेकिन इसके बाद एक लाख रुपये में कमी की गयी और अन्त में चौंसठ हजार रुपये वार्षिक कर में आमेर के राजा को देने लगा।

कुछ दिनों के बाद राजा जयसिंह की शक्तियाँ कमजोर पड़ गयीं। मराठों और पठानों की लूट-मार आमेर राज्य के चारों तरफ आरम्भ हो गयीं, उस समय खण्डेला से कर वसूल करना उसके लिए कठिन हो गया। इसके पहले गंगा के किनारे दीपसिंह से राजा जयसिंह ने फतेह सिंह के लड़के को उसका अधिकार दिलाने का वादा किया था, वह वादा अभी तक बाकी था। इसलिए फतेह सिंह ने अपने जीवन-काल में खण्डेला राज्य से दो हिस्से पाये थे, उन पर उसके लड़के बीरसिंह को अधिकारी बना दिया गया। इस तरह सवाई सिंह और बीरसिंह दोनों ही जयसिंह की अधीनता में चलने लगे।

सवाई सिंह जिन दिनों खण्डेला में न रहता था। उन दिनों में उदय सिंह ने अपने राज्य पर अधिकार करने के अभिप्राय से एक सेना लेकर अचानक उदयगढ़ पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। सवाई सिंह उस समय आमेर राजधानी में था। उसने अपने पिता उदय सिंह के आक्रमण का समाचार जयसिंह से कहा। उसे सुनते ही जयसिंह ने तुरन्त उदय सिंह पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सवाई सिंह जयपुर की सेना के साथ रवाना हुआ और उसने उदयगढ़ पर आक्रमण करके उदय सिंह को वहाँ से भगा दिया। उदय सिंह इसके बाद फिर नारू चला गया और जीवन के शेष दिन उसने वहीं पर व्यतीत किये। सवाई सिंह ने उसके खर्च के लिए पाँच रुपये नित्य के हिसाब से देने का प्रबन्ध कर दिया था। सवाई सिंह के तीन लड़के पैदा हुए-वृन्दावन, शम्भू ओर कुशल। बड़े लड़के वृन्दावन को खण्डेला का राज्याधिकार मिला। मझले लड़के शम्भू को रानौली का और छोटे लड़के कुशल को पिपरौली का अधिकारी बना दिया गया।

□

अध्याय-59
आमेर राज्य में गृह-युद्ध तथा शेखावाटी में अव्यवस्था

खण्डेला का राज्याधिकार वृन्दावन दास से प्राप्त करने के दिनों में आमेर राज्य में गृह-युद्ध चल रहा था और माधव सिंह ने ईश्वरी सिंह के साथ संघर्ष पैदा करके वहाँ पर भयंकर परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। वृन्दावन दास ने माधव सिंह का पक्ष लेकर इस गृह-युद्ध में काम किया था। उस संघर्ष में माधव सिंह को सफलता मिली। उसके सिंहासन पर बैठने के बाद वृन्दावन दास ने उससे प्रार्थना की। माधव सिंह ने भी उसकी सहायता का पुरस्कार देना चाहा। इसलिए, उसने कहा कि खण्डेला राज्य के दो भागों में विभक्त होने के कारण आपस में संघर्ष चल रहा है। इस आपसी झगड़े को दूर करने के लिए एक ही उपाय है कि खण्डेला राज्य में एक को अधिकारी बना दिया जाये। फतेह सिंह के लड़के वीरसिंह का पुत्र इन्द्र सिंह इन दिनों में खण्डेला के दो भागों का अधिकारी था। इसलिए, आमेर के राजा माधव सिंह ने इन्द्र सिंह के विरुद्ध अपनी पाँच हजार सैनिकों की सेना वृंदावन दास के साथ भेजी। उसने खण्डेला पहुँच कर इन्द्रसिंह पर आक्रमण किया। इन्द्रसिंह कुछ दिनों तक अपने दुर्ग में रह कर आमेर की सेना का मुकाबला करता रहा। लेकिन अन्त में निर्बल पड़ कर वह दुर्ग से निकल गया और पागसोली नामक स्थान पर चला गया। वृन्दावन दास ने वहाँ जाकर उस पर आक्रमण किया। इसलिए, अन्त में इन्द्र सिंह को आत्म-समर्पण करना पड़ा। लेकिन इसी बीच में एक ऐसी घटना हुई कि जिससे उसको फिर अपने पिता के राज्य का अधिकार मिल गया।

आमेर के राजा माधव सिंह ने पाँच हजार सैनिकों की सेना जो वृन्दावन दास की सहायता में भेजी थी, उसके वेतन देने का भार वृन्दावन दास के ही ऊपर था। लेकिन उसके पास इतना धन न था कि वह उस सेना का वेतन अदा कर सकता। इस दशा में वृन्दावन दास ने दूसरे साधनों का आश्रय लिया। उसने मन्दिरों की मूर्तियों में लगे हुए चाँदी-सोने को अपने अधिकार में करने के साथ-साथ प्रजा से कर लेना आरम्भ किया। यह कर राज्य के ब्राह्मणों से भी वसूल होने लगा। इसलिए, वहाँ के ब्राह्मणों ने इसकी निन्दा की। परन्तु वृन्दावन दास ने उनकी निन्दा की कुछ परवाह न की। यह देखकर ब्राह्मणों ने वृन्दावन दास का अपमान जनक विरोध किया। वृन्दावन दास पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा तो ब्राह्मण अपने आपको आघात पहुँचाकर वृन्दावन दास को ब्रह्म-हत्या का पापी बनाने लगे। ब्राह्मणों के दल के दल वृन्दावन दास के सामने पहुँचते और अपने शरीरों को आघात पहुँचा कर उसे कोसते। इस प्रकार की घटनाओं के कारण खण्डेला की प्रजा वृन्दावन दास की निन्दा करने लगी।

खण्डेला राज्य की इस प्रकार की घटनाओं के समाचार आमेर-राजधानी में माधव सिंह के पास पहुँचे। वह ब्राह्मण द्रोही नहीं वनना चाहता था। इसलिए उसने अपनी भेजी हुई सेना को वापस वुला लिया और विद्रोही ब्राह्मणों को आमेर में आने के लिए उसने संदेश भेजा। खण्डेला राज्य के ब्राह्मण वड़ी संख्या में आमेर राजधानी पहुँचे। राजा माधव सिंह ने उन ब्राह्मणों को वीस हजार रुपये देकर संतुष्ट किया। इसके वाद वे ब्राह्मण अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

आमेर की सेना के लौट जाने से वृन्दावन दास कमजोर पड़ गया। इन्द्रसिंह ने इस अवसर का लाभ उठाने के लिए अपने सैनिकों को एकत्रित किया। उसने राजा माधव सिंह का अनुग्रह प्राप्त करने का भी इरादा किया। इन दिनों में आमेर के राजा की तरफ से खुशालीराम वोरा ने माचेड़ी के राव पर आक्रमण करने की तैयारी की थी और जिस समय आमेर की सेना खुशालीराम वोरा के नेतृत्व में माचेड़ी की तरफ जा रही थी, इन्द्रसिंह अपनी सेना के साथ पारासोली से रवाना हुआ था। वह आमेर की सेना के साथ जाकर मिल गया और इन दोनों सेनाओं ने माचेड़ी पहुँचकर आक्रमण किया। वहाँ का राव घवराकर जाटों के राजा के पास भाग गया। माचेड़ी के आक्रमण में इन्द्र सिंह ने आमेर की सेना का साथ दिया। इसलिए आमेर के राजा माधव सिंह ने उसको खण्डेला राज्य की सनद दे दी। इन दिनों मे इन्द्र सिंह ने राजा माधव सिंह को पचास हजार रुपये भी दिये।

राजा माधव सिंह से इन्द्र सिंह को खण्डेला राज्य की सनद मिल जाने के वाद उसकी शत्रुता वृन्दावन दास के साथ और भी अधिक हो गयी। दोनो ने एक दूसरे का नाश करने की पूरी तैयारी की। इसका परिणाम उसके वंश और परिवार के लिए अत्यधिक भयानक हो उठा। यह भयानक संघर्ष पिता-पुत्र के साथ, भाई-भाई के साथ और परिवार के एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ आरम्भ हुआ।

खण्डेला राज्य के इस गृहयुद्ध में एक तरफ वृन्दावन दास था और दूसरी तरफ इन्द्र सिंह था। दोनों आमेर के राजा की सहायता अपने पक्ष में प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न कर रहे थे। राजा माधव सिंह ने सिंहासन पर वैठने के वाद अपनी सेना देकर वृन्दावन दास की सहायता की थी और माचेड़ी के राव पर आक्रमण करने के समय इन्द्रसिंह की सहायता मिलने से उसी राजा माधव सिंह ने इन्द्र सिंह को खण्डेला राज्य की सनद दे दी आमेर के राजा की इन दो मुखी चालों से उन दोनों को यह समझना कठिन हो गया कि राजा माधव सिंह किस पक्ष का समर्थन कर रहा है। यही कारण था कि इन दिनों में भी आमेर की सहायता प्राप्त करने के लिए दोनों पक्षों की तरफ से पूरी-पूरी कोशिश हो रही थी।

इन्द्र सिंह वृन्दावन दास से उदयगढ़ दुर्ग का अधिकार छीन लेने के लिए अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। वृन्दावन दास का छोटा लड़का रघुनाथ सिंह अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इन्द्र सिंह के साथ चला। वृन्दावन दास ने अपने लड़के रघुनाथ को कोछोर का अधिकार दे दिया था। लेकिन इससे उसको संतोष न मिला और उसने कोछोर के अतिरिक्त दूसरे तीन नगरों पर अधिकार कर लिया। उस समय वृन्दावन दास ने रघुनाथ को दवाने के लिए इन्द्र सिंह के साथ मेल किया था और उसके वाद उसने कोछोर पर आक्रमण करने क

प्रयास किया। रघुनाथ सिंह को जब यह रहस्य मालूम हुआ तो उसने इन्द्र सिंह का साथ छोड़कर उसके भतीजे रानोली के सामन्त पृथ्वी सिंह का आश्रय लिया और कोछोर की रक्षा करने का प्रयत्न किया। कोछोर के आक्रमण में असफलता प्राप्त कर वृन्दावन दास खण्डेला की तरफ लौट गया।

इन्द्र सिंह अपनी सेना के साथ खण्डेला के समीप पहुँच गया। उसी समय नगर के बाहर दोनो तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। वृन्दावन दास के बड़े लड़के गोविन्द सिंह ने बड़े साहस के साथ उदयगढ़ की रक्षा की। इन्द्र सिंह लगातार उसको पराजित करने की कोशिश कर रहा था। कई दिनो तक यह युद्ध चलता रहा, अंत मे युद्ध करते-करते दोनों पक्ष निर्वल पड़ गये। लेकिन युद्ध का कोई परिणाम न निकला। इसके बाद वृन्दावन दास और इन्द्र सिंह मे समझौता हो गया और इन्द्र सिंह राज्य के जितने हिस्से का वास्तव में अधिकारी था, उतना राज्य वृन्दावन दास ने उसको दे दिया। इस समझौते के बाद खण्डेला राज्य के आपसी संघर्ष का अन्त हो गया।

घरेलू सवर्ष के अत होने के कुछ ही दिनों के बाद दिल्ली के बादशाह के सेनापति नजफकुली खॉ ने एक फौज लेकर खण्डेला पर आक्रमण किया। माचेड़ी का राव मुगल सेनापति को लेकर शेखावाटी राज्य मे आया और वहॉ के छोटे-छोटे राज्यों पर अत्याचार करके मुगल सेनापति ने धन एकत्रित करने का काम आरम्भ किया। नवलगढ़ के नवल सिंह, खेतडी के वाघसिंह,बिसाऊ के सूर्यमल आदि शेखाणी वंश के राजाओं से मुगल सेनापति ने दण्ड स्वरूप कई लाख रुपये देने के लिए कहा। इस रुपये की अदायगी न हो सकने पर मुगल सेनापति ने उन सब को कैद कर लिया। इसके बाद शेखावाटी के गरीव किसानों से कई लाख रुपये एकत्रित करके जब यवन सेनापति को दिये गये तो उसके बाद वे सामन्त कैद से छोड़े गये।

इन दिनों मे शेखावाटी का प्रत्येक ग्राम और नगर भयानक विपदाओं का सामना कर रहा था। घरेलू संघर्ष के कारण खण्डेला राज्य निर्बल हो चुका था। उसके बाद वहॉ के ब्राह्मणों ने अपने भय का प्रदर्शन आरम्भ किया। वृन्दावन दास ने खण्डेला की प्रजा से कर वसूल करने के अवसर पर यहाँ के कुछ ब्राह्मणों से भी कर वसूल किया था। उसको शांत करने के लिए आमेर के राजा ने खण्डेला से अपनी सेना वापस बुला ली थी और क्रोधित ब्राह्मणों को बीस हजार रुपये देकर शान्त किया था। इसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इन दिनों में वृन्दावन दास और इन्द्र सिह को निर्बल समझ कर वहॉ के ब्राह्मणो ने उत्पात करना आरम्भ किया। वृन्दावन दास ने उन लोगों से जो कर वसूल किया था, उसके पाप का प्रदर्शन करके वे लोग वृन्दावन दास को भयभीत करने लगे। वृन्दावन दास ने ब्राह्मणों के श्राप से डर कर प्रायश्चित के रूप मे उनको भूमि के अधिकार देना शुरू किया। बहुत समय तक अनाचार देखकर वृन्दावन दास के लडके गोविन्ददास ने इसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप वृन्दावन दास ने गोविन्ददास को अपने राज्य का भार देकर और अपने अधिकार में पॉच नगरों को रखकर सिंहासन छोड दिया।

गोविन्ददास अपने पिता के सिंहासन पर वैठकर अधिक समय तक राज्याधिकार का भोग न कर सका। सिंहासन पर उसके वैठने के वर्ष में वर्षा न होने के कारण राज्य में

भयानक अकाल पड़ा। राज्य में चारों तरफ हाहाकार आरम्भ हुआ। इस अकाल के कारण गोविन्द सिंह को प्रजा से कर वसूल करने में बड़ी कठिनाई हुई। महरोली के सामन्त ने गोविन्दसिंह से राज्य में घूमकर खेती की दशा देखने की प्रार्थना की। इसके लिए जब गोविन्द सिंह तैयार हुआ तो ब्राह्मणों ने विरोध करते हुए उससे कहा- "बाहर जाने के लिए आज का दिन अच्छा नहीं है।"

गोविन्द सिंह ने ब्राह्मणों की इस बात पर ध्यान नहीं दिया और वह राज्य में खेती की दशा देखने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ खेजड़ोली नामक स्थान का रहने वाला एक कर्मचारी था। गोविन्द सिंह उसका विश्वास करता था। उसकी जिम्मेदारी में गोविन्द सिंह ने कुछ मूल्यवान चीजें रख दीं, जो खो गयीं। गोविन्द सिंह उससे बहुत अप्रसन्न हुआ। कर्मचारी ने अपने निरपराध होने के अनेक प्रमाण दिये। लेकिन गोविन्द सिंह ने उसका विश्वास नहीं किया। इस अवस्था में उस कर्मचारी को बहुत ग्लानि मालूम हुई। उसे अपने अपराध में किसी बड़े दण्ड की आशंका होने लगी। इसलिए उस कर्मचारी ने रात के समय गोविन्द सिंह को जान से मार डाला। गोविन्द सिंह के पाँच लड़के थे- (1) नरसिंह (2) सूर्यमल (3) बाघसिंह (4) जवान सिंह और (5) रणजीत सिंह। उसके इन पुत्रों के द्वारा उसके वंश की वृद्धि हुई।

पिता के बाद नरसिंह खण्डेला के सिंहासन पर बैठा। घरेलू संघर्ष और विद्रोह के कारण खण्डेला की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। पड़ौसी राज्यों ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी सीमायें बढ़ा ली थीं। दिल्ली की मुगल बादशाहत बहुत कमजोर पड़ गयी थी। आमेर के राजा ने अपने निकटवर्ती राज्यों से लाभ उठाकर शक्ति और सम्मान की वृद्धि की थी। शेखावत राज्यों के साथ उसका शान्तिपूर्ण सम्बन्ध चल रहा था। इन्हीं दिनों में वहाँ पर मराठों के अत्याचार आरम्भ हुए। लोगों ने शेखावाटी में चारों तरफ लूटमार आरम्भ कर दी और वहाँ के सामन्तों ने अपना सब कुछ बेचकर मराठों को माँगी हुई रकमें अदा कीं। इसके बाद उन लोगों ने छुटकारा पाया। जो सामन्त मराठों को उनकी माँग के अनुसार धन नहीं दे सके, उनको बहुत दिनों तक कैदी होकर मराठों के साथ रहना पड़ा। इसके बाद भी उनसे कुछ न मिलने पर मराठों ने उनको छोड़ दिया।

मराठा लुटेरों ने इन दिनों में सभी प्रकार के अत्याचार शेखावाटी में किये। मेड़ता के युद्ध के बाद मराठों के इस दल ने शेखावाटी पहुँचकर सबसे पहले बिवाई पर आक्रमण किया। वहाँ के लोग घबराकर दूसरे नगरों की तरफ भाग गये। लेकिन अस्सी राजपूतों ने अपने दुर्ग के भीतर जाकर मराठों के साथ लड़ने का निश्चय किया। मराठों ने बिवाई पर अधिकार करने के बाद वहाँ के दुर्ग पर आक्रमण किया। उस दुर्ग में जो राजपूत मौजूद थे, वे युद्ध करते हुए मारे गये। उस दुर्ग पर अधिकार कर लेने के बाद मराठे खण्डेला की तरफ रवाना हुए।

खण्डेला के चार मील रह जाने पर मराठों के दल ने होदीगाँव नामक स्थान पर जाकर मुकाम किया और अपना दूत भेजकर खण्डेला के राजा नरसिंह और इन्द्रसिंह से बीस हजार रुपये की माँग की।* नरसिंह और इन्द्रसिंह ने अपने दो सामन्तों को इस विषय में बातचीत

---

* इस लुटेरे मराठा-दल में सभी मन्त्री, अधिकारी और दूत केवल ब्राह्मण थे। ब्राह्मण लोग इस प्रकार के कार्य में बड़े होशियार होते हैं। जरूरत पड़ने पर वे साहस से भी काम लेते हैं। दूत का कार्य करने में ये ब्राह्मण लोग बहुत चतुर पाये जाते हैं। इन ब्राह्मण दूतों ने यूरोप के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मैकियावेली को भी बुरी तरह से ठगा था।

करने के लिए मराठों के पास भेजा। उन सामन्तों के नाम थे, नवल सिंह और दलेल सिंह।

उन सामन्तों ने मराठों के सरदार के पास जाकर संधि की बातचीत की और मराठों को दी जाने वाली रकम का निर्णय हो गया। जब दोनों सामन्त वापस आने लगे तो मराठों के सरदार ने उनको रोककर कहा- "जब तक दण्ड की यह रकम हमारे पास न आ जाएगी, आप यहाँ से किसी प्रकार जा नहीं सकते।"

उन सामन्तों ने मराठा सरदार की इस बात का विरोध किया। इसी समय एक सामन्त अपने साथ के एक कर्मचारी से हुक्का लेकर पीने लगा। यह देखकर एक मराठा ने उसका हुक्का छीन कर फेंक दिया। उसके इस व्यवहार से सामन्त ने अपमानित होकर अपनी कमर से तलवार निकाल ली और हुक्का फेंकने वाले मराठा पर आघात करने के लिए तैयार हो गया। इसी समय मराठा सरदार ने दलेल सिंह के हाथ में तलवार देखकर अपनी बन्दूक से उसके गोली मारी। यह देखकर अपने साथ के कर्मचारियों को संकेत करके दूसरा सामन्त नवल सिंह लड़ने के लिए तैयार हो गया। इस पर बहुत से मराठा एक साथ टूट पड़े और उन्होंने खण्डेला के सामन्तों और कर्मचारियों को जान से मार डाला।

बहुत समय तक मराठों के पास से सामन्तों के न लौटने पर खण्डेला के राजा इन्द्रसिंह को चिन्ता होने लगी। अपने साथ कुछ आदमियों को लेकर वह मराठों की तरफ रवाना हुआ। उनके करीब पहुँचने पर उसने सुना कि मराठों ने दोनों सामन्तों और साथ के कर्मचारियों पर आक्रमण करके उनको मार डाला है। इस समाचार को सुनते ही साथ के आदमियों ने इन्द्रसिंह से खण्डेला लौट जाने के लिए कहा। उनको समझाते हुए इन्द्रसिंह ने उत्तर दिया- "ऐसा नहीं हो सकता। हमारे सामन्त और आदमी मारे गये हैं। इसलिए इस समाचार को पाने के बाद लौट जाने की अपेक्षा वहाँ जाकर मृत्यु का सामना करना अधिक अच्छा है।"

यह कह कर अपने आदमियों के साथ इन्द्रसिंह आगे बढ़ा और कुछ दूर आगे जाकर सभी लोग घोड़ों से उतर पड़े। समीप के पेड़ों में घोड़ों को बाँधकर अपने आदमियों के साथ हाथों में तलवारें लिए हुए इन्द्रसिंह ने शत्रुओं पर जाकर आक्रमण किया। उसी समय मराठों का दल उन पर टूट पड़ा और अपने आदमियों के साथ इन्द्रसिंह मारा गया। दलेल सिंह घायल होने के कारण अभी तक मरा नहीं था। इसीलिए शत्रु के आदमी उसको घसीट कर अपने डेरों में ले गये।

इन्द्रसिंह के मारे जाने के समय उसका लड़का प्रतापसिंह खण्डेला से दस मील दूर एक शिखर पर बने हुए दुर्ग में मौजूद था। वह अभी-शासन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था। इसलिये खण्डेला के प्रसिद्ध पुरुषों ने राज्य में जिसके पास जो कुछ मौजूद था, अनाज और खाने की वस्तुएँ तक बेचकर जो धन एकत्रित किया गया, वह मराठों को दे दिया गया। इसके बाद मराठे वहाँ से चले गये और सिद्धानी वंश के अधिकृत नगरों में वे जा पहुँचे। सबसे पहले उन मराठों ने उदयपुर पर आक्रमण किया और उसे सभी प्रकार लूटकर उसको अपने अधिकार में कर लिया। उसके बाद भी मराठा दल के लोग नगर में लूटमार के अतिरिक्त

भयानक अत्याचार करते रहे। इसके बाद उनका दल उदयपुर को छोड़कर सिंहाना, झुंझुनूं और खेतड़ी आदि के सामन्तों पर आक्रमण करने के लिए चला।

मराठों के चले जाने के बाद भी खण्डेला के नरसिंह और प्रतापसिंह सुख की नींद सो नहीं सके। वहॉ के लोगों ने अपना सब कुछ बेच कर मराठों को दे दिया। उनके जाते ही आमेर के राजा ने खण्डेला से कर मॉगा। बालक प्रताप इनकार कर सकने की दशा में न था। उसके नगरों में लोगों के पास खाने के लिए जो कुछ अनाज रह गया था, उसका अधिकांश भाग प्रताप सिंह ने आमेर के राजा को दे दिया। परन्तु नरसिंह ने कुछ न दिया।

इन दिनों में शेखावत वंश की एक शाखा में सामन्त देवीसिंह ने ख्याति प्राप्त की थी। वह कासली के राव तिरमल्ल का वंशज था और सीकर का वह अधिकारी था। उसने खण्डेला राज्य की अधीनता में रह कर भी लोहागढ़, खोह और इस प्रकार के दूसरे पच्चीस नगरों और दुर्गो पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद उसने रिवासो पर अधिकार करने की चेष्टा की थी। परन्तु मृत्यु हो जाने के कारण वह अपनी अभिलाषा पूरी न कर सका।

देवीसिंह के कोई लड़का न था। इसलिए अपने जीवन-काल में ही उसने शाहपुरा के सामन्त के लड़के लक्ष्मण सिंह को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लिया था। शेखावाटी के निर्बल सामन्तों के ग्राम और नगरो पर अधिकार कर लेने के कारण देवीसिंह से आमेर का राजा बहुत अप्रसन्न हो गया था। इसलिए उसने मंत्री दौलत राम के भाई नन्दराम हलदिया को देवीसिंह के नगरों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। नन्दराम ने वहॉ आक्रमण करके लक्ष्मण सिंह को आमेर की अधीनता में लाने की तैयारी की। इस समय जिन सामन्तों के ग्रामो और नगरों पर देवीसिंह ने अधिकार कर लिया था, वे सभी देवीसिंह के विरुद्ध नन्दराम हलदिया के पास जाने लगे। खण्डेला के राजा भी उसके पास पहुॅचे। कासली और बिलारा आदि के पाचवत सामन्त भी नन्दराम के पास पहुॅच गये। देवीसिंह ने जिनको क्षति पहुॅचाई थी,वे सभी उसके दत्तक पुत्र लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध होने वाले आक्रमण में सहायता करने के लिए तैयार हो गये।

सीकर का अधिकारी देवीसिंह भी साधारण दूरदर्शी न था। उसने पहले से ही अपने पक्ष में बहुत कुछ कर रखा था। उसने आमेर राज्य के दरबारी सदस्यों के साथ पहले से ही सम्बन्ध जोड़ रखा था। वह इस बात को समझता था कि इन लोगों के साथ अनुराग पूर्ण सम्बन्ध कायम रहने से हमारा भविष्य संकटपूर्ण न बन सकेगा। देवीसिंह के साथ जयपुर के मंत्री और उसके भाई का स्नेहपूर्ण सम्बन्ध था। यह सब देवीसिंह ने अपने जीवनकाल में ही कर लिया था। नन्दराम अपनी सेना के साथ सीकर पर आक्रमण करने के लिए जब गया तो एक चन्द्रावत सामन्त, जो सीकर का दीवान था, लक्ष्मण सिंह का प्रतिनिधि होकर नन्दराम के पास गया और उसने बड़ी नम्रता के साथ स्वर्गीय देवीसिंह का जिक्र करते हुए उसके दत्तक पुत्र लक्ष्मण सिंह की परिस्थितियाँ उसके सामने रखीं। नन्दराम ने उससे कहा- "आप जो चाहते हैं,उसका एक ही रास्ता है। आप एक बड़ी सेना को एकत्रित करके सीकर की रक्षा करने के लिये तैयार हों। उस समय मेरे ऊपर किसी प्रकार का दोषारोपण न हो सकेगा।"

सीकर के दीवान की समझ में यह आ गया। देवीसिंह ने अनेक नगरों को लूटकर बहुत-सा धन एकत्रित किया था। वह सम्पत्ति लक्ष्मण सिंह के अधिकार मे थी। इस समय उस

सम्पत्ति का उपयोग किया गया और सीकर की रक्षा करने के लिए दस हजार सैनिकों की सेना का तुरन्त प्रबन्ध किया गया। इन दिनों में नन्दराम की सेना के अतिरिक्त कई सामन्तों की सेनायें सीकर पर आक्रमण करने के लिए आयी थीं। उन सब का युद्ध कौशल नन्दराम पर निर्भर था। साथ के सामन्तों से परामर्श करके नन्दराम ने सीकर में युद्ध आरम्भ किया।

लक्ष्मण सिंह ने अपनी रक्षा के लिए दस हजार सैनिकों की व्यवस्था कर ली थी। उसके दीवान के साथ नन्दराम की जो गुप्त बातचीत हुई थी, उसे वह जानता था और उसी के आधार पर दस हजार सैनिकों की नयी सेना की व्यवस्था की गई थी। नन्दराम की तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ, उसको कई दिन बीत गये। लेकिन वह युद्ध इस प्रकार चलता रहा कि सीकर को कोई क्षति न पहुँच सकी। इसके बाद नन्दराम ने जयपुर राज्य के मंत्री के पास एक पत्र भेजा। वह मंत्री नन्दराम का भाई था। उसने पत्र में लिखा- "वर्तमान परिस्थितियों में सीकर को परास्त करना बहुत कठिन मालूम होता है। इस पर भी सीकर का अधिकारी लक्ष्मण सिंह जयपुर की अधीनता स्वीकार करके दण्ड में दो लाख रुपये देने के लिए तैयार है। हमारी समझ में दो लाख रुपये लेकर और सीकर को अधीन बनाकर युद्ध रोक देना अधिक अच्छा है।"

नन्दराम ने अपना यह पत्र जयपुर के मंत्री के पास भेज दिया। उसके बाद उसने जयपुर से आने वाले उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। उसने पत्र मे लिखने के अनुसार दो लाख रुपये जयपुर राज्य के लिए और एक लाख रुपया अपने लिए लेकर सीकर छोड़ दिया। इस प्रकार देवीसिंह के स्नेह पूर्ण व्यवहारों के कारण सीकर को इस सम्पत्ति के सिवा और कोई विशेष क्षति नहीं उठानी पडी।

खण्डेला के राजा नरसिंह ने आमेर के राजा को कर देने से इनकार किया था। लेकिन प्रताप सिह ने किसी प्रकार उसे अदा करके आमेर के राजा का सन्तोप प्राप्त किया था। नरसिंह का कर न देना आमेर नरेश को सहन नही हुआ। उसने नरसिंह और प्रताप सिंह से संघर्ष पैदा करने की चेष्टा की। जयपुर राज्य की सहानुभूति अपने पक्ष में समझने के कारण प्रतापसिंह सम्पूर्ण खण्डेला राज्य का अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। उसने जयपुर राज्य के सेनापति नन्दराम के पास एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा- "खण्डेला राज्य की जितनी आमदनी है। उसका सम्पूर्ण कर मैं अकेले जयपुर को देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन सम्पूर्ण खण्डेला का अधिकार मुझे दिला दिया जाये। जयपुर राज्य की आज्ञानुसार मैं सदा अपनी सेना के साथ तैयार रहूँगा। मेरे लिखने के अनुसार खण्डेला का जो अभिपेक मेरे लिए किया जाएगा, उसमें बहुत-सा धन जयपुर के राजा को उपहार में दिया जाएगा।"

सेनापति नन्दराम ने प्रताप सिंह के इस पत्र को पढ़कर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसी समय से वह सम्पूर्ण खण्डेला राज्य की सनद प्रताप को दिये जाने की चेष्टा करने लगा।

उन दिनो मे नाथावत वंश का सरदार सामोद का सामन्त रावल इन्द्रसिंह जयपुर मे रहता था। उसे जब मालूम हुआ कि नरसिंह के अधिकार का राज्य प्रताप सिंह को देने के लिए जयपुर मे तैयारी हो रही है, तो उसने गुप्त रूप से नरसिंह को अपने पास बुलाया और सभी बातें बताकर उससे कहा- "सम्पूर्ण खण्डेला राज्य का अधिकार राजा जयपुर की तरफ

से प्रतापसिंह को दिया जा रहा है। उसके शासन की सनद तैयार हो चुकी है। इसलिये आप तुरन्त जयपुर के राजा के साथ सन्धि कर लें और जो माँग की जाये, उसे आप पूरा करें। यदि आप ऐसा चाहते हैं तो मैं आपकी सहायता करूँगा।''

नरसिंह ने इन्द्रसिंह की इस बात को स्वीकार नहीं किया। इसलिये इन्द्रसिंह ने जयपुर छोड़ कर तुरन्त उसको चले जाने के लिये कहा। उसने यह भी कहा यदि आप चुपके से निकलकर अपने राज्य न चले जाएँगे तो आपके साथ मेरे ऊपर भी संकट पैदा हो जाएगा।

इन्द्रसिंह के परामर्श के अनुसार नरसिंह रात के समय जयपुर से जाने के लिये तैयार हुआ। इन्द्रसिंह ने उसकी रक्षा के लिये अपने साठ कर्मचारियों को उसके साथ भेजा। वे लोग गुप्त रूप से उसको नवलगढ़ पहुँचा कर लौट आये। नरसिंह सवेरा होते-होते अपने दुर्ग गोविन्दगढ़ में पहुँच गया।

इन्द्रसिंह के पास नरसिंह का आना जयपुर में प्रकट हो गया इसलिये नन्दराम ने इन्द्रसिंह को अनेक प्रकार की धमकियाँ दी। उनका उत्तर देते हुए इन्द्रसिंह ने नन्दराम से कहा- ''मैंने राजपूतों के कर्त्तव्य का पालन किया है। इसका कोई भी परिणाम हो, मैं उसके लिये जरा भी भयभीत नहीं हूँ।''

नाथावत वंश में सामोद और चौमूं के दोनों सामन्त प्रधान थे, सामोद के सामन्त को चौमूं से भी अधिक श्रेष्ठता मिली थी और वे दोनों जयपुर राज्य की अधीनता में रहते थे। इन दोनों प्रधान सामन्तों को राज्य की तरफ से रावल की उपाधि मिली थी। उनके शासन में बहुत से छोटे-छोटे सामन्त रहते थे। सामोद के सामन्त के साथ चौमूं के सामन्त का बहुत दिनो से भीतर ही भीतर द्वेष चल रहा था और कभी-कभी उन दोनों में झगड़े भी हो जाते थे।

नरसिंह को जयपुर में अपने आप बुलाने के कारण इन्द्रसिंह से नन्दराम सेनापति बहुत अप्रसन्न हुआ। इस प्रकार का समाचार पाकर चौमूं का सामन्त जयपुर के राज-दरबार में गया और नाथावत वंश के सामन्तों में श्रेष्ठ सामन्त का पद प्राप्त करने के लिये वह आमेर के राजा को बहुत सा धन उपहार में देने के लिये तैयार हुआ। आमेर का राजा सामोद के सामन्त इन्द्रसिंह से अप्रसन्न था ही। उसने चौमूं के सामन्त की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इन्द्रसिंह इस समय भी जयपुर मे मौजूद था। उसे बुलाकर राज-दरबार में आज्ञा दी गयी: ''आपने राज्य के विरुद्ध जो अपराध किया है, उसके दण्ड में सामोद की जागीर राज्य के अधिकार में ले ली गयी है और आपको आदेश दिया जाता है कि आप तुरन्त सामोद की जागीर छोडकर राज्य से चले जायें।''

राजा के इस आदेश को पाकर सामोद के सामन्त इन्द्रसिंह ने कुछ भी विरोध न किया। उसने एक राजभक्त की हैसियत से इस आज्ञा को स्वीकार किया और आमेर राजधानी से वह अपनी जागीर सामोद चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने सामोद से निकल जाने की तैयारी की और अपनी सामग्री तथा सम्पत्ति को लेकर अपने परिवार के लोगों के साथ सामोद से निकलकर वह मारवाड राज्य मे चला गया। कुछ दिन बीत गये। इन्द्रसिंह की स्त्री को आमेर राज्य के दरबार से पिपली नामक एक ग्राम का अधिकार मिला। इन्द्रसिंह की अवस्था बुढ़ापे की चल रही थी। उसने अपनी जन्मभूमि मे मरने का इरादा किया। इसलिये जीवन के अन्तिम

दिनों में वह अपने परिवार के साथ उस ग्राम में चला गया। वह जन्म से ही साहसी और वीर था। यदि वह चाहता तो आमेर के राजा के अन्यायपूर्ण आदेश के विरुद्ध युद्ध कर सकता था। परन्तु उसमें राजभक्ति की भावना थी। इसीलिये उसने ऐंसा करना किसी प्रकार उचित न समझा।

खण्डेला का राजा नरसिंह अपने व्यवहारों से आमेर के राजा का विरोधी बन चुका था। उसके फलस्वरूप सेनापति नन्दराम हलदिया ने प्रतापसिंह को सम्पूर्ण खण्डेला राज्य का अधिकारी बना दिया और इस अधिकार की सनद भी उसको दे दी गयी। इसके बाद प्रतापसिंह खण्डेला राज्य के उस भाग में पहुँचा,जिसमें अब तक नरसिंह का अधिकार रहा था। वहाँ पहुँचकर सबसे पहले प्रतापसिंह ने उस प्रधान द्वार को गिरवा कर धराशाही करा दिया, जिसे नरसिंह ने दुर्ग के रूप में बनवाया था और उसके ऊपर से उसने प्रतापसिंह के पिता के महलों पर गोले बरसाये थे। उसकी दीवार में लगी हुई गणेश की एक मूर्ति थी। नरसिंह उस मूर्ति की पूजा किया करता था। वह मूर्ति भी टूट कर गिर गयी।

प्रतापसिंह ने सम्पूर्ण खण्डेला के शासन का अधिकार अपने हाथों में लेकर रेवासो पर अधिकार करने की तैयारी की और सेना को लेकर उसने गोविन्दगढ़ दुर्ग को जाकर घेर लिया, जिसमें नरसिंह इन दिनों मे रहता था। रानोली के सामन्त को यह देखकर अच्छा न मालूम हुआ। वह सदा से नरसिंह का समर्थक था। उसने अपने मंत्री को नन्दराम के पास भेजा और उसके द्वारा उसने हलदिया से प्रार्थना की कि आमेर के राजा को नरसिंह से जो मिलना चाहिए, हम वह सब देने के लिये तैयार हैं, यदि आप नरसिंह को पूर्ववत् अधिकारी बना रहने दें। साथ ही इसके बदले में हम आपको उपहार में अधिक धन देकर सन्तुष्ट करेंगे।

धन की आशा में सेनापति नन्दराम ने उस सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। धन की ही आशा में उसने अभी कुछ दिन पहले प्रतापसिंह को सम्पूर्ण खण्डेला राज्य का अधिकारी बनाया था और उसे राजा की तरफ से इसके लिये सनद भी दिलायी थी। अब उसने नरसिंह के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार किया और अपनी सफलता के लिये उसने एक नये षड़यंत्र की रचना की। उसने नरसिंह के समर्थक सामन्त के पास गुप्त रूप से समाचार भेजा कि आपने नरसिंह के पक्ष में जो प्रस्ताव किया है, उसके लिये गोविन्दगढ़ से नरसिंह एक सेना को लेकर रात्रि के समय बाहर निकले और हमारी सेना पर आक्रमण करे। उस समय कुछ देर तक बनावटी युद्ध करके हम अपनी सेना के साथ परास्त होकर भाग जाएंगे। ऐसा करने से प्रतापसिंह को हम पर किसी प्रकार का सन्देह न होगा और नरसिंह को सफलता मिल जाएगी।

नन्दराम का यह सन्देश गुप्त रूप से रानोली के सामन्त के पास पहुँच गया। उसने इस सन्देश के अनुसार तैयारी की। सूर्यमल्ल और बाघसिंह नामक उसके दो भाई थे। उन दोनों ने गोविन्दगढ़ के दुर्ग के भीतर तैयारी की और निश्चित दिन तथा समय पर रात मे डेढ सौ सैनिको को लेकर वे दोनों भाई दुर्ग से बाहर निकले ओर उन्होने नन्दराम की सेना पर इस प्रकार का आक्रमण किया, जिससे आमेर की सेना को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। उस आक्रमण पर कुछ देर तक युद्ध करके नन्दराम अपनी सेना के साथ वहाँ से भाग गया और नरसिंह ने अपने भाइयों के साथ अवसर पाकर राज्य के अपने नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया।

इस घटना से प्रतापसिंह को बहुत क्रोध मालूम हुआ। इसके रहस्य का उसे कुछ पता न था। उसने नरसिंह के अधिकार को रोकने की कोशिश की। परन्तु उसे सफलता न मिली। नरसिंह के पक्ष में कई सेनायें खण्डेला में आ चुकी थीं। प्रतापसिंह उसको रोक न सका। इसलिये उसने विरोधी सैनिकों को पानी का कष्ट पहुँचाने की कोशिश की। उसने कुओं को बन्द करवाने का आदेश दिया। इसके फलस्वरूप दोनों ओर की सेनाओं में संघर्ष हो गया और दोनों तरफ के बहुत से आदमी घायल हुए। अन्त में नन्दराम हलदिया ने आमेर राज्य की पंचरंगी पताका फहराकर युद्ध को रोका और उसकी कोशिशों से दोनों पक्षों में संधि की बातचीत आरम्भ हुई। प्रताप सिंह को रेवासो का अधिकार और नरसिंह को खण्डेला राज्य में पैतृक अधिकार दिलाकर संधि करायी गयी।

इस संधि के बाद भी दोनों पक्षों में अधिक समय तक शान्ति कायम न रह सकी। साधारण विवाद को लेकर उनमें संघर्ष पैदा हो जाता था। गणगौर नामक पर्व के दिन दोनों पक्षों में भयानक झगड़ा हुआ। उस सिलसिले में और भी घटनायें पैदा हुई जिनके कारण समस्त शेखावत सामन्तों ने एकत्रित होकर निर्णय करने की चेष्टा की। आमेर के राजा को उसमें मध्यस्थ बनाया गया। उसके फलस्वरूप, उस समय के सभी उत्पात शान्त हो गये।

इस प्रकार की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में आमेर के राजा का अधिकार शेखावाटी में धीरे-धीरे बढ़ता गया। नन्दराम हलदिया ने अपने षड़यंत्रों के द्वारा शेखावत सामन्तों को अनेक प्रकार की क्षति पहुँचायी, अपरिमित धन वसूल किया, सामन्तों को आपस में लड़ाया और कई एक जागीरें आमेर राज्य में मिलायी गयीं। जो लोग अधीनता में रहने के बाद भी जयपुर राष्य को नियमित रूप से किसी प्रकार का कर नहीं देते थे और किसी सामन्त के मरने पर अथवा उत्तराधिकारी के अभिषेक के समय आमेर के राजा को उपहार में कुछ रुपये न देते थे, उन पर नियमित रूप से नन्दराम के द्वारा कर का बोझ रखने की चेष्टायें हुई। इन दिनों में शेखावत सामन्तों की परिस्थितियां बड़ी भयानक हो उठी थीं। कब किसकी स्वाधीनता का अपहरण होगा, इसको कोई न जानता था- इसलिए सिद्धानी लोगों ने एकत्रित होकर वर्तमान परिस्थितियों पर कुछ निर्णय करने का विचार किया। इसके पहले नन्दराम के द्वारा कुछ और भी घटनायें हो चुकी थीं। उसने नवलगढ़ के सामन्तों के तुई नगर को घेर लिया और रानोली पर प्रताप सिंह को अधिकारी बनाने के लिए उसके सामन्त को कैद कर लिया गया। इस प्रकार की घटनाओं के फलस्वरूप सभी सिद्धानी सामन्त अत्यन्त असंतुष्ट हो चुके थे। उनके विरुद्ध इस प्रकार की घटनाओं के होने का कोई कारण न था। उस वंश के सभी सामन्त सभी प्रकार के झगड़ों से दूर रह कर अपनी-अपनी जागीरो में रहा करते थे। इस पर भी उनके विरुद्ध जो व्यवहार और आक्रमण किये गये, उनको देखकर उन लोगो ने निश्चय किया कि राजनीति में निष्पक्ष भाव से रह सकना असम्भव होता है। इसलिए सम्पूर्ण शेखावाटी के राजाओं और सामन्तों को एकत्रित करके उनके झगड़ों को दूर करने की चेष्टा की गई। उन लोगों ने समझ लिया कि हम लोगों की आपसी फूट के कारण नन्दराम को अनुचित रूप से लाभ उठाने का मौका मिलता है। इसलिए उसका सबसे अच्छा रास्ता यह है कि हम सब अपने झगड़ो को मिलकर ईमानदारी से दूर करने की कोशिश करे। उसी दशा मे हम लोग सुरक्षित रह सकते हैं और अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकते हैं।

इस निर्णय के अनुसार, शेखावाटी के सामन्तों में आपसी निर्णय की तैयारियाँ होने लगीं। उस समय से पहले ऐसे अवसरो पर सभी शेखावत सामन्त उदयपुर नामक स्थान पर एकत्रित हुआ करते थे और आपसी संघर्षो का निर्णय किया करते थे। उसी उदयपुर में इस समय भी सम्पूर्ण शेखावाटी के अधिकारी और सामन्त एकत्रित हुए। उस समय एक प्रस्ताव सब के सामने इस आशय का उपस्थित किया गया कि हम सब लोग कुछ भी निर्णय करने के पहले, प्राचीन प्रणाली के अनुसार नमक पर हाथ रख कर इस बात की शपथ लें कि इस सम्मेलन में जो कुछ निर्णय होगा, उसका पालन प्रत्येक अवस्था मे हम लोग करेंगे। बिना किसी विरोध के उपस्थित लोगों ने उसको स्वीकार किया। जयपुर में इस समय शेखावाटी के सभी अधिकारी और सामन्त आये थे। उन लोगों ने निश्चय किया कि हम सब को व्यर्थ के आपसी झगड़े खत्म कर देने चाहिए। यदि कभी कोई ऐसा संघर्ष पैदा हो, जो विचारणीय हो, उसके लिए हम सब लोग इसी स्थान पर एकत्रित हों और बिना किसी पक्षपात के हम सब लोग मिल कर उस संघर्ष का निर्णय करें। हमारे पूर्वज भी ऐसा ही करते थे और ऐसे मौकों पर वे इसी स्थान पर एकत्रित होते थे।

शेखावाटी के उन एकत्रित अधिकारियो ने यह भी निश्चय किया कि हम लोग अपने किसी संघर्ष को मिटाने के लिये भविष्य में कभी भी आमेर के राजा को मध्यस्थ नहीं बनायेंगे। उसके लिए हम लोगो के बीच का कोई भी व्यक्ति चुन लिया जाएगा। हम लोगों के किसी भी विवाद के निर्णय करने का अधिकार आज के बाद किसी दूसरे को न होगा। हम सब लोग स्वयं अपना निर्णय करेंगे और उसके लिये किसी निर्णायक अथवा मध्यस्थ का निर्वाचन स्वयं ही कर लेंगे।

उन एकत्रित लोगो में यह भी निश्चय हुआ कि यदि आमेर का राजा हम लोगों के मामले में जबरदस्ती हस्तक्षेप करेगा तो हम सभी लोग अपनी सेनाओं के साथ एकत्रित होकर आमेर के राजा का सामना करेंगे।

शेखावाटी के समस्त अधिकारियों और सामन्तों के उदयपुर में एकत्रित होने और इस प्रकार निर्णय करने का समाचार जयपुर पहुँच गया। उसे सुनकर वहाँ का राजा बहुत भयभीत हुआ। शेखावत सामन्तों के साथ राज्य की तरफ से अब तक जो कुछ हुआ था, उस पर आमेर के राजा ने गम्भीर होकर विचार किया और इस बात को अनुभव किया कि नन्दराम हलदिया के दूपित व्यवहारों और अत्याचारों के कारण शेखावाटी के सामन्तों को इस प्रकार एकत्रित होकर हमारे विरुद्ध निर्णय करना पड़ा है। इस बात का भली भाँति अनुभव करके आमेर के राजा ने नन्दराम को उसके पद से हटाकर रोडाराम नामक एक व्यक्ति को नियुक्त किया और उसे सेना के साथ शेखावाटी रवाना किया। राजा की आज्ञानुसार नन्दराम को कैद करके जयपुर भेजने के लिए रोडाराम को आदेश मिला।

नन्दराम हलदिया को आमेर के राजा का यह आदेश रोडाराम के आने के पहले ही मालूम हो गया। उसने समझ लिया कि अब मे कैद कर लिया जाऊंगा। इसलिए वह इस समाचार को पाते ही भाग गया। जयपुर के राजा से यह बात छिपी न रही कि सेनापति नन्दराम के इन समस्त अत्याचारो का कारण और अपराधी बहुत कुछ राज्य का प्रधानमंत्री दौलत राम

है, जो नन्दराम का भाई हैं। दौलतराम से नन्दराम को सहायता मिलती थी। इसलिए जयपुर के राजा ने दौलत राम की सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली।

नवीन सेनापति रोडाराम दर्जी वंश में पैदा हुआ था। नन्दराम को कैद करने के लिए उसे आदेश मिला था और यह भी आज्ञा हुई थी कि उसके अधिकार में जितनी भी सम्पत्ति हो, उसे लेकर राज्य के अधिकार में दे दी जाए। सेनापति रोडाराम ने शेखावाटी पहुँचकर उसको कैद करने की चेष्टा की। लेकिन वह पहले से ही तिरोहित हो चुका था। नन्दराम ने राज्य का शत्रु बनकर भयानक अत्याचार आरम्भ किये। उसके अधिकार में अव भी आमेर की एक सेना थी। इसलिए उसने गॉवों और नगरों में लूटमार करके आग लगा देने का कार्य आरम्भ किया।

नन्दराम के इन भयानक अत्याचारों को देखकर नवीन सेनापति रोडाराम ने शेखावाटी के सामन्तों से सहायता की प्रार्थना की। परन्तु कोई भी शेखावत सामन्त उसकी सहायता के लिये तैयार न हुआ। क्योकि जयपुर राज्य के पूर्व सेनापति से उनको वहुत-कुछ शिक्षा मिल चुकी थी। शेखावाटी के सामन्तों के साथ इन बिगड़ी हुई परिस्थितियों में जयपुर के राजा की तरफ से संधि का प्रस्ताव हुआ, जिससे भविष्य में उनके राजनैतिक सम्बन्धों को निर्धारित किया जा सके। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और राजा जयपुर के साथ शेखावाटी के अधिकारियों और सामन्तों की उस समय जो सन्धि हुई, वह इस प्रकार है:-

1. सेनापति नन्दराम हलदिया ने तुई और ग्वाला आदि जिन नगरां पर अधिकार कर लिया है, वे उनके पूर्व अधिकारियों को लोटा दिये जायें।

2. शेखावत सामन्त अव तक जो कर देते रहे हैं, उनके सिवा आमेर के राजा को किसी से कोई कर लेने का अधिकार न होगा। सामन्त अपना कर स्वयं आमेर की राजधानी में भेजते रहेंगे।

3 किसी भी अवस्था में आमेर की सेना को शेखावाटी में प्रवेश करने का अधिकार न होगा। इसलिये कि जयपुर की सेना के कारण खण्डेला राज्य में रक्तपात हुआ है।

4. आवश्यकता पड़ने पर आमेर के राजा की सहायता के लिये अपनी सेनायें सामन्त भेजेगे। परन्तु वे सेनायें जव तक जयपुर राज्य की सहायता में रहेंगी, उनका सम्पूर्ण खर्च जयपुर राज्य की तरफ से दिया जाएगा।

ऊपर लिखी हुई सन्धि शेखावाटी के सामन्तों के साथ जयपुर राज्य के नवीन सेनापति रोडाराम ने की। यह सन्धि पत्र जयपुर के राजा के सामने रखा गया और उसने उसे स्वीकार किया। इस स्वीकृति के समय सभी शेखावत सामन्त आमेर की राजधानी में जाकर राजा से मिले और उन सामन्तो ने मिलकर दस हजार रुपये राजा को भेंट किये। इस सन्धि के अनुसार सामन्तों के साथ निर्धारित राजनीतिक सम्बन्धों पर राजा ने सन्तोष प्रकट किया और उसने सामन्तो से उनकी सहायता के लिये अनुरोध किया, जिससे नन्दराम पकड़ा जा सके।

जिन नगरों और गॉवों पर नन्दराम ने अधिकार कर लिया था, वे उनके अधिकारियों को वापस दे दिये गये। सेनापति रोडाराम के साथ जहां कहीं नन्दराम ने युद्ध किया, वहॉ शेखावत सामन्तो की सहायता पाकर रोडाराम ने नन्दराम को पराजित किया और वह परास्त होकर युद्ध क्षेत्र से भागा।

इसी बीच मे सामन्तो को अनुभव हुआ कि सन्धि के सम्बन्ध में आमेर के राजा का दृष्टिकोण शुद्ध नहीं है। शेखावाटी मे कई स्थानों पर रोडाराम की सेना ने वहाँ के सामन्तों की उपेक्षा करके अधिकार कर रखा था। इसलिये शेखावत सामन्तो ने संगठित होकर उन स्थानों से रोडाराम की सेना को भगा दिया।

इन्हीं दिनों मे आमेर के राजा ने खण्डेला के नरसिंह दास से बाकी कर वसूल करने के लिये अपना एक अधिकारी भेजा। नरसिंहदास ने उसे कुछ न दिया और अपमान के साथ उसने उसको अपने यहाँ से वापस कर दिया। उस अधिकारी के साथ होने वाले अपमान पूर्ण व्यवहारो को सुनकर आमेर के राजा ने आदेश दिया कि नरसिंह दास को कैद करके जयपुर मे लाया जाये।

राजा के आदेश के अनुसार आशाराम नामक एक सेनापति एक सेना लेकर खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। नरसिंह दास गोविन्दगढ़ में रहता था। आशाराम ने खण्डेला पहुँचकर नरसिंह और प्रतापसिंह, दोनो को कैद करने की चेष्टा की। नरसिंह अपने दुर्ग में सावधानी के साथ था। लेकिन प्रतापसिंह को जयपुर के सेनापति से अपने सम्बन्ध में कोई आशंका न थी। आशाराम ने भी राजनीति से काम लिया। उसके व्यवहारों से मालूम हुआ कि आमेर की सेना केवल नरसिंह के विरुद्ध खण्डेला में आयी है। आशाराम बिना किसी युद्ध के नरसिंह को कैद करना चाहता था और उसका कुछ ऐसा ही इरादा प्रतापसिंह के सम्बन्ध में भी था। लेकिन उसने इसको जाहिर नहीं होने दिया।

आशाराम ने मनोहरपुर के सामन्त को नरसिंह के पास उसके दुर्ग में भेजा और इस बात का वादा किया कि उसके सम्मान के विरुद्ध आमेर में कोई भी व्यवहार न होगा, इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मनोहरपुर के सामन्त के द्वारा नरसिंह ने आशाराम के इस सन्देश को सुना। उसने उस पर विश्वास कर लिया और गोविन्दगढ़ से निकलकर वह बाहर आ गया। आशाराम ने सम्मानपूर्वक उससे मिलकर बाकी कर के सम्बन्ध में बातचीत की और उसके सम्बन्ध में दोनों के बीच एक सन्धि पत्र लिखा जाने लगा। इस प्रकार की बातचीत दो दिन लगातार चलती रही। तीसरे दिन-जब नरसिंह को आशाराम से कोई आशंका न रह गयी थी तो आशाराम ने एकाएक उसके निवास स्थान को घेर लिया और उसको अपने साथ चलने के लिये कहा। नरसिंह के पास इस समय कोई दूसरा उपाय न था, वह विवश होकर अपने कुछ राजपूतों के साथ, आशाराम के साथ रवाना हुआ और वह उसके मुकाम पर पहुँच गया।

इसके बाद आशाराम ने अपने पास प्रतापसिंह को बुलाया, वह जानता था कि नरसिंह ने जयपुर राज्य के विरुद्ध व्यवहार किया है। इसलिये उसका परिणाम नरसिंह के लिये अच्छा नहीं है। इसी अवसर पर जब आशाराम ने उसे बुलाया तो प्रतापसिंह को इस बात का विश्वास हुआ कि इस समय निश्चय ही मैं आमेर के राजा से लाभ उठा सकता हूँ। इस प्रकार की बात सोच-समझकर प्रतापसिंह भी आशाराम के पास पहुँच गया। चतुर सेनापति आशाराम ने कुछ समय तक दोनो को धोखे में रखा और जिस समय वे दोनों भोजन कर रहे थे, आशाराम ने आदेश देकर अपनी सेना के द्वारा उन दोनों को कैद करा लिया। इसके बाद वे दोनों जंजीरो से बाँधे गये और एक बन्द सवारी गाडी मे बिठाकर पाँच सौ सैनिकों के संरक्षण में उनको जयुपर भेज दिया गया।

जयपुर पहुँचने पर नरसिंह और प्रतापसिंह-दोनों कारागार में बन्द कर दिये गये और राजा की आज्ञा से खण्डेला आमेर राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद वहाँ का प्रबन्ध करने के लिये पाँच सौ सैनिक खण्डेला में रखे गये। जो छोटे-छोटे सामन्त राजा खण्डेला की अधीनता में थे, उनको वहाँ का अधिकार बाँटकर उनसे ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लिये कि जिससे वे राज्य के विरुद्ध कभी विद्रोह न कर सकें। इस प्रकार खण्डेला राज्य पतित होकर पूर्ण रूप से जयपुर राज्य की अधीनता में आ गया।

□

अध्याय-60
जयपुर राज्य व शेखावाटी में युद्ध

सन् 1798 और 1799 ईसवी में दीनाराम बोहरा जयपुर का प्रधानमंत्री था। खण्डेला में आशाराम की सफलता को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और सिद्धानी सामन्तों से कर वसूल करने के लिए वह राजधानी से शेखावाटी के लिये रवाना हुआ। आशाराम की सेना के साथ जयपुर में दीनाराम की भेंट हुई। इसके बाद उसने सिद्धानी सामन्तों के नगर परशुरामपुर में पहुँच कर मुकाम किया और वहाँ से उसने समस्त सामन्तों के नाम पर कर अदा करने के लिए पत्र भेजे। इसके साथ-साथ उसने प्रत्येक सामन्त के यहाँ कर वसूल करने के लिए अश्वारोही सेनायें भेजी और उन सेनाओं के अधिकारियों को उसने आदेश दिया कि वे अलग-अलग सामन्तों के पास जाकर कर वसूल करें। उन सामन्तों को जो पत्र भेजे गये, उनमें यह भी लिखा गया कि कर देने में विलम्ब होने पर दण्ड निर्धारित धन अलग से वसूल किया जाएगा और जिन सामन्तों से कर वसूल न होगा, उनके विरुद्ध सैनिक आक्रमण होगा।

जयपुर के प्रधानमंत्री का इस प्रकार पत्र पाने पर समस्त सिद्धानी सामन्त अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उस पत्र को अपमान जनक समझकर सबके हस्ताक्षरों से एक पत्र प्रधानमंत्री के पास भेजा गया। उसमें लिखा गया कि हम लोगों के इस पत्र को पाकर यदि प्रधानमंत्री अपनी सेना के साथ झुंझुनूं तुरन्त न चला जाएगा तो उसका नतीजा बहुत खराब होगा। लेकिन यदि वह इस पत्र को पाते ही उसी समय झुंझुनूं चला गया तो यहाँ के सामन्तों से कर के जो दस हजार रुपये एकत्रित हुए हैं, वे तुरन्त उसे दे दिए जायेंगे।

इस पत्र में शेखावाटी के सभी सामन्तो ने हस्ताक्षर किये। परन्तु खण्डेला के कैदी राजा के भाई बाघसिंह ने उसमें अपने हस्ताक्षर नही किये। उसका कहना था कि संधि के बाद जिस प्रकार हम लोगों ने आमेर के राजा के साथ नेकियाँ की हैं और नन्दराम के अत्याचारो को दमन करने के लिए जिस प्रकार हम लोगो ने जयपुर की सेना का साथ दिया है, उन सब का बदला जयपुर राज्य से हमको अत्याचारों के रूप में मिला है। इसलिए ऐसे राजा के पास जो पत्र भेजा जा रहा है, उस पर मैं हस्ताक्षर नहीं करुंगा। क्योंकि हम सब लोगों के साथ जयपुर के राजा ने जो संधि की थी, उसका उसने पूर्ण रूप से उल्लंघन किया है। संधि के अनुसार कर वसूल करने के लिए राजा की सेनः को आने का अधिकार नहीं था। प्रधानमंत्री ने कर वसूल करने के लिए सामन्तों को जो पत्र भेजा है, वह पूर्ण रूप से अपमान जनक है।

बाघसिंह ने सामन्तों के उस पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये और वह जयपुर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी अवसर पर खेतड़ी के पॉच सौ राजपूत उसकी सहायता के लिए पहुॅच गये। बाघसिंह ने उन लोगो की मदद से सीकर और फतेहपुर

का कर वसूल किया और इस प्रकार जो धन एकत्रित हुआ, उससे उसने योरोप के प्रसिद्ध जार्ज थामस को अपने यहॉ सेनापति बनाकर नियुक्त किया। सेनापति थॉमस युद्ध में वहुत वुद्धिमान माना जाता था। उसने बाघसिंह की इस नियुक्ति को प्रसन्नता के साथ स्वीकारा और उसकी सेना का अधिकार अपने हाथों में लेकर जयपुर के साथ वह युद्ध की तैयारी करने लगा।

बाघसिंह और जार्ज थामस के अधिकार में जितनी सेना थी, उससे कई गुना बड़ी जयपुर की सेना बाघसिंह से युद्ध करने के लिए तैयार हुई। परन्तु जार्ज थामस ने इसकी कुछ भी परवाह न की। उसके साथ की सेना यद्यपि बहुत छोटी थी, परन्तु उसने युद्ध की पूरी शिक्षा पायी थी और इसलिए सेनापति थामस उस पर वहुत विश्वास करता था। जयपुर की एक विशाल सेना उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुई। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। अन्त में जयपुर की सेना कमजोर पड़ने लगी और उसका सेनापति रोडाराम भयभीत होकर युद्धस्थल से भाग गया। आमेर की सेना के पराजित होकर भागने पर जार्ज थामस ने शत्रुओं की बहुत-सी युद्ध सामग्री लेकर अपने अधिकार में कर ली।

रोडाराम की सेना के पराजित होने पर जयपुर में फिर से युद्ध की तैयारियां हुई। चौमूं के सामन्त रणजीत ने अपनी शक्तिशाली सेना को एकत्रित करके और जयपुर की सेना को साथ लेकर जार्ज थामस की सेना पर आक्रमण किया। उस समय दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ और अन्त मे रणजीत सिंह की विजय हुई। परन्तु वह बुरी तरह से घायल हुआ और उसके साथ के वहुत से शूरवीर राजपूत मारे गये। इस युद्ध में सॉंगारोत वंश के दो शक्तिशाली सामन्त वहादुर सिंह और पहाड़ सिंह भी भयानक रूप से घायल हुए। जार्ज थामस अपनी सेना के साथ परास्त होकर भाग गया।*

जयपुर के कारागार में खण्डेला के नरसिंह और प्रताप सिंह अव भी कैदी थे। जयपुर राज्य के विरुद्ध बाघसिंह को प्रयत्नशील सुन कर वे दोनों अपनी मुक्ति की आशा करने लगे। इन दिनों में उन दोनों ने छिपे तौर पर बाघसिंह के साथ पत्र व्यवहार किया और उन्होंने गुप्त रूप से सेनापति रोडाराम के पास ऐसा सन्देश भेजा कि जिससे वह बाघसिंह से मिल कर उसको अनुकूल बना सके। रोडाराम ने उस सन्देश के उत्तर में कहला भेजा कि अगर रायसलोत की शक्तिशाली सेना मेरे साथ आकर मिल जाये तो आपके प्रस्ताव के अनुसार मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

बाघसिंह और सेनापति रोडाराम के साथ खण्डेला के नरसिंह और प्रतापसिंह ने जो गुप्त परामर्श और पत्र-व्यवहार किया, उसके फलस्वरूप रोडाराम की बात को पूरा करने के लिए बाघसिंह को मौका दिया गया। रोडाराम राजनीतिज्ञ चतुर सेनापति था। वह समझता था कि शेखावाटी के सामन्तों में बाघसिंह ने अपने वल पौरूष द्वारा इन दिनों ख्याति प्राप्त की है, इसलिए यदि वह जयपुर राज्य के पक्ष मे कर लिया जाता है तो यह हमारी राजनीतिक चतुरता होगी। बाघसिंह उन दिनों में अपनी सेना के साथ दुर्ग में वने हुए महल में रहता था। उसने

---

* प्रसिद्ध लेखक फ्रेंकलिन ने जार्ज थामस का जीवन चरित्र लिखा है। उसमे उसने लिखा है कि उसका यह युद्ध जो राजपूतो के साथ हुआ था, उसमें राजपूतो की विजय कुछ विशेष कारण रखती थी, फिर भी जार्ज थामस ने राजपूतों की वहादुरी की प्रशंसा की थी।

अपने छोटे भाई लक्ष्मण सिंह को वहाँ पर अधिकारी बना कर रखा और स्वयं अपनी सेना के साथ जयपुर के सेनापति के पास जाकर उससे मिल गया।

कैदी प्रताप सिंह का लड़का हनुमन्त सिंह खण्डेला में था। उसने जब सुना कि बाघसिंह जयपुर की सेना के साथ मिल गया है तो उसने इस अवसर का लाभ उठा कर खण्डेला के दुर्ग पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने अपने राजपूत सैनिकों के साथ रात में चल कर खण्डेला के दुर्ग को घेर लिया और फिर मौका पाकर सुनसान रात में दुर्ग की दीवारों पर चढ़कर अपने सैनिकों के साथ उसने बड़ी सावधानी के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। वहाँ पर लक्ष्मणसिंह के साथ-साथ उसके सैनिकों को मार डाला गया और हनुमन्त सिंह ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया।

लक्ष्मण सिंह के मारे जाने का समाचार बाघसिंह को मिला। वह अपने साथ सेना लेकर खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। हनुमन्त सिंह अपने सैनिकों के साथ वहाँ के दुर्ग के भीतर मौजूद था। बाघसिंह ने वहाँ पहुँचकर दुर्ग पर गोलों की वर्षा आरम्भ की। हनुमन्त सिंह ने युवक लक्ष्मण सिंह की हत्या की थी। इसलिए खण्डेला के निवासी उससे बहुत अप्रसन्न हो गये थे। उन सबने बाघसिंह की सहायता की। खण्डेला की स्त्रियाँ भी इस अवसर पर बाघसिंह के पक्ष में अपने घरों से निकली। हनुमन्त सिंह और उसके सैनिकों ने बहुत समय तक दुर्ग के भीतर अपनी रक्षा की। लेकिन अन्त में संधि के लिए श्वेत झण्डा दिखाकर उन लोगों ने दुर्ग का फाटक खोल दिया। बाघसिंह ने अपने सैनिकों के साथ उसमें प्रवेश किया। उसने हनुमन्त सिंह पर आक्रमण करके अपने भाई का बदला लेने का निश्चय किया। लेकिन हनुमन्त सिंह दुर्ग के भीतर से पहले ही निकल गया था, इसलिए वह निराश हो गया।

इन्हीं दिनों में दीनाराम को जयपुर राज्य के मंत्री पद से उतार कर मानजीदास को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। रोडाराम अभी तक शेखावाटी में कर वसूल करने का काम कर रहा था। उसकी तरफ से एक ब्राह्मण इसके लिए नियुक्त किया गया। वह ब्राह्मण इस कार्य में बड़ा चतुर साबित हुआ और पहले वर्ष में ही उसने कर वसूल करने का इतना अधिक काम किया कि रोडाराम ने उसे अगले दो वर्षो का अधिकार भी दे दिया।

रोडाराम की तरफ से शेखावाटी में जो ब्राह्मण कर वसूल कर रहा था, उसके अधिकार में जयपुर की सेना थी। उस ब्राह्मण ने शेखावाटी के उन सामन्तों से भी बलपूर्वक कर वसूल किया, जो अभी तक स्वतंत्रतापूर्वक अपनी जागीरो में रहते थे। जिन लोगों ने कर नहीं दिया, उनके नगरों और दुर्गो पर आक्रमण करके उसने अधिकार कर लिया। जयपुर के राजा ने नरसिंह और प्रताप सिंह को अपने राज्य मे कैद करके रखा था और खण्डेला राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उनकी अधीनता में जो सामन्त थे, उनके ऊपर जयपुर के राजा ने किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं किया और उनसे वह नियमित रूप से कर लेता रहा। इस ब्राह्मण ने उन सामन्तों पर भी आक्रमण किया और उनकी जागीरों में उसने भयानक अत्याचार किये।

उस ब्राह्मण के इन अत्याचारों को देखकर खण्डेला के सभी रायसलोत सामन्त क्रोधित हो उठे और उन सब ने मिलकर उस ब्राह्मण पर आक्रमण करने की तैयारी की। इन्हीं दिनो मे जयपुर की कारागार से छिपे तौर पर नरसिह और प्रतापसिंह ने समाचार भेजा कि अब

हम दोनों के छूटने की कोई आशा नहीं है। समाचार को पाकर शेखावाटी के सभी सामन्त अत्यधिक क्रोधित हुए और इस प्रकार के अत्याचारों का वदला लेने के लिए वे लोग उत्तेजित हो उठे। सभी ने अपनी सेनाओं के साथ खण्डेला में उस ब्राह्मण पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हो गया।

उस ब्राह्मण के पास सात हजार सैनिकों की सेना थी। वह लड़कर पराजित हुई। सामन्तों ने उस ब्राह्मण को परास्त कर उसका खण्डेला नगर लूट लिया। ब्राह्मण वहॉ से अपने बचे हुये सैनिकों के साथ भाग गया।

उस ब्राह्मण को पराजित करने के बाद वहॉ के सामन्तों का उत्साह बढ़ गया। उत्तेजित अवस्था में वे सब अपनी सेनाओं के साथ जयपुर राज्य की तरफ बढ़े और वहाँ के ग्रामों तथा नगरों को लूटना आरम्भ किया। इस प्रकार लूटमार करते हुए वे लोग उस नगर में पहुँचे, जो जयपुर राज्य की बड़ी रानी के अधिकार में था। सामन्तों की सेनायें उस नगर का विनाश और विध्वंस करने लगी।

इस समाचार को सुनकर और क्रोधित होकर जयपुर के राजा ने उनको दमन करने के लिये एक नयी सेना राजधानी से भेजी। उस सेना के पहॅुचते ही दोनों ओर से भीषण संग्राम आरम्भ हुआ। इस युद्ध में सामन्त निर्बल पड़ने लगे। उस दशा में रानोली और कई एक दूसरी जागीरों के सामन्तों ने जयपुर के राजा के साथ सन्धि कर ली और उसकी अधीनता को स्वीकार किया। परन्तु रायसल की छोटी शाखा के सामन्तों ने जयपुर की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वे लोग इसके लिये किसी प्रकार तैयार न हुये और अपनी जागीरों को छोड़कर बीकानेर एवं मारवाड़ में जाकर रहने लगे। प्रतापसिंह के सजातीय बन्धु सूजावास के सामन्त संग्राम सिंह ने मारवाड़ में और बाघसिंह तथा सूर्यसिंह ने बीकानेर में जाकर आश्रय लिया। वहॉ के राजाओं ने सम्मानपूर्वक उनको स्थान दिया और उनके गुजारे के लिये उनको जागीरें दी गयीं। बहुत दिनों तक वहॉ पर रह कर उन लोगों ने अपनी शक्तियों का संगठन किया और संगठित होकर उन्होंने जयपुर राज्य के विध्वंस और विनाश का निश्चय किया।

निर्वासित सामन्त अपनी सेनायें लेकर संग्राम सिंह के नेतृत्व में जयपुर की तरफ रवाना हुये और आमेर के पास पहुँचकर वहॉ के ग्रामों और नगरों को लूटने लगे। उन्होंने जयपुर राज्य के दुर्गो पर आक्रमण किया और निर्दयता के साथ वहाँ के सैनिकों का संहार किया। इस प्रकार विध्वंस और विनाश करते हुए वे लोग आमेर के निकट खोह नगर में पहॅुच गये। वहॉ पर भी उन लोगों ने लूटमार की और वहाँ के समस्त अच्छे घोड़ों को अपनी सेना में ले गये।

संग्रामसिंह ने इन दिनों में अपनी शक्तियॉ सुदृढ बना ली थीं और उसे अव जयपुर राज्य का कोई भय न रह गया था। उसके अत्याचारो से जयपुर राज्य की प्रजा भयानक कष्टो में पड गयी। इस प्रकार के समाचार जयपुर के राजा के पास पहुँचे। राज्य की तरफ से लोगों ने वहॉ के राजा से इस लूटमार का जिक्र किया। उसे सुनकर संग्राम सिंह से राजा को भय पैदा हुआ और उसने बिसाऊ के सिद्धानी सामन्त श्यामसिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर संग्राम सिंह के पास सन्धि के लिये भेजा। संग्राम सिंह श्यामसिंह की बातो को सुनकर प्रभावित हुआ

और उसने भविष्य में इस प्रकार का कोई अनिष्ट न करने का निश्चय किया। साथ ही उसने श्यामसिंह के कहने पर जयपुर की राजधानी में आना और वहाँ के राजा के साथ भेंट करना भी स्वीकार कर लिया। इसके कई दिनों के बाद अपनी सेना लेकर संग्राम सिंह ने जयपुर नगर में प्रवेश किया। उसके वहाँ पहुँचने पर प्रकट रूप से किसी को कुछ कह सकने का साहस न हुआ, परन्तु प्रधानमंत्री मानजीदास के मनोभावों में संग्रामसिंह के विरुद्ध कुछ बातें पैदा होने लगीं।

जयपुर के राजा की तरफ से श्यामसिंह ने संग्रामसिंह के पास जाकर जो बातें की थीं, उनके फलस्वरूप संग्राम सिंह ने शत्रु की राजधानी में साहसपूर्वक प्रवेश किया था। ऐसे अवसर पर प्रधानमंत्री मानजीदास सोचने लगा कि इस अवसर का लाभ क्यों न उठाया जाये। यद्यपि वह जानता था कि यदि किसी प्रकार के षड़यंत्र के द्वारा संग्राम सिंह कैद किया गया तो राजा का यश कलंकित होगा, इसलिये ऐसा करना राजनीति के विरुद्ध है, फिर भी वह संग्राम सिंह को कैद करने के लिये किसी उपाय की खोज करने लगा। इसके कुछ घण्टों के बाद जयपुर के राजा को समाचार मिला कि संग्राम सिंह जयपुर को छोड़ कर तंवरावाटी चला गया है और तंवर तथा लाडखानी लोग भी उससे मिल गये हैं। उसने यह भी सुना कि संग्राम सिंह के अधिकार में इस समय एक हजार अश्वारोही राजपूत सैनिक हैं।

जयपुर से निकल कर चले जाने के बाद संग्राम सिंह ने अपनी सेना के साथ उस राज्य के ग्रामो और नगरों को फिर से लूटना आरम्भ किया। उनसे कर वसूल करने के लिये उसने दूत भेजे। जिन लोगों ने कर देने से इनकार किया, उनके सरदारों को उसने कैद कर लिया और कर मिल जाने के बाद उसने उनको छोड़ दिया। जिनसे कर नहीं वसूल हुआ, उनके ग्रामों और नगरों को लूटकर उनकी सम्पत्ति और सामग्री ऊँटों पर लाद कर वह अपने साथ ले चला।

इस प्रकार लूटमार करता हुआ संग्राम सिंह जयपुर की एक रानी के अधिकृत माधवपुर नगर में पहुँचा। वहाँ पर उसके मस्तक में एक गोली लगी, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसका शव रानोली मे लाकर जलाया गया। संग्राम सिंह के मारे जाने पर उसका लड़का उसके स्थान पर अधिकारी हुआ। वह अपने पिता की तरह तेजस्वी और शक्तिशाली था। उसने पिता का अनुकरण किया और जयपुर राज्य के ग्रामों और स्थानो को वह लूटने लगा। इसके बाद जयपुर के राजा ने उसके साथ संधि की और उसके पिता का सूजावास नगर उसको दे दिया। इसके पश्चात् लूट-मार बन्द हो गयी।

इन दिनो में राजा जगत सिंह आमेर के सिंहासन पर था और रामचन्द वहाँ का प्रधान मंत्री था। पोकरण के सामन्त सवाई सिंह ने बालक धौंकल सिंह के अधिकार को लेकर जो संघर्ष पैदा किया था, वह चल रहा था। प्रधानमंत्री रामचन्द ने इस बात की पूरी कोशिश की थी कि जगतसिंह का विवाह कृष्णकुमारी के साथ हो जाये। इस समय उसने राजनीति से काम लिया। उसने शेखावाटी के असन्तुष्ट सामन्तों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लेना बहुत जरूरी समझा। इसके लिये उसने सबसे पहले अपने भतीजे कृपाराम को शेखावाटी के सामन्तों के पास भेजा और कृपाराम ने अपनी सहायता के लिये शेखावाटी पहुँचकर वहाँ के एक

सामन्त कृष्ण सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाया। उन सामन्तों के साथ जयपुर के राजा की तरफ से जो बातचीत आरम्भ हुई, उसके फलस्वरूप शेखावाटी के सामन्त अपनी सेनाओं के साथ उदयपुर के रास्ते में एकत्रित होने लगे।

शेखावाटी के सामन्तों ने अनुभव किया कि नरसिंह और प्रतापसिंह को जयपुर की कैद से निकालने का यह एक अच्छा अवसर है। इसलिये उन लोगों ने उन दोनों की मुक्ति के लिये कृपाराम के सामने प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव के साथ-साथ अन्यान्य वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों पर बहुत समय तक परामर्श होने के वाद कृपाराम और शेखावाटी के सामन्तों के बीच एक नवीन राजनीतिक संधि का होना निश्चय हुआ। उस सन्धि के अनुसार जो अनेक बातें तय हुईं, उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:-

1. इस सन्धि के अनुसार खण्डेला के अधिकारी नरसिंह और प्रतापसिंह को तुरन्त मुक्ति दी जाएगी।

2 खण्डेला राज्य का अधिकार पूर्ववत् नरसिंह और प्रतापसिंह को लौटा दिया जाएगा।

3. शेखावत सामन्त जयपुर राज्य को अपना कर देते रहेंगे और उस अवस्था में सामन्तों के शासन में हस्तक्षेप करने का जयपुर को कोई अधिकार न होगा।

इस प्रकार की सभी आवश्यक बातों का निर्णय करके जो सन्धि पत्र लिख कर तैयार किया गया, उस पर सभी सामन्तों के हस्ताक्षर हो जाने के वाद कृपाराम और कृष्णसिंह ने जयपुर की राजधानी में जाकर राजा जगतसिंह के सामने उस संधि पत्र को रखा। राजा जगत सिंह ने उसे स्वीकार किया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। इसी समय शेखावाटी के सामन्तों ने जयपुर राज्य की सहायता के लिये दस हजार सैनिकों को एकत्रित करके देना मन्जूर किया। राजा जगत सिंह ने उस समय कहा कि सामन्तों की यह सेना हमारे राज्य के काम से जब तक जयुपर में रहेगी, उसका समस्त व्यय इस राज्य की तरफ से दिया जायेगा। इस संधि के सम्पन्न हो जाने के बाद दोनों पक्षों की तरफ से सन्तोप प्रकट किया गया।

पोकरण का सामन्त सवाई सिंह अपने साथ धौंकल सिंह को लेकर पहले ही खेतड़ी नामक स्थान पर चला गया था। जयपुर के राजा के साथ शेखावाटी के सामन्तों की सन्धि हो जाने पर पोकरण के सामन्त का भतीजा श्याम सिंह खेतड़ी में गया और कृपाराम के संरक्षण से धौंकलसिंह को लेकर शेखावत सामन्तों के पास पहुँचा। वहाँ पर स्वर्गीय राजा प्रताप सिंह की लड़की और मारवाड़ के राजा भीम सिंह की विधवा रानी आनन्दी कुवरि से उसकी भेंट हुई। रानी आनन्दी कुंवरि ने बालक धौंकल सिंह को गोद लेकर उसे दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। उस समय वहाँ पर रानी के राज्य के अनेक कर्मचारी और प्रमुख व्यक्ति मौजूद थे। इसके बाद सब लोग जयपुर की राजधानी में चले आये। वहाँ पर एक विशाल सेना मारवाड़ पर आक्रमण करने की तैयारी कर रही थी।

यह सेना जयपुर की राजधानी से रवाना होकर खण्डेला से बीस मील दूर खाटू नामक स्थान पर पहुँची और वहाँ पर ठहर कर वह दूसरी सेनाओं के आने की प्रतीक्षा करने लगी। खण्डेला के नरसिंह और प्रतापसिंह कैंद से छूट चुके थे। वे दोनों भी अपनी सेनाओं के साथ आकर वहाँ पर मिले। खण्डेला के भूतपूर्व राजा को जो कई ग्राम दिये गए थे और

जिनको लेकर वह अकेला रहा करता था, राजा वृन्दावन दास भी अपनी वृद्धावस्था में युद्ध करने के लिये इस सेना में आकर मिल गया था। राजा जगत सिंह की सहायता में इस समय एक विशाल सेना इस स्थान पर एकत्रित हो चुकी थी। रायसलोत, सिद्धानी, भोजानी और लाडखानी सेनाओ के साथ शेखावत सामन्तो की सेनायें भी मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये जगत सिंह के अधिकार में आ गयी थी। कृष्णकुमारी के विवाह का प्रश्न लेकर मारवाड़ के राजा मानसिंह के साथ जगतसिंह का जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में लिखा जा चुका है। इसलिये यहाँ पर फिर से उसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इस युद्ध में शेखावत सामन्तो ने अपनी जिस वीरता का प्रदर्शन किया था, जगतसिंह के युद्ध से भाग जाने के कारण वह सब बेकार हो गया। इस युद्ध में खण्डेला का राजा नरसिंह और वृद्ध वृन्दावनदास-दोनों ही मारे गये।

नरसिंह के वाद उसका लड़का अभय सिंह अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ। राजा जगत सिंह ने अभय सिंह के साथ ऑखें बदलीं। उसने अभय सिंह को उसके पिता के राज्य का अधिकार देने से इनकार कर दिया। इस दशा में अभय सिंह माचेड़ी के राजा वख्तावर सिंह के पास चला गया। उसने भी अभय सिंह के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। इसलिये अपना-अपना अनुभव करके अभयसिंह एक सप्ताह में माचेडी से चला गया। इन दिनो में मराठा सेनापति वापू सिंधिया दौसा नामक स्थान पर रहता था। खण्डेला का प्रतापसिंह अपने पुत्र के साथ सिंधिया के पास पहुँचा। इन्हीं दिनों मे हनुमन्त सिंह ने गोविन्दगढ़ पर अधिकार करने के लिये फिर से चेष्टा की। उसने अपने साठ शूरवीर सैनिकों को सायंकाल एक नदी के किनारे छिपा कर रखा और आधी रात के समय पहाड़ी रास्ते से उसने एक-एक को दुर्ग की तरफ रवाना किया। उन सैनिकों ने दुर्ग की दीवारों पर चढ़ कर वहॉ की रक्षक सेना का संहार करना आरम्भ किया। दुर्ग के सैनिक सजग और सावधान होकर युद्ध करने लगे। उस युद्ध में हनुमन्तसिंह की विजय हुई। दुर्ग के बचे हुए सैनिक भाग गये। उनके चले जाने पर हनुमन्तसिंह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

हनुमन्तसिंह ने कई सप्ताह तक दुर्ग में रहकर दो हजार सैनिकों का संगठन किया और इसके वाद उसने जयपुर के राजा के साथ युद्ध करने का इरादा किया। इस बीच में उसने खण्डेला के आसपास के अनेक स्थानो पर अधिकार कर लिया। वहॉ पर जयपुर की तरफ से जो सेना रहती थी, वह भाग गयी। उन स्थानों की रक्षा के लिये खुशियाली राम नामक एक अधिकारी दरोगा जयपुर की तरफ से नियुक्त था। खण्डेला में इस समय उसी का शासन था। वह भाग गया और जयपुर के राजा के पास पहुँचकर उसने सब समाचार सुनाया। वह दरोगा वड़ा पड़यंत्रकारी था। खण्डेला के दुर्ग में एक सौ सैनिक रखने का जयपुर की तरफ से आदेश था। खुशहाली राम उतने सैनिको के स्थान पर केवल तीस सैनिक रखता था और बाकी सैनिकों के वेतन को लेकर वह स्वय अधिकारी बन जाता था। उसकी इस चालाकी का लाभ हनुमन्तसिह ने उठाया और उसके तीस सैनिको को परास्त करके उसने उस दुर्ग पर आसानी के साथ अधिकार कर लिया।

दारोगा खुशहाली राम के द्वारा खण्डेला के दुर्ग का समाचार सुनकर जयपुर का राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने वहॉ पर फिर से अधिकार करने के लिये रतन चन्द नामक

एक सेनापति के अधिकार में दो पैदल सेनायें भेजीं और एक गोलन्दाज भी उनके साथ रवाना हुआ। उन सबके साथ खुशहाली राम को रवाना करके जयपुर के राजा ने उससे कहा- "यदि तुम अब भी हनुमन्तसिंह को परास्त न कर सकोगे तो तुमको इसके लिये दण्ड दिया जायेगा।"

जयपुर की सेना को लेकर खुशहाली राम खण्डेला की तरफ चला। वहाँ पहुँचकर जयपुर की सेना ने हनुमन्तसिंह के सैनिकों पर आक्रमण किया। कुछ समय तक युद्ध होने के बाद खुशहाली राम अपनी सेना के साथ पराजित हुआ। वह जयपुर की सेना को लेकर युद्ध-स्थल से हट गया। इस लड़ाई में हनुमन्तसिंह भयानक रूप से घायल हो गया था। जयपुर की सेना के हट जाने से वह अपनी सेना के साथ दुर्ग में चला गया। इसके बाद खुशहाली राम ने उस दुर्ग को घेर लिया। फिर से युद्ध आरम्भ हो गया। हनुमन्तसिंह ने घायल होने पर भी शत्रु-सेना के तीस आदमियों का संहार किया। इस समय पर दुर्ग को जीत सकना खुशहाली राम के लिये सम्भव न था। परन्तु दुर्ग के भीतर पानी का अभाव हो जाने के कारण हनुमन्तसिंह और उसके सैनिकों को पानी का भयानक कष्ट पहुँचा। इस दशा में हनुमन्तसिंह को आत्म-समर्पण करने के लिये मजबूर होना पड़ा। लेकिन इसके पहले ही राजा जयपुर की तरफ से खुशहाली राम ने हनुमन्तसिंह को पाँच ग्रामों का अधिकार देने के लिये प्रस्ताव किया। हनुमन्तसिंह ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पाँच विशाल ग्राम लेकर उसने दुर्ग छोड़ दिया।

इन दिनों में जयपुर राज्य के दरबार में एक दूसरा परिवर्तन हुआ। वहाँ के राजा प्रताप सिंह ने खुशहाली राम बोहरा को उसके अनेक अपराधों के कारण आजन्म कैद की सजा दी थी और आदेश दिया था कि भविष्य में उसके वंश का कोई भी मनुष्य कभी मंत्री पद पर न रखा जाये, इस आदेश के अनुसार खुशहाली राम बोहरा को कैद करके जयपुर की कारागार में रखा गया था। परन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण वह छोड़ दिया गया और उसके बाद वह फिर मंत्री पद पर नियुक्त हुआ। उन दिनो में शेखावाटी के सामन्तों ने अपने प्रतिनिधियों को भेजकर प्रार्थना की कि हमारे पूर्वजों के अधिकार हमको दे दिये जायें। खुशहाली राम ने उन सामन्तों की प्रार्थना को राजा के सामने रखा और सामन्तों का पक्ष लेकर राजा से प्रार्थना करते हुए कहा-"सामन्त किसी भी राज्य के स्तम्भ होते हैं। उनके सन्तुष्ट रहने से राज्य का सदा कल्याण होता है। यह बात सही है कि शेखावत सामन्तों ने बहुत समय से अन्यायपूर्ण कार्य किये हैं और उनके अत्याचारों से राज्य में अशान्ति पैदा हुई है। परन्तु राज्य पर कभी किसी प्रकार की विपदा आने पर सामन्तों ने राज्य का पक्ष लेकर युद्ध भी किया है। मारवाड़ के युद्ध में जयपुर की सेना के साथ शेखावाटी के सामन्तो ने दस हजार सैनिकों की शक्तिशाली सेना भेजी थी। सामन्तों के इस प्रकार के उपकार भी राज्य के ऊपर हैं। यदि इन सामन्तों का भय न रहे तो मराठों का दल कभी भी इस राज्य में आकर अत्याचार कर सकता है। इसलिये हमारी समझ में इन सामन्तों को सन्तुष्ट रखना हमारा कर्त्तव्य है।"

खुशहाली राम बोहरा की इन बातों को सुनकर राजा ने कहा-"जो आप मुनासिब समझें, इन सामन्तों के सम्बन्ध में करे।"

राजा का आदेश पाकर खुशहाली राम ने शेखावत सामन्तों के साथ एक नयी सन्धि की। उसमे यह निश्चय हुआ कि रायसलोत सामन्त वर्ष मे साठ हजार रुपये जयपुर राज्य को

कर में दिया करें और इस समय चालीस हजार रुपये भेंट में दें। सन्धि की इन शर्तों को सामन्तों ने स्वीकार कर लिया। इसलिये खण्डेला नगर और उसके अधिकार की दूसरी जागीरे उनके वारिसों को दी गयीं। इस तरह अभयसिंह और प्रतापसिंह को उनके पिता के अधिकार फिर से खण्डेला राज्य में मिल गये।

इन सामन्तों के साथ जयपुर की जो सन्धि हुई थी, उसे स्वीकार करके चालीस हजार रुपये सामन्तों ने राजा को भेट में दे दिये और उसके बाद शासन की जो सनदें सामन्तों को दी गयीं, उन पर प्रधानमंत्री और राजा के हस्ताक्षर हो चुके थे। परन्तु राज्य की तरफ से नागा लोगों की जो सेना खण्डेला के दुर्ग की रक्षा में थी, वह अभयसिंह और प्रतापसिंह को खण्डेला के अधिकार देने के लिये तैयार न हुई। यह देखकर हनुमन्तसिंह को सन्देह हुआ और वह सोचने लगा कि खुशहाली राम बोहरा ने धोखा देकर हम लोगो से चालीस हजार रुपये ले लिये हैं। उसने गम्भीर होकर खण्डेला के अभयसिंह और प्रतापसिंह से पूछा:''यदि मैं जयपुर के इन सैनिकों से लड़कर अधिकार लेने की कोशिश करूँ तो आप लोग कितने सैनिक देकर मेरी सहायता करेंगे?''

अभय सिंह ओर प्रतापसिंह के अधिकार में इस समय पॉच सौ सैनिक थे। अभय सिंह और प्रतापसिंह की अनुमति लेकर हनुमन्त सिंह ने उनमें से तेजस्वी और शूरवीर राजपूतो को अपने साथ लिया और वह दुर्ग के द्वार पर पहुॅच गया। उसने अपने आपको छिपाकर दुर्ग के भीतर जो नागा लोगों की सेना थी, उनके अधिकारी के पास सन्देश भेजा- ''में हनुमन्त सिंह का दूत हूॅ। आपके पास कुछ परामर्श करने के लिये मैं भेजा गया हूॅ। इसलिये मुझे अपने साथियों को लेकर आपके पास आने की आज्ञा दी जाये।''

दुर्ग के अधिकारी ने यह सन्देश पाकर उसे आने के लिये आदेश दे दिया।

हनुमन्त सिंह ने अपने बीस सशस्त्र सैनिकों के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। उनके पीछे उसके और भी बीस सैनिक वहॉ पर पहुॅच गये। इनके भीतर पहुॅच जाने के बाद अभय सिं ह और प्रताप सिंह की सेना दुर्ग के फाटक पर आ गयी। हनुमन्त सिंह ने नागा सैनिको के सरदार को अपना सही परिचय देकर कहा:''जयपुर के राजा और वहॉ के राजमंत्री के हस्ताक्षरो के साथ यहॉ के शासन की सनद हमारे पास है। इसलिए यदि आप लोग तुरन्त इस दुर्ग को छोड़कर न चले जायेगे तो आप लोगो का एक भी सैनिक यहॉ पर जीवित न रहेगा।''

हनुमन्त सिंह के इन शब्दों को सुनकर दुर्ग का अध्यक्ष भयभीत हो उठा और वह अपने सैनिको को लेकर दुर्ग से चला गया। उन सबके निकल जाने के बाद अभय सिंह और प्रताप सिह ने फिर से अपने पिता के राज्य पर अधिकार प्राप्त किया और उस समय से हनुमन्त सिंह के साथ उनका कोई वैर-विरोध बाकी न रहा।

इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद जयपुर के राजा को समाचार मिला कि पठान सेनापति अमीर खॉ उसके राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है, यह सुनकर उसने अमीर खॉ का दमन करने का प्रयत्न किया। राजा जगत सिंह ने राज्य के सभी सामन्तो के पास सन्देश भेजे और उनको सेनाओ के साथ अपनी राजधानी बुलाया। मोहम्मदशाह खॉ अमीर खॉ का सेनापति था और वह धोमगढ में रहता था। राजा जगत सिंह के संदेश के अनुसार

सभी सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर आमेर की राजधानी में आ गये। राजा जगत सिंह ने राजधानी में एकत्रित सेनाओं का नेतृत्व दूनी के राव चाँदसिंह को सौंपा और राव चाँदसिंह उस विशाल सेना को लेकर आमेर से रवाना हुआ। उसने धोमगढ़ पहुँचकर वहाँ के दुर्ग को घेर लिया।

इसके वाद ही एक दूसरी घटना घट गयी। जयपुर राज्य के पक्ष में जो सामन्तों की सेनाये आयी थीं, उनमें से एक दल ने टोंक के अन्तर्गत एक नगर पर आक्रमण किया और उसको लूट लिया। उस नगर में गोगावत वंशी एक आदमी मारा गया और आक्रमणकारी दल ने उसकी भी सम्पत्ति लूट ली। जो आदमी मारा गया था, उसका लड़का गोगावत वंश के प्रधान राव चाँदसिंह के पास गया और उसने सव कुछ वताकर उससे सहायता माँगी। चाँदसिंह ने उसकी सहायता में एक सेना भेजी। उसने अपनी सेना को आदेश दिया कि आक्रमणकारी दल ने जो लूट की है, उस पर अधिकार कर लिया जाये और आक्रमणकारी दल वहाँ से कुछ ले न जा सके। यह कह कर उसने अपनी सेना को आने वाले लड़के के साथ भेजा।

राव चाँदसिंह की सेना को आक्रमणकारी दल लूटी हुई सम्पत्ति देने के लिये राजी नहीं हुआ। यह सुनकर राव चॉदसिंह को वहुत क्रोध मालूम हुआ और उसने आक्रमणकारी दल के साथ युद्ध करने के लिए एक वड़ी सेना तैयार की। इस प्रकार शेखावत और गोगावत लोगों में युद्ध की तैयारियां होने लगीं। वे लोग अमीर खॉ को दमन करने की वात भूल गए और आपस में एक दूसरे का विनाश करने के लिए तैयार हो गये। शेखावत सामन्तों की सेनाएँ राव चाँदसिंह के साथ युद्ध करने के लिये रवाना हुईं। चॉदसिंह स्वयं इसके लिये पहले से ही तैयार हो चुका था। परिणाम यह हुआ कि दोनों तरफ से युद्ध की आग भड़की।

इस आपसी विद्रोह में केवल सीकर का सामन्त तटस्थ था। इस युद्ध के शुरू होने के पहले खंगारोत वंश के एक सरदार ने मध्यस्थ होकर इस वात की कोशिश की कि ऐसे मौके पर कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिये, जिससे दोनों पक्षों के सम्मान की रक्षा हो सके। खण्डेला राज्य की सेना ने गोगावत लोगों की सम्पत्ति लूटी है और उसे वे अपने राज्य में ले गये हैं। लेकिन यदि वे लोग उस सम्पत्ति और सामग्री को प्रधान सेनापति के पास भेज दें तो दोनों तरफ का सम्मान कायम रह सकता है। उसके इस निर्णय को शेखावत लोगों ने स्वीकार कर लिया और उस समय जो·युद्ध होने जा रहा था,वह खत्म हो गया। परन्तु इससे राव चाँदसिंह को सन्तोष न मिला। आपसी विनाश से उन लोगो की रक्षा हुई। परन्तु उसका दुष्परिणाम यह निकला कि आपसी सहयोग की भावना छिन्न-भिन्न हो गयी और उन सव ने भीमगढ़ पर जो घेरा डाला था, उसे छोड़कर सभी सामन्त अपने-अपने नगरो को चले गये।

सीकर का सामन्त लक्ष्मण सिंह आपसी विद्रोह में किसी तरफ शामिल नहीं हुआ था। वह पहले से खण्डेला पर अधिकार करने की वात सोच रहा था। समय का उसने लाभ उठाने की कोशिश की। वह तेजी के साथ सीकर पहुँच गया और सीसोह नामक स्थान को उसने जाकर घेर लिया। किसी प्रकार वहाँ पर उसका अधिकार हो गया। पठान सेनापति के विरुद्ध युद्ध करने के लिये जयपुर की जो सेनाएँ गयीं थीं। उसमे एक सीकर का सामन्त भी था। इस समय आपसी विद्रोह का लाभ उठाकर वह किसी प्रकार खण्डेला का शासन प्राप्त करना

चाहता था। इसलिये उसने पठान सेनापति को दो लाख रुपये देने का वादा करके उसे अपनी सहायता के लिए बुलाया। मन्नू और महताव खाँ दो पठान सेनापति अपनी फौज लेकर सीकर पहुँच गये। वहाँ के सामन्त लक्ष्मण सिंह ने पठानों की सेना के आ जाने पर खण्डेला पर आक्रमण करने की तैयारी की। यह समाचार हनुमन्तसिंह ने सुना। उसने अभयसिंह और प्रतापसिंह के स्वार्थों की रक्षा करने के लिए पठान सेनापति महताव खाँ को पचास हजार रुपये देने का वादा किया और इसके वदले में खण्डेला जाने और वहाँ पर सीकर का पक्ष लेकर युद्ध करने से उसने उसको रोका। लेकिन पठान सेनापति ने हनुमन्त सिंह के दिये गये प्रलोभन की परवाह न की और वह खुलकर लक्ष्मण सिंह के साथ हो गया।

यह देखकर हनुमन्त सिंह को पठान सेनापति महताव खाँ पर बहुत क्रोध मालूम हुआ और वह खण्डेला की रक्षा करने के लिये युद्ध की तैयारी करने लगा। पठानों की सेना को साथ लेकर लक्ष्मण सिंह ने पहले रेवासो और कुछ दूसरे नगरों पर अधिकार किया और इसके वाद अपनी विशाल सेनाओं के साथ खण्डेला नगर पर आक्रमण करने के लिए आगे वढ़ा। दूसरी तरफ हनुमन्त सिंह ने खण्डेला में रह कर वहाँ से दूरवर्ती कोटा के दुर्ग में खाने-पीने की सामग्री का प्रवन्ध किया। जव उसने सुना कि लक्ष्मण सिंह और पठानों की सेना खण्डेला नगर में आ गयी है तो वह अपने सैनिकों के साथ दुर्ग से निकला और उसने एक साथ शत्रुओं पर भयानक आक्रमण किया। उसके इस अचानक आक्रमण से शत्रु के वहुत से सैनिक मारे गये। इसके वाद हनुमन्तसिंह अपने सैनिकों को लेकर कोटा के दुर्ग में चला गया। वहाँ पर जाकर वह शत्रु सेना का संहार करने के लिये तरह-तरह के उपाय सोचने लगा।

सामन्त लक्ष्मण सिंह के सीकर की जागीर खण्डेला राज्य की अधीनता में थी। इसलिए लक्ष्मण सिंह के खण्डेला पर आक्रमण करने से वहाँ के सभी सामन्त वहुत क्रोधित हुए और उनमें से कई सामन्तों ने अभय सिंह और प्रतापसिंह की सहायता करने का निश्चय किया। लक्ष्मण सिंह के पास धन की कमी न थी। उसने धन के वल पर ही पठान सेना की सहायता प्राप्त की थी और इस समय जो सामन्त अभय सिंह और प्रतापसिंह की सहायता के लिये तैयार हुए उनको भी उसने धमकियाँ देकर अपने पक्ष में कर लिया। यह देखकर दूसरे सामन्त भी चुपचाप हो गये और जो लोग अभयसिंह एवं प्रतापसिंह की सहायता करना चाहते थे, उन्होंने तटस्थ रहने में अपना कल्याण समझा। इन परिस्थितियों में भी कुछ सामन्तों ने जयपुर के राजा से प्रार्थना की कि सीकर के सामन्त लक्ष्मण सिंह का खण्डेला पर आक्रमण करना वहुत अन्यायपूर्ण है, परन्तु उनकी उस प्रार्थना का जयपुर के राजा पर कोई प्रभाव न पड़ा। बल्कि वहाँ के राजा ने यह भी कहा कि खण्डेला के अभय सिंह और प्रतापसिंह ने यदि भीमगढ़ पर किये गये आक्रमण के दिनों में गोगावतों के नगर को लूटा न होता तो खण्डेला पर इस प्रकार की आपत्ति कभी न आती और पठान सेना को हम लोगों ने स्वयं परास्त किया होता।

हनुमन्त सिंह कोटा के दुर्ग मे पहुँच गया था। उसके साथ कई सौ शूरवीर सैनिक थे। लक्ष्मण सिंह ने खण्डेला नगर पर अधिकार करके कोटा के दुर्ग को घेर लिया। हनुमन्त सिंह उस दुर्ग के भीतर रह कर तीन महीने तक शत्रुओं के साथ युद्ध करता रहा। इसके वाद पठान सेना का आक्रमण जोर पकड़ने लगा। उस समय हनुमन्त सिंह के सैनिकों ने उसको इस दुर्ग को छोड़कर खण्डेला के दुर्ग में चलने की सलाह दी। परन्तु हनुमन्त सिंह ने उसे स्वीकार

नहीं किया और उसने अपने सैनिकों से कहा- "शत्रु की सेना ने जव खण्डेला नगर पर अधिकार कर लिया है तो वहाँ के दुर्ग में जाना किसी प्रकार वुद्धिमानी की वात नहीं हो सकती।"

हनुमन्त सिंह की इस वात को सुनकर उसके साथ के सैनिक चुप हो गये। इसी समय हनुमन्त सिंह ने अपने सैनिकों से फिर कहा: "हम सव लोग मिलकर इस वात की प्रतिज्ञा करें कि शत्रुओं का संहार करते हुए हम लोग अपने प्राणों की वलि देंगे।"

हनुमन्त सिंह के इन तेजस्वी वाक्यों को सुनकर उसके सैनिक प्रोत्साहित हो उठे। इसके वाद अपने समस्त सैनिकों को लेकर हनुमन्त सिंह आवेश में दुर्ग से वाहर निकला और उसने शत्रुओं पर भीषण रूप से आक्रमण किया। उसके इस आक्रमण से शत्रु की सेनायें परास्त हो गयीं। इसी समय हनुमन्त सिंह ने वाहरी दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया, जो शत्रुओं के हाथों में चला गया था। शत्रु की भागी हुई सेना ने लौटकर फिर से युद्ध आरम्भ किया और प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक दोनों तरफ से भयानक युद्ध होता रहा। हनुमन्त सिंह ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर एक वार फिर शत्रुओं का संहार किया। शत्रु सेना के पैर उखड़ गये। लक्ष्मण सिंह के साथ जो सेनायें आयी थीं, वे युद्ध छोड़कर भागी। हनुमन्त सिंह ने शत्रु की सेनाओं का पीछा किया। उस समय एकाएक शत्रु की एक गोली इस प्रकार उसके लगी कि वह तुरन्त गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

हनुमन्त सिंह के मारे जाने पर शत्रुओं की विजय हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल हनुमन्त सिंह का अन्तिम संस्कार करने और वायल सैनिकों को ले जाने के लिए लक्ष्मण सिंह से कुछ समय तक शांति रखने की प्रार्थना की गयी। लक्ष्मण सिंह ने उसे स्वीकार कर लिया और इसी मौके पर लक्ष्मण सिंह की तरफ से अभय सिंह और प्रतापसिंह के सामने संधि का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। लेकिन अभयसिंह और प्रतापसिंह ने उसको स्वीकार नहीं किया। हनुमन्त सिंह के मारे जाने पर उसके वचे हुए सैनिक फिर से दुर्ग में चले गये थे। उनके खाने के लिए उदय सिंह के सामन्त ने अपने सैनिकों के द्वारा भोजन की सामग्री उस दुर्ग में भेजी। खेतड़ी का सामन्त इस मौके पर जयपुर में था। इसलिये वह हनुमन्तसिंह की कोई सहायता न कर सका। लेकिन उसने अपने लड़के को आदेश दिया था कि हमारी अनुपस्थिति में विसाऊ के सामन्त की सलाह से काम करना, परन्तु विसाऊ के सामन्त ने लक्ष्मण सिंह से धन लेकर उसी का समर्थन किया था।

हनुमन्त सिंह के वचे हुए सैनिक दुर्ग में पहुँच गये थे। वहाँ पर वे वाजरे की रोटियाँ खाकर पाँच सप्ताह तक दुर्ग की रक्षा करते रहे। इसके वाद उनके खाने-पीने का कोई प्रवन्ध न हो सका, जिससे वे आत्म-समर्पण करने का विचार करने लगे। इसी मौके पर लक्ष्मण सिंह ने अभय सिंह और प्रतापसिंह को दस नगरों का अधिकार देने के लिये प्रस्ताव किया, लकिन अभय सिंह ने मन्जूर नहीं किया। प्रताप सिंह ने लक्ष्मण सिंह से पाँच नगर लेकर युद्ध समाप्त किया। हनुमन्त सिंह के जो सैनिक अभी तक दुर्ग में थे, उन्होंने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार युद्ध समाप्त हो गया। इसके कुछ दिनों वाद लक्ष्मण सिंह ने प्रताप सिंह को दिये हुए पाँचों नगरों पर अधिकार कर लिया। उसके वाद अभयसिंह और प्रताप सिंह झुंझुनूं नामक स्थान पर चले गये और वड़ी गरीवी के साथ अपने दिन व्यतीत करने लगे। उन दिनों में उनकी

सहायता के लिये सिद्धानी के सामन्तों ने कुछ धन एकत्रित किया और उस धन से पाँच रुपये प्रतिदिन के हिसाब से उनको दिये जाने लगे।

सन् 1814 ईसवी में शिवनारायण मिश्र जयपुर का प्रधानमंत्री था। उसी वर्ष पठानों के सरदार अमीर खॉ ने जयपुर के राजा से नौ लाख रुपये की मॉग की। पॉच लाख रुपये जयपुर के खजाने से और शेप चार लाख रुपये सिद्धानी के सामन्तों से-कुल नौ लाख रुपये की मॉग अमीर खॉ की तरफ से हुई। जयपुर के राजा ने प्रधानमंत्री शिवनारायण मिश्र से इस विषय में परामर्श किया। जयपुर के खजाने की परिस्थिति ऐसी न थी कि जिससे अमीर खॉ को नौ लाख रुपये दिये जा सकते। इसलिए प्रधानमंत्री शिवनारायण ने लक्ष्मणसिंह से इस रकम को वसूल करने की आशा की। सीकर के सामन्त लक्ष्मणसिंह ने जयपुर की अवहेलना करके खण्डेला पर आक्रमण किया था और अमीर खॉ की सहायता से उसने वहॉ पर अधिकार कर लिया था। लेकिन जयपुर के राजा से उसको अभी तक खण्डेला के शासन की सनद न मिली थी। इस सनद को प्राप्त करने के लिए लक्ष्मण सिंह ने कई बार चेष्टा की थी। परन्तु सनद प्राप्त करने में वह असफल रहा था।

प्रधान मंत्री शिवनारायण मिश्र ने इस समय सनद के नाम पर लक्ष्मण सिंह से इस लम्बी रकम को लेने का प्रयत्न किया। उसने अपना दूत भेजकर लक्ष्मण सिंह से प्रस्ताव किया कि यदि वह स्वय पॉच लाख रुपये दे और सिद्धानी के सामन्तों से चार लाख रुपये एकत्रित कर के कुल नौ लाख रुपये जयपुर राज्य की तरफ से अमीर खॉ के पास पहुँचा दे तो उसको खण्डेला के शासन की सनद दे दी जायेगी। जयपुर के दूत ने लक्ष्मण सिंह के पास जाकर अपने प्रधानमंत्री का प्रस्ताव उपस्थित किया। उसको सुनकर लक्ष्मण सिंह तैयार हो गया। उन दिनों में अमीर खॉ राहोली में रहा करता था। लक्ष्मण सिंह ने वहॉ जाकर पॉच लाख रुपये अपने पास से और चार लाख रुपये सिद्धानी के सामन्तों से एकत्रित करके उसको दिये और नौ लाख रुपये की रसीद अमीर खॉ से लेकर जब वह जयपुर में राजा के यहॉ आया तो जयपुर नरेश ने खण्डेला के शासन की सनद उसको दे दी। लक्ष्मण सिंह इस सनद को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने राजधानी में जयपुर के राजा को सत्तावन हजार रुपये खण्डेला के एक वर्ष के कर के रूप मे पेशगी में दिये। इस रकम को लेकर राजा जगत सिंह ने खण्डेला का वार्पिक कर स्वीकार कर लिया। इसके बाद अभय सिंह और प्रतापसिंह का पैतृक अधिकार खण्डेला से सदा के लिए खत्म हो गया।

कुछ दिन पहले की बात है, एक ब्राह्मण पुरोहित ने जयपुर के राजा से खण्डेला का पट्टा ले लिया था और उन दिनो में उसने खण्डेला के छोटे-छोटे सामन्तो पर भयानक अत्याचार किये थे। इन दिनों मे खण्डेला पर लक्ष्मण सिंह का अधिकार हो जाने से उस ब्राह्मण पुरोहित का पट्टा बेकार हो गया। इसलिए उसने लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध एक पडयंत्र रचने का काम आरम्भ किया। वह ब्राह्मण पुरोहित अत्यन्त चतुर और पड़यंत्रकारी था। इन दिनो में शिवनारायण मिश्र जयपुर राज्य का प्रधान मंत्री था। इसलिए ब्राह्मण होने के नाते उसने प्रधानमत्री शिवनारायण मिश्र से लाभ उठाने की चेष्टा की। उसके पडयत्र मे फॅस जाने के कारण प्रधान मत्री इस प्रकार अपराधी बन गया कि उसने आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लिया।

ब्राह्मण पुराहत न जो षड्यंत्र आरम्भ किया था और जिसके कारण प्रधानमंत्री शिवनारायण मिश्र को आत्महत्या करनी पड़ी, उसमें उसको पूरी तौर पर सफलता मिली। शिवनारायण मिश्र के बाद वह ब्राह्मण पुरोहित जयपुर राज्य का मंत्री बनाया गया। इस ब्राह्मण पुरोहित के मन्त्री काल में लक्ष्मणसिंह आमेर की राजधानी में आया। उसने लक्ष्मणसिंह के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर अपने सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चिन्तायें कीं। वह सोचने लगा कि लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध कोई ऐसा कार्य होना चाहिये जिससे जयपुर के राजा के साथ उसका विरोध उत्पन्न हो जाये।

इस प्रकार की अनेक बातें सोच कर प्रधानमंत्री ब्राह्मण ने गुप्त रूप से खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए राज्य की सेना को आदेश दिया। इस समय उसने सिद्धानी सामन्तों को भी अपने पक्ष में कर लिया और राज्य की सेना के साथ उन सामन्तों की सेनाओं को मिलाकर उसने खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लक्ष्मण सिंह उन दिनों में जयपुर में ही था। उसे जब यह मालूम हुआ तो उसने पठान सरदार जमशेद खॉ को बहुत सा धन देकर खण्डेला की रक्षा करने के लिए भेजा। जयपुर की जो सेना खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए गयी थी, प्रधानमंत्री ब्राह्मण उसके साथ था और खण्डेला पहुँचकर उसने मुकाम किया। पठान सरदार जमशेद खॉ ने अपनी सेना के साथ वहॉ पहुँच कर प्रधानमंत्री ब्राह्मण की सेना पर आक्रमण किया और उसके साथ की समस्त सामग्री और सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। ब्राह्मण मंत्री घबरा कर वहाँ से जयपुर की राजधानी की तरफ लौट आया। लक्ष्मणसिंह उस समय भी जयपुर में मौजूद था उसको कैद करने के लिए प्रधानमंत्री ने आज्ञा दी। उस आदेश का समाचार पाकर लक्ष्मण सिंह राजधानी छोड़कर भाग गया। क्योंकि उसके साथ उस समय केवल पचास अश्वारोही सैनिक थे। लक्ष्मण सिंह के भागने पर राजमंत्री मे कुछ दूर तक उसका पीछा किया। उसके बाद लोट कर वह राजधानी में आया और लक्ष्मण सिंह की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। खण्डेला से इस प्रकार राज्य के प्रधानमंत्री और सिद्धानी सामन्तों के भागने पर खण्डेला से अभय सिंह की आशायें सदा के लिए खत्म हो गयी।

शेखाजी के पुत्रों में सब से बडे राजा रायसाल के सात लड़के पैदा हुए थे। उनमें चौथे लड़के का नाम तिरमल था। राव की उपाधि लेकर उसने चौरासी ग्रामों और नगरों के साथ कासली का अधिकार प्राप्त किया था। तिरमल के पुत्र हरिसिंह ने फतेहपुर के कायमखानियों का बीलाडा नामक नगर लेकर उसकी अधीनता के एक सौ पच्चीस ग्रामों और नगरों पर अधिकार कर लिया था ओर उसके थोड़े दिनों बाद रेवासा एवं उसके पच्चीस ग्रामों और नगरों को भी अपने अधिकार में कर लिया। हरिसिंह के लड़के शिवसिंह ने कायमखानियों के प्रधान नगर फतेहपुर को विजय किया और उसके बाद वह उसी नगर में रहने लगा।

शिवसिंह के लडके चॉदसिंह का शासन सीकर में था। उसके वंशज देवी सिंह ने अपने निकटवर्ती सम्बन्धी शाहपुर के ठाकुर के लड़के लक्ष्मण सिंह को, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, गोद लिया था। देवीसिंह के समय भी सीकर की हालत अच्छी थी। लक्ष्मण सिंह ने उसको और भी उन्नत किया। खण्डेला पर अधिकार करने के पहले उसने अपने सामन्तों को

निर्बल बना कर केवल अपने आश्रित कर लिया था। उसने अपने पिता के नगर शाहपुरा के दुर्ग और बीलाड़ा, भटौती और पासली के दुर्गों को भी गिरवा कर नष्ट कर दिया।

लक्ष्मण सिंह के इस प्रकार के अत्याचारों से दु:खी होकर उसका पिता अपने नगर को छोड कर जोधपुर चला गया और वहीं पर वह रहने लगा।

लक्ष्मण सिंह के अधिकार में इन दिनों जितने भी ग्राम और नगर थे, उनकी संख्या पन्द्रह सौ थी और उनसे लक्ष्मण सिंह को वार्षिक आठ लाख रुपये की आमदनी होती थी, उसने अपने नाम पर लक्ष्मणगढ़ नाम का एक दुर्ग बनवाया और उसके अतिरिक्त उसने दूसरे कई स्थानों पर दुर्ग तैयार कराये।[x] उसने अपने अधिकार में एक अच्छी सेना का संगठन किया था। उसकी विशाल सेना में पाँच सौ सैनिकों को वेतन दिया जाता था और शेष पाँच सौ सैनिकों ने राज्य की तरफ से भूमि पायी थी। खण्डेला पर अधिकार करने के बाद लक्ष्मण सिंह ने अपनी शक्तियों को अधिक सुदृढ़ बना लिया।[*]

सिद्धानी शेखावत वंश की एक प्रबल शाखा है। शेखावत लोगों का वर्णन समाप्त करने के बाद सिद्धानी वंश का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर देना बहुत आवश्यक है। इसलिए आगामी पंक्तियों और पृष्ठों में हमने इसी वंश का उल्लेख किया है। रायसाल ने अपने राज्य को अपने सातों पुत्रों मे बाँट दिया था। उसमें भोजराज को उदयपुर और उसके अधीन ग्राम और नगर मिले थे। भोजराज के वंश में अधिक संख्या बढी और वे भोजराज के नाम पर भोजानी नाम से प्रसिद्ध हुए। भोजराज को मिले हुए इसी उदयपुर में शेखावत सामन्त एकत्रित होकर आवश्यकता पड़ने पर परामर्श किया करते थे।[†]

भोजराज से कई पीढ़ियों के बाद उसका वंशज जगराम उदयपुर के सिंहासन पर बैठा। उसके छ: लड़के थे। सब से बड़े लड़के का नाम था साधु। वह पिता से झगड़ा करके दशहरे के दिन अपने राज्य से निकल कर चला गया। जहाँ पर सिद्धानी लोग रहा करते थे, वह फतेहपुर राज्य कहलाता था। झुंझुनूं इसका प्राचीन नाम था। वहाँ के निवासी समस्त सिद्धानी, कायमखानी, अफगानी नवाब के शासन में रहा करते थे।[‡] वह नवाब दिल्ली के बादशाह की अधीनता मे शासन करता था। साधु अपने राज्य से निकलकर उस नवाब के पास गया। नवाब ने उसको सम्मानपूर्वक अपने यहाँ स्थान दिया।

साधु वहाँ पर कुछ दिनों तक रहने के बाद नवाब के निकट अत्यन्त विश्वासी और उपयोगी साबित हुआ। इसलिए उसने फतेहपुर का समस्त शासन सम्बन्धी कार्य साधु को सौंप दिया। वहाँ पर शासन करते हुए साधु ने कुछ दिन और व्यतीत किये। उसने फतेहपुर राज्य में अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसके बाद उसने एक दिन वृद्ध नवाब से कहा- "आपकी

---

x सन् 1876 ईसवी में एक सब से ऊँचे शिखर पर जहाँ पहले कोई दुर्ग था और इन दिनों मे वह नष्ट हो गया था, लक्ष्मणगढ बनवाया था। यह दुर्ग बहुत सुदृढ और श्रेष्ठ समझा जाता है।

* कहा जाता है कि खोकर राजपूतों के नाम पर खण्डेला नाम की उत्पत्ति हुई है। खोकर राजपूतों का उल्लेख भाटी लोगों के साथ पाया जाता है। खोकर राजपूत निश्चित रूप से सीथियन थे। खण्डेला में चार हजार घर हैं और उसमें अस्सी ग्राम हैं।

† उदयपुर का प्राचीन नाम काइस है, उसमें पैंतालीस ग्राम हैं।

‡ कुछ लेखकों ने कायमखानी लोगों को अफगान नहीं अपितु चौहान वंश के मुसलमान राजपूत माना है-अनुवादक

वृद्धावस्था हैं। अब आपको पूर्ण रूप से विश्राम करने की आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ कि आप राज्य के सुविधाजनक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक बितावें। आपकी मर्यादा के अनुसार इस राज्य से आपको इतनी सम्पत्ति मिलती रहेगी, जिससे आप के सामने कभी कोई अभाव न रहेगा।"

नवाब ने साधु की बातों को सुना। उसने साधु के अभिप्राय को आसानी से समझ लिया। शासन का अधिकार और प्रबन्ध साधु के हाथों में सौंप कर नवाब ने स्वयं अपने आप को शक्तिहीन बना लिया था। उसने सोचा कि इस मौके पर साधु का विरोध करना संकटपूर्ण हो सकता है। इसलिये नवाब झुंझुनूं से फतेहपुर, जिसकी आवादी झुंझुनूं से कुछ दूर थी, चला गया। वहाँ पर उसके वंश के कुछ लोग रहते थे और शासन करते थे। उन लोगों ने नवाब को अपने यहाँ सम्मानपूर्ण स्थान दिया और वे साधु को फतेहपुर राज्य से भगाने के लिए एक सेना की तैयारी करने लगे।

इसका समाचार साधु को मिला। ऐसे मौके पर उसने अपने पिता से सहायता माँगी। वह अपने पुत्र साधु से अप्रसन्न था। लेकिन इस संकट के समय उसने अपने लड़के की सहायता करने का निश्चय किया। उसका एक दूसरा लड़का मिर्जा राजा जयसिंह के यहाँ अपनी सेना के साथ रहता था। जगराम ने अपने उस लड़के को लिखा कि वह तुरन्त जयपुर राज्य के राजा से सैनिक सहायता लेकर तुरन्त साधु के पास जावे और इस संकट के समय वह उसकी मदद करे। पिता के इस पत्र को पाकर जगराम का लड़का अपनी सेना के साथ जयपुर की सेना को लेकर रवाना हुआ और वह साधु के पास पहुँच गया। अपने भाई की सैनिक सहायता पाकर साधु ने सम्पूर्ण फतेहपुर में अपना अधिकार कर लिया और उसके अन्तर्गत ग्रामों और नगरों का शासन दोनों भाई मिलकर करने लगे। अपने भाई के परामर्श के अनुसार साधु ने जयपुर राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके कुछ दिनों के वाद साधु ने सिंहाना पर भी अधिकार कर लिया। उसमें एक सौ पच्चीस ग्राम थे। उसके पश्चात उसने सुलतान नामक स्थान को अपने राज्य में मिला लिया। इन दिनों में लगातार वह अपने राज्य की सीमा को वढ़ाता रहा और खेतडी के राजा के समस्त ग्रामों को भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। इन दिनों में सब मिलाकर एक हजार से अधिक ग्राम और नगर उसके अधिकार में हो गये थे।

साधु के पाँच लड़के थे-(1) जोरावर सिंह (2) किशन सिंह (3) नवल सिंह (4) केशरी सिंह और (5) पहाड़ सिंह। साधु ने अपना सम्पूर्ण राज्य अपने पाँचों वेटो में बाँट दिया। उसके वंशज सिद्धानी नाम से प्रसिद्ध हुये।

साधु के वड़े लड़के जोरावर सिंह ने अपने पैतृक राज्य के अतिरिक्त चोकेडी पर अधिकार कर लिया। उसमें बारह ग्राम थे। लेकिन साधु के मंझले लडके किशन सिंह के एक वंशज ने जोरावर सिंह के वंशजों के अधिकार से समस्त नगर और ग्राम ले लिये। उसके अधिकार में केवल चौकड़ी और उसके ग्राम रह गये। इतना सब होने पर भी किशन सिंह के वंशज मर्यादा में श्रेष्ठ माने जाते थे।

साधु के शेप चार पुत्रों के वंशजों मे निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हुये। (1) खतडी का अभय सिंह (2) विसाऊ का श्याम सिंह (3) नवलगढ का ज्ञान सिंह और (4) सुलतान का शेरसिंह।

साधु ने अपने परिवार के छोटे अधिकारियों को सिंहाना, झुंझुनूं और सूर्यगढ़-जिसका प्राचीन नाम उछःड़ा था इत्यादि कई नगर और ग्राम दिये थे। लेकिन खेतडी के अभय सिंह ने सिंहाना और उसके एक सौ पच्चीस ग्रामों पर अधिकार कर लिया था। साधु के वंशजों की संख्या धीरे-धीरे वढ़ती गयी। इसलिए उसका राज्य भी छोटे-छोटे टुकड़ों में लगातार विभाजित होता गया।

सीकर के सामन्त लक्ष्मण सिंह की तरह अभय सिंह ने भी अपने राज्य के विस्तार की चेष्टा की। उसने अपने वंश के अधिकारियों पर आक्रमण किया और उनके अधिकार के ग्रामों और नगरों पर अधिकार करने में उसने भयानक अत्याचार किये।

साधु के सबसे छोटे लड़के पहाड़ सिंह के भूपाल नाम का एक लड़का पैदा हुआ। लुहारू के युद्ध मे भूपाल सिंह के मारे जाने पर पहाड़ सिंह ने अपने भाई के पुत्र खेतड़ी के सामन्त वाघसिंह के सबसे छोटे लड़के को गोद लिया। पहाड़ सिंह के मर जाने के वाद गोद लिया हुआ बालक उसका अधिकारी हुआ। उसकी अवस्था उस समय बहुत कम थी। इसलिए वह अपने पिता के यहॉ जाकर रहने लगा। इसके वारह वर्ष के बाद बाघसिंह की मृत्यु हुई। उसके अनुचित आचरणों के कारण सभी लोग उससे अप्रसन्न रहते थे। उसके मर जाने के वाद किसी ने भी उसके लिए दुःख प्रकट नहीं किया। वल्कि शवदाह के समय उसके वंश और परिवार के लोग उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते रहे।

रायसलोत और सिद्धानी लोगों का वर्णन करने के वाद लाडखानी लोगों के सम्वन्ध में यहॉ पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। लाडखानी शव्द का अर्थ प्यारा प्रभु होता है। इस अर्थ के आधार पर लाडखानी लोगों की मर्यादा का सही अनुमान नहीं किया जा सकता। क्योंकि अपने आचरणो और कार्यो से लाडखानी लोग राजस्थान में वहुत वदनाम थे। रायसाल के वड़े लड़के के नाम मे खॉ शव्द का प्रयोग क्यों किया गया और उसके छोटे लड़के का नाम ताज खॉ क्यों रखा गया, इसके सम्वन्ध में हम कुछ नहीं जानते। रायसाल के लड़के लाडखाँ ने दातारामगढ़ पर अधिकार कर लिया था। यह नगर मारवाड़ राज्य की सीमा पर वसा हुआ और जयपुर राज्य की अधीनता में था। लाडखाँ का पिता बादशाह के दरवार में एक सम्मानपूर्ण स्थान रखता था। सम्भव है कि उसी आधार पर लाडखॉ को यहॉ का अधिकार मिल गया हो। लाडखॉ का अधिकार तप्पनोसल पर भी हो गया था। सव मिलाकर अस्सी नगर और ग्राम उसके अधिकार में थे। ये ग्राम और नगर पहले मारवाड़ और बीकानेर के राज्य में शामिल थे। लाडखानी लोग उनके राज्यों में किसी प्रकार लूटमार न करें, इसलिये ये ग्राम और नगर लाडखॉ को दे दिये गये थे। लाडखानी लोग पिडारियों की तरह लूट-मार करते थे। वे सैकड़ों और हजारों की संख्या मे एकत्रित होकर जहॉ जाते थे, आक्रमण करके लूट लेते थे और अपने स्थानों को भाग जाते थे। जयपुर का राजा कभी-कभी इन लोगों से कर वसूल करने की कोशिश करता था। परन्तु उसे सफलता न मिलती थी। इन लोगों का रामगढ़ नामक एक वहुत मजवूत दुर्ग था। उसी में वे लोग भागकर पहुँच जाते थे। यह दुर्ग सभी प्रकार सुरक्षित था लेकिन अमीर खॉ जव इन लोगो पर आक्रमण करता था तो ये लोग उसे वहुत सा धन देकर अपनी रक्षा करते थे। इन लाडखानी लोगो ने अमीर खॉ को बीस हजार रुपये वार्पिक कर देना स्वीकार किया था।

शेखावाटी के राज्यों और उसकी जागीरों की आमदनी की तालिका नीचे दी जाती है। यद्यपि उसके वहुत सही होने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी जो साधन हमको प्राप्त हुए हैं, उसके आधार पर हमने सही-सही लिखने की चेष्टा की है। वहाँ की कुल आमदनी पच्चीस लाख रुपये से लेकर तीस लाख रुपये वार्पिक तक थी। यद्यपि इन दिनों में उन जागीरों और राज्यों की आमदनी घटकर वहुत कम हो गयी थी। उनकी आमदनी के घट जाने का मुख्य कारण यह था कि वे प्रायः आपस में लड़कर एक दूसरे का विनाश किया करते थे और इस आपसी विद्वेप के कारण प्रायः उनको बहुत सा धन देकर आक्रमणकारियों को शांत करना पड़ता था। आपसी लड़ाइयों और वाहरी हमलों से उन जागीरों को बहुत क्षति पहुँची थी। उनकी आय की तालिका इस प्रकार है:

सीकर और खण्डेला के लक्ष्मण सिंह की	800000 रुपये
खेतड़ी के अभय सिंह की	600000 रुपये
विसाऊ के श्याम सिंह और रणजीत सिंह की	190000 रुपये
नवलगढ़ के ज्ञान सिंह की	70000 रुपये
मेदसर के लक्ष्मण सिंह की	30000 रुपये
जोरावर सिंह की	100000 रुपये
उदयपुर वाटी की	120000 रुपये
मनोहरपुर की	30000 रुपये
लाडखानियों की	100000रुपये
हरराम जी लोगों व.	40000रुपये
गिरिधर पोताओं की	40000 रुपये
छोटे सामन्तों की	200000 रुपये
जोड़	**2320000 रुपये**

जयपुर के राजा को जागीरों से मिलने वाले कर की तालिका-

सिद्वानी लोगों से	200000 रुपये
खण्डेला से	6000 रुपये
फतेहपुर से	64000 रुपये
उदयपुर और विवाई से	22000 रुपये
कासली से	4000 रुपये
जोड़	**35100 रुपये**

शेखावाटी के सामन्तों की ऊपर लिखी हुई जो आमदनी यहाँ पर दी गयी है, वह विगत पचास वर्षों से लगातार घटती आ रही है।

□

अध्याय-61
जयपुर राज्य की सामान्य जानकारी

कुशवाहा जाति के जन्म, उत्थान और विस्तार की तरह शेखावाटी और माचेड़ी के अधिकारियों के वंशजों का भी इतिहास है। सम्भव है कुछ लोगो को आठ सौ वर्षों में पन्द्रह हजार वर्गमील की भूमि पर फैले हुए इन लोगो के इतिहास मे कुछ दिलचस्पी न मालूम हो। लेकिन इस वंश के चालीस हजार मनुष्य अपने राजा और राज्य की रक्षा करने के लिए सदा अपने हाथों में तलवारें लिए हुए तैयार रहते हैं। अपने राज्य को ही वे अपना देश समझते हैं और देश का नाम राजपूतों में जादू का सा प्रभाव पैदा करता है। इन राज्यो के अगणित उदाहरणो के आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस देश में देशभक्ति और कृतज्ञता का अभाव नहीं है।

सीमा और विस्तार-आमेर और उसके अधिकृत राज्यो की सीमा का नक्शा देखने से भली भॉति मालूम होता है कि उसकी सीमा का विस्तार कहॉ तक है। फिर भी जयपुर राज्य पश्चिम में मारवाड़ की सीमा के अन्त में सॉभर झील तक, पूर्व में जाटों की सीमा के पार स्त्रौथ नगर तक फैला हुआ है। अंग्रेजी पैमाने के हिसाब से जयपुर राज्य एक सौ बीस मील चौड़ा और उत्तर से दक्षिण में शेखावाटी को मिलाकर एक सौ अस्सी मील लम्बा है। इसकी जमीन एक सी नहीं है। खास जयपुर अथवा ढूंढार की जमीन नौ हजार पाँच सौ वर्ग मील है और शेखावाटी की पॉच हजार चार सौ वर्ग मील है। समस्त भूमि मिलाकर चौदह हजार नौ सौ वर्ग मील है।

आबादी-जयपुर राज्य में रहने वाली सभी जातियो की सही संख्या लिख सकना सम्भव नहीं है। इसलिए प्राप्त सामग्री के आधार पर बहुत सही अनुमान लगाकर इतना ही कहा जा सकता है कि इस राज्य की एक वर्ग मील की भूमि मे एक सौ पचास और शेखावाटी में प्रति वर्ग मील अस्सी मनुष्य रहते हैं। जयपुर और शेखावाटी को मिला कर एक सौ चौबीस मनुष्यों के औसत से एक लाख पिच्यासी हजार छः सौ सत्तर मनुष्यों की वहॉ आबादी है। लेकिन मकान से भरे हुए राज्य के बड़े-बड़े नगरों को देखकर जब हम समझने की कोशिश करते हैं तो मालूम होता है कि जो संख्या मनुष्यों की ऊपर दी गयी है वह किसी प्रकार अधिक नहीं हो सकती। सब मिला कर राज्य में छोटे-छोटे गाँव और पुरवा छोड़कर चार हजार ग्राम और नगर हैं। शेखावाटी के ग्रामों और नगरों की संख्या जयपुर से आधी है। जिसमें से सीकर और खण्डेला के लक्ष्मण सिंह और खेतड़ी के अभय सिंह में प्रत्येक लगभग सौ ग्रामों और नगरो का स्वामी था।

रहने वालों का जातीय विभाजन-वहाँ पर रहने वाली विभिन्न जातियों की संख्या निश्चित रूप से नहीं लिखी जा सकती। परन्तु प्राप्त साधनों से यह स्वीकार करना पड़ता है कि

राजपूतो की संख्या शेष सम्मिलित जातियो के मुकाबले में बहुत कम थी। लेकिन मीणा जाति के लोगो को छोड़कर राजपूत किसी भी जाति से अलग-अलग कम न थे। मीणा लोगों की संख्या निश्चित रूप से अधिक थी। बाकी जातियों मे राजपूत अधिक थे। वहाँ पर जो जातियाँ रहती हैं, उनमे प्रमुख इस प्रकार हैं.-मीणा, राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य, जाट, धाकर अथवा किरात और गूजर इस प्रकार वहाँ के रहने वालों मे ऊपर लिखी हुई सात जातियॉ प्रमुख मानी जाती हैं।

मीणा-इस जाति के लोग जिन प्रमुख शाखाओं मे विभाजित हैं, उनकी संख्या 3.१ से कम नहीं है। राजस्थान के प्रत्येक राज्य में मीणा लोगों की संख्या अधिक है। इसलिए उनका वर्णन हमने एक पृथक परिच्छेद में करना मुनासिब समझा है। आमेर राज्य में मीणा लोगों को सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। नरवर के निर्वासित राजा को मीणा लोगो के द्वारा ही आमेर का सिंहासन प्राप्त हुआ था। मीणा लोगों को सभी प्रकार के राज्याधिकार प्राप्त होने का प्रमुख कारण यह था कि आरम्भ में कुशवाहा राजा ने उनको पराजित करके उन पर किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं किया था बल्कि मीणा लोगों ने अपने आप पराजित होने पर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी और इसके फलस्वरूप काली खोह के मीणा लोग जयपुर के राज्याभिषेक के अवसरों पर अपने रुधिर से तिलक करने लगे थे। अनेक उदाहरणों से यह जाहिर होता है कि विश्वासी होने के कारण उनको जयपुर राज्य में उत्तरदायी पदों पर रखा जाता था। जयपुर के खजाने में और वहॉ के दरबारी कागजों की देखभाल रखने में मीणा लोग ही काम करते थे। राजधानी के विश्वस्त कार्य, राजा के शरीर-रक्षक सैनिक होने का पद और इस प्रकार के दूसरे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य उनको सौंपे जाते थे। मीणा लोगों को पहले अपना झण्डा फहराने और नक्कारा बजाने का अधिकार था। लेकिन बाद मे उन्हें इस अधिकार से वंचित कर दिया गया। जयपुर राज्य में खेती का काम अधिक संख्या में मीणा, जाट और किरात लोग करते हैं।

जाट-जाटो की संख्या भी लगभग मीणा लोगों के बराबर समझी जाती है। इनके अधिकार के ग्रामों और नगरों की संख्या भी अधिक है। खेती के काम में ये लोग अधिक परिश्रमी होते हैं।

ब्राह्मण-समाज में जो धार्मिक प्रथाये हैं, उन पर ब्राह्मणों ने अपना अधिकार कर रखा है। दूसरी जातियों के लोग धार्मिक कार्यों में ब्राह्मणो को ही अधिकारी समझते हैं। राजस्थान के अन्यान्य राज्यों की अपेक्षा जयपुर राज्य में ब्राह्मण अधिक पाये जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन ब्राह्मणों के राजा अपने पड़ौसी राजाओं से अधिक धार्मिक हैं बल्कि इसके विरुद्ध जयपुर के राजा अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक अधर्मी और अपराधी हैं।

राजपूत-यह बात अब भी देखी जाती है कि अगर कुशवाहो के राज्य में युद्ध सम्बन्धी आवश्यकता पड़ती है और कुशवाहा लोग उत्तेजित किए जाते हैं तो अपने वंश के तीस हजार लोगों को लेकर वे युद्ध क्षेत्र में पहुॅच जाते हैं। उनमें नरूका और शेखावत वंश भी शामिल हैं कुशवाहा राजाओं में पाजून, राजा मान और मिर्जा राजा आदि उतने हो शूरवीर और योग्य हुए हैं, जितने कि अन्य वंशों में। लेकिन राठौरों की तरह साहस और शौर्य में ये लोग ख्याति नही

प्राप्त कर सके। इसका बहुत कुछ कारण यह भी हो सकता है कि मुगल बादशाहों के साथ इन लोगों ने वैवाहिक सम्बन्ध कायम किये थे और उनके फलस्वरूप उन्होंने मुगल-दरबार में सम्मान प्राप्त करके बादशाह की राजनीतिक आवाजो का समर्थन करके उनमें सहयोग दिया था। मराठों के आक्रमण से कुशवाहा राजाओं को अधिक आघात पहुँचा था। उनके प्रबल प्रभाव के समय इन लोगो की राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक, सभी प्रकार की भावनायें दुर्बल पड़ जाती हैं।

खेती, मिट्टी और पैदावार-ढूंढाड राज्य में खेती के योग्य सभी प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। धान और जुआर की अपेक्षा वहाँ पर बाजरा अधिक पैदा होता है। गेहूँ की अपेक्षा जौ की पैदावार विशेष होती है। जयपुर राज्य में सभी प्रकार के अन्न पैदा होते हैं। ईख की पैदावार भी वहाँ अधिक होती थी, लेकिन अनेक कारणों से राज्य के कृपकों ने विवश होकर ईख की खेती कम कर दी। उसका प्रधान कारण यह हुआ कि पहले ईख की खेती पर चार रुपये से लेकर छः रुपये बीघा के हिसाब से निश्चित कर लिया जाता था। लेकिन अब किसानो को खेत देने से पहले साठ रुपये पेशगी ले लिये जाते हैं। इस राज्य के अनेक जिलों में रुई की पैदावार अधिक होती है।

मालगुजारी अथवा राज्य कर-जितने भी कर इस राज्य में वसूल किये जाते हैं वे सभी यहाँ पर कभी भी एक से नहीं रहे। वे हमेशा घटते-बढ़ते रहते हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में सही उल्लेख करना बहुत कठिन मालूम होता है। यह बात जरूर है कि इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सामग्री हमको मिली है, जिसमें राज्य की मालगुजारी और उसके विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है। लेकिन विस्तार में उनका यहाँ जिक्र करना संतोपजनक नहीं मालूम होता। इसलिये उनके सम्बन्ध मे इतना ही लिखना अधिक अच्छा मालूम होता है कि मालगुजारी और विभिन्न प्रकार के करो के द्वारा जयपुर राज्य की सम्पूर्ण आमदनी एक करोड़ रुपये थी, लेकिन मराठो और माचेड़ी के नरुका सामन्तों के सत्रह ग्राम और नगर ले लेने से वहाँ की आमदनी बहुत घट गयी। जयपुर राज्य के अधिकार से जो सत्रह ग्राम और नगर निकल गये थे, वे इस प्रकार हैं:

1 कामा
2. खोरी
3. पहाड़ी

जनरल पीरन ने अपने स्वामी सिधियों की तरफ से जयपुर राज्य के इन तीन नगरों पर अधिकार कर लिया था। उसके बाद जाटों ने उनको पट्टों पर लेकर अपना अधिकार कायम रखा।

4 कान्ती
5. उकरोद
6. पुन्दापुन
7 गाथी का थाना
8 रामपुरा
9 गौनराई
10 रानी
11 पुरबैनी
12 मौजपुर हरमाना

माचेड़ी के राव ने इन पर अधिकार कर लिया था।

13. कानोढ़ अथवा कानोद ⎤ डी वाइन ने इन पर अधिकार करके मुरतजा खॉं
14. नारनोल ⎦ को लार्ड लेक की स्वीकृति से दिया था।
15 कोटपूतली सन् 1803 और 4 के युद्ध में लार्ड लेक ने मराठों से लेकर खेतड़ी के अभय सिंह को दे दिया था।
16. टोंक ⎤ राजा माधव सिंह ने लार्ड हेस्टिंग्स के द्वारा अमीर खाँ की
17. रामपुर ⎦ प्रधानता में होलकर को दिया।

यहॉं पर यह समझने की जरूरत है कि ऊपर लिखे हुए जिले, जो जयपुर राज्य के दूसरे राज्यों में गये, ढूंढाड राज्य की पूर्ति करते थे और उनमें से अधिकॉंश पहले किसी समय मुगल बादशाह के अधिकार में थे। बादशाह ने उनके शासन का अधिकार जयपुर के राजा को दे रखा था। लगभग आधी शताब्दी पहले राजा पृथ्वी सिंह के शासन काल में आमेर राज्य और उसके सामन्तों की आमदनी मिलाकर कुल सत्तर लाख रुपये थी। राजा प्रताप सिंह के शासन के अन्तिम वर्ष सन् 1802 ईसवी में यह आमदनी उन्नासी लाख रुपये थी।

राजा जगत सिंह के समय सम्वत् 1885 सन् 1802-03 ईसवी में जयपुर राज्य की खालसा अथवा कर-सम्बन्धी राजकोष की आय इस प्रकार थी-

कर सम्बन्धी अथवा राजा के प्रबन्ध के द्वारा	2055000 रुपये
देवरा ताल्लुका, अन्त:पुर के व्यय के लिए आय	500000 रुपये
राज दरबार के नौकरों के लिए होने वाली आय . . .	300000 रुपये
मन्त्रियों और दीवानी के अधिकारियों के लिए	200000 रुपये
सिलहपोप नामक सेना की जागीरों से	150000 रुपये
दस पैदल और सवार सेनाओं की जागीरों से	514000 रुपये
सामन्तों की जागीरों की आय	1700000 रुपये
ब्राह्मणो को दी हुई भूमि की आय	160000 रुपये
कृषि कर और वाणिज्य कर के द्वारा	1900000 रुपये
राजधानी की कचहरी,नगर चुङ्गी आदि से	215000 रुपये
टकसाल के द्वारा	60000 रुपये
हुंडी भाड़ा इत्यादि से	60000 रुपये
आमेर की फौजदारी के जुर्माने से	12000 रुपये
जयपुर नगर की फौजदारी कचहरी से.....	8000 रुपये
कचहरी के साधारण जुर्मानों से	16000 रुपये
सब्जी मण्डी के द्वारा.	3000 रुपये
शेखावाटी राज्य की आय	350000 रुपये
राजावत और जयपुर के अन्य सामन्तों से	30000 रुपये
हाड़ौती के सामन्तों से	20000 रुपये
कुल जोड़	**8183000 रुपये**

प्राप्त सामग्री से ऊपर लिखी हुई आमदनी यहाँ पर जो दी गयी है, वह अगर सही है तो उससे यह साबित होता है कि जगत सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद जैसा कि ऊपर लिखा गया है, अस्सी लाख रुपये से अधिक राज्य की आमदनी हो गयी थी। इसमें से लगभग आधी खालसा भूमि अर्थात् राजा के अधिकृत ग्रामों और नगरों की थी। राजस्थान के अन्य राजाओं की निजी आमदनी से यह लगभग दो गुनी थी। अंग्रेजों के साथ सधि करने के समय जयपुर की आमदनी का उपरोक्त अनुमन लगाया गया था और राजा ने अंग्रेज कम्पनी को आठ लाख रुपये वार्षिक देना मन्जूर किया था। उससे यह भी निश्चय हुआ था कि राज्य की वर्तमान आमदनी मे जितनी आय अधिक होगी उसके सोलह भागों में से पॉच भाग राजा को अतिरिक्त कर में देने पड़ेगे।

विदेशी सेना–सन् 1803 ईसवी में जयपुर के राजा ने अपनी सहायता के लिए तेरह हजार सैनिकों की एक विदेशी सेना रखी थी। इस सेना में बन्दूकों के साथ दस कम्पनी पैदल सेना, चार हजार नागा सेना, एक प्रहरी सैनिकों का दल और सात सौ अश्वारोही सिपाहियो की सेना थी। इस विदेशी सेना के अतिरिक्त सामन्तों की ओर से चार हजार अश्वारोही सैनिकों की सेना राज्य के लिए सदा तैयार रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर बीस हजार कुशवाहा सैनिक युद्ध क्षेत्र में पहुॅच सकते थे।

सामन्त– जयपुर के राजा पृथ्वीराज ने अपने बारह पुत्रों को राज्य के बारह प्रधान सामन्तों का पद दिया था। उनका उल्लेख ग्रन्थों मे इस प्रकार पाया जाता है:

पुत्रों के नाम	वंश का नाम	जागीर	वर्तमान सामन्त	आमदनी	सैनिक
1. चतुर्भुज	चतुर्भुजोत	पावर, बगरू	बाघसिह	18000	28
2. कल्याण	कल्याणोत	लाटवाड	गंगासिंह	25000	47
3. नाथू	नाथावात	चौमू	किशन सिंह	115000	205
4. बलभद्र	बलभद्रोत	अचरोल	कायम सिंह	28850	57
5 जगमल और उसका बेटा खंगर	खंगारोत	टोढली	पृथ्वी सिंह	25000	40
6. सुलतान	सुल्तानोत	चॉदसर	-----	-----	-----
7. पचायन	पचायनोत	सम्बूयो	सूलीसिंह	17700	32
8 गोगा	गोगावत	धूनी	राव चॉदसिंह	70000	88
9 कायम	खूमबानी	भॉसरवो	पद्मसिह	21535	31
10 कुम्भो	कुम्भावत	माहर	रावत स्वरूप सिंह	27538	45
11 सूरत	शिवबरन	नीन्दिर	रावत हरिसिंह	10000	19
12. वनवीर	वनवोरपोत	बाटको	स्वरूप सिह	29000	34

इन वारह प्रधान सामन्तो के सिवा आमेर राज्य मे और भी सामन्त थे, उनकी आमदर्न सेना और अन्यान्य वातों का उल्लेख जो पाया गया है, वह इस प्रकार है:

वंश का नाम	अधीन सामन्त	समस्त आमदनी	अश्वारोही सैनिक
1.चुतुर्भुजोत	6	53800	92
2.कल्याणोत	19	245196	522
3.नाथावत	10	220800	371
4.वलभद्रोत	2	130850	157
5.खॉगारोत	22	402806	643
6.सुल्तानोत	-----	-----	-----
7.पचायनोत	3	24700	45
8.गोगावत	13	167900	273
9.कुम्भानी	2	23787	35
10. कुम्भावत	6	40738	68
11. शिववरनपोत	3	49500	73
12. वनवीरपोत	3	26575	48
13. राजावत	16	198137	392
14. नरूका	6	91069	92
15 वॉकावत	4	34600	53
16. पूर्णमलोत	1	10000	19
17. भाटी	4	104039	205
18. चौहान	4	30500	61
19. वड़गूजर	6	32000	58
20. चन्दावत	1	14000	21
21. सीकरवार	2	4500	8
22. गूजर	3	15300	30
23 रॉगल	6	291105	549
24. खेतड़ी	4	120000	281
25 ब्राह्मण	12	312000	606
26. मुसलमान	9	141400	274

ऊपर जो तालिका दी गयी है,उसमें एक से वारह तक आमेर के प्रधान सामन्त हैं। तेरह से सोलह तक कुशवाहा वंशज हैं और उनकी गणना वारह सामन्तों में नहीं होती। अन्तिम दस विदेशी सामन्त हैं, उनके वंशज अलग-अलग हैं।

यहाँ पर राज्य के कुछ प्रसिद्ध और प्राचीन नगरों का संक्षेप में वर्णन करके हम इस परिच्छेद का अन्त कर रहे हैं। अनुसंधान करने से इन नगरों की प्राचीनता के सम्बन्ध में वहुत सी वातें जानी जा सकती हैं।

मोरा–देवनशाह से पूर्व की तरफ अठारह मील की दूरी पर बसा हुआ है। मोरध्वज नामक चौहान राजा ने इसकी प्रतिष्ठा की थी।

आभानेर–यह नगर लालसोट से तीन कोस पूर्व की तरफ है। यह नगर बहुत प्राचीन है और यहाँ पर कभी एक चौहान राजा की राजधानी थी।

भानगढ़–यह नगर थोलाई से पाँच कोस की दूरी पर है। यह नगर और इसका प्रसिद्ध दुर्ग-दोनों नष्ट हो चुके है। कुशवाहा राजाओं के अभ्युदय के पहले ढूँढाड के प्राचीन नगर के द्वारा इसका निर्माण हुआ था।

अमरगढ़–खुशालगढ़ से तीन कोस की दूरी पर है। नाग वंशियों के द्वारा इसका निर्माण हुआ था।

बीरात–माचेड़ी मे बूसे से तीन कोस के फासले पर है। कहा जाता है कि पाण्डवों के द्वारा वह बसाया गया था।

पाटन और गनीपुर–इन दोनों को दिल्ली के प्राचीन तोमर राजाओं ने बसाया था।

खुरोर अथवा खण्डार–रणथम्भौर के करीब है।

ओरगिर–चम्बल के किनारे पर है।

आमेर, अम्बेर अथवा अम्बेश्वर–यह नगर इन तीनों नामों से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ पर शिवजी का एक प्राचीन मन्दिर है, उसमें एक कुण्ड है और कुण्ड के मध्य मे शिवलिङ्ग की मूर्ति है। कुण्ड के जल से यह मूर्ति लगभग आधी डूबी है। सर्व साधारण में इस प्रकार का एक विश्वास भरा हुआ है कि शिवलिङ्ग की मूर्ति जल में जब डूब जाएगी,जयपुर राज्य का उस समय पतन हो जायेगा। *

□

---

* मूल ग्रन्थ मे शेखावाटी का इतिहास जयपुर राज्य से अलग नहीं है, इसलिए टाड साहब ने शेखावाटी के इतिहास का अन्त इस रूप में किया है-अनुवादक

बूँदी का इतिहास
हाड़ा वंश के आदि पुरुष से राव देवा तक का इतिहास

राजस्थान में हाड़ौती हाड़ा वंश के राजपूतों का देश है। उसमें दो राज्य है, एक का नाम है बूँदी और दूसरे का नाम है कोटा। इन दोनों को मिलाकर पहले एक ही राज्य था, लेकिन तीन सौ वर्षो से यह राज्य दो भागों में विभाजित हो गया है। चम्बल नदी इन दोनों के बीच में प्रवाहित होती है और यही नदी दोनों राज्यों की सीमा हो गयी है। इन दोनों राज्यों में हाड़ा वंश के राजपूत रहते हैं। इस वंश के नाम से ही प्राचीन काल मे इस राज्य का नाम हाड़ौती रखा गया था। इस हाड़ौती देश के बूँदी-राज्य का इतिहास नीचे लिखा गया हे।

चौहान राजपूतों की चौबीस शाखायें हैं। हाड़ा उनकी एक प्रसिद्ध शाखा है। अजमेर के राजा माणिक राय का लड़का अनुराज इस शाखा का आदि पुरुप माना जाता है। माणिक राय ने सन् 685 ईसवी में सबसे पहले मुसलमानों के साथ युद्ध किया था। हाड़ा वंश के उस समय का इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं हे, उसकी अनेक घटनाये संदेहात्मक हैं। चन्द कवि ने उसके सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, यद्यपि वह भी स्पष्ट नहीं होता, फिर भी हमें इस स्थान का वर्णन करने में उसी का आश्रय लेना पडा। परशुराम ने इक्कीस बार भयानक रूप से क्षत्रियों का संहार किया था। उसी समय कुछ क्षत्रियों ने अपने आपको कवि कहकर और उनमे से कुछ लोगों ने स्त्रियों का रूप धारण करके अपने प्राणों की रक्षा की थी।

क्षत्रिय राजाओं का संहार करके परशुराम ने इस देश का शासन ब्राह्मणों को सौंप दिया था। नर्वदा नदी के किनारे माहेश्वर नगर के हैहय वंश के राजा सहस्त्रार्जुन ने परशुराम के पिता को मार कर क्षत्रियो के प्रति संघर्ष को उपस्थित किया था और उसी के परिणामस्वरूप परशुराम ने एक तरह से क्षत्रियों का नाश किया था।

ब्राह्मण शासन करना नहीं जानते थे। उनके अधिकार में अभिशाप और आशीर्वाद देने के ही दो गुण थे। इसलिए उनके हाथो में शासन आते ही चारों तरफ अराजकता का जन्म हुआ। सार्वजनिक जीवन की शांति मिटने लगी और अशान्ति की वृद्धि होने लगी। अन्याय और अत्याचार करने में किसी को भय न रहा। चारो ओर लुटेरों के भय बढ़ने लगे। अच्छे कामो का अंत हो गया, धार्मिक ग्रन्थ पैरों से कुचले जाने लगे। अत्याचारों के द्वारा भले आदमियों का जीवन संकटमय बन गया। शासन की अयोग्यता के कारण जितनी भी परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं। ब्राह्मणों के शासन में वे सब उत्पन्न हो गयीं।

विश्वामित्र को यह सब देखकर अपार दुख हुआ। उसने भली भाँति इस बात को समझ लिया कि क्षत्रियों के शासन के बिना इस अराजकता का अंत नहीं हो सकता। इसलिए उस महर्षि ने क्षत्रियों के शासन को फिर से लाने के लिए योजना तैयार की। आबू शिखर के जिस स्थान पर ऋषि ओर मुनि रहा करते थे और अपने तप से उन्होंने जिस स्थान को पवित्र किया था, वहाँ पर जाकर क्षत्रियों के शासन की सृष्टि के लिए विश्वामित्र ने यज्ञ करने का अनुष्ठान किया। उसकी सहायता के लिए वहाँ के समस्त ऋषि और मुनि तैयार हो गये। वे सभी भगवान के पास गये और उन्होंने बढ़ी हुई अराजकता का वर्णन करके उसको दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना की। ऋषियों और मुनियों की प्रार्थना को सुनकर भगवान ने क्षत्रियों की सृष्टि करने का आदेश दिया। ऋषि और मुनि उस आदेश को सुनकर इन्द्र ब्रह्मा, रूद्र और विष्णु के साथ आबू शिखर पर आये। यज्ञ का कार्य आरम्भ हो गया। उसके समस्त कार्यों को पूरा करने के लिये आये हुये देवताओं ने सलाह दी। इन्द्र ने हरी दूब से एक पुतली बनाकर उसे यज्ञ के जलते हुए कुण्ड में डाल दिया। इसी समय संजीव मंत्र का पाठ हुआ। उस पाठ के समाप्त होते-होते दाहिने हाथ मे गदा लिये हुए मार की आवाज करता हुआ वीर पुरुप बाहर निकला। उसके मुख से निकलने वाले शब्दों के आधार पर उसका नाम प्रमार रखा गया। देवताओं ने उसको शासन करने के लिये आबू, धार और उज्जैन नामक नगर दिये।

इसके पश्चात् पद्मासन वैठकर ब्रह्मा ने दूब की एक पुतली बनाकर अग्निकुण्ड में डाली। यज्ञकुण्ड में उस पुतली के गिरते ही एक वीर पुरुप का आविर्भाव हुआ। उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में वेद ग्रंथ था। उसका नाम चालुक अथवा सोलंकी रखा गया। उसको राज्य करने के लिए अनहल पट्‌टन दिया।

तीसरे देवता महादेव ने दूब लेकर एक पुतली वनायी और गंगा जल में स्नान कराकर अग्निकुण्ड में डाल दी। उसके साथ ही मंत्रों का पाठ हुआ। मंत्रों के उच्चारण होते ही धनुप-बाण हाथ में लिये हुए कृष्ण वर्ण मूर्ति का एक वीर पुरुप अग्निकुण्ड से निकला। असुरों के साथ युद्ध करने के लिये उसको प्रस्तुत न देखकर उसका नाम परिहार रखा गया और द्वार की रक्षा का उत्तरदायित्व उसको दिया गया। इसके बाद उसको मरुस्थली के नौ स्थान दिये गये।

चौथे देवता विष्णु ने दूब को अपने हाथों में लेकर एक पुतली बनायी ओर मंत्रों के उच्चारण के साथ-साथ उस पुतली को अग्नि-कुण्ड मे डाल दिया। उसके बाद ही अपने चारों हाथो में अस्त्र लिये एक वीर पुरुप निकला। चार हाथ होने के कारण उसका नाम चतुर्भुज चौहान रखा गया। उसको मैहकावती नगर का शासन दिया गया। इस समय वह स्थान गढा मंडला के नाम से मशहूर है, उस समय वह मैहकावती के नाम से प्रसिद्ध था।

यज्ञ के कार्य को असुर ओर दानव वडी गम्भीरता से देख रहे थे और उनके दो प्रधान अग्नि-कुण्ड के बहुत समीप खड़े थे। यज्ञ का कार्य समाप्त होने पर चारो शूरवीर क्षत्रिय असुरो और दानवों के साथ युद्ध करने के लिये भेजे गये। उन चारों क्षत्रियो ने असुरों के साथ भीपण युद्ध आरम्भ किया। क्षत्रियो के द्वारा जो असुर और दानव कट-कट कर जमीन पर गिरते थे, उनके शरीर से निकलने वाले रक्त से नवीन असुर और दानव पैदा होकर युद्ध करने लगते थे, इससे उस युद्ध के कभी अन्त होने का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। इस दशा मे चारो क्षत्रियो की कुल देवियो ने युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश किया और घायल होकर गिरने वाले असुरों एवम् दानवों के रक्त को पीना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके रक्त

से जो नये असुर और दानव पैदा हो जाते थे, उनका उत्पन्न होना बन्द हो गया। इसलिये युद्ध करने वाले असुरों और दानवों का अन्त हो गया।

चारों क्षत्रियों की जिन कुल देवियों ने युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर असुरों और दानवों के रक्त का पान किया था, उनके नाम इस प्रकार पढ़ने को मिलते हैं:

चौहान की कुलदेवी	....	आशा पूणा
परिहार की कुलदेवी	....	गाजन माता
सोलंकी की कुलदेवी	....	क्यूँज माता
प्रमार की कुलदेवी	....	सञ्चायर माता

असुरों और दानवों का अन्त हो जाने के बाद देवताओं ने आकाश में जयध्वनि की। स्वर्ग से फूलों की वर्षा की गयी। इसके बाद स्वर्ग लोक से देवताओं ने आकर विजयी क्षत्रियों की प्रशंसा की।

क्षत्रियों के छत्तीस वंशों में अग्नि वंश सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि उनके अतिरिक्त जो राजपूत वंश हैं, वे स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। लेकिन जो वंश अग्नि से उत्पन्न हुए हैं, वे श्रेष्ठ और पवित्र हैं।

चन्द कवि का आश्रय लेकर हमने ऊपर लिखा है कि परशुराम के द्वारा क्षत्रिय राजाओं के मारे जाने पर यज्ञ का जो अनुष्ठान हुआ, उसमें ऐसे क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई जो राक्षसों और दानवों का नाश कर सकें। हमें इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का तर्क नहीं करना चाहिये। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। लेकिन चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ में जो इस प्रकार का वर्णन किया है, उसमें सत्य है, परन्तु उस सत्य को इतिहास का रूप नहीं दिया गया। एक इतिहासकार की तो एक बात का अनुसंधान करना ही पड़ेगा कि क्षत्रिय राजाओं के अभाव में बढ़ती हुई अराजकता को नष्ट करने के लिए और अत्याचारियों को निर्मूल करने के लिये जो चार शूरवीर क्षत्रिय यज्ञ के द्वारा उत्पन्न किये गये, वे कौन थे? उस समय का इतिहास यह था कि अच्छे शासकों का पूर्ण रूप से अभाव था और उस अभाव में शासन का नियंत्रण नहीं रहा था। इसीलिये सभी प्रकार की अशान्ति और अव्यवस्था पैंदा हो गयी थी। उस समय विश्वामित्र को चिन्तित होकर उस यज्ञ का अनुष्ठान करना पड़ा। उस समय जो लोग पैंदा हुये और समाज के अधिकारियों के द्वारा स्वीकृत हुये, वे या तो यहॉ के आदिम निवासी रहे होंगे अथवा वे कोई विदेशी थे। उनकी शक्तियों को समझ कर ब्राह्मणों ने उनको शासन के अधिकारियों के रूप में स्वीकार किया। इन दो के सिवा किसी तीसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि वे कौन थे? इसका निर्णय आसानी के साथ किया जा सकता है। यहॉ के आदिम निवासियों की शारीरिक आकृति और बनावट के साथ यदि विदेशियों की तुलना की जाये तो समझ में आ सकता है कि वे लोग दोनों में से कौन थे? यहाँ के आदिम निवासी लोगों का रंग काला होता है और उनमें किसी प्रकार की श्री और सुन्दरता नहीं होती। लेकिन यज्ञ-कुण्ड से जो चार क्षत्रिय पैंदा किये गये, वे प्राचीन राजाओ के समान शक्तिशाली, श्रीयुत और प्रभावशाली थे। अग्नि-कुण्ड से पैदा होने वाले चारों क्षत्रियों में बल और पराक्रम ठीक उसी प्रकार पाये जाते हैं, जिस प्रकार प्राचीन भारत में सीथियन लोगों में पाये जाते थे।

चौहान,परिहार, सोलंकी और प्रमार-चार क्षत्रिय वंश अग्नि से उत्पन्न हुए थे। इन चारों में चौहान वंशी क्षत्रिय अधिक प्रवल थे और इसलिये उन्होंने अपने राज्य को वड़े विस्तार से कायम कर लिया था। प्रमार वंशी राजाओं का शासन उन दिनों में वड़े विस्तार से फैलता जा रहा था। उसके विस्तार के सम्वन्ध में एक प्रवल लोकोक्ति अव तक पायी जाती है, लेकिन चौहान राजाओ के शासन के विस्तार को खोजना वहुत कुछ कठिन मालूम होता है। उस समय के मिले हुए प्रमाणों को पढ़ने से जाहिर होता है कि जिस समय प्रमार वंशी राजाओं का वैभव वढ़ रहा था, चौहानों का गौरव लगातार घटता जा रहा था।

चौहान वंश के इतिहास को पढ़ने से जाहिर होता है कि उनका शासन किसी समय बड़े विस्तार में फैला हुआ था। लेकिन वह अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सका। मैहकावती से माहेश्वरी पुरी तक नर्मदा नदी के दोनों किनारों के उत्तर और दक्षिण में चौहानों का राज्य था। उस वंश के प्रवल और शक्तिशाली होने के कारण माण्डू, आमेर,गोलकुण्डा और कोकन तक एवम् उत्तर की तरफ गंगा के किनारे तक चौहानो का राज्य फैला हुआ था। प्रसिद्ध कवि चन्द ने चौहान राजाओ के वैभव का अपने ग्रन्थ में वड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसने लिखा है कि चौहान वंशी राजाओं ने अपने वल और पराक्रम से ठट्ठा, लाहौर, मुलतान और पेशावर आदि पर अधिकार करके भारत में अपने राज्य का विस्तार किया था।[×] वहाँ पर जो असुर लोग शासन करते थे, वे चौहानो के भय से भाग गये थे। दिल्ली और कावुल में चौहानों का शासन था। चौहानों के द्वारा ही नेपाल का राज्य माल्हन को मिला था।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि गढ़ मण्डला का प्राचीन नाम मैहकावती था।[*] उस मैहकावती के राजाओं की उपाधि वहुत समय से पाल थी। मालूम होता है कि पशुओ का पालन करने के कारण उनको यह उपाधि मिली थी। अहीर वंश के लोगों ने किसी समय समस्त मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। यह अहीर शव्द पाल से वहुत कुछ सम्वन्ध रखता है ओर अहीर जाति उस वंश की शाखा मालूम होती हे। पाल अथवा पालियों का जिन नगरों पर अधिकार था, उनमें भेलसा, भोजपुर, दाप, भोपाल, आइरन और गर्सपुर आदि प्रमुख हैं।

मैहकावती के एक राज वंशज ने-जिसका नाम अजयपाल था-अजमेर राज्य की प्रतिष्ठा की थी ओर वहॉ पर उसने तारागढ़ नाम का एक वहुत मजवूत दुर्ग वनवाया था। प्राचीन राजाओं में अजयपाल का नाम भारतवर्ष में आज तक प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रन्थों से साफ प्रकट होता हे कि वह एक चक्रवर्ती राजा था। लेकिन उसके शासन के समय का ग्रन्थों में

× मुस्लिम इतिहासकार ने इसको स्वीकार करते हुए लिखा है कि सम्वत् 746 मे मुसलमान जिस समय पहले पहल भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिये आये थे,उस समय लाहौर और अजमेर में चौहान वंश के हिन्दू राजाओं का शासन था और वहाँ का राजा मुस्लिम आक्रमण का सामना करने के लिये तैयार हुआ था। यह वात भी सही है कि अजमेर में चौहानों की राजधानी थी।

* यहाँ के प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि माल्हन चौहान वंश की एक शाखा है। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने के समय समुद्र के तटवर्ती नगरो पर जिम मल्लारी नाम के राजा ने आक्रमण किया था, वह माल्हन वश का था, ऐसा मालूम होता हे। चौहानों की इस शाखा में अन्य कहीं कोई अस्तित्व नहीं मिलता। पाँच सौ वर्ष पहले इस शाखा को कोई नहीं जानता था। इस वश के एक बूँदी नरेश ने किसी माल्हन स्त्री के साथ विवाह किया था।

कोई उल्लेख नहीं मिलता। पाली भाषा में लिखे हुए जो शिलालेख हमको मिले हैं, उनका हम कोई लाभ नहीं उठा सके। पृथ्वीसिंह मैहकावती से अजमेर आया था। उसके आने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु उसके आने का कारण यह मालूम होता है- कि राजा के पुत्रहीन होने की अवस्था में वह अजमेर में आया था। उसकी स्त्री से चौबीस लड़के उत्पन्न हुए। उन दिनों में वहाँ पर बहु विवाह की प्रथा प्रचलित न थी। माणिकराय उसके चौबीस पुत्रों में से एक का वंशज था और वह सन् 685 ईसवी में अजमेर एवम् साँभर का अधिकारी हुआ। कहा जाता है कि माणिकराय के समय से चौहानों के इतिहास को अन्धकार से मुक्ति मिली।

सन् 685 ईसवी के दिनों में से पहले पहल मुसलमानों ने राजताने में प्रवेश किया। उस समय दुर्लभ राय अथवा दूलेराय अजमेर के सिंहासन पर था। मुसलमानों के साथ युद्ध में वह मारा गया। उसका इकलौता सात वर्ष का बेटा दुर्ग के ऊपर खेल रहा था। शत्रुता के द्वारा उसकी भी मृत्यु हुई। दुर्लभराय ने रोशन अली नाम के एक इस्लाम धर्म प्रचारक के साथ अन्याय किया था। उसने अली का अँगूठा कटवा लिया था। इसके बाद वह मक्का चला गया और वहॉ पहुँच कर मूर्ति पूजक राजपूतों के विरुद्ध उसने वहुत सी बातें कहीं। उनसे उत्तेजित होकर मुसलमानों ने सिन्ध के रास्ते से अजमेर मे पहुँचकर आक्रमण किया और दुर्लभराय तथा उसके लड़के को मार कर मुसलमानों ने गढ़ वीटली पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध का वर्णन कहॉ तक सही है, यह नहीं कहा जा सकता। उसके सम्बन्ध में एक दूसरी घटना भी पढ़ने को मिलती है। उससे यह मालूम होता है कि उन्हीं दिनों में खलीफा उमर ने मुसलमानों की एक फौज सिन्ध में भेजी थी। अबुलयास उस सेना का अधिकारी था। आलोर पर अधिकार करने के समय अबुलयास मारा गया। मालूम होता है कि उसके बाद मुसलमानों की उत्तेजित फौज ने मरुभूमि में जाकर राजपूतों पर आक्रमण किया।

किसी भी परिस्थति में अजमेर का अधिकारी दुर्लभराय मारा गया और अजमेर पर शत्रुओं का अधिकार हो गया। इस घटना को चौहान कभी भूल न सके और उसके स्मारक के रूप में लोग अब तक दुर्लभराय के स्वर्गीय पुत्र लौठ की पूजा करते हैं। चन्द कवि के अनुसार दुर्लभराय का उत्तराधिकारी बेटा लौठदेव जेठ महीने की बारहवीं तिथि सोमवार के दिन मरा था।

मुसलमानों के आक्रमण करने और दुर्लभराय के मारे जाने पर माणिकराय बड़े संकट में पड़ गया। अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए वह अपने नगर से भाग गया। उस समय शाकम्भरी देवी के उसको दर्शन हुए। देवी ने माणिकराय से कहा-"तुम इस स्थान पर अपना राज्य कायम करो और अपने घोड़े पर बैठकर तुम जितनी दूर जा सकोगे, उतनी दूर तक तुम्हारे राज्य की सीमा का विस्तार होगा। लेकिन इस बात का स्मरण रखना कि जब तक तुम लौटकर इस स्थान पर न आ जाओ, घोड़े पर चढ़कर जाने के समय तुम किसी समय अपने पीछे की तरफ न देखना।"

देवी के आशीर्वाद को सुनकर माणिकराय उस स्थान से अपने घोडे पर बैठ कर रवाना हुआ। कुछ दूर निकल जाने के बाद वह देवी की आज्ञा को भूल गया। उसने अपने पीछे की तरफ देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जहाँ तक उसकी दृष्टि गयी, सम्पूर्ण मरूभूमि

श्वेत चद्दर से ढँकी हुई दिखायी पड़ी। राजस्थान की प्रसिद्ध नमक की झील की उत्पत्ति का यही कारण कहा जाता है। माणिकराय ने उस झील का नाम देवी के नाम पर शाकम्भरी झील रखा और उस झील के कुछ फासले पर एक छोटे से द्वीप में देवी की प्रतिष्ठा की। उस देवी की प्रतिमा आज तक यहाँ पायी जाती है। शाकम्भरी का नाम वहुत दिनों के वाद विगड़ कर साँभर हो गया है।

माणिकराय ने–जो उत्तरी भारत के चौहानों का आदि पुरुप माना जाता है–अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। उसके कई सन्तानें पैदा हुईं। उसके वंशजों ने पश्चिम राजस्थान में पहुँच कर बहुत–सी शाखाओं की सृष्टि की और सिन्ध नदी तक उनका विस्तार हो गया। खीची, हाडा, मोयल,निरवान, भदौरिया, भूरेवा, धनेरिया अथवा यंधेरिया और वाचडेवा आदि समस्त शाखाये माणिकराय के वंशजों के द्वारा पैदा हुई हैं। खीची शाखा के लोगों ने दूरवर्ती दोआब में जाकर जो सिन्ध सागर के नाम से प्रसिद्ध है, रहना आरम्भ किया। वहाँ की भूमि का विस्तार वेतवा नदी से लेकर सिन्ध नदी तक अड़सठ कोस है। उसकी राजधानी का नाम खीचीपुर पाटन था। हाड़ा शाखा के लोग हरियाणा प्रान्त के असी अथवा हाँसी नामक स्थान को जीतकर वहाँ रहने लगे और उनकी एक शाखा गोवाल कुण्ड--जो अव गोलकुण्डा के नाम से प्रसिद्ध है–पहुँच गयी और उसके बाद उस शाखा के लोगों ने वहाँ से चलकर आसेर नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। मोयल लोगों ने नागौर के आस–पास के सव स्थानों पर अधिकार कर लिया था। भदौरिया लोगों ने चम्वल नदी के किनारे विस्तृत भूमि पर अधिकार कर लिया। वह भूमि उसी शाखा के नाम से आज तक भदावर नाम से प्रसिद्ध है और अव तक उन्हीं के अधिकार में है। धुँधेँरिया शाखा के लोगों ने शाहाबाद जाकर रहना आरम्भ किया था। यह स्थान कुछ दिनों के वाद कोटा की हाड़ा शाखा के अधिकार में चला गया। उनमें से एक शाखा के लोगों ने नारोल में रहना आरम्भ किया था।[×] परन्तु उन लोगों ने अपने मूल वंश चौहान को कभी नहीं छोड़ा।

माणिकराय के वंशजों ने मरुभूमि में फैलकर बहुत से स्थानों परअधिकार कर लिया था। उनमें से कुछ लोगों ने स्वतंत्रता पूर्वक शासन किया और कुछ लोगों ने स्वजातीय राजाओं की अधीनता में शासन किया।

जागा नामक ग्रन्थ में माणिकराय से लेकर बीसलदेव तक ग्यारह राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है। हर्पराज के बल–पौरूप की प्रशंसा जागा तथा हमीर रासा नामक ग्रन्थों

× नारोल अथवा नाडोल किसी समय विलकुल सम्पन्न था। अनेक वार्तो के द्वारा इस वात के प्रमाण पाये जाते हैं। आठवीं शताब्दी से लेकर वारहवीं शताब्दी तक वह अपनी समृद्धि के लिए विख्यात रहा। सन् 983 ईसवी में राव लाखनसी वहाँ के सिंहासन पर था। उसने नाहर वाला के राजा के साथ युद्ध किया। ग्रन्थों में इस वात के उल्लेख पाये जाते हैं कि सम्वत् 1039 में चौहान राजा ने पाटन और मेवाड़ से कर वसूल किया था। उन दिनों में उसकी शक्तियाँ अत्यन्त प्रवल थीं, सुवुक्तगीन और उसके लड़के महमूद ने लक्ष्मण के शासन काल में नाडोल पर आक्रमण किया था और भयानक रूप से उसे लूट कर वहाँ के दुर्ग को वुरी तरह से नष्ट कर दिया था। लेकिन समय का परिवर्तन हुआ। परिस्थितियों को वदलने में देर नहीं लगती। नाडोल के राजा ने अपने खोये हुए गौरव को फिर से प्राप्त कर लिया।

तेरहवीं शताब्दी मे इस वंश के लोगों ने अलाउद्दीन के साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में वे लोग अधिक सख्या में मारे गये थे। उन्होंने नाडोल के राजा शहाबुद्दीन को कर देकर उसकी अधीनता स्वीकार ली थी।

में विशेप रूप से की गयी है। हर्पराज का प्रताप अरावली के शिखर से लेकर आवू के शिखर तक एवम् पूर्व में चम्वल नदी तक फैला हुआ था। उसने सम्वत् 812 से 827 तक शासन किया। युद्ध में उसने आश्चर्यजनक पराक्रम का प्रदर्शन करके अन्त में अपने प्राणों की आहुति दी। तवारीव फरिश्ता में लिखा है कि एक सौ तैंतालीस हितरी में मुसलमानों की संख्या वहुत वढ़ गयी थी। वहुत वड़ी संख्या में उन्होंने पर्वत से आकर किरमान, पेशावार और दूसरे अनेक प्रसिद्ध स्थानों पर अधिकार कर लिया। अजमेर के राजा का वंशीय लाहौर में शासन करता था। उसने इन अफगानों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अपने भाई को भेजा। उसके साथ कावुल के खिलजी औरगोरी जाति के लोगों ने मिलकर अफगानों के साथ युद्ध किया। लेकिन अन्त में उनको इस्लाम धर्म मन्जूर कर लेना पड़ा। पाँच महीने के समय में राजपूत घवराकर और परास्त होकर भाग गये। लेकिन शीतकाल के दिन व्यतीत हो जाने पर राजपूतों ने नयी सेना के साथ फिर से युद्ध की तैयारी की और राजपूतों की सेना पेशावर के मध्यवर्ती स्थानों में पहुँच गयी। दोनों तरफ से फिर भयानक संग्राम आरम्भ हुआ। उस युद्ध में कभी राजपूत विजयी होकर अफगान सेना को परास्त करके कोहिस्तान तक अधिकार कर लेते और कभी अफगानी फौज राजपूतों को पराजित करके पीछे हटा देती।

अजमेर का राजा इन युद्धों में कभी शामिल हुआ था अथवा नहीं, इसका कोई उल्लेख राजपूतों के ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलता। हमीर रासा में लिखा है कि हर्प राजा के वाद दुजगनदेव अथवा दुर्जदेव सिंहासन पर वेठा था। दुजगनदेव ने नासिरूद्दीन नामक मुस्लिम सेनापति को युद्ध में पराजित करके उसके वारह सौ घोड़े अपने अधिकार में कर लिये थे। महमूद के पिता सुवुक्तगीन का दूसरा नाम नासिरुद्दीन था। अलप्तगीन के पन्द्रह वर्पो के शासन में सुवुक्तगीन अनेक वार भारतवर्प पर आक्रमण करने के लिए आया था।

इसके वाद वीसलदेव के समय तक की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना नहीं मिलती। राजा वीसलदेव के पिता का नाम हाड़ा जाति की वंशावली के अनुसार, धर्मराज था। परन्तु जागा की वंशावली में उसका नाम वेलनदेव लिखा गया है। अनुसंधान करने से पता चलता हे कि उसका वास्तविक नाम वेलनदेव था। वह धार्मिक मनुष्य था। इसलिए उसको धर्मराज की उपाधि मिली थी। दिल्ली के विजय स्तम्भ में एक प्रस्तर पर लिखा हुआ जो कुछ पढ़ने को मिला है उससे भी इसी वात का समर्थन होता है कि सुलतान महमूद ने अन्तिम वार जव भारत पर आक्रमण किया था, उस समय वेलनदेव सिंहासन पर था। उसने युद्ध करके सुलतान महमूद को पराजित किया था और उसे अजमेर से भगा दिया था। परन्तु वह भी उस युद्ध में मारा गया।

गोगा चौहान नामक एक लड़का वच्चा राजा का था। उसने वहुत गौरव प्राप्त किया और सतलज से हरियाणा तक समस्त विस्तृत जाँगल भूमि को उसने अपने अधिकार में कर लिया था। सतलज नदी के किनारे महलावा "गोगा की मेडी" नामक उसकी राजधानी थी। सुलतान महमूद के आक्रमण से अपनी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए गोगा चौहान ने भयानक युद्ध किया था और अन्त में अपने पैंतालीस लड़कों और साठ भतीजों के साथ वह

युद्ध में मारा गया। राजस्थान के छत्तीस वंशी राजपूत उसकी मृत्यु के दिन उसकी समाधि-मन्दिर में एकत्रित होते हैं। मरुस्थली में गोगा का नाम आज तक प्रसिद्ध है। गोगा के घोड़े का नाम जवादिया था।* इसीलिए अधिकांश राजपूत अपने उस घोड़े का नाम जवादिया रखा करते हैं, जो युद्ध में काम आता है।

ऐसा मालूम होता है कि ऊपर जिस युद्ध का वर्णन किया गया है, वह उस समय हुआ हो, जब महमूद ने भारत के बाकी हिस्सों को जीतने की चेष्टा की थी। उस समय सुलतान महमूद अपनी फौज लेकर मरुभूमि में गया होगा और अजमेर पर उसके आक्रमण करते ही चौहान राजा अपना स्थान छोड़कर भाग गया हो, यह सम्भव हो सकता है। उस दशा में महमूद की सेना ने अजमेर और उसके आस-पास के नगरों को लूटकर विध्वंस और विनाश किया हो, इसका अनुमान किया जा सकता है। उस समय राजपूत राजा ने गढ़ बीठली नामक दुर्ग की रक्षा की। वहाँ पर परास्त और घायल होकर महमूद नाडोल की तरफ भागा और वहाँ पहुँचकर उसने लूटमार की। इसके पश्चात् उसने नहरवाला पर अधिकार कर लिया। सुलतान महमूद ने जिन ग्रामों और नगरों पर अधिकार किया था, वहाँ उसने भयानक अत्याचार किये। इसलिये वहाँ के रहने वाले सभी लोग महमूद के शत्रु हो गये। उस दशा में महमूद को वहाँ के पश्चिमी मरुभूमि के रास्ते से होकर भागना पड़ा और वह रास्ता उसकी फौज के लिए अत्यन्त भयानक हो गया।

कवि चन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में बीसलदेव के शासन का समय सन् 865 लिखा है। परन्तु यह किसी प्रकार सही नहीं मालूम होता।

उस समय के समस्त हिन्दू राजाओं में बीसलदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध था। उसके इस प्रताप और गौरव को सुनकर सुलतान महमूद लुटेरों की एक बहुत बड़ी फौज लेकर इस देश में आया था। उस युद्ध में अनहिलवाड़ा के चालुक्य राजा को छोड़कर सभी राजाओं ने बीसलदेव का साथ दिया था। क्योंकि वे सभी उसकी प्रधानता में शासन करते थे। उस युद्ध में शामिल होने के लिए कितने राजा अपनी सेनाओं के साथ बीसलदेव की तरफ आये थे, उनका वर्णन चन्द कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस प्रकार किया है।

गोयलवाल जैत पर विश्वास करके अजमेर के राजा ने कहा-"मैं आपकी राजभक्ति पर विश्वास करता हूँ। चालुक्य राजा को कहाँ आश्रय मिलेगा।" यह कहकर बीसलदेव ने

---

* राजपूतों के एक ऐतिहासिक ग्रन्थ में लिखा है कि गोगा चौहान के पहले कोई लड़का नहीं था। उससे वह चिन्तित रहा करता था। एक दिन उसकी कुलदेवी ने गोगा को दो जव दिये। गोगा ने उनमें से एक जव अपनी रानी को खिलाया और दूसरा अपनी घोड़ी को। जव खाने से उस घोड़ी के एक बच्चा हुआ। जव खाने से उत्पत्ति होने के कारण घोड़ी के उस बच्चे का नाम गोगा ने जवा दिया रखा। यह जवादिया घोड़ा उतना ही प्रसिद्ध हुआ, जितना कि गोगा चौहान स्वयं विख्यात हुआ। उदयपुर के राणा ने काठियावाड़ का एक घोड़ा मुझे उपहार में दिया था, इसका नाम भी जवा दिया था। वह घोड़ा देखने में बहुत साधारण था। परन्तु युद्ध में वह अपनी अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन करता था। उन दिनों में युद्ध में शिक्षित घोड़े को बहुत महत्त्व दिया जाता था। लेकिन अब उस प्रकार के घोड़े नहीं हैं।

† राजा बीसलदेव ने एक हजार वर्ष पहले इस सरोवर को बनवाया था। वह आज तक इसी नाम से प्रसिद्ध है। बादशाह जहाँगीर ने इस सरोवर के समीप एक राजप्रसाद बनवाया था और इंगलैण्ड के बादशाह प्रथम जेम्स के भेजे हुए दूत को उसने अपने यहाँ इसी प्रासाद में ठहराया था।

अपनी सेना के साथ अजमर नगर से रवाना होकर वीसल[1] नामक सरोवर के तट पर पहुँचकर मुकाम किया और अपने अधिकारी सामन्त राजाओं को सेना के लिए संदेश भेजा। मन्डोर के मोहन सिंह परिहार ने सेना के साथ वहाँ आकर वीसलदेव की वन्दना की।× उसके वाद गहिलोत तोमर के साथ पावासर और मेवात के राजा मेव के साथ गौड़ जाति के राम और दूसरे नरेश आये। द्रोणपुर के मोयल राजा ने कर भेजकर अपने न आ सकने के लिये क्षमा प्रार्थना की। दोनों हाथ जोड़े हुए वालोज राजा आया। वामूनी के राजा ने सिन्ध में तैयारी की और वहाँ पर आकर पहुँचा। भटनेर से नजर आयी। ठट्ठा और मुलतान से नालवली आकर उपस्थित हुए। देरावर से भूमिया और भाटी लोग वहाँ आकर एकत्रित हुये। मालनवास के यादव भी वहाँ पर आए। मौर्य, वड़गूजर और अन्तर्वेद के कछवाहा लोग भी वहाँ पर पहुँच गये। मीणा लोगों ने आकर वीसलदेव के चरणों की वन्दना की। तख्तपुर की सेना वहाँ पर आकर उपस्थित हुई। निर्माण, डोडा, चन्देल और दाहिमा के राजाओं के साथ उदय, प्रमार आदि राजा लोग अपने घोड़ों पर वैठकर वहाँ पर पहुँच गये।

चन्द कवि ने आपने वाले राजाओं में चित्तौड़ के गहिलोत राजा का भी उल्लेख किया है। चित्तौड़ का राजा अजमेर के राजा के साथ मैत्री का सम्वन्ध रखता था। उस समय चित्तौर के सिंहासन पर तेजसिंह था। वारहवीं शताब्दी में वीसलदेव के वंशज दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के साथ तेजसिंह के पौत्र समरसिंह की मित्रता थी और तेजसिंह ने जिस प्रकार वीसलदेव का साथ दिया था, समरसिंह ने भी पृथ्वीराज का साथ देकर अनहिलवाड़ा के राजा के विरुद्ध युद्ध किया था। तेजसिंह संवत् 1120 सन् 1064 ईसवी में चित्तौड़ के सिंहासन पर वैठा और वह वीसलदेव की तरफ से मुसलमानों के साथ युद्ध करने के लिये गया।

राजा वीसलदेव का संदेश पाकर तोमर राजा भी गया था। इससे जाहिर होता है कि यह भी उसकी अधीनता में था। मेवाड़ की मेव जाति ने वाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। गौड़ जाति ने उन दिनों में विशेप प्रसिद्धि पायी थी और चौहानों के सामन्त राजाओं में उसका विशेप स्थान था। वालोच वंश के लोगों ने भी उस युद्ध के बाद इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वासुनी वंश का उल्लेख दूसरे स्थानों पर मनवासा के नाम से किया गया है। इसका प्राचीन नाम देवल था। उससे कुछ दूरी पर ठट्ठा नगर वसा हुआ है। मुलतान और नालवनी के लोगों पर चौहानों का उस समय शासन था। मीर लोग अरावली पर्वत के शिखर पर रहा करते थे। मिरवाण का आधुनिक नाम टोडा है। यह टोंक के समीप वसा हुआ है। डोडा और चन्देल वंश के राजपूतों ने उन दिनों में वहुत प्रसिद्धि पायी थी। चन्देलों ने किसी समय पृथ्वीराज के साथ युद्ध किया था और पृथ्वीराज ने चन्देलों से महोवा, कालिन्जर एवम् सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड लेकर उन पर अपना अधिकार कर लिया था। दाहिमा वियाना के राजा का नाम है। वह धरणीधर के नाम से भी प्रसिद्ध था। उदय का अभिप्राय उदयादित्य से है। उसने इस देश में वहुत गौरव प्राप्त किया था।

माणिकराय से लेकर चौहान सम्राट पृथ्वीराज तक जितने प्रमुख राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है, उनमें वीर वीसलदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इसलिये उसके समय का निर्णय करना यहाँ पर आवश्यक मालूम होता है। उस समय का कोई भी उल्लेख करने के पहले चौहान वंश की वशावली नीचे दी जाती है।

× इससे प्रकट होता है कि परिहार लोग अजमेर के चौहानों की अधीनता में थे।

चौहानों की वंशावली

संवत्	नाम	विवरण
	अनल	अथवा अग्निपाल, चौहान वंश का आदि पुरुष जो विक्रमादित्य से 650 वर्ष पहले अग्नि कुण्ड से पैदा हुआ था। उसके तुरस्क लोगों को जीतकर मैहकावती से राजधानी कायम की। फिर कोकन, असीर और गोलकुण्डा को विजय किया
	सुबाह	
	मालन	इसके वंशज मालन चौहान कहे जाते हैं।
सं. 202	गलनसूर	
	अजयपाल	इसने अजमेर नगर की स्थापना की।
स 741	दूलाराय	सन् 685 ईसवी में मुसलमानों के द्वारा मारा गया और उसका राज्य अजमेर मुसलमानों के अधिकार में चला गया।
	माणिक राय	इसने सॉभर में चौहानों की राजधानी कायम करके सम्भरीराव की उपाधि धारण की। उस समय से चौहान सम्भरीराव कहे जाते हैं।
	हर्षराज	
	बीरबीलन देव	
सं 1066-1130	वीसलदेव	
	सारङ्गदेव	छोटी अवस्था में मारा गया।
	आना	अजमेर में उसने अपने नाम पर आनासातर ताल बनवाया, जो अब तक प्रसिद्ध है।

आना
जयपाल
हर्षपाल
अजयदेव
अथवा
आनन्ददेव
विजयदेव
उदयदेव
सोमेश्वर
कान्हराय
जेतगोयलवाल
ईश्वरीदास
पृथ्वीराज
रेनसी
चाहड़देव
लखनसी
विजयदेयराज
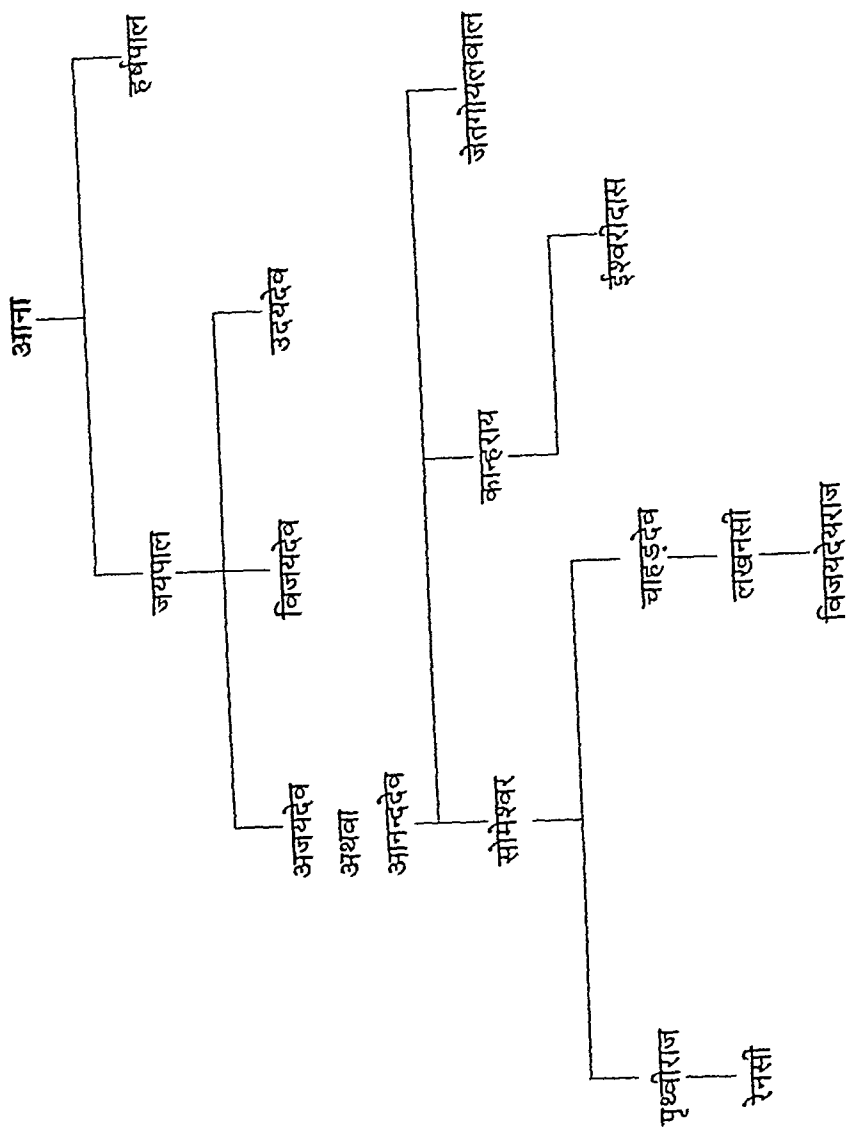
चौहान वंशावली में जिन नामों का उल्लेख किया गया है, उनके विवरण अत्यन्त संक्षेप में इस प्रकार हैं, जो कुछ नामों से सम्बन्ध रखते हैं:

अनल अथवा अग्निपाल प्रमार वंश का आदि पुरुप था। ऐसा भी कुछ लोगों का मत है।

हर्पराज ने नाजिमुद्दीन अथवा सुबुक्तगीन को परास्त किया था।

वीर वीलनदेव अथवा वीलनदेव महमूद गजनवी के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया था। इसका दूसरा नाम धर्मराज भी है।

सोमेश्वर दिल्ली के तोमर राजा अनगपाल की बेटी रूका बाई के साथ ब्याहा था।

ईश्वरीदास का आकर्पण इस्लाम की तरफ हो गया था।

पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और सन् 1193 ईसवी में शहाबुद्दीन गौरी के द्वारा मारा गया।

रेनसी पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी बनाया गया। उसका नाम दिल्ली के स्तम्भ में लिखा हुआ मिलता है।

विजयदेव राज दिल्ली पर होने वाले आक्रमण में मारा गया।

लखनसी के इक्कीस लड़के हुए। उनमें सात लड़के विवाहिता रानियों से पैदा हुए थे। उनके द्वारा चौहान वंश की सात शाखाओं की प्रतिष्ठा हुई।

बीसलदेव से पृथ्वीराज तक और भी छ: राजाओं के नामों के उल्लेख मिलते हैं। लेकिन इन सब में बीसलदेव और पृथ्वीराज का नाम अधिक प्रसिद्ध है। वास्तव में पृथ्वीराज ने बीसलदेव की तरह वीरता और ख्याति में गौरव प्राप्त किया था। उसने अनेक युद्धों में मुसलमानों तथा दूसरे शत्रुओं को पराजित किया था।

बीसलदेव के अधीन जो राजा अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिए आकर एकत्रित हुए थे, कवि चन्द के ग्रन्थ में उनका उल्लेख मिलता है। लेकिन उनमें केवल चार राजाओं के समय का जिक्र किया गया है और हम उनमें केवल एक राजा के समय का ही सही रूप में वर्णन कर सके हैं। शेष तीन राजाओं के समय का निर्णय अप्रत्यक्ष है। इसीलिए उनको छोड दिया है। पहले राजा भोज का लडका धार का स्वामी उदयादित्य प्रमार था। मैंने अनेक लिपियों और शिलालेखों के आधार पर माना है कि उदयादित्य का समय सन् 1100 से 1150 तक था। इस दशा में जब उदयादित्य का सेना लेकर बीसलदेव के यहाँ आना साबित होता है तो साफ जाहिर है कि बीसलदेव का समय उदयादित्य के समय के साथ-साथ था। इसके सिवा, कुछ प्रमाण और भी इसकी सहायता में हमको मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं:-

कवि चन्द ने देरावल के भट्टी लोगों का बीसलदेव के पास आना स्वीकार किया है। उस दशा में भट्टी लोगों का नगर और उनकी वर्तमान राजधानी जैसलमेर के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

जमुना और गंगा के मध्यवर्ती अन्तर्वेद के कछवाहों का आना कवि चन्द्र के अनुसार साबित हे। इससे भी उस समय का अनुमान होता है। क्योंकि उस समय कछवाहो ने नरवर से जाकर अम्बेर में अपनी राजधानी कायम की थी और वह उस समय प्रसिद्ध नहीं हुई थी।

मेवाड़ के शिलालेखों से हमें जानने को मिला है कि समरसिंह का पितामह तेजसिंह राजा वीसलदेव का मित्र था। कहा जाता है कि बीसलदेव चौसठ वर्ष तक जीवित रहा। उससे भी उसके समय का निर्णय किया जा सकता है। इसके सम्वन्ध में अनेक ग्रन्थों के अलग-अलग उल्लेखों का यहाँ पर वर्णन करके हम अनावश्यक एक भ्रम नहीं पैदा करना चाहते। इसलिये सभी ग्रन्थों, शिलालेखों और दूसरे ऐतिहासिक आधारों को समझकर जो हमने बहुत सही समझा है, उसी का हमने ऊपर उल्लेख किया है। शेष सब छोड़ दिया है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजा बीसलदेव दिल्ली के तोमर राजा जयपाल सिंह, गुजरात के राजा दुर्लभ और भीम, धार के राजा भोज और उदयादित्य एवम् मेवाड़ के राणा पद्मसिंह और तेजसिंह का समकालीन था। बीसलदेव ने जिस मुस्लिम बादशाह के साथ युद्ध की यह तैयारी की थी, वह निश्चित रूप से महमूद रहा होगा, बिना किसी विवाद के इसे माना जाएगा। बीसलदेव ने उस महमूद को परास्त करके उत्तरी राजस्थान से भगा दिया था। राजा बीरन देव और अजमेर की राजा को सेनाओं से हार कर भारत से अन्तिम बार महमूद सिन्ध की तरफ भागा था। वह युद्ध हिजरी 417,सन् 1026 में हुआ था। इस समय को चन्द कवि ने सम्वत् 1086 लिखा है। लेकिन इन दोनों उल्लेखों में समय का कोई विशेष अन्तर नहीं है।

वीसलदेव ने गुजरात के राजा के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की थी और वहाँ पर उसने अपने नाम पर वीसल नगर बसाया था। उसका वर्णन विस्तार के साथ आगामी पृष्ठों में प्रसिद्ध पृथ्वीराज के शासन के साथ किया गया है। कालिक जुहनेर में बीसलदेव का धौंध नामक रहने का जो स्थान था, वह अब तक मौजूद है और वीसल का धोध कहलाता है।

हाड़ा वंश के राजा कवि गोविन्द राम के राज ग्रन्थ में लिखा है कि वीसलदेव के लड़के अनुराज से हाड़ा वंश की उत्पत्ति हुई है लेकिन खीची वंश का कवि लिखता है कि अनुराज माणिक राय का लड़का था और वह खींची वंश का आदि पुरुष था। हमने यहाँ पर हाड़ा कवि का अनुसरण किया है।

गोविन्दराम ने लिखा है कि अनुराज को सीमा पर स्थित आसिका-जिसे असि अथवा साँसी भी कहा जाता है-पर अधिकार प्राप्त हुआ था। अनुराज के लड़के अस्थिपाल और सिंध सागर के खीचीपुर पाटन के आदि पुरुष अजयराज के लड़के अनुगराज ने अपने सौभाग्य की परीक्षा के लिए गोलकुण्डा के चौहान राजा रणधीर की अधीनता में जाकर रहने का विचार किया था। लेकिन उन्हीं दिनों में कजलीवीन के बर्वरों ने एक साथ असि और गोलकुण्डा पर आक्रमण किया। चौहान राजा रणधीर ने उनका समाना किया और युद्ध करते हुए वह अपने लड़को के साथ मारा गया। राजा रणधीर के वंश में सुराबाई नाम की उसकी लड़की बच गयी। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए गोलकुण्डा छोड़कर असि की तरफ रवाना हुई। मारे जाने के बाद राजा रणधीर के नाम की शाखा चली। उन्हीं दिनों मे आक्रमणकारियों ने असि पर भी आक्रमण किया था। उनके भय से असि का राजा अनुराज भाग गया। लेकिन उसके लड़को ने युद्ध की तैयारी की और अपने नगर के बाहर जाकर उन्होंने आक्रमणकारियो का सामना किया। दोनों ओर से भयानक युद्ध उत्पन्न हुआ। उस युद्ध में अस्थिपाल पूरी तरह से घायल

हुआ। परन्तु उसी समय आक्रमणकारी सेना युद्ध-क्षेत्र से भागने लगी। जख्मी अस्थिपाल ने शत्रु सेना का पीछा किया। लेकिन वह अधिक दूर तक न जा सका और अचेत होकर गिर पड़ा। इसी समय सुरावाई आश्रय पाने के लिये गोलकुण्डा से आ रही थी। वह भूख,प्यास और पैंदल चलने के कारण थकावट से एक वृक्ष के नीचे बैंठ गई। वह वृक्ष पीपल का था। उसके नीचे सुरावाई मृतप्राय हो रही थी। उसकी इस अवस्था में चौहानों की कुल देवी आशापूर्णा ने आकर उसको दर्शन दिये। देवी को देखकर सुरावाई ने उससे अपनी विपद का वर्णन किया ऑंर उसने उसको वताया कि वह किस दशा में गोलकुण्डा से भागकर यहॉं आयी, किस प्रकार उसका पिता अपने वारह पुत्रों के साथ आक्रमणकारियों के द्वारा मारा गया।

सुरावाई के मुख से उसकी करूण कहानी को सुनकर देवी ने संतोप देते हुए उससे कहा:-''अव तुम घवराओ नहीं। इसलिये कि तुम्हारे एक सजातीय चौहान ने आक्रमणकारियों को परास्त करके भगा दिया हे।'' यह कहकर सुराबाई को साथ में लेकर देवी उस स्थान पर गयी, जहॉं पर अस्थिपाल घायल अवस्था में अचेत पडा था। देवी की सहायता से अस्थिपाल ने स्वास्थ्य लाभ किया और उसके पश्चात् उसने असीर के प्रसिद्ध दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

हाड़ा वंश के प्रतिष्ठाता अस्थिपाल ने सन् 1025 ईसवी मे असीर पर अधिकार प्राप्त किया था। सुलतान महमूद मुलतान होकर मरुभूमि के रास्ते से हिजरी 714 सन् 1022 ईसवी में अजमेर पहुँचा था। इस दशा मे हमें सभी प्रकार से अधिकार यह निर्णय करने के लिये है कि अस्थिपाल के पिता अनुराज ने उसी समय अपने प्राणों की वलि देकर असि-राज्य का अधिकार खोया था, जव महमूद ने अजमेर पर आक्रमण करके उसको विध्वंस किया था।

हिन्दू कवि ने कजली वन को असूर कहकर अपने काव्य में लिखा हैं। लेकिन मुस्लिम इतिहासकार ने कहीं पर भी इस वात का उल्लेख नहीं किया कि सुलतान महमूद किस समय अपनी सेना के साथ दक्षिण गया और कव उसने गोलकुण्डा को जीत कर अधिकार किया। कवि गोविन्द राम ने जिस कजली वन की वर्वर जाति का वर्णन किया है, महमूद सुलतान उस कजली वन का शासक था, इस वात को स्वीकार करने के लिये कोई ठोस प्रमाण होना चाहिये। यद्यपि यह वात सही है कि यदुवंशी राजा गज से गजनी की सृष्टि हुई थी फिर भी यदि महमूद दक्षिण की तरफ गया था तो निश्चित रूप से मुस्लिम इतिहासकार को उसका वर्णन कहों न कहीं पर करना चाहिये था। ऐसा मालूम होता है कि दक्षिण में किसी पहाड़ी स्थान का नाम कजली वन रहा होगा। यह कजली वन कहाँ था, इसका निर्णय करने के लिये हमारे पास कोई सामग्री नहीं है।

उत्तर ओर दक्षिण भारत मे जो राजा थे, उनके वंशजों ने वहॉं के प्राचीन निवासियों के साथ मिलकर मराठा नाम की एक नयी जाति की उत्पत्ति की और यादव, तोमर एवम् प्रमार आदि अपने प्राचीन राजवशों के नामों को छोड़कर देश के जिस भाग में पैदा हुये, उसी के नाम से नीमालकर, फालकिया और पाटनकर आदि नामों से प्रसिद्ध हुये।

अस्थिपाल के एक लडका था, चन्द्रकर्ण उसका नाम था। चन्द्रकर्ण के लोकपाल नामक लड़का पैदा हुआ। लोकपाल के दो लड़के हुये। एक का नाम था हमीर ओर दूसरे का नाम था गम्भीर। वे दोनों सम्राट पृथ्वीराज की अधीनता में थे और कई युद्धों मे उन्होंने अपनी

वीरता का परिचय दिया था। सम्राट पृथ्वीराज की अधीनता में एक सौ आठ राजा थे, उनमें इन दोनों भाइयों ने अधिक ख्याति पायी थी और इसीलिये सम्राट उनका अधिक सम्मान करता था।

पृथ्वीराज ने कन्नौज के राजा जयचन्द की लड़की अनंगमञ्जरी-जो संयोगिता के नाम से प्रसिद्ध थी- का अपहरण किया था, उस समय जयचन्द के साथ उसका भयानक संग्राम हुआ। उस युद्ध में हमीर और गम्भीर दोनों भाई सम्राट का पक्ष लेकर बड़ी बहादुरी के साथ लड़े थे। हाड़ाराव हमीर ने अपने छोटे भाई गम्भीर के साथ घोड़े पर बैठे हुए पृथ्वीराज के पास जाकर कहा था।

''जंगलेश, हम जयचन्द की सेना के साथ युद्ध करेंगे, आप अपने लिये आवश्यक कार्यक्रम बनाइये।''*

राजा जयचन्द ने अपनी लड़की संयोगिता का स्वयंवर किया था। उसमें सम्राट पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण किया। इसके फलस्वरूप जयचन्द और पृथ्वीराज में भीषण युद्ध हुआ। जयचन्द के अधीन सभी राजा अपनी सेनाओं के साथ जयचन्द की सहायता में युद्ध करने के लिये आये। उनमें काशी का राजा भी था। युद्ध में हमीर ओर गम्भीर ने काशी के राजा पर आक्रमण किया और हमीर ने उस समय इतना भयानक युद्ध किया कि उससे एक बार जयचन्द के पक्ष की सेनायें विचलित हो उठीं। लेकिन उसके बाद दोनों भाई युद्ध में मारे गये।

हमीर के कालकर्ण नाम का एक लड़का था। कालकर्ण के लड़के का नाम महामुग्ध था। उससे रावबाचा नामक लड़का पैदा हुआ और रावबाचा के लड़के का नाम रामचन्द था।

अलाउद्दीन ने जिन राज्यों का विनाश किया था, उनमें रामचन्द का भी एक राज्य था। उसका असीर गढ़ नामक दुर्ग बहुत मजबूत और सुरक्षित समझा जाता था। लेकिन अलाउद्दीन ने उस दुर्ग को जीतकर रामचन्द का उसके पूरे परिवार के साथ सर्वनाश किया था। उस सहार मे रैनसी नाम का ढाई वर्ष का रामचन्द का एक बालक किसी प्रकार बच गया था। वह बालक चित्तौड़ के राणा का भान्जा था, इसलिए वह राणा के पास रामचन्द के मारे जाने पर भेज दिया गया। वहाँ रहकर रैनसी बड़ा हुआ और युद्ध की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसने अपनी सेना लेकर भैंसरोड पर आक्रमण किया और वहाँ के सरदार दूँगा को भगा दिया।

भैंसरोड पहले मेवाड़ के राज्य में शामिल था। अलउद्दीन के चित्तौड पर आक्रमण करने और उसको विध्वंस करने के बाद राणा की शक्तियाँ निर्बल पड गयी थीं। उस समय अवसर पाकर दूँगा ने भैंसरोड पर अधिकार कर लिया था।

रैनसी× के कोलन ओर रनफर नामक दो लड़के थे। बड़ा लडका कोलन रोग मे व्यथित होने के कारण केदारनाथ की यात्रा करने के लिये चला गया। यह लम्बी यात्रा उसने बिना किसी सवारी के पूरी की और छः महीने तक लगातार चलकर वह बूँदी के पास पहुँचा। वहाँ पर पर्वत से निकली हुई बाण गंगा नामक नदी में उसने स्नान किया। स्नान करने के बाद उसे अनुभव हुआ कि अब मैं आरोग्य हो गया हूँ। उसके बाद वह पठार का राजा हुआ।

---

* जंगलेश, सम्राट पृथ्वीराज की एक उपाधि थी।

× रैनसी का नाम वंश भास्कर मे रतनसिह लिखा है। इसे कहीं-कहीं पर रैनसिंह भी लिखा गया है।

: : पठार मध्य भारत का नाम था। कोलन ने अपने राज्य का दसवाँ भाग अपने छोटे भाई को दे दिया था।

यह पठार पहले मेवाड़ के राज्य का एक भाग था। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके बहुत से गहिलोतों को मार डाला था। उस सर्वनाश से राणा बहुत निर्बल पड़ गया था। इस दशा में वहाँ के प्राचीन निवासी मीर लोगों ने मौका पाकर इस पठार पर अधिकार कर लिया था।

किसी समय प्राचीन काल में प्रमार वंश का राजा हुण इस पठार का शासक था और मैनाल में उसकी राजधानी थी। उस राजधानी में हूण राजा के समय की बहुत सी चीजें अब तक देखने को मिलती हैं। मिली हुई ऐतिहासिक सामग्री से जाहिर होता है कि आठवीं शताब्दी में चित्तौड़ पर पहले-पहल आक्रमण होने पर हूण राजा अंगतसी ने राणा की सहायता में युद्ध किया था। यह भी जाहिर होता है कि प्रसिद्ध बारौली का मन्दिर इसी हूण राजा का बनवाया हुआ है।

कोलन के लड़के राव बांगा ने मैनाल पर अधिकार करके पठार के पश्चिम की तरफ एक शिखर पर बंबावदा नामक दुर्ग बनवाया था। पूर्व की तरफ भैंसरोड, पश्चिम की तरफ बंबावदा और मैनाल पठार राज्य में शामिल थे और वहाँ पर हाड़ा राजा का अधिकार हो गया था। इसके पश्चात् माँडलगढ, बिजोलिया, बेंगू,रतनगढ़ और चौराइतगढ़ आदि अधिकार में आ जाने के कारण पठार राज्य की सीमा पहले से बढ़ गयी थी।

राव बांगा के बारह लड़के पैदा हुये। उन सभी ने अपने वंश और राज्य की उन्नति की। राव बॉगा के बाद राव देवा उसके सिंहासन पर बैठा। राव देवा से हर राज, हथजी और समरसी नामक तीन लड़के पैदा हुये।

हाड़ा राजाओं के बढ़ते हुये वैभव को देखकर दिल्ली के बादशाह का ध्यान उस ओर आकर्पित हुआ। सिकन्दर लोदी इन दिनों में दिल्ली के सिंहासन पर था। उसने हाड़ा राजा को दिल्ली आने के लिए संदेश भेजा। उस संदेश को पाकर राव देवा ने अपने बड़े लड़के को बंबावदा के शासन का अधिकार सौंपा और अपने छोटे लड़के समरसी के साथ वह दिल्ली गया। हाड़ा वंशी कवि के अनुसार राव देवा बहुत दिनों तक दिल्ली मे रहा। दिल्ली के बादशाह ने राव देवा का घोड़ा लेने की कोशिश की। वह किसी प्रकार अपना घोड़ा देना नहीं चाहता था। इस घोडे की कहानी इस प्रकार है: "दिल्ली के बादशाह के पास एक ऐसा घोड़ा था। जो अपने पैरों की टापों को पानी में बिना स्पर्श किये नदी को पार कर जाता था। उस घोड़े की इस प्रशंसा को जानकर राव देवा ने बादशाह के अश्वपाल को रिश्वत देकर मिला लिया और अपने राज्य की एक घोडी से बादशाह के उस घोडे के द्वारा एक बच्चा पैदा करवाया। वह बछेडा कुछ दिनों के बाद घोड़ा हो गया। बादशाह ने उस घोड़े को लेने का इरादा किया। लेकिन राव देवा उसे देना नहीं चाहता था। उसने अपने परिवार के साथ के लोगों को दिल्ली से धीरे-धीरे रवाना कर दिया और सबके चले जाने के बाद वह हाथ में तलवार लिये हुए अपने घोड़े पर बैठकर बादशाह के पास पहुँचा। बादशाह उस समय अपने महल के एक बरामदे में था। उसे देखकर घोड़े पर चढ़े हुए राव देवा ने अभिवादन करते हुए कहा, जहांपनाह, आपके साथ मेरा यह अन्तिम अभिवादन है। मेरी इतनी ही आपसे प्रार्थना है जो आपको बताना चाहता हूँ कि कभी भी किसी राजपूत से उसकी तीन चीजों को पाने की अभिलापा न

करें। उन तीनों चीजों में- पहला उसका घोड़ा है, दूसरी उसकी स्त्री है और तीसरी उसकी तलवार है।"

इतना कहने के बाद राव देवा वहाँ पर रुका नहीं। वह तेजी के साथ दिल्ली से रवाना हुआ और पठार पहुँच गया।

• राव देवा ने बंबावदा का अधिकार अपने बड़े लड़के हरगज* को पहले ही सौंप दिया था। इसलिये वह वहाँ पर नहीं आया और बुन्दानाल की तरफ रवाना हुआ। इसी स्थान पर उसके एक पूर्वज ने अपने एक कठिन रोग से मुक्ति पायी थी। राव देवा वहाँ पहुॅच गया। यहाँ पर मीणा और उसारा जाति के लोग राजा जेता की अधीनता में रहते थे। उन दिनों वहाँ पर कोई नगर नहीं था। केवल पत्थरों पर चलने के लिए पहाड़ी घाटियाँ थीं। वहाँ के मध्यवर्ती स्थान में मीणा लोगों ने अपने रहने के लिए कुटियाँ बनायी थीं। यहाँ के लोग चित्तौड़ के विध्वंस के पहले राणा की अधीनता में रहा करते थे। परन्तु इन दिनों में राणा की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयी थी। इसीलिए रामगढ़ के खीची राजा रावगांगा ने यहाँ पर आकर अधिकार कर लिया था। रावगांगा के अत्याचारों से बचने के लिए मीणा और उसारा लोगों ने उसको कर देना आरम्भ कर दिया था और बहुत दिनों तक वे कर देते रहे। राब देवा ने वहाँ पहुँचकर मीना और उसारा लोगों की इस परिस्थिति को समझा। उसने उन दोनों जातियों की सहायता करने का वचन दिया और उसने इस बात की प्रतिज्ञा की कि भविष्य में अब कभी उनको रावगांगा से डरने की आवश्यकता न होगी। राव देवा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसारा और मीणा लोगों ने उसका विश्वास किया और रावगांगा से मुक्ति पाने के लिए वे लोग प्रतीक्षा करने लगे।

इसके कुछ दिनों के बाद रावगांगा अपनी सेना के साथ कर वसूल करने के लिए बूँदी राज्य की सीमा पर आया। यहीं पर मीणा और उसारा जाति के लोग आकर उसको कर दिया करते थे। उनके न आने पर रावगांगा को आश्चर्य हुआ। उन्हीं दिनों में उसने रावदेवा को घोड़े पर बैठे हुए सेना के साथ आते हुये देखा। उसने तुरन्त पूछा-"कौन आ रहा है?"

प्रश्न के बाद उसे उत्तर मिला-"पठार का राजा आ रहा है।"

राव गांगा की सवारी का घोड़ा भी राव के घोड़े से किसी प्रकार कम न था। उस घोड़े का जन्म भी उसी प्रकार हुआ था, जिस प्रकार राव देवा के घोड़े का। राव गांगा अपने घोड़े पर चढ़कर तेजी के साथ पठार नरेश राव देवा की तरफ रवाना हुआ।

कुछ ही समय के बाद दोनों में युद्ध आरम्भ हो गया। उस युद्ध मे पठार के राजा राव देवा की विजय हुई और राव गांगा युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। राव देवा ने रावगांगा के घोड़े की परीक्षा करने का विचार किया। वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ राव गांगा के पीछे रवाना हुआ। राव गांगा ने घाटी को छोड़ कर चम्बल नदी में प्रवेश किया। राव देवा आश्चर्य के साथ उसकी तरफ देख रहा था। उसके देखते-देखते राव गांगा चम्वल नदी की दूसरी तरफ निकल गया। यह देखकर राव देवा ने प्रसन्न होकर उससे पूछा:-"राजपूत, मैं आपकी प्रशंसा करता हूॅ। आपका नाम क्या है?"

---

* हरराज के बारह लड़के पैदा हुये। हान्नू हाड़ा उनमें सबसे बड़ा था। बम्बावदा का अधिकार उसी को मिला था। पठार के चौवीस दुर्गों पर उसका अधिकार था।

अपने प्रश्न के उत्तर में राव देवा को सुनायी पड़ा- "गांगार खींची।"

उसी समय राव देवा ने अपना नाम बतलाते हुए उससे कहा- "हमारा नाम देवहाड़ा है। हम दोनों एक ही जाति के हैं और हम दोनों भाई-भाई हैं। इसलिए हम दोनों में किसी प्रकार की शत्रुता न होनी चाहिये। यह चम्बल नदी हम दोनों के राज्यों की सीमा है।"

सन् 1342 ईसवी में मीणा और उसारा लोगों के राजा जैत ने राव देवा को अपना राजा मन्जूर किया। राव देवा ने बुन्दानाल के मध्यवर्ती स्थान में बूँदी नामक एक नगर की प्रतिष्ठा की और वह नगर बाद में हाड़ा जाति की राजधानी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी समय चम्बल नदी बूँदी की सीमा निश्चित हुई थी। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद हाड़ा वंश के लोगों ने चम्बल नदी की दूसरी तरफ जाकर बहुत दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया और दिल्ली के बादशाह के सेनापति के साथ मेल करके बूँदी राज्य की सीमा का विस्तार मालवा तक पहुँचा दिया। उसके पश्चात यह विस्तृत राज्य हाड़ावती अथवा हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अध्याय-62
राजधानी बूंदी की स्थापना व राव अर्जुन

सन् 1342 ईसवी में रावदेवा ने बूँदी राजधानी की प्रतिष्ठा की। उसके बाद उसका राज्य हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहां पर राव देवा के हाड़ा वंश के जो लोग रहते थे, उनकी अपेक्षा मीणा लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। उन लोगों ने रावदेवा की अधीनता स्वीकार कर ली थी, लेकिन उनकी स्वतंत्र भावनायें बराबर काम करती रहती थीं। इस बात को रावदेवा समझता था। उन्हीं दिनों में मीणा जाति के एक सरदार ने रावदेवा की लड़की के साथ विवाह करने का इरादा किया और उसने इस विवाह का प्रस्ताव भी रावदेवा के पास भेजा। असभ्य मीणा जाति के सरदार के इस प्रस्ताव को सुनकर मीणा लोगों के साथ रावदेवा का एक विवाद उत्पन्न हुआ।

रावदेवा इस बात को समझता था कि मीणा लोगों के अहंकार का कारण यह है कि उनकी संख्या राज्य में अधिक है। इसलिए उसने समझ-बूझ कर बंबावदा से हाड़ा जाति के और टोडा से सोलंकी वंश के बहुत से लोगों को बुलाया। उनके आ जाने के बाद मीणा और ओसारा लोगों पर एक साथ आक्रमण किया और भयानक रूप से उनका विनाश किया। इस आक्रमण में दोनों जातियों के लोग अधिक संख्या में मारे गये।

रावदेवा ने अपना पहला राज्य बड़े लड़के हरराज को सौंप दिया था और उसके बाद वह दिल्ली चला गया। इसके बाद वह लौटकर अपने उस राज्य में नहीं गया। इन दिनों मे उसने अपना बूँदी का राज्य छोटे लड़के समरसी को सौंप दिया। दूसरी बार उसने राजा का अधिकार छोटे लड़के को क्यों दे दिया, इसको समझने के लिये कोई भी सामग्री हमको नहीं मिली। लेकिन अनुमान से मालूम होता है कि मीणा और ओसारा जाति के लोगों का दमन करने के बाद उसने अपने बुढ़ापे की अवस्था का अनुभव किया। इसलिए उसने शासन करने की अपनी अभिलाषा का परित्याग करके बूँदी राज्य का अधिकार छोटे लड़के को दे दिया। इसके बाद वह बूँदी छोड़कर वहाँ से पाँच कोस की दूरी पर अमरथून नामक एक स्थान पर चला गया और वहीं पर जाकर वह रहने लगा। इसके बाद वह लौटकर फिर कभी न तो बंबावदा गया और न बूँदी राज्य ही गया। राजपूतों की यह प्रथा बहुत पुरानी है कि जब राजा वृद्ध हो जाता है तो वह राज्य का भार उत्तराधिकारी पुत्र को सौंप कर राजधानी से चला जाता है। मृत्यु के बाद जिस प्रकार बारह दिन अपवित्रता के मनाये जाते हैं, राजा के राजधानी से चले जाने के बाद उसी प्रकार बारह दिन अपवित्र समझे जाते हैं। इसके बाद तेरहवें दिन राजधानी छोड़कर जाने वाले वृद्ध राजा की एक प्रतिमा बनायी जाती है और पुरानी प्रणाली के अनुसार उसकी दाह क्रिया की जाती है।

समरसी के तीन लड़के पैदा हुए, बड़े लड़के का नाम था नापाजी,वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा। दूसरे लड़के का नाम हरपाल था, उसको जजवार नामक ग्राम का अधिकार मिला, वह उस स्थान पर जाकर रहने लगा। उससे बहुत से वंशजों की वृद्धि हुई और वे हरपाल पोता के नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरे लड़के का नाम था जैतसी। उसने सबसे पहले चम्बल नदी की दूसरी तरफ अपने राज्य का विस्तार किया। किसी समय वह कैथून के तोमर राजा से मिलने के लिये गया था। वहाँ से लौटने के समय वह भीलों के एक नगर से होकर गुजरा। वह नगर नदी के किनारे पर बसा हुआ था। उसने भीलों के उस नगर पर आक्रमण किया और उनको उसने परास्त किया। उस आक्रमण में बहुत से भील जान से मारे गये। उस नगर से बाहर भीलों का एक दुर्ग था और उसमें एक भील सरदार रहता था। जैतसी ने दुर्ग के उस भील को मरवा डाला और फिर युद्ध देवता भैरों के स्मारक में पत्थर की एक हाथी की मूर्ति बनवाकर उसने वहाँ पर स्थापित की। जिस स्थान पर यह स्थापना हुई, वह कोटा राजधानी के दुर्ग के चार झोंपड़ा नामक स्थान के पास है। कोटिया नामक एक भीलों की जाति से इस कोटा नाम की उत्पत्ति हुई है।

जैतसी और उनके वंशजों ने उस दुर्ग एवम् उसके आस-पास के नगरों तथा ग्रामों पर कई पीढ़ियों तक अपना अधिकार रखा। उसका पाँचवाँ राजा भोनङ्गसी बूँदी के राव सूरजमल के द्वारा अधिकारों से वञ्चित किया गया। जैतसी के सुरजन नाम का एक लड़का था। उसने भीलों के इस स्थान का नाम कोटा रखा और उसके चारों तरफ उसने दीवार बनवा दी। सुरजन के लड़के धीरदेव ने बारह विशाल सरोवर खुदवाये और नगर के पूर्व की ओर एक विस्तृत झील तैयार करवाई, जो उसके नाम पर किशोर सागर के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। उसके लड़के का नाम कन्दल था और कन्दल के लड़के का नाम भोनंगसी था। उसने कोटा को एक बार खोकर फिर से उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वह घटना इस प्रकार है-धाकर और केसरखाँ नामक पठानों ने कोटा पर आक्रमण किया। अफीम और मदिरा का अधिक सेवन करने के कारण भोनङ्गसी को उन्माद रहा करता था। इसलिये वह बूँदी से निकाल दिया गया। उसकी स्त्री अपने परिवार और सरदारों के साथ कैथून नगर चली गयी। उसके आस-पास तीन सौ साठ ग्राम हाड़ा लोगों के थे। निर्वासित होने के बाद कुछ दिनों में भोनङ्गसी की आदतों में सुधार हुआ। उसने मादक पदार्थों के सेवन की आदतों को बहुत कम कर दिया और अपनी स्त्री तथा परिवार के लोगों से मिलने की कोशिश की। उसकी स्त्री उसके इस सुधार पर बहुत प्रसन्न हुई और कोटा पर अधिकार प्राप्त करने के लिये उसने अपने पति को तैयार कर लिया। वह इस बात को समझती थी कि बलपूर्वक कोटा पर अधिकार करने से रक्तपात होगा और उसकी सफलता पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। क्योंकि पठानों की शक्तियाँ उसकी अपेक्षा प्रबल थीं। इसलिये उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। फाल्गुन के महीने में पठानों के साथ उसने कैथून की बहुत-सी युवती लड़कियों को होली खेलने के लिए आमन्त्रित किया और उनके साथ उसने निश्चय कर लिया कि हम सब लोग कोटा के पठानों के साथ होली खेलेंगी। इसके लिये उसने कोटा के पठानों के पास भी सन्देश भेजा, जिसे सुनकर पठान बहुत प्रसन्न हुए। दोनों तरफ होली खेलने की तैयारियाँ होने लगीं। जिस समय कोटा के पठान कोटा की भूतपूर्व रानी और कैथून की युवतियों के साथ होली खेलने के लिये हर्षपूर्वक तैयारी

कर रहे थे, रानी ने बड़ी सावधानी के साथ तीन सौ अत्यन्त सुन्दर हाड़ा जाति के युवकों को स्त्रियों के वेश में सजाकर तैयार कर लिया। होली खेलने का समय पहले से ही निर्धारित हो गया था। समय आते ही युवतियों का वेश धारण किये हुए तीन सौ युवक अपने हाथों में अबीर लेकर धात्री के साथ रानी के महल से बाहर निकले और कोटा में जाकर पठानों पर अबीर फेंकने लगे,धात्री के साथ रानी का वेष धारण किये हुए भोनङ्गसी भी था। उसने पठानों के सरदार केसर खाँ के पास आते ही-जैसा पहले से निश्चित था अपने हाथ का अबीर-पात्र उसके मुख पर जोर के साथ पटका। उसी समय हाड़ा वंश के तीन सौ युवक युवतियों का वेश फेंककर बड़ी तेजी के साथ कमर में छिपी तलवारें निकालकर पठानों का संहार करने लगे। उस आक्रमण में केसर खाँ अपने बहुत-से शूरवीर पठानों के साथ मारा गया और उसके बाद भोनङ्गसी ने कोटा पर अधिकार कर लिया।

समरसी की मृत्यु के बाद नापा जी बूँदी के सिंहासन पर बैठा। टोंडा के सोलंकी राजा की लड़की के साथ उसका विवाह हुआ था। वह सोलंकी राजा अनहिलवाड़ा के प्राचीन नरेशों का वंशज था। टोंडा की राजधानी में संगमरमर का एक बहुमूल्य पत्थर था, नापाजी को वह बहुत पसन्द आया। इसलिए उसने अपनी स्त्री से कहा कि वह अपने पिता से उस पत्थर को माँग ले। उसके कहने के अनुसार उसकी स्त्री ने अपने पिता से उस पत्थर को माँगा। सोलंकी राजा ने उसे देने से इन्कार किया और उत्तर देते हुए उसने कहा-"इस प्रकार नापाजी की माँग एक दिन हमारी स्त्री के लिये भी हो सकती है।" इस तरह उत्तर देने के बाद उसने चाहा कि नापाजी टोंडा राज्य से चला जावे।

नापाजी को इस प्रकार की बातों से अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन उसने उस समय जाहिर नहीं किया। वह टोंडा छोड़कर अपनी राजधानी चला आया और इस घटना के परिणामस्वरूप वह अपनी रानी से घृणा करने लगा। उसने उसके साथ सभी प्रकार के व्यवहारों का अन्त कर दिया। नापाजी के इस व्यवहार को देखकर उसकी रानी को बहुत दुःख हुआ। उसने इस प्रकार की सभी बातें अपने पिता के पास कहला भेंजी।

सावन के महीने का तीसरा दिन राजस्थान में कजली तीज के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन वहाँ के सभी राजपूत अपनी स्त्रियों से भेंट करने जाते हैं। इसलिए नापाजी ने अपने सभी सरदारों और सामन्तों को अपने-अपने नगरों में जाने की आज्ञा दी। ऐसी दशा में बूँदी राजधानी सरदारों और सामन्तों से खाली हो गयी। यह अवसर पाकर सोलंकी रानी का भाई टोंडा का राजकुमार छिपे तौर पर बूँदी राजधानी में रात के समय आया और महल में जाकर उसने नापाजी को मार डाला। इसके बाद वह तुरन्त अपने आदमियों के साथ बूँदी राजधानी से चला गया।

कजली तीज का त्यौंहार मनाने के लिये जितने भी सामन्त अपने परिवारों के साथ बूँदी से विदा हुए थे, उनमें एक सामन्त की स्त्री बीमार थी। इसलिये वह सामन्त अपने नगर नहीं पहुँचा और बूँदी के बाहर एक रास्ते में बैठकर वह अफीम का सेवन कर रहा था। इसी समय टोंडा का राजकुमार नापाजी को मारकर अपने सैनिकों के साथ उस मार्ग से बातें करता हुआ जा रहा था। उस सामन्त ने उसकी बातों को सुना। वह तुरन्त उत्तेजित हो उठा और

अपनी तलवार लेकर नापाजी का संहार करने वाले टोंडा राजकुमार पर उसने आक्रमण किया। सामन्त की तलवार से राजकुमार का एक हाथ कटकर नीचे गिर गया। टोंडा के सैनिकों ने राजकुमार को लेकर वहाँ से भागने की कोशिश की। राजकुमार के कटे हुए हाथ को अपने दुपट्टे में बाँधकर सामन्त उसी समय बूँदी राजधानी आया।

राजधानी में पहुँचकर सामन्त को मालूम हुआ कि नापाजी के मारे जाने से राजमहल में चीत्कार हो रहा है। सोलंकी रानी-जिसके भाई ने उसके पति का संहार किया था-अपने स्वामी के मृत शरीर को लेकर चिता पर बैठने की तैयारी कर रही थी। सोलंकी रानी जिस समय चिता पर बैठने के लिए तैयार हो रही थी,सामन्त ने आकर हत्या करने वाले टोंडा के राजकुमार का कटा हुआ हाथ अपने दुपट्टे से निकालकर उसके सामने रखा। उस हाथ में बँधे हुए कंकण को देखकर सोलंकी रानी पहचान गयी कि यह हाथ उसके भाई का है। उसने उस कटे हुए हाथ को देखकर अपने भाई के नाम एक पत्र लिखा कि आपके ऐसा करने से आपका वंश कलंकित हो चुका है। इसके कलंक को धोने का उपाय करिये। आपके सभी वंशधर एक हाथ वाले सोलंकी के नाम से पुकारे जायेंगे। टोंडा के राजकुमार ने अपनी बहन का यह पत्र पाकर पढ़ा और अपने अपराध का कोई प्रतिकार न समझकर उसने एक स्तम्भ पर अपने मस्तक को इतने जोर से पटका कि उसके प्राणों का उसी समय अन्त हो गया।

नापाजी के तीन लड़के थे। पहले लड़के का नाम हामाजी, दूसरे का नवरंग और तीसरे का थारूड नाम था। सन् 1384 में हामा सिंहासन पर बैठा। नवरंग के वंशज नवरंग पोता और थारूड के वंशज थारूड हाड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुये।

यह पहले लिखा जा चुका है कि राव देवा ने बूंदी राज्य की प्रतिष्ठा करने के पहले पठार का राज्य और बम्बावदा का दुर्ग अपने लड़के हरराज को दे दिया था। हरराज के बाद उसका बड़ा लड़का पठार के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में चित्तौड़ के राणा के साथ उसका संघर्ष पैदा हुआ। उस संघर्ष में राणा ने पठार पर अपना अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौड़ का विध्वंस होने पर वहॉ की राजशक्तियॉ निर्बल हो गयी थीं और वहाँ के राणा उसी निर्बल अवस्था में शासन कर रहे थे। उन दिनों में चित्तौड़ के बहुत से सामन्तों ने अपनी अधीनता के बन्धन को तोड कर स्वतत्रता प्राप्त कर ली। इसके कुछ दिनों के बाद चित्तौड़ की शक्तियॉ फिर से प्रबल हो उठी। इसलिये वहॉ के राणा ने उन राजाओ को फिर से अपनी अधीनता में लाने की कोशिश की, जो अवसर पाकर स्वतंत्र हो गये थे। राणा ने सबसे पहले हामाजी के पास सन्देश भेजा कि जिन नगरों और ग्रामों में बूँदी के राज्य की प्रतिष्ठा हुई है, वे सब चित्तौर राज्य के हैं। इसलिये बूँदी के राजा को चित्तौर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी और अधीन राज्यों के जो नियम हैं, बूंदी के राजा को भी उन्हे स्वीकार करना पड़ेगा।

बूंदी के राजा हामाजी ने राणा को इसका उत्तर देते हुए लिखा: ''मैं किसी प्रकार चित्तौड के राणा का सामन्त नहीं हूँ। मीणा लोगों के नगरों और ग्रामों को तलवार के बल पर लेकर बूँदी राज्य की प्रतिष्ठा हुई है।''

चित्तौड़ के राणा और बूंदी के हामा जी में ऊपर लिखे हुए पत्र व्यवहार हुये और उनमे दोनो तरफ से जो लिखा गया, उसमे सत्य क्या है, यह विचारणीय है। हामा जी का एक

पूर्वज रणसीवा रायसी असीरगढ़ से निकाल दिया गया था। उस समय चित्तौड़ के राणा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया था और भैंसरोड पर अधिकार करने के लिये राणा ने उसकी सहायता भी की थी। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के पहले सम्पूर्ण पठार राणा के अधिकार में था। अलाउद्दीन के आक्रमण के बाद चित्तौड़ निर्बल हो गया था। उन दिनों में मीणा आदि जातियों ने अपने पूर्वजों के नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया और उसके बाद उन लोगों ने हाड़ा वंश के पठार राज्य को भी लेने का निश्चय किया था। इस प्रकार कुछ पहले की घटनायें थीं।

हामा जी के साथ राणा का पत्र-व्यवहार चलता रहा। हामा जी को उत्तर देते हुए राणा ने लिखा- "कुछ दिनों के लिए हमारा राज्य निर्बल हो गया था। लेकिन कोई भी हमारे राज्य के नगरों और ग्रामों पर बल पूर्वक अधिकार नहीं कर सका। इसलिये बूँदी राज्य को चित्तौड़ की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी।"

हाड़ा राजा हामा जी ने सभी प्रकार राणा की अन्तिम बातों पर विचार और परामर्श किया और अन्त में उसने स्वीकार किया कि दशहरा और होली के अवसर पर सेना के साथ बूँदी का राजा चित्तौड़ में उपस्थित हुआ करेगा। अभिषेक के समय राणा को बूँदी में राजतिलक करने का अधिकार होगा। परन्तु दूसरे सामन्तों की तरह बूँदी का राजा चित्तौड़ की अधीनता के नियमों का पालन नहीं कर सकता।

हामा जी के इस उत्तर से राणा को सन्तोष नहीं मिला इसलिये उसने हामा जी को अधीन बनाने और रावदेवा के वंश को पठार-राज्य से अलग करने का निर्णय किया। बूँदी के राजा हामा जी ने राणा के इस निर्णय को जाना। वह जरा भी भयभीत नहीं हुआ और साहस पूर्वक सभी परिस्थितियों में उसने अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने का निश्चय किया।

चित्तौड़ का राणा अपने सामन्तों की सेनाओं के साथ अपनी सेना लेकर बूँदी पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। बूँदी के निकट पहुँच कर निमोरिया नामक स्थान पर उसने मुकाम किया। चित्तौड़ की सेना के आने का समाचार पाकर हामा जी ने तुरन्त युद्ध की तैयारी की। उसने अपने वंश के पाँच सौ शक्तिशाली वीरों की सेना को तैयार किया और वे सभी लाल रंग के वस्त्र पहनकर राजधानी से युद्ध के लिये रवाना हुए। भयानक रात का समय था, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये हुए पाँच सौ शूरवीर हाड़ा लोगों ने एकाएक चित्तौड़ की सेना पर आक्रमण किया। उस समय के भयानक संहार को देखकर राणा घबरा उठा और वह अपनी रक्षा के लिये चित्तौड़ से भाग गया। हाड़ा राजपूतों के द्वारा बहुत से सीसोदिया सैनिक और चित्तौड़ के सामन्त मारे गये। बचे हुए राणा के सैनिक युद्ध से भाग गये। विजयी हामाजी बूँदी राजधानी लौट गया।

हाड़ा वंश के थोड़े से राजपूतों से पराजित होकर चित्तौड़ पहुँच जाने के बाद राणा ने अपना अपमान अनुभव किया और बूँदी के राजा से इस अपमान का बदला लेने के लिए उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं बूँदी पर अपना अधिकार न कर लूँगा, अन्न-जल ग्रहण न करूँगा। राणा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसके मंत्री और सामन्त घबरा उठे। बूँदी राजधानी चित्तौड़ से साठ मील की दूरी पर थी और शूरवीर हाड़ा राजा उसकी रक्षा के लिये तैयार था।

इस दशा में चित्तौड़ के मन्त्रियों और सामन्तों ने सोचा कि इतनी जल्दी बूँदी को पराजित करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। इसलिये राणा ने जो प्रतिज्ञा की है वह किसी प्रकार संगत नहीं मालूम होती।

राणा की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में चित्तौड़ के मन्त्रियों और सामन्तों ने बड़ी गम्भीरता के साथ परामर्श किया। इनकी समझ में राणा की यह प्रतिज्ञा अत्यन्त भयानक मालूम हुई, इसलिये कि बिना अन्न-जल ग्रहण किये मनुष्य कितनी देर तक जीवित रह सकता है, इतने थोड़े समय में चित्तौड़ से बूँदी का साठ मील लम्बा रास्ता पार करना भी सम्भव नहीं मालूम होता। इसलिए उन लोगों ने आपस में यह निर्णय किया कि राणा की इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये कोई उपाय निकालना चाहिये। इस आधार पर उन सभी लोगों ने मिलकर एक निर्णय किया और राणा से प्रार्थना की कि हम लोग चित्तौड़ में एक कृत्रिम बूँदी का निर्माण करते हैं। आप अपनी सेना लेकर उसके दुर्ग पर अधिकार करके अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कीजिये।

सामन्तों की इस प्रार्थना को सुनकर राणा ने उसको स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ में तुरन्त कृत्रिम बूँदी का निर्माण किया गया और उसमें बूँदी की सभी बातों की रचना की गयी। बूँदी राज्य का जो भाग जिस नाम से सम्बोधित किया जाता था, इस कृत्रिम बूँदी में स्थान बनाये गये और उसका दुर्ग भी तैयार कर दिया गया। चित्तौड़ में पठार के हाड़ा लोगों की एक छोटी-सी सेना थी, जो राणा के यहाँ काम करती थी। कुम्भा वैरसी उस सेना का सेनापति था। कुम्भा वैरसी शिकार खेलकर लौट रहा था। उसने मार्ग में एक कृत्रिम दुर्ग को बनते हुए देखा, वह उसके पास गया। उसके पूछने पर लोगों ने बताया कि इस कृत्रिम बूँदी को विजय करके राणा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करेगा। कुम्भावैरसी के हृदय में उसी समय जातीय गौरव की भावना उदित हुई। उसने उसी समय कहा- "बूँदी और उसके दुर्ग के कृत्रिम होने पर भी हम उसकी रक्षा करेंगे। यहाँ पर हमारी जातीय मर्यादा का प्रश्न है।"

दुर्ग के निर्माण का कार्य समाप्त होने पर राणा के पास सूचना भेजी गयी। राणा अपनी सेना लेकर उस कृत्रिम दुर्ग पर अधिकार करने के लिये रवाना हुआ। पहले से यह योजना बनायी गयी थी कि दुर्ग में सीसोदिया सेना रखकर राणा के आक्रमण के समय खाली बन्दूकें फायर की जायें और दिखावटी दुर्ग की रक्षा की जावे। यह योजना पहले से निश्चित थी। परन्तु सेना के साथ दुर्ग की तरफ राणा के बढ़ते ही बन्दूकों से निकल-निकल कर गोलियाँ राणा के सैनिकों का संहार करने लगीं। यह देखकर राणा को बहुत आश्चर्य मालूम हुआ। उसने रहस्य का पता लगाने के लिये अपना एक दूत भेजा। उस दूत के वहाँ पहुँचने पर कुम्भा वैरसी ने कहा: "तुम राणा से जाकर कहो कि बूँदी के कृत्रिम दुर्ग को जीतकर हाड़ा वंश को अपमानित करना आसान नहीं हैं।"

इसके बाद उस कृत्रिम दुर्ग के बाहर युद्ध आरम्भ हुआ। जाति के सम्मान की रक्षा करने के लिये कुम्भा वैरसी और उसके सैनिकों ने राणा की सेना के साथ शक्ति भर युद्ध करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। उस युद्ध से बचकर और भागकर एक भी हाड़ा सैनिक ने अपने प्राणों की रक्षा नहीं की।

राणा ने इस प्रकार कृत्रिम बूँदी और उसके दुर्ग पर विजय प्राप्त की। परन्तु उसके बाद उसने बूँदी राज्य पर अधिकार करने का इरादा छोड़ दिया। उसकी समझ में आ गया कि

हाड़ा वंश के लोग इतने शूरवीर और साहसी हैं कि वे युद्ध होने पर अपने प्राणों को बलिदान करेंगे। इसलिये उनके साथ युद्ध न करना ही अच्छा है। इस दशा में हाड़ा राजा हामा जी ने अधीनता के नाम पर जितना स्वीकार कर लिया था, राणा ने उसी पर सन्तोष कर लिया।

बूँदी के सिंहासन पर सोलह वर्ष तक बैठकर हामा जी ने स्वर्ग की यात्रा की। उसके दो लड़के थे, वीरसिंह और लाला। लाला को खुटन्ड नाम का राज्य मिला। नव वर्मा और जैसा नाम के उसके दो लड़के थे। उन दोनों के वंशधर नववर्मा पोता और जैतावत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हामा के बड़े लड़के वीरसिंह ने बूँदी के सिंहासन पर बैठकर पन्द्रह वर्ष तक राज्य किया। उसके तीन लड़के पैदा हुये। पहले का नाम था वीरू, दूसरे का जवदू और तीसरे लड़के का नाम था नीमा। जवदू से तीन शाखाओं की उत्पत्ति हुई और नीमा के वंशज नीमावत नाम से प्रसिद्ध हुए। पचास वर्ष तक शासन करने के बाद सन् 1470 में वीरू की मृत्यु हुई। उसके सात लड़के थे- (1) रावभाँडा (2) राव साँडा (3) अखैराज (4) राव ऊधव (5) रावचूड़ा (6) समर सिंह और (7) अमरसिंह। आरम्भ में पाँच लड़कों से पाँच वंशों की उत्पत्ति हुई। समरसिंह और अमरसिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

उपकार, शौर्य और चातुर्य के लिये राजस्थान में राव भाँडा का नाम अब तक प्रसिद्ध है। लोगों का कहना है कि उसमें परोपकार की भावना इतनी अधिक थी, जितनी दूसरों में बहुत कम देखने को मिलेगी। सन् 1486 ईसवी में एक भयानक दुर्भिक्ष राजस्थान में पड़ा था। राव भाँडा ने अकाल के उन दिनों में अन्न और धन से लोगों की सहायता करके अक्षय कीर्ति पायी थी। वहाँ के एक ग्रन्थ में पढ़ने को मिलता है कि सन् 1486 के एक वर्ष पहले बूँदी के राजा राव भाँडा ने एक स्वप्न देखा था। उसमें उसने देखा कि एक भयानक अकाल पड़ा हुआ है और एक काले भैंसे पर बैठा हुआ अकाल उसके सामने आकर उपस्थित हुआ। राव भाँडा ने उसे देखकर अपनी ढाल और तलवार उठायी और उस अकाल पर आक्रमण किया। यह देख कर अकाल ने कहा-"मैं दुर्भिक्ष हूँ, मेरे ऊपर तुम्हारी तलवार का कोई प्रभाव न पड़ेगा। तुमको छोड़कर और किसी ने आज तक मुझ पर कभी आक्रमण नहीं किया। इसलिये मैं तुमसे जो कुछ कहना चाहता हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो-मैं आगामी वर्ष सन 1486 में आऊँगा। उस वर्ष सम्पूर्ण भारत में अकाल पड़ेगा। तुम अभी से धन और अनाज एकत्रित करने की कोशिश करना और दुर्भिक्ष पड़ने पर तुम सबकी सहायता करना।"

यह कहकर अकाल अन्तर्ध्यान हो गया। उसके बाद राव भाँडा का स्वप्न भंग हुआ। वह बड़ी देर तक अपने स्वप्न पर विचार करता रहा। अकाल के उपदेश के अनुसार उसने अन्न और धन एकत्रित करने का कार्य आरम्भ किया और उस वर्ष के अन्त तक वह बराबर अनाज संग्रह करता रहा। दूसरे वर्ष में बरसात नहीं हुई। उसके कारण सम्पूर्ण देश में अकाल पड़ गया।

राव भाँडा ने पहले से ही सभी प्रकार का अनाज एकत्रित किया था। उसने अकाल के दिनों में अनाज देकर लोगों की सहायता की। दुर्भिक्ष से पीडित दूसरे राज्यों के नरेशो ने उससे अनाज की सहायता माँगी। राव भाँडा ने उनको भी अनाज की सहायता की। उस दुर्भिक्ष

में अकाल के कारण बहुत से आदमियों की मृत्यु हुई। परन्तु बूँदी राज्य में किसी को खाने-पीने का अधिक कष्ट नहीं मिला। राव भाँडा के इस प्रकार के स्मारक में बूँदी राज्य में अब तक लङ्गर का गूगरी नाम से दीनों और दरिद्रों को अनाज बांटा जाता है।

राव भाँडा यद्यपि परम दयालु और परोपकारी था परन्तु जीवन की कठिनाईयों से उसे भी छुटकारा न मिला। समरसिंह और अमरसिंह नाम के दो भाई उससे छोटे थे। इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने के कारण वे दिल्ली के बादशाह को प्रिय हो गये थे। उन दोनों भाइयों ने बादशाह की सेना लेकर बूँदी राज्य पर आक्रमण किया। राव भाँडा ने शक्ति-भर उस सेना के साथ युद्ध किया। लेकिन बादशाह की फौज बहुत बड़ी होने के कारण राव भाँडा की पराजय हुई। वह अपने राज्य से भागकर मातोंदा नामक स्थान पर चला गया और वहाँ के पर्वत शिखर से गिरकर उसने प्राण दे दिये। राव भाँडा ने इक्कीस वर्ष तक शासन किया। समरसिंह और अमरसिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद अपने नाम बदल दिये थे और समरकन्दी तथा अमरकन्दी के नामों से उन दोनों ने ग्यारह वर्ष तक बूँदी राज्य में शासन किया।

राव भाँडा के दो लड़के थे। एक का नाम था नारायणदास और दूसरे का नाम नरवद था। नरवद मातोंदा ग्राम का अधिकारी हुआ। वयस्क होने पर नारायणदास के मनोभावों में पिता के राज्य का उद्धार करने की भावना उत्पन्न हुई। उसने पठार के समस्त हाड़ा लोगों को एकत्रित करके कहा : "हम लोग या तो बूँदी राज्य पर अधिकार करेंगे अथवा युद्ध-भूमि में अपने प्राण त्याग देंगे।"

नारायणदास के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर सभी एकत्रित हाड़ा लोगो ने उत्साह के साथ उसका समर्थन किया। इसके पश्चात् कुछ दिन बीत गये। नारायणदास अपनी अभिलाषा को पूरी करने के लिये तरह-तरह के उपाय सोचता रहा। एक दिन उसने अपने दोनों मुस्लिम चाचाओं के पास सन्देश भेजा कि: "मैं अपना सम्मान प्रकट करने के लिये आपके पास आना चाहता हूँ।"

अयोग्य और असमर्थ होने के कारण नारायणदास पर उसके चाचा को सन्देह पैदा न हुआ और उन दोनों ने नारायणदास को बूँदी के महल में आने के लिये आदेश दे दिया। इससे नारायणदास को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने साथ चलने के लिए कुछ ऐसे लोगों को तैयार किया,जो पूर्ण रूप से विश्वासी, पराक्रमी और शूरवीर सैनिक थे। उनको लेकर नारायणदास बूँदी राजधानी में पहुँच गया और महल से कुछ दूरी पर अपने साथ के लोगों को छिपाकर वह महल की तरफ रवाना हुआ। नारायणदास के दोनों चाचा बिना किसी आशंका के महल के भीतर एक कमरे में बैठे थे और दोनों आपस में बातें कर रहे थे। उनके पास किसी प्रकार का कोई अस्त्र न था। नारायणदास ने महल के भीतर प्रवेश किया। उसके मुख-मण्डल पर हिंसा की रेखायें प्रस्फुटित हो रही थीं। उन दोनों को देखकर नारायणदास ने तेजी के साथ आक्रमण किया। उन दोनों ने नारायणदास का यह दृश्य देकर सुरंग के रास्ते से भाग जाने की चेष्टा की। इसी समय नारायणदास ने अपनी तलवार से समरसिंह को आघात पहुँचाकर गिरा दिया और अपने तेज भाले का वार उसने अमरसिंह पर किया। चोट खाकर दोनों जमीन पर गिर गये। उसी समय नारायणदास ने अपनी तलवार से दोनों के सिर काट लिये और वह कटे हुए दोनों

सिर लेकर महल के बाहर देवी के मन्दिर में पहुँचा और उन्हें देवी के सामने रखकर अपनी पूर्व योजना के अनुसार उसने ऊँचे स्वर में जयघोष किया। उसे सुनते ही उसके साथ के सैनिकों ने उस स्थान में प्रवेश किया, जहाँ पर नारायणदास मौजूद था। यह सब इतनी तेजी और तत्परता के साथ हुआ कि उनके विरुद्ध बूँदी में कोई प्रबन्ध न हो सका। नारायणदास और उसके साथी सैनिकों ने वहाँ के मुसलमानों पर भयानक आक्रमण किया। यह देखकर राजधानी के प्रत्येक हाड़ा राजपूत ने नारायणदास का साथ दिया। उस समय भीषण रूप से राजधानी में मुसलमान मारे गये। राव नारायणदास ने साहस के साथ मुसलमानों का संहार करके अपने पिता की राजधानी बूँदी पर अधिकार कर लिया। महल के भीतर जिस स्थान पर नारायण दास के दोनों चाचा मारे गये थे, दशहरे के त्यौहार पर उस स्थान के पत्थर की पूजा बूँदी के राजपूतों में अब तक की जाती है।

नारायणदास विशालकाय और अत्यन्त वीर पुरुष था। वह कभी भी भयभीत होना न जानता था। लेकिन अधिक अफीम सेवन करने की उसकी आदत थी और इस अफीम के कारण ही उसके जीवन में अवांछनीय घटनायें घटी थीं। राजपूतों में आम तौर पर अफीम का सेवन होता था। लेकिन इन दिनों में इसका प्रचार अधिक बढ़ गया। अफीम सस्ती मिलती थी। उन दिनों में साधारण अफीम का सेवन करने वाला अपने लिये एक पैसे की अफीम प्रतिदिन के लिये काफी समझता था और जो आदमी इसका सेवन नहीं करता था, उसके लिये एक पैसे की अफीम भी प्राणघातक हो जाती थी। परन्तु नारायणदास एक बार में सात पैसे की अफीम खाता था। उसकी यह आदत धीरे-धीरे बहुत बढ़ गयी थी।

नारायणदास के समय राणा रायमल्ल चित्तौड़ के सिंहासन पर था। उन्हीं दिनों में मांडू के पठानों ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके वहाँ के दुर्ग को घेर लिया था। सन्धि के अनुसार चित्तौड़ के राणा ने नारायणदास को सेना के साथ सहायता के लिये बुलाया। नारायणदास ने चुने हुए पाँच सौ शूरवीरों को अपने साथ लिया और वह चित्तौड़ की ओर रवाना हुआ।

बूँदी से चलकर पहले दिन उसने मार्ग में एक स्थान पर विश्राम किया और एक वृक्ष के नीचे अफीम का सेवन करके वह लेट गया। उसका मुख खुला हुआ था और नेत्र बन्द थे। मक्खियाँ उसके मुख और होठों पर एकत्रित हो रही थीं। उसी समय उस रास्ते से होकर एक तेली की स्त्री कुए का जल लाने के लिए निकली और नारायणदास को इस दशा में लेटे हुए देखकर उसने पास के किसी आदमी से पूछा ''यह कौन है?''

उस आदमी ने उत्तर दिया- ''आप बूँदी के राव साहब हैं। चित्तौड़ के राणा ने अपनी सहायता के लिये राव साहब को बुलाया है।''

उस स्त्री ने ध्यानपूर्वक नारायणदास की तरफ देखा और कहा-''हे भगवान, अपनी सहायता के लिये राणा को और कोई आदमी न मिला।''

कहा जाता है कि अफीम सेवन करने वाले की आँखें बन्द रहती हैं। लेकिन उसको उस समय कानों से अधिक सुनाई देता है। उस स्त्री ने जो कुछ कहा, नारायणदास ने उसे भली प्रकार सुना। उसने अपनी आँखें खोल दीं और उठकर उसने उस स्त्री से पूछा:''तुम क्या कह रही हो?''

नारायणदास की इस बात को सुनकर उस स्त्री ने उसकी ओर देखा और उसकी विराट मूर्ति को देखकर वह भयभीत हो उठी। क्षमा माँगने के लिये उसने कुछ कहना चाहा, उसी समय नारायणदास ने कहा-"डरो नहीं, तुम जो कह रही थी उसे फिर कहो।"

भयभीत हो जाने के कारण वह स्त्री कुछ कह न सकी। उसके हाथ में मजबूत लोहे की एक मोटी छड़ थी। नारायणदास ने उसके हाथ से उस छड़ को ले लिया और उसे पकड़कर इस प्रकार झुकाया कि वह गले में पहनने की एक हँसली बन गयी। नारायणदास ने उस हँसली को गले में पहनाकर उसके दोनों किनारे एक दूसरे के साथ इस प्रकार मिला दिये कि जिससे वह सिर से उतर न सकती थी। नारायणदास ने उसके गले में उस हँसली को पहनाकर कहा-"क्या तुम्हें कोई दूसरा आदमी ऐसा न मिलेगा जो तुम्हारे गले से इसको निकाल सके? यदि मिल सके तो इसे निकलवा लेना, अन्यथा मेरे चित्तौड़ से लौटने के समय तक तुम इसे पहने रहना।"

पठानों की सेना ने चित्तौड़ को इस प्रकार घेर लिया था कि उसका कोई भी मनुष्य बाहर आ-जा नहीं सकता था। पठानों के इस घेरे से राणा के सामने बड़ा संकट पैदा हो गया था। पठार के गूढ़ मार्ग से होकर अपने पाँच सौ शूरवीरों के साथ रात्रि के समय नारायणदास ने अकस्मात् पठानों के शिविर में प्रवेश किया और भीषण आक्रमण के साथ पठानों का संहार करना आरम्भ कर दिया। इसी समय आक्रमणकारी पठानो के सेनापति के सामने पहुँच गये। हाड़ा राजपूतों के संहार से भयभीत होकर पठान लोग शिविर से बाहर की तरफ भागने लगे। इस भगदड़ में पठानों का भयानक रूप से संहार हुआ। बहुत-से लोग मारे गये और जो शेष बचे, वे सबके सब शिविर से भाग गये।

चित्तौड़ के राणा ने प्रातःकाल होते ही सुना कि बूँदी से राव नारायणदास ने अपनी सेना के साथ आकर रात में पठानों का संहार किया है और बचे हुए पठान अपने प्राण लेकर भाग गये हैं। यह जानकर राणा रायमल्ल चित्तौड़ से बाहर निकला और बड़े सम्मान के साथ नारायणदास से मिलकर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसी समय नारायणदास को लिये हुए रायमल्ल चित्तौड़ में पहुँचा। जय-जयकार के साथ चित्तौड़ की राजधानी में नगाड़े बजाये गये। यह बात किसी से छिपी न रही कि बूँदी के राजा नारायणदास के केवल पाँच सौ हाड़ा राजपूतों ने पठानों की सेना को पराजित किया। सम्पूर्ण चित्तौड़ में नारायणदास की प्रशंसा होने लगी। राणा के महल में नारायणदास को सम्मान देने के लिये एक बड़ी सभा की गयी। उस सभा में मेवाड़ के सभी सामन्तों ने आकर बूँदी के नारायणदास के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। राणा के महल से नारायणदास को देखने के लिये परदे में स्त्रियाँ आयीं और सभी ने उसकी विराट मूर्ति को देखा। सभी ने प्रसन्नता प्रकट की।

अफीम का सेवन करने की आदत यद्यपि नारायणदास की बहुत बढ़ गयी थी, फिर भी उसके भीमकाय शरीर को देखकर सभी लोग दंग रह जाते थे। राणा के भाई की लड़की ने नारायणदास को देखा। सभा में उसकी जो प्रशंसा की गयी, उसको उसने सुना। वह अत्यन्त प्रभावित हुई और उसके साथ अपना विवाह करने के लिये उसने अपनी सखियों से कहा। दूसरे दिन राणा ने अपनी भतीजी के इस निर्णय को सुना। उसने प्रसन्नता के साथ भतीजी के निर्णय

को स्वीकार किया। राणा ने इस विवाह के सम्बन्ध में नारायणदास से बातचीत की। विवाह में सीसोदिया वंश की लड़की का पाना हाड़ा राजपूतों के लिये बड़े सम्मान की बात थी। इसलिये राव नारायणदास ने राणा के उस प्रस्ताव को हर्षपूर्वक स्वीकार किया।

इन्हीं दिनों में नारायणदास के साथ चित्तौड़ में बड़ी धूम-धाम से राणा की भतीजी का विवाह हुआ। नव विवाहिता पत्नी को लेकर नारायणदास बूँदी गया और दोनों दाम्पत्य जीवन का सुख भोग करने लगे। इन दिनों में नारायणदास का अफीम का सेवन पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया और एक दिन नशे के उन्माद में उसने रात के समय मेवाड़ की राजकुमारी के शरीर को आघात पहुँचाकर उसके अपूर्व सौन्दर्य को नष्ट कर दिया। सीसोदिया राजकुमारी ने उससे कुछ भी बुरा न माना। दूसरे दिन जब नारायणदास ने अपनी रानी की उस दशा को देखा तो वह बहुत लज्जित हुआ। जिस पात्र में वह अफीम रखता था, उसे अपनी रानी के हाथ में देकर उसने प्रतिज्ञा की कि आज से मैं इस प्रकार अधिक अफीम का सेवन कभी न करूँगा।

राव नारायणदास ने बत्तीस वर्ष शासन करके बूँदी के राज्य का विस्तार किया। इन दिनों में बूँदी राज्य का गौरव राजस्थान में बहुत बढ़ा था। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

नारायणदास के बाद उसका इकलौता लड़का सूर्यमल्ल सन् 1534 ईसवी में बूँदी के सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता की तरह बलिष्ठ, साहसी और पराक्रमी था। रामचन्द्र और पृथ्वीराज की तरह उसकी दोनों भुजायें रानों तक लम्बी थीं।

बूँदी के राजसिंहासन पर सूर्यमल्ल के बैठने के बाद मेवाड़ का राणा वंश के साथ फिर एक वैवाहिक सम्बन्ध कायम हुआ। राव सूर्यमल्ल ने सूजाबाई नामक अपनी बहन का विवाह चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह के साथ कर दिया और राणा रत्नसिंह ने भी अपनी बहन का विवाह राव सूर्यमल्ल के साथ किया। इन दोनों वैवाहिक सम्बन्धों के कारण दोनों राज्यों में आत्मीयता अधिक सुदृढ़ हो गयी। परन्तु वह अधिक दिनों तक चल न सकी और कुछ दिनों के बाद शत्रुता में परिणत हुई।

सूर्यमल्ल भी अपने पिता नारायणदास की तरह अधिक अफीमची था। किसी अवसर पर राव सूर्यमल्ल चित्तौड़ गया था और एक दिन अधिक अफीम सेवन करके वह राज-दरबार में आँखें मूँदे बैठा हुआ था। इसी समय मेवाड़ का एक पुरबिया सामन्त वहाँ पर आया। उसने सूर्यमल्ल को आँखें बन्द किये हुए देखकर हँसी करने के अभिप्राय से एक सींक का टुकड़ा उसके कान में डाल दिया। सूर्यमल्ल ने अपने नेत्र खोल दिये और क्रोध में आकर अपनी तलवार लेकर उसने उस सामन्त के सिर को काटकर जमीन पर गिरा दिया। उस सामन्त का लड़का भी वहाँ पर उपस्थित था। अपने पिता का बदला लेने के लिये वह उत्तेजित हो उठा। परन्तु सूर्यमल्ल को पराक्रमी और भीमकाय देखकर एवम् राणा का निकटवर्ती आत्मीय समझकर उसने अपना क्रोध शान्त किया।

सूजाबाई ने अपने पति और भ्राता को भोजन कराने के लिये अनेक प्रकार की सामग्री बनवाई और तैयार हो जाने पर दोनों को भोजन के लिये बुलाया। भोजन करने के लिये रत्नसिंह और सूर्यमल्ल-दोनों महल में गये। भोजन परोसकर आ जाने के बाद दोनों ने खाना

आरम्भ किया। देख-भाल के लिये सूजाबाई स्वयं वहाँ उपस्थित रही। हिन्दुओं में पति वंश की अपेक्षा बन्धु वंश की प्रशंसा करना लड़कियाँ अपना कर्त्तव्य समझती हैं। पिता के वंश की यदि कोई निन्दा करता है तो वे किसी प्रकार सहन नहीं कर सकती। राणा और राव-दोनों के भोजन कर चुकने पर सूजाबाई ने अपने भाई के गौरव को बढ़ाने के लिये कहा: "मेरे भाई ने सिंह के समान भोजन किया है। लेकिन स्वामी ने भोजन करने के समय एक बालक की तरह प्रदर्शन किया है।"

सूजाबाई के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर राणा ने अपना अपमान समझा और क्रोध में आकर इसका बदला लेने के लिए वह उत्तेजित हो उठा। परन्तु यह सोचकर कि अतिथि के साथ किसी प्रकार का अशिष्ट व्यवहार करना राजपूत का कर्त्तव्य नहीं है, वह शान्त हो गया। वह बात ज्यों की त्यों रह गयी।

राव सूर्यमल्ल चित्तौर से बूँदी जाने के लिये तैयार हुआ। उस समय राणा रत्नसिंह ने उससे कहा- "आगामी बसन्त ऋतु में फाल्गुन के उत्सव के समय हम बूँदी के जंगल में शिकार खेलने के लिये आवेंगे।"

राव सूर्यमल्ल ने राणा की इस बात को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

कुछ दिनों के बाद बसन्त ऋतु में फाल्गुन का उत्सव समीप आने पर राव सूर्यमल्ल ने राणा के पास आने के लिए निमन्त्रण भेजा। उस निमन्त्रण को पाकर सेना और सामन्तों के साथ राणा रत्नसिंह पठार के रास्ते से बूँदी की तरफ रवाना हुआ। चम्बल नदी के पश्चिमी किनारे पर नान्दाता नामक स्थान के विस्तृत वन में शिकार खेला जाएगा, यह पहले से ही निश्चित था। उस वन में सिंह से लेकर सभी प्रकार के जंगली जानवर थे। राणा के वहाँ पहुँचने पर बूँदी का राजा राव सूर्यमल्ल भी सेना के साथ वहाँ पर आ गया। राव और राणा-दोनों ही शिकार खेलने के लिये चले। दोनों ओर के सैनिकों ने शोर-गुल करते हुए जंगल में प्रवेश किया। उनकी आवाजों को सुनकर जंगल के सभी जानवर उत्तेजित हो उठे। छोटे-छोटे जंगली पशु डर कर जंगल में इधर-उधर भागने लगे।

उस घने वन में राणा रत्नसिंह ने अपने अपमान का बदला लेने की कोशिश की। राणा और राव जंगल में जहाँ घूम रहे थे, उनकी सेनाओं के सैनिक वहाँ से जंगल में दूर पहुँच गये थे। कान में सींक डाल देने के कारण बूँदी के राव ने मेवाड़ के एक पुरबिया सामन्त को मार डाला था और उस सामन्त के लड़के ने अपने पिता का बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय जंगल में राणा रत्नसिंह के साथ उस सामन्त का लड़का भी था। राणा रत्नसिंह ने सामन्त के लड़के को संकेत से बुलाकर कहा- "इस अवसर पर क्या बाराह का शिकार करोगे?"

सामन्त के पुत्र के साथ यहाँ आने के पहले ही बातें हो चुकी थीं। सामन्त के लड़के ने अपना धनुप लेकर राव सूर्यमल्ल पर एक बाण मारा। राव सूर्यमल्ल ने अपना बाण छोड़कर उसको असफल कर दिया। लेकिन उस सामन्त के पुत्र ने सूर्यमल्ल पर अपने दूसरे बाण का वार किया। यह देखकर सूर्यमल्ल को उस पर सन्देह हुआ और उसने समझ लिया कि यह तो मेरे प्राणों पर आक्रमण हो रहा है, इसी समय राणा रत्नसिंह ने अपने घोड़े को बढ़ाकर तेजी

के साथ सूर्यमल्ल पर तलवार का प्रहार किया और उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। राव सूर्यमल्ल ने सम्हलकर अपने जख्मों पर पट्टी बाँधी। उसके गिर जाने पर राणा ने उस स्थान से हट जाने की कोशिश की। यह देखकर सूर्यमल्ल ने जोर के साथ ललकार कर कहा:"अब भाग क्यों रहे हो? मेवाड़ का पतन अब दूर नहीं है।"

राणा ने सूर्यमल्ल की इस बात की कुछ परवाह न की। वह अपने घोड़े को बढ़ाकर तेजी के साथ आगे बढ़ा। सूर्यमल्ल अपने जख्मों पर पट्टी बाँधकर तेजी के साथ आगे बढ़ा। इसी समय सामन्त के लड़के ने राणा के पास जाकर कहा-"अभी कार्य पूरा नहीं हुआ, सूर्यमल्ल अभी जीवित है।"

सामन्त के पुत्र से इस बात को सुनते ही राणा रत्नसिंह ने अपने घोड़े को मोड़ दिया और वह सूर्यमल्ल की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में दोनों की भेंट हो गयी। सूर्यमल्ल को देखते ही राणा ने अपनी तलवार का वार करने की चेष्टा की। उसी समय सूर्यमल्ल ने राणा को पकड़कर घोड़े से नीचे गिरा दिया। बहुत समय तक दोनों में कुश्ती होती रही। उसके बाद राणा को गिराकर सूर्यमल्ल उसकी छाती पर चढ़कर बैठ गया और उसने एक हाथ से राणा का गला पकड़ा और दूसरे हाथ में अपनी तलवार लेकर उसने कहा- "देखो किस प्रकार बदला लिया।"

इतना कहने के साथ ही सूर्यमल्ल ने राणा रत्नसिंह की छाती पर अपनी तलवार का गहरा आघात किया। राणा की उसी समय मृत्यु हो गयी। सूर्यमल्ल ने राणा को मारकर अपना बदला ले लिया। परन्तु उसी समय राणा के मृतक शरीर पर गिरकर उसने अपनी भी हत्या कर ली।

इसके बाद यह समाचार बूँदी के राजमहल में पहुँचा। सूर्यमल्ल की माता ने उस समाचार को सुनकर उत्तेजित स्वर में कहा: "क्या मेरा पुत्र अकेला ही उस जंगल में मरा? क्या वह अपने साथ शत्रु को संसार से विदा करके नहीं ले गया?"

सूर्यमल्ल की माता ने जिस समय वह बात अपने महल में कही, उसी समय वहाँ पहुँचकर एक आदमी ने कहा-"राव सूर्यमल्ल ने अपने शत्रु राणा रत्नसिंह को मारकर अपने प्राणों को उत्सर्ग किया है।" उस आदमी के मुख से इस बात को सुनकर वृद्धा रानी को सन्तोष मिला।

राव सूर्यमल्ल ने राणा रत्नसिंह की बहन के साथ विवाह किया था और राणा रत्नसिंह का विवाह सूर्यमल्ल की बहन के साथ हुआ था। राव और राणा के मृत शरीरों को लेकर दोनों रानियाँ प्रज्वलित चिता पर बैठी और सबके देखते-देखते ही सती हो गयीं। राव और राणा-दोनों जिस स्थान पर मारे गये थे, वहाॅ पर दोनों के समाधि मन्दिर बनवाये गये। सूजाबाई का समाधि मन्दिर शिखर के ऊपर बना। इन समाधि मन्दिरों को देखकर उस समय की अवांछनीय घटना का स्मरण होता है।

सूर्यमल्ल के पश्चात उसका लड़का सुरतान सन् 1535 ईसवी में बूँदी के सिंहासन पर बैठा। मेवाड़ के शक्तावत वंश के आदि पुरुष शक्तिसिंह की लड़की के साथ सुरतान का विवाह हुआ था। इन दिनों में तान्त्रिक शैवियों का बूँदी राज्य में प्रभाव बढ़ रहा था। अत्यधिक

राजपूत उन तान्त्रिकों में शामिल होकर महाकाल भैरव की पूजा क्रिया करते थे। राव सुरतान ने भी उस दल में शामिल होकर काल भैरव के मन्दिर में जाना आरम्भ कर दिया था। इसलिये राज्य के सामन्त और दूसरे सभी लोग उससे बहुत अप्रसन्न हो गये। उन लोगों ने आपस मे परामर्श करके उसे सिंहासन से उतार दिया। चम्बल नदी के किनारे एक साधारण ग्राम उसको रहने के लिये दे दिया गया। सुरतान ने उस ग्राम का नाम सुरतानपुर रखा। उसके कोई लड़का न था इसलिये बूँदी के सामन्तों ने आपस में परामर्श करके बूँदी राज्य के भूतपूर्व राजा राव भाँडा के दूसरे लड़के नरवुध के पुत्र अर्जुन को मातोंदा से लाकर बूँदी के सिंहासन पर बिठाया

अर्जुन ने सिंहासन पर बैठकर शासन का कार्य आरम्भ किया। वह साहसी, समझदार, योग्य और युद्धकुशल था। राजपूतों में एक यह आदत पायी जाती है कि उनकी जब किसी के साथ शत्रुता हो जाती है तो वह शत्रुता उनके वंशजों तक चली जाती है और वे एक दूसरे को क्षति पहुँचाने में कुछ बाकी नहीं रखते। चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह और बूँदी के राव सूर्यमल्ल-दोनों आपसी संघर्ष के कारण मरे थे। परन्तु राव अर्जुनसिंह और रत्नसिंह का लड़का-जो उसके समय मेवाड़ के सिंहासन पर था-आपस की शत्रुता को भुलाकर प्रेम और सद्भाव के साथ दोनों रहने लगे थे। गुजरात के बहादुरशाह ने जिस समय चित्तौड़ को घेर लिया था, उस समय जो हाड़ा राजा अपनी सेना लेकर चित्तौड़ की सहायता के लिये गया था और शत्रु सेना के साथ जिसने युद्ध किया था, वह राव अर्जुन ही था। जिस समय अर्जुन अपने साहस और पराक्रम के साथ चित्तौड़ के एक बुर्ज की रक्षा में युद्ध कर रहा था, उस समय बहादुरशाह ने उस बुर्ज के नीचे सुरंग तैयार करवायी थी और उस सुरंग में बारूद भरकर उसने आग लगवा दी थी। अर्जुन के प्राण उस समय भयानक संकट में पड़ गये थे। लेकिन वह जरा भी विचलित नहीं हुआ था और अपने हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करते हुए उसने वहीं पर एक सच्चे राजपूत की तरह अपने प्राण दे दिये। हाड़ा कवि ने अपने ग्रन्थ में अर्जुन की वीरता का वर्णन करते हुए बहुत अधिक प्रशंसा की है।

अर्जुन के चार लड़के पैदा हुए थे। उनमें सबसे बड़े लड़के का नाम सुरजन था और वह सन् 1533 ईसवी में अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। दूसरे लड़के का नाम था रामसिंह। उसके वंशज राम हाठा नाम से प्रसिद्ध हुये। तीसरे लड़के का नाम था अखैराज, उसके वंशज अखैराज पोता के नाम से पुकारे गये। सबसे छोटे लड़के का नाम था काँदिला। उसके वंशज जेसाहाड़ा नाम से विख्यात हुये।

अध्याय-63

राव सुरजन से बुधसिंह तक का इतिहास

राव सुरजनसिंह के सिंहासन पर वैठने के बाद बूँदी राज्य में अनेक प्रकार के राजनीतिक परिवर्तन हुये। वहाँ के राजाओं ने तब तक स्वतन्त्र शासन किया था और आवश्यकता पड़ने पर सम्मानपूर्वक उन्होंने मेवाड़ के राणा की सहायता की थी। लेकिन राव सुरजनसिंह के समय में राज्य की इन वातों में परिवर्तन हुये। उसे दिल्ली के वादशाह के प्रति अपनी स्वतन्त्रता को निर्वल करना पड़ा। यद्यपि ऐसा करके उसने अपने राज्य की शक्तियों को मजवूत वना लिया था।

बूँदी राजवंश की एक शाखा में सामन्तसिंह नाम का एक व्यक्ति हुआ। वह उस राज्य का एक सामन्त था और अपने वल-पौरूष से उसने गौरव प्राप्त किया। शेरशाह का शासन निर्वल पड़ जाने पर सामन्तसिंह ने वैदला के चौहान सामन्त के साथ मेल पैदा किया और रणथम्भौर नामक प्रसिद्ध दुर्ग छोड़ देने के लिये उसने अफगान शासक को पत्र लिखा। अफगान वादशाह उसके इस प्रकार के पत्र को पाकर चिन्ता में पड़ गया। बहुत सोच समझकर उसने उस दुर्ग का अधिकार सामन्तसिंह को दे दिया और सामन्तसिंह ने वह दुर्ग सुरजनसिंह को दे दिया। बूँदी के राज्य में इस प्रकार का सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग दूसरा न था। इसलिये उस दुर्ग का अधिकार पाकर सुरजनसिंह ने सामन्तसिंह का बहुत सम्मान किया और अपने राज्य के एक प्रसिद्ध इलाके का अधिकार उसको दे दिया। इस प्रकार सामन्तसिंह की ख्याति बूँदी-राज्य में आरम्भ हुई। उसके वंशज सामन्त हाड़ा के नाम से विख्यात हुये।

वैदला के जिस चौहान सामन्त ने रणथम्भौर के दुर्ग को लेने में सामन्तसिंह की सहायता की थी, उसने राव सुरजनसिंह से प्रस्ताव किया कि उस दुर्ग पर अधिकार उसे मेवाड़ के एक सामन्त की हैसियत से रखना होगा। राव सुरजन ने इसको स्वीकार कर लिया।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर वादशाह अकब्र ने रणथम्भौर के इस दुर्ग को लेने का इरादा किया और उसने सेना लेकर उस दुर्ग को जाकर घेर लिया। राव सुरजन ने अपनी सेना लेकर वादशाह की विशाल सेना का मुकावला किया और उसने किसी प्रकार दुर्ग को बादशाह के अधिकार मे जाने न दिया। वादशाह की फौज दुर्ग की दीवारों को विध्वंस करने की लगातार चेष्टा करती रही। लेकिन उसे सफलता न मिली।

आमेर के राजा भगवानदास ने वादशाह अकवर की अधीनता स्वीकार कर ली थी और उसका लड़का मानसिंह वादशाह की सेना में सेनापति हो गया था। इन्हीं दिनों में राजा भगवानदास ने बादशाह अकवर के साथ अपनी वहन का विवाह कर दिया था।

रणथम्भौर के दुर्ग पर बादशाह अकबर को सफलता न मिलने पर मानसिंह ने अपनी राजनीति से काम लिया। उसने राव सुरजन को किसी प्रकार बादशाह की अधीनता में लाने का निश्चय किया। उसने अनेक प्रकार की योजनायें बनाकर राव सुरजन से भेंट करने के लिये अपना सन्देश भेजा। बूँदी का राजा राव सुरजन उसे सजातीय समझता था। इसलिये उस पर विश्वास करके उसने उसको रणथम्भौर के दुर्ग में बुला लिया। मानसिंह के साथ बादशाह अकबर भी अपने आप को छिपाकर उस दुर्ग में गया। दोनों ने वहाँ पहुँचकर राव सुरजन से भेंट की और मानसिंह के साथ उसकी बातचीत आरम्भ हुई। वहाँ पर राव सुरजन का चाचा भी मौजूद था। उसने वेश बदले हुए अकबर को पहचान लिया। उसने तुरन्त अकबर को सम्मानपूर्वक एक ऊँचे स्थान पर बिठवाया। अकबर ने बड़े शिष्टाचार के साथ राव सुरजन से कहा "राव साहब क्या होना चाहिये?"

इसी समय मानसिंह ने राव सुरजन की तरफ देखा और अपनी आत्मीयता को प्रकट करते हुए उसने उससे कहा- "आप चित्तौड़ के राणा की अधीनता को तोड़कर रणथम्भौर का दुर्ग बादशाह को दे दीजिये।"

बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के बाद आपको वह सम्मान प्राप्त होगा, जिसकी आप कभी कल्पना नहीं कर सकते। आपके शासन की मियाद बढ़ेगी और एक विशाल राज्य की आमदनी के आप स्वतंत्र अधिकारी होंगे। बादशाह का उसमें कोई अधिकार न होगा। लेकिन आप अपनी सेना के साथ बादशाह के आदेशों का पालन करेंगे। आप अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में जो कुछ प्रार्थना करेगे,बादशाह सम्मानपूर्वक उसे पूरा करेगा। मैं इस प्रकार की बातें आपकी मान-मर्यादा को बढ़ाने के लिये कह रहा हूँ।"

बातचीत में मानसिंह ने बादशाह की तरफ से अनेक प्रकार के प्रलोभन राव सुरजन के सामने रखे। वह मानसिंह को सजातीय समझता था। इसलिये वह मानसिंह की बातों से प्रभावित हुआ और उसने कुछ शर्तों के साथ मानसिंह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसी समय दोनों पक्षों के बीच एक सन्धि का होना निश्चय हुआ और राव सुरजन ने बादशाह अकबर के साथ उस समय जो सन्धि की, वह इस प्रकार थी:

(1) बूँदी के राजवंश की कोई लड़की किसी भी समय दिल्ली के बादशाह को नहीं दी जाएगी।

(2) बूँदी राज्य की तरफ से बादशाह को कभी जजिया कर नहीं दिया जायेगा।

(3) बूँदी के राजा को अटक के बाहर युद्ध करने के लिए जाने का पूर्ण रूप से अधिकार होगा और इस अधिकार के विरुद्ध बादशाह की तरफ से उसे कोई आदेश कभी न दिया जायेगा।

(4) नौरोजा के उत्साह में बादशाह की तरफ से जो मीणा बाजार लगता है और जिसमें राजपूत राजाओं और सामन्तों की स्त्रियाँ शामिल की जाती हैं, उस मीना बाजार में बूँदी के राजा और उसके सामन्तों की स्त्रियाँ कभी बुलायी न जाएँगी।

(5) बादशाह के दरबार में बूँदी के राजा को सशस्त्र जाने का अधिकार होगा।

(6) बूँदी राज्य के देव स्थानो पर किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार न किया जाएगा।

(7) बूँदी के राजा और उसके सामन्तों को किसी हिन्दू नरेश की अधीनता में रहने के लिये वाध्य नहीं किया जाएगा।

(8) वादशाह और उसके अधीन राजाओं की अश्वारोही सेना के घोड़ों परबादशाह का जो चिह्न रहता है, बूंदी की अश्वारोही सेना को घोड़ों पर उस प्रकार का चिह्न रखने के लिये विवश नहीं किया जायेगा।

(9) दिल्ली जाने के समय दिल्ली के मार्ग में और दिल्ली राजधानी के लाल दरवाजे तक बूँदी के राजा को नक्कारों के वाजों के साथ जाने का अधिकार होगा।

(10) बूँदी के राजा को अपनी राजधानी में वे सभी अधिकार होंगे, जो अधिकार दिल्ली राजधानी में वादशाह को हैं। दोनों ही अपनी राजधानियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के अधिकारी होंगे।

ऊपर लिखी हुई शर्तों के साथ राव सुरजन और वादशाह अकवर में सन्धि हो गयी। इसके पश्चात् वादशाह ने राव सुरजन को तीर्थ स्थान काशी में महल बनवाने का अधिकार दिया। राव सुरजन के पहले उसके पूर्वज मेवाड़ के राणा की अधीनता में थे। राव सुरजन ने राणा की उस अधीनता को तोड़कर दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार की। इन्हीं दिनों मेवाड़ के राणा प्रताप ने दिल्ली के बादशाह के साथ विद्रोह करके अपना राज्य छोड़ दिया था और वह अपने परिवार और साथ के लोगों को लेकर पर्वत के ऊपर कठोर जंगल में जाकर रहने लगा था। जिन दिनों में राणा प्रताप अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित वनाने के लिए जीवन का कठोर तप कर रहा था, राव सुरजन मुगल वादशाह की अधीनता में रहकर अपने गौरव को वढ़ाने में लगा हुआ था। वूँदी के राजा पहले राव की उपाधि रखते थे। किन्तु इन दोनों में वादशाह अकवर ने सुरजन को राव राजा की पदवी देकर सम्मानित किया।

वादशाह अकवर ने राव राजा सुरजन को अपनी सेना में सेनापति का पद देकर गोडवाना राज्य पर आक्रमण करने के लिये भेजा। सुरजन ने अपनी सेना लेकर गोडवाना पर हमला किया और गोडो की राजधानी वाडी पर अधिकार कर लिया। उस राजधानी में उसने अपने नाम पर सुरजनपोल नाम का एक विशाल दरवाजा बनवाया। वह आज तक वहाँ पर इसी नाम से प्रसिद्ध है।

गोडवाना राज्य को जीतकर राव राजा सुरजन ने गोडो के प्रधान सरदारों को कैद कर लिया और उनको सम्राट अकवर के पास ले आया। वहाँ लाकर दयालु हृदय सुरजन ने उनको छोड़ देने और राज्य के कुछ ग्रामों तथा नगरों पर उनको अधिकारी वना देने के लिये अकबर से अनुरोध किया। बादशाह अकवर ने उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। राव राजा सुरजन की विजय के उपलक्ष में वादशाह अकवर ने प्रसन्न होकर वाराणसी और चुनार के साथ-साथ पाँच अन्य नगरो का अधिकार भी उसको दे दिया। सन् 1576 ईसवी में जव मेवाड़ का राणा प्रताप वादशाह के विरुद्ध हल्दीघाटी का युद्ध लड़ा था, उसी वर्ष राव राजा सुरजन को बादशाह की तरफ से ये नगर मिले थे।

वाराणसी में रहकर राव राजा सुरजन ने शासन करते हुए ऐसे वहुत से कार्य किये, जिससे उसकी उदारता चारों तरफ लोगों में फैल गयी। बादशाह की सेना में सेनापति होकर

उसने हिन्दुओं के साथ अनेक उपकार किये। पहले चोरों और डाकुओं का भय बहुत अधिक लोगों में पैदा हो गया था और प्रत्येक समय लोगों की शान्ति और सम्पत्ति अरक्षित रहती थी लेकिन राव राजा सुरजन के शासनकाल में चोरों और लुटेरों का भय एक साथ दूर हो गया और लोग शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। इन्हीं दिनों में राव राजा सुरजन ने वाराणसी नगर में एक अत्यन्त रमणीक महल बनवाया और सर्वसाधारण के उपयोग के लिये चौरासी स्थान बनवाये। गंगा के किनारे स्नान करने के लिये उसने बीस सुदृढ़ घाटें का निर्माण करवाया। अपने इन कार्यों से वह सर्वसाधारण में लोकप्रिय बन गया।

कुछ दिनों के बाद वाराणसी में सुरजन की मृत्यु हो गयी। उसके तीन लड़के थे। पहला रावभोज, दूसरा दूदा, अकबर इसको लकड़खाँ नाम से सम्बोधित करता था और तीसरा रायमल। रायमल को पलायता नामक नगर और उसके ग्राम मिले, जो अब कोटा की जागीरों में शामिल हैं।

इन्हीं दिनों में बादशाह अकबर ने दिल्ली से उठाकर अपनी राजधानी आगरा में कायम की और वहॉ पर अनेक प्रकार के निर्माण करके उसने उसका नाम अकबराबाद रखा। इसके कुछ दिनों के पश्चात् बादशाह अकबर ने गुजरात पर अधिकार करने का निश्चय किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वहॉ पर उसने अपनी एक विशाल सेना भेजी और उसके बाद वह स्वयं अपनी एक दूसरी सेना के साथ वहॉ पर पहुँच गया। अकबर की ये दोनों सेनायें ऊँटों पर बैठकर गयी थीं। गुजरात को पराजित करने के लिये बादशाह ने पाँच सौ शूरवीर राजपूतों को भी ऊँटों पर बिठाकर भेजा था और उनका नेतृत्व राव भोज और दूदा को सौंपा था।

बादशाह की जो सेना पहले गुजरात की तरफ रवाना हुई थी, उसने सूरत को जाकर घेर लिया। उसके बाद अपनी सेना लिये हुए अकबर भी वहॉ पहुँच गया। बादशाह की दोनों सेनाओं ने मिलकर वहॉ पर भीपण युद्ध किया। उस युद्ध में राव भोज के द्वारा शत्रु सेना के अनेक शूरवीर मारे गये और अन्त में बादशाह अकबर की विजय हुई।

सूरत की इस लड़ाई में विजयी होने के बाद बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने राव भोज से पूछा:"इस विजय के पुरस्कार में आप क्या चाहते हैं?" बादशाह के प्रश्न को सुनकर राव भोज ने कहा-"प्रति वर्ष बरसात के दिनों में मैं अपनी राजधानी बूँदी मे जाकर रहना चाहता हूँ। ऐसी मेरी अभिलापा है। उसके लिये सुविधा की आप से माँग करता हूँ।"

बादशाह अकबर ने राव भोज की इस माँग को बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लिया।

बादशाह अकबर ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद लगातार उन्नति की। अपनी राजनीति के द्वारा उसने राजपूत राजाओ को अपनी अधीनता की जञ्जीर में बॉधा और लगातार अपने राज्य की वृद्धि की। अपने राज्य के विस्तार के लिये उसने अधीन राजपूत राजाओ से बडी बुद्धिमानी के साथ काम लिया और सभी युद्धों में उसने विजय प्राप्त की। बूँदी के राव भोज ने बादशाह की तरफ से कई एक युद्ध किये और उनमें विजय पाने के कारण उसने सम्राट के यहॉ सम्मानपूर्ण पद प्राप्त किया था।

अहमदनगर के प्रसिद्ध युद्ध में सात सौ सैनिक स्त्रियों को लेकर चन्दा वेगम ने वादशाह की विशाल सेना के साथ युद्ध करके अपने प्राणों की आहुति दी थी। उस अहमदनगर को विजय करने के लिये वादशाह अकवर ने राव भोज को प्रधान सेनापति वनाकर और शक्तिशाली सेना देकर भेजा। भोज ने वहाँ पहुँचकर अहमदनगर के दुर्ग की दीवार को लाँघ कर उसके भीतर प्रवेश किया और उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। राव भोज की इस सफलता पर अकवर वहुत प्रसन्न हुआ और उसने भोज को कई एक नगर पुरस्कार में देकर सेना में ऊँचा पद दिया। राव भोज ने अहमदनगर के दुर्ग की वुर्ज पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अधिकार किया था, इसलिये वादशाह ने प्रसन्न होकर उसके सम्मान में उस दुर्ग के भीतर एक नया वुर्ज वनवाया और उसका नाम भोज बुर्ज रखा।

वूँदी के राव राजा भोज ने वादशाह अकबर के साथ वहुत से उपकार किये थे और अपने शौर्य से उसने मुगल साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया था। इतना सब होने पर भी वह एक समय वादशाह के क्रोध का शिकार बना। अकबर की रानी जोधावाई की जब मृत्यु हो गयी तो बादशाह अकवर ने अपने यहाँ सवको रानी के मृतक-संस्कार में शामिल होने के लिये आदेश दिया। उसका यह आदेश मुसलमानों और अमीरों के लिये भी था और उनको भी मृत रानी के अन्तिम संस्कार में दाढ़ी मुंड़वा कर बाल बनवाने होंगे। बादशाह की इस आज्ञा को पूरा करने के लिये नाई ने बाल बनाने का काम आरम्भ किया और इसके लिये वह दिल्ली राजधानी में बूँदी के राजा के पास पहुँचा। राजा के सिपाहियों ने उस नाई को मार कर वहाँ से भगा दिया।

कुछ लोगों ने इस घटना का जिक्र बादशाह से किया और उन कहने वालों ने अपनी बात को बढ़ाकर यहाँ तक कहा कि राव भोज ने न केवल नाई को मारा है, वल्कि उसने मृत रानी को भी अनेक प्रकार के अनुचित वाक्य कहे हैं। इसको सुनकर वादशाह अकवर क्रोध से उत्तेजित हो उठा और उसने आज्ञा दी कि राव भोज को बाँध कर जवरदस्ती उसकी दाढ़ी और मूँछों को साफ कर दो।

बादशाह का यह आदेश राव भोज को भी सुनने को मिला। उसने उसी समय अपने साथ के हाड़ा राजपूतों से बादशाह के आदेश का जिक्र किया। उसको सुनते ही समस्त राजपूत एक साथ उत्तेजित हो उठे और अपनी तलवारें निकाल कर वे भीषण युद्ध के लिये तैयार हो गये। यह समाचार बादशाह अकबर ने सुना। उसकी समझ में आ गया कि मैंने जो आदेश राव भोज के सम्बन्ध मे दिया था, वह किसी प्रकार न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार की बात को सोच समझकर अकबर अपने हाथी पर सवार हुआ और वह राव भोज के यहाँ पहुँचा। बादशाह हाथी से उतर कर राव भोज के यशस्वी कार्यो की प्रशंसा करता हुआ आगे बढ़ा। बादशाह को देखते ही राव भोज अकबर की तरफ आगे वढ़ा और अत्यन्त शिष्टाचारपूर्ण शब्दों में उसने कहा:"मैं अपने पिता की भाँति सूअर का माँस खाने वाला हूँ। इसलिए मैं स्वर्गीय रानी के मृतक-संस्कार में शामिल होने का अधिकारी नहीं हूँ।"

वादशाह को यह सुनकर वहुत संतोष मिला और राव भोज को साथ में लेकर वह अपने स्थान को लौट गया।

बूँदी के संस्मरणो मे जोधाबाई की मृत्यु के बाद बादशाह अकबर की मृत्यु का उल्लेख किया गया है। यह घटना उस समय की है, जब मानसिंह से अप्रसन्न होकर अकबर ने उसे विष दे कर मारने की चेष्टा की थी। लेकिन भूल से मानसिंह को विष खिलाने के बजाए धोखे से वह स्वयं विष खा गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। अकबर की मृत्यु के बाद कुछ दिनों में राव भोज की राजधानी बूँदी में उसकी जीवन लीला का अन्त हो गया। उसके तीन लडके थे, राव रतन, हिरदेव नारायण और केशवदास। हिरदेव नारायण को बादशाह से कोटा राज्य के शासन की सनद मिली थी। उसने पन्द्रह वर्ष तक वहाँ पर शासन किया। केशवदास को चम्बल नदी के किनारे ढीपरी नगर और उसके सत्ताईस ग्रामों का अधिकार मिला था।

बादशाह की मृत्यु के बाद जहाँगीर मुगल-सिंहासन पर बैठा। उसने अपने लड़के परवेज को दक्षिण का शासक नियुक्त किया और बुरहानपुर में शासन की सनद देकर वह उत्तर की तरफ चला गया। जहाँगीर के दूसरे लड़के शाहजादा खुर्रम ने अपने भाई परवेज के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा और उसने परवेज को संसार से विदा कर देने की चेष्टा की। शाहजादा खुर्रम अपने भाई को मार कर बादशाह जहाँगीर को सिंहासन से उतार देना चाहता था, इसलिए वह तैयारी करने लगा। शाहजादा खुर्रम राजपूत स्त्री से पैदा हुआ था। इसलिए उसकी सहायता में बाईस राजपूत राजा तैयार हुए और वे जहाँगीर को सिंहासन से उतारने के लिए अपनी सेनाओ के साथ एकत्रित हुए। इस कठिन अवसर पर बूँदी के राजा राव रतन ने बादशाह जहाँगीर का साथ दिया।

शाहजादा खुर्रम ने भाई और पिता के विरुद्ध भयानक रूप से विद्रोह किया था और युद्ध करने के लिए उसने पूरी तैयारी कर ली थी। बादशाह जहाँगीर इस समय बड़े संकट मे था। उसकी सहायता के लिए बूँदी का राजा रतन सिंह अपने दोनों लड़कों माधव सिंह और हरिसिंह को साथ लेकर सेना के साथ रवाना हुआ। सन् 1579 ईसवी में कार्तिक शुक्लपक्ष मंगलवार के दिन यह भयानक संग्राम हुआ। उस युद्ध मे राव रतन के दोनों लड़के भयंकर रूप से घायल हुए। लेकिन बुरहानपुर के इस युद्ध मे राव रतनसिंह की विजय हुई। इसलिए बादशाह जहाँगीर ने प्रसन्न होकर राव रतन को बुरहानपुर के शासन का अधिकार दे दिया और उसने माधव को कोटा नगर एवम् उसके सभी नगरों और ग्रामों का स्वामी बनाया। इसी समय से हाड़ौती का राज्य दो भागों मे विभाजित हो गया।

बूँदी के राव रतन सिंह ने यदि बादशाह जहाँगीर की सहायता न की होती तो उसके विरोधी शाहजादा खुर्रम को निश्चित रूप से सफलता मिलती और बादशाह जहांगीर मुगल सिंहासन से उतार दिया गया होता। इतना सब होने पर भी और राव रतन सिंह की सहायता का महत्व जानते हुए भी बादशाह जहाँगीर के मन मे राव रतन सिंह के विरुद्ध ईर्ष्या पैदा हुई। उसने आसानी के साथ इस बात को सोच डाला कि राव रतन शूरवीर राजपूत है और उसके दोनो लड़के उसी की तरह पराक्रमी है। यदि इन तीनों मे स्नेह बना रहा तो ये किसी भी समय अपनी शक्तियों का संगठन करके एक भयानक विपदा पैदा कर सकते हैं। इसलिए पिता ओर पुत्रो मे मतभेद पैदा करा देना बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य से बादशाह ने राव रतन को केवल बुरहानपुर के शासन का अधिकार दिया और उसके लडके को कोटा का स्वतंत्र शासक

वना दिया। वादशाह जहाँगीर ने माधवसिंह को कोटा का शासन देकर जिस प्रकार सनद दी थी, उसका वर्णन कोटा के इतिहास में किया गया है।

राव रतन ने वुरहानपुर का शासन आरम्भ करने के वाद वहाँ एक नगर की प्रतिष्ठा की और उसने उसका नाम रतनपुर रखा। उसने इन दिनों में एक ऐसा कार्य किया कि जिससे दिल्ली का वादशाह और मेवाड का राणा दोनों प्रसन्न हुए। वह घटना इस प्रकार है:-

दरियाखॉ नामक एक मुसलमान अमीर ने वादशाह की आज्ञा के विरुद्ध मेवाड़-राज्य पर आक्रमण किया और उसकी सेना ने मेवाड़ राज्य के नगरों में भयानक अत्याचार किये। राव रतन ने अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचकर दरियाखॉ पर आक्रमण किया और युद्ध में उसको कैद करके रतन सिंह वादशाह के पास ले आया। दरियाखॉ अपनी वहादुरी के लिए वहुत प्रसिद्ध था। इसलिए उसको कैद करकेराव रतन ने अपने शौर्य के सम्वन्ध में वड़ी ख्याति प्राप्त की। वादशाह स्वयं राव रतन से वहुत प्रसन्न हुआ। उसने पुरस्कार में राव रतन को एक दल नौवत के वाजे का दिया। साथ ही उसके स्थान पर लाल पताका फहराने का आदेश दिया। वादशाह ने इस वात की भी आज्ञा दी कि राव रतन अपनी सेना के साथ जिस समय वाहर हो, उस समय पीले रंग का झण्डा उसकी सेना में फहराया जाये। रावरतन के उत्तराधिकारी अव तक उस सम्मान सूचक झण्डे का प्रयोग करते हैं।

राव रतन को इस प्रकार का सम्मान न केवल दिल्ली के वादशाह से मिला था वल्कि समस्त हिन्दू जाति उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करती थी। वादशाह के यहॉ सम्मान और सामर्थ्य पाकर राव रतन ने अनेक ऐसे कार्य किये, जिनसे अनेक अत्याचारों से हिन्दुओं को छुटकारा मिल सका। उसने गौ-हत्या रोकने के सम्वन्ध में वहुत वड़ी सफलता पायी थी। बादशाह के यहॉ रहकर वह हिन्दुओं के हितों का सदा ख्याल रखता था। वह युद्ध में एक महान शूरवीर समझा जाता था। अंत में बुरहानपुर के एक भीपण युद्ध में वह मारा गया।

रावरतन के चार लड़के थे। गोपी नाथ, माधव सिंह, हरिजी और जगन्नाथ। माधवसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासन मिला था और तीसरे लड़के हरिजी को गूंगेर का अधिकार प्राप्त हुआ था। मेरे समय में हरिजी के वंशजों के पचास आदमियों का परिवार नीमोदा नामक स्थान में रहता था। चौथे लड़के जगन्नाथ की मृत्यु हो गयी। उसके कोई सन्तान न थी। सवसे बड़ा लड़का और राज्य का उत्तराधिकारी गोपीनाथ पिता की मृत्यु के पहले ही मारा गया था। उसकी मृत्यु के सम्वन्ध में निम्नलिखित घटना पढने को मिलती है:

राजकुमार गोपीनाथ बूँदी राज्य के वलदिया वंश के एक ब्राह्मण की सुन्दर स्त्री से प्रेम करता था। गोपीनाथ रोजाना रात के समय उस ब्राह्मण के घर पर जाया करता था। उसकी इस हालत मे कुछ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन रात को जव गोपीनाथ उस ब्राह्मण के घर मौजूद था, तो उस ब्राह्मण को मालूम हो गया। उस ब्राह्मण ने गोपीनाथ को पकड़ कर उसके हाथ-पैर वाँध दिये और अपने मकान में उसको छोड़कर वह राजमहल में गया और रावरतन से उसने कहा-"एक दुराचारी ने रात में मेरे घर आकर मेरी स्त्री के सतीत्व को नष्ट करने की कोशिश की थी। मैंने उसे पकड़ लिया है। उसको क्या दण्ड दिया जाये?"

उस ब्राह्मण की इस बात को सुनकर बूँदी के राजा रतन सिंह ने कहा-"उसकी सजा मृत्यु है।"

ब्राह्मण वहाँ से लौटकर अपने मकान पर आया और तलवार लेकर उसने राजकुमार गोपीनाथ को जान से मार डाला। उसके बाद ब्राह्मण ने राजकुमार के मृत शरीर को मकान के बाहर फेंक दिया। यह समाचार राव रतन सिंह को मिला। उसने सुना कि राजकुमार गोपीनाथ मार डाला गया है। यह सुनने के बाद उसने क्रोध में आकर आदेश दिया कि हत्यारे को पकड़ कर उसको मृत्यु की सजा दी जाये। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि राजकुमार गोपीनाथ को ही ब्राह्मण ने अपने मकान पर पकड़ा था और उसके आकर पूछने पर मैंने ही उसको मार डालने का आदेश दिया था। इस रहस्य को जान लेने के बाद राव रतन चुप हो गया और उसके पश्चात् ब्राह्मण के विरुद्ध कुछ नहीं किया गया।

गोपीनाथ के बारह लड़के थे। राव रतन ने उन सब को अपने राज्य में अलग-अलग जागीरे दीं और वे बूँदी राज्य के प्रधान सामन्तों में माने गये। गोपीनाथ के सब से बड़े लड़के छत्रसाल को बूँदी राज्य का अधिकार मिला। उस समय उसने नीचे लिखे हुए स्थानों पर शासन आरम्भ किया-

1 इन्द्रसिंह ने इन्द्रगढ़ की प्रतिष्ठा की थी।

2. बैरीसाल ने बलवन और फिलोदी नाम के दो नगर बसाये थे। करवर और पिपलोदा नाग के दो नगरों पर अधिकार कर लिया था।

3 मोखिमसिंह को ऑतरदा नामक ग्राम मिला था। बाद में इन्द्रगढ़ बलवन और ऑतरदा पर कोटा के जालिमसिंह ने षड़यंत्र के द्वारा अधिकार कर लिया था।

4 महासिंह को थाना नामक ग्राम प्राप्त हुआ था। दूसरे ग्रन्थों में इस ग्राम का नाम थावना लिखा गया है।

गोपीनाथ के शेष पुत्रों के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात पढ़ने को नहीं मिली।

राव रतन के मर जाने के बाद गोपीनाथ का बड़ा लड़का छत्रसाल पितामह के सिंहासन पर बैठा। उसके अभिषेक के समय बादशाह शाहजहाँ बूँदी राजधानी में गया था और उसने स्वयं उसको तिलक किया था। राव रतन बादशाह शाहजहाँ की तरफ से न केवल अपने पैतृक राज्य का अधिकारी माना गया था, बल्कि वह बादशाह की राजधानी का गवर्नर भी घोषित हुआ था। उसका यह अधिकार उसके जीवन भर कायम रहा। बादशाह शाहजहाँ ने जब अपने चारों लड़कों को राज्य के अलग-अलग हिस्से देकर शासन करने का भार सौंपा था, उस समय औरंगजेब की सेना में राव छत्रसाल को सेनापति का पद मिला था और इस अधिकार के साथ वह दक्षिण भेज दिया गया था। बादशाह ने अपने चारों लड़कों-दारा, ओरंगजेब, शूजा और मुराद को राज्य में अलग-अलग अधिकारी बना दिया था। दक्षिण राज्य का अधिकार प्राप्त करके औरंगजेब ने वहाँ पर युद्ध आरम्भ किया और कई दुर्गों पर उसने अधिकार कर लिया। दौलताबाद और बीदर नामक दुर्गों पर युद्ध के समय हाड़ा राजा छत्रसाल ने अपने असीम साहस और शौर्य का परिचय दिया। उसने बीदर के दुर्ग पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और भयानक रूप से शत्रु सेना का संहार किया। सन् 1653 ईसवी में कलवर्ण का युद्ध हुआ। उस संग्राम में भी राव छत्रसाल को विजय प्राप्त हुई। धामूली के दुर्ग को जीतने के बाद दक्षिण मे फिर कोई संघर्ष नहीं हुआ।

दक्षिण की इन घटनाओं के समय एकाएक सुनने को मिला कि बादशाह शाहजहाँ की मृत्यु हो गयी है। उन दिनों में बादशाह लगातार बीस दिनों तक दरबार में नहीं आया। इससे लोगों को विश्वास हो गया कि सचमुच बादशाह की मृत्यु हो गयी है। बादशाह के लड़कों में केवल दारा शिकोह दिल्ली राजधानी में रहता था। उसके शेष तीनों भाई राज्य के अलग-अलग भागों में उस समय दूर थे। बादशाह की मृत्यु का समाचार सुन कर शेष तीनों भाई अपने-अपने स्थानों से दिल्ली की तरफ रवाना हुये। वे सभी सिंहासन का अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। इसीलिये वे दिल्ली शीघ्र पहुँचना चाहते थे।

शुजा बंगाल में था। वहाँ से रवाना होने से पहले उसने अपने मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें कीं। औरंगजेब ने दक्षिण से चलने के समय मुराद के पास संदेश भेजा कि मैं शासन के कार्यों से उदासीन हो चुका हूँ। मेरे हृदय में सिंहासन पर बैठने की जरा भी अभिलाषा नहीं है। मैं जंगल के जन हीन स्थानों पर रहकर मोहम्मद पैगम्बर की नसीहतों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। दारा नास्तिक है और मैंने राज्य का प्रलोभन त्याग दिया है। इस दशा में सिंहासन पर बैठने के केवल आप ही अधिकारी हैं और मैं आपको ही मुगल सिंहासन पर बिठाना चाहता हूँ।

मुराद के पास औरंगजेब का भेजा हुआ यह सन्देश बादशाह शाहजहाँ को मालूम हुआ। उसने गुप्त रूप से संदेश भेजकर हाड़ा राजा छत्रसाल को सेना के साथ दिल्ली राजधानी में बुलाया। छत्रसाल को बादशाह का जब संदेश मिला तो उसने निश्चय किया कि किसी भी अवस्था में बादशाह की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। इस प्रकार निर्णय करके छत्रसाल दक्षिण से रवाना होने की तैयारी करने लगा।

औरंगजेब अभी तक दक्षिण में मौजूद था। उसे जब मालूम हुआ कि छत्रसाल एकाएक दक्षिण से दिल्ली जाने की तैयारी में है तो वह सोचने लगा कि उसके अकस्मात दक्षिण से दिल्ली जाने का कारण क्या हुआ और वह कारण मुझे क्यों नहीं जाहिर हुआ। अनेक प्रकार के संदेह कर के औरंगजेब ने छत्रसाल से पूछा कि आपके एकाएक यहाँ से दिल्ली जाने का कारण क्या है? अभी आप यहाँ से रवाना न हों और मेरे साथ ही आप दिल्ली चलें।

औरंगजेब की इस बात को सुनकर छत्रसाल ने गम्भीर होकर कहा-''बादशाह की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।''

यह कहकर छत्रसाल ने औरंगजेब के हाथ में वह पत्र दिया, जो उसे बादशाह शाहजहाँ की तरफ से मिला था। उस पत्र को पढ़कर औरंगजेब ने छत्रसाल से कहा : ''आप किसी भी अवस्था में यहाँ से राजधानी नहीं जा सकते।''

इस प्रकार का आदेश देकर औरंगजेब ने अपने आदमियो से कहा :''जैसे भी हो सके, राव छत्रसाल को यहाँ से जाने न दो।''

औरंगजेब का यह आदेश छत्रसाल से छिपा न रहा। उसने बुद्धिमानी से काम लिया और अपने शिविर का सभी आवश्यक सामान अपनी एक सेना के साथ वहाँ से रवाना कर दिया। उसने मुगल सेना के उन्हीं सैनिकों को अपने साथ रखा जो बादशाह शाहजहाँ के सभी

प्रकार पक्षपाती थे। अपने इस सैनिक दल को लेकर राव छत्रसाल दक्षिण मे रवाना हुआ और वह नर्वदा की ओर चला। औरगंजेब की सेना ने उसका पीछा किया। परन्तु छत्रसाल पर आक्रमण करने का उसने साहस न किया। वरसात के कारण नर्वदा नदी उफनती हुई प्रवाहित हो रही थी। राव छत्रसाल ने नदी के किनारे पहुँच कर सोलंकी राजाओ की सहायता से उसको पार किया। औरंगजेब की सेना अव भी उसका पीछा करती हुई आ रही थी। राव छत्रसाल अपने राज्य वूँदी नगर मे पहुँच गया और कई दिनों तक वहाँ पर विश्राम करके अपने राज्य की व्यवस्था की। इसके वाद वह सेना लेकर दिल्ली की तरफ चला।

पिता का द्रोही औरंगजेव षड्यंत्रों का जाल विछाता हुआ फतेहावाद में पहुँचा। वहाँ पर राजा जसवन्त सिंह के साथ उसने युद्ध किया और अपने षड्यंत्रों के द्वारा विजय प्राप्त की। इस युद्ध में औरंगजेव के विरुद्ध छत्रसाल नहीं गया। उसका कारण यद्यपि कोई स्पष्ट नहीं लिखा गया लेकिन मालूम होता है कि वादशाह अकवर के साथ उसके पूर्वजों ने जो संधि की थी, उसकी एक शर्त यह भी थी कि वूँदी का कोई राजा किसी हिन्दू नरेश के नेतृत्व में युद्ध करने के लिये नहीं जाएगा। छत्रसाल के उस युद्ध में न जाने का यही एक कारण जाहिर होता है। परन्तु वूँदी का राज वंशज कोटा का राजा अपने चार भाइयों के साथ सेना लेकर वादशाह की तरफ से फतेहावाद के उस युद्ध में गया था। उस संग्राम में उसके चारों भाई युद्ध करते हुए अन्त में मारे गये।

औरंगजेव किसी प्रकार मुगल सिंहासन पर वैठना चाहता था। इसलिए उसने अपने वड़े भाई और सिंहासन के उत्तराधिकारी दारा के साथ धौलपुर में फिर युद्ध किया। इस युद्ध मे वूँदी का राजा राव छत्रसाल भी गया था और वहाँ जाने के पहले उसने इस वात की प्रतिज्ञा की कि युद्ध में या तो मैं विजय प्राप्त करूँगा, अन्यथा प्राण देकर स्वर्गलोक की यात्रा करूँगा।

राव छत्रसाल अपनी इस प्रतिज्ञा के साथ वादशाह की तरफ से युद्ध के लिए रवाना हुआ था और दारा की सेना में सवसे आगे रहकर उसने औरंगजेव के साथ धौलपुर का युद्ध आरम्भ किया। दारा स्वयं एक हाथी पर वैठकर युद्ध करने के लिए गया था। लेकिन युद्ध आरम्भ होने के वाद कुछ समय में दारा युद्ध-भूमि से निकलकर भागा, उसके हटते ही वादशाह की समस्त सेना युद्ध-क्षेत्र से भागने लगी। राव छत्रसाल को यह देखकर वहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु उसके साहस में कुछ अन्तर न पड़ा। उसने अपने सामन्तो और सैनिकों से स्वाभिमान पूर्ण शब्दों में कहा :"हमारा कोई भी सैनिक युद्ध से भाग नहीं सकता। जो राजपूत डरकर युद्ध से भागता है, वह मरने पर नरक जाता है। मैं वादशाह की तरफ से युद्ध करने के लिए आया हूँ। मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि युद्ध में या तो मैं विजय प्राप्त करूँगा, अन्यथा प्राण दे दूंगा।"

इस प्रकार कहकर राव छत्रसाल ने अपनी सेना को युद्ध के लिए उत्तेजित किया और अपने हाथी को वढ़ाकर उसने भयानक रूप से शत्रुओं का संहार आरम्भ किया। इसके कुछ समय के वाद आग का एक गोला उसके हाथी पर आकर गिरा। उससे जलकर छत्रसाल का हाथी युद्ध से भागा। यह देखकर छत्रसाल अपने भागते हुए हाथी की पीठ से कूद कर नीचे आ गया और एक घोड़े पर चढ़कर वह फिर शत्रुओं की ओर आगे वढा। उसके आगे वढ़ते ही राजपूत सेना ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर भीषण सग्राम उपस्थित किया। दोनो ओर को

सेनायें एक दूसरे के बहुत निकट पहुँच गयी। इसी समय मुराद और छत्रसाल का सामना हुआ। छत्रसाल ने अपने दाहिने हाथ में भाला लेकर मुराद पर आक्रमण किया। इसी समय शत्रु की एक गोली छत्रसाल के मस्तक में लगी। वह गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी। उसका छोटा लडका भारतसिंह उस युद्ध में मौजूद था। पिता के गिरते ही वह आगे वढ़ा और मुराद के साथ उसने युद्ध आरम्भ किया। छत्रसाल का भाई मोखिम सिंह अपने दोनों लड़कों और उदय सिंह नामक भतीजे के साथ शत्रु-सेना पर भीषण मार कर रहा था। इस समय दोनों ओर से युद्ध की गति भयानक हो उठी थी। शत्रुओं का संहार करते हुए भारत सिंह मारा गया। उज्जैन और धौलपुर के संग्रामों में राजवंश के बारह शूरवीरों और हाड़ा वंश के प्रत्येक सामन्त ने युद्ध करते हुए अपने प्राण दे दिये। लेकिन उनमें से एक भी युद्ध से भागा नहीं। राजपूतों की तरह की यह बहादुरी संसार में अन्यत्र देखने को न मिलेगी।

राव छत्रसाल ने अपने जीवन में बावन युद्ध किये थे और प्रत्येक युद्ध में उसने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। उसने बूँदी के राजमहल में कुछ भाग निर्माण करवाया था और उसका नाम उसने छत्र महल रखा था। पाटन नामक स्थान में केशवराय भगवान के नाम का उसने एक रमणीक मन्दिर बनवाया था। सन् 1656 में युद्ध करते हुए वह मारा गया, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है।

राव छत्रसाल के चार लड़के थे-राव भावसिंह,भीमसिंह, भगवन्त सिंह और भार सिंह। भीमसिंह को गूगोर का अधिकार मिला। भगवन्त सिंह मऊ नामक स्थान का अधिकारी बनाया गया। भारत सिंह धौलपुर युद्ध में मारा गया था, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। राव छत्रसाल के बाद भावसिंह बूँदी के सिंहासन पर बैठा।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर औरंगजेब ने राव छत्रसाल का बदला उसके लड़के राव भावसिंह से लेने की कोशिश की। शिवपुर के राजा आत्माराम को बुलाकर उसने बूँदी राज्य पर आक्रमण करने और उसको रणथम्भौर की अधीनता में लाने का आदेश दिया। राजा आत्माराम ने बादशाह का आदेश पाकर अपने साथ बारह हजार सैनिकों की एक सेना तैयार की और हाड़ौती राज्य में जाकर उसने चारों तरफ विध्वंस और विनाश आरम्भ कर दिया। इन्द्रगढ़ बूँदी के प्रधान सामन्त के अधिकार में था। उस जागीर के खातौली नगर के राजा ने आत्माराम की सेना का सामना किया। दोनों तरफ से गोठड़ा नामक स्थान पर युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में आत्माराम की पराजय हुई। वह युद्ध क्षेत्र से भाग गया। हाड़ा राजपूतों ने उसकी सेना का पीछा किया और उसके साथ की सम्पूर्ण युद्ध सामग्री उन्होंने अपने अधिकार में कर ली। राजपूतों ने भागी हुई सेना का पीछा करके शत्रु-सेना का झण्डा छीन लिया और फिर उसके बाद हाड़ा राजपूतों की सेना ने राजा आत्माराम की राजधानी शिवपुरी को जाकर घेर लिया। पराजित आत्माराम औरंगजेब के पास पहुँचा और उसने जब हाड़ा राजपूतों के मुकाबले मे अपनी पराजय की बात उससे कही तो बादशाह औरंगजेब ने अनेक प्रकार के अपशब्द कहकर उसका तिरस्कार किया।

बादशाह औरंगजेब ने कई अवसरों पर राजपूतों की बहादुरी देखी थी। इसलिये वह हाड़ा राजपूतों से मेल करने के तरीके सोचने लगा। जाहिर तौर पर उसने इस बात को मान

लिया कि इन राजपूतों से मेल रखने में ही अपनी भलाई है। उसने राव भाव सिंह को दिल्ली राजधानी में आने के लिए सन्देश भेजा। लेकिन भावसिंह किसी प्रकार दिल्ली जाने के लिए तैयार न हुआ। वह अनेक प्रकार के संदेह करने लगा। लेकिन औरंगजेब ने कई बार उसको पत्र लिखे और इस बात का विश्वास दिलाया कि मुझसे आप का कोई अनिष्ट न होगा। इसके बाद राव भावसिंह अपनी सेना के साथ दिल्ली गया। बादशाह औरंगजेब ने उसके साथ दिल्ली में अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और शाहजादा मुअज्जम की अधीनता मे उसको औरंगाबाद का शासक बना दिया।

राव भावसिंह ने औरंगाबाद के शासन का अधिकार पाकर ओड़छा और दतिया के बुंदेला लोगों के साथ होने वाले युद्धों में अपनी वीरता का परिचय दिया था। बीकानेर के राजा कर्ण का सर्वनाश करने के लिए जो पड्यंत्र रचा गया था, राव भावसिंह ने उस पड्यंत्र को नष्ट करके बीकानेर के राजा की रक्षा की। राव भावसिंह ने औरंगावाद में कई इमारतें बनवाई। वहाँ के इतिहास से जाहिर होता है कि उसने अपने साहस,शौर्य और उदार व्यवहार के द्वारा सभी प्रकार के लोगो में लोकप्रियता पायी थी। सन् 1682 ईसवी में राव भावसिंह की औरंगाबाद में मृत्यु हो गयी।

राव भावसिंह के कोई लड़का नहीं था। इसलिये उसके भाई भीमसिंह के लड़के का लड़का अनिरुद्ध बूँदी के सिंहासन पर बिठाया गया और भीमसिंह को गूगोर का अधिकारी बना दिया। भीमसिंह के लड़के किशन सिंह को औरंगजेब ने छल से मरवा डाला था। अपने उस अपराध को छिपाने के लिए उसने अनिरुद्ध सिंह के अभिपेक के समय मूल्यवान उपहारों के साथ एक हाथी सजा कर भेजा था। राव अनिरुद्ध सिंह ने बूँदी के सिंहासन पर बैठने के बाद दिल्ली में जाकर अपने सम्मान का परिचय दिया।

इसके कुछ दिनों के बाद बादशाह औरंगजेब जब अपनी सेना को लेकर दक्षिण में युद्ध करने के लिए गया तो राव अनिरुद्ध सिंह भी अपनी सेना के साथ वहाँ गया। दक्षिण में मुगल सेना को भयानक युद्ध करना पड़ा और उन्हीं दिनों में शत्रुओं की एक सेना ने बादशाह औरंगजेब के उस शिविर में आक्रमण किया जिसमें उसकी बेगमें थीं। उस समय बादशाह की बेगमों के सामने भयानक संकट उत्पन्न हो गया। इस भीषण समय में राव अनिरूद्ध सिंह ने अपने राजपूतों के साथ शत्रुसेना पर आक्रमण किया और उसे परास्त करके उसने बेगमों की रक्षा की। बादशाह औरंगजेब अनिरुद्ध सिंह के इस साहसपूर्ण कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उससे पूछा :"इसके बदले में आप क्या पुरस्कार चाहते हैं?"

बादशाह के इस प्रश्न को सुनकर अनिरूद्ध सिंह ने कहा :" मै कोई पुरस्कार नही चाहता। मैं इस समय आपके पीछे चलने वाली सेना का अधिकारी बनाया गया हूॅ। मैं चाहता हूँ कि मुझे सम्पूर्ण सेना के आगे चलने का अधिकार दिया जाये।"

बादशाह औरंगजेब ने राव अनिरूद्ध सिंह की इस मॉग को स्वीकार कर लिया।

बादशाह औरंगजेब जब बीजापुर का युद्ध लड़ रहा था। राव अनिरूद्ध सिंह ने उस युद्ध में भी अपने आश्चर्य जनक रणकौशल का परिचय दिया था और बादशाह उससे भी बहुत प्रसन्न हुआ था।

वूँदी राज्य के प्रधान सामन्त दुर्जन सिंह के साथ राव अनिरूद्ध सिंह का कुछ झगड़ा पैदा हुआ। उसके कारण दुर्जन सिंह दक्षिण से चला आया और अपनी जागीर में आकर उसने अनिरूद्ध सिंह के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की। अपने वंश के लोगों की एक सेना तैयार करके वह वूँदी राजधानी में पहुँच गया और वलवन्त सिंह का अभिपेक करके उसने उसको वूँदी राज्य का शासक घोपित किया।

यह समाचार वादशाह औरंगजेव को मिला। उसने अनिरूद्ध सिंह के साथ अपनी एक सेना भेजकर दुर्जन सिंह को भगाने और वूँदी राज्य पर अधिकार करने का आदेश दिया। अनिरूद्ध सिंह उस सेना के साथ वूँदी में पहुँचा और दुर्जन सिंह को परास्त करके उसने वलवन्त सिंह को सिंहासन से उतार दिया। इसके वाद अनिरूद्ध सिंह ने सिंहासन पर वैठकर वूँदी राज्य की व्यवस्था की। इन्हीं दिनों में वादशाह का लड़का शाह आलम उत्तरी भारत का शासक होकर लाहौर गया। राव अनिरूद्ध सिंह भी उसके साथ था। आमेर का राजा विष्णु सिंह भी वादशाह की तरफ से वहाँ भेजा गया। कुछ दिनों के वाद राव अनिरूद्ध सिंह की वहाँ पर मृत्यु हो गयी।

राव अनिरूद्ध सिंह के वुधसिंह और जोधसिंह नामक दो लड़के थे। उन दोनों में वुधसिंह वड़ा था। इसीलिए वह पिता के सिंहासन पर वैठा। वुधसिंह के अभिपेक के वाद थोड़े ही दिनों में वादशाह औरंगजेव औरंगावाद में वीमार पड़ा। उसकी वीमारी धीरे-धीरे वढ़ती गयी और जव उसके वचने की कोई आशा न रह गयी तो उसके सामन्तों और अमीर उमराओं ने उससे पूछा ; "आपका उत्तराधिकारी कौन है और अपने वाद मुगल सिंहासन पर वैठने के लिए किसके पक्ष में आप निर्णय देते हैं?"

इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर मरणासन्न अवस्था में वादशाह औरंगजेव ने कहा : "मेरे वाद मुगल सिंहासन पर कौन वैठेगा, यह मैं ईश्वर पर छोड़ देता हूँ। यो तो मैं चाहता हूँ कि मेरा लड़का वहादुरशाह आलम मेरे वाद सिंहासन पर वैठे। परन्तु मेरा ख्याल है कि शाहजादा आलम अपने लिए कोशिश करेगा।"

औरंगजेव ने जो कुछ कहा था, अन्त में वही हुआ। आजमशाह ने अपने वड़े भाई का विरोध किया और वह स्वयं मुगल सिंहासन पर वैठने के लिये कोशिश करने लगा। इस विरोध में दोनों भाइयों के वीच भयानक संघर्प हुआ। दोनों तरफ से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। जो हिन्दू राजा वहादुर शाह के पक्ष में थे, उनको प्रोत्साहित किया गया। उन राजाओं में वूँदी का राव वुधसिंह भी था। उसकी आयु उस समय वहुत थोड़ी थी और वह अपने छोटे भाई जोधसिंह की मृत्यु से वहुत दुःखी था। वहादुर शाह आलम ने जव जोधसिंह की मृत्यु का समाचार सुना तो उसने वूँदी राजधानी में जाकर उसका श्राद्ध कर्म करने के लिए वुधसिंह को आदेश दिया। राव वुधसिंह ने इसका उत्तर देते हुए वहादुर शाह से कहा : "आपकी वर्तमान परिस्थिति में मेरा वूँदी जाना किसी भी दशा में मुनासिव नहीं है। धोलपुर के जिस युद्ध-क्षेत्र में मेरे वंश के अनेक शूरवीरों ने युद्ध करके अपने प्राणों की आहुतियाँ दी थीं और जिस युद्ध भूमि में मेरे पूर्वज छत्रसाल ने अपने प्राणों की वलि दी थी, उसी युद्ध-भूमि में जाकर वादशाह की विजय के लिए मैं युद्ध करूँगा। इस समय सवसे पहला मेरा कर्त्तव्य यही है।"

शाहआलम अपनी सेना के साथ लाहौर से और अपने लड़के बेदार बख्त के साथ सेना लिए हुए आजम दक्षिण से रवाना हुआ। धौलपुर के निकट जाजौ नामक स्थान पर दोनों सेनाओ की भेंट हुई और युद्ध आरम्भ हो गया। थोड़े ही समय के बाद इस युद्ध ने भयानक रूप धारण किया। मुगल सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए शाह आलम और आजम में यह युद्ध हुआ लेकिन राजस्थान के सभी राजपूत नरेश अपनी-अपनी सेनाये लेकर इस युद्ध मे आये और उनमें से कुछ लोगो ने शाह आलम का और शेष लोगों ने आजम का साथ दिया। इस प्रकार राजस्थान के सभी राजपूत राजा इस युद्ध मे एकदूसरे का सर्वनाश करने के लिए तैयार हो गये और शाह आलम तथा आजम की सहायता करने के स्थान पर राजपूत राजा इस युद्ध में लड़कर स्वयं अपना ही विनाश करने लगे।

दतिया और कोटा राज्य के दोनो नरेश बहुत दिनों तक शाहजादा आजम के अधीन दक्षिण के युद्ध में रह चुके थे। आजम उन दोनों का बहुत विश्वास भी करता था। इसलिए उन दोनो राजाओं ने बादशाह औरंगजेब के निर्णय की परवाह न करके छोटे शाहजादे को सिंहासन पर बिठाने के लिए पूरी कोशिश की। बूँदी और दतिया के राजाओं की आपस में मित्रता थी और दोनो ने दक्षिण के युद्ध मे कीर्ति प्राप्त की थी परन्तु इस समय दतिया का राजा अपने मित्र अनिरूद्ध सिंह के लड़के बुधसिंह के विरुद्ध युद्ध कर रहा था और कोटा का राजा रामसिंह आजम का पक्ष लेकर शाहआलम के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। बूँदी के राजा को बादशाह के दरबार में सदा सम्मान पूर्ण स्थान मिला था और इसीलिए उसके साथ कोटा का राजा ईर्ष्या करता था। वह चाहता था कि हाडा राजा को मुगल दरबार में जो सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है, वह मुझे मिले। इसीलिए उसने इस युद्ध मे आजम का साथ दिया था। राव बुधसिंह शाह आलम के पक्ष मे था। सही बात यह है कि धोलपुर के इस युद्ध में जो राजा और नरेश दोनों पक्षों की सहायता में युद्ध कर रहे थे, उन सबके सामने एक न एक स्वार्थ था। प्रत्येक पक्ष अपने सहायकों के सम्मान को बढ़ाने का विश्वास दे रहा था। युद्ध आरम्भ होने के पहले कोटा के राजा राम सिंह ने बुधसिंह के पास एक पत्र भेजा था और उसके द्वारा उसने बुधसिंह को शाहआलम के पक्ष से आजम की ओर लाने की चेष्टा की थी। उस पत्र को पाकर राव बुधसिंह ने क्रोध में आकर उसको उत्तर देते हुए लिखा :''मेरे पूर्वजो ने बादशाह का समर्थन करके जिस युद्ध-क्षेत्र में अपने जीवन का अन्त किया था, उस युद्ध-क्षेत्र में बादशाह के विरुद्ध युद्ध करके मैं अपने वंश को कलंकित नहीं कर सकता।''

युद्ध आरम्भ होने पर राव बुधसिंह ने बादशाह आलम के द्वारा प्रधान सेनापति का पद प्राप्त किया और युद्ध में उसने अपने असीम साहस और शौर्य का आश्चर्यजनक परिचय दिया। इसके परिणाम स्वरूप बहादुरशाह आलम की युद्ध में विजय हुई और वह शत्रुपक्ष को परास्त करके मुगल सिंहासन पर बैठा। कोटा का हाड़ा राजा रामसिंह और दतिया का बुन्देला राजा दलीप दोनो ही आजम की तरफ से लड़ते हुए युद्ध में मारे गये। उस युद्ध में आजम और बेदार बख्त का भी अन्त हो गया।

जाजो के युद्ध में बुधसिंह का शौर्य देखकर बादशाह बहादुरशाह आलम ने उसको राव राजा की उपाधि दी और उसके साथ मैत्री कायम की। यह मित्रता बादशाह के जीवन के

अन्त तक चलती रही। बादशाह की मृत्यु के बाद मुगल सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए फिर से संघर्ष पैदा हुआ। उस संघर्ष में औरंगजेब के सभी पौत्र मारे गये। इसके बाद फरूखसियर मुगल सिंहासन पर बैठा और उसने भयानक अत्याचार करके मुगल साम्राज्य का सभी प्रकार विध्वंस किया। इसके बाद फर्रुखसियर के दोनों भाइयों ने उसके साथ संघर्ष पैदा किया और उसको मार डालने के लिए वे चेष्टा करने लगे। इन दिनों में बूँदी के राजा ने फर्रुखसियर का साथ दिया। दिल्ली राजधानी में भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में बुधसिंह का चाचा जगत सिंह बूँदी के अनेक सामन्तों के साथ मारा गया।

जाजो के युद्ध में कोटा और बूँदी के राजाओं में शत्रुता पैदा हुई। कोटा का राजा राम सिंह युद्ध में मारा गया था। इसलिए उसका लड़का भीमसिंह अपने पिता का बदला लेने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगा। फर्रुखसियर के दोनों भाइयों ने उसके साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में बूँदी के राजा ने फर्रुखसियर की तरफ से युद्ध किया था। इसलिए बूँदी के राजा से बदला लेने के लिए भीमसिंह फर्रुखसियर के दोनों भाइयों से मिल गया था। राव राजा बुधसिंह एक दिन जिस समय दिल्ली राजधानी के बाहर अपने घोड़ों को युद्ध की शिक्षा दे रहा था, कोटा का राजा भीमसिंह अपने कुछ सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा और वह बुधसिंह को कैद करके दोनों सैयद बन्धुओं के पास ले जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय बुधसिंह के साथ बहुत थोड़े से सैनिक थे। परन्तु सैनिकों ने कोटा के राजा के साथ युद्ध करके बुधसिंह की रक्षा की। इन दिनों में बादशाह फर्रूखसियर के विरोधी दोनों सैयद बन्धु शक्तिशाली हो गये थे और फर्रूखसियर का भविष्य अंधकार पूर्ण हो रहा था। इसलिए राव राजा बुधसिंह दिल्ली छोड़कर चला गया। इसके बाद अवसर पाकर दोनों सैयद बन्धुओं ने बादशाह फर्रूखसियर को मार डाला। उसके मर जाने के बाद जो राजपूत राजा दिल्ली में थे, वे अपने-अपने राज्यों में चले गये।

इन दिनों में आमेर के राजा जयसिंह के साथ बूँदी के राजा बुधसिंह का संघर्ष पैदा हुआ और राजा जयसिंह बुधसिंह को बूँदी के सिंहासन से उतार देने की कोशिश करने लगा। यह घटना इस प्रकार कही जाती है-

बुधसिंह ने राजा जयसिंह की एक बहन के साथ विवाह किया था और उसके पहले यह तय हो चुका था कि जयसिंह की उस बहन के साथ बादशाह बहादुरशाह आलम का विवाह होगा। लेकिन जाजो के युद्ध में बुधसिंह की सहायता से बादशाह शाह आलम बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जयसिंह की उस बहन के साथ विवाह करने के लिए बुधसिंह से कहा। बादशाह के इस परामर्श से जयसिंह ने प्रसन्न होकर अपनी उस बहन का विवाह बुधसिंह के साथ कर दिया।

जयसिंह की उस बहन के कोई सन्तान पैदा नहीं हुई। इस विवाह के पहले बुधसिंह ने बेगू के कालामेघ की एक लड़की के साथ विवाह किया था। उस रानी से दो लड़के पैदा हुए। उन दोनों सौतेले लड़कों के साथ जयसिंह की बहन ईर्ष्या करने लगी। इन्हीं दिनों में बुधसिंह अपने राज्य से बाहर चला गया। उसके जाने के बाद जयसिंह की उस बहन ने अपने आपको गर्भवती कहकर प्रकट किया और कुछ दिनों के बाद बुधसिंह की दूसरी रानी से पैदा

होने वाले छोटे लड़के को गुप्त रूप से अपने पास लाकर जाहिर किया कि यह लडका मेरे पैदा हुआ है। उसकी यह बात राजमहल से लेकर बाहर तक सभी लोगों में फैल गयी।

राव राजा बुधसिंह के बाहर से लौटने पर जयसिंह की बहन ने अपना वह लडका उसकी गोद में दिया। राव बुधसिंह उसके षड़यंत्र को सुन चुका था। उसे अत्यन्त क्रोध मालूम हुआ। उसने यह घटना आमेर के राजा जयसिंह को लिखी। राजा जयसिंह ने उस घटना को जान कर बहुत आश्चर्य किया और अपनी उस बहन से घृणा करने लगा। लेकिन उसकी बहन पर उसके तिरस्कार का कोई प्रभाव न पड़ा और एक दिन अवसर पाकर जब वह आमेर की राजधानी में थी, एक तलवार लेकर उसने जयसिंह पर आक्रमण किया। लेकिन जयसिंह किसी प्रकार उससे बचकर निकल गया।

राजा जयसिंह पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और वह अपनी बहन के साथ-साथ बुधसिंह से भी बहुत चिढ़ गया। उसने बुधसिंह को बूंदी के सिंहासन से उतार कर इन्द्रगढ़ के राजा देवी सिंह को वहां के सिंहासन पर बिठाने का निर्णय किया। लेकिन राजभक्त देवीसिंह इसके लिये तैयार न हुआ। उस दशा मे जयसिंह ने करवर के सामन्त सालिम सिंह को बूँदी के राज सिंहासन पर बिठाना चाहा। सालिम सिंह बूँदी राज्य का एक सामन्त था और वह तारागढ़ की जागीर का अधिकारी था।

राजा जयसिह बुधसिंह को सिहासन से उतारने के उपाय सोचने लगा। इन दिनों में वह मुगल बादशाह की तरफ से मालवा, अजमेर और आगरा का शासक था। उसके अधिकार में इन दिनों मुगल-साम्राज्य की शक्तियाँ थीं। दिल्ली में आपसी विरोध और संघर्ष के कारण मुगल बादशाह की शक्तियाँ लगातार क्षीण हो रही थीं। जयसिंह ने इस अवसर पर सभी प्रकार के लाभ उठाने की कोशिश की। बादशाह फर्रुखसियर के मारे जाने के बाद जयसिंह अपने राज्य में चला आया और उसने अपने राज्य की सीमा को लगातार बढ़ाने की चेष्टा की। जो नगर और ग्राम उसके राज्य की सीमा के निकट थे, उन पर उसने अधिकार करने का निश्चय किया। इन दिनों में मुगल-साम्राज्य के अनेक सामन्तों की सेनायें उसके अधिकार में थीं। जयसिह ने उससे लाभ उठाना चाहा।

आमेर राज्य में लालसोढ के पचयाना चौहान और गोरा तथा नीमराणा आदि कितने ही ऐसे सामन्त थे, जो जयपुर के राजा को न तो कर देते थे और न विधान के अनुसार अधीनता स्वीकार करते थे। वे केवल आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेनाएँ लेकर आमेर की राजधानी में आते थे और जयपुर के राजा की सहायता में युद्ध करते थे। शेखावाटी के सामन्त इसको भी स्वीकार नहीं करते थे और राजौर के बड़गूजर एवम् बियाना के यादव आदि अनेक सामन्त पूर्ण रूप से स्वतत्र शासन करते थे परन्तु इधर कुछ दिनों से उन्होने आमेर राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी और वे जयपुर के राजा का आदेश पालन करने के लिये तैयार रहा करते थे। इन सामन्तो की भाँति बूँदी के राव बुधसिंह को अपनी अधीनता मे लाकर और बूँदी के सिंहासन पर किसी को अपनी इच्छानुसार बिठाकर राजा जयसिंह अपनी अभिलाषा को पूरा करने के लिये तत्पर हुआ।

राजा जयसिंह के इस षडयत्र की कोई जानकारी बुधसिंह को न थी। वह जिन दिनो मे आमेर की राजधानी मे मौजूद था, जयसिंह ने उससे कहा : "अगर आप कुछ दिनो तक

आमेर राजधानी में रह सकें तो मैं आपको सैनिकों और सेवकों के खर्च में पाँच सौ रुपये रोजाना के हिसाब से दूँगा।"

बुधसिंह का चाचा जगतसिंह सैयद वन्धुओं की सेना के साथ युद्ध करते हुए मारा गया था और उस युद्ध में जिसने अपने प्राण देकर बुधसिंह की रक्षा की थी, उसका एक भाई राव वुधसिंह के साथ आमेर राजधानी में इस समय मौजूद था। राजा जयसिंह ने आमेर राजधानी में रहने के लिए बुधसिंह से जो प्रस्ताव किया था, उसमें उसका पड़यंत्र क्या था, यह उससे छिपा न रहा। उसने गुप्त रूप से एक पत्र वूँदी भेजा और उसमें उसने लिखा कि वेगू वाली रानी को अपने दोनों पुत्रो के साथ तुरन्त बूँदी से अपने पिता के यहाँ चले जाना चाहिये।

इसके वाद जगतसिंह के भाई ने आमेर राजधानी से वाहर राव बुधसिंह से छिपकर वातचीत की और उसने बुधसिंह को वताया कि राजा जयसिंह ने आमेर राजधानी में रहने के लिए जो प्रस्ताव किया है, उसमें एक भयानक पड़यंत्र है और उस पड़यंत्र के द्वारा आप का विनाश किसी न किसी तरह निश्चित है। इस प्रकार विश्वासघात की वात को सुनकर वह अपने तीन सौ हाड़ा राजपूतों के साथ जयपुर छोड़कर रवाना हुआ। वह बूँदी की तरफ जा रहा था। उसके पंजोला नामक स्थान पर पहुँचते ही राजा जयसिंह की आज्ञानुसार जयपुर के पाँच प्रधान सामन्तों ने सेनाओं के साथ उस पर आक्रमण किया। वह अपने तीन सौ राजपूतों के साथ घेर लिया गया। राव बुधसिंह ने विना किसी घबराहट के आक्रमणकारियों के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। इस युद्ध में जयपुर राज्य के ईशरदा, मेवाड़ और भावर आदि के पाँच सामन्तों के साथ कितने ही सरदार मारे गये। उस स्थान पर उन सामन्तों के जो स्मारक वने, वे अब तक मौजूद हैं। इस युद्ध में बुधसिंह के चाचा का वह भाई भी मारा गया, जिसने पहले से ही जयसिंह के पड़यंत्र को समझकर राव बुधसिंह को सचेत किया था।

इस युद्ध में राव बुधसिंह की विजय हुई। लेकिन उसके साथ के वहुत से हाड़ा राजपूत मारे गये इसलिये अब उसके साथ जो सैनिक वाकी रह गये थे, उनकी संख्या वहुत कम थी। राव बुधसिंह को मालूम हो गया कि उसके विरुद्ध इसी प्रकार का पड़यंत्र वूँदी में भी पैदा कर दिया गया है। इसलिए वह अपने साथ के थोड़े से सैनिकों को लेकर वूंदी न जा सका और वह उस स्थान से पहाड़ी रास्तों की तरफ चला गया। जयसिंह ने राव बुधसिंह को भगाकर करवर के सामन्त दलेलसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह किया और उसको वूदी के सिंहासन पर बिठाया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि कोटा और वूंदी में शत्रुता पैदा हो गयी थी। यद्यपि उन दोनो राजवशों का मूल आधार एक ही था और बूँदी के राजवंश से निकल कर उसी वंश के लोगों ने कोटा के राजवंश की प्रतिष्ठा की थी। इस प्रकार दोनों राजवंशों के पूर्वज एक ही थे। फिर भी उन दोनों मे जो शत्रुता पैदा हुई, उसके कारण वे दोनों एक दूसरे का विनाश करने मे लगे थे। राव बुधसिंह को जयसिंह के द्वारा पराजित देखकर कोटा के राजा भीमसिंह को वड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मारवाड़ के राजा अजितसिंह और दिल्ली के दोनो सैयद बन्धुओ के साथ मित्रता कायम की। एवं उनकी सहायता से उसने भरवार और हाड़ौती आदि नगरो मे अपने आधिपत्य का विस्तार आरम्भ किया।

राव बुधसिंह के सामने इन दिनों में भयानक संकट थे। उसने कई बार साहस करके अपने पूर्वजों की राजधानी पर अधिकार करने की चेष्टा की और उसके फलस्वरूप कई बार युद्ध हुए। उनमें बहुत से हाडा राजपूत मारे गये परन्तु बुधसिंह को सफलता न मिली। अन्त मे निराश होकर वह अपनी ससुराल मे जाकर रहने लगा। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। राव बुधसिंह के दो लड़के थे। बड़े लड़के का नाम था उम्मेदसिंह और छोटे का नाम था दीपसिंह।

राव बुधसिंह के मर जाने के बाद भी उसकी विपदाएँ कम न हुई। राजा जयसिंह के प्रोत्साहित करने पर मेवाड़ के राणा ने बेगू का इलाका अपने अधिकार में कर लिया और बुधसिंह के दोनों लड़कों को उनके मामा के यहाँ से निकाल दिया। दोनों हताश लड़के अपने कुछ विश्वासी आदमियों के साथ पुचेल नामक एक जंगल में चले गये और वहाँ पर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इन्हीं दिनों मे कोटा के राजा भीमसिंह की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर दुर्जनशाल कोटा के सिंहासन पर बैठा। बुधसिंह के लड़के उम्मेदसिंह और दीपसिंह के जीवन में चारो ओर अन्धकार था। कहीं से किसी प्रकार आशा न होने पर उन दोनों ने राजा दुर्जनशाल को अपनी दुरवस्था लिखी और उससे सहायता की प्रार्थना की। दुर्जनशाल उदार और दयालु हृदय था। उसने जातीय शत्रुता के भावों को भूलकर उम्मेद सिंह दीपसिंह की न केवल सहायता की, बल्कि उनके पक्ष का यहाँ तक समर्थन किया कि जिससे दोनो भाई फिर से अपने पूर्वजों के राज्य का अधिकार प्राप्त कर सकें।

□

अध्याय-64
कोटा राज्य पर जयपुर का आक्रमण

सन् 1744 ईसवी में जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु हो गयी। उस समय उम्मेदसिंह की अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी। जयसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर उम्मेदसिंह के हाड़ा वंश के थोड़े से सैनिकों को लेकर तैयारी की और पाटन तथा गेनोली पर आक्रमण करके उसने अधिकार कर लिया। उसकी इस विजय का समाचार हाड़ौती-राज्य में फैल गया और लोगों ने सुना कि बूँदी के स्वर्गीय राजा बुधसिंह के लड़के उम्मेदसिंह ने अपने पिता के राज्य पर अधिकार करने के लिए निश्चय किया है। इस समाचार से उस राज्य के सभी लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और हाड़ा वंश के राजपूतों के दल चारों ओर से आकर उम्मेद सिंह के झण्डे के नीचे एकत्रित होने लगे। यह समाचार कोटा के राजा दुर्जनशाल के पास पहुँचा। वह बहुत प्रसन्न हुआ और उम्मेदसिंह की सहायता के लिए उसने अपने राज्य से एक सेना भेजी।

जयसिंह की मृत्यु के बाद ईश्वरी सिंह वहाँ के सिंहासन पर बैठा। उसने जब सुना कि कोटा के राजा दुर्जनशाल ने उम्मेदसिंह की युद्ध में सहायता करने का निश्चय किया है तो उसने कोटा राज्य पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के सम्बन्ध में अधिक विवरण कोटा के इतिहास में लिखा गया है।

आक्रमण के बाद कोटा में जो युद्ध हुआ, उसमे ईश्वरी सिंह को भागना पड़ा। रास्ते में उसने उम्मेद सिंह पर आक्रमण करने के लिए एक सेना भेजी। लोहारी नामक स्थान पर मीणा जाति के लोग रहा करते थे। हाड़ा राजा ने किसी समय उनकी स्वाधीनता नष्ट की थी। फिर भी मीणा लोगों ने हाड़ा राजा के साथ कई अवसरों पर उपकार किये थे और कई युद्धों में मीणा लोगों ने उसका साथ दिया था। मीणा लोग अपने वंश की इन बातों को भूले न थे। इन दिनों में उम्मेद सिंह के शौर्य और साहस को देखकर मीणा लोग बहुत प्रसन्न हुए और वे धनुष बाण लेकर उम्मेद सिंह की सहायता करने के लिए पाँच हजार की संख्या में तैयार हो गये। यह देखकर बालक उम्मेद सिंह को सन्तोष मिला। उसने मीणा लोगों की सहायता से विचोरी नामक स्थान पर शत्रुओ के साथ युद्ध आरम्भ किया। मीणा लोगों ने शत्रु के शिविर में जाकर लूट-मार आरम्भ की और उम्मेद सिंह ने हाड़ा राजपूतो की सेना को लेकर जयपुर की सेना का संहार करना शुरू कर दिया। उस समय शत्रु-सेना के बहुत से लोग मारे गये। हाड़ा राजपूतों ने शत्रुओ के झण्डे को छीनकर अपने अधिकार में कर लिया। उस युद्ध मे हाड़ा राजपूतों की विजय हुई और शत्रुओं की सेना पराजित होकर युद्ध क्षेत्र से भाग गयी।

जयपुर के राजा ने अपनी इस पराजय का समाचार सुना। उसने उम्मेद सिंह को परास्त करने का निश्चय किया और नारायण दास के नेतृत्व में उसने अठारह हजार सैनिकों

की एक सेना रवाना की। यह समाचार हाड़ा लोगों में सर्वत्र फैल गया कि बालक उम्मेद सिंह से युद्ध करने के लिए जयपुर से एक बड़ी सेना आ रही है। यह जान कर हाड़ा वंश के जो सामन्त अभी तक उम्मेद सिंह की सहायता में नहीं आये थे, वे भी अपनी सेनाओं के साथ रवाना हुए। उम्मेद सिंह ने अपने पिता के राज्य को प्राप्त करने के लिए एकत्रित हाड़ा राजपूतो के सामने प्रतिज्ञा करते हुए कहा, अपने वंश की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए मैं युद्ध में अपने प्राणों की बलि दूंगा।

जयपुर राज्य के अठारह हजार सैनिकों की सेना डवलाना नामक स्थान पर आकर रुकी। युद्ध आरम्भ करने के पहले उम्मेद सिंह अपने वंश की देवी आशापूर्णा के मन्दिर में गया और वहाँ से लौटकर उसने अपनी सेना के सामने प्रतिज्ञा की- ''या तो बूँदी राज्य पर अधिकार करूँगा अथवा युद्ध-भूमि मे बलिदान हो जाऊँगा।''

बालक उम्मेद सिंह के साहस और शौर्य को देखकर एकत्रित हाड़ा राजूपतों ने उसकी प्रतिज्ञा का समर्थन करते हुए कहा-''हम लोग या तो विजयी होंगे अथवा युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राणों को उत्सर्ग करेंगे।''

दिल्ली के बादशाह जहाँगीर ने बूँदी के राजा राव रतन को राज पताका दी थी, उम्मेद सिंह इस युद्ध मे उसे अपने साथ लाया था। समस्त हाड़ा राजपूत बूँदी के उस झण्डे के नीचे एकत्रित हुए। उसी समय समाचार मिला कि शत्रुओं की सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है। यह जान कर समस्त हाड़ा राजपूत एक साथ उत्तेजित हो उठे। उनकी अपेक्षा जयपुर की आने वाली सेना अधिक थी परन्तु उम्मेद सिंह उस विशाल सेना से किञ्चित भी भयभीत न हुआ। उसने अपनी सेना को चक्राकार सजाकर और अपने हाथ में भाला लेकर युद्ध की गर्जना की। हाड़ा राजपूत आगे बढ़े। दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। हाड़ा राजपूतों ने शत्रुओ की सेना पर इतने जोर का आक्रमण किया कि वह एक बार तितर-बितर होती हुई दिखायी पड़ी। परन्तु शत्रु सेना ने अपने आपको सम्भाल कर हाड़ा राजपूतों पर भयंकर गोलियों की वर्षा की। उम्मेद सिंह के सैनिकों ने उन गोलियों के सामने अपने प्राणों की परवाह न की और अपने हाथों में तलवारें लिए हुए शत्रुओ की ओर आगे बढ़े और अपनी तलवारो से उन्होंने जयपुर राज्य के सैनिकों का संहार किया। जिससे वे प्रत्येक बार अधिक संख्या में मारे गये। सबके पहले उम्मेद सिंह का मामा पृथ्वीसिंह घायल होकर गिरा, उसके बाद मोटरा का राजा मरजाद सिंह मारा गया। सारन के सामन्त प्राग सिंह के साथ-साथ दूसरे बहुत से शूरवीरों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इस प्रकार प्रधान रणकुशल सैनिकों के मारे जाने पर भी बालक उम्मेद सिंह हताश न हुआ और शत्रुओं का संहार करने के लिये साहस पूर्वक अपनी सेना के साथ वह आगे बढ़ा।

कुछ समय के भीषण युद्ध के बाद शत्रु की गोली से उम्मेद सिंह का घोड़ा घायल हुआ। उसके शरीर से रुधिर की धारा बहने लगी। शत्रुओ की संख्या अधिक होने के कारण और शत्रु पक्ष की तरफ से गोलियों की मार होने से उम्मेद की सेना लगातार निर्बल होती गयी और अन्त मे उसकी पराजय के लक्षण दिखायी देने लगे। इस समय युद्ध की दशा भयानक थी। शत्रु सेना बराबर आगे बढ़ रही थी और उम्मेद सिंह के सामने संकट का समय आने में

अधिक देर न थी। यह देख कर उसके सामन्तों ने समझाते हुए उससे कहा: "अगर आप जीवित रहेंगे तो किसी समय भी बूँदी पर अधिकार हो सकता है। लेकिन अगर आप इस युद्ध में मारे गये तो भविष्य की समस्त आशायें समाप्त हो जायेंगी। इसलिए आप युद्ध को बन्द कर दें।"

उम्मेद सिंह ने अपने सामन्तों की इस बात को सुना। उसकी कुछ भी समझ में न आया। इसलिए अपनी अन्तरात्मा में वेदना को रख कर बाकी बची हुई सेना के साथ युद्ध क्षेत्र से हटकर उम्मेद सिंह सवाली नाम की घाटी की तरफ चला आया। वहाँ से इन्द्रगढ़ अधिक दूर न था। इसलिए उम्मेद सिंह अपने जख्मी घोड़े को विश्राम देने के लिए उससे उतर पड़ा। उसके उतरने के कुछ देर बाद उसका घोड़ा गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी। यह देखकर उम्मेद सिंह का हृदय विह्वल हो उठा। वह घोड़े के सिरहाने बैठकर रोने लगा। उस घोड़े का नाम हुन्जा था। वह घोड़ा ईराक देश का था। दिल्ली के बादशाह ने उम्मेद सिंह के पिता राव बुधसिंह को वह घोड़ा उपहार में दिया था और बुधसिंह ने उस पर बैठकर अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। उम्मेद सिंह ने जब बूँदी के राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त किया तो उसने सबसे पहले इस घोड़े की एक प्रस्तर मूर्ति बनवा कर बूँदी राजधानी के चौक में स्थापित की।*

घोड़े के मर जाने के बाद बहुत दुःखी होकर उम्मेद सिंह इन्द्रगढ़ गया। इस इन्द्रगढ़ का राजा बूँदी राज्य का प्रधान सामन्त था। उसने राजभक्ति को ठुकराकर और अवसरवादी बनकर आमेर के राजा की अधीनता स्वीकार की थी। इस बात को समझते हुए भी उम्मेद सिंह उसके पास गया। इन्द्रगढ़ के राजा ने उम्मेद सिंह के माँगने पर एक घोड़ा नहीं दिया और उम्मेद सिंह को इन्द्रगढ़ से चले जाने के लिए उसने साफ-साफ कहा।

इन्द्रगढ़ के राजा से उम्मेद सिंह को इस प्रकार की आशा न थी। उसके इस दुर्व्यवहार से अत्यन्त दुःखी और क्रोधित होकर उसने इन्द्रगढ़ में पानी तक नहीं पिया और वहाँ से वह करवान की तरफ चला। वहाँ का राजा इन्द्रगढ़ के राजा की तरह अवसरवादी और विश्वासघातक न था। उम्मेद सिंह के आने का समाचार पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने स्थान से चलकर वह उम्मेद सिंह के पास जाकर मिला। इसके बाद वह उसे अपने यहाँ ले गया। उसने उम्मेद सिंह को एक घोड़ा देकर आवश्यकता के समय सभी प्रकार की सहायता करने का वादा किया।

उम्मेद सिंह इस बात को समझता था कि जयपुर की सेना के साथ इस समय युद्ध करना असम्भव है। इसलिए उम्मेद सिंह ने अपने साथ के हाड़ा राजपूतो को विदा कर दिया और कहा : "इस समय आप लोग अपने-अपने स्थान को जावें, फिर कभी अवसर मिलने पर आप लोगों की सहायता से बूँदी राज्य को प्राप्त करने की कोशिश करूँगा।"

इस प्रकार कहकर और साथ के लोगों को विदा करके उम्मेद सिंह चम्बल नदी के किनारे रामपुरा नामक स्थान के एक प्राचीन और टूटे-फूटे महल में जाकर रहने लगा।

---

* मैंने हुन्जा घोडे की प्रस्तर मूर्ति को देखकर आदर पूर्वक उसको नमस्कार किया था। अगर मैं हाड़ा लोगों के बीच में रहता तो प्रत्येक सैनिक उत्सव के समय राजपूतों की तरह उस मूर्ति के गले में माला पहनाता।

तेजस्वी उम्मेद सिंह को दुर्भाग्य के इन दिनों में अधिक दिनों तक नहीं रहना पड़ा। कोटा के राजा दुर्जनशाल ने आमेर के राजा ईश्वरी सिंह और उसके सहायक मराठा सेनापति आपा जी सिंधिया को परास्त करके कोटा राज्य की रक्षा की थी। उसके हृदय में उदारता थी और विपद मे पड़े हुए किसी शूरवीर की सहायता करना वह जानता था। इन दिनों में उसने सबसे अधिक उम्मेद सिंह की सहायता की।

इन्हीं दिनों मे हाड़ौती के एक श्रेष्ठ कवि के साथ बालक उम्मेद सिंह की भेंट हुई। वह कवि उम्मेद सिंह का साहस और पुरुषार्थ देखकर बहुत प्रभावित हुआ। वह लगातार इस बात को सोचने लगा कि जैसे भी हो सके, बालक उम्मेद सिंह को उसके पिता के राज्य का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। राजपूत के हाथ में केवल उसकी लेखनी का ही महत्त्व नहीं होता, बल्कि वह अपनी कलम के समान तलवार को चलाना भी जानता है। वह उम्मेद सिंह को उसकी चेष्टाओं में सफल बनाना चाहता था। वह बालक उम्मेद सिंह के साहस, स्वाभिमान और शौर्य से बहुत प्रभावित हो चुका था। वह जानता था कि जीवन की विपदायें और भयानक कठोरतायें स्वाभिमानी तथा वीर आत्माओ के लिए होती हैं। जो मनुष्य स्वाभिमान खो देता है अथवा जिसमे स्वाभिमान नहीं होता, उसे कभी भी जीवन की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। उम्मेद सिंह से सभी प्रकार खुश होने के कारण उस कवि ने उसकी सहायता करने का निश्चय कर लिया। वह अपनी ओजस्वी कविताओं के द्वारा हाड़ा राजपूतों को प्रोत्साहित करने लगा और उम्मेद सिंह की सहायता में तलवार लेकर वह स्वयं युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिए तैयार हुआ। शत्रु की सेना उम्मेद सिंह को मिटाने में लगी थी। इसलिए हाड़ा राजपूत संगठित होकर और कोटा की सेना की सहायता पाकर फिर युद्ध के लिए तैयार हुए और रणभूमि मे जाकर उन लोगो ने बड़े साहस के साथ शत्रु सेना का सामना किया।

जयपुर के राजा जयसिंह ने दलेल सिंह को बूँदी के सिंहासन पर बिठाया था। यह युद्ध दलेल सिंह और उम्मेद सिंह के बीच आरम्भ हुआ। उसमे दलेल सिंह की पराजय हुई। उम्मेद सिंह ने बूँदी नगर पर अधिकार कर लिया। दलेल सिंह भागकर बूंदी के प्रसिद्ध दुर्ग तारागढ़ में चला गया। उम्मेद सिंह ने अपनी सेना लेकर उस दुर्ग को जाकर घेर लिया और उसने उस दुर्ग पर अधिकार करने की कोशिश की। दलेल सिंह अपनी सेना के साथ दुर्ग के भीतर मोजूद था और बाहर उम्मेद सिंह के सैनिक थे। उनके आगे बढ़ते ही दोनों ओर से मार-काट आरम्भ हुई। उस समय वह कवि युद्ध करते हुए मारा गया, जो उम्मेद सिंह की तरफ से युद्ध करने के लिए आया था और उसको मारने वाला उसी के वंश का एक विश्वासघाती सैनिक था। उसके मृतक शरीर पर एक कपडा डाल दिया गया, जिससे उसके मारे जाने का समाचार जल्दी प्रकट न हो सके। उस दुर्ग पर आक्रमण करने से जो युद्ध हुआ, उसमें भी उम्मेद सिंह की विजय हुई। इसके बाद वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा।

दलेल सिंह उस दुर्ग से भागकर जयपुर राज्य में पहुँचा और ईश्वरी सिंह को उसने अपनी पराजय का सब हाल बताया। जयपुर का राजा उसे सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुआ और उसने केशवदास खत्री के नेतृत्व में एक सेना बूंदी पर अधिकार करने के लिए भेजी।

बूँदी के सिंहासन पर बैठने के बाद उम्मेद सिंह को इतना भी अवसर न मिला कि वह अपनी निर्बल शक्तियों को एक बार सगठित कर लेता। सिंहासन पर बैठते ही जयपुर की

सेना उस पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुई। उम्मेद सिंह को इस बात का ख्याल न था कि जयपुर की सेना इतनी जल्दी आकर आक्रमण करेगी। जिस समय वह युद्ध के लिए तैयार न था और अपने राज्य तथा राजधानी की नष्ट-भ्रष्ट अवस्था पर विचार कर रहा था, एकाएक जयपुर की सेना ने आकर आक्रमण किया। उसमें उम्मेद सिंह को पराजित हो जाना पड़ा और बूँदी के दुर्ग के ऊपर जयपुर का झण्डा फिर से फहराने लगा। बूँदी पर अधिकार कर लेने के वाद वहाँ के सिंहासन पर दलेल सिंह को फिर से बिठाने के लिये कोशिश की गई। परन्तु उसने इन्कार कर दिया। इसलिए कि एक बार उस सिंहासन पर बैठकर उसने जिस लोक-निंदा को सुना था, दूसरी वार वह अपने जीवन में फिर इस प्रकार का अवसर नहीं आने देना चाहता था।

बूँदी का अधिकार निकल जाने के वाद उम्मेद सिंह की अवस्था फिर उसी प्रकार संकटपूर्ण बन गयी, जैसी कि पहले थी। अब फिर उसके सामने अन्धकार था और कहीं भी उसे प्रकाश दिखाई न देता था। अपनी इस दुरवस्था में उसने वहुत-कुछ सोच डाला और अपने पूर्वजों के राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिये उसने मारवाड़ और मेवाड़ के राजाओं से सहायता माँगी। परन्तु कोई भी उसकी सहायता के लिये तैयार न हुआ। इससे और भी उम्मेदसिंह के सामने निराशा पैदा हुई। परन्तु वह हताश होना नहीं जानता था। उसके भाग्य में जिसने इस प्रकार की कठोर विपदाएँ पैदा की थीं, उसी ने उसके अन्तर में अटूट साहस और स्वाभिमान उत्पन्न किया था।

स्वाभिमानी बालक उम्मेद सिंह ने फिर से अपनी टूटी-फूटी शक्तियों को एकत्रित किया और उसके द्वारा वह तरह-तरह के आघात शत्रु को पहुँचाने का उपाय सोचने लगा। अपने स्थान से रवाना होकर वह उस ग्राम में पहुँच गया, जिसका विनोदिया नाम था। इसी ग्राम में राजा जयसिंह की वह वहन इन दिनों में रहा करती थी, जो उम्मेद सिंह की सौतेली माँ थी और जिसके ईर्षालु व्यवहारों के कारण न केवल बूँदी-राज्य तहस-नहस हुआ था, बल्कि उसकी ससुराल का सम्पूर्ण परिवार और उसके पति राव बुधसिंह का समस्त वंश नष्ट होने की परिस्थिति में पहुँच गया था। वह अब वैधव्य अवस्था में इसी विनोदिया नामक ग्राम में रहा करती थी और समझती थी कि मैंने ही अपने स्वामी के वैभव और प्रताप को नष्ट करके सौतेले लड़कों का सर्वनाश किया है। वह स्वयं न तो बूँदी में अपना अधिकार रख सकी थी और न जयपुर-राज्य में ही उसने अपने लिए कोई स्थान रखा था। इसलिये इस ग्राम में रहकर वह अपने वैधव्य जीवन के दिन किसी प्रकार काट रही थी।

उम्मेद सिंह ने अपनी सौतेली माता के पास पहुँचकर उसके चरणों का स्पर्श किया। उम्मेद सिंह को देखकर रानी के अन्तःकरण में एक साथ पीड़ा की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बालक उम्मेद सिंह की दुरवस्था को देखकर वह बहुत दुःखी हुई। वह बार-बार सोचने लगी कि मेरी गलतियों के कारण ही बूँदी के राजवंश का सर्वनाश हुआ है। वह सोचने लगी, ऐसे अवसर पर यदि मैं किसी प्रकार इस बालक की सहायता कर सकूं तो मेरा वह परम कर्त्तव्य होगा।

रानी उम्मेद सिंह को अपने पास विठाकर उसके साथ बड़ी देर तक बातें करती रही। उसने निश्चय किया कि अपने इस अवसर पर हमको मराठों से सहायता के लिये प्रार्थना

करनी चाहिये। दोनों में इस बात का निश्चय हो गया और रानी उम्मेद सिंह को अपने साथ लेकर दक्षिण के मराठा सेनापति मल्हार राव होलकर के पास गयी और उससे मिल कर उसने बालक उम्मेद सिंह की दुरवस्था का सम्पूर्ण वृतान्त उसके सामने रखा। उसने सेनापति होलकर से कहा : "इस विपद में आपकी सहायता माँगने के लिये मैं आपको अपना भाई समझकर आई हूँ।"

मल्हार राव होलकर ने एक साधाण वंश में जन्म लिया था। परन्तु वह श्रेष्ठ वंश के अच्छे गुणों को समझता था। उसने सहानुभूति के साथ रानी की बातों को सुना और उसने पूरे तौर पर सहायता करने के लिये रानी को वचन दिया।

रानी का विश्वास था कि मराठा सेनापति के चलने पर आमेर का राजा ईश्वरी सिंह युद्ध में परास्त होगा और वह सन्धि करने की चेष्टा करेगा। मल्हार राव होलकर अपनी सेना के साथ दक्षिण से रवाना होने के लिये तैयार हुआ और वह जयपुर के लिए रवाना हो गया। राजा ईश्वरी सिंह को मालूम हुआ कि मल्हार राव होलकर की सेना जयपुर पर आक्रमण करने के लिये आ रही है तो वह अपनी सेना के साथ अपनी राजधानी से निकला और मराठा सेना के साथ युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा।

राजा ईश्वरी सिंह ने कुछ दिन पहले अपने मंत्री केशवदास को मरवा डाला था। इसलिये केशवदास के दोनों लड़के हरसहाय और गुरु सहाय ईश्वरी सिंह से ईर्ष्या करते थे और किसी प्रकार ऐसे पड्यंत्र की खोज मे थे, जिससे वे राजा ईश्वरी सिंह से अपने पिता का बदला ले सकें। आक्रमण के लिये मराठों की सेना आने पर वे दोनो भाई बहुत प्रसन्न हुये। लेकिन जाहिर तौर पर उन्होने राजा ईश्वरी सिंह के साथ अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट की और उससे कहा : "आयी हुई मराठा सेना इतनी थोड़ी है कि आप उसे सहज ही पराजित कर लेंगे।"

मराठों की आयी हुई सेना प्रबल और विशाल थी। लेकिन मंत्री केशवदास के लड़कों ने राजा ईश्वरीसिंह को बिल्कुल धोखे में रखा। ईश्वरीसिंह अपनी सेना लेकर राज्य के बगरू नामक स्थान पर पहुँचा। उसने समझा कि मराठा सेना का अनुमान लगाने में हमने पूर्ण रूप से भूल की है। मराठा सेना इतनी बड़ी है कि उसको परास्त करना पूर्ण रूप से असम्भव है। इस प्रकार सोच-विचार कर राजा ईश्वरीसिंह बगरू के सामन्त के दुर्ग मे चला गया। यह जानकर मराठा सेना उस दुर्ग की तरफ रवाना हुई और वहाँ पहुँचकर उसने उस दुर्ग को घेर लिया।

ईश्वरीसिंह दस दिनों तक उस दुर्ग में बना रहा। उसको युद्ध के लक्षण अच्छे नहीं मालूम हुये। इसलिये मराठा सेनापति के साथ उसने सन्धि करने का निश्चय किया। सन्धि के प्रस्ताव पर मल्हार राव होलकर ने ईश्वर सिंह से कहा : "भविष्य में ईश्वरीसिंह और उसके उत्तराधिकारियो का कोई भी अधिकार बूँदी राज्य पर न रहेगा, बूँदी का राज्य उम्मेदसिंह को दे दिया जाएगा और जयपुर का वर्तमान राजा इस बात को स्वीकार करेगा कि बूँदी के राज्य का अधिकारी उम्मेदसिंह है।"

सन्धि के सबध में ऊपर लिखी हुई बाते सेनापति होलकर ने राजा ईश्वरी सिंह के सामने रखीं। उनको स्वीकार करने के सिवा ईश्वरी सिह के सामने कोई दूसरा रास्ता न था।

इसलिये उसने स्वीकार करने पर यह सन्धि हो गयी और उसके संबंध में जो दस्तावेज लिखा गया, उस पर दोनों पक्ष के अधिकारियां के हस्ताक्षर हो गये। होलकर की इन सेना के साथ जयपुर पर आक्रमण करने के लिये कोटा और हाड़ा राजपूतों की सेनायें भी आयी थीं। संधि हो जाने के बाद होलकर सबके साथ जयपुर से बूंदी आ गया। उसके साथ उम्मेदसिंह भी था।

बूँदी के राज सिंहासन पर जो अब तक बैठा हुआ था, वह सिंहासन छोड़कर भाग गया। बूँदी राजधानी में बड़ी धूमधाम के साथ उम्मेदसिंह का अभिषेक-समारोह मनाया गया और उसके बाद वह अपने राज्य के सिंहासन पर बेठा। इन्हीं दिनों में उसने सुना कि आमेर के राजा ईश्वरी सिंह ने विष खाकर आत्म-हत्या कर ली है।

चोदह वर्षो तक लगातार बे-घर बार होकर उम्मेदसिंह ने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये थे। इसके बाद सन् 1719 ईसवी में वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा। उसने मल्हार राव होलकर की सहायता के बदले में उसे चम्बल नदी के किनारे पाटन का सम्पूर्ण इलाका और उसके समस्त ग्राम दे दिये। साथ ही उनकी लिखा-पढ़ी भी कर दी।*

राव बुधसिंह के बाद लगातार चौंदह वर्षो में बूँदी का राज्य नष्ट हुआ था और बूँदी राजधानी अनेक प्रकार से श्रीहीन हो गयी थी। दलेलसिंह ने केवल राजमहल और तारागढ दुर्ग को सुरक्षित रखने की चेष्टा की थी। बूँदी के सिंहासन पर बैठकर उम्मेदसिंह ने राज्य की बिगडी हुई दशा को सुधारने की कोशिश की। उसने वे सभी कार्य आरम्भ किये,जिनके द्वारा प्रजा का कल्याण हो सकता था।

उम्मेद सिंह ने मराठों की सहायता से अपने पूर्वजों के राज्य पर अधिकार प्राप्त किया था। उसने सेनापति होलकर को अपना मामा बनाया। इस संबध के साथ होलकर ने उम्मेदसिंह की जो सहायता की थी, उसके मूल्य में उम्मेदसिंह को बूँदी राज्य का जो हिस्सा देना पड़ा था, उसका उल्लेख किया जा चुका है। उस समय के राजपूत जाति के इतिहास लेखको का कहना है कि दक्षिण के मराठों ने इस प्रकार के अवसरो पर राजपूतों के आपसी विरोधों का लाभ उठाया था और अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया था। उनका यह भी कहना है कि समय-समय पर मराठों की शरण में जाने से राजस्थान के अन्यान्य राज्यो की अपेक्षा बूँदी राज्य को अधिक क्षति उठानी पड़ी।

उम्मेदसिंह स्वभाव से ही नेक, उदार और धार्मिक था। उसने जीवन के संकटों मे चरित्र और अच्छे व्यवहारों की शिक्षा पायी थी। उसके जीवन मे यदि प्रतिहिंसा की भावना से घटना न पैदा होती, जिसका उल्लेख नीचे की पंक्तियों में किया गया है तो उम्मेदसिंह का चरित्र अत्यन्त निर्मल माना जाता। यद्यपि उस घटना के आधार में दो प्रमुख कारण हैं। अपनी भीषण कठिनाइयो के समय उम्मेद सिंह इन्द्रगढ़ के राजा देवसिंह के पास गया था। देवसिंह उसके पिता राव बुधसिंह का एक आज्ञाकारी सामन्त था। इस विपद के समय उम्मेदसिंह की सहायता करना उसका एक आवश्यक कर्त्तव्य था। परन्तु उसने कुछ भी ख्याल नहीं किया। उम्मेदसिंह का घोडा मर गया था। उस दशा में उसके एक घोड़ा मॉगने पर देवसिंह ने निष्ठुरता

---

* सन 1817 ईसवी में अंग्रेज सरकार ने यह इलाका मराठों से लेकर बूँदी के राजा उम्मेदसिंह के पौत्र को दे दिया था।

के साथ उसने एक वन्दूक और भाला अपने साथ में लिया। उसने और भी कुछ अस्त्रों को अपने साथ लेकर तीर्थ-यात्रा आरम्भ की।

अपनी राजधानी से निकलने के समय उम्मेदसिंह ने कुछ विश्वासी सेवकों को अपने साथ लिया और कई वर्ष तक वह भारत के उत्तर मे गंगोतरी, दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर और अराकान में गरम सीता कुण्ड एवम् द्वारिका आदि में घूमता रहा। इन दिनों में उसने देश के सभी प्रसिद्ध नगरो और स्थानों का पर्यटन किया। साधु-सन्तों और प्रसिद्ध सन्यासियों से उसने भेंट की। इस प्रकार यात्रा करते हुए वह जव कभी अपने राज्य की सीमा पर आया तो उसके वंश के लोगो के साथ-साथ दूसरे राज्यो के राजपूतों ने उसके पास आकर अपना सम्मान प्रकट किया। यात्रा करते हुए उम्मेद सिंह जिस राजा के राज्य मे पहुँचता, वहाँ के देवताओं का सा सम्मान पाता और वहाँ के राज्य वंश के लोग उसे महलों में ले जाकर अनेक प्रकार से उसका आदर-सम्मान करते। इन दिनों में उम्मेद सिंह सर्वत्र देवता के समान श्रद्धेय समझा जा रहा था और उसकी बातों को सभी लोग वडे ध्यान से सुनते थे। बूँदी-राज्य में शासन करते हुए उसे जितना मान मिला, इन दिनों मे उससे सैकडों गुना अधिक चारों ओर उसे सम्मान मिल रहा था।

उम्मेदसिंह अन्त में भारतीय सीमा के बाहर मकराना से निकलकर हिंगलाज नामक स्थान में गया और फिर वह द्वारिका में पहुॅचा। वहाँ से लौटने के समय मार्ग में कावा नाम के लुटेरों के एक दल ने उस पर आक्रमण किया। परन्तु उम्मेदसिंह ने लुटेरो के उस दल को पराजित करके उनके सरदार को कैद कर लिया। उस सरदार ने बाद मे कई बार शपथ खायी कि आज से मै कभी तीर्थ यात्रियो पर आक्रमण नही करूँगा। इसके बाद उस सरदार को उम्मेदसिंह ने छोड़ दिया।

उम्मेदसिंह बहुत दिनो तक तीर्थो और प्रसिद्ध नगरों में घूमता रहा। उसने अपने राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था और इस बात का निश्चय कर लिया था कि अब हम कभी राज्य के शासन से सम्बन्ध न रखेंगे। परन्तु एक घटना ऐसी घटी, जिसके कारण इस निर्णय को आघात पहुॅचा और उसे अपने निश्चय मे कुछ परिवर्तन करना पड़ा। वह घटना मेवाड़ और हाडा जाति के इतिहास में पढ़ने को मिलती हैं। उसमें बताया गया है कि बहुत दिन पहले बम्बावदा की रानी ने चिता में बैठकर सती होने के समय कहा था : "अगर राव और राणा कभी बसन्ती उत्सव में एक साथ शामिल होगे तो भयानक अनिष्ट होगा।"

उस सती के कहने के अनुसार बहुत दिनो के बाद जो घटना हुई, वह इस प्रकार है:-

वीलहठा नामक एक ग्राम मे बहुत से मीणा लोग रहते थे। उस ग्राम का एक बाग बहुत प्रसिद्ध था। उसमें उत्तम श्रेणी के आमों के वृक्ष थे। बूँदी के राजा अजित सिंह ने उस बाग के आसपास एक दुर्ग बनवा दिया। मेवाड़ के सामन्तों ने इसके विरुद्ध होकर लुटेरों के एक दल को भड़काया और वह दल वीलहठा ग्राम पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। यह समाचार अजितसिंह को मिला। उसने ग्राम की रक्षा के लिये अपनी एक सेना वहाँ के दुर्ग

में रख दी। यह सुनकर राणा बहुत क्रोधित हुआ और वह एक सेना लेकर उस स्थान पर पहुॅंचा, जहाँ पर संघर्ष था। इसके बाद राणा ने अजितसिंह को शिविर में बुलाया। अजितसिंह वहॉं पहुॅंचा। उसके सद्व्यवहार को देखकर राणा संघर्ष को भूल गया। अजितसिंह ने बसन्ती उत्सव के समय राणा को आमन्त्रित करने का निश्चय किया। फाल्गुन के महीने में राजपूतों का बसन्ती उत्सव बहुत प्रसिद्ध है। उस उत्सव में राजपूत बाराह का शिकार करते थे। हाड़ा राजा अजितसिंह ने आमन्त्रित करते हुए राणा से कहा कि बसन्ती उत्सव के अवसर पर बूॅंदी के राजभवन में आवें। राणा ने इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। सीसोदिया राजपूतों में उस निमन्त्रण के अनुसार जाने की तैयारियां होने लगी और निश्चित दिन राणा अपने सामन्तों के साथ हरे रंग की पगड़ियों में बूॅंदी के नन्दता नामक पहाडी स्थान पर पहुँच गया। इन्हीं दिनों में उम्मेदसिंह बद्रीनाथ से लौटकर आया। उसने सुना कि राणा के साथ पुत्र अजितसिंह बाराह का शिकार करने के लिये जाने की तैयारी कर रहा है। उसी समय उम्मेदसिंह ने अजितसिंह को रोकने के लिए एक आदमी भेजा और उस सती स्त्री के वाक्यों का स्मरण दिलाकर राणा के साथ न जाने के लिये कहा। अजितसिंह ने अपने पिता उम्मेदसिंह के सन्देश को सुना। उसने उत्तर में कहला भेजा : "मैंने ही राणा को आमन्त्रित किया है। इसलिये मेरा न जाना किसी प्रकार अच्छा साबित नहीं हो सकता। सती के कहने के अनुसार अनिष्ट होने से डर जाना एक राजपूत की लज्जापूर्ण कायरता है। इसलिये मेरा जाना प्रत्येक अवस्था मे जरूरी है।"

राणा अजितसिंह पहले दिन दोपहर के बाद शिकार खेलने के लिये निकला। वहॉं पहुॅंचने पर मेवाड़ के मंत्री ने अजितसिंह के पास पहुॅंचकर अभिमान के साथ कहा : "बीलहठा राणा का है। वहॉं से आप अपना अधिकार हटा लें। यदि आपने ऐसा न किया तो एक सिन्धी सेना भेजकर आपको कैद करा लिया जाएगा।" मंत्री ने अजितसिंह से यह भी कहा कि राणा के आदेश के अनुसार मैंने आपसे ऐसा कहा है। अजितसिंह ने उस समय मंत्री को कुछ उत्तर न दिया। वह रात भर संशय मे पड़ा रहा। दूसरे दिन बाराह के शिकार का उत्सव हो जाने पर राणा ने अजितसिंह को विदा किया। वहां से कुछ दूर चले जाने के बाद अजित सिंह को मंत्री की बात का स्मरण हुआ। इसलिये वह लोटकर फिर राणा के पास आ गया। राणा अभी तक किसी निर्णय मे न था। उसने बिना कुछ कहे हुए अजित को फिर से विदा किया।

अजितसिंह राणा से विदा होकर अपनी राजधानी की तरफ चला। परन्तु उस समय मेवाड के मंत्री की कही हुई बातें उसको बार-बार याद आने लगी। उसने समझ लिया कि मेरे विरुद्ध राणा ने इस प्रकार का निर्णय जरूर किया है और मन्त्री ने इस बात को स्पष्ट भी कर दिया था, वह क्रोध मे आकर उत्तेजित हो उठा। अपने हाथ मे भाला लेकर वह फिर लौटा और राणा पर जाकर उसने आक्रमण किया। अजित के भाले से राणा भयानक रूप से घायल हो गया। उसके मुख से उस समय इतना ही निकला-"ओह हाड़ा, तुमने यह क्या किया।"

कुछ ही देर में राणा की मृत्यु हो गयी। मेवाड़ के राणा को मार कर अजित सिंह ने उस क्रोध मे शान्ति अनुभव की, जो मन्त्री के कहने से उसके हृदय मे पैदा हुआ था। वह अपनी राजधानी मे आ गया। राणा के मारे जाने का समाचार साधु उम्मेदसिह ने सुना। वह बहुत दु:खी हुआ। उसने क्षण भर मे सोच डाला कि इस राज्य मे अब फिर पाप की वृद्धि हो रही है। उसने उसी समय निश्चय किया कि अब मैं कभी अपने लडके का मुख नहीं देखूंगा।

कृष्णगढ़ के राजा के दो लड़कियां थी। एक राणा को ब्याही गई थी और दूसरी अजित सिंह को। दोनों इस सम्बन्ध में बँधे हुए थे। कदाचित इसी सम्बन्ध के कारण राणा को विश्वास था कि अजित सिंह के द्वारा मेरा कोई अनिष्ट न होगा। यद्यपि राणा की स्त्री ने उससे इस बात को कहा था कि तुम कभी अजित सिंह का विश्वास न करना। कई पीढ़ी पहले मेवाड़ और बूँदी के राजाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। वह घटना लिखी जा चुकी है। लेकिन दोनों राजवंशों ने उस शत्रुता को भुला दिया था।

इस दुर्घटना के एक दिन पहले मेवाड़ के राणा और अजित सिंह ने एक साथ बैठ कर भोजन किया था। उसके बाद ही वह अवांछनीय घटना घटी। प्राचीन ग्रन्थों के उल्लेखों से जाहिर होता है कि मेवाड़ के सामन्त अपने इस राणा से प्रसन्न न थे और इसीलिये राणा के मारे जाने पर वे सभी शान्त रहे। अजित सिंह के आक्रमण करने पर मेवाड़ के सामन्तों ने राणा की रक्षा करने का प्रयत्न नहीं किया और न उन्होंने अजित सिंह के साथ उस समय युद्ध किया। यद्यपि राणा के अनेक सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। राणा के घायल होकर गिरते ही मेवाड़ के उपस्थित सामन्त अपने-अपने शिविर में चले गये। इसका अर्थ स्पष्ट यह है कि राणा से उसके सामन्त प्रसन्न न थे।

राणा जहाँ पर मारा गया था, वहाँ पर उसकी एक मात्र उपपत्नी मौजूद थी। उसने चिता तैयार करवा कर सती होने के लिये निश्चय किया और जिस समय चिता में अग्नि लगायी गयी। जलने के पहले शाप देते हुए उसने कहा :"जिस अजित सिंह ने राणा का संहार किया है, उसको दो महीने के भीतर ही इसका फल मिलेगा।" बूँदी के एक ग्रन्थ में लिखा गया है कि जहाँ पर राणा के मृत शरीर के साथ सती होने के लिये चिता बनायी गयी थी, उस स्थान के एक वृक्ष की शाखा टूट कर पृथ्वी पर गिरी। उससे चिता की भूमि बिल्कुल सफेद हो गयी।

इस घटना का उल्लेख करते हुए हाड़ा कवि ने लिखा है कि सती होने वाली राणा की उपपत्नी के शाप के अनुसार दो महीने में ही अजित सिंह का अनिष्ट आरम्भ हुआ। उसके शरीर का माँस अपने आप गल-गल कर गिरने लगा और उसके कारण अजित सिंह की मृत्यु हो गयी।

अजित सिंह के विशन सिंह नाम का एक लड़का था। अजित सिंह के मर जाने के बाद वह सिंहासन पर बिठाया गया। लेकिन उसकी अवस्था बहुत छोटी थी और वह किसी प्रकार शासन करने के योग्य न था। उम्मेद सिंह ने अपने राज्य से पहले ही सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। परन्तु इस अवसर पर बूँदी राज्य के सम्बन्ध में उसे विचार करना पड़ा। उम्मेद सिंह किसी प्रकार अपने हाथों में शासन का प्रबन्ध नहीं लेना चाहता था। इसलिये उसने बालक विशन सिंह की तरफ से शासन की देख-रेख करने के लिये अपने विश्वासी धात्री पुत्र को नियुक्त किया और उसे शासन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें समझा बुझा कर उम्मेदसिंह फिर तीर्थ यात्रा करने के लिये चला गया और बहुत दिनों तक वह तीर्थों में घूमता रहा। वह अब वृद्धावस्था में पहुँच गया था। इसलिये उसने शान्तिपूर्वक केदारनाथ में रहना आरम्भ किया।

अजित सिंह के बाद उसका बालक विशन सिंह बूँदी के सिंहासन पर बैठा। उस समय वह बहुत छोटा था। कुछ दिनों के बाद वह सयाना हुआ। लेकिन उसे अब भी शासन

सम्वन्धी कुछ अनुभव न थे। इसलिये उसकी अनभिज्ञता का लाभ उठाकर राज्य के सामन्त और अधिकारी विशन सिंह को ऐसी वातें समझाने लगे जिनसे उनके स्वार्थो का सम्वन्ध था। उन लोगों ने उम्मेदसिंह के विरुद्ध भी वहुत सी वातें विशन सिंह से कही और उम्मेद सिंह के प्रति उसमें अविश्वास पैदा करने की चेष्टा की। विशन सिंह अभी तक एक नवयुवक था। उसने राज्य के अधिकारियों पर विश्वास किया और उम्मेदसिंह से घृणा करने लगा।

सामन्तों और अधिकारियों के कहने से विशन सिंह ने एक सन्देश भेजकर उम्मेदसिंह से कहा : "आप बूँदी का राज्य छोड़कर वाराणसी में जाकर रहिये।" उम्मेद सिंह विना किसी विरोध के वाराणसी जाने के लिये तैयार हो गया। यह वात राजस्थान के दूसरे राजपूतों और राजाओं को मालूम हुई तो उन्होंने वहुत खेद प्रकट किया। इसलिये कि वे सभी उम्मेद सिंह के प्रति वडी श्रद्धा रखते थे। विशन सिंह के इस सन्देश को जानकर दूसरे राज्यों के राजा और सामन्त उम्मेद सिंह को अपनी राजधानियों में ले जाने के लिये आग्रह करने लगे। आमेर के राजा प्रताप सिंह ने भी उम्मेद सिंह से आमेर की राजधानी में जाकर रहने के लिये प्रार्थना की। उम्मेद सिंह ने प्रताप सिंह की वात को स्वीकार कर लिया और वह वूँदी राज्य को छोडकर आमेर चला गया।

प्रताप सिंह ने उम्मेद सिंह को आमेर में रखकर सभी प्रकार उसकी सेवाएँ कीं और एक दिन उसने अपना भक्तिभाव प्रकट करते हुए उम्मेदसिंह से कहा : "यदि आपके हृदय में अपने राज्य के प्रति कुछ भी लालसा हो तो आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जयपुर की सेना लेकर बूँदी और कोटा को परास्त करूँगा और दोनों राज्यों का अधिकार आपको सौंप दूँगा।"

प्रताप सिंह की इन वातों को सुनकर श्री जी ने गम्भीर होकर किन्तु प्रसन्नता के साथ कहा "ये दोनों राज्य तो मेरे ही हैं। एक में मेरा पौत्र और दूसरे में मेरा भतीजा राज्य करता है।" यह कहकर श्री जी ने मुस्कुराहट के साथ प्रतापसिंह की तरफ देखा। उस अवसर पर वहॉ और भी लोग वैठे थे। उन सभी लोगों ने श्री जी की वात को सुना और प्रसन्न होकर श्री जी को धन्यवाद दिया।

उम्मेद सिंह ने आमेर राज्य में जाने के वाद कोटा के मन्त्री जालिम सिह से विशन सिंह के सन्देश का जिक्र किया। जालिम सिंह वूँदी गया और उसने विशन सिंह के साथ वातें की। उस समय उसकी समझ मे आया कि स्वार्थी सामन्तों के भड़काने से मैंने इस प्रकार अज्ञानता से भरा हुआ सन्देश अपने पितामह के पास भेजा था। यह सोचकर कि मैंने एक कलंकपूर्ण कार्य किया है, वह लज्जित हुआ और उसने जालिम सिंह से कहा कि मैं अपने अपराध की क्षमा मॉगने के लिये अपने पितामह के दर्शन करना चाहता हूँ। विशन सिंह की वात को सुनकर जालिम सिंह ने वृद्ध श्री जी को आमेर से वुलाने के लिये लाल जी नाम के एक पण्डित को भेजा।

उम्मेद सिंह के अन्त:करण मे अव भी अपने पौत्र के प्रति स्नेह का भाव था। लाल जी पण्डित के साथ वह आमेर से वूँदी आ गया। अपराधी विशनसिंह ने श्री जी के पास जाकर उनके चरणो को स्पर्श किया। उस समय वहॉ पर वैठे हुए लोगों के नेत्रों मे ऑसू आ गये। विशनसिह को अपनी छाती से लगाकर वृद्ध उम्मेद सिंह ने अपने नेत्रो से ऑसू वहाये और

फिर उसने अपनी तलवार उसके हाथ में देकर कहा : "यह तलवार तुम्हारे हाथ में है, यदि तुम मुझे अपना अनिष्टकर समझते हो तो उसकी सजा तुम मुझे दो और इस तलवार से तुम मेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालो। लेकिन विश्वास रखो, तुम मेरे प्यारे बच्चे हो, मैं तुम्हारा कभी अनिष्ट नहीं सोच सकता।" श्री जी की इन बातों को सुनकर विशनसिंह फूट-फूटकर रोने लगा और उसने श्री जी के चरणों को पकड़कर अपने अपराध की क्षमा माँगी। श्री जी ने उसे क्षमा करके फिर एक बार अपनी छाती से लगा लिया।

कुछ देर में विशनसिंह ने अपने आँसुओं को पोंछा और श्री जी से महल में चलने के लिये उसने प्रार्थना की। लेकिन इसके लिये वह तैयार न हुये। लेकिन दोनों में इस समय जो स्नेह और श्रद्धा भाव पैदा हुआ, उसमें फिर कभी कमी न आयी। यह सब देखकर मध्यस्थ जालिमसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसके बाद आठ वर्ष तक उम्मेदसिंह ने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये। अब वह बहुत वृद्ध हो गया था। उसकी इस दशा में विशनसिंह ने उसके पास जाकर प्रार्थना की: "आप बूँदी के राजमहल में चलिये। वहीं पर आपके पूर्वजों ने अपने जीवन का अन्तिम समय व्यतीत किया था।"

विशनसिंह की इस प्रार्थना को श्री जी ने स्वीकार कर लिया और बूँदी के राजमहल में चला गया। जिस दिन वह बूँदी पहुँचा था, उसी रात में उसकी मृत्यु हो गयी। सन् 1804 ईसवी में उम्मेदसिंह ने संसार छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की। उम्मेदसिंह ने तेरह वर्ष की अवस्था में जीवन के कठोर संघर्ष में प्रवेश किया था। उसके बाद उसने अपनी अवस्था के साठ वर्ष पूरे किये । उसने अपने पूर्वजों का राज्य प्राप्त करने के लिये न जाने कितनी बार मृत्यु का सामना किया और अन्त में उसने राज्य छोड़कर जीवन के अन्तिम समय तक तपस्या की। उसने सम्पूर्ण जीवन में कठिनाईयों का सामना करके राजपूत राजाओं के लिये एक आदर्श उपस्थित किया।

हाड़ा वंश के इतिहास में उम्मेद सिंह की मृत्यु का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। इन्हीं दिनों में एक अंग्रेजी सेना मानसन के नेतृत्व में यहाँ पर आयी थी और उसने राजपूतों एवम् विशेष रूप से बूँदी के प्रमुख शत्रु होलकर को परास्त करने के लिये युद्ध किया था। उस समय वृद्ध उम्मेदसिंह जीवित था या नहीं, अथवा उसके परामर्श से यह युद्ध हुआ था अथवा नहीं, यह हमको नहीं मालूम। उस समय बूँदी के राजा ने होलकर के साथ युद्ध करने में बड़ी सहायता की। जिस समय अंग्रेजी सेना ने होलकर को पराजित करने के उद्देश्य से यात्रा की थी, उस समय भी और युद्ध से अंग्रेज सेना के भागने पर बूँदी के राजा ने बड़े साहस के साथ सभी प्रकार उसकी सहायता की थी। उसने अंग्रेजी सेना को अपने राज्य से होकर जाने की आज्ञा दी और आवश्यकतानुसार सभी प्रकार की दूसरी सहायता करके बूँदी के राजा ने आने वाले संकटों को आमन्त्रित किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजी सेना की सहायता करने के कारण ही मराठा सेनापति होलकर ने बूँदी राज्य का सर्वनाश करने की चेष्टा की थी। उन दिनों में संकीर्ण राजनीति के कारण हम उसको कुछ समझ न सके थे और यह बात भी सही है कि उस तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया था।

सन् 1817 ईसवी में जब हमने आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिये राजस्थान के राजाओं को आमन्त्रित करके कॉन्फ्रेंस करने और सम्मिलित शक्तियों के द्वारा शत्रुओं को परास्त करने का प्रयत्न किया तो जो राजा आकर उस कॉन्फ्रेंस में सम्मिलित हुये। उनमे बूँदी का राजा सबसे प्रथम था। इसका एक कारण यह भी था कि राजस्थान में मराठो का सबसे अधिक आतंक बूँदी राज्य पर था और उन दिनों में बूँदी का राजा अपने राज्य में जितनी मालगुजारी वसूल करता था, वह किसी प्रकार उसके लिये काफी न थी। क्योंकि अधिक मालगुजारी उस राज्य की मराठा लोग वसूल करते थे।

सन् 1804 ईसवी में हमारी सहायता करने के कारण मराठो ने बूँदी राज्य पर आक्रमण किया था। उस समय हम बूँदी की कुछ भी सहायता न कर सके। इस कारण बूँदी के राजा को भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। सन् 1817 ईसवी के संघर्ष में बूँदी का राजा अपने सामन्तों और उनकी सेनाओं को साथ लेकर बराबर हमारे साथ रहा। इसलिये जब हमने उस युद्ध में विजय प्राप्त की तो हम राव राजा बिशन सिंह को भूले नहीं। मराठा सेनापति होलकर ने बूँदी राज्य के जिस हिस्से पर अपना अधिकार कर रखा था और जिस अधिकार को अर्द्धशताब्दी बीत चुकी थी, होलकर को पराजित करके उन समस्त नगरों तथा ग्रामों का अधिकार हमने बूँदी के राजा को दे दिया था, इसके सिवा सिन्धिया ने बूँदी राज्य के जिन नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया था, हमने मध्यस्थ होकर उन सभी को बूँदी के अधिकार में फिर मिला दिया था। हमारे इन कार्यों के लिये बूँदी के राजा बिशनसिंह ने कृतज्ञता प्रकट की थी। उसने उस समय कहा था : "मैं उन आदमियों में से नहीं हूँ, जो एक बार प्रतिज्ञा करके उसके विरुद्ध आचरण करते हैं। मेरे इस मस्तक पर अपका अधिकार है। जब कभी भी आपको इसकी आवश्यकता पड़े।" बूँदी के राजा के ये वाक्य अर्थहीन न थे। उसने अपने प्राणों की बलि देकर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया होता और उस वंश के प्रत्येक हाड़ा ने उसका अनुसरण किया होता जिसने उसका नमक खाया था, अगर उसकी परीक्षा ली गयी होती।

इन्हीं दिनों में कोटा और बूँदी राज्यों के बीच एक ऐसी घटना हुई, जिससे बूँदी के राजा बिशनसिंह के हृदय में चोट पहुँची। कोटा के मंत्री जालिमसिंह ने अंग्रेजों की खुशामद करके बूँदी राज्य से इन्द्रगढ़, बलवान आनरदा और खातोली आदि स्थानों को अपने राज्य में मिला लेने की कोशिश की। उसने इन दिनों मे अपने हस्ताक्षर से पहले लिखना आरम्भ किया-अंग्रेज सरकार का गुलाम।

मन्त्री जालिम सिंह की इस कोशिश से बूँदी के राजा बिशनसिंह को बहुत अफसोस हुआ। अंग्रेज सरकार ने बूँदी के उन स्थानो को कोटा-राज्य में मिला देने के लिये जो व्यवस्था की,उससे पीड़ित होकर बिशनसिंह ने इतना ही कहा: "अंग्रेजी सरकार ने जालिम सिंह के पक्ष में इस प्रकार की व्यवस्था देकर मुझे एक पंखहीन पक्षी बना दिया है। वास्तव में अंग्रेजी सरकार की यह व्यवस्था मुनासिब नहीं थी। राजनीतिक ईमानदारी के नाम पर इस व्यवस्था में परिवर्तन करना ही अच्छा था।"

अंग्रेज-सरकार और राजा बूँदी के बीच सन्धि करने का निर्णय हुआ। उस सन्धि को तैयार करने के बाद मैंने प्रसन्नता अनुभव की और मेरे द्वारा जो सन्धि लिखी गयी, वह सन् 1818 ईसवी के फरवरी महीने में दोनों पक्षों की तरफ से मन्जूर हो गयी।

बूँदी के राजा का जो सद्व्यवहार अंग्रेजो के साथ हुआ था, उसके कारण मै बूँदी राज्य का कल्याण चाहता था। राजा बिशनसिंह ने विश्वासपूर्वक मेरी सभी बातों को स्वीकार

किया और मुझे खुशी है कि मैं जैसा चाहता था, बूँदी राज्य वैसा कर सका। इससे बूँदी का राजा शान्तिपूर्वक उन्नति की ओर बढ़ा और बिना किसी दूसरे राज्य को आघात पहुँचाये, स्वतन्त्रतापूर्वक चार वर्ष तक उसने शासन किया। इसके बाद वह एक ऐसे रोग से पीड़ित हुआ कि वह फिर उससे सेहत न हो सका और सब मिलाकर सत्रह वर्ष तक राज्य करके सन् 1821 ईसवी की 24 जुलाई को उसकी मृत्यु हो गयी।

विशनसिंह के चरित्र के सम्बन्ध मे यहॉ पर संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। वह ईमानदार था और पूर्ण रूप से वह राजपूत था। उसका हृदय कपटहीन था, उसमें कोई बनावट नहीं थी, उसका अन्तरतम उज्ज्वल और उसकी आत्मा महान् थी। वह समझदार था और दूरदर्शिता से काम लेता था। जिन दिनों में मराठों ने उसके राज्य का अधिकांश कर वूसल करके उसे दीन-दुर्बल बना दिया था, उन दिनों में भी उसने अपने जीवन को एक नयी दिशा में मोडकर सन्तोष के दिन बिताये थे। वह शिकार खेलने का पहले से ही शौकीन था। इन दिनों में उसने अपने जीवन का एक प्रधान कार्य शिकार खेलना ही मान लिया था। वह रोजाना शिकार के लिये जाया करता था और उसने चीतों तथा बाघों के अतिरिक्त एक सौ से अधिक केवल शेर मारे थे। अपनी इस शिकार प्रियता के कारण ही उसका एक पैर टूट गया था, जिससे वह लॅगड़ा हो गया था। फिर भी उसके इस प्रकार के जीवन मे अन्तर न पड़ा था। उसे देखकर सहज ही इस बात का अनुमान होता था कि वह एक शूरवीर राजपूत है। वह अपने पूर्वजों की तरह स्वाभिमानी था और जिस किसी का साथ देने के लिए वह एक बार निश्चय कर लेता था, प्रत्येक कठिनाई का सामना करके उसका वह साथ देता था। शक्तिशाली मराठों के द्वारा आने वाली विपदाओं की अपेक्षा उसने अंग्रेजों का साथ दिया था।

राजा विशनसिंह ने अपने यहॉ एक सुरक्षित कोष खोला था और उसमें प्रतिदिन एक सौ रुपये डालने के लिये उसने अपने मंत्री को आदेश दे रखा था। मंत्री को किसी भी अवस्था मे ये सौ रुपये उस कोष में डालने पडते थे। इसके अभाव में राजा मंत्री को किसी प्रकार क्षमा नहीं कर सकता था।

दूसरे राज्यों की तरह, बूँदी राज्य में भी राज्य का प्रबन्ध नीचे लिखे हुए चार अधिकारियों के हाथो मे रहता था-(1) दीवान अथवा मुसाहिब (2) फौजदार अथवा किलेदार (3) बख्शी और (4) रिसाला अथवा पारिवारिक हिसाब रखने वाला। प्रधान मंत्री दीवान अथवा मुसाहिब के नाम से सम्बोधित होता था। राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के अधिकार मे रहता था। फौजदार अथवा किलेदार, राज्य के दुर्गों का संरक्षक था। वंश के राजपूतों को छोड़कर इस पद पर दूसरा कोई नियुक्त नहीं किया जाता। बख्शी राज्य का सम्पूर्ण हिसाब-किताब रखता था और रिसाला राजमहल का हिसाब रखता था।

राजा विशनसिंह के दो लड़के थे। बडे लड़के का नाम रामसिंह था। ग्यारह वर्ष की अवस्था मे वह सन् 1821 ईसवी के अगस्त महीने मे पिता के सिंहासन पर बैठा। दूसरा लड़का गोपालसिंह अपने बडे भाई से कुछ महीने छोटा था। रामसिंह अपने पिता की तरह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। इन दोनों लडको की माता कृष्णगढ़ की राजकुमारी थी। वह अत्यन्त समझदार थी। हम हाड़ा वंश के कल्याण की सदा कामना करते हैं।

कोटा राज्य का इतिहास

कोटा व बूंदी के हाड़ा राजवंश

कोटा और वूँदी, दोनों राजवंशों का मूल एक ही है। दोनो ही हाड़ा वंशी राजपूत हैं। बूँदी के एक राजवंशज से ही कोटा राज्य का इतिहास आरम्भ हुआ है। बादशाह शाहजहाँ के शासनकाल में बूँदी के राव राजा रतनसिंह के दूसरे लड़के माधवसिंह ने मुगल साम्राज्य का पक्ष लेकर वुरहानपुर के युद्ध में अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था और उस युद्ध में विजय प्राप्त की थी। इसलिये बादशाह शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर कोटा का इलाका और उसके अन्तर्गत सभी ग्राम और नगर उसको दे दिये थे। उस समय से माधवसिंह अपने पिता के बूँदी राज्य को छोड़कर स्वतन्त्रतापूर्वक कोटा राज्य का शासन करने लगा था। उस समय से बूँदी और कोटा दो अलग-अलग राज्य हो गये।

माधवसिंह का जन्म सन् 1565 ईसवी मे हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में उसने बुरहानपुर का युद्ध लड़ा था। उसके फलस्वरूप कोटा के तीन सो साठ नगरो और ग्रामो पर उसे अधिकार मिला था। इसके पहले कोटा एक जागीर थी और वह वूँदी राज्य के एक सामन्त के अधिकार में थी। उसमे दो लाख रुपये प्रजा से कर के रूप मे वसूल होते थे। साहस और वीरता के कारण माधवसिंह को बादशाह से राजा की उपाधि मिली थी।

इस कोटा मे पहले कोटिया भील का शासन था और उसमे भील लोग रहा करते थे। ये लोग वहाँ के प्राचीन निवासी थे। उन लोगों के साथ खाने और पीने में राजपूत लोग कोई परहेज नहीं करते थे। राजपूतो के अधिकार करने के पहले कोटा में केवल झोपड़ियाँ थीं और वहाँ का भील राजा कोटा से पाँच कोस दूर दक्षिण की तरफ इकलेगढ नामक प्राचीन दुर्ग में रहा करता था। दिल्ली के बादशाह से कोटा की सनद पाने पर माधवसिंह ने उसकी सीमा में वृद्धि की। उन दिनों में कोटा के दक्षिण में गागरोन और घाटौली का प्रान्त था। खींची लोग वहाँ के अधिकारी थे। पूर्व में मांगरोल और नाहरगढ़ था, जिनमे पहले गौर राजपूतों का अधिकार था और उनके बाद राठौरों का अधिकार हो गया। वहाँ के राजपूतो ने अपने राज्य की रक्षा करने के लिये धर्म का परिवर्तन कर लिया और बाद मे वे नवाब की उपाधि से प्रसिद्ध हुए थे। उत्तर मे कोटा की सीमा चम्बल नदी के किनारे सुलतानपुर तक थी। चम्बल नदी के दूसरी तरफ नाशता नाम का एक स्वतन्त्र छोटा-सा राज्य था। उसमे सब मिलाकर तीन सो साठ नगर और ग्राम थे। अनेक नदियो का पानी मिलने के कारण वहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ थी।

राजा माधवसिंह ने कोटा का अधिकार प्राप्त करके उसकी सीमा में उन्नति की और सफलतापूर्वक उसने राज्य का विस्तार किया। माधवसिंह के मरने के पहले इस राज्य का विस्तार मालवा और हाडोती की सीमा तक हो गया था। सन् 1631 ईसवी में माधवसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके पाँच लड़के थे। उनमे चार को कोटा में प्रधान सामन्तों का पद प्राप्त हुआ। माधवसिंह के वंशज माधानी नाम से प्रसिद्ध हुये। उसके पाँच लड़कों के नाम इस प्रकार हैं :-

1 मुकुन्दसिंह, कोटा का राजा हुआ।

2. मोहनसिंह, इसको पलायता का अधिकार मिला।

3. जुझारसिंह को कोटरा ओर उसके वाद रामगढ़ रेलावन का अधिकार मिला।

4. कनीराम को कोइला का अधिकार मिला। इसके सिवा दिल्ली के वादशाह से उसको देह और जोरा का अधिकार मिल गया।

5. किशोरसिंह को सांगोद का अधिकार प्राप्त हुआ।

माधवसिंह की मृत्यु के वाद उसका वड़ा वेटा मुकुन्दसिंह कोटा के सिंहासन पर वैठा। उसने अपनी सीमा पर हाड़ोती और मालवा के वीच एक रास्ते का निर्माण कराया और उसका नाम अपने नाम के आधार पर मुकुन्ददर्रा अथवा मुकुन्द द्वार रखा। इसी रास्ते से सन् 1804 ईसवी में अंग्रेज सेनापति मानसन की सेना युद्ध में पराजित होकर भागी थी। कोटा के इतिहास में मुकुन्दसिंह की प्रशंसा की गई है। उसने अपने राज्य में कई एक मजवूत दुर्ग और तालाव वनवाये थे। आणता नामक स्थान की सुदृढ़ दीवारें उसी की वनवाई हुई हैं।

राजा मुकुन्दसिंह अपने पूर्वजों की तरह साहसी और शूरवीर था। जिन दिनों मे वादशाह औरंगजेव ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर लिया था और मुगल सिंहासन पर वैठने के लिए उसने युद्ध आरम्भ किया था, उस समय प्रायः सभी राजपूत राजाओं ने उसका विरोध करके वादशाह की तरफ से युद्ध किया था। जिन राजाओं ने शाहजहाँ का साथ दिया था, उनमें राठौर हाड़ा वंश के राजा प्रमुख थे। कोटा के राजा माधवसिंह के लड़कों ने निर्भीकता के साथ वादशाह शाहजहाँ के पक्ष का समर्थन किया और उज्जैन के निकट होने वाले युद्ध में औरंगजेव के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में औरंगजेव की विजय हुई। उसने उस स्थान का नाम जहाँ पर युद्ध हुआ था-फ्तेहावाद रखा। औरंगजेव की प्रवल सेना के साथ युद्ध करके माधवसिंह के पाँचों लड़कों ने अपनी वीरता का परिचय दिया। यद्यपि वे राजनीति कुशल औरंगजेव की चालों के कारण विजयी न हो सके। परन्तु वे युद्ध से भागे नहीं और वहीं पर अपने प्राणों की वलि देकर चार लड़कों ने अपने वंश का मस्तक ऊँचा किया। उस युद्ध में सवसे छोटा लड़का किशोरसिंह भयानक रूप से घायल हुआ। लेकिन वह किसी प्रकार उन घावों को सेहत करके युद्ध के वाद जीवित वच सका और फिर दक्षिण के युद्ध में वीजापुर का युद्ध करते हुए उसने अपने रण-कौशल का परिचय दिया था, लेकिन मुगल वादशाह के यहाँ उसके इन वलिदानों को सम्मान न मिला।

राजा मुकुन्दसिंह युद्ध मे मारा गया। इसलिये उसका लड़का जगतसिंह कोटा के सिंहासन पर वैठा। दिल्ली के वादशाह ने उसको अपने यहाँ दो हजार सेना पर मनसवदार

अर्थात् सेनापति का पद दिया। सन् 1670 ईसवी तक जगतसिंह दक्षिण में युद्ध करता रहा। उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। उसके कोई लड़का न था। इसलिए माधवसिंह के चौथे लड़के कनीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के शासन का अधिकार मिला।

प्रेमसिंह में शासन की योग्यता न थी। इसलिए आरम्भ से ही प्रजा उससे असन्तुष्ट रहने लगी। इस असन्तोष के परिणामस्वरूप वह सिंहासन से उतारा गया और उसके पिता के नगर कोइला में वह भेज दिया गया। उसके वंशज अब तक वहॉ रहते हैं। माधवसिंह के पॉचवे लडके किशोरसिंह को, जो युद्ध में घायल होने के बाद किसी प्रकार बच गया था, राज्य के सामन्तो ने कोटा के सिंहासन पर बिठाया। औरंगजेव के मुगल-सिंहासन पर बैठने के बाद राजा किशोरसिंह ने अपनी सेना लेकर और औरंगजेब के साथ जाकर दक्षिण में मराठो के साथ युद्ध किया था। सन् 1686 ईसवी मे अरकाट गढ के दुर्ग पर युद्ध करते हुये वह मारा गया। किशोरसिंह के साहस और शौर्य में किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता। उसके शरीर मे पचास जख्मों के निशान उसके जीवन के अन्त तक रहे। उसके तीन लड़के थे। विशनसिंह, रामसिंह और हरनाथसिंह।

राजपूतों की प्रथा के अनुसार बड़े लड़के विशनसिंह को कोटा के सिंहासन पर बैठना चाहिए था। लेकिन किशोरसिंह के दक्षिण में जाने के समय उसने अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया, इसलिए किशोर सिंह ने क्रुद्ध और असन्तुष्ट होकर विशनसिंह को उत्तराधिकार से वञ्चित करके आणता नामक स्थान उसे दे दिया। विशनसिंह से पृथ्वीसिंह नामक बालक का जन्म हुआ। वह बाद में आणता की जागीर का सामन्त बनाया गया। उसके लड़के का नाम था अजीत। अजीतसिंह के तीन लड़के पैदा हुए, छत्रसाल, गुमानसिंह और राजसिंह।

किशोरसिंह के दूसरे लड़के रामसिंह ने अपने पिता की आज्ञानुसार दक्षिण मे जाकर मराठों के साथ युद्ध किया था और उन युद्धों में उसने अपने पिता की प्रशंसा पायी थी। इसलिए पिता किशोरसिंह के मर जाने पर उसे राज्य के सिंहासन का अधिकार प्राप्त हुआ।

बादशाह औरंगजेब के मर जाने पर मुगल सिहासन के लिए दिल्ली मे फिर संघर्ष पैदा हुआ। रामसिंह ने शाहजादा आजम के पक्ष का समर्थन किया और वह उसके बड़े भाई मुअज्जम के विरुद्ध दक्षिण में युद्ध करने के लिए गया। सन् 1708 में जाजौ के युद्ध मे वह मारा गया। उस युद्ध में बूॅदी के राजा ने शाहजादा मुअज्जम का पक्ष लेकर युद्ध किया था।

रामसिंह के बाद भीमसिंह कोटा का राजा हुआ। उसके शासनकाल में कोटा राज्य ने धन, सम्मान और सामर्थ्य में इतनी उन्नति की, जिससे वह भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के राज्यों में माना गया। इसके पहले कोटा का राज्य तीसरी श्रेणी के राज्यों मे माना जाता था। बादशाह बहादुरशाह के मरने पर फर्रूखसियर मुगल सिंहासन पर बैठा। उस समय दोनो सैयद बन्धुओ ने मुगल राज्य का शासन किया। कोटा के राजा भीमसिंह ने सैयद बन्धुओ के पक्ष में होकर अपने राज्य की उन्नति की।

राजा माधवसिंह के समय से कोटा के राजा, बादशाह के यहॉ दो हजार की सेना पर मनसबदार होते चले आ रहे थे। लेकिन दोनों बन्धुओं ने भीमसिंह पर प्रसन्न होकर उसके राज्य की गणना प्रथम श्रेणी के राज्यों में की और वहॉ के राजा को पॉच हजार सेना पर

मनसबदार का पद दिया। बूंदी के इतिहास में लिखा जा चुका है कि कोटा के राजा भीमसिंह ने किस प्रकार बूदी के राजा बुधसिंह को मार डालने की कोशिश की थी। भीमसिंह ने इसके सम्बन्ध मे सैयद बन्धुओं और आमेर के राजा जयसिंह से सहायता ली थी। इसका वर्णन बूंदी के इतिहास मे किया जा चुका है। दोनो सैयद बन्धुओ ने भीमसिंह को पश्चिम में कोटा से पूर्व में अहीरबाड़े से पठार की सम्पूर्ण भूमि का अधिकार दे दिया था। वह विस्तृत भूमि खीची लोगों और बूदी के राज्य की थी। उसने इसी प्रकार गागरोन का प्रसिद्ध दुर्ग प्राप्त किया था ओर अलाउद्दीन के आक्रमण के समय बड़े साहस के साथ उस दुर्ग की रक्षा की थी। उसने मऊ, मेदाना, शेरगढ, बारॉ, मंगरोल और बड़ौदा आदि चम्बल नदी के पूर्वी दुर्गो पर अधिकार कर लिया था। जिनके द्वारा राज्य की पश्चिमी सीमा बन गयी थी।

इसके बाद भीलो ने अपने पूर्वजों के नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया। उनके बीच मे मनोहर थाना एक स्थान था जो अब भी दक्षिण की तरफ कोटा की सीमा पर है। वहॉ पर भीलों ने अपनी राजधानी कायम की और उनका राजा चक्रसेन वहॉ पर रहने लगा। उस राजा के अधिकार में पॉच सौ सवार सैनिक और आठ सौ धनुपधारी थे। मेवाड़ से लेकर सभी स्थानों के भील चक्रसेन को अपना राजा मानते थे। ये भील लोग धार के राजा भीमसिंह के समय तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करते आये थे। परन्तु कोटा के राजा भीमसिह ने भीलों के नगरो और ग्रामो पर आक्रमण करके और भीलों के वंश को विध्वंस करके अपने राज्य मे मिला लिया। इन्ही दिनो मे उसने नरसिंहगढ़ और पांटन पर भी अधिकार कर लिया। राजा भीमसिंह यदि और कुछ दिनो तक जीवित रहता तो कोटा राज्य की सीमा को वह पहाड़ के बाहर तक बढ़ा लेता। उसने अनारसी, डिग, पडावा और चन्दावतों के नगरो को भी अपने राज्य मे मिला लिया था, लेकिन भीमसिंह के मरने के बाद ये सभी नगर और ग्राम कोटा राज्य से निकल गये।

प्रसिद्ध कुलीच खॉ ने, जिसने इतिहास मे निजामुलमुल्क के नाम से प्रसिद्धी पायी हे, दक्षिण मे स्वतन्त्र रूप से हेदराबाद राज्य की प्रतिष्ठा की थी। उसने दिल्ली के बादशाह के साथ विद्रोह करके मुगल साम्राज्य के नगरो और ग्रामों को लूटना आरम्भ किया। बादशाह ने जब यह सुना तो उसने आमेर के राजा जयसिंह, कोटा के राजा भीमसिंह और नरवर के राजा गजसिंह को कुलीच खॉ पर आक्रमण करने और उसे कैद करके लाने का आदेश दिया।

भीमसिंह ने निजामुलमुल्क के पास जाकर और उसके साथ पगड़ी बदल कर बन्धुत्व का सम्बन्ध कायम किया। इसके बाद कुलीच खॉ ने जयसिंह को आक्रमण के लिए आता हुआ जानकर भीमसिह के नाम मित्र भाव से एक पत्र लिखकर भेजा। उसमें उसने लिखा कि मैंने दिल्ली के बादशाह का कोई नुकसान नही किया और न उसके किसी ग्राम तथा नगर को लूटा है। इसलिए मेरे सम्बन्ध मे बादशाह से जो कुछ भी कहा गया है, वह सब असत्य है। जयसिंह एक षडयन्त्रकारी है ओर वह मेरे विनाश के लिए हमेशा चेष्टा करता रहता हे। इसलिए आपसे मेरा अनुरोध है कि आप उसकी बात का कभी विश्वास न करे और मेरी दक्षिण यात्रा में कोई रूकावट न डालें।

निजामुलमुल्क का यह पत्र पाकर हाडा राजा भीमसिंह ने उत्तर मे लिखकर भेजा : "मित्रता और कर्त्तव्य परायणता मे अन्तर होता है। ये दोना चीजे एक नही है और न वे एक

साथ चल सकती हैं। मुझे बादशाह की तरफ से जो आदेश मिला है, उसका पालन मुझे करना चाहिए और इसीलिये मैं इतनी दूर से सेना लेकर आया हूँ। बादशाह की आज्ञानुसार मैं कल प्रात:काल आपके ऊपर आक्रमण करूँगा।"

भीमसिंह ने अपना पत्र निजामुलमुल्क के पास भेज दिया। उसने उसको सावधान कर दिया। कुलीच खाँ ने अपनी रक्षा करने के लिए राजनीति के सभी दाँव-पेंच सोच डाले। उसने सिन्धु के कुरवाई और भौंरसा नगरों के निकट वाले पहाड़ी मार्ग पर मुकाम किया। वह स्थान ऐसा था, जहाँ शत्रु लोग उसको आसानी से पा नहीं सकते थे और अपने इस स्थान से आक्रमणकारियों पर छिपकर गोलियों की वर्षा की जा सकती थी। यही समझकर निजामुलमुल्क ने उस पहाड़ी के तंग रास्ते में अपनी फौज का मुकाम किया।

दूसरे दिन प्रात:काल भीमसिंह ने अपनी सेना को तैयार किया। आमेर के जयसिंह की सेना भी वहाँ पर उसके साथ थी। भीमसिंह ने अफीम का सेवन करने के बाद निजामुलमुल्क पर आक्रमण करने की तैयारी की। युद्ध के लिए सुसज्जित होकर उसने अपने हाथ में भाला लिया और अपनी तथा आमेर की सेना को मिलाकर वह रवाना हुआ। राजपूत सेना के आगे बढ़ते ही कुलीच खाँ ने अपनी तोपों में-जो कुछ दूरी पर ऐसे छिपाकर लगायी गयी थीं, जो कहीं से जाहिर न होती थीं-आग लगा दी। तुरन्त गोलों की ऐसी वृष्टि हुई कि उसके द्वारा हाथियों पर बैठे हुए राजा भीमसिंह और राजा गजसिंह-दोनों ही मारे गये। उनके मारे जाते ही राजपूत सेना इधर-उधर भागने लगी। इस प्रकार कुलीच खाँ ने विजय पायी और फिर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। हैदराबाद पहुँचकर उसने स्वतन्त्रतापूर्वक शासन आरम्भ किया। हैदराबाद का राज्य अब तक उसके वंशजों में चला आता है।

इस समय का उल्लेख करते हुये प्राचीन ग्रन्थों में हाड़ा वंश की दो विपदाओं का वर्णन किया गया है। एक तो राजा भीमसिंह का मारा जाना और दूसरा कोटा राजवंश के इष्टदेव बृजनाथ की मूर्ति का खो जाना। राजपूत राजा युद्ध में अपने इष्टदेव की मूर्ति ले जाते हैं और युद्ध के समय अपने इष्टदेव का नाम लेकर राजपूत लोग विजय की आवाज लगाते हैं।

कोटा राजवंश के इष्टदेव की मूर्ति छोटी-सी सोने की बनी हुई थी। उस वंश के लोगों ने उस मूर्ति को साथ में लेकर कितने ही युद्धों मे विजय प्राप्त की थी। इन दिनों में वह मूर्ति कहाँ खो गई, इसका कुछ पता न चला। कहा जाता है कि बहुत खोजने के बाद कोटा के राजपूतों को उसी तरह की एक दूसरी मूर्ति मिली। उसको पाकर कोटा की राजधानी में समारोह के साथ एक उत्सव मनाया गया।

पन्द्रह वर्ष तक राज्य करने के बाद 1720 ईसवी मे-जैसा कि ऊपर लिखा गया है-भीमसिंह युद्ध में मारा गया था। उसने अपने शासनकाल में कोटा राज्य की उन्नति करके अपनी योग्यता, वीरता और राजनीति का परिचय दिया।

कोटा और बूंदी के राजवंशो का मूल एक ही था। बूँदी के राजा बुधसिंह के साथ कोटा के राजा रामसिंह का युद्ध धौलपुर मे हुआ। दोनो ही हाड़ावंशी राजपूत थे। फिर भी दोनों ओर की सेनाओ ने एक दूसरे का सर्वनाश किया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप बूँदी के राजवंश को भयानक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। राजा भीमसिंह बूँदी पर आक्रमण करके वहाँ

का नगाडा और झण्डा आदि अपने कोटा राज्य में ले आया। बादशाह जहाँगीर ने बूँदी के राजा रतनसिह को जो पीले रङ्ग की राज पताका दी थी, उसे भी भीमसिंह ने बूँदी से लाकर अपने यहाँ रखा। इन सभी चीजो को फिर से प्राप्त करने के लिए बूँदी के राजा ने अनेक बाद कोशिशें कीं, परन्तु उसको सफलता न मिली। इसके लिए कोटा के पहरेदारों और राज्य के दूसरे अधिकारियों को प्रलोभन देकर उन चीजों को प्राप्त करने की चेष्टा की गयी। परन्तु कोई परिणाम न निकला। बल्कि बूँदी वालो की ये कोशिशे कोटा में जाहिर हो गयी। इसलिए वहाँ पर अधिक सावधानी से काम लिया जाने लगा और यहाँ तक किया गया कि कोटा राजधानी का नगर द्वार संध्या होने के बाद बहुत जल्दी बन्द हो जाता और फिर वह किसी प्रकार न खुल पाता। इसके सम्बन्ध में लिखा गया है कि अगर कोटा का राजा स्वयं सायंकाल के बाद बाहर से आकर उस नगर-द्वार को खुलवाना चाहे तो भी वह नहीं खुल सकता। इसके सम्बन्ध मे एक घटना का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है :

"कोटा का राजा दुर्जनशाल किसी युद्ध में पराजित होकर अपने थोडे से सैनिकों के साथ आधी रात के समय राजधानी मे आया और पहरेदार से उसने फाटक खोलने के लिए कहा। परन्तु पहरेदार ने रात के समय फाटक खोलने से साफ-साफ इन्कार किया। इसलिए कि उसको आज्ञा मिल चुकी थी कि रात को किसी प्रकार फाटक न खोला जाए। यह देखकर राजा दुर्जनशाल स्वयं फाटक पर आया और अपना परिचय देकर पहरेदार से फाटक खोलने के लिए कहा। पहरेदार ने इस पर भी फाटक नही खोला और उसने फाटक के भीतरी हिस्से से जवाब देते हुए कहा-"फाटक रात में किसी प्रकार नहीं खुल सकता। यदि आप इसके बाद फिर कहेगे तो मैं बन्दूक की गोली से आपको मार दूँगा। अगर आप हमारे राजा हैं तो भी बाहर ही रहकर कहीं पर रात बितानी पड़ेगी।" राजा दुर्जनशाल ने निराश होकर रात का शेष भाग बाहर किसी स्थान पर व्यतीत किया। दूसरे दिन सवेरे फाटक खोला गया और पहरेदार जिस समय रात की इस घटना की बात अपने साथ के किसी सैनिक से कह रहा था, सामने से राजा दुर्जनशाल ने फाटक में प्रवेश किया। अपने राजा को देखकर पहरेदार भयभीत हो उठा। उसने आगे बढ़कर अपने हाथ की बन्दूक राजा के चरणों मे रख दी और हाथ जोडकर वह खडा हो गया। राजा दुर्जनशाल ने मुस्कराते हुए उसकी तरफ देखा और उसकी कर्त्तव्य परायणता से प्रसन्न होकर उसको पुरस्कार देने का आदेश दिया।

राजा भीमसिंह के शरीर पर इतने अधिक जख्म आये थे कि उससे उनके शरीर की सुन्दरता नष्ट हो गयी थी। इसलिए वह अपने शरीर के सूखे हुए जख्मों को छिपाने के लिए हमेशा वस्त्र पहने रहता था। कुरवाई युद्ध मे कुलीचखाँ के गोले से घायल होने के बाद उसके जख्मो को देखकर जब एक राज्य अधिकारी ने उससे पूछा तो भीमसिह ने उसको जवाब देते हुए कहा : "जो शासन करने के लिए पैदा हुआ है और अपने पूर्वजों के राज्य की रक्षा करना चाहता है, उसको तो इस प्रकार की चोटो का सामना करना ही पड़ेगा।"

कोटा के राजाओं में भीमसिंह पहला राजा था, जिसने मुगल बादशाह के यहाँ पचहजारी मनसवदार अर्थात् पॉच हजार सेना पर सेनापति का पद प्राप्त किया था और महाराव की उपाधि पायी थी। यह उपाधि मेवाड़ के राणा से उसे मिली थी और मुगल बादशाह ने उसकी इस उपाधि को स्वीकार किया था।

बूँदी के गोपीनाथ के वंशज हाड़ौती के प्रधान सामन्त थे और उनके सम्मान में आप जी शब्द का प्रयोग होता था किन्तु इन्द्रशाल के उदयपुर जाने पर राणा की तरफ से उसको महाराजा की पदवी मिली। राजा भीमसिंह के तीन लड़के थे-अर्जुन सिंह, श्याम सिंह और दुर्जनशाल। महाराजा अर्जुन सिंह का विवाह झाला के जालिम सिंह के पूर्वज माधवसिंह की वहन के साथ हुआ था। चार वर्प तक राज्य करने के बाद अर्जुन सिंह की मृत्यु हो गई। उसके कोई सन्तान न थी। इसलिए उसके मर जाने के बाद कोटा के राजसिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए श्यामसिंह और दुर्जनशाल में संघर्प पैदा हुआ। वह संघर्प लगातार बढ़ा और राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ दो भागों में विभाजित हो गयीं। उदयपुर के युद्ध-क्षेत्र में दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी सेनायें लेकर संग्राम किया और आपस में ही लडकर और एक-दूसरे का सर्वनाश करके रक्त की नदियाँ बहाई। उस युद्ध में श्यामसिंह मारा गया और उसके बाद युद्ध बन्द हो गया।

युद्ध के शान्त हो जाने के बाद दुर्जनशाल को मारे जाने वाले श्यामसिंह के वियोग का दुःख हुआ। इसके पहले राज्याधिकार के लिए उन्मत्त होकर वह अपनी बुद्धि को खो बैठा था। भाई श्यामसिह के युद्ध में मारे जाने पर उसने बहुत रंज किया और अश्रुपात के साथ उसने बार-बार इस बात को स्वीकार किया कि राज्य के प्रलोभन में मैंने अपने सगे भाई का सर्वनाश किया है। इस प्रकार दुर्जनशाल ने अपने सगे भाई श्याम सिंह के लिए अनेक बार विलाप किया।

इन्हीं दिनों में कोटा-राज्य की एक बड़ी क्षति हुई। मुगल बादशाह ने राजा भीमसिंह को प्रसन्न होकर पुरस्कार में रायपुरा, भानपुरा और कालापीत नाम के तीन वैभवशाली नगर वहाँ के मूल अधिकारियों से लेकर दिये थे, उस पर कोटा राज्य का अधिकार संघर्प पैदा होने के पहले तक बना रहा। लेकिन जब श्यामसिंह और दुर्जनशाल में संघर्प पैदा हुआ और वे दोनों एक दूसरे का सर्वनाश करने की कोशिश मे रहने लगे, उन दिनों ये तीनों सम्पत्तिशाली नगर कोटा राज्य के अधिकार से निकल गए और उन दिनों में अवसर पाकर उनके पूर्व अधिकारियों ने उन पर अधिकार कर लिया।

सन् 1724 ईसवी मे दुर्जनशाल कोटा के सिंहासन पर बैठा। इन दिनों मे तैमूर वंश का अन्तिम सम्राट मोहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर था। दुर्जनशाल को उसने अपने यहाँ बुलाया और खिलत दी। दुर्जनशाल ने बादशाह से प्रार्थना की कि जमना नदी के किनारे जिन स्थानों पर हाड़ा वंश के राजपूत रहा करते हैं, वहाँ पर गोहत्या न की जाए।

दुर्जनशाल के शासन के समय बाजीराव ने मराठा सेना लेकर उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और हाडोती राज्य से पूर्वी सीमा तक तारजपास नामक पहाड़ी रास्ते को पार करते हुए नाहरगढ़ के दुर्ग को अपने अधिकार मे कर लिया और उसने वह दुर्ग दुर्जनशाल को दे दिया। वह दुर्ग और नगर एक मुसलमान के अधिकार में था। सन् 1740 ईसवी में मराठों के साथ हाडा राजपूतों का यह पहला सम्पर्क हुआ। राजा दुर्जनशाल ने उस दुर्ग के बदले बाजीराव पेशवा की सहायता में बहुत-सी आवश्यक युद्ध सामग्री दी। मराठा बाजीराव के साथ दुर्जनशाल की यह मित्रता जो कायम हुई, वह बहुत थोड़े दिनो के बाद समाप्त हो गयी। अधिक दिनो तक दोनो का यह सम्बन्ध चल न सका।

बूँदी राज्य के इतिहास मे लिखा जा चुका है कि आमेर के राजा जयसिंह ने दिल्ली के बादशाह के दरबार में रहकर अपने राज्य की शक्ति को उन्नत बना लिया था और राज्य की सीमा में बहुत वृद्धि कर ली थी। इस प्रकार अपनी बढ़ी हुई शक्तियों के द्वारा बूँदी के राजा को सिंहासन से उतार कर उसको सामन्त का पद देने का निर्णय किया था और उसके उत्तराधिकारी ने उसका समर्थन करके बूँदी के राजा बुधसिंह को सिंहासन से उतार दिया। राजा बुधसिंह ने वृद्धावस्था मे इस मानसिक पीडा के कारण परलोक की यात्रा की। अन्त में अजमेर के राजा ने मराठों से परास्त होकर आत्म-हत्या कर ली। आमेर के राजा ने बुधसिंह को सिंहासन से उतार कर एक सामन्त को वहाँ के सिंहासन पर बिठाया और उससे कर लेने का निश्चय किया।

बूँदी राज्य मे इस प्रकार सफलता पाकर आमेर के राजा ने कोटा राज्य पर अधिकार करने का इरादा किया। दुर्जनशाल उस समय कोटा के सिंहासन पर था। सम्वत् 1800 ईसवी में आमेर के राजा ईश्वरीसिंह ने कोटा पर आक्रमण करने के लिए तीन मराठा सेनापतियों और जाटों के सेनापति सूर्यमल्ल को सेनाओं के साथ बुलाया और उन सबको लेकर ईश्वरी सिंह ने कोटा राज्य पर आक्रमण किया। कोठड़ी नामक स्थान पर दोनो ओर मे युद्ध हुआ। उसके बाद जयपुर के राजा ने अपनी विशाल सेना लेकर कोटा की राजधानी को घेर लिया। आक्रमणकारी तीन महीने तक उस राजधानी को घेरे हुए पडे रहे। लेकिन उनको सफलता न मिली। अन्त में निराश होकर आमेर का राजा ईश्वरी सिंह सब के साथ लोटकर चला गया। इन्हीं दिनों में मराठा सेनापति जय अप्पा सिंधिया का एक हाथ गोली से उड गया।

शत्रुओं के आक्रमण के दिनो मे झाला राजपूत हिम्मत सिंह कोटा राज्य मे प्रधान सेनापति था। उसने उस अवसर पर बड़े साहस से काम लिया था और प्राणो की परवाह न करके उसने अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था। उसी के परामर्श और मध्यस्थ होने से बाजीराव ने दुर्जनशाल को नाहरगढ़ का दुर्ग दे दिया था। सन् 1729 और 1734 के बीच की घटनाओं के समय जालिमसिंह का जन्म हुआ और उसने अपने जीवन काल मे बहुत अधिक कीर्ति प्राप्त की।

बूँदी और कोटा राज्यों में शत्रुता हो चुकी थी। लेकिन दुर्जनशाल ने उसको भुलाकर बूँदी के राजा बुधसिंह के लडके उम्मेद सिंह की सहायता की और उसको अपने पूर्वजो के राज्य पर अधिकार मिल जाए, इसके लिए उसने चेष्टा की। सबसे पहले होलकर से सहायता माँगने के लिए उसको परामर्श दिया, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मराठा सेनापति होलकर से सहायता लेने का यह परिणाम हुआ कि होलकर ने दुर्जनशाल से भी कर लेना आरम्भ कर दिया और दुर्जनशाल को इसके लिए विवश होना पडा।

दुर्जनशाल ने कई एक नगरो को जीतकर और खीची वश का फूलबरोद नामक इलाका लेकर अपने राज्य में मिला लिया था। गूगोर नामक दुर्ग के सम्बन्ध में हाडा लोगो के साथ खीची जाति का युद्ध हुआ। गूगोर के अधिकारी बलभद्र ने बडी वीरता के साथ अपने दुर्ग की रक्षा की। उस युद्ध में बलभद्रपुरा, रामपुरा और शिवपुर आदि के सामन्त संगठित होकर हाडा लोगों के साथ लडे थे। सम्वत् 1810 मे हाडा और खीची लोगो का युद्ध हुआ। बूँदी के राजा उम्मेद सिंह ने इस युद्ध मे राजा दुर्जनशाल की सहायता की और उसकी वीरता से कोटा के राजा को उस युद्ध मे सफलता मिली।

इसके तीन वर्ष बाद दुर्जनशाल की मृत्यु हो गयी। वह एक साहसी राजा था और राजपूतो के सभी गुण उसमें मौजूद थे। साहस और वीरता के साथ-साथ उसमे उदारता थी। वह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। वह प्राय: शेर और बाघ का शिकार किया करता था। दुर्जनशाल के साथ शिकार खेलने के समय उसकी रानियाँ भी जाती थीं। उन रानियों ने बन्दूक चलाने की शिक्षा पायी थी। जंगल में जाकर एक बने हुए मचान पर अपने हाथों में बन्दूकें लेकर वे बैठती थीं और आवश्यकता पड़ने पर वे सिंह एवम् बाघ पर अपनी गोलियाँ चलाती थीं।

शिकार खेलने के सम्बन्ध मे एक घटना का उल्लेख इस प्रकार पढ़ने को मिलता है : "एक दिन दुर्जनशाल अपने सेनापति हिम्मत सिंह झाला को लेकर शिकार खेलने के लिए गया। उसके साथ के सैनिकों ने एक बाघ को उत्तेजित किया। उस समय वह शिकारी लोगों पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा। दुर्जनशाल ने यह नियम बना रखा था कि जब कोई शेर अथवा बाघ जंगल से निकलकर हम लोगों पर आक्रमण करे तो उस समय मंच पर बैठी हुई रानियाँ अपनी गोलियों से उसको मारने की कोशिश करें। लेकिन आज ऐसा नहीं हुआ। जिस समय वह बाघ क्रोध से उत्तेजित होकर दौड़ा उस समय हिम्मत सिंह झाला मंच के नीचे जंगली भूमि पर खड़ा था। ऐसे अवसर पर राजा दुर्जनशाल की आज्ञा पाने पर रानियाँ गोलियाँ चलाती थीं। आज दुर्जनशाल ने गोली चलाने के लिए रानियों को आदेश नहीं दिया। इसीलिए मचान पर बैठी हुई किसी रानी ने गोली मारने का साहस नहीं किया। तड़पते हुए बाघ ने आकर हिम्मत सिंह पर आक्रमण किया। हिम्मत सिंह ने बड़ी तेजी के साथ ढाल से अपनी रक्षा की और दाहिने हाथ से तलवार मार कर बाघ के सिर को काट कर जमीन पर गिरा दिया। यह देखकर राजा दुर्जनशाल और उसके साथ के सामन्तों ने हिम्मत सिंह की बहुत प्रशंसा की।"

राजा दुर्जनशाल का विवाह मेवाड़ के राणा की एक लड़की के साथ हुआ था। दुर्जनशाल के कोई सन्तान पैदा न हुई थी। इसलिए मरने के तीन वर्ष पहले उसने अपनी रानी से कहा था : "यदि मैं पुत्रहीन अवस्था मे मरूँ तो उस समय किसी लड़के को गोद ले लेना होगा।"

पहले यह लिखा जा चुका है कि राजा रामसिंह का बड़ा लड़का बिशन सिंह अपने पिता के कहने पर भी दक्षिण की लड़ाई में नहीं गया था। इसलिए उसके पिता ने सिंहासन के अधिकार से वंचित करके उसे चम्बल नदी के किनारे आणता नामक स्थान पर रहने के लिए भेज दिया था। दुर्जनशाल की मृत्यु के समय आणता में बिशन सिंह का पौत्र अजीत सिंह मौजूद था। अजीत सिंह के तीन लडके थे। उनमे सबसे बडा छत्रसाल था। मरने के समय दुर्जनशाल ने छत्रसाल को गोद लेने की सलाह दी थी और उस समय मन्त्रियों और सामन्तों ने उस पर अपनी सम्मतियाँ दे दी थीं। लेकिन गोद लेने का समय उपस्थित होने पर सेनापति हिम्मत सिंह झाला ने छत्रसाल का विरोध करते हुए कहा : "यह मैं जानता हूँ कि मरने के पहले हमारे राजा ने छत्रसाल को गोद लेने के लिए अपनी सलाह दी थी और हम सभी ने उसे स्वीकार किया था। लेकिन इस समय हम सबके सामने गोद लेने का प्रश्न है। इसलिए हम

सब को इस विषय में सोच समझ कर काम करना चाहिए। मैं छत्रसाल को गोद लिए जाने के पक्ष में नहीं हूँ। छत्रसाल का पिता वृद्ध अजीत सिंह अभी तक मौजूद है। लड़के को सिंहासन पर बिठा कर पिता को अधीन बना कर प्रजा के समान रखना किसी प्रकार न्यायपूर्ण नहीं है। इसलिए अजीत सिंह को ही सिंहासन पर बैठने का अधिकार मिलना चाहिए।"

किसी ने हिम्मत सिंह झाला की बात का विरोध न किया। इसलिए सेनापति के प्रस्ताव के अनुसार अजीत सिंह कोटा के राज सिंहासन पर बिठाया गया। ढाई वर्ष के बाद अजीत सिह की मृत्यु हो गयी। उसके तीन लड़के थे-छत्रसाल, गुमान सिंह और राज सिंह।

अजीत सिंह की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसका बड़ा लड़का छत्रसाल सिंहासन पर बैठा। प्रसिद्ध हिम्मत सिंह झाला की भी मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए उसके स्थान पर उसका भतीजा जालिम सिंह सेनापति बनाया गया।

इन्हीं दिनो में आमेर का राजा ईश्वरी सिंह आत्म-हत्या करके मर गया था। उसके स्थान पर माधव सिंह सिंहासन पर बैठा। उसने बूँदी और कोटा राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की। इन दिनों में अब्दाली के आक्रमण से मराठों की शक्तियाँ कमजोर पड़ गयी थीं। इसलिए कछवाहा वंश के राजपूत मराठों से निर्भीक हो गये थे। सन् 1761 ईसवी में माधव सिह आमेर की एक विशाल सेना लेकर हाड़ौती राज्य की तरफ रवाना हुआ और उनियारा पर आक्रमण करके उसने उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने लाखरी में जाकर मराठो को पराजित किया और वहाँ पर उसने अधिकार कर लिया। इसके बाद वह पालीघाट पर पहुँचा। सुलतानपुर का हाड़ावशी सामन्त वहाँ का अधिकारी था। माधव सिंह ने आक्रमण करके उसे पराजित किया और पालीघाट पर भी उसने अधिकार कर लिया। सुलतानपुर का सामन्त अपने परिवार के साथ उस युद्ध में मारा गया।

विजयी माधव सिंह इसके बाद आगे बढ़ा। झटवाड़ा नामक स्थान पर हाड़ा वंश के पाँच हजार राजपूत उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार थे। आमेर की सेना ने उन हाड़ा राजपूतो पर आक्रमण किया। आमेर की सेना के मुकाबिले में हाड़ा राजपूतों की संख्या बहुत थोड़ी थी। फिर भी उन लोगों ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया। इसी अवसर पर कोटा राज्य के सेनापति जालिम सिंह ने राजनीति से काम लिया। उसकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी। उसने अपनी सेना लेकर उस युद्ध में प्रवेश किया और उसने आमेर की सेना के साथ बड़े साहस से युद्ध करना आरम्भ किया।

मराठा सेनापति मल्हारराव होलकर इस युद्ध को कुछ दूरी पर रह कर देख रहा था। वह पानीपत के युद्ध के बाद निर्बल पड गया था। इसीलिए वह युद्ध मे किसी तरह शामिल नहीं हुआ था। जालिम सिंह ने जब माधव सिंह को विजयी होता हुआ देखा तो वह अपने घोड़े पर तेजी के साथ होलकर के पास गया और उससे उसने कहा : "यदि आप इस युद्ध में किसी पक्ष का साथ नहीं देना चाहते तो अपनी सेना लेकर माधव सिंह के शिविर को लूट कर लाभ उठा सकते हैं। यह एक अवसर आपके सामने है।"

मल्हार राव होलकर ने जालिम सिंह की इस बात को स्वीकार कर लिया। शिविर मे होलकर की सेना के लूट करते ही युद्ध मे आमेर की सेना घबरा उठी और वह भयभीत होकर

युद्ध छोड़ कर भागी। उस भगदड़ में आमेर राज्य की पंचरंगी पताका कोटा की सेना के अधिकार मे आ गई।

झटवाड़ा के इस युद्ध में जयपुर राज्य की शक्ति निर्बल पड़ गयी। इसके बाद वहाँ के राजा ने हाड़ा लोगो पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

हाड़ा वंश के कवि ने इस युद्ध को देखकर प्रशंसा करते हुए हाड़ा राजपूतों की वीरता का ओजस्वी शब्दों मे उल्लेख किया है। हाड़ा राजपूत उन कविताओं को अब तक स्वाभिमान के साथ गाया करते हैं।

अपनी स्वाधीनता और मर्यादा की रक्षा करने के लिए झटवाड़ा के युद्ध में हाड़ा राजपूतों ने जिस प्रकार युद्ध करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था, उनके स्मारक में उस वंश के लोग प्रति वर्ष एक उत्सव मनाया करते हैं। उस उत्सव में आमेर का एक दुर्ग बनाया जाता है और उत्सव के दिन उस दुर्ग का विध्वंस किया जाता है।

झटवाड़ा के युद्ध के बाद थोड़े ही दिनों में छत्रसाल की मृत्यु हो गयी। उसके कोई लड़का न था। इसलिए उसका छोटा भाई कोटा के सिंहासन पर बैठा।

अध्याय-65
झाला जालिमसिंह व उसकी उपलब्धियां

सन् 1766 ईसवी में गुमान सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में वह साहसी और बुद्धिमान मालूम होता था। इन्हीं दिनों में मराठा दल ने राजस्थान में आक्रमण किया और उसने राजपूतों का सर्वनाश करने की चेष्टा की। गुमान सिंह में उनसे अपने राज्य की रक्षा करने की शक्ति थी। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उसे शासन का भार एक बालक को सौंप देना पड़ा। कुछ बीच की परिस्थितियों पर प्रकाश डालने के बाद उस घटना का हमने उल्लेख किया है।

कोटा राज्य के साथ जालिम सिंह का घनिष्ठ सम्बन्ध था और इस राज्य के इतिहास के साथ उसके कार्यो का ऐसा मिश्रण है, जिससे उसके नाम के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा अथवा अवहेलना नहीं की जा सकती। वास्तव में जालिम सिंह इतनी अच्छी राजनीति जानता था कि वह कहीं पर भी रहकर अपनी मर्यादा कायम कर सकता था।

जालिम सिंह झालावंशी राजपूत था। सन् 1740 ईसवी में उसका जन्म हुआ था। उसी वर्ष एक शक्तिशाली सेना लेकर भारतवर्ष पर नादिरशाह ने आक्रमण किया था। मोहम्मदशाह उन दिनों में दिल्ली के मुगल सिंहासन पर था और दुर्जनशाल कोटा का राजा था। मोहम्मदशाह ने नादिरशाह के साथ युद्ध किया था। जालिम सिंह के एक ही नेत्र था। उसने झटवाड़ा के युद्ध में अपनी अद्भुत राजनीति और वीरता का परिचय देकर राजस्थान मे प्रसिद्धि पायी थी।

जालिम सिंह के पूर्वज सौराष्ट्र के झाला के अन्तर्गत हलवद के साधारण सामन्त थे। उस वंश के भावसिंह नामक एक नवयुवक ने अपने पिता का स्थान छोड़कर किसी दूसरे राज्य में जाने के लिए यात्रा की थी। उन दिनों में औरंगजेब के वंशजों में दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए संघर्ष चल रहा था। भावसिंह ने वहाँ जाकर एक पक्ष का आश्रय लिया। उन दिनों में राजा भीमसिंह दिल्ली के सैयद बन्धुओं से मिलकर अपनी शक्ति को मजबूत बना रहा था, उन्हीं दिनो में भावसिंह का लड़का माधव सिंह कोटा में आया। उसके साथ पच्चीस सवार सैनिक थे। राजा भीमसिंह ने उसके झाला वंश का परिचय पाकर सम्मानपूर्वक उसको अपने यहाँ स्थान दिया और उसे अत्यन्त होनहार समझकर न केवल उसके साथ स्नेह पैदा किया, बल्कि माधव सिंह की बहन का विवाह अपने लड़के अर्जुन सिंह के साथ कर दिया और माधव सिंह को रहने के लिए आणता नामक नगर दे दिया। माधव सिंह समझदार, साहसी और राजनीतिज्ञ था। इसलिए राजा भीमसिंह ने प्रसन्न होकर उसे सेनापति का पद दिया और जिस दुर्ग के महल में वह स्वयं रहता था, उस दुर्ग का उसने उसे अधिकारी बना दिया। उसके बाद कोटा राज्य मे माधवसिह का सम्मान लगातार बढ़ा और उसने ख्याति प्राप्त की।

उसके मरने के वाद उसके लड़के मदन सिंह को सेनापति के स्थान पर रखा गया। उसके दो लड़के हुए-हिम्मत सिंह और पृथ्वीसिंह।
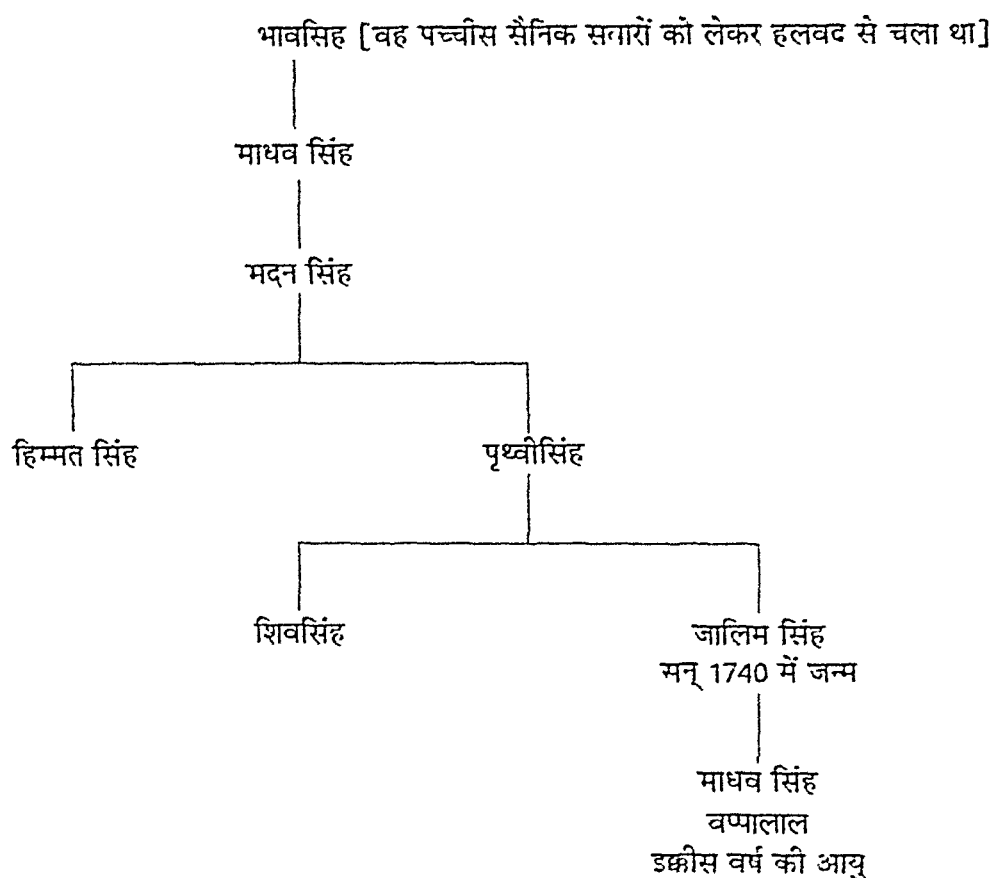
राजस्थान के राज्यो में जव मन्त्री, दीवान, सेनापति आदि कोई पदाधिकारी मर जाता है तो राज्य में उसका स्थान उसके लड़के को मिलता है। इस नियम के अनुसार मदन सिंह के मर जाने पर हिम्मत सिंह झाला कोटा राज्य का सेनापति वनाया गया। वह जिस प्रकार नीति कुशल, साहसी और शूरवीर था, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। जयपुर के राजा ने मराठो को साथ लेकर जव कोटा राज्य पर आक्रमण किया था तो हिम्मत सिंह झाला ने साहस पूर्वक कोटा के दुर्ग की रक्षा की थी। परन्तु उस समय कोटा राज्य चारो ओर से घिरा हुआ था। इसलिए हिम्मत सिंह के परामर्श से कोटा के राजा ने मराठों से सन्धि करके उनको कर देना मन्जूर कर लिया था।

राजा दुर्जनशाल के मरने के वाद हिम्मतसिंह ने अजीत सिंह को कोटा के सिंहासन पर विठाया था। हिम्मत सिंह के कोई लड़का न था। इसलिए उसने अपने भतीजे जालिम सिंह को गोद ले लिया था। हिम्मत सिंह की मृत्यु के वाद जालिम सिंह कोटा राज्य का सेनापति वनाया गया। जालिम सिंह ने झटवाड़ा के युद्ध में आमेर राज्य की सेना के साथ भीषण युद्ध किया था और कोटा राज्य की रक्षा की थी। परन्तु इसके वाद कोटा राज्य की राजनीति में

परिवर्तन हुआ और उस परिवर्तन में जालिम सिंह का सौभाग्य निर्वल होता हुआ दिखायी पड़ने लगा।

कोटा के सिंहासन पर जव गुमान सिंह वैठा तो राज्य में जालिम सिंह का वढ़ता हुआ प्रभुत्व उसे अच्छा न मालूम हुआ। इसलिए राजा भीमसिंह ने जो आणता नगर माधव सिंह को रहने के लिए दे दिया था और जहाँ पर अव भी झाला वंश का एक परिवार रहता ह, राजा गुमान सिंह ने सेनापति का पद और आणता का नगर जालिम सिंह के मामा भूपति सिंह को दे दिया।*

राजा गुमान सिंह का व्यवहार देखकर जालिम सिंह को अपना अपमान मालूम हुआ। इसलिए वह कोटा राज्य छोड़कर किसी दूसरे राज्य में चले जाने की वात सोचने लगा। आमेर राज्य के कछवाहों से लड़कर झटवाड़ा की लड़ाई में उसने कोटा राज्य की रक्षा की थी। इसलिए वह जयपुर राज्य जा नहीं सकता था। मारवाड़ राज्य जाना उसने अपने लिए अच्छा नहीं समझा। इस दशा में जालिम सिंह मेवाड़ राज्य के सम्वन्ध में वार-वार विचार करने लगा। वहाँ पर उसके वंश का एक राजपूत राणा के दरवार में था और मेवाड़-राज्य में उसने एक प्रधान सामन्त का पद पाया था और झाला सामन्त के नाम से प्रसिद्ध था। यह सामन्त जालिम सिंह के वंश का था। उसने मेवाड़ के संघर्ष मे अरिसी का पक्ष लेकर उसको मेवाड़ के सिंहासन पर विठाया था। इसलिए राणा अरिसी झाला सामन्त से वहुत दवा हुआ था और राणा को विवश वनाकर उस झाला सामन्त ने शासन में वहुत से अधिकार अपने हाथ में कर लिये थे।

जालिम सिंह ने सोच-समझकर कोटा राज्य को छोड़ दिया और वह मेवाड़ में चला आया। उसकी योग्यता की प्रशंसा पहले ही राणा अरिसी सुन चुका था। इसलिए राणा ने जालिम सिंह को अपने यहाँ सम्मान के साथ लिया। वह साहसी, नीतिकुशल और शूरवीर था। इसलिए थोडे ही दिनों मे जालिम सिंह राणा का विश्वासपात्र वन गया। राणा की दशा इन दिनों में वहुत शोचनीय थी। जिस झाला सामन्त की सहायता से वह सिंहासन पर वैठा था, वह सामन्त मेवाड़ राज्य मे मनमानी कर रहा था। उसने विरोधी सामन्तों की जागीरों को राज्य मे मिला लिया था और राज्य के जिन लोगों ने विद्रोह किया, उनके साथ उसने भयानक अत्याचार आरम्भ कर दिये थे। राणा अरिसी इन सव वातों को अच्छा नहीं समझता था। परन्तु उस झाला सामन्त के विरुद्ध वह कुछ नहीं कर सकता था और उसकी दुर्वलता में झाला सामन्त राज्य मे, जो चाहता था करता था।

राणा अरिसी ने जालिम सिंह की प्रशंसा पहले से ही सुनी थी। उसको वह साहसी और नीतिकुशल समझता था। इसलिए राणा ने उससे सभी प्रकार की आशायें कीं। जालिम सिंह ने राणा की परिस्थितियों का अध्ययन किया। इसके वाद उसने एक योजना तैयार की, जिसमें देलवाड़ा का वह झाला सामन्त जान से मारा गया। उसके मरते ही राणा की सम्पूर्ण विवशता का अन्त हो गया। इसके लिए राणा ने जालिम सिंह को राजराणा की उपाधि दी और मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर चित्रखाड़िया नामक स्थान उसको पुरस्कार में दिया। उस समय से जालिमसिह मेवाड़ के दूसरी श्रेणी के सामन्त मे माना गया।

---

* इस आणता नगर का नाम कई स्थलों पर और दूसरे ग्रन्थों में नान्दता लिखा गया है।-अनु

यद्यपि झाला सामन्त के मारे जाने से राणा की बहुत-सी कठिनाइयों का अन्त हो गया था, परन्तु मेवाड़ के सिंहासन के लिए जो संघर्ष पहले चल रहा था और उसका जो वंशज सिंहासन पर बैठना चाहता था, वह राज्य के अनेक सामन्तों से मिलकर अब भी राणा के विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा था। वह अभी तक शान्त न था और मेवाड़ के सिंहासन से राणा अरिसी को हटा कर स्वयं बैठने की चेष्टा कर रहा था। उसने इन दिनों में फिर से विद्रोह किया और अपनी सहायता में मराठों को लाकर उसने राणा को सिंहासन से उतार देने का प्रयत्न किया। जालिमसिंह के साथ परामर्श करके राणा अरिसी ने एक सेना तैयार की और उसने मराठों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में राणा के विरोधी और मराठों की विजय हुई। जालिम सिंह घायल होकर शत्रुओं के द्वारा कैद हो गया।

इस युद्ध में पराजय होने के कारण उसके मेवाड़ राज्य का भाग विजेता की दया पर निर्भर हुआ। मराठा सेना ने उदयपुर को जाकर घेर लिया। मेवाड़ के राजपूतों ने बड़े साहस के साथ मराठो के साथ युद्ध किया। परन्तु शत्रु-सेना के सामने उनकी संख्या बहुत कम होने के कारण उनकी एक न चली। अंत में राणा को मराठा सेनापति के साथ सन्धि कर लेनी पड़ी। उस दशा में अम्बाजी इङ्गले के पिता त्रयम्बकराव ने जालिम सिंह को छोड़ दिया।

अपने जख्मों को सेहत करने के बाद जालिम सिंह ने अपने भविष्य पर फिर एक बार विचार किया। मेवाड़ में कुछ दिन रहकर उसने भली प्रकार इस बात को समझ लिया कि यहाँ के राणा की शक्तियाँ बहुत दीन-दुर्बल हो चुकी हैं। इसलिए उसके हाथ रहकर मैं अपने भाग्य का निर्माण नहीं कर सकता। इसलिए उदयपुर छोड़कर पण्डित लालजी बेलाल के साथ वह कोटा चला आया। बुकायनी के युद्ध में बहुत-से सैनिकों के मारे जाने से मराठा सेनापति मल्हार राव होलकर बहुत निर्बल हो गया था, फिर भी वह अपनी सेना लेकर कोटा राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ।

कोटा के राजा गुमान सिंह को समाचार मिला कि मल्हर राव होलकर अपनी सेना के साथ आक्रमण करने के लिए आ रहा है। वह घबरा उठा और उसने इस बात का निश्चय कर डाला कि जैसे भी हो सके, होलकर के साथ सन्धि कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार निर्णय करके राजा गुमान सिंह ने सन्धि करने के लिए अपने सेनापति को होलकर के पास भेजा। परन्तु उस सेनापति को सफलता न मिली और वह निराश होकर लौट आया।

इन दिनों में जालिम सिंह उदयपुर से कोटा आ गया था। उसने मल्हर राव होलकर के कारण कोटा राज्य पर आयी हुई विपदा को सुना और उसने राजा गुमान सिंह से भेंट करने का इरादा किया। राजा गुमान सिंह स्वयं इस समय संकट में था। इसलिए उसने जालिम सिंह को अपने राज्य में फिर से स्थान दिया। मराठों ने किले को घेर कर उस पर अधिकार करने की चेष्टा की। परन्तु उन्हें सफलता न मिली। इस दशा में मराठों ने अपने एक हाथी के द्वारा दुर्ग की दीवार को तोड़ने की कोशिश की। उस समय हाड़ा सेनापति माधव सिंह को मालूम हुआ कि यदि दुर्ग की दीवार टूट गई तो दुर्ग पर शत्रु का अधिकार हो जाएगा। यह सोचकर वह किसी भी तरह दुर्ग की रक्षा करने के उपाय सोचने लगा।

इसी समय माधव सिंह ने देखा कि शत्रु का हाथी अपने मस्तक की टक्कर से दुर्ग का फाटक तोडने की कोशिश कर रहा है। उसी समय माधव सिंह अपने हाथ में तलवार

लेकर दुर्ग के ऊपर से टक्कर मारने वाले हाथी की पीठ पर कूद पड़ा और उसने पीलवान को मारकर नीचे गिरा दिया। इसके बाद उसने हाथी की गर्दन पर अपनी तलवार के हाथ मारे जिससे वह भयानक रूप से घायल हुआ। दुर्ग से कूदने के बाद माधव सिंह ने अपने प्राणों की आशा छोड़ दी थी। दुर्ग की रक्षा करने के लिए उसका यह अन्तिम प्रयास था। माधव सिंह का इस प्रकार शत्रु के हाथी पर कूदने और उसको मार करते हुए देखने के बाद हाड़ा राजपूत दुर्ग का दरवाजा खोलकर एक साथ निकल पड़े और अपनी तलवारों से उन्होंने शत्रु-सेना का संहार करना आरम्भ किया।

बहुत समय के बाद युद्ध की परिस्थिति बदलने लगी। शत्रुओं की अपेक्षा संख्या में कम होने के कारण बहुत-से हाड़ा राजपूत मारे गये और अन्त में मराठों की जीत हुई। राजपूतों को पराजित करके मराठों ने कोटा राज्य के अनेक स्थानों पर भयानक अत्याचार किये और लूटमार करने के बाद उन्होंने सुकेत नामक दुर्ग को घेर लिया। यह समाचार राजा गुमान सिंह को मिला। उसने उस दुर्ग रक्षक के पास अपना संदेश भेजा कि जैसे भी हो सके शत्रु से दुर्ग की रक्षा होनी चाहिए। बुकायनी के युद्ध में राजपूतों ने मराठों का भयानक रूप से संहार किया था।

राजा का इस प्रकार आदेश पाकर कोटा राजधानी में जाने के लिए अपनी सेना के साथ आधी रात को निकलकर दुर्ग का रक्षक रवाना हुआ। रात के अंधकार में जिस मार्ग से वह जा रहा था, उसकी सूखी घास मे एक साथ आग जल उठी। उसी समय मराठा सेना ने जाते हुये राजपूतों पर एकाएक आक्रमण किया। उसमें कोटा के बहुत से सैनिक मारे गये।

सेनापति मल्हार राव होलकर ने बुकायनी के युद्ध में भयानक क्षति उठायी थी। लेकिन इस बीच में उसने अपनी शक्तियों को फिर से मजबूत बना लिया था। कोटा का राजा गुमान सिंह इस समय बड़े संकट में था। उसको अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय न मिल रहा था। इसलिये उसने बहुत-कुछ सोचकर इस बात का निर्णय किया कि झटवाड़ा के युद्ध में जालिम सिंह के द्वारा हाड़ा राजपूतों ने सफलता पायी थी और इस समय भी जालिम सिंह के द्वारा ही कोटा राज्य की रक्षा का कोई उपाय निकल सकता है। इस प्रकार सोच-समझकर उसने जालिम सिंह को बुलाया और होलकर के साथ सन्धि करने का उत्तरदायित्व उसने उसको सौंपा।

जालिम सिंह सन्धि का प्रस्ताव लेकर होलकर के पास गया। दोनों पक्ष की बातचीत समाप्त होने के बाद होलकर ने सन्धि करना स्वीकार कर लिया। उस सन्धि में निश्चय हुआ कि कोटा के राजा गुमान सिंह से छः लाख रुपये लेकर मल्हारराव होलकर अपनी सेना के साथ कोटा राज्य से वापस चला जाएगा।

जालिम सिंह के निर्णय के अनुसार होलकर के साथ सन्धि हो गयी। वह छः लाख रुपये लेकर कोटा से चला गया। जालिम सिंह की सफलता पर गुमान सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। उसके अधिकार के जो नगर और ग्राम उसने उससे ले लिए थे, उसको फिर से दे दिये गये और कोटा-राज्य का फिर उसको सेनापति बना दिया।

इसके कुछ दिनों के बाद गुमान सिंह बीमार पड़ा। उसका रोग सेहत न हो सका। मरणासन्न अवस्था में पहुँच कर वह इस बात के लिए चिन्तित हुआ कि अपने छोटे बालक

के संरक्षण का भार किसको सौंपा जाए। अन्त में गुमान सिंह ने अपने सब सामन्तों की मौजूदगी में दस वर्ष के बालक उम्मेद सिंह के संरक्षण का भार जालिम सिंह को सौंपा। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

राजा गुमान सिंह के मर जाने के बाद सन् 1771 ईसवी में बालक उम्मेद सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। पुरानी प्रथा के अनुसार अभिषेक के दिनों में वह कैलवाड़ा के राजा के साथ युद्ध करने गया। उस युद्ध मे विजयी होकर उसने कैलवाड़ा अपने राज्य में मिला लिया। राज सिंहासन पर उम्मेद सिंह के बैठने के पश्चात् जालिम सिंह ने शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में लिया। वह दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। उसने कोटा राज्य में अपना आधिपत्य इस प्रकार आरम्भ किया कि जीवन के अन्तिम समय तक उसकी शक्तियाँ राज्य में कायम रहे।

राजा गुमान सिंह ने मरने के समय जालिम सिंह को राज्य की रक्षा का भार सौंपा था। उस समय राज्य के सभी सामन्त उपस्थित थे। लेकिन वे सभी जालिम सिंह से प्रसन्न न थे। इसलिए विरोधी सामन्तों को राजा गुमान सिंह का यह निर्णय अच्छा न मालूम हुआ। परन्तु उस समय उन लोगों ने किसी प्रकार का विरोध न किया। कोटा राज्य में जालिम सिंह का प्रभुत्व बढ़ता हुआ देखकर विरोधी सामन्त चिन्तित होकर उसके साथ ईर्ष्या करने लगे और आपस में उन लोगों ने जालिम सिंह के प्रभाव को निर्बल करने का निर्णय किया। जालिम सिंह कोटा राज्य का सेनापति था। लेकिन उसका सम्बन्ध युद्धों के साथ था। राज्य के शासन-विभाग के साथ उसका कोई सम्बन्ध न था। शासन-विभाग में राय अखैराम सबसे बड़ा अधिकारी था। शासन की नीति को वह भली प्रकार जानता था। जालिम सिंह के सेनापति होने के दिनों में अखैराम कोटा का प्रधानमन्त्री था। उसके शासनकाल में कोटा राज्य ने सभी प्रकार की उन्नति की थी।

आरम्भ में जालिम सिंह के विरोधियों की संख्या कम थी। लेकिन उसने राज्य में अपना अधिकार और आधिपत्य जितना ही बढ़ाया, उसके विरोधियों की संख्या कोटा राज्य में उतनी ही बढ़ती गयी। जालिम सिंह राज्य का सेनापति था। परन्तु वह शासन में भी अपना प्रभुत्व रखने लगा। राज्य के मन्त्रियों और सामन्तों को यह किसी प्रकार सहन न हुआ। उन लोगों ने विरोध करके इस बात को साफ-साफ कहना आरम्भ किया कि राजा गुमान सिंह ने जालिम सिंह को शासन में कोई अधिकार नहीं दिया था। जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, उनमें राजा गुमान सिंह का भतीजा स्वरूप सिंह और बाँकडोत का सामन्त भी था। इस सामन्त को पदच्युत करके जालिम सिंह को सेनापति का पद दिया गया था। बालक उम्मेद सिंह का धाभाई जसकर्ण भी जालिम सिंह का विरोधी था। वह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। इसलिए वह बालक उम्मेद सिंह के पास हमेशा रहा करता था।

जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, उनको जसकर्ण से बड़ी सहायता मिली। जालिम सिंह के विरुद्ध विरोधी सामन्तों ने कई बार षड़यन्त्र रचे। परन्तु राजनीतिज्ञ जालिम सिह ने उन विरोधियों को किसी प्रकार सफल नहीं होने दिया। जालिम सिंह की कूटनीति इस समय राज्य में पूरी तौर पर चल रही थी। स्वरूप सिंह उसका भीषण रूप से विरोधी हो रहा था। इसलिए जालिम सिंह ने उसको बदला देने का निश्चय किया। स्वरूप सिंह, धाभाई जसकर्ण

और बाँकडोत का सामन्त जालिम सिंह के प्रधान शत्रुओं में थे। इसलिए जालिम सिंह ने धाभाई को किसी प्रकार मिला लिया और उसके द्वारा जालिम सिंह ने स्वरूप सिंह को मरवा डाला।

स्वरूप सिंह के साथ धाभाई का कोई विरोध न था। लेकिन जालिम सिंह की कूटनीति धाभाई पर काम कर गयी। जालिम सिंह ने ही धाभाई को उकसाया, जिससे उसने स्वरूप सिंह पर आक्रमण करके उसको मार डाला। धाभाई जसकर्ण के इस अपराध की सभी ने निन्दा की और जिस जालिम सिंह ने उसको उकसाया था, वह भी उसके विरुद्ध हो गया। इस प्रकार की निन्दा से अपमानित होकर जसकर्ण कोटा राज्य से चला गया और जयपुर में उसकी मृत्यु हो गयी।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि राज्य में जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, स्वरूप सिंह और जसकर्ण उनमें प्रधान थे। इसलिए जालिम सिंह ने अपनी राजनीतिक चालों के द्वारा जसकर्ण को भड़का कर स्वरूप सिंह को मरवा डाला। उसने जसकर्ण से कहा था कि ''स्वरूप सिंह कोटा के राज्य सिंहासन का अधिकार प्राप्त करना चाहता है इसीलिए वह मेरा शत्रु वन गया है। वह किसी पडयन्त्र के द्वारा उम्मेद सिंह को मार कर सिंहासन पर वैठना चाहता है। यदि इसका कोई उपाय न किया गया तो उम्मेद सिंह का भविष्य निश्चित रूप से अंधकार में है।''

जसकर्ण ने जालिम सिंह की इन वातों का विश्वास कर लिया। उसने किसी प्रकार की खोज न की। वह उम्मेद सिंह के किसी शत्रु को जीवित नहीं देखना चाहता था। इसलिए उसने स्वरूप सिंह को मार डाला। जालिम सिंह को अपनी राजनीति में पूरी सफलता मिली। कोटा के जो सामन्त और धनिक लोग उसके विरोधी थे, वे सव एक दूसरे से मिले और उन्होंने इस प्रकार के अन्याय को देखकर कोटा से चले जाने का निर्णय किया। अपने निश्चय के अनुसार वे सभी लोग अपने-अपने नगरों और स्थानों से निकल गये और दूसरे राज्य में जाकर रहने लगे। राज्य से निकले हुए लोगों ने जाने के समय कहा कि हम लोग राज्य को छोड़कर जाते हैं। लेकिन जालिम सिंह के अन्याय और अत्याचारों का हम लोग जरूर वदला देंगे।

कोटा के भागे हुए सामन्त जयपुर और जोधपुर राज्य में जाकर रहने लगे और वहाँ के राजाओं से मिल कर जालिम सिंह के विरुद्ध प्रचार करने लगे। इन दिनों में मराठा लोगों के अत्याचार राजस्थान के राज्यों में लगातार वढ़ रहे थे। इसलिए जयपुर और जोधपुर मे जालिम सिंह के विरुद्ध कोई तैयारी न हो सकती थी। कोटा में जालिम सिंह को भागे हुए सामन्तों के पड़यन्त्रों का पता चल गया। इसलिए उसने जयपुर और जोधपुर के राजाओ के पास संदेश भेजा कि कोटा राज्य के विद्रोही सामन्तो को उनको अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहिए। इसका परिणाम यह निकला कि उन भागे हुए सामन्तों को जो आश्रय मिला था, उसमें वाधा पैदा हो गयी। मराठो के अत्याचारो के दिनो मे कोई भी राजपूत राजा आपस मे शत्रुता पैदा करना उचित नहीं समझता था।

इन परिस्थितियों मे जो सामन्त कोटा राज्य छोड़कर चले गये थे, उनको कोटा में आने के लिए फिर से विवश होना पड़ा ओर उन्होंने जालिम सिंह के पास संदेश भेजकर

प्रार्थना की कि हम लोगों को अपनी जन्मभूमि में लौट कर आने के लिए फिर से अधिकार दिया जाए। जालिम सिंह ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, जिससे वे लोग फिर कोटा राज्य में आ गये। लेकिन उनके चले जाने के बाद उनकी जो जागीरें राज्य में मिला ली गयी थीं, वे उनको नहीं दी गयीं। केवल जीवन निर्वाह के लिए उन लोगों को थोड़ी-थोड़ी भूमि दे दी गयी और वे जालिम सिंह की चालों से भयभीत होकर कोटा राज्य में रहने लगे।

इतना सब होने पर भी कोटा में जालिम सिंह के विरुद्ध एक छिपा हुआ विद्रोह चल रहा था और कुछ दिनों के बाद जालिम सिंह के विरुद्ध जो विद्रोह पैदा हुआ, वह पहले की अपेक्षा अधिक भयानक था। कोटा में जालिम सिंह के विरुद्ध जो सामन्त थे, आथून जागीर का सामन्त देवसिंह उन सबका प्रधान था। उसकी जागीर की आर्थिक आमदनी आठ हजार रुपये थी। देवसिंह ने जालिम सिंह के विरुद्ध एक नया विद्रोह पैदा किया। उसके अधिकार में एक मजबूत दुर्ग था, जिसको उसने स्वयं बनवाया था। उस दुर्ग में जालिम सिंह के विरोधी सामन्त आकर एकत्रित हुए और जालिम सिंह के विरुद्ध तैयारी करने लगे।

जालिम सिंह बड़ी सावधानी से कोटा में शासन कर रहा था। वह अत्यन्त दूरदर्शी था और उसके गुप्तचर चारों तरफ फैले हुए थे। जालिम सिंह को मालूम हो गया कि आथून के दुर्ग में विरोधी सामन्त एकत्रित होकर मेरे विरुद्ध तैयारी कर रहे हैं। इसलिए सचेत होकर उसने सोच डाला कि राज्य की सेना के द्वारा इन संगठित सामन्तों को पराजित करना कठिन है। इसलिए किसी दूसरे उपाय का आश्रय लेना चाहिए।

इन दिनों में दिल्ली के बादशाह का प्रभाव करीब-करीब बहुत क्षीण हो गया था। इसीलिए चारों तरफ अशान्ति और अराजकता बढ़ रही थी। मराठों का दल चारों तरफ लूटमार कर रहा था और उसने अनेक प्रकार के अत्याचार करके कितने ही राज्यों को बरबाद कर दिया था। जालिम सिंह ने मोसेज नामक एक सेनापति को बुलाया और उसको आथून के दुर्ग पर अधिकार करने एवम् विद्रोही सामन्तों का दमन करने का आदेश दिया। मोसेज अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और आथून के दुर्ग को जाकर उसने घेर लिया। उस दुर्ग में एकत्रित सामन्त तैयार होकर बाहर निकले और उन्होंने शत्रु पर आक्रमण किया। यह युद्ध कई महीने तक चलता रहा। किसी पक्ष की विजय न हुई।

आथून के दुर्ग में जो सामन्त एकत्रित थे, वे बड़े साहस के साथ युद्ध करके शत्रु से दुर्ग की रक्षा करते रहे। लेकिन कई महीनों के बाद उस दुर्ग में उनके खाने-पीने की जो सामग्री थी, वह सब खत्म हो गयी। इसलिए दुर्ग के सामन्तों के सामने भयानक संकटपूर्ण परिस्थिति पैदा हुई। इस दशा में उन सामन्तों ने सेनापति मोसेज से कुछ प्रार्थना की। उसने उस प्रार्थना को स्वीकार करके सामन्तों को सकुशल दुर्ग के बाहर चले जाने का अवसर दिया।

दुर्ग से निकलकर सामन्त कोटा राज्य को छोड़कर चले गये और उन्होंने दूसरे राज्यों में जाकर आश्रय लिया। जालिम सिंह ने इस समय जिस बुद्धिमानी से काम लिया था, उसमे उसको पूर्ण रूप से सफलता मिली और सामन्तो ने उसके विरुद्ध जो तैयारी की थी वह नष्ट हो गयी। उन सामन्तों के चले जाने पर, जो भूमि उनको दी गयी थी, वह फिर से राज्य में मिला ली गयी। विद्रोही दल के प्रधान देवसिंह ने भी दूसरे राज्य में जाकर आश्रय लिया था। वहाँ पर

उसकी मृत्यु हो गयी। इसके कई वर्षों के बाद देवसिंह का लड़का कोटा में जालिम सिंह के पास आया और उसने अपने आपको निरपराधी प्रमाणित करके आश्रय पाने की प्रार्थना की। जालिम सिंह ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और पन्द्रह हजार रुपये की वार्षिक आमदनी की जागीर बामोलिया उसे दे दी। कोटा राज्य में कुछ और सामन्त थे जो निम्न श्रेणी के थे और छिपे तौर पर जालिम सिंह के विरुद्ध विद्रोह मे शामिल थे, जालिम सिंह ने उनको क्षमा कर दिया और उन्हें राज्य में रहने की आज्ञा दे दी। परन्तु उनको इतना निर्बल बना कर रखा कि जिससे वे फिर कभी विद्रोह करने का साहस न कर सकें।

शत्रुओं के द्वारा जितने भी विद्रोही पैदा किये गये, जालिम सिंह से अपनी राजनीति के द्वारा उन सब को नष्ट कर दिया और कोटा राज्य के शासन को अपने अधिकार में रखा। उसने मेवाड़ के राज्य वंश की एक लड़की के साथ विवाह किया था। उस लड़की के माधव सिंह नामक एक लड़का पैदा हुआ। जालिम सिंह अनेक विपदाओ में रहने पर भी मेवाड़ की कठिनाइयो का ध्यान रखता रहा। उसने सन् 1791 ईसवी में मेवाड़ की जो सहायता की थी, उसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

जालिम सिंह के विरोधी जो सामन्त कोटा राज्य से चले गये थे, वे फिर जालिम सिंह के विरुद्ध तैयारी करने लगे। उन लोगो ने अब तब जितनी चेष्टायें की थीं, वे सब असफल हुई थीं। सम्वत् 1833 में आथून के सामन्त के नेतृत्व में जालिम सिंह के विरुद्ध जो तैयारी की गयी थी, उसमें असफलता मिलने के बाद बीस वर्ष तक जालिम सिंह के विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं किया गया। इसके बाद सन् 1800 में दस हजार रुपये वार्षिक की आमदनी वाले मोसेज के सामन्त बहादुर सिंह ने जालिम सिंह के विरुद्ध एक षड़यन्त्र रचा। परन्तु जालिम सिंह को उसकी सूचना मिल गयी। षड़यन्त्र के अनुसार सपरिवार जालिम सिंह को, उसके मित्रों और सलाहकार पंडित लाल जी को मार डालने के लिए एक योजना तैयार की गयी थी। उसमें निश्चित किया गया था कि जिस समय जालिम सिंह राज-दरबार में बैठा हो, एकाएक उस पर आक्रमण किया जाए और उसे मार डाला जाए। षड़यन्त्रकारियों की यह योजना जालिम सिंह पर प्रकट हो गयी। उसने पहरेदारों के स्थान पर राज्य की शक्तिशाली सुरक्षित सेना की नियुक्ति कर दी। षड़यन्त्रकारियों के दरबार मे आने पर उस सुरक्षित सेना के सवार सैनिकों ने एक साथ उन पर आक्रमण किया। उस आक्रमण मे बहुत से विरोधी मारे गये और एक बड़ी सख्या मे लोग कैद कर लिये गये। षड़यन्त्र का नेता बहादुर सिंह भागकर चम्बल नदी के किनारे पाटन नामक स्थान पर चला गया और हाड़ा वंश के कुल देवता केशव राय के मन्दिर में पहुँच कर उसने आश्रय लिया। उसका विश्वास था कि बूँदी राज्य के इस मन्दिर मे आकर कोई मुझ पर आक्रमण नहीं करेगा। परन्तु जालिम सिंह के सैनिकों ने उस मन्दिर को घेर लिया और उसको कैद करके मार डाला।

राजस्थान के प्राचीन ग्रन्थों से यह भी-मालूम होता है कि उम्मेद सिंह के हितो की रक्षा करने के लिए बहादुर सिंह मारा गया था क्योकि उसके षड़यन्त्र की योजना का उद्देश्य यह था कि उम्मेद सिंह को सिंहासन से उतारकर उसके छोटे भाई को उस पर बिठाया जाए। यह बात कहाँ तक सही है, इसको निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है कि

षड़यन्त्रकारियों ने सोचा हो कि जालिम सिंह ने उम्मेद सिंह को अपने हाथ की कठपुतली बना रखा है इसलिए उसको सिंहासन से उतार दिया जाए। इस प्रकार का अनुमान किया जा सकता है। इन दिनों में कोटा राजवंश का राजसिंह जो उम्मेद सिंह का चाचा था। अपने दोनों भाइयों गोवर्द्धन सिंह और गोपाल सिंह के साथ जीवित था। आथून में सामन्त के विद्रोह के दिनो में गोवर्द्धन सिंह और गोपाल सिंह दोनों विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे। इसलिए जालिम सिंह ने उन दोनों भाइयों को कैद करवा लिया। दस वर्ष तक कारागार में रह कर गोवर्द्धन की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका छोटा भाई गोपाल सिंह भी बहुत दिनों तक कैदी की दशा में रहने के बाद मर गया। उम्मेद सिंह का चाचा राजसिंह वृद्ध हो गया था। वह बहुत दिनों तक जीवित रहा। लेकिन किसी षड्यन्त्र में वह शामिल न होकर एक मन्दिर में रहता था।

सब मिला कर अठारह बार जालिम सिंह के विरुद्ध षड़यन्त्र किये गये। परन्तु विरोधियों को एक बार भी सफलता न मिली। अन्त में राजमहल की स्त्रियों ने जालिम सिंह को मार डालने की एक योजना बनाई, उसमें वह भयानक रूप से फँस गया था। यदि राजमहल की एक स्त्री साहस करके उसको बचाने की चेष्टा न करती तो जालिम सिंह क सामने किस प्रकार का संकट उपस्थित होता, यह नहीं कहा जा सकता। राजमहल की स्त्रियों ने उसको कैद करने अथवा मार डालने का प्रयत्न किया। वह राजमहल में बुलाया गया। उसके महल में पहुँचते ही बहुत-सी राजपूत स्त्रियों ने अपने हाथों में तलवारें लेकर उस पर आक्रमण किया। जालिम सिंह महल के भीतर यह दृश्य देखकर घबरा उठा। उसको उस प्रकार के संकट की कोई आशंका न थी। आक्रमणकारी महिलाओं ने उसको कैद कर लिया। इस समय अपनी मुक्ति के सम्बन्ध में कोई उपाय उसकी समझ में न आया।

जालिम सिंह को कैद करके राजपूत स्त्रियों ने उससे प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिये। जालिम सिंह ने कोटा राज्य में सेनापति का पद पाकर और बालक उम्मेद सिंह का संरक्षक बनने के बाद जो कुछ भी किया था, उन स्त्रियों ने एक-एक घटना पर अलग-अलग प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। उन स्त्रियों ने इन्हीं प्रश्नों के बीच उसे मार डालने के लिए पूरी तोर पर इरादा कर लिया था। लेकिन इसी अवसर पर राजमहल की एक राजपूत स्त्री ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ जालिम सिंह का पक्ष लिया। हाड़ा वंश के इतिहास में लिखा हुआ उल्लेख इस बात को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि जालिम सिंह एक सुन्दर राजपूत था और जिस स्त्री ने उसका पक्ष लिया वह बहुत दिनों से उसके साथ प्रेम करती थी। उस स्त्री के बिगड़ने और उसके द्वारा सहायता करने के कारण जालिम सिंह किसी प्रकार महल से निकलकर अपने प्राणों की रक्षा कर सका।

इस प्रकार जालिम सिंह के विरुद्ध जितने भी षड़यन्त्र शुरू किये गये, उनमें एक भी सफल नहीं हुआ। जालिम सिंह में अनेक ऐसे गुण थे, जिनके कारण अपने विरोधियों के बीच में रहकर भी वह सुरक्षित बना रहा। उसका एक गुण प्रधान यह था कि वह अपने विरोधियों से बदला लेने की बात अधिक नहीं सोचता था और प्रार्थना करने पर वह विद्रोहियों को भी क्षमा कर देता था। वह रात में एक लोहे के मजबूत कटहरे में सोया करता था ओर प्राय: निर्भीक रहता था। साथ ही वह इतनी सावधानी से काम लेता था जिससे कोई विद्रोही उसके जीवन को

क्षति न पहुँचा सके। उसने अपने अधिकार में जितने भी लोगों को रखा था उन सभी कर्मचारियों को-साधारण पहरेदारों से लेकर सेना के सैनिकों और अधिकारियों तक सभी को-समय पर वेतन देता था और उनकी कर्त्तव्य परायणता के लिए प्रायः उनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया करता था। इसलिए राजकर्मचारी उसके साथ सहानुभूति रखते थे। इन सब गुणो के साथ-साथ जालिम सिंह प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। इसलिए इस प्रकार के विरोधों, उपद्रवों और विद्रोहों के होने पर भी उसने कोटा-राज्य में बराबर शासन किया। उसके विरोधी कभी उसका कुछ बिगाड़ न सके।

☐

अध्याय-66
जालिमसिंह का प्रभाव व किसानों की दशा

कोटा राज्य में दूसरी वार सेनापति होने के वाद किस प्रकार शासन में अपना आधिपत्य कायम करके जालिम सिंह ने अपना प्रभुत्व वढ़ाया और राज्य के कितने ही सामन्तों के विद्रोही होने तथा उनके अनेक बार षड्यन्त्र करने पर भी किन उपायों से उसने अपने प्रभाव को राज्य में सुरक्षित रखा, इसका विस्तार के साथ वर्णन पिछले परिच्छेद में किया जा चुका है। इसमें संदेह नहीं कि जालिम सिंह राजनीति में कुशल, शासन में निपुण और मौके का लाभ उठाने में पण्डित था। सम्वत् 1887 में उसने मेवाड़ के राणा के साथ कुछ दिन रहकर अपनी योग्यता का परिचय दिया था और फिर वहाँ से आकर कोटा में दूसरी बार सेनापति होकर अपने प्रताप का विस्तार किया। उसकी राज्य में जितनी ही शक्तियाँ बढ़ी थीं, राज्य के किसानों और व्यवसायियों को उतनी ही क्षति पहुँची थी। सम्वत् 1840 में उसका शासन किसानों और व्यवसायियों के लिए अत्याचार पूर्ण साबित हो चुका था। उसने प्रजा पर कर का इतना भारी वोझ लाद रखा था कि उससे राज्य की शान्ति संकट में पड़ गयी। किसान भूमि का कर अदा करने के लिए अपने आपको बहुत असमर्थ समझते थे।

शासन की अयोग्यता और कठोरता के दिनों में राज कर्मचारी प्रजा के लिए राक्षस वन जाते हैं। जालिम सिंह के शासन काल में कोटा राज्य की भी यही अवस्था हो गयी थी। जालिम सिंह का शासन जितना अधिक कठोर था, राज कर्मचारियों का व्यवहार उतना ही अधिक भयानक था। किसानों के साथ उनके व्यवहार अमानुषिक हो गये थे। इस प्रकार के अत्याचार के दिनों में कोटा राज्य के किसान भयानक दुर्दशा का जीवन बिताने लगे थे। उनमें से बहुत से अपनी जन्मभूमि को छोड़कर भाग गये। न जाने कितने भाग जाने के लिए रोजाना सोचा करते थे। जालिम सिंह के राज कर्मचारी सहज ही किसानों के वैलों और पशुओं को छीनकर ले जाते थे। इस दशा में बहुत बड़ी संख्या में किसान खेती न कर पाते थे और वे अपने पूर्वजों के कार्य को छोड़कर नौकरी करने के लिए विवश हो जाते थे। वहुत से किसानों ने दूसरों के यहाँ नौकर होकर खेती का काम आरम्भ कर दिया था। राज्य की इस दुरवस्था में बहुत सी भूमि बिना खेती किये ही पड़ी रह जाती थी। उस पर जालिम सिंह राज्य की तरफ से खेती कराने का प्रयत्न करता था। जहाँ उसने एक तरफ राज कर्मचारियों को अनेक प्रकार के सुभीते देकर सन्तुष्ट कर रखा था, वहाँ उसने राज्य के दीनों, दरिद्रों, किसानों और व्यवसायियों को गरीवी की भीषण परिस्थितियों में पहुँचा दिया था।

जालिम सिंह ने मेवाड़ राज्य में भी अपना आधिपत्य कायम करने के लिए वड़ी चेष्टायें कीं। परन्तु एक घटना के कारण उसकी योजना को गम्भीर आघात पहुँचा। मराठा

सेनापति इंगले के परिवार के साथ जालिम सिंह ने अपनी घनिष्ठ मित्रता पैदा कर ली थी। इसी इंगले वंश का बालाराव मेवाड़ के द्वारा कैद करके उदयपुर के कारागार मे रखा गया था। जालिम सिंह बालाराव को कैद से छुड़ाने के लिए उदयपुर गया। उसके फलस्वरूप जालिम सिंह के प्रति राणा के व्यवहारो में बहुत अन्तर पड़ गया और जालिम सिंह ने मेवाड़ राज्य के सम्बन्ध में जो कुछ सोच रखा था, उसकी सफलता में भयानक आघात पहुँचा। जालिम सिंह ऐसे अवसरों पर बड़ी राजनीति से काम लेता था। उसने मेवाड़ राज्य में अपनी असफलता को देखकर एक दूसरी योजना को जन्म दिया।

सन् 1800 तक जालिम सिंह कोटा के दुर्ग के महल में रहा। परन्तु सन् 1803-4 ईसवी में बालाराव को कैद से छुड़ाने के बाद जब वह मेवाड़ से लौटकर आया तो कोटा के दुर्ग के महल को छोड़कर अन्यत्र अपने रहने का इरादा किया। उन दिनों में अंग्रेजी सेना ने राजपूतों के साथ संगठित होकर मराठों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया था और उनके अधिकार से बहुत-से नगरो तथा ग्रामो को अंग्रेजी सेना ने छीन लिया था। इसके फलस्वरूप मराठों की सेना कई टुकड़ो में बँट गयी थी और उसने राजस्थान के अरक्षित स्थानों पर लूटमार करके भयानक अत्याचार किए थे।

जालिम सिंह ने ऐसे अवसर पर बुद्धिमानी से काम लिया और उसने राजधानी के महल मे रहना छोड़कर उस स्थान पर रहने का निर्णय किया, जहॉ पर मराठे आक्रमण करके लूट-मार कर सकते थे। ऐसा करने में उसके दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य यह था कि वह किसानों की मालगुजारी के नियमों मे सुधार और परिवर्तन करना चाहता था, दूसरा उद्देश्य यह था कि वह ऐसे स्थान पर रहना चाहता था, जहाँ से किसी बाहरी आक्रमण को रोक सकने मे वह समर्थ हो सके। राजधानी के महल मे रहना छोड़ने मे जालिम सिंह के जो उद्देश्य ऊपर लिखे गये हैं, मैं उन पर अधिक विश्वास करता हूँ। लेकिन हाड़ा वंश के प्राचीन ग्रन्थों में कुछ दूसरी ही बात का उल्लेख किया गया है। उसमें बताया गया है कि एक दिन रात में महल के ऊपर बैठकर एक उल्लू कुछ देर तक बोलता रहा। जालिम सिंह ने रात मे उसकी बोली को सुना और सबेरा होने पर उसने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा। जालिम सिंह की बात को सुनकर उन लोगों ने उत्तर दिया : "इस महल में अब आप का रहना किसी प्रकार उचित नहीं है क्योकि इस महल में रहने से आप के अनिष्ट की सम्भावना बनी है।"

जालिम सिंह ने ज्योतिषियों के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुनकर राजधानी के महल में रहना छोड़ दिया। हाड़ा वंश के प्राचीन ग्रन्थों में जालिम सिंह के महल छोड़ने के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख किया गया है। परन्तु मैं इस प्रकार की बातों पर विश्वास नहीं करता।

जो कुछ भी हो, जालिम सिंह ने राजधानी के महल में रहना छोड़कर जब अपने राज्य के विभिन्न नगरों और स्थानों का भ्रमण किया तो उस राज्य की दुरवस्था का बहुत कुछ उसको ज्ञान हुआ। राज्य की इस अधोगति से वह पहले परिचित न था। राज कर्मचारियों और अधिकारियो ने उसको कभी इस प्रकार की बाते बतायी न थीं, जिनसे वह किसानों और दूसरे लोगों की दीनता और दरिद्रता को समझ सकता। उसने इस अवसर पर किसानों की अवस्था

को अपनी आँखों से देखा। उसने इस बात को अनुभव किया कि शासन में अयोग्यता और कठोरता के कारण राज्य की यह अवस्था हुई है। उसने भली प्रकार इस बात को समझ लिया कि राज्य के किसान अधिक संख्या में जीवन की भयानक विपदाओं का भोग कर रहे हैं। इसी के कारण किसानों से वसूल होने वाली मालगुजारी बहुत कम हो गयी है।

जालिम सिंह ने राजधानी छोड़ने और राज्य के छोटे-बड़े सभी स्थानों को देखने के बाद यह समझा कि राज्य के व्यवसायियों की दशा भी अच्छी नहीं है। उसने अभी तक प्रजा की पीड़ाओं को सुनने के लिए अपने कानों को बन्द कर रखा था, लेकिन अब उसे मालूम हो गया कि अगर राज्य की इस दुरवस्था में शीघ्र सुधार न हुआ तो भविष्य में किसी भी समय राज्य को संकटपूर्ण परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा। राज्य की अवस्था को सुधारने के लिए सबसे पहले कृपकों की दशा को सुधारने की आवश्यकता है। इस प्रकार का निर्णय करके जालिम सिंह ने गागरोन के दुर्ग के पास अपने रहने का निश्चय किया। राज्य के श्रेष्ठ पुरुपों और सामन्तों ने भी उसका अनुकरण किया और उन्होंने भी अपने नगरों को छोड़कर जालिम सिंह के साथ रहना आरम्भ किया। उस स्थान पर एक शामियाना लगाया गया। जालिम सिंह ने उसी में स्थायी रूप से रहना आरम्भ किया और उसी स्थान से राज्य का समस्त कार्य आरम्भ हुआ। राज्य मे वह स्थान छावनी के नाम से कहा जाता था।

दक्षिण की तरफ से कोटा राज्य में जाने के लिए जो रास्ते थे, यह मार्ग उनके बीच में था। दूसरी तरफ कोटा की अधीनता में भील जाति के लोग रहा करते थे। इस स्थान पर जालिम सिंह को एक सुभीता यह भी था कि वहाँ से शेरगढ़ और गागरोन के सुदृढ़ दुर्ग बहुत दूर न थे। जालिम सिंह ने युद्ध में काम आने वाली सामग्री और हथियारों को उन दुर्गों में रखकर सुरक्षित बना दिया था। इसके साथ-साथ उसने इस बात की पूरी चेष्टा की थी कि बाहरी कोई शक्ति आकर उन दुर्गों के भीतर प्रवेश न कर सके। उसने अपनी समस्त सेना को अंग्रेजी शिक्षा दी थी और इन दिनो में उसने लड़ाई के बहुत से अस्त्र-शस्त्र विदेशों से मंगवा लिये थे। उसने अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने में कोई उपाय बाकी नही रखा था। उसने इस बात का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया था कि राज्य में कोई बाहरी शक्ति सफलता प्राप्त न कर सके। इस प्रकार का प्रबन्ध वह राजधानी के महल में रहकर नहीं कर सकता था। इसलिए उसने राजधानी के बाहर अपने रहने के लिए स्थान चुना था।

जालिम सिंह को अभी तक अपने राज्य की भीतरी परिस्थितियों को समझने का अवसर नहीं मिला था। कोटा राज्य में अब तक प्राचीन काल के बने हुए नियमों का पालन होता था। लेकिन इन दिनों में उसने भली प्रकार समझ लिया कि प्राचीन काल के नियमों से अब काम न चलेगा। क्योंकि वे नियम राज्य की व्यवस्था करने में बहुत अन्याय पूर्ण थे। वे किसानों से नियम के विरुद्ध इतना अधिक कर वसूल कर लेते थे, जो किसी प्रकार न्यायपूर्ण नहीं था। उसके परिणामस्वरूप किसानो की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। इस प्रकार का अन्याय राज्य मे उन पटेलों के द्वारा होता था, जिनको राज्य की भूमि का प्रबन्ध करने के लिए पूर्ण रूप से अधिकारी बना दिया गया था। उन पटेलों ने राज्य के कृपकों के साथ बेईमानी करके अपने आप को सम्पत्तिशाली बनाने का काम किया था।

अपने नवीन स्थान में रहकर जालिम सिंह ने कृपकों की दशा को समझने का कार्य आरम्भ किया। उसने गुप्त रूप से सम्पूर्ण राज्य में इस वात का पता लगाया कि पटेलों ने किस प्रकार किसानों के साथ वेईमानी करके अत्याचार किया है। इसके सम्वन्ध में उसने वड़ी कठोरता के साथ खोज की और जव उसके अनुसन्धान का कार्य समाप्त हो गया तो उसने राज्य के समस्त पटेलों को अपने यहाँ वुलाया। उन लोगों के आने पर जालिम सिंह ने अपने ईमानदार कर्मचारियों के द्वारा एक चिट्ठा तैयार करवाया, जिसमें इस वात के विवरण लिखे गये कि किस पटेल के अधिकार में कितनी भूमि है और वह कितने किसानों से कर वसूल करता है। साथ ही इस वात का भी उल्लेख किया गया कि इन पटेलों में आर्थिक अवस्था किसकी कैसी है और प्रत्येक पटेल की वार्पिक आमदनी क्या है।

इस प्रकार अनुसन्धान का कार्य करके और राज्य का एक विस्तृत लेखा तैयार करके जालिम सिंह खेतों और कृपकों की अवस्था को देखने और समझने के लिए अपना निवास स्थान छोड़कर वाहर निकला। उस भ्रमण में उसने इस वात का भी एक लेखा तैयार करवाया कि राज्य में कहाँ और कितनी भूमि वर्पा पर निर्भर है और कितनी भूमि को नदियों का पानी मिलता है। इस लेखे में सभी प्रकार की भूमि को समझने की कोशिश की गयी और ईमानदारी के साथ इस वात का हिसाव तैयार किया गया कि राज्य की कितनी भूमि उपजाऊ, कम उपजाऊ और अनुपजाऊ है। जालिम सिंह ने इस वात का भी एक हिसाव तैयार करवाया कि पिछले कुछ वर्पों से किसानों से वसूल होने वाली मालगुजारी प्रति वर्प किस प्रकार रही है। किस किसान से कितना कर लिया जाना चाहिए था और कितना लिया गया है। इस प्रकार अनुसन्धान का कार्य समाप्त करके जालिम सिंह ने आदेश दिया कि अव किसानो से पैदा होने वाला अनाज न लेकर नकद रुपये लिये जाएंगे।

जालिम सिंह ने इस प्रकार भूमि का कर निश्चित करके कर वसूल करने वाले पटेलो के परिश्रम का निर्णय किया और आदेश दे दिया कि प्रत्येक पटेल को अपने अधिकार की भूमि पर डेढ़ आना प्रति वीघा के हिसाव से कर देना होगा। पटेलों से वसूल होने वाला यह कर किसानों के कर की अपेक्षा वहुत कम रखा गया। इसके साथ ही उसने इस वात का भी आदेश दिया कि निर्धारित कर की अपेक्षा यदि कोई पटेल किसी किसान से अधिक कर वसूल करेगा तो उसके अधिकार की समस्त भूमि उससे छीनकर राज्य में मिला ली जाएगी। इस व्यवस्था के अनुसार किसानों से पटेलों को कर वसूल करने का भार जो दिया गया, वह पाँच हजार से पन्द्रह हजार रुपये तक वार्पिक था। इस नयी व्यवस्था से राज्य के पटेल वहुत असन्तुष्ट हुये और उन्होंने राज्य में पुरानी व्यवस्था को लाने के लिए न केवल कोशिशें की, वल्कि दस हजार, वीस हजार, पचास-पचास हजार रुपये तक रिश्वत में दिये। इससे राज्य को काफी रुपये की आमदनी हुई और एक-एक वार में दस-दस लाख रुपये राज्य के खजाने में रखे गये।

कोटा राज्य की भूमि पर नयी व्यवस्था लागू हो जाने के बाद किसानों को वहुत सन्तोप मिला। उन्होंने विश्वास कर लिया कि हम लोगों पर अब तक पटेलों के अत्याचार होते थे, वे अब न हो सकेंगे। लेकिन इस प्रकार की व्यवस्था के बाद पटेलों ने जो लम्वी रिश्वतें दी

थीं, वे निष्फल नहीं गयीं। जालिम सिंह ने अपनी नयी व्यवस्था चालू करने के बाद इस बात का आदेश दिया कि वर्षा न होने के कारण अथवा और किसी सबब से यदि राज्य में अकाल पड़ जाएगा तो पहले की तरह फसल न होने पर भी किसानों को निर्धारित कर देने में कोई सुभीता न दिया जाएगा और उन्हें सम्पूर्ण राज्य कर अदा करना पड़ेगा। यदि कोई किसान उसकी अदायगी न करेगा तो उसकी भूमि लेकर पटेल किसी दूसरे को दे देने का पूरा अधिकारी होगा। अगर उस प्रकार की भूमि का कोई लेने वाला न होगा तो उसे राज्य की भूमि में मिला लिया जाएगा।

इस प्रकार जालिम सिंह ने कोटा राज्य की भूमि का नया प्रबन्ध किया। लेकिन भूमि का प्रबन्ध अब भी पटेलो के हाथ मे ही रखा गया और यह निश्चय किया गया कि जो पटेल किसानों के साथ ईमानदारी का व्यवहार करेंगे, राज्य की तरफ से उनको सम्मान दिया जाएगा। इस व्यवस्था के अनुसार पटेल ग्रामों के प्रतिनिधि और राज्य के कर्मचारी माने गये और उनको सम्मान में राज्य की तरफ से सोने के कंकण और पगड़ियॉ दी गयीं।

जालिम सिंह ने राज्य के ग्रामों की परिस्थितियों में सुधार करने के लिए अपने यहॉ एक समिति कायम की और उस समिति में ग्रामों के चुने हुए पटेलों को भी रखा। उस समिति को राज्य की व्यवस्था में अनेक प्रकार के अधिकार दिये गये और उनके द्वारा देहाती क्षेत्रों में शान्ति कायम करने की व्यवस्था की गई। उस समिति को यह भी अधिकार दिया गया कि राज्य की तरफ से व्यवस्था में कोई भी त्रुटि होने पर उसका विचार ओर निर्णय वह समिति कर सकती है। उसका निर्णय राजा के निकट फिर से विचारणीय होगा।

जालिम सिंह ने अपने राज्य में इस प्रकार की नयी व्यवस्था कायम करके न केवल अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया, बल्कि उसने राष्ट्रीय पंचायत कायम करके गज्य की व्यवस्था में प्रजा को जो अधिकार दिये, वे प्रत्येक अवस्था में प्रशंसनीय थे। उसकी इस व्यवस्था पर मैं बिना किसी संकोच के कहने के लिए तैयार हूॅ कि राज्य की इतनी सुन्दर व्यवस्था कोटा मे पहले कभी नहीं रही।

अपनी नयी व्यवस्था के अनुसार जालिम सिंह ने इस बात की पूरी कोशिश की कि पटेल लोग किसानों पर किसी प्रकार का अत्याचार न कर सके। इसमे कुछ दिनों तक उसे सफलता भी मिली लेकिन पटेलों को अधिक समय तक उसके द्वारा नियन्त्रण में नहीं रखा जा सका। जो पटेल व्यवस्था के बन्धन में आ गये थे, उन्होंने ऐसे उपायो की खोज की, जिससे वे वर्तमान व्यवस्था में भी मनमानी कर सकें। अन्त में उन्होंने अपने लिए एक रास्ता निकाल ही लिया। राजस्थान में बोहरा नामक वैश्यों की एक जाति रहा करती है, वे लोग किसानों को कर्ज में रुपये देते हैं और उनसे ब्याज वसूल करते हैं। राज्य के पटेलों ने उन बोहरा लोगों को अपने अधिकार में कर लिया।

राज्य के किसान आवश्यकता पड़ने पर बोहरा लोगों से ऋण मे रुपये लेते थे और खेनो को बोने के समय अनाज भी लिया करते थे। खेतों का अनाज तैयार होने के पहले बोहरा लोग किसानो से किसी प्रकार का तकाजा नहीं करते थे। लेकिन अनाज तैयार होने पर सूद मिलाकर कुल रुपये किसान लोग अपने महाजन को अदा कर देते थे। इस प्रकार किसानों

और बोहरा महाजनों के बीच एक ऐसा व्यवहार प्राचीन काल से चला आ रहा था कि उससे उनके बीच में किसी प्रकार की कटुता न थी। महाजन किसानों पर ऋण देने के बाद भी किसी प्रकार का अत्याचार इसलिए नही करते थे कि फिर उनसे किसान लोग ऋण में रुपये न लेंगे और उनके ऐसा करने से उन महाजनों का व्यवसाय मारा जाएगा। कोई किसान अपने महाजन के साथ ऋण की अदायगी में किसी प्रकार की बेईमानी इसलिए न करता था कि उससे फिर कोई महाजन उसको ऋण मे रुपये न देगा। इसलिए उन महाजनों और किसानों के बीच बहुत प्राचीनकाल से सन्तोषजनक व्यवहार चला आ रहा था।

जालिम सिंह ने किसानों से निर्धारित कर के अतिरिक्त अधिक वसूल न करने के लिए पटेलों को सभी प्रकार विवश कर दिया। इस दशा में उन पटेलों ने किसानों को लूटने के लिए एक नया रास्ता निकाला और उन्होने बोहरा लोगों के व्यवसाय को नष्ट करके स्वयं महाजनों का कार्य आरम्भ किया। उन्होंने यह भी सोच डाला कि जालिम सिंह को हम लोगों पर अप्रसन्न होने का अवसर न मिले, इसलिए उन्होंने एक बीच के मार्ग का आश्रय लिया। किसान लोग अपने खेतो का अनाज तैयार हो जाने पर राज्य-कर की अदायगी किया करते थे। लेकिन अब पटेलों ने एक नया नियम यह बना दिया कि खेतों का अनाज तैयार होने के पहले ही किसानो को राजा की मालगुजारी अदा कर देनी चाहिए।

पटेलों का यह नियम किसानों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। इसलिए कि खेतों के अनाज को छोड़कर राज्य-कर अदा करने के लिए उनके पास दूसरा कोई साधन न था। इसलिए उनके सामने भयानक संकट पैदा हो गया। अपनी इस विपदा के समय ऋण में रुपये लाने के लिए किसान लोग बोहरा महाजनो के पास दौड़ने लगे। पटेलों ने महाजनों से कह दिया कि जब तक किसान लोग मालगुजारी का रुपया अदा न कर दे, वे लोग किसानों को ऋण में रुपये न दें। पटेलों के ऐसा कह देने के बाद उन महाजनों ने किसानों को रुपये देने से इन्कार कर दिया। इस दशा मे राज्य के किसान पटेलों की शरण में आने के लिए विवश हो गये। अब उनको राज्य मे कोई दूसरा स्थान दिखायी न पड़ा, जहाँ से वे रुपये लाकर राजा की मालगुजारी में पटेलों को देते। वे लोग न तो अपने खेतों का उत्पन्न अनाज किसी को बेच सकते थे और न कहीं से ऋण में रुपये ला सकते थे। इस भयंकर परिस्थिति में किसानों ने अपने खेतो का अनाज पटेलों के यहाँ लाकर रखना आरम्भ किया। क्योकि राज्य में मालगुजारी के रुपयों मे अनाज का लेना बन्द हो गया था और वे उनको रुपये देते थे। उस एकत्रित अनाज का भाव पटेलों पर निर्भर था, इसलिए कि दूसरा कोई अपने भाव में उस अनाज को खरीद नहीं सकता था। इसलिए मनमानी भाव लगाकर अनाज के रूपये का हिसाब करके पटेलों ने किसानों को रसीद दी और उनसे लिखा लिया कि राज्य-कर देने के लिए हमारे पास रुपये न थे और हमारे इस अनाज का कोई दूसरा लेने वाला न था, इसलिए अपनी इच्छा से हमने अपना अनाज अपने भाव से पटेल को दिया है और उससे रुपये लेकर हमने राज्य-कर अदा किया है।

पटेलों के किसानो से इस प्रकार लिखा लेने का अभिप्राय यह था कि जिससे जालिम सिंह को यह न मालूम हो कि पटेलों ने किसानो पर किसी प्रकार का अत्याचार किया है। इस

प्रकार नीति का आश्रय लेकर पटेल लोग किसानों से प्रति वर्ष वहुत-सा धन वसूल करके अपना घर भरने लगे। अपने इस उपाय का अवलम्बन करके कोटा के पटेल राजस्थान में अधिक सम्पत्तिशाली समझे जाने लगे।

पटेलों के इस व्यवहार के कारण राज्य के किसानों की अवस्था फिर शोचनीय हो गयी। पटेलों के इस अत्याचार का समाचार जालिम सिंह के कानों में पहुँचा। इसी वीच में पटेलों ने राज्य के खजाने को रुपयों से भर दिया और बहुत-से किसानों की भूमि लेकर जालिम सिंह के अधिकार में दे दी थी। इसलिए जालिम सिंह ने पटेलों के अत्याचारों पर वहुत दिनों तक सुनी-अनसुनी की। राज्य की यह अवस्था सन् 1811 ईसवी तक चलती रही। इसके वाद एकाएक जालिम सिंह ने राज्य के समस्त पटेलों को कैद करने का आदेश दिया। उनके कैद हो जाने पर पटेलों ने अन्याय करके जो वहुत-सा धन एकत्रित किया था, उनकी समस्त सम्पत्ति लेकर जालिम सिंह ने राज्य के खजाने में शामिल कर दी। उसके वाद उनके अपराधों का निर्णय करके उन पर लम्वे-लम्बे जुर्माने किये गये। उन पटेलों में केवल एक ने अपने पैदा किये हुए धन से सात लाख रुपये किसी दूसरे राज्य में भेज दिये। केवल इसी एक उदाहरण से अनुमान किया जा सकता है कि कोटा के पटेलों ने किसानों पर अन्याय करके कितना अधिक धन एकत्रित किया था और उनके अत्याचारों से वहाँ के किसानों का किस प्रकार सर्वनाश हुआ था।

जालिम सिंह ने जव देखा कि वर्तमान नयी व्यवस्था के कारण किसानों की अवस्था और भी अधिक शोचनीय हो गयी है, तो उसने अपने राज्य में फिर से प्राचीन व्यवस्था को लागू किया और नयी कायम की हुई व्यवस्था को उसने हमेशा के लिए खत्म कर दिया।

अध्याय-67
जालिम सिंह का प्रशासन

जालिम सिंह के शासनकाल में कोटा राज्य के किसानों की जो शोचनीय अवस्था हो गयी थी, उसका वर्णन पिछले परिच्छेद में किया जा चुका है। उसमें लिखा जा चुका है कि खेती की दुरवस्था को जानने और समझने के बाद जालिम सिंह ने राज्य के पुराने नियमों को हटाकर एक नयी व्यवस्था कायम की थी और उसके द्वारा राज्य के पटेलों को नियन्त्रण में लाकर उसने किसानों को सुभीता देने की चेष्टा की थी। परन्तु पटेलों की कूटनीति के कारण जालिम सिंह को अपनी नवीन व्यवस्था में सफलता न मिली और उसे अपनी कायम की हुई व्यवस्था को तोड़कर राज्य के नये नियमों का फिर से उसको आश्रय लेना पड़ा। यह सब पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है।

कोटा राज्य में नयी व्यवस्था चालू होने पर वहाँ के किसानों को इस बात का विश्वास हो गया था कि हम लोगों के साथ पटेलों के अन्याय न होंगे और हमारे जीवन की अधोगति शीघ्र ही दूर हो जाएगी। वहाँ के किसानों का उस समय ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। क्योंकि उनको इस बात का ज्ञान न था कि पटेल लोग अपनी कूटनीति से इस नयी व्यवस्था को पहले से भी भयानक कर देंगे। इसलिए उन्होंने पुराने नियमं के हटने पर अच्छे दिनों का सपना देखा था।

पटेलों को नियन्त्रण में लाकर जालिम सिंह ने जब नयी व्यवस्था चालू की तो कुछ दिनों तक खेती की दशा अच्छी रही और सम्पूर्ण राज्य में लहराती हुई खेती को देखकर कोई भी बाहर का मनुष्य कोटा राज्य के किसानों की अच्छी दशा का अनुमान लगा सकता था। लेकिन एक बाहरी आदमी को इस बात का कैसे ज्ञान होता कि इन लहराते हुए हरे-भरे खेतों की समस्त पैदावार भूमि का प्रबन्ध करने वाले पटेलों के घरों में चली जाएगी और उसका कुछ भाग रुपयों के रूप में राज्य के खजाने में जमा हो जाएगा।

अपनी व्यवस्था में असफल होने पर जालिम सिंह ने राज्य के पुराने नियमों का फिर से आश्रय लिया था। वह पटेलों को नियन्त्रण में न रख सका था। किसी औषधि के काम न करने पर जालिम सिंह को शान्त हो जाना पड़ा। राज्य के पटेल फिर से अनियन्त्रित होकर भूमि का प्रबन्ध करने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि राज्य के किसानों की दशा लगातार बिगड़ती गयी। वे इस योग्य न रह गये कि वे खेती करके राज्य का कर अदा कर सकते और अपने परिवार को जीवित भी रख सकते। इस दशा में निराश होकर किसानों ने खेती का काम छोड़ना आरम्भ किया और वे वेतन लेकर किसी प्रकार अपना काम चलाने की कोशिश करने लगे। पटेलों ने ऐसे किसानों की भूमि को लेकर जालिम सिंह के अधिकार में दे दिया और जालिम सिंह उन सभी खेतों में स्वयं खेती कराने लगा।

सन् 1784 ईसवी में जालिम सिंह के उसकी निजी भूमि पर लगभग तीन सौ हल चलते थे परन्तु इसके कुछ ही वर्षो के वाद उसके हलो की संख्या आठ सौ तक पहुँच गयी। जालिम सिंह ने पुराने नियमों को तोड़कर और नयी व्यवस्था चालू करके किसानों से राज्य-कर में अनाज के स्थान पर रुपये लेना आरम्भ किया, उस समय उसके हलों की संख्या पहले से दुगुनी होकर एक हजार छः सो तक पहुँच गयी थी। सन् 1821 ईसवी में जालिम सिंह की अपनी भूमि पर चार हजार हल चलते थे और उनमे सोलह हजार वेल काम करते थे। जालिमसिंह के वंश के लोगों के अधिकार में कितनी भूमि थी ओर उसमें कितने हल चलते थे, उनकी संख्या जालिम सिंह के हलों की संख्या से विलकुल अलग थी।

जालिम सिंह ने कोटा राज्य में खेती के द्वारा अपरिमित सम्पत्ति पैदा की थी। वह अपनी इस सम्पत्ति के द्वारा राजस्थान के राजाओ में सबसे अधिक सम्पत्तिशाली समझा जाता था। लेकिन उसकी इस उन्नति ने कोटा राज्य के किसानों और दूसरे लोगों को न केवल निर्धन, वल्कि भिखारी वना दिया। अपनी भीषण दरिद्रता के कारण राज्य में अगणित कृषकों ने खेती का काम बन्द करके नौकरियों का आश्रय लिया था। इस प्रकार जो भूमि किसानों से छूटती जाती थी, उस पर जालिम सिंह का अधिकार होता जाता था।

जालिम सिंह ने राज्य की लगभग सम्पूर्ण अच्छी भूमि पर अधिकार कर लिया था ओर उसमें उसकी खेती होने लगी थी। उसकी इस नीति से कोटा का राज्य पक्ष जितना ही सम्पन्न और सम्पत्तिशाली वन गया था, दूसरे पक्ष में सभी प्रकार की प्रजा से लेकर किसानो तक-सभी लोग भयानक दरिद्र हो गये। इसके फलस्वरूप राज्य की प्रजा भीषण कठिनाइयों का सामना कर रही थी।

कोटा के किसानों को अपनी जन्मभूमि से प्रेम था। इसलिए गरीवी ओर कठिनाई में रहकर भी उन्होंने अपने राज्य को नहीं छोडा। यह वात जरूर है कि जालिम सिंह के कठोर शासन के कारण प्रजा के वहुत-से लोग राज्य छोड़कर चले गये थे। परन्तु राजस्थान के अनेक राज्यो में मराठों की लूट-मार उन दिनों में हो रही थी। इसलिए जो लोग कोटा राज्य से भागकर गये थे, वे लोग कहीं आश्रय न पा सके और उन्हें फिर अपने राज्य में लौटकर आ जाना पड़ा।*

कोटा राज्य में भूमि की मिट्टी उपजाऊ और वहुत कड़ी हे। वह आसानी से टूटती नहीं हे। इसलिए जालिम सिंह ने कोकण राज्य की तरह अपने यहाँ भी दो हलों को एक साथ प्रयोग में लाने के लिए प्रवन्ध कर दिया था और उन हलों में जो वैल जोते जाते थे, वे उत्तम श्रेणी के थे। जालिम सिंह ने अपनी खेती के लिए अच्छे वैलों के रखने का प्रवन्ध किया था और वे वैल झालरापाटन के मेले में खरीदे गये थे। मारवाड़ और मरुभूमि के दूसरे स्थानों मे

---

* बूँदी राज्य में किसानों का अपनी भूमि पर पैतृक अधिकार था। वहाँ पर किसानों के इस अधिकार को नष्ट नहीं किया जा सकता था। अपने इस अधिकार के कारण वहाँ के किसान अपनी भूमि को बेच सकते थे और रेहन कर सकते थे। बूँदी राज्य में राज्य कर न वसूल हो सकने की दशा में भी किसानों की भूमि राजा ले नहीं सकता था और न उनको पैतृक अधिकारों से किसी प्रकार वञ्चित किया जा सकता था। किसान अपनी भूमि को अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे किसान को दे देने का स्वयं अधिकारी था। किसी अपराध करने पर यदि बूँदी राज्य का कोई किसान राज्य से निकाल दिया जाता था तो भी उसकी भूमि पर उसका अधिकार कायम रहता था।

जो बैल शक्तिशाली समझे जाते थे, जालिम सिंह ने वहाँ से भी बैल खरीदकर मँगवाये थे। परन्तु कोटा की भूमि में वे उपयोगी साबित नहीं हुए, इसलिए वे बेच दिये गये।

कोटा राज्य की भूमि मे एक वर्ष मे दो बार खेती होती है और एक हल से सौ बीघा भूमि पर खेती की जा सकती है। इस प्रकार चार हजार हलो से एक बार मे चार लाख बीघा की खेती की जा सकती है और दोनो फसलों मे आठ लाख बीघा की खेती हो जाती है, जो अंग्रेजी हिसाब से तीन लाख एकड भूमि की होती है। जिस भूमि मे एक बीघा मे सात मन से कम गेहूँ और बाजरा पैदा होता है तो उस मिट्टी को अच्छा नहीं समझा जाता। इस हिसाब से प्रति बीघा चार मन की पैदावार मान ली जाये तो आठ लाख बीघा मे बत्तीस लाख मन गेहूँ और बाजरा पैदा हो सकता है। जालिम सिंह को केवल खेती की पैदावार से बत्तीस लाख रुपये से कम की आमदनी नही होती थी। इस खेती के कार्य में जालिम सिंह को जो खर्च करना पडता था, वह इस प्रकार है :

पशुओ के आहार और किसानो के वेतन आदि में	चार लाख रुपये
बीज खरीदने में	छः लाख रुपये
पशुओं को खरीदने में	अस्सी हजार रुपये
फुटकर खर्च	बीस हजार रुपये
	सब ग्यारह लाख रुपये

इस हिसाब से साफ प्रकट होता है कि जालिम सिह को खेती से जितनी आमदनी होती थी, खर्च उसका लगभग एक तिहाई होता था।

कोटा राज्य में अनाज रखने के लिए बहुत अच्छी व्यवस्था है। उसके लिए ऊँची जमीन पर खत्ती बनाई जाती है और उन खत्तियों मे नीचे घास और भूसा रखा जाता है और उसके ऊपर बहुत मोटी मिट्टी की तह लगाकर इस प्रकार मजबूत कर दिया जाता है कि अधिक से अधिक वर्षा के होने पर भी खत्तियो के अनाज को किसी प्रकार हानि न पहुँच सके। इस तरह वहाँ की खत्तियो मे जो अनाज रखा जाता है, वह कई-कई वर्षो के बाद भी खराब नहीं होता। जालिम सिंह अपने अधिकार मे बहुत-सा अनाज सुरक्षित रखता है और अकाल के पडने अथवा किसी प्रकार अनाज मँहगा होने पर उसका वह सुरक्षित अनाज बाहर निकाला जाता है और समय के अनुसार काफी मँहगा बेचा जाता है। अकाल अथवा किसी दूसरे कारण से फसल के खराब होने पर जालिम सिंह एक-एक वर्ष में साठ-साठ लाख मन तक अनाज बेचा करता है और उन दिनों मे उसकी ये सुरक्षित खत्तियाँ सोने की खानों के रूप में हो जाती हैं।

सन् 1804 ईसवी मे मराठा सेनापति होलकर ने भरतपुर राज्य और राजस्थान के दूसरे हिस्सो में भयानक रूप से लूट की थी। उसने आक्रमण से चारों तरफ की खेती बहुत-कुछ नष्ट हो गयी थी और एक अकाल-सा पडा था। उस समय कोटा-राज्य के अनाज से वहाँ के पीडित राज्यो को बडी सहायता मिली थी और जालिमसिह ने अपना सुरक्षित अनाज बेचकर एक करोड रुपये वसूल किये थे।

कोटा-राज्य के हिसाब के कागजों को देखकर मालूम हुआ कि यहाँ के राजा की प्रजा से कर में जो रुपये वार्षिक मिलते हैं, उनकी संख्या पच्चीस लाख रुपये तक है। जालिमसिंह ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि मेरी यह आमदनी उस भूमि से प्रति वर्ष होती हे, जिसे मैंने अपनी समझकर किसानों को दे रखी है।

सन् 1809 ईसवी में जालिम सिंह ने अपने राज्य में उस अनाज पर एक कर लगाया था, जो राज्य से बाहर जाता था। उस कर के कारण राज्य में बहुत अन्याय होने लगे थे। पहले यह कर बेचने वालों पर लगा था। लेकिन बाद में राज्य के कुछ लोगों के परामर्श से वह कर खरीदने वालों पर भी लागू कर दिया गया। केवल इस कर से वर्ष में जालिम सिंह को दस लाख रुपये की आमदनी होने लगी। यह कर एक ही अनाज के ऊपर चार-चार, पॉच-पॉच बार तक वसूल होता था। इसके कारण प्रजा की कठिनाइयॉ अधिक बढ़ गयीं और लोगों की गरीबी बढ़ने लगी। साधारण आदमियों से लेकर सामन्तों तक यह कर सभी को देना पड़ता था। इस कर के वसूल करने में राज्य के कर्मचारियों ने भयानक अत्याचार किये। इस कर को वसूल करने का कोई नियम न था। वसूल करने वाले अपनी इच्छा से उसे कम और अधिक कर देते थे और इसके विरुद्ध राज्य में कोई सुनवायी न थी। अंग्रेजों के साथ कोटा राज्य की सन्धि होने के दिनों मे इसके अत्याचार बहुत बढ़े हुए थे। कर वसूल करने वालों ने जालिम सिंह की आज्ञा के विरुद्ध लोगों के साथ इतना अधिक अत्याचार किया था कि वे जब चाहते थे, राज्य में इस कर को वसूल कर लेते थे। यह भी होता था कि जालिम सिंह के आदेश देने पर कर वसूल करने की कर्मचारी एक सूची तैयार कर लेते थे और उसके अनुसार गरीब ओर अमीर सभी से कर वसूल कर लिया जाता था। उस सूची को बनाने में किसी नियम का प्रयोग नहीं होता था। राज कर्मचारी जिस पर जितना चाहते थे, कर लगा देते थे और बड़ी कठोरता के साथ वह कर वसूल कर लिया जाता था। उस कर से कोई भी आदमी राज कर्मचारियों की इच्छा के बिना बच नहीं सकता था। उसमें शत्रु और मित्र का कोई भेद नहीं रहता था। जिस पर जो कर लगा दिया जाता था, उसको उतना कर देना पड़ता था। इस कर मे जालिम सिंह के एक पुराने मित्र पण्डित बेलाल को एक बार में पच्चीस लाख रुपये, एक सामन्त की अधीनता में रहने वाले किसी आदमी को पाँच हजार रुपये और किसी मन्त्री को भी पॉच हजार रुपये देने पड़े थे। राज्य के महाजनों में बहुतों को चार-चार और पाँच-पॉच हजार रुपये एक-एक बार मे देने पड़े थे। इस कर को वसूल करने में राज कर्मचारियों के द्वारा बहुत अत्याचार बढ़ गये और राज्य में भयानक अशान्ति पैदा हो गयी। प्रजा के असन्तोप पूर्ण चीत्कार करने से कोटा के राजा को बहुत दुःखी होना पड़ा और उसने जालिम सिंह के विरुद्ध बहुत-सी बातें सोच डालीं।

कोटा राज्य के साथ सन्धि करने के बाद अंग्रेजी सरकार ने राज्य के सभी लोगो के साथ एक सा व्यवहार करना आरम्भ किया। अंग्रेजों के इस व्यवहार का प्रभाव जालिम सिह पर भी पड़ा। उसके द्वारा जो अत्याचार राज्य में बढ़ रहे थे, वे लगातार इसीलिए कम होने लगे कि जालिम सिह को अंग्रेजी सरकार के अप्रसन्न होने का भय मालूम हुआ। इस दशा में जो कर अनाज की बिक्री पर लगाया गया था, वह बेचने वाले किसानो और खरीदने वालो पर ही एक निर्धारित नियम के साथ वसूल होने लगा और बाकी लोगों को उससे मुक्ति मिल गयीं। इस दशा मे भी उस कर से राज्य को पॉच लाख रुपये वार्षिक वसूल होने लगे थे।

राज्य की समस्त भूमि से जालिम सिंह को वार्षिक पचास लाख रुपये की आमदनी होती थी। इसके अतिरिक्त जो भूमि उसके परिवार के लोगों के अधिकार मे थी, उससे पाँच लाख रुपये की आमदनी अलग से होती थी, जो उन्हीं लोगो के खर्च के काम में आती थी।

जालिम सिंह ने विविध साधनों से चालीस वर्ष के शासन में जिस प्रकार कोटा मे अपना आधिपत्य कायम किया था, उसको देखकर दूसरे देशों के लोग न जाने क्या अनुमान कर सकते हैं। एक नेत्र से हीन होकर अस्सी वर्ष की आयु में उसने शासन मे जो सफलता प्राप्त की, उसको देखकर कोई भी सहज ही उसकी प्रशंसा कर सकता है। उसने दूसरों के देखने मे कृषि के व्यवसाय मे अद्भुत सफलता पायी, व्यवसाय के क्षेत्र में उसने अत्याधिक सम्पत्ति एकत्रित की और प्रजा के ऊपर कर लगाकर उसने अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित करने में अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया। इन सभी वातों में कोई भी उसकी दूरदर्शिता की सराहना कर सकता है। परन्तु अपने इन गुणों में वह कहाँ तक प्रशसा का अधिकारी था, यह एक प्रश्न अलग से उसके सम्बन्ध में पैदा होता है, जो विचारणीय है।

इसमें सन्देह नहीं कि जालिम सिह ने कृषि के कार्य में, व्यावसायिक नीति मे और सम्पत्ति को एकत्रित करने में अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उसने इतना ही नहीं किया, बल्कि उसने कोटा राज्य में अपने शासन को सुदृढ बनाया। राज्य की रक्षा करने के लिए अपने अधिकार में उसने बीस हजार सैनिको की सेना रखी थी। उस सेना को उसने युद्ध की अच्छी शिक्षा दी थी। राज्य के दुर्गो मे ऐसी व्यवस्था कर दी थी, जिससे वे पहले की अपेक्षा बहुत काम के बन गये। उन दुर्गो में सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो के साथ बहुत-सी युद्ध सामग्री एकत्रित की थी। राज्य में कही पर कोई विरोधी कार्य न हो सके, इसके लिए उसने गुप्तचरों का अच्छा प्रबन्ध किया। राज्य मे अनाज के भावो पर वह नियन्त्रण रखता था और दूसरे राज्य के भावों को देखकर वह अपने यहाँ के भावों मे तुरन्त परिवर्तन कर देता था। जालिम सिंह ने राज्य के अनेक स्थानो पर बहुत से बाग लगवाये थे। उन बागो के फल राज्य के विभिन्न बाजारो में बिकने के लिए जाते थे।

जालिम सिंह ने कोटा के शासन में कुछ इस प्रकार की व्यवस्था की थी, जो न्यायपूर्ण होने पर भी लोगों को आश्चर्यजनक मालूम हो सकती हैं। भिक्षा माँगने वाले भिखारियों, साधुओं और सन्यासियों पर भी उसने कर लगाया था। जो विधवा स्त्री अपना दूसरा विवाह करना चाहती थी, उसको राज्य-कर मे बहुत सा धन देना पडता था। इस प्रकार जो उसने नये कर लगाये थे, उनमें कुछ का विरोध होने से उसने उनको वापस ले लिया था।

राजस्थान के प्रत्येक राज्य मे प्राचीनकाल से भाटो और कवियो का आदर होता आया है। विवाह जैसे कार्यो के अवसरो पर राज्य की तरफ से उनको बहुत सा धन दिया जाता है। इस प्रकार के धन को पाकर भाट और कवि लोग अपनी कविताओ के द्वारा दान देने वाले के यश का गान करते हे। इस प्रकार का प्रचार सम्पूर्ण राजस्थान मे अब तक पाया जाता है। लेकिन जालिम सिंह इन भाटो और कवियो की कविताओ मे प्रशसा को सुनकर प्रसन्न नहीं होता था। उनका कहना था कि इन कवियो की कविताओं मे एक भी सत्य नही होता, वे झूठी प्रशंसा के गीत गाया करते हे। उसकी इस बात का उत्तर देते हुए एक कवि ने कहा : "सत्य

का आदर बहुत कम होता है। कोई सत्य बात सुनना नहीं चाहता। यदि आप पसन्द करते हैं तो मैं आपको सुनाता हूँ।''

कवि ने यह कह कर जालिम सिंह से अपराध के लिए क्षमा की प्रार्थना की और उसने जालिम सिंह के चरित्र के सम्बन्ध में सत्य घटनाओं को लेकर कविता को सुनाना आरम्भ किया। उसे सुनकर जालिम सिंह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने कवि के अधिकार की समस्त पैतृक भूमि जब्त कर ली और उसके बाद उसने किसी भी कवि को अपने यहाँ आने से मना कर दिया।

राजस्थान के राजा हिन्दू धर्म के अनुसार ब्राह्मणों का अधिक सम्मान करते हैं और उनके अपराध करने पर भी उनको दण्ड देने का साहस नहीं करते। परन्तु जालिम सिंह के मनोभाव हिन्दू धर्म का समर्थन करने पर भी इससे भिन्न थे। उसने अपराध करने पर ब्राह्मणों के साथ कभी दया नहीं की। उसके राज्य में जब कोई ब्राह्मण राजनीतिक अपराध करता था, तो जालिम सिंह दूसरे लोगों की तरह उसको भी दण्ड देता था।

जालिम सिंह कोटा का राजा नहीं था। लेकिन राजा गुमानसिंह के मरने पर और उसके बालक उम्मेदसिंह के सिंहासन का अधिकारी होने पर जालिम सिंह-जो पहले उस राज्य का सेनापति था-बालक उम्मेदसिंह का संरक्षक बना दिया गया था। इस प्रकार वह राजा का एक प्रतिनिधि था। राजा गुमान सिंह के अन्तिम दिनो में कोटा राज्य की सीमा बहुत सीमित थी लेकिन जालिम सिह ने कितने ही नगरों ओर ग्रामों को मिलाकर उस राज्य की सीमा का विस्तार कर लिया था। एक प्रतिनिधि की हैसियत से जब उसने कोटा का शासन पाया, उस समय राज्य का खजाना सम्पत्ति से बिल्कुल खाली था और राज्य पर बाईस लाख रुपये ऋण था। उन दिनों में राज्य के दुर्ग टूटे-फूटे थे ओर राज्य की सेना बहुत निर्बल थी। जालिम सिंह ने बहुत-सा धन खर्च करके बहुत-से टूटे-फूटे दुर्गो की मरम्मत करायी ओर उनमें आवश्यकता के अनुसार युद्ध के अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किये राज्य की चार हजार अश्वारोही सेना के स्थान पर बीस हजार सैनिकों की सेना कर दी और इतनी विशाल सेना को युद्ध की अच्छी शिक्षा दी। उसने अपने अधिकार मे एक सौ तोपें रखीं। राज्य के सामन्तों की अधीनता में जो सेनायें थीं, वे उसकी सेना के अतिरिक्त थीं।

इतना सब होने पर भी कोटा राज्य का शासन क्या प्रशंसनीय कहा जा सकता हे? राजा गुमान सिंह ने क्या यही करने के लिए जालिम सिंह को उम्मेद सिंह का सरक्षक और प्रतिनिधि बनाया था? बीस हजार सैनिकों की शक्तिशाली सेना रखकर क्या जालिम सिंह ने कोटा राज्य के हाड़ा राजपूतों की मर्यादा को बढ़ाया? क्या इसी को शासन कहते हैं? क्या इसी प्रकार का शासन राज्य की प्रजा में सुख और सन्तोप उत्पन्न करता हैं? संसार के उन्नत देश क्या इसी को राज्य की महानता कहेंगे? जालिम सिंह ने राज्य मे करो की भरमार करके क्या राज्य की प्रजा का कल्याण किया था? खेती के सम्बन्ध में उसकी नीति से किसानो की केमी अधोगति हो गयी थी। हम इस बात को मानते हैं कि कुछ समय के लिए जालिम सिंह की नीति ओर व्यवस्था कोटा राज्य के लिए आवश्यक कही जा सकती है। न केवल उसके मिले हुए अधिकारों की रक्षा करने के लिए बल्कि आक्रमणकारियो की लूटमार से राज्य की प्रजा

को सुरक्षित रखने के लिए। किसी अर्थ में हम इस बात को मानने के लिए भी तैयार हैं कि जालिम सिंह ने कोटा राज्य के हाड़ा राजपूतो के गौरव की रक्षा की थी। लेकिन जहाँ पर राज्य की प्रजा के सुख-सन्तोष का प्रश्न पैदा होता है, जालिम सिंह के शासन की किसी प्रकार प्रशंसा नहीं की जा सकती। उसने विभिन्न साधनो से व्यक्तिगत सम्पत्ति जितनी ही अधिक पैदा की थी, राज्य की प्रजा का जीवन उतना ही संकटमय बन गया था। वह राज्य के कर्मचारियो पर नियन्त्रण रखने में पूरी तौर पर असफल हुआ था, जो किसी प्रकार अच्छे शासन का प्रमाण नहीं देता। उसने सम्पत्ति से राज्य का खजाना भरा था, दुर्गो को सुदृढ़ बनाया था परन्तु उसकी इस व्यवस्था का राज्य की प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ा था, क्या यह विचारणीय नहीं है? अच्छा वेतन पाने वाली शिक्षित और शक्तिशाली सेना राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक थी, परन्तु दीन और दरिद्र प्रजा के असन्तुष्ट होने के कारण वह सेना आवश्यकता पड़ने पर राज्य की रक्षा करने में कहाँ तक सफल हो सकती थी, इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

अध्याय-68
झाला जालिमसिंह की राज्य व्यवस्था

जालिम सिंह के शासनकाल का जो वर्णन किया है, उसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-राज्य का वाहरी विभाग और भीतरी विभाग। अपने सुभीते के लिए मैंने उसके शासन के दो विभाग किये हैं।

कोटा राज्य भारतवर्ष के मध्य में बसा हुआ है। वहुत दिनों तक कोटा राज्य के आस-पास के राज्यों मे अनेक प्रकार के अत्याचार और विनाश होते रहे। आक्रमणकारियों ने उन राज्यों मे जाकर सभी प्रकार के अन्याय किये, उनको लूटा और उनका विध्वंश किया। कोटा राज्य की सम्पत्ति ने भी उन आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकर्षित किया और उन लुटेरों ने इस राज्य पर भी आक्रमण करने की तैयारियॉ कीं। परन्तु जालिम सिंह ने कोटा राज्य में इस प्रकार का शासन आरम्भ किया कि आधी शताब्दी तक लुटेरे मराठो को उसके राज्य की तरफ आगे बढ़ने का साहस न हुआ। यद्यपि इस दीर्घकाल में राजस्थान के लगभग सभी राज्य लूटे गये, उनका विनाश हुआ और अनेक प्रकार की विपदाओं का उनको सामना करना पड़ा। परन्तु कोटा का राज्य उस प्रकार के विनाश से वचा रहा। इसका कारण जालिम सिंह का शासन था, जिसको उसने अपनी पच्चीस वर्ष की अवस्था से आरम्भ किया था और वयासी वर्ष की आयु तक सफलतापूर्वक चलाया।

राजस्थान के सभी राजाओं के साथ जालिम सिंह के सम्बन्ध थे। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सवसे अपने सम्वन्ध जोड़ रखे थे। प्रत्येक राजा के दरबार में उसका एक प्रतिनिधि रहता था। अपने प्रतिनिधियों का चुनाव वह बड़ी बुद्धिमानी के साथ करता था। उसका जो प्रतिनिधि जिस राज्य में रहता था, वहॉ की परिस्थितियों से वह जालिम सिंह को सदा परिचित कराता रहता था। यह कई बार लिखा जा चुका है कि जालिम सिंह दूरदर्शी और राजनीति कुशल था। आवश्यकता पड़ने पर वह सभी प्रकार का व्यवहार कर लेता था और विरोधियो को भी एक बार अपना मित्र वना लेना वह खूब जानता था। उसने लुटेरे मराठों और पिण्डारी लोगों के सेनापतियों के साथ भी चाचा और भतीजे के सम्वन्ध बना रखे थे। किसी भी अवस्था में जालिम सिंह अपने उद्देश्य को सफल वनाने के लिए सभी प्रकार के दॉव-पेंच जानता था। उसकी सफलता का वहुत कुछ यही कारण था।

जालिम सिंह स्वभाव से कठोर और क्रोधी था। परन्तु समय और आवश्यकता के अनुसार वह अपने आपको सहज ही बदल देता था। वहुत स्वाभिमानी होने पर भी वह जरूरत के अनुसार विनम्र बन जाता था। वह प्रभावशाली पत्र लिखना और वातचीत करना भली-भॉति जानता था। उसमें यह गुण था कि वहुत विनम्र होने पर भी वह स्वाभिमान से काम लेता

था और स्वाभिमानी होने पर भी विनम्र हो जाना खूब जानता था। वह पूर्ण रूप से निर्भीक था। जो कुछ निर्णय करता था, निडर होकर उसके अनुसार काम करता था। सन् 1806 और 1807 ईसवी में तीन राजाओ में संघर्ष पैदा हुआ। तीनो की तरफ से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और उन तीनों ने जालिम सिंह से युद्ध के लिए सहायता माँगी। बुद्धिमान जालिम सिंह ने उन तीन में से एक की भी सहायता न की और तीनों को उसने अपनी तरफ से सन्तुष्ट रखा। उस अवसर पर उसकी यह सफलता उसके श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ होने का स्पष्ट प्रमाण देती है।

मराठा सेनापति होलकर पर आक्रमण करने के लिए जिस समय अंग्रेजी सेना को लेकर जनरल मानसन मध्य भारत की ओर रवाना हुआ, उस समय जालिम सिंह ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। वह अग्रेजो की शक्ति पर विश्वास करता था। इसलिए अंग्रेजी सेना के कोटा राज्य में आते ही उसने सभी प्रकार उसका स्वागत किया। परन्तु होलकर के साथ युद्ध करते हुए सेनापति मानसन के भागने पर जालिम सिंह ने परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बदल दिया। उस समय जब सेनापति मानसन ने कोटा राज्य से होकर निकल जाने के लिए उससे प्रार्थना की तो जालिम सिंह ने उसकी माँग को अस्वीकार करते हुए कहा : "इस राज्य में आप की सेना के प्रवेश करने से अराजकता पैदा हो जाने की पूरी सम्भावना है। इसलिए आप अपनी सेना को लेकर कोटा राज्य की सीमा से निकल जावें। मैं उस समय सभी प्रकार आपकी सेवा और सहायता करूँगा और मेरे ऐसा करने पर यदि आप का शत्रु इस राज्य पर आक्रमण करेगा तो मैं उसके साथ युद्ध करूँगा।"

सेनापति मानसन जालिम सिंह के इस उत्तर को पाकर कोटा राज्य से नहीं गया। वह बूँदी और जयपुर राज्य में से होकर निकला और सेनापति लेक के पास पहुँच कर होलकर से युद्ध में होने वाली पराजय उसने उसको बतायी। होलकर के साथ होने वाले युद्ध में राजस्थान के जिन राजाओ ने उसकी सहायता की थी, उसमे उसने अनेक परिवर्तन किये और अपनी मर्यादा को बनाये रखने के लिए उसने बहुत सी बातें घटा-बढ़ा कर कहीं। सेनापति मानसन ने जालिम सिंह पर भी अपराध लगाया और सेनापति लेक को समझाते हुए उसने कहा कि होलकर के साथ होने वाले युद्ध मे जालिम सिंह ने खुलकर हमारी सहायता नहीं की। जनरल मानसन ने सेनापति लेक से जालिम सिंह के सम्बन्ध मे यह बात बिल्कुल निराधार कही। वास्तव में जालिम् सिंह ने जनरल मानसन के प्राणों की रक्षा करने के लिए पूरी शक्ति लगा कर सहायता की थी। जालिम सिंह के आदेश के अनुसार ही कोइला के सामन्त लखन ने उस समय मराठो के साथ युद्ध किया था और अंग्रेजों की सहायता करते हुए वह युद्ध में मारा गया।

अंग्रेजी सेनापति मानसन की तरफ से कोइला के सामन्त ने मराठा होलकर के साथ जो युद्ध किया था, उसमे अपनी सेना के बहुत-से आदमियों के साथ वह सामन्त मारा गया और जालिम सिंह का सेनापति बख्शी कैद कर लिया गया। होलकर ने बख्शी से दस लाख रुपये का एक कागज लिखा लिया और यह कहकर उसे जालिम सिंह के पास भेजा कि अगर वह दस लाख रुपये जालिम सिंह से लाकर हमे दे देगा तो हम उसको छोड़ देंगे। लेकिन अगर ये रुपये जालिम सिंह ने न भेजे तो मैं कोटा राज्य पर आक्रमण करूँगा और सभी प्रकार राज्य का विनाश करूँगा।

सेनापति बख्शी ने जालिम सिंह के पास जाकर दस लाख रुपये देने की बात कही। उसको सुनकर जालिम सिंह ने बख्शी को होलकर के पास भेज दिया और दस लाख रुपये देने से साफ-साफ इनकार करके उसने कहला भेजा कि होलकर को जो कुछ करना हो करे।*

जालिम सिंह का उत्तर पाकर सेनापति होलकर अपने शिविर से रवाना हुआ और कोटा राज्य के पास जाकर आक्रमण करने के लिए मुकाम किया।

होलकर की सेना के आ जाने का समाचार जालिम सिंह ने सुना। उसने राजधानी की चारों ओर की दीवारों पर अपनी तोपें लगा देने का तुरन्त आदेश दिया। इसके बाद उसने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। कोटा राज्य के आस-पास पहाड़ी जातियों के जो लोग रहते थे, जालिम सिंह की आज्ञानुसार उन लोगों ने संगठित होकर होलकर की सेना पर आक्रमण करने और उसके शिविर में लूटमार करने की तैयारी की।

कोटा राज्य के समीप पहुँच कर और मुकाम कर सेनापति होलकर ने बख्शी का लिखा हुआ दस लाख रुपये का कागज जालिम सिंह के पास भेजा। जालिम सिंह ने उस रुपये की अदायगी से बिल्कुल इन्कार कर दिया। इस दशा मे दोनों ओर से युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। लेकिन होलकर की तरफ से उसकी सेना का एक अधिकारी इसके बाद भी युद्ध न होने की चेष्टा करता रहा। उसने जालिम सिंह के पास कहला भेजा कि जालिम सिंह और होलकर की भेंट से होने वाला संघर्ष मिट सकता है। जालिम सिंह होलकर का विश्वास नहीं करता था। इसलिए उसने उत्तर में कहला भेजा कि होलकर के साथ मेरी बातचीत चम्बल नदी के जल में नौका पर बैठ कर हो सकती है। होलकर ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनों तरफ से बातचीत की तैयारियाँ होने लगीं।

जालिम सिंह ने दो नावें तैयार करायीं और प्रत्येक में उसने बीस सशस्त्र सैनिकों को बिठाकर एक तीसरी नाव मे स्वयं बैठा और उसकी वे तीनों नावें चम्बल नदी के अगाध जल में तैरती हुई रवाना हुईं। होलकर भी अपने शरीर रक्षकों के साथ नावों पर चल कर चम्बल नदी मे जल के उस स्थान पर आकर पहुँच गया, जो दोनों तरफ से निश्चित किया गया था। नदी के जल में एक नाव के ऊपर कालीन बिछाया गया। उस कालीन पर जालिम सिंह और होलकर-दोनों बैठे। बातचीत आरम्भ हो गयी। उस समय होलकर ने जालिम सिंह को काका कहकर और जालिम सिंह ने होलकर को भतीजा कह कर बातचीत की। यद्यपि वह बातचीत शान्तिपूर्वक हो रही थी, परन्तु दोनो ओर के आये हुए रक्षक सैनिक अपनी नावों में बैठे हुए बड़ी सावधानी के साथ दोनों को देख रहे थे और जरा भी दोनों के बीच असन्तोष देखकर आक्रमण करने के लिए तैयार थे। लेकिन इस प्रकार का अवसर नहीं आया ओर जालिम सिंह ने होलकर को तीन लाख रुपये देकर होने वाले युद्ध को रोक दिया। वे रुपये लेकर होलकर अपनी सेना के साथ चला गया।

कोटा राज्य के शासन का भार अपने अधिकार में लेकर जालिम सिंह ने बड़ी बुद्धिमानी ओर सावधानी के साथ राज्य की परिस्थितियों पर ध्यान दिया। उसने पडौसी राज्यों

* जहाँ तक मुझे मालूम है, होलकर के द्वारा गिरफ्तार होने के बाद बख्शी ने अपमान अनुभव करके विष खा लिया और आत्म [illegible]त्या कर ली।

की तरफ कभी आँख उठा कर देखा भी नहीं था। कोटा राज्य के दक्षिण की तरफ होलकर और सिंधिया के अधिकार में कुछ नगर और ग्राम थे। वहाँ पर भी खेती होती थी। लेकिन जालिम सिंह ने अपने राज्य की खेती मे अधिक उन्नति की थी। अंग्रेजी सेना ने होलकर ओर सिन्धिया के साथ युद्ध करके दोनों को पराजित किया और अंग्रेज सेनापति ने सिन्धिया के अधिकार का पाँच महल नाम का इलाका ओर होलकर के अधिकार का डिग पिडावा आदि चार जिले लेकर जालिम सिंह को दे दिये। इन दिनों में जालिम सिंह ने दोनो मराठा सेनापतियों से वहुत सावधान रहने की चेष्टा की। उसने होलकर और सिन्धिया के साथ अपने प्रतिनिधि रखे थे। जो वुद्धिमानी के साथ मराठों की नीति का अध्ययन करते रहते थे ओर जो कुछ समझते थे, उसकी सूचना गुप्त रूप से जालिम सिंह को देते थे। जालिम सिंह के दरवार में भी कई राजनीति कुशल मराठा ब्राह्मण थे, जालिम सिंह ने अपने कुशल व्यवहारों से उनको अपने अनुकूल वना लिया था। जालिम सिंह में एक अद्भुत क्षमता इस वात की थी कि वह जिसको जैसा समझता था, उसके साथ वह वैसा व्यवहार करता था। अपनी इस नीति के अनुसार उसने प्रसिद्ध अमीर खॉ के साथ मित्रता कायम कर ली थी और वे दोनों एक-दूसरे के सहायक वन गये थे। आवश्यकता के अनुसार जालिम सिंह अमीर खॉ को युद्ध के अस्त्र-शस्त्र और उसको वहुत सी सामग्री दिया करता था। उसने अमीर खॉ के रहने के लिए अपना शेरगढ़ नामक दुर्ग दे दिया था। इन सव वातों से कृतज्ञ होकर अमीर खॉ जालिम सिंह का शुभचिन्तक वन गया था।

पिण्डारी लोगों का दल उन दिनों में लूटमार के लिए प्रसिद्ध हो रहा था। लेकिन जालिम सिंह ने अपनी दूरदर्शिता के द्वारा उस दल के सरदारों को अपने अनुकूल वना लिया था। उनके सद्भाव को प्राप्त करने के लिए जालिम सिंह ने अपने राज्य में वहुत-सी भूमि पिण्डारी सरदारों को दे रखी थी। जालिम सिंह ने पिण्डारी सरदारो के साथ इतना ही नहीं किया था वल्कि 1807 ईसवी में पिण्डारियो के सरदार करीम खॉ को जव सिन्धिया ने कैद करके ग्वालियर के दुर्ग में वन्द कर दिया था, उस समय जालिम सिह ने करीम खाँ को कैद से छुड़ाने के लिए वहुत-सा धन दिया था और इस वात की जिम्मेदारी ली थी कि भविष्य में करीम खाँ कभी उसके विरुद्ध कोई कार्य न करेगा।

इस प्रकार जालिम सिंह ने दूसरे राज्यों के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करके वडी ख्याति प्राप्त की थी। मारवाड़ ओर मेवाड के अनेक सामन्तों ने कोटा राज्य में आकर आश्रय प्राप्त करने की कोशिश की थी। जालिम सिंह ने उन सामन्तों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया था और अपने राज्य मे रखकर उनको उसने ग्राम और नगर दिये थे। दूसरे राज्यो में जव कभी कोई आपसी संघर्ष पैदा होता था तो जालिम सिंह मध्यस्थ वनकर उस संघर्ष को मिटाने की पूरी चेष्टा करता था। अपने इन नेक कामों के द्वारा जालिम सिंह ने राजस्थान के राज्यों में वड़ी ख्याति पायी थी। उसके इस प्रकार के व्यवहारों को देखकर दूसरे राज्यों के लोग विपद के समय कोटा में आकर आश्रय पाने की पूरी आशा करते थे और ऐसे लोगो के आने पर जालिम सिंह उनकी सहायता किया करता था।

दूसरे राज्यों के प्रति जालिम सिंह के शासन की जो नीति थी, उसका वहुत-कुछ वर्णन हो चुका है। अव उसकी उस नीति पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, जिसका

प्रयोग उसने अपने राज्य के भीतरी मामलों में कर रखा था। राजा गुमानसिंह ने अपनी मृत्यु के समय जालिम सिंह को अपने बालक उम्मेद सिंह का संरक्षक बना दिया था। पिता के मरने के बाद बालक उम्मेद सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। वह नाम के लिए अपने राज्य का शासक था, लेकिन पूर्ण शासन जालिम सिंह के अधिकार में था। परन्तु जालिम सिंह ने कोटा का शासन करते हुए उम्मेद सिंह की कभी अवहेलना नहीं की। वह प्रत्येक अवसर पर उम्मेद सिंह के पास बैठकर परामर्श किया करता था। यद्यपि जालिम सिंह अपनी इच्छानुसार सब कुछ करता था, परन्तु आरम्भ से लेकर अन्त तक उम्मेद सिंह यहीं समझता रहा कि जालिम सिंह का प्रत्येक कार्य मेरा आदेश लेने के बाद होता है।

उम्मेद सिंह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। वह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। घोड़े पर सवारी करना वह खूब जानता था और प्राय: शिकार खेलने के लिए जाया करता था। जालिम सिंह ने अपने अच्छे व्यवहारों के द्वारा उम्मेद सिंह के साथ सदा इस प्रकार की राजभक्ति का प्रदर्शन किया, जिससे उसके विरुद्ध उम्मेद सिंह को कभी एक क्षण के लिए भी सोचने का अवसर न मिला, उम्मेद सिंह दस वर्ष की आयु में राजसिंहासन पर बैठा था। उसी समय से जालिम सिह ने उसके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करना आरम्भ किया था। उम्मेद सिंह की अवस्था जितनी ही बढ़ती गयी, उसके प्रति जालिम सिंह की श्रद्धा उतनी ही अधिक होती गयी। धर्म के प्रति उम्मेद सिंह का विश्वास इधर बहुत दिनों से अधिक हो गया था। इसलिए सांसारिक जीवन मे उसकी कुछ अरुचि हो गयी थी। इस दशा में भी जालिम सिंह उसका परामर्श लेकर राज्य का शासन करता था।

उम्मेद सिंह की मर्यादा को श्रेष्ठता देने में जालिम सिह कभी किसी प्रकार की भूल न करता था। किसी दूसरे देश के राजपूत के आने पर जालिम सिंह उसे उम्मेद सिंह के पास ले जाता था और जो समस्या होती थी, उसके निर्णय का भार वह उम्मेद सिंह पर ही रखता था। ऐसे अवसरों पर उम्मेद सिंह जालिम सिंह के परामर्श को महत्त्व देता था। किसी दूसरे राज्य के सामन्त के आने पर और कोटा राज्य में आश्रय मॉगने के प्रश्न पर जालिम सिंह उम्मेद सिंह से मिलकर ही निर्णय करता था। किसी दशा में जालिम सिंह वही करता था, जिसे उम्मेद सिंह पसन्द करता था। उम्मेद सिंह किसी भी व्यवस्था में वही निर्णय करता था, जिसके लिए जालिम सिंह का संकेत होता था। जालिम सिंह अपने व्यक्तिगत कार्यो में भी उम्मेद सिंह से सलाह लिया करता था ओर उसकी पसन्द के अनुसार ही काम करता था। जालिम सिंह के इस प्रकार के व्यवहारों के कारण उम्मेद सिंह के मनोभावों मे कभी असन्तोष नही पैदा हुआ। इसका परिणाम यहॉ तक हुआ था कि जालिम सिंह की बिना सलाह के उम्मेद सिंह राजमहल में कभी कोई नौकर न रखता था। एक दिन की घटना है, राज्य के किसी मैदान मे सेना के घोडे को युद्ध की शिक्षा दी जा रही थी। उस स्थान पर जालिम सिंह का इकलौता लडका माधव सिंह और उम्मेद सिह का लडका राजकुमार किशोर सिह मौजूद था। राजकुमार किशोर सिंह के साथ वहॉ पर माधव सिह ने कुछ ऐसा व्यवहार किया, जो किसी अर्थ में अप्रिय कहा जा सकता था। उसको जान कर जालिम सिंह ने अपने लडके माधव सिंह के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया और उसको अपने स्थान मे हटा कर नान्दता मे रहने के लिए भेज दिया।

जालिम सिंह ने अपने इन व्यवहारों के द्वारा उम्मेदसिंह के प्रति जिस राजभक्ति का परिचय दिया था, उसकी जितनी प्रशसा की जाए, वह भी थोड़ी समझी जाएगी।

जालिम सिंह के हृदय में राजभक्ति की बहुत ऊँची भावना थी, इसके प्रमाण में उसके जीवन की अनेक बातें जानने के योग्य हैं। किसी दिन जालिम सिंह अपने महल के मन्दिर में बैठा हुआ पूजा कर रहा था। कठोर जाड़े के दिन थे और जिस भूमि पर वह पूजा करने वैठा था, वह पानी से कुछ भीगी हुई थी। इसलिए जालिम सिंह ने एक रजाई अपने कन्धों पर डाल ली थी। उसकी उस पूजा के समय उम्मेदसिंह के छोटे लडके आ गये। उनको देखकर जालिम सिंह ने अपने कन्धों पर पड़ी हुई रजाई को जमीन पर बिछा दिया और उन राजकुमारों को उस पर बैठने के लिए कहा। राजकुमार उस पर वैठ गये और वे उस समय तक वहाँ बैठे रहे, जब तक जालिम सिंह पूजा करता रहा। उसकी पूजा समाप्त होने के वाद राजकुमार वहाँ से उठ कर चले गये। उनके चले जाने पर जालिम सिंह के एक नौकर ने सोचा कि हमारे स्वामी इस रजाई को अपने काम में न लावेगे, क्योंकि वह गीली जमीन पर विछायी जाने के कारण और राजकुमारों के बैठने से गन्दी हो गयी थी। यह सोच कर उस नौकर ने उस रजाई को महल के एक गन्दे कोने में फेंक देना चाहा। जालिम सिंह ने उसके मन के भाव को समझ लिया। उसने उसी समय नौकर के हाथ से उस रजाई को लेकर अपने शरीर पर डाल लिया और नौकर की तरफ देखकर उसने बड़ी श्रद्धा के साथ कहा : "राजकुमारों के चरणो को स्पर्श करके यह रजाई पवित्र हो गयी है।" उसका नौकर इस बात को सुनकर जालिम सिंह की तरफ देखता रह गया।

जालिम सिंह का व्यवहार सभी के साथ बहुत उत्तम श्रेणी का था। निजी कर्मचारियो से लेकर राज्य के कर्मचारियों तक सभी उससे प्रसन्न रहते थे। जालिम सिंह ने अपने व्यवहारो के द्वारा राज्य से लेकर बाहर तक सबको अपना बना लेने में आश्चर्यजनक सफलता पायी थी। सभी लोग उसको अपना मित्र समझते थे। यद्यपि अनेक अवसरों पर वह कर्मचारियों के साथ कठोर व्यवहार करता था। परन्तु अपनी सहानुभूति के आवरण को वह कभी नष्ट नहीं होने देता था। उसका इसी प्रकार का व्यवहार दूसरे राज्यों के लोगों के साथ भी था। इसीलिए छोटे से लेकर बड़े तक सभी उससे प्रसन्न रहते थे।

किसी कामकाज के समय, धार्मिक अनुष्ठान के समय, किसी उत्सव और विवाह के समय अथवा इस प्रकार के किसी भी दूसरे अवसर पर जालिम सिंह उन सभी लोगों को जी खोलकर पारितोषिक में रुपये देता था, परन्तु किसी के अन्याय और अपराध करने पर वह बहुत कठोर व्यवहार करता था। उसके राज्य मे एक बड़ी विशेपता यह थी कि उसके यहाँ पठान और मराठे सबसे अधिक विश्वासी माने जाते थे। इसीलिए उसने उन लोगो को अपने यहाँ अच्छे स्थानों पर कर्मचारी बना कर रखा था। पठानों को उसने सेना में ऊँचे पद दिये थे और मराठों को अपने यहाँ रखकर उसने राजनीतिक अधिकार सौंपे थे। वह अपने वश के आदमियों को राज्य में किसी अच्छे पद पर नियुक्त नहीं करता था। उसके शासन के अन्तिम दिनो मे शक्तावत वश का विशन सिंह कोटा राज्य मे सेनापति के पद पर था। इस एक उदाहरण को छोड़कर कोई दूसरा उदाहरण उसके राज्य में इस प्रकार का नही मिलता। दलेलखाँ और

महरावखाँ नाम के दो आदमी जालिम सिंह के अत्यन्त विश्वासी कर्मचारी थे। उनके साथ वह मित्रता का व्यवहार करता था। कोटा का विशाल दुर्ग भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, वह दलेलखाँ का बनवाया हुआ हैं। इसी दलेलखाँ ने झालरापाटन× नाम का एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। कोटा राज्य में जितने भी दुर्ग हैं उनमें सुधार और संशोधन का कार्य भी इसी दलेलखाँ के द्वारा हुआ था। जालिम सिंह दलेलखाँ का बहुत आदर करता था। वह दलेलखाँ के सम्बन्ध मे प्रायः कहा करता था : "दलेलखाँ के बाद मैं जीवित नहीं रह सकता।"

महाराव खाँ कोटा राज्य की पैदल सेना का सेनापति था। उसने अपनी इस सेना को अत्यन्त योग्य और शक्तिशाली बना दिया था* कोटा की पैदल सेना के सैनिकों को महीने में बीस दिनों का वेतन दिया जाता था। लेकिन दो वर्ष बीत जाने पर उनका बाकी वेतन भी दे दिया जाता था।

× जालिम सिंह झाला वंश का राजपूत था और झालरापाटन झाला वंशीय राजपूतो का नगर है।

* महराव खाँ जालिम सिंह की एक सेना का शूरवीर और विश्वासी सेनापति था। अंग्रेजों का पक्ष लेकर वह अपनी सेना के साथ मराठा सेनापति होलकर से युद्ध करने गया था और आठ दिनों में उसने हाड़ौती राज्य मे उन सब नगरो और ग्रामो पर अधिकार कर लिया था जो बहुत दिनो से होलकर के अधिकार में चले आ रहे थे। उसकी सेना ने सौंदी दुर्ग की लडाई मे अपनी वीरता का परिचय दिया था।

अध्याय-69
अंग्रेजी सरकार और कोटा-राज्य

अब हम कोटा राज्य के उस इतिहास में प्रवेश करते है, जब अंग्रेज सरकार और वहाँ के राजा में सन्धि हुई थी। सन् 1817 ईसवी में मारक्विस ऑफ हेस्टिंग्स ने पिण्डारी लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी और राजस्थान के राजाओं को सहयोग देने के लिए आमन्त्रित किया था। उस समय यह भी जाहिर कर दिया था कि जो राजा तटस्थ रहेंगे और उन लुटेरो तथा सर्वनाश करने वालों को परास्त करने मे हमारा साथ नही देगे, जिनसे वे स्वयं पीड़ित हैं तो वे हमारे विरोधी समझे जायेंगे। जो राजपूत राजा एक ऐसी शक्ति की प्रतिष्ठा करना चाहते है, जो लुटेरों के अत्याचारों को वन्द कर सके और जिनसे सभी को आवश्यकता पड़ने पर सहायता मिल सके, उनको राजस्थान के इस महान संघर्ष कार्य में सहयोग देने के लिए सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया जाता है। हमारी सहायता और रक्षा के मूल्य में उनको अपने राज्य की आमदनी का एक भाग देना पड़ेगा।

हेस्टिंग्स की इस प्रकार घोषणा होने पर दूरदर्शी जालिम सिंह ने समझ लिया कि अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग करना आवश्यक है। इसीलिए उसके प्रतिनिधि ने उसके साथ परामर्श करके अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग स्थापित किया और सबसे पहले उसने हमारे साथ मित्रता करना स्वीकार किया। इस सहयोग और मित्रता का सूत्रपात कोटा राज्य से हुआ और उसके बाद राजस्थान के सभी राजाओं ने उसे स्वीकार करके लुटेरों को सदा के लिए नष्ट कर देने का निश्चय किया। इसके सम्बन्ध में हाड़ौती की राज्य सीमा पर सबसे पहले संघर्ष होने की सम्भावना हुई। इसलिए जालिम सिंह के पास अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि का पहुँच जाना उस समय अनिवार्य हो गया। उस समय सिंधीया के दरबार मे असिस्टेन्ड रेजीडेन्ट था। लार्ड हेस्टिंग्स ने मुझे राज राणा जालिम सिंह के पास भेजा। 12 नवम्बर, सन् 1817 ईसवी को मैं ग्वालियर से रवाना हुआ और कोटा से पच्चीस मील दूर जालिम सिंह की छावनी रेवता में 23 नवम्बर को पहुँच कर मैंने युद्ध के लिए सभी प्रकार की तैयारी करवा दी, जिससे शत्रु के आक्रमण करने पर परास्त करके उसे भगाया जा सके।

मेरे कोटा पहुँचने पर पॉच दिनों के भीतर युद्ध की सभी तैयारियॉ इतनी तेजी के साथ हुई कि शत्रु के द्वारा आक्रमण हो सकने के प्रयत्न मार्ग पर सैनिक रोक लगा दी गयी। इसके बाद चार तोपो के साथ पन्द्रह सौ सैनिकों का एक दल सेनापति सर जॉन मालकम के पास पहुँचने के लिए रवाना हुआ। उसने इस छोटी-सी सेना के साथ नर्वदा नदी को पार किया और वह उत्तर की तरफ आगे बढ़ा।

इन दिनों में भारतवर्ष का प्रत्येक प्रान्त और जिला संघर्षमय हो रहा था औप गंगा के किनारे से लेकर समुद्र तक युद्ध की एक भयानक ऑधी दिखाई देती थी। राजपूत राजाओं के साथ अंग्रेजों के इस सहयोग और संगठन ने मराठो, पठानों और पिण्डारी लोगों में एक विजली पैदा कर दी थी। उन लोगों ने हमारे इस संगठन को तोड़ देने के लिये सबसे पहले हाडौती राज्य के आस-पास आक्रमण करने की तैयारियॉ की थीं। लेकिन उनको असफल बनाने के लिए मेरे परामर्श के अनुसार जालिम सिंह ने भी अपने यहॉ पूरा प्रवन्ध किया। वह अंग्रेजों पर पूरा विश्वास करता था और अंग्रेज अधिकारी भी उस सहयोग में जालिम सिंह को सबसे आगे समझते थे। जो लोग हमारे सहयोग की योजना पर संदेह करके विवाद करते थे, उनको उत्तर देते हुए मैं कह देता था: "महाराज, जो कुछ आप कहते है, मैं उस पर संदेह नहीं करता। वह दिन दूर नहीं जब समस्त भारतवर्ष में एक ही राजनीतिक शक्ति काम करेगी।"

सन् 1817-18 की यह बात हे, इन्हीं वर्षो मे ही इस भविष्यवाणी की सच्चाई का प्रमाण मिल गया। उस समय हमने यद्यपि समस्त भारतवर्ष को जीतकर अथवा सहयोग प्राप्त करके अपने अधिकार मे नहीं कर लिया था। लेकिन इतना जरूर हुआ कि उस समय जो कहा गया था, वह बहुत अंशो में सही निकला। प्लासी के युद्ध में विजयी होकर अंग्रेजों ने इस देश में एकाधिकार प्राप्त किया। अंग्रेजों ने अपनी उस सफलता के लिए राजपूत राजाओ की नीति साम, दाम, दण्ड और भेद को अपनाया। इस प्रकार देश की विरोधी शक्तियों को नष्ट कर दिया गया।

घोपणा के बाद सबसे पहले कोटा के जालिम सिंह ने अंग्रेजो के साथ मित्रता कायम की और उसके फलस्वरूप कोटा राज्य में आक्रमणकारी शत्रुओं के अत्याचारों का नाश हो गया। उसने हमारी नीति और घोपणा पर विश्वास किया, इसलिए हमने उसकी भीतरी और बाहरी-सभी कठिनाईयो में खुलकर उसका साथ दिया। राजस्थान मे ऐसा कोई राजा न था जो आक्रमणकारी लुटेरों के अत्याचारों से अनेक बार पीड़ित न हो चुका हो। इसलिए राजपूतों का सर्वनाश करने वाले अत्याचारी लुटेरो के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अग्रेजो ने प्रतिज्ञा कर ली थी। उसमें राजपूत राजाओं का साथ देना अनिवार्य रूप से आवश्यक था। उन्होंने वैसा किया भी। उनमें अधिक राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी जालिम सिंह था। सबसे पहले उसने उन शत्रुओं के विरुद्ध आवाज उठायी, जिन्होने समस्त राजस्थान का अनेक बार सर्वनाश किया था। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि जालिम सिंह के यहॉ कुछ मराठे ऊॅचे पदो पर काम करते थे और जालिम सिंह उन पर बहुत विश्वास करता था। वे मराठे इस बात को नहीं चाहते थे कि अग्रेजो के साथ जालिम सिंह की मित्रता था। उन मराठों ने अनेक प्रकार के तर्को के साथ इस मित्रता का विरोध किया। लेकिन उनके तर्को का जालिम सिंह पर कोई प्रभाव न पडा। उसने सफलता पूर्वक पचास वर्ष तक कोटा राज्य में शासन किया था। वह राजनीति को समझता था। इस बात को वह खूब जानता था कि राज्य के हितों की रक्षा के लिए अग्रेजो की मित्रता आवश्यक हैं। उसने समझाया कि इस मेत्री के साथ जो अधीनता स्वीकार करनी पड रही है, उसका महत्व हे। इसके अभाव मे लुटेरो के द्वारा राज्य का जो विध्वस ओर विनाश होता आ रहा हे, वह अधिक घातक है। लगातार झगडो और उपद्रवों की अपेक्षा इस अधीनता मे अधिक उन्नति की जा मकती हें। जालिम मिह ने इस प्रकार के अनेक तर्क सामने रख कर अपने उन

मराठा अधिकारियों और मित्रों को समझाया कि हमारे राजपूत राजाओ ने मित्रता को स्वीकार करने के साथ उन जिलों का अधिकार दे देना मन्जूर कर लिया है, जिन पर बहुत दिनो से होलकर का अधिकार चल रहा था। हमारे साथ अंग्रेजों ने जो उदारता का व्यवहार किया, उसे हमको भूलना नहीं चाहिये।

जालिम सिह का व्यवहार और सद्‌भाव ऊँचा था। हमने उस पर कभी सन्देह नहीं किया। उसमे उदारता की भावना बहुत श्रेष्ठ है। इसके लिये न जाने कितने प्रमाण उसके जीवन में पाये जाते हैं। जिस समय उसको कोटा राज्य के शासन की सनद दी गयी, तो उसने सम्मानपूर्वक उसको स्वीकार करने से इन्कार किया और कहा कि इस सनद का अधिकारी महाराव है, मे नहीं हूँ। मैंने जालिम सिह के जीवन में एक-दो नही, बहुत सी ऐसी बातें देखी हैं, जो प्रत्येक अवस्था में प्रशंसनीय हैं और मुझे उनकी प्रशसा करनी चाहिये। सन् 1819 ईसवी के नवम्बर महीने में उम्मेद सिह की मृत्यु हो गयी। उस समय कोटा के सिंहासन पर बैठने का प्रश्न पैदा हुआ। उस अवसर पर जालिम सिंह ने जो कुछ किया, उसमे अंग्रेज सरकार का कोई परामर्श न था। सन् 1817 के 26 दिसम्बर को दिल्ली मे सन्धि हुई थी और उस सन्धि मे कोटा राज्य का प्रतिनिधि अधिकारी की हैसियत से उपस्थित था। महाराव उम्मेद सिह ने उस सन्धि को स्वीकार किया था। दस्तावेज के कागज जनवरी के पहले दोनों पक्षो के अधिकारियों को दे दिये गये थे। इस सधि पर दोनो पक्षो की तरफ से मोहरे लगा दी गयी थीं। लेकिन उस संधि में जालिम सिह के अधिकार का कोई निर्णय नहीं हुआ था। इसलिये उस विषय का कोई उल्लेख सधि की शर्तो मे नहीं किया गया था और जहाँ पर जालिम सिंह का नाम आया था, वहाँ पर उसके नाम के साथ मंत्री शब्द का प्रयोग किया गया था। अंग्रेज प्रतिनिधियो को उस सन्धि मे एक त्रुटि मालूम हुई। इस भूल का कारण किसी प्रकार की असावधानी नहीं थी। बल्कि उसका कारण जालिम सिंह स्वय था और वह संधि में अपने लिये इस प्रकार की कोई शर्त आवश्यक नही समझता था।

बालक उम्मेदसिंह के सिंहासन पर बैठने से बाद वे अब तक उसने कोटा राज्य में पचास वर्ष शासन किया था और इस दीर्घ काल में उसकी सफलता और प्रभुता ने उसको कोटा के शासक के रूप मे प्रसिद्ध कर दिया। अगर उसने सन्धि के समय अपने लिये इस प्रकार शर्त की अभिलाषा की होती तो उसके स्वाभिमान को आघात पहुँचा होता और अपनी श्रेष्ठ मर्यादा को खोकर विदेशी प्रभुत्व मे उसने मन्त्री के पद का अधिकार प्राप्त किया होता। उस समय इसका कोई भी कारण हो, लेकिन दोनो पक्ष के अधिकारियों ने जालिम सिंह के सम्बन्ध की शर्त को सन्धि मे उतना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण समझा होता, जितना कि उसकी दूसरी शर्त को और उसके द्वारा महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद जालिम सिह के अधिकारो को भविष्य मे विरोधियो के निकट सुरक्षित रखा गया होता।

यह लिखा जा चुका है कि सधि दिल्ली मे सन् 1817 ईसवी के दिसम्बर महीने मे हो चुकी थी और सन् 1818 के जनवरी महीने मे उनकी तहरीरो को दोनो पक्षो के अधिकारियो ने पा लिया था। उसी वर्ष के मार्च मे सन्धि की दो नयी शर्तो दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो ने दिल्ली मे मन्जूर की, जिससे इस बात को स्वीकार कर लिया गया कि शासन का भार सदा के

लिए जालिम सिंह के लड़कों और उसके उत्तराधिकारियों के अधिकार में रहेगा। इन स्वीकृत शर्तो को जालिम सिंह के पास भेज दिया गया था।

इसके बाद हमें कोटा राज्य के उन लोगों का उल्लेख करना है। जिनका भाग्य कोटा राज्य के भविष्य से सम्बन्ध रखता था। महाराव उम्मेदसिंह के तीन लडके थे। किशोर सिंह,विशन सिंह और पृथ्वीसिंह। उत्तराधिकारी राजकुमार किशोरसिंह की अवस्था उस समय चालीस वर्ष की थी। वह स्वभाव का विनम्र और शीलवान था। धार्मिक बातों में उसकी अधिक रुचि थी और राज्य के मामलों मे वह बहुत कम सम्बन्ध रखता था। उसके मनोभावों मे जातीय गौरव था और वंश की मर्यादा को वह सदा उन्नत रखने का विचार रखता था। उसके जीवन में पिता के रहन-सहन का पूरा प्रभाव पड़ा था। उसको जो शिक्षा मिली थी, उसने उसे धार्मिक, शिष्ट और नम्र बना दिया था। वह अपने पिता का अनुयायी था, वह जालिम सिह को नाना साहब कहा करता था। अब वह सब-कुछ समझता था। लेकिन पिता की तरह राज्य के शासन का भार नाना साहब के अधिकार में रहने मे वह संतोष अनुभव करता था। विशनसिंह अपने बड़े भाई किशोर सिंह से तीन वर्ष छोटा था। आरम्भ से वह जालिम सिंह के सम्पर्क मे रहा था और जालिम सिंह स्वयं उसको बहुत प्यार करता था। किशोर सिंह की तरह वह भी विनम्र, सुशील और अच्छे स्वभाव का था।

राजकुमार पृथ्वीसिंह की अवस्था तीस वर्ष से कम थी, जीवन के आरम्भ से ही उसमें राजपूतोचित गुण थे और अस्त्र-शस्त्र चलाने का वह शौकीन था। वयस्क होने पर वह जालिम सिंह के साथ ईर्ष्या करने लगा। उसके पिता ने जालिम सिंह पर जो शासन का कुल भार छोड़ रखा था, उसे उसने पसन्द नहीं किया और इस प्रकार की बातों के प्रति उसका असन्तोष बढ़ने लगा। आरम्भ से तीनो भाई एक साथ प्रेमपूर्वक रहा करते थे। लेकिन जालिम सिंह के उत्तराधिकारी लड़के के साथ विशन सिंह के अत्यधिक स्नेह और धैर्य को देख कर कुछ लोग संदेह पैदा करने लगते थे। प्रत्येक राजकुमार को पच्चीस हजार वार्षिक आमदनी की भूमि का अधिकार मिला था।

जालिम सिंह के दो लडके थे। बड़े लडके का नाम माधव सिंह था, वह जालिम सिंह की विवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था और छोटे लडके का नाम गोवर्धनदास था, वह जालिम सिंह की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था। जालिम सिंह छोटे लड़के को अधिक प्यार करता था और उसी को वह अपना उत्तराधिकारी मानता था। उस समय माधव सिंह की अवस्था छियालीस वर्ष की थी। वह देखने से ही आलसी और निकम्मा मालूम होता था। उसका व्यवहार अहंकार से भरा हुआ था। महाराव उम्मेद सिह उसका बहुत आदर करता था और झगडों के समय अपने लड़कों की अपेक्षा उसका अधिक पक्षपात करता था। यही कारण था कि जालिम सिह ने जब राजधानी छोड कर छावनी मे रहना आरम्भ किया था तो उस समय माधव सिह को उसके पैतृक अधिकार पर सेनापति का पद दिया गया। इसके बाद सेना का वेतन देना और इस प्रकार के दूसरे कामो का करना उसी के अधिकार में आ गया। इसलिए उसने इस अवसर का लाभ उठाकर अपने पास धन सग्रह करना आरम्भ कर दिया। वह जालिम सिह का उत्तराधिकारी महाराव उम्मेद सिंह का सम्मानित और राज्य का सेनापति था, इसलिए उसके

विरुद्ध किसी ने कुछ कहने का साहस न किया। उसने अनियंत्रित होकर बहुत-सा धन एकत्रित किया और उस धन से उसने एक विशाल बाग लगवाया। श्रेष्ठ घोड़े खरीदे और जल-विहार करने के लिए उत्तम नावें बनवाई। उसके इन कामों को सुनकर और जानकर जालिम सिंह ने उसको समझाने की कोशिश की। लेकिन वह अपने पिता की परवाह नहीं करता था।

गोवर्धनदास की अवस्था इन दिनों मे सत्ताईस वर्ष की थी। वह बुद्धिमान, साहसी और योग्य था। उसका जीवन अपने भाई माधव सिंह के बिलकुल विपरीत था। कोटा के राजवंश के साथ माधव सिह की जितनी ही उपेक्षा थी, गोवर्धन दास उनके प्रति उतना ही अपना सद्भाव प्रकट करता था। यही कारण था कि जालिम सिंह आरम्भ से ही उस पर अधिक स्नेह रखता था और उसने प्रधान के पद पर नियुक्त करके राज्य में कृषि-विभाग का अधिकारी बना दिया। इससे गोवर्धन दास के अधिकार में राज्य की अपरिमित सम्पत्ति रहने लगी। माधव सिंह और गोवर्धन दास मे पहले से ही स्नेह था। इन दिनों में माधव सिंह उससे ईर्ष्या करने लगा और इसके बाद परिणामस्वरूप दोनों भाइयों में झगड़े पैदा होने लगे। इसमें बहुत कुछ कमजोरी जालिम सिंह की थी। इसलिए कि उसने अच्छी शिक्षा देकर माधव सिंह के आचरण को अच्छा नहीं बनाया था। इसके लिए जालिम सिंह को स्वयं दुःखी होना पडा।

सन् 1819 ईसवी के नवम्बर में कोटा राज्य की राजनीतिक और पारिवारिक यह परिस्थिति थी, जबकि महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु हो गयी थी और उस दुखमय समाचार को छिपाकर रखा गया था, जिसके परिणामस्वरूप राज्य मे भयानक परिस्थिति पैदा हुई। जालिम सिह छावनी में था और वह छावनी गागरोन में थी, उन्हीं दिनों में उम्मेद सिंह की मृत्यु हो गई थी। उस समाचार को पाकर महाराव का अन्तिम संस्कार करने और उत्तराधिकारी किशोर सिंह को सिंहासन पर बिठाने के लिए जालिम सिंह राजधानी के लिए रवाना हुआ।

मारवाड़ से मेवाड जाते हुए पोलिटिकल एजेण्ट की हैसियत से मैंने उम्मेदसिंह की मृत्यु का समाचार पाया।* मैंने उसी समय अपनी सरकार को लिखकर पूछा कि इस अवसर पर क्या होना चाहिये। मैं कुछ दिनों तक उस समय उदयपुर मे बना रहा और फिर उसके बाद मै कोटा गया, यह जानने के लिये कि महाराव की मृत्यु के बाद वहाँ के राज सिंहासन पर बैठने के लिए क्या होता है। कोटा मे पहुँचकर मैंने वृद्ध जालिम सिंह को राजधानी से एक मील बाहर छावनी में पाया। उसका उत्तराधिकारी लड़का राजधानी के महल में रहता था।

---

21 नवम्बर सन् 1819 ईसवी को जालिम सिंह ने महाराव उम्मेद सिह की मृत्यु का समाचार देते हुए जो मुझे लिखा था, वह इस प्रकार था: ''रविवार के दिन दोपहर के बाद तक महाराव उम्मेद सिंह की हालत बिल्कुल ठीक रही। सूर्यास्त के एक घटा बाद श्री बृजनाथ के मन्दिर में जाकर महाराव ने दर्शन किये छः बार प्रणाम करने के बाद सातवीं बार मे वह मूर्छित हो गये। अचेत अवस्था मे महाराव उम्मेद सिंह को किसी प्रकार महल मे लाकर लिटाया गया। उस समय जितनी भी अच्छी चिकित्सा हो सकती थी, की गयी और कोई उपाय बाकी न रखा गया। लेकिन किसी से कुछ लाभ न हुआ और रात के दो बजे महाराव उम्मेद सिह ने स्वर्ग की यात्रा की।''

''भगवान न करे, किसी शत्रु को भी इस प्रकार का दुख हो। लेकिन इसमे किसी का बस नहीं है। आप हमारे भाई हैं जिन राजकुमारो को छोडकर महाराव ने स्वर्ग की यात्रा की है, उनका कल्याण आपके हाथों मे हैं। स्वर्गीय महाराव का बड़ा लडका किशोर सिह राज सिहासन पर बैठ गया है। मित्रता के नाते में यह समाचार आपको भेज रहा हूँ।''

राज्य का उत्तराधिकारी राजकुमार किशोर सिंह दुर्ग के महल में रहकर अपने भाइयों के साथ उन दिनों मे क्या सोच रहा था, यह नहीं कहा जा सकता। कोटा पहुँचने के बाद मुझे मालूम हुआ कि पृथ्वीसिंह और गोवर्धन दास ने मिल कर नवीन महाराव को अपने अनुकूल बनाने की पूरी कोशिश की और उन दोनों ने विशन सिंह को अपने इस प्रयास में शामिल नहीं किया। इस प्रकार की जो योजना चल रही थी, उसकी जानकारी जालिम सिंह को कुछ नहीं थी।

महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद जालिम सिंह को भयानक रोग हो गया। उसके इस रोग को देखकर जो लोग जालिम सिंह के विरोधी थे और राज्य मे उसके अधिकार को नष्ट कर देना चाहते थे, वे बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन कुछ दिनों के बाद जालिम सिंह को उस रोग से मुक्ति मिल गयी तो जो लोग उसकी बीमारी के दिनों में प्रसन्न हो रहे थे, उनकी प्रसन्नता खत्म हो गयी। जालिम सिंह की बीमारी के दिनों में विरोधियों ने अपनी जिस योजना का कार्य आरम्भ किया था, वह अप्रकट न रह सकी। लेकिन वृद्ध जालिम सिंह को उस समय भी उसकी जानकारी हुई।

संधि हो जाने के बाद जो दो शर्ते दोनों पक्षों के प्रतिनिधियो की मंजूरी से संधि में शामिल की गयी थीं और जिनके अनुसार जालिम सिंह के उत्तराधिकारियों को सदा के लिए अधिकारी बना दिया गया था, छिपे तौर पर उनका विरोध हुआ और महाराव के दरबार में षड़यंत्र चलने लगा। जालिम सिंह के दोनों लड़कों के बीच संघर्ष पैदा कराने की पूरी कोशिश की गयी। संधि के अनुसार माधव सिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी था। इसका निर्णय संधि की अन्तिम दोनों शर्तो के द्वारा हो चुका था और मैं उसका मध्यस्थ था। राज्य मे जालिम सिंह के विरुद्ध जो षड़यंत्र रचा गया, उसका साफ-साफ अभिप्राय यह था कि संधि के द्वारा नवीन महाराव किशोर सिंह को माधव सिंह के हाथ की कठपुतली उसी प्रकार बनाने की चेष्टा की गयी है, जिस प्रकार जालिम सिंह के समय स्वर्गीय महाराव की हालत थी। इसलिए इसका विरोध होना चाहिये। विरोधी लोग जालिम सिंह और उसके उत्तराधिकारियों के इस अधिकार को सदा के लिए नष्ट कर देना चाहते थे। उनके षडयंत्र का यही एक अभिप्राय था।

सन् 1817 ईसवी के संगठन का आन्दोलन न केवल राजनीतिक था बल्कि वह पूर्ण रूप से नैतिक था। उसके पहले की अवस्था सम्पूर्ण राजस्थान में बड़ी भयानक थी। लुटेरों के द्वारा चारों ओर आक्रमण, विध्वंस ओर विनाश हो रहे थे। बिना संगठित शक्तियो के उनको रोक सकना सम्भव नहीं था। भारत में आये हुए अंग्रेजों ने राजस्थान की इस दुरवस्था का अनुभव किया और राजस्थान के समस्त राजाओं को एक सूत्र में बाँधकर आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। इसका परिणाम यह निकला कि न केवल राजस्थान मे बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष मे शान्ति कायम हो गयी। इस संगठन और सहयोग में कोटा राज्य के साथ हमारा सम्पर्क हुआ। इस संपर्क मे कोटा राज्य की तरफ से हमने भीतर और बाहर जालिम सिंह को ही पाया। इसीलिए जब संधि हुई तो जालिम सिंह के भविष्य का निर्णय उसके द्वारा होना नैतिक दृष्टि से भी आवश्यक था। इसीलिए बाद मे जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। दो शर्ते दोनो पक्षों की मंजूरी लेकर सधि में जोडी गयी। इन दोनों शर्तों का महत्व उनके परिणाम को देखकर नहीं बल्कि उस समय हमारा कर्त्तव्य क्या था, इसे सामने रख कर हमें मालूम होता है।

संधि के दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति मे जो शर्ते तय हुई थीं, उनका निर्णय दोनों पक्षो की उपयोगिता और आवश्यकता को सामने रखकर किया था और इसीलिए दिसम्बर की संधि में दो नयी शर्ते शामिल हो गयी थीं। उनकी आवश्यकता और महत्ता से किसी प्रकार इन्कार नहीं किया जा सकता। न केवल इसलिए कि जालिम सिंह ने अपनी बुद्धिमता और दूरदर्शिता से स्वर्गीय महाराव के सिंहासन पर बैठने के बाद से लेकर उस समय तक कोटा राज्य की मर्यादा को कायम किया था, बल्कि जिस समय समस्त राजस्थान के आकाश पर आक्रमणकारियों के कारण विपद के बादल मँडरा रहे थे और उस विपद की सम्भावना सबसे पहले हाड़ौती राज्य पर थी, दूरदर्शी जालिम सिंह ने उसको अनुभव किया और उस विनाशकारी विपद के विरुद्ध जब अंग्रेज अधिकारी ने घोषणा की, उस समय जालिम सिंह ने राजस्थान में सबसे पहले सहयोग किया। उस सहयोग में जालिम सिंह का जो कुछ भी अभिप्राय रहा हो, लेकिन उसके इस वीरोचित कार्य से राजस्थान के सार्वजनिक हितों की रक्षा हुई और उसी से प्रभावित होकर अंग्रेज प्रतिनिधियों ने संधि की शर्तों में उसके भविष्य का निर्णय करना अपना एक महान कर्त्तव्य समझा। जिस युद्ध की घोषणा की गयी थी, वह समाप्त होने पर थी। जिस कोटा के साथ हमने संधि की थी, उसके विनाश के सभी कारण सदा के लिये नष्ट हो गये थे। ऐसी हालत में जिसके द्वारा कोटा के फिर अच्छे दिन देखने का अवसर मिला,उसको सेवाओं का पुरस्कार देना हम सबके लिए अनिवार्य हो गया। किसी भी अवस्था में जिसके द्वारा राजस्थान मे और विशेषकर कोटा राज्य में इतना बड़ा कार्य हुआ था, उसके प्रति अवहेलना करना किसी प्रकार उचित न था। सन् 1817 ईसवी की संधि में जालिम सिंह के भविष्य का जो निर्णय किया गया, वह प्रत्येक अवस्था में आवश्यक था। बालक उम्मेद सिंह के सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर अब तक उसने कोटा राज्य के गौरव को जिस प्रकार बढ़ाया था, उसका बहुत बड़ा मूल्य था। इसलिए उसके भविष्य का निर्णय करने के लिए कोटा की संधि में जो शर्ते जोड़ी गयीं, उनको दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने बिना किसी विरोध के स्वीकार किया था।

जालिम सिंह ने स्वर्गीय महाराव के साथ आरम्भ से लेकर अन्त तक जो सद्‌भाव रखा था, नवीन महाराव ने उसे अस्त्र बनाकर जालिम सिंह के साथ प्रयोग में लाने का निर्णय किया। उत्तराधिकारी किशोर सिंह के प्रति जालिम सिंह के कितने अच्छे भाव थे और महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद उसने जिस राजभक्ति के साथ उसे राज सिंहासन पर बिठाया था उसका भली प्रकार ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। हमारा यह भी विश्वास है कि पृथ्वीसिंह और गोवर्धनदास ने यदि षड्यंत्र की रचना करके जालिम सिह के विरुद्ध उकसाया न होता तो महाराव किशोर सिंह ने उसके प्रति विद्रोहात्मक निश्चय कभी न किया होता। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पृथ्वी सिंह और गोवर्धन दास ने जालिम सिंह के विरुद्ध षड्यंत्र की रचना की और विरोध मे महाराव किशोर सिंह को लाकर सामने खड़ा कर दिया।

गोवर्धन दास जालिम सिंह का छोटा लडका था। लेकिन वह उसकी विवाहिता स्त्री से पैदा नहीं हुआ था। इस पर भी उसके अच्छे स्वभाव को देखकर जालिम सिंह उससे बहुत प्रेम करता था। लेकिन पृथ्वी सिंह ने-जो पहले से ही जालिम सिंह का विरोधी था- माधव

सिंह और गोवर्धनदास में विद्रोह पैदा कराने में सफलता प्राप्त की। उसने गोवर्धनदास को समझा दिया कि जो संधि पहले स्वीकृत हुई थी, वह सही थी। लेकिन माधवसिंह और उसके उत्तराधिकारियों की इस राज्य में सत्ता बनाये रखने के लिए अंग्रेज प्रतिनिधियों ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। यद्यपि 26 दिसम्बर को स्वीकृत होने वाली संधि मे इस प्रकार का कोई जिक्र नहीं था। लेकिन पोलिटिकल एजेन्ट के पक्षपात करने से माधव सिंह को यह महानता दी गयी हैं। पृथ्वीसिंह के इन तर्कों ने गोवर्धनदास को माधवसिंह ओर पोलिटिकल एजेन्ट के प्रति विद्रोही बनाने का काम किया। इसी प्रकार महाराव किशोर सिंह को भी समझा कर व्रिदोही बनाया गया। उसको भली प्रकार इस बात का विश्वास कराया गया कि 2 दिसम्बर को जो संधि मंजूर हुई थी, उसके अनुसार राज राणा जालिम सिंह ओर उसके अधिकारियों को शासन का अधिकार नहीं दिया गया था। इसलिए स्वर्गीय महाराव के बाद राज राणा का अधिकार समाप्त हो गया था। इस दशा में आप अंग्रेजी राज्य से इस बात की प्रार्थना कीजिए कि पूर्व स्वीकृत संधि के अनुसार काम किया जावे। क्योंकि मूल सन्धि की दसवीं शर्त में लिखा है कि कोटा राज्य के पूर्ण शासन का अधिकार महाराव उम्मेद सिंह और उसके उत्तराधिकारियों को होगा। पूर्व की स्वीकृत संधि में महाराव उम्मेद सिंह ओर अंग्रेजी सरकार की तरफ से हस्ताक्षर हुये हैं और दोनों की मोहरें लगी हुई हें। परन्तु बाद की दो शर्तें जो शामिल की गयी हैं, उनमें न तो स्वर्गीय महाराव के हस्ताक्षर हैं और न उन शर्तों की महाराव को जानकारी ही थी।

कोटा राज्य में आरम्भ से ही कुछ लोग-जिनमें सामन्त भी शामिल थे ओर जिनके उल्लेख पहले किये जा चुके हैं-विरोधी थे। उन्होंने इस प्रकार के षड्यंत्रों की रचना करके और विरोधी प्रचार करके गोवर्धनदास को उसके पिता का विरोधी बना दिया था। साथ ही महाराव किशोर सिंह को जालिम सिंह के विपरीत काम करने के लिए तैयार कर दिया था। राज्य की इस परिस्थिति का भली प्रकार अध्ययन करके मैंने दूरदर्शिता से काम लिया और विरोधी षड्यंत्रों की तरफ ध्यान न देकर मैंने नवीन महाराव किशोर सिंह को विश्वास दिलाने की पूरी चेष्टा की कि मैं आपकी मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए पूरा प्रयत्न करूँगा, लेकिन राज राणा जालिम सिंह के अधिकारों के प्रति अवहेलना करने की में कोई प्रतिज्ञा नहीं करता। मेरी बात से प्रभावित होकर किशोर सिंह ने कहा : "मैं आँख मूँद कर आपकी मित्रता पर विश्वास करता हूँ।" पृथ्वी सिंह ने भी इसी प्रकार का कुछ भाव प्रकट किया। लेकिन वहॉ पर जो सामन्त उपस्थित थे, वे सब शान्त बैठे रहे। किसी ने उस समय कुछ नहीं कहा।

विरोधी परिस्थितियों को शांत देखकर मैंने किशोर सिंह और जालिम सिंह में फिर से सद्भाव पैदा करने की कोशिश की। कोटा के दुर्ग में राज्य के श्रेष्ठ व्यक्तियों को आमन्त्रित करके एक बेठक की गई और किशोर सिंह को राज सिंहासन पर बिठाने का निश्चय किया गया। उस समय पोलिटिकल एजेन्ट की हैसियत से मेंने अपने भावों को प्रकट करते हुए कहा:"मैं इस राज्य का शुभचिंतक हूँ और महाराव किशोर सिंह का सभी प्रकार कल्याण चाहता हूँ। में आशा करता हूँ कि वर्तमान संकटपूर्ण परिस्थितियों में महाराव किशोर सिंह के द्वारा ऐसा कोई कार्य न होगा, जिससे इस राज्य को ओर हाड़ा राजवंश के सम्मान को किसी प्रकार की क्षति पहुँच सके। महाराव को सोच समझकर प्रत्येक कार्य करना चाहिये और अपने

घनिष्ठ बन्धु तथा गोवर्धन दास से पृथक रहना चाहिये। गोवर्धनदास को हाड़ौती राज्य से बिल्कुल हट जाने की जरूरत है।''

मई महीने के मध्य मे इस प्रकार की बाते हुई और जून में गोवर्धनदास को राज्य के विद्रोहात्मक अपराध मे कोटा राज्य से दिल्ली भेज दिया गया। इसके बाद महाराव किशोर सिंह और राज राणा जालिम सिंह में सद्भाव पैदा कराने के उद्देश्य से एक सार्वजनिक सभा की गयी। उस सभा मे दोनों का फिर से स्नेह और सद्भाव देखकर उपस्थित लोगों ने बडी प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार सभा अपने उद्देश्य मे सफल हुई।

सन् 1820 ईसवी के अगस्त के महीने की 17 तारीख को एक बड़े समारोह में कोटा के सिंहासन पर किशोर सिंह को बिठाया गया। अंग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से सबसे पहले मैंने किशोर सिंह के मस्तक पर राजतिलक किया और हीरे-जवाहरात के आभूषण महाराव के गले मे पहनाकर उसकी कमर में मेने तलवार बॉधी। महाराव ने इसके बदले उपहार में मुझे एक सौ सोने की मोहरें दीं। इसके बाद अंग्रेज गवर्नर जनरल की तरफ से मैंने महाराव को कीमती खिलत दी। इसके लिए राज राणा जालिम सिह ने अंग्रेजी सरकार और उसके प्रतिनिधि के रूप मे मुझे धन्यवाद देकर पच्चीस सोने की मोहरें भेट मे दी। इसके पश्चात् कोटा के सेनापति की हैसियत से महाराव के मस्तक पर माधव सिंह ने तिलक किया और उसकी कमर में तलवार बॉधकर बहुमूल्य वस्तुएँ भेट में दी। महाराव ने प्रचलित प्रणाली के अनुसार उन भेंटो को लौटा कर माधव सिंह को खिलत दी और कोटा के सेनापति की उसे सनद दी।

इस अभिषेक के उत्सव के बाद मैं एक महीने तक कोटा में रहा। इन दिनो मे मैंने महाराव और राज राणा के बीच सद्भाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। मुझे उसमें उस समय पूरी तौर पर सफलता मिली। इस अवसर पर दोनों ने विश्वास पूर्वक रहने,राज्य का शासन करने और हाडा राजवंश की मर्यादा की वृद्धि करने की जो प्रतिज्ञायें कीं, उनसे मुझे अपार संतोष और सुख मिला। कोटा से विदा होने के चार दिन पहले मैंने सभी सामन्तों, प्रमुख अधिकारियों और राज्य के श्रेष्ठ पुरुषो को एकत्रित किया। उस समय सभी लोगों ने एक दूसरे के प्रति पूर्ण रूप मे स्नेह, चेष्टाभाव और सम्मान प्रकट किया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि उपस्थित लोगों ने राजराणा जालिम सिंह के प्रति अपना श्रद्धा भाव प्रकट किया और कहा : ''हम लोग वयोवृद्ध राजराणा के प्रति कभी श्रद्धा मे कमी न करेंगे।''

स्वर्गीय महाराव की मृत्यु के बाद कोटा मे जो आपसी संघर्ष पैदा हुआ था, वह अत्यन्त घातक था। उस सघर्ष में इस राज्य का भयानक विनाश हो सकता था। लेकिन अन्त मे सभी बातें सद्भाव के साथ सुलझ गयीं और राज्य की व्यवस्था संतोष और सौभाग्य के साथ आरम्भ हुई।

कोटा राज्य मे जालिम सिंह ने दण्ड नामक एक कर जारी किया था। उसको उसने सदा के लिए हटा दिया, जिससे उसको अपने जीवन के अंतिम दिनों मे बडी ख्याति मिली।

अध्याय-70
कोटा राज्य का संघर्ष

इन दिनों में कोटा राज्य के षड़यंत्रों का मूल कारण जालिम सिंह की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुआ गोवर्धनदास था। जालिम सिंह प्यार से उसको गोवर्धन जी कहा करता था। पिछले परिच्छेद मे लिखा जा चुका है कि गोवर्धनदास राजनीतिक अपराधी के रूप में हाड़ौती राज्य से निकाल दिया गया था और उसके कहने के अनुसार दिल्ली और इलाहाबाद उसको रहने के लिये भेज दिया गया था। इसलिए वह अपने परिवार के साथ दिल्ली में रहने लगा था। वहॉ के स्थानीय अंग्रेज अधिकारियो को उसकी देखभाल रखने के लिए सावधान कर दिया गया था।

दिल्ली मे रहकर गोवर्धनदास ने सन् 1821 ईसवी के अंतिम दिनों में झबुआ की उस लड़की से विवाह करने के लिए-जो वहॉ के सामन्त की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुई थी-मालवा जाने की आज्ञा ले ली थी। उसके उस नगर में पहुंचते ही कोटा राज्य मे अशान्ति के बादल दिखायी पड़ने लगे और उसके बाद ही कोटा से लेकर बूँदी तक विद्रोहात्मक उत्तेजना फैलने लगी। सैफअली राज पलटन नामक राणा की विशेष सेना का सेनापति था और अपनी तीस वर्ष की अवस्था मे वह विश्वास और वीरता के लिए प्रसिद्ध हुआ था। उसने किशोर सिंह के पक्ष का समर्थन किया। इस प्रकार विद्रोही समाचारों के मिलने पर आरम्भ मे जालिम सिंह ने विश्वास न किया। लेकिन बुद्धिमानी के साथ उसने सैफअली की सेना के साथ राज्य की दूसरी सेना भी रख दी, जिससे विद्रोही सेना नियंत्रण में रह सके। इन्हीं दिनो में महाराव किशोर सिंह ने सैफअली के अधिकार की सेना को अपने महल में बुलवाया और वह जल के रास्ते से होकर महाराव की आज्ञानुसार महल मे आ गयी। यह समाचार जालिम सिंह को मिला। उसने अपनी सेना लेकर सैफअली की सेना पर आक्रमण किया और दो ऊँचे स्थानों पर तोपों को लगवा दिया जिनसे राजधानी से लेकर चम्बल नदी के दोनो किनारो पर बसे हुए नगरों तथा ग्रामों पर गोलों की वर्षा होने लगी। यह देखकर महाराव किशोर सिंह अपने भाई पृथ्वी सिंह और कुछ सैनिको को साथ लेकर बूँदी राज्य चला गया। उसके जाते ही जो सेना महल में आयी थी, उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इसलिए महाराव किशोर सिंह ने जो प्रयत्न किया था, वह व्यर्थ हो गया। इस युद्ध में विशन सिंह ने अपने दोनो भाइयो को छोड़ दिया और उसने जालिम सिंह के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया।

इस समय कोटा राजधानी मे जो अशान्ति पैदा हुई, उसको दूर करने और विद्रोही उत्तेजना को मिटाने का केवल यही एक उपाय था कि संधि के अनुसार काम किया जाये। इसलिए सबसे पहले बूँदी के राजा के पास एक पत्र भेजा गया। उसमें लिखा गया कि कोटा के

महाराव किशोर सिंह को अतिथि के रूप में रखने और उसका सम्मान करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन अगर किशोर सिंह ने बूँदी में पहुँचकर जालिम सिंह के विरुद्ध सैनिक तैयारी की तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर होगा।

गत दिनों में नीमच नामक स्थान पर जो अंग्रेजी सेना रहती थी, उसके सेनापति के पास आदेश भेजा गया कि झबुआ और बूँदी राज्य के मध्यवर्ती रास्ते पर एक सेना लगा दी जाये और अगर गोवर्धनदास महाराव किशोर सिंह से मिलने के लिए बूँदी की तरफ आवे तो उसे किसी भी दशा में कैद कर लिया जाये। यह समाचार गोवर्धनदास को मालूम हो गया। इसलिए वह पहाड़ी गुप्त रास्तों से होकर निकल गया और अंग्रेजी सेना उसे कैद न कर सकी। लेकिन बूँदी के राजा को कोटा से जो पत्र भेजा गया था, उसके कारण वह गोवर्धनदास को अपने यहाँ किसी प्रकार रखने के लिए तैयार न था। इसलिए वह बूँदी से छिपे तौर पर भागकर मारवाड़ चला गया। लेकिन वहाँ के राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय न दिया। उस दशा में विवश होकर वह दिल्ली में आ गया, वहाँ पर वह अधिक सावधानी के साथ रखा गया।

महाराव किशोर सिंह ने भी बूँदी राज्य छोड़ दिया और वह वृन्दावन की तरफ तीर्थ यात्रा करने के लिए चला गया। उसने ब्रजनाथ जी के मन्दिर में रह कर धार्मिक जीवन विताने का निश्चय किया। बूँदी में रहकर महाराव ने किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त की। कोटा से बूँदी का फासला बहुत न था। इसलिए जब तक वह बूँदी में रहा, कोटा में उसके समर्थक अनुकूल वातावरण का अनुमान लगाते रहे। लेकिन जब वह बूँदी से उत्तर की तरफ चला गया तो लोगों ने विश्वास किया कि महाराव ने किसी आशा से उस तरफ की यात्रा की है, उसे निश्चित रूप से वहाँ से सहायता मिलेगी। इन दिनों में कोटा के सामन्त महाराव के पास सहानुभूति के पत्र भेजते रहे। महाराव बूँदी से चलकर जिस राज्य में पहुँचा, वहाँ के राजा ने उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया। भरतपुर का राज्य कोटा के समीप था। वहाँ के राजा ने जब महाराव के आने का समाचार सुना तो वह स्वयं उसके पास नहीं गया और अपने प्रतिनिधियों को भेजकर अपने न पहुँच सकने की विवशता प्रकट की। उन प्रतिनिधियों ने महाराव के पास जाकर अपने राजा की तरफ से बातें कीं और भरतपुर के राजा ने जो मूल्यवान उपहार भेजे थे, उनको उन्होंने महाराव के सामने उपस्थित किया। भरतपुर के राजा के न आने पर महाराव ने उनकी अवहेलना समझी और उसके भेजे हुए उपहारों को उसने वापस कर दिया। भरतपुर के राजा ने जब सुना कि महाराव ने हमारे भेजे हुए उपहारों को वापस कर दिया है तो उसने अपना अपमान समझ कर उसे भरतपुर राज्य से चले जाने के लिए संदेश भेज दिया।

महाराव वहाँ से वृन्दावन चला गया और कुछ दिनों तक वह ब्रज कुञ्ज में रहा। इन दिनों में वह शासन के प्रलोभनों को भूल गया और भक्ति-भावना में लिप्त होकर वह अपना समय काटने लगा। इन दिनों में उसने अनुभव किया कि जो लोग वहाँ पर उसको बराबर घेरे रहते हैं, वे उससे धन पाने की आशा रखते हैं। इसका प्रभाव महाराव पर अच्छा नहीं पड़ा। उसने समझ लिया कि यहाँ पर रहकर मेरा जो सम्मान होता है, वह मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं है, बल्कि कोटा का राजा समझ कर लोग मेरा सम्मान करते हैं और मुझसे भूमि और धन पाने

की आशा करते हैं। वह वृन्दावन से चल कर 15 अप्रैल तक मथुरा पहुँच गया। वह कोटा लौटकर आ जाने का विचार कर चुका था। लेकिन गोवर्धनदास ने उसके पास सन्देश भेजकर उसके कोटा आने का विरोध किया और कहला भेजा कि महाराव को वहाँ नहीं जाना चाहिये।

गोवर्धनदास षडयंत्रकारी था। वह दिल्ली मे रहकर भी महाराव के पक्ष मे एक न एक योजना का निर्माण करता रहता था। इसलिए धीरे-धीरे विद्रोह की जो आग सुलग रही थी, वह भयानक होने लगी। हाड़ा वंश के जो लोग उसके पक्ष में थे, उनको गोवर्धन दास बराबर उकसाता रहता था और कितने ही लोगों के विद्रोही संदेश महाराव के पास पहुंचते रहते थे। महाराव ने अपने साथ एक ऐसी सेना का संगठन किया और वह उस सेना को लेकर हाड़ौती राज्य की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में जो राज्य मिले, उनके राजाओं से महाराव ने कहा कि मै अपने राज्य का सिंहासन प्राप्त करने के लिए जा रहा हूँ। उसकी इस यात्रा को देखकर और उसकी बातों को सुनकर लोगों को अनुमान हुआ कि महाराव किशोर सिंह का अपने राज्य जाना अब आवश्यक हो गया है। इस प्रकार का अनुमान लगाकर सभी लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की और महाराव के साथ चलने वालों की संख्या लगातार बढ़ने लगी। सन् 1822 ईसवी की बरसात के अन्तिम दिनों में लगभग तीन हजार सेना साथ में लेकर महाराव चम्बल नदी के किनारे पहुँच गया। नदी को पार करके महाराव ने राजस्थानी बोली में एक ऐसी घोषणा का प्रचार किया, जिसे वहाँ के लोग भली-भाँति समझ सकें और कोई भी महाराव के आह्वान करने पर इन्कार नहीं कर सके। उस घोषणा में कहा गया कि महाराव ने सन्धि के अनुसार न्याय की माँग की है। इसलिए प्रत्येक हाड़ा राजपूत को महाराव की सहायता के लिये आना चाहिये।

महाराव किशोर सिंह की इस घोषणा को सुनकर हाड़ा राजपूत आकर एकत्रित होने लगे। उस समय घोषणा को सुनकर वे लोग भी महाराव के पास पहुँचे, जो जालिम सिंह के वंश के थे और जिन्होंने समय-समय पर जालिम सिंह के द्वारा बहुत लाभ उठाये थे। ऐसे लोगों ने भी किशोर सिंह के पक्ष में समर्थन किया और उसकी सहायता के लिए वे रवाना हुये। इनमें से अधिक आदमी ऐसे थे, जिन्होंने किशोर सिंह को कभी देखा भी न था और न उसके सम्बन्ध में कुछ जानते ही थे। उस समय ऐसा मालूम होता था कि राज्य में प्रजा से लेकर कर्मचारियों और अधिकारियों तक सभी लोग महाराव किशोर सिंह के पक्ष में हैं। राज्य की इस परिस्थिति को जालिम सिंह भी स्वीकार करता था। सन् 1822 ईसवी की 16 सितम्बर को अंग्रेज सरकार के पोलोटिकल एजेन्ट की हैसियत से मेरे पास एक पत्र भेजकर महाराव किशोर सिंह ने संधि के लिये प्रार्थना की। उस पत्र में लिखा था:

"मैं क्या चाहता हूँ? यह जानने के लिए चॉद खॉ ने कई बार इच्छा प्रकट की थी। इसलिए मिर्जा मोहम्मद अली बेगू और लाला सालिग राम अपने दोनों वकीलों के द्वारा अपनी माँगें मैं आप के पास भेज रहा हूँ। मैं फिर आपके पास पूर्व निश्चित सन्धि की शर्तो को भेज रहा हूँ। आप को उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिये। अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से आपको मेरे साथ न्याय करना चाहिये। मालिक को मालिक की तरह और नौकर को नौकर की तरह रहना चाहिये। संसार में सर्वत्र यही होता है। यह आपसे छिपा नहीं है।

1 महाराव उम्मेदसिंह के समय दिल्ली में जो सन्धि हुई थी, मैं उसका पालन करूँगा।

2. मैं नाना जालिम सिंह पर सभी प्रकार का विश्वास करता हूँ। जिस प्रकार नाना जी ने महाराव उम्मेद सिंह के समय इस राज्य में काम किया है, उसी प्रकार मेरे साथ भी उसे करना चाहिये। मैं नाना जी के शासन-प्रवन्ध को स्वीकार करता हूँ। परन्तु मेरे और माधव सिंह के बीच सन्देह और अविश्वास है। हम दोनों एक दूसरे पर विश्वास नहीं कर सकते और न कभी एक हो सकते हैं। इसलिए मैं उसको एक जागीर दूँगा, उसको वहाँ रहने दिया जाये। उसका लड़का वप्पा लाल मेरे साथ रहेगा और जिस प्रकार दूसरे मन्त्री अपने राजा के समीप रहकर राज्य का कार्य करते हैं, वह भी उसी प्रकार मेरे साथ रहकर करेगा। मैं मालिक होकर रहूँगा और वह नौकर होकर रहेगा। यदि वह ऐसा करता है तो यह क्रम बराबर चलता रहेगा।

3. अंग्रेजी सरकार और दूसरे राजाओं को जो पत्र भेजे जायेंगे, वे मेरे परामर्श के अनुसार लिखे जायेंगे।

4. मेरी और राज राणा के जीवन की रक्षा का उत्तरदायित्व अंग्रेजी सरकार पर होगा।

5. अपने भाई पृथ्वीसिंह को मैं एक जागीर दूंगा, वहीं पर वह रहा करेगा। उसके पास जो नौकर अथवा दूसरे आदमी रखे जायेंगे, उनको मैं नियुक्त करूँगा। मेरे वंश के लोगों को आवश्यकतानुसार जागीरें दी जायेंगी और वे जागीरें उनकी मर्यादा के अनुसार होंगी। वे प्राचीन प्रणाली के अनुसार राज-दरबार में रहा करेंगे।

6. मेरे शरीर रक्षक सैनिक तीन हजार की संख्या में मेरे पास रहेंगे और उनमें राज राणा का पौत्र वप्पा लाल भी रहेगा।

7. राज्य में जो आमदनी वसूल की जायेगी, वह राज्य के खजाने में रखी जायेगी और उसके बाद उसमें से खर्च किया जाएगा।

8. दुर्गो पर किलेदारों को मैं नियुक्त करूँगा और राज्य की सम्पूर्ण सेना मेरे अधिकार मे रहेगी। कर्मचारियों और अधिकारियों को आदेश देने का अधिकार राजराणा को होगा लेकिन उनके लिये पहले मुझ से पूछना पड़ेगा।

ऊपर लिखी हुई मेरी माँगें हैं, जो राज्य के नियमो के अनुसार हैं। आसोज पन्चमी सम्वत् 1978 सन् 1822 ईसवी।''

सन्धि का प्रस्ताव करते हुए महाराव किशोर सिंह ने यह पत्र मेरे पास भेजा और अपनी लिखी हुई शर्तो में उसने हमको बाँधने की कोशिश की। इस पत्र में उस सन्धि का भी नाम आया जो अंग्रेज सरकार के साथ कोटा के राजा ने की थी। लेकिन आदि से लेकर अन्त तक सभी शर्ते राजराणा जालिम सिंह पर लागू करने के लिये लिखी गयी थीं। राज्य के नाम मात्र के राजा महाराव ने सन्धि का उल्लेख करके तानाजनी के साथ मुझे लिखा कि जो शर्ते मेंने अपने पत्र मे लिखी हें, वे मन्जूर की जायेंगी या नहीं। व्यवहार की इस अशिष्टता को भी सहन कर लिया जाता यदि महाराव ने अपने पत्र में सन्धि की उन शर्तो को भी शामिल किया होता जो बाद में दोनों पक्षों की स्वीकृति से सन्धि मे शामिल की गयी थी। पत्र में न्याय की

मॉग की गयी, अपने समस्त अधिकारों को सुरक्षित बनाकर। पत्र में यह भी लिखा गया कि राजराणा को शासन-भार देने में हमे कोई आपत्ति नहीं है, मैं उस पर पूरा विश्वास करता हूँ। लेकिन लिखी गयी इन शर्तों के बाद राज्य में राणा का कोई अधिकार बाकी नहीं रह जाता। स्वर्गीय महाराव के समय क्या राजराणा ने इसी प्रकार राज्य का शासन-भार अपने हाथों में रखा था? महाराव किशोर सिंह के नेत्रों में दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की स्वीकृति दो शर्तो का कोई मूल्य नहीं है। यह बात उस पत्र में साफ-साफ जाहिर हैं। यदि इन दो शर्तो को अलग कर दिया जाता है तो सन्धि का कोई मूल्य नहीं रह जाता। इस दशा में आपसी समझौते का प्रश्न ही खत्म हो जाता है। राजराणा जालिम सिंह के उत्तराधिकारियों के अधिकारो का निर्णय करने के लिए जो दो शर्ते बाद में स्वीकृत होकर सन्धि में जोड़ी गयी,यदि वे न रखी गयी होती तो राज्य में राजराणा का अधिकार था ही और उसके उत्तराधिकारियों को प्राचीन प्रणाली के अनुसार अनधिकारी बना देना सहज न था। शासन प्रबन्ध से लेकर स्वर्गीय महाराव और उनके वंश के साथ जालिम सिंह का जो व्यवहार आरम्भ से लेकर अब तक चला आ रहा था, उसी ने उसके अधिकारों को अटूट बना दिया था और स्वर्गीय महाराव को कभी विरोधी गन्ध न मालूम हुई थी। सिंहासन पर बैठने के पहले ही किशोर सिंह को जालिम सिंह से विद्रोहात्मक भय मालूम हुआ। इसका क्या अभिप्राय हो सकता है? सिंहासन पर बैठने के बाद दस-पॉच वर्षो का अनुभव किसी हद तक उसकी सहायता कर सकता था, लेकिन उसको नवीन महाराव ने पास ही नहीं आने दिया। क्या इसका स्पष्ट अर्थ यह नहीं है कि जालिम सिंह के विरोधियों ने महाराव किशोर सिंह के मस्तिष्क को पहले से ही खराब कर दिया था? इस दशा में मेरा क्या कर्त्तव्य हो सकता है, इसे मै समझता हूँ। अंग्रेज सरकार और कोटा के राजा के बीच के व्यवहारों में मेरा वही स्थान है जो एक मध्यस्थ का हो सकता है और मैं ईमानदारी के साथ जालिम सिंह को कोटा के शासक की हैसियत से जानता हूँ। सच बात यह है कि अगर किशोर सिंह का मस्तिष्क खराब न किया गया होता तो जो अशान्ति पैदा हुई, उसकी किसी प्रकार सम्भावना न थी।

महाराव किशोर सिंह ने अपने पत्र में सन्धि का प्रस्ताव भी किया है, मुझसे न्याय की मॉग भी की है और नाना जी पर पूर्ण रूप से विश्वास भी प्रकट किया है। लेकिन उसकी ये तीनों बातें उसके अस्तित्व को कहॉ ले जाकर पटकेगी, इसे उसने समझने की कोशिश नहीं की। मुझसे लाभ की मॉग करने का अर्थ यह है कि उसको मुझ पर सन्देह है। संधि का प्रस्ताव करने का अभिप्राय यह है कि वह पूर्व स्वीकृत संधि को स्वीकार नहीं करना चाहता। क्योंकि उस संधि की दो शर्तो को छोड़ देने का अर्थ है, सधि के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना। जालिम सिंह के शासन को स्वीकार करने के बाद भी अपनी शर्तो के द्वारा उसे प्रत्येक अधिकार से वंचित कर देना क्या अर्थ रखता है, इसे वही समझ सकता है। वास्तव मे महाराव किशो[illegible] सिंह ने जो कुछ किया, उसके अपराधी वे है, जिन्होंने उसके भोलेपन का लाभ उठाया औ[illegible] उसे जालिम सिंह के विरुद्ध उकसाकर खडा कर दिया।

महाराव किशोर सिह ने अपनी जो माँगे लिखकर भेजी हैं, वे मैत्री के आधार [illegible] होने वाली किसी सधि का समर्थन नहीं करतीं। यदि उनको मान भी लिया जाये तो उसी समय से जालिम सिंह और उसके उत्तराधिकारियो के अधिकारो का अन्त हो जाता है। उसके बा[illegible]

उनके अधिकारों का प्रश्न किशोर सिंह की दया पर निर्भर हो जाता है। जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन कोटा राज्य की रक्षा करने और उसकी मर्यादा को कायम रखने में व्यतीत किया, उसके साथ ऐसा नहीं किया जा सकता और यदि कोई करता है तो वह न्यायपूर्ण नहीं हैं।

अपनी माँगों को लिखकर भेज देने के पहले ही महाराव किशोर सिंह ने अपने आदमियो को युद्ध के लिये एकत्रित किया था। इसलिये पूर्व स्वीकृत संधि को कायम रखने के लिए अंग्रेजी सेना को आदेश दिया गया ओर वह सेना कालीसिन्धु नामक स्थान पर पहुँच गयी। इस स्थान के एक तरफ महाराव की सेना थी और दूसरी तरफ जालिम सिंह की। दोनों ओर की सेनाओं के पहुँचने के बाद पानी का बरसना प्रारम्भ हुआ और कई दिनों तक लगातार भयानक रूप से पानी बरसता रहा। उस वृष्टि से नदी मे बाढ़ आ गयी और एक ऐसी भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी, जिससे महाराव का सम्पूर्ण विश्वास और भरोसा नष्ट हो गया। उसने फिर से मेल करने का भाव प्रकट किया और अंग्रेज प्रतिनिधि पर अपना विश्वास स्वीकार किया। लेकिन उस समय भी वह कहता रहा। "सम्मान खोकर जिन्दा रहने से क्या लाभ और अधिकारो के बिना राज्य को क्या फायदा, पूर्वजों के राज्य को खोकर जीवित रहने से मर जाना अधिक अच्छा है।"

महाराव किशोर सिंह की अपेक्षा जालिमसिंह का व्यवहार इन दिनों मे कुछ कम उलझन से भरा हुआ न था। वह बार-बार अपनी राजभक्ति का परिचय देता था और अपने सफेद बालो में किसी को कालिमा लगाने का मौका नहीं देना चाहता था। अपनी रक्षा के लिए उसने सधि को ढाल बना लिया था। यद्यपि वह भविष्य मे अपने अधिकारो की सुरक्षा चाहता था। लेकिन उसके लिए वह स्वयं कुछ करना नहीं चाहता था। उसको भय था कि मैंने जीवन-भर इस राज्य की रक्षा की है। इस समय अपने पक्ष का समर्थन करने से मैं बदनाम हो जाऊँगा। यद्यपि उससे स्पष्ट रूप मे यह बात कही गयी कि अगर आप भविष्य में अपने उत्तराधिकारियों के लिए अधिकारों का निर्णय चाहते हैं तो आपको खुलकर अपने पक्ष का समर्थन करना चाहिये। राजभक्ति का प्रदर्शन करने से काम न चलेगा। लेकिन जालिम सिंह के मन के भाव डावॉडोल हो रहे थे। मैंने अनेक बार उसको दुविधा की बाते कहते सुना और उसे सचेत करते हुए मैने कहा कि अब भी अवसर है। लेकिन अन्तिम समय की दुविधा प्रतिकूल परिणाम का परिचय देती है। यद्यपि दोनों तरफ की परिस्थितियॉ उस समय अत्यन्त कठोर हो रही थी, इसलिए शॉतिपूर्ण उपायो का अवलम्बन बहुत दूर हो गया था।

महाराव किशोर सिह ने मेरे पास पत्र भेजकर हॉ अथवा नही की प्रतीक्षा की थी और विरोधी अवस्था को समझने के पहले ही वह युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार था। इसलिए उसके साथ मुकाबला करने के लिए जालिम सिंह से परामर्श हुआ और एक सम्मिलित सेना तैयार की गयी। उस सेना के अधिकारियों के सम्बन्ध में भी हमारे साथ उसने बातचीत की। उसके प्रार्थना करने पर एक अग्रेज सेनापति ने उसको अपनी सेना की सहायता दी।*

---

* पाँच नम्बर रेजीमेण्ट देशी पैदल सेना के सेनापति लेफ्टिनेन्ट मिल ने अपनी तरफ से युद्ध मे जालिम सिंह की सहायता करना स्वीकार किया और वह युद्ध में गया। एक सेनापति से इससे अधिक और क्या आशा की जा सकती है।

पहली अक्टूबर को प्रात:काल होते ही सेनायें आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ीं। जालिम सिंह की सेना में आठ दल पैदल सैनिकों के थे, बत्तीस तोपें थीं और चौदह दल अश्वारोही सैनिकों के थे, प्रत्येक दल में दो सौ सैनिकों की संख्या थी। इनमें से पाँच पलटनें अर्थात् पाँच दल पैदल और दस दल अश्वारोही अपने साथ चौदह तोपें लेकर आगे बढ़े। शेष सेना पाँच सौ गज की दूरी पर जालिम सिंह के साथ आवश्यकता के लिए सुरक्षित रखी गयी। अंग्रेजी सेना में दो दल पैदल और छ: दल अश्वारोही सैनिकों के थे। उसमें एक दल गोलन्दाजों का था। यह सेना राव राणा जालिम सिंह की दाहिनी तरफ होकर चली। दोनों सेनायें आगे जाकर नदी से कुछ दूरी पर एक ऊँचे मैदान में खड़ी हो गयी। महाराव किशोर सिंह की सेना नदी की दूसरी तरफ थी। उसने अपने शिविर को छोड़ कर सैयद अली सेनापति की सेना को बाईं तरफ लगाया और स्वयं अपने पाँच सौ हाड़ा राजपूतों को लेकर दाहिनी ओर खड़ा हुआ। दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिए विल्कुल तैयार थीं। उस समय मैंने एक बार अंग्रेज सेनापति की ओर देखा और फिर क्षण भर में मैने सोच डाला कि मुझे एक वार इस समय महाराव किशोर सिंह को समझाने का काम कर लेना चाहिये। कदाचित् इस समय मुझे सफलता मिल जाये और उसकी समझ में आ जाने से होने वाला विध्वंश और विनाश बच जाये।

यह सोचकर मैंने अपने सेनापति को आक्रमण करने से रोका। इसके बाद दोनों ओर की सेनाओं के बीच में जाकर मैंने युद्ध रोकने का प्रस्ताव किया और कहा : "हमारे और आपके लिए यह जरूरी है कि युद्ध रोका जाये। महाराव किशोर सिंह को सम्मानपूर्वक कोटा के राज सिंहासन पर बिठाया जाएगा और सभी के अब तक के अपराधों को क्षमा किया जाएगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए इस समय केवल पन्द्रह मिनट का समय है। उसके बाद युद्ध अनिवार्य हो जायेगा।"

इस प्रस्ताव को सुन कर कर महाराव ने जो उत्तर दिया, उससे साफ जाहिर हो गया कि उसने अपने पत्र में लिखकर जो शर्तें भेजी हैं, उसमें से वह एक भी शर्त छोड़ने के लिए तैयार नहीं है और अपने साथ तीन हजार सैनिकों को लेकर ही वह कोटा में प्रवेश करना चाहता है।

पन्द्रह मिनट का समय बीत गया। उस प्रस्ताव के निष्फल होते ही सेनायें आगे बढ़ीं। महाराव की जो सेना दाहिनी ओर लगी हुई थी, उसने जालिम सिंह की सेना को रोकने के लिए आगे कदम बढ़ाये। प्रस्ताव में दिया गया समय बीत चुका था। इसलिए युद्ध का आदेश मिलते ही जालिम सिंह की तरफ से गोलों की वर्षा आरम्भ हो गयी और उसके बाद उसकी अश्वारोही सेना आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ी। हाड़ा राजपूतों ने सदा की भाँति इस अवसर पर भी अपनी वीरता का प्रदर्शन किया और उन्होंने फतेहाबाद तथा धौलपुर के युद्ध की भाँति इस युद्ध में भी भयानक रूप से आक्रमण किया, जिससे जालिम सिंह की तरफ के बहुत से सैनिक गोलियो की वर्षा मे मारे गये। हाड़ा राजपूत भीषण रूप से मार करते हुए उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर जालिम सिंह मौजूद था। लेकिन वहाँ पर उनकी शक्तियाँ निर्बल पड़ गयीं और वे भागने के लिए कोई रास्ता न पाकर नदी को पार कर दूसरी तरफ निकल गये। महाराव को जालिमसिंह की तरफ के चार सौ अश्वारोही सैनिकों ने घेर लिया।

उसके साथ के हाडा राजपूत उसे छोडकर और नदी के पार जाकर लगभग आधा मील की दूरी तक चले गये थे। इस समय जालिम सिह की सहायक सेना ने आगे बढकर महाराव की सेना को तितर-वितर कर दिया। अंग्रेजी सेना ने तेजी के साथ नदी को पार किया और जेसे ही उसने हाडा राजपूतों पर आक्रमण करके खत्म कर देने की कोशिश की, वैसे ही वे दक्षिण की तरफ से भाग गये। इसी समय दो दल सैनिको के महाराव पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ। उस समय मालूम हुआ कि जो लोग महाराव की तरफ से युद्ध क्षेत्र छोड़ कर भागे थे, वे पिण्डारी लोग थे, राजपूत नही थे। राजपूत अब भी युद्ध में दीवार बनकर खड़े थे। उनके साथ युद्ध करते हुए हमारी सेना पीछे हट गयी, उसी समय हमारे दो शूरवीर युवक मारे गये। उनमे एक क्लर्क और दूसरा रीडर था। दोनो चौथी रेजीमेण्ट में लेफ्टीनेन्ट थे। उनका प्रसिद्ध कमाण्डर किसी प्रकार बच सका। इसके कुछ ही देर बाद एक दूसरी अंग्रेजी सेना युद्ध करते हुए आगे बढ़ी, उस समय महाराव की सेना पीछे हट कर एक विशाल बाजरे के खेत मे पहुॅच गयी। अंग्रेजी सेना ने उसका पीछा किया और उसने बाजरे के खेत में पहुॅचने पर पृथ्वीसिंह को घायल पडा हुआ देखा। उसी समय उसे उठाकर अग्रेज सेना ने अपने सैनिको के द्वारा शिविर में भेज दिया। अग्रेजी शिविर म पहुॅच जाने पर उसकी बडी सावधानी के साथ सुश्रुपा और चिकित्सा की गयी। परन्तु वह बच न सका और दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय उसके साथ कुछ चीजे पायी गयीं। उनमें से एक अंग्रेज सैनिक ने उसकी तलवार और अंगूठी ले ली और मोतियो की माला, कटार एवम् अन्य मूल्यवान आभूपण उसने मुझे दे दिये। मैंने वे चीजे पृथ्वीसिंह के लडके को सम्हाल कर रखने के लिये दे दी, जो कोटा के सूने सिंहासन का पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी था।

अग्रेजी सेना के किसी सेनिक ने आक्रमण करके पृथ्वीसिंह को नहीं मारा था, बल्कि भालों की मार के समय वह अनायास ही घायल हो गया था। अंग्रेजी सेना ने महाराव की सेना के साथ युद्ध किया था, लेकिन उनके एक भी सैनिक ने उसके पास पहुॅचने की चेष्टा नहीं की थी। इसलिये मालूम होता है कि महाराव के किसी शत्रु ने विश्वासघात करके पृथ्वीसिंह को घायल किया था। क्योंकि पृथ्वीसिंह के शरीर पर सामने कोई भी चोट न थी। उसकी पीठ पर भाले की लगी हुई चोटे इस बात का स्पष्ट प्रमाण देती थीं कि उस पर उसी के पक्ष के किसी आदमी का आक्रमण था और उसने किसी दूरवर्ती अपने स्वार्थो की भावना से प्रेरित होकर इस प्रकार विश्वासघात किया था।

महाराव की सेना बाजरे के विशाल खेत मे जाकर इधर-उधर हो गयी और उसने अपनी रक्षा की। उस खेत के आगे इतना घना जंगल था कि वहॉ पहुॅच जाने पर उस सेना के ऊॅचे हाथी भी दिखायी न पडे। इस युद्ध मे हाडा राजपूतो ने अपनी असीम वीरता का प्रदर्शन किया। लेकिन दो शूरवीरो ने उस समय अपनी जिस राजभक्ति का परिचय दिया, उसका यहॉ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। वह राजभक्ति ग्रीस और रोम के प्राचीन वीरों की वीरता से किसी प्रकार कम नहीं मानी जा सकती। पहले यह युद्ध एक ऊंचे मैदान में आरम्भ हुआ था। लेकिन अन्त मे युद्ध करती हुई सेनाये एक ऐसे स्थान पर पहुॅच गयीं, जो संकीर्ण था और क्रमशः ऊंचा होता गया था। जालिम सिह की सेना उस संकीर्ण स्थान से होकर जब जा रही थी, एकाएक नदी की दूसरी तरफ की एक ऊंची भूमि से गोलियॉ आकर उस पर पडी

लेकिन अपनी ओर की सेना को गोलियॉ चलाने का आदेश नहीं दिया गया था। इसलिये वह सेना रुक कर उस तरफ देखने लगी जिधर से गोलियॉ आ रही थीं। मालूम हुआ कि नदी के पार की एक ऊंची भूमि पर खड़े हुए दो आदमी गोली चला रहे हैं। सेना चुपचाप खड़ी रही और उसके बाद उसको आगे बढ़ने की आज्ञा दी गयी। उसी समय सेना के आगे के कई एक सैनिक गोलियो से घायल हो गये। उन दोनों आदमियों की तरफ से लगातार गोलियॉ आ रही थीं। परन्तु हमारी तरफ से एक भी गोली नहीं मारी गयी इसलिये अपनी सेना को आदेश दिया और उन दोनों पर गोले मारे गये लेकिन एक भी गोला उनके नहीं लगा। वे दोनों अब भी बड़ी निर्भीकता के साथ गोलियॉ चला रहे थे ओर उनकी गोलियों से जालिम सिंह के सैनिक घायल हो रहे थे। फिर भी उन दोनों के साहस को देखकर उनके प्राणों की रक्षा करना आवश्यक मालूम हुआ। इसलिये जालिम सिंह की सेना को आदेश दिया गया कि इस सेना के जो लोग आगे बढ़कर उन लोगो पर आक्रमण करने का साहस करें, उन्हें आगे बढ़ना चाहिये। यह सुनते ही दो रुहेले सैनिक अपने हाथो में तलवारें लेकर आगे बढ़े और आक्रमण करके उन्होंने उन दोनों को मार डाला। आश्चर्य की बात यह हे कि उन दो आदमियों ने जालिम सिंह के दस दल सैनिकों और बीस तोपों का सामना किया और लगातार गोलियॉ चलाई। वे दोनों हाड़ा राजपूत थे, जिनको जालिम सिंह ने उनके अधिकारो से वंचित किया था। इसीलिये इस अवसर पर आकर उन्होंने बदला लिया और अन्त में वे मारे गये।

हाड़ौती राज्य के जिन लोगों ने महाराव के साथ इस समय अपनी राजभक्ति का परिचय दिया, उससे मालूम होता है कि राजपूतों में ऐसे कठोर अवसरों पर भी अपना धर्म-पालन करने का कितना भाव रहता है। साथ ही यह भी प्रकट होता है कि जालिम सिंह का शासन कितना कठोर था। यहॉ तक कि जो एक सामन्त उस सन्धि में प्रतिनिधि के रूप में रहा था, उसने भी महाराव का साथ दिया और उसका एक लड़का इस युद्ध में बुरी तरह से घायल हुआ। यद्यपि वह सामन्त जालिमसिंह के साथ वैवाहिक सम्वन्ध रखता था ओर उसने राज राणा के द्वारा कोटा राज्य में जागीर पायी थी।

महाराव किशोर सिंह ने अपनी बची हुई सेना के साथ युद्ध से निकलकर एक पहाड़ी नदी को पार किया। वहॉ पर पहुॅचने पर उसका घोड़ा गिर गया क्योंकि उसके शरीर में गोली का एक घाव था।

इसके बाद महाराव किशोर सिंह अपने तीन सौ अश्वारोही सेना के साथ बड़ौदा चला गया, जिन लोगो ने अपनी राजभक्ति का परिचय देकर महाराव का साथ दिया था, उनको हमने अपना शत्रु नहीं समझा और इसलिये मराठो की तरह उनका पीछा करके हमने उनको नष्ट करने की चेष्टा नहीं की। वे हमारे विरुद्ध युद्ध में लडे थे। लेकिन आत्म-रक्षा के लिये उनको ऐसा करना पड़ा था।

सन्धि के द्वारा कोटा राज्य के भविष्य को जिस प्रकार घरेलू और बाहरी विपदाओ तथा संघर्षो से अलग रखने की कोशिश की गयी थी, इन दिनों में आपसी विद्रोह ने उसको नष्ट कर दिया। इस विद्रोह के दो कारण थे। एक पृथ्वीसिंह था, जो युद्ध मे मारा गया था। इस युद्ध में कोटा के बहुत से सामन्तो ने जालिम सिह का पक्ष छोड़कर महाराव का साथ दिया था।

लेकिन पहले उनको इस बात का विश्वास न था कि युद्ध का यह परिणाम होगा। यदि हम चाहते तो उनको राजस्थान के किसी राज्य में आश्रय नहीं मिल सकता था। लेकिन ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं था। महाराव के शिविर में इन सामन्तों के बहुत से कागज-पत्र हमें मिले, जिनसे मालूम हुआ कि राज्य के सामन्तों और हाड़ा राजपूतों को अपने पक्ष में करने के लिये उनके साथ किस प्रकार षड्यंत्र किये गये थे। उसका परिणाम यह हुआ कि महाराव का साथ देने वालो को भयानक क्षति उठानी पड़ी। लेकिन उस युद्ध के बाद सबको क्षमा कर देने की घोषणा की गई और जालिम सिंह के द्वारा यह भी घोषणा हुई कि जो सामन्त राज्य को छोड़कर चले गये हैं, वे लौट कर अपने स्थानों में आ सकते हैं। वे किसी प्रकार अपराधी न समझे जायेगे, इस घोषणा के बाद कुछ सप्ताहों में सभी सामन्त और सरदार अपने नगरों में आ गये और राज्य में पूर्ण रूप से शान्ति कायम हो गयी।

राजनीतिक कार्यों में प्रवेश करने के पहले सन् 1807 ईसवी में मैंने कोटा राज्य के अनेक स्थानों में घूम कर वहां की ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित करने का काम किया था। राहतगढ़ में सिंधिया के दरबार को छोड़कर अपने कुछ आदमियों के साथ चन्देरी के घने जंगलों में मैं घूमता हुआ पश्चिम की तरफ आगे बढ़ा और बेतवा तथा चम्बल नदी के मध्यवर्ती स्थानों मे घूमता रहा। इसके बाद बारा नामक स्थान पर पहुँचकर मैंने मुकाम किया। उसके पश्चात् हाड़ौती से सत्रह मील की दूरी पर काली सिंध नामक नदी के किनारे मैं पहुँच गया और अपने आदमियों से वहीं पर आने के लिए मैंने कह दिया था। बमोलिया नामक नगर के पास से जाने के समय मुझे कुछ आदमी मिले। उन्होंने मुझे घेर कर कहा कि आपको हमारे राजा के पास चलना पड़ेगा। उस समय मैं बहुत थका हुआ था। लेकिन उन आदमियों की बात को मान लेना मेरे लिए आवश्यक था। इसलिए मैं उनके साथ चल पड़ा। एक बगीचे के भीतर जाकर घने वृक्षों के बीच में मैंने एक ऊँचा चबूतरा देखा। इस चबूतरे पर बमौलिया का सामन्त एक कालीन पर बैठा हुआ था। उसके पास कुछ और लोग भी बैठे हुए थे। उन लोगों ने मेरे साथ बहुत सम्मान प्रकट किया। चबूतरे के पास पहुँच कर मैंने अपने बूट खोलने की कोशिश की लेकिन कुछ थकावट और फिर जल्दी के कारण मैं अपने बूट खोल नहीं सका। मेरे पहुँचने के बाद तुरन्त जल-पान की सामग्री मँगाई गई और एक ब्राह्मण हाथ मुँह धोने के लिये पानी ले आया। मैं उस समय राजपूतो के आचार-व्यवहार से परिचित न था। इसलिए मेरी समझ मे जो कुछ आया, वैसा मैंने किया, कुछ देर तक मैंने वहाँ विश्राम किया। वहाँ पर बैठे हुए सामन्त और उनके साथ के आदमियों से मेरी बराबर बातें होती रहीं। यद्यपि मैं इतना थका हुआ था कि चुपचाप लेटे रहकर कुछ देर तक केवल विश्राम करना चाहता था परन्तु मेरे वहाँ पहुँचने के बाद कुछ ही देर मे मनुष्यों की एक भीड़ लग गयी और वहाँ पर मेरे आने का समाचार पाकर आदमियो के साथ बहुत-सी स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ मुझे देखने के लिए आयीं। इस प्रकार आने वालों की वहाँ पर एक अच्छी भीड़ लग गयी। वे सभी मेरी ओर देख रहे थे। मेरी घोडी लँगड़ी हो गयी थी। इसलिये बमौलिया के सामन्त ने मेरे लिए एक अच्छा घोडा कसवा कर तैयार करवा दिया। मेरे चलने के समय जब उस घोड़े के लिए मुझसे कहा गया तो मैने बड़े सम्मान के साथ सामन्त के घोड़े को लेने से इनकार किया। अपने डेरे पर लौटकर जाने के बाद मैंने कई एक छोटी-छोटी चीजें उपहार स्वरूप सामन्त के पास

भेजी। इसके चौदह वर्ष बाद मॉगरोल में महाराव के साथ युद्ध आरम्भ होने से दूसरे दिन बमौलिया के सामन्त की माता का भेजा हुआ एक पत्र मिला। सामन्त की माता ने मुझे आशीर्वाद देते हुए पत्र में लिखा था कि मेरे लडके ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध में महाराव किशोर सिंह का साथ दिया है। इसलिए मेरे लड़के की आप रक्षा करेंगे। मैंने बड़े हर्ष के साथ उस पत्र का उत्तर देते हुए सामन्त की माता को लिखा कि पत्र लाने वाले आदमी के लौट कर आपके पहुॅचने के पहले ही आपका लड़का सुरक्षित आप के पास पहुॅच जायेगा। बमौलिया का सामन्त आथून के उस सामन्त का वंशज था,जो किसी समय जालिम सिंह का महाशत्रु था।

महाराव किशोर सिंह ने मेवाड़ के नाथद्वारा में जाकर धार्मिक जीवन आरम्भ कर दिया। उस समय उस की भावनाओं को देखकर और सुनकर मालूम हुआ कि उसने राजनीतिक अशान्ति से अपने आपको अब बिल्कुल अलग कर लिया है। उसके नेत्रों का भ्रमात्मक आवरण अब हट गया था और उसकी समझ में आ गया था कि लोगों ने मुझे जिस मार्ग पर ले जाने की कोशिश की थी, वह मार्ग सही नहीं था। मैंने ऑखें मूँद कर उनका विश्वास किया था। अब उसकी समझ में आ गया कि जो सन्धि हुई थी, वह सही थी और उसमें जो दो शर्तें बाद में शामिल की गयीं थी, वे सही थीं। महाराव के सामने अब कोई उलझन न रह गयी थी, अपने जीवन के इस परिवर्तन के साथ वह मेवाड़ के नाथद्वारा में पहुँच गया था और धार्मिक जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। उसके जीवन के परिवर्तन के बाद उसके पास उन बातों का उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजा गया, जिसके आधार पर वह सम्मानपूर्वक कोटा में आकर राज सिंहासन पर बैठ सकता था। यह पत्र उसके पास भेज दिया गया और उसकी स्वीकृति मिलने पर तुरन्त एक इकरारनामा लिखा गया और उसमें उन सभी बातों का निर्णय किया गया, जिनको लेकर राणा जालिम सिंह और उसके बीच कभी कोई संघर्ष पैदा हो सकता था। उस इकरारनामे में महाराव के पद की मर्यादा सम्पूर्ण और सुरक्षित रखी गयी और पूरी शक्ति लगातर उसमें इस बात का निर्णय किया कि जिससे भविष्य में कभी भी विरोध और विद्रोह की सम्भावना न रह गयी थी। महाराव के पूर्वजों में कभी किसी राजा को राज्य का कोई हिस्सा नहीं दिया गया था। परन्तु इस इकरारनामे के अनुसार महाराव किशोर सिंह को कोटा राज्य की आमदनी का बीसवॉ भाग देने का निर्णय किया गया। उदयपुर के राणा के पारिवारिक व्यय के लिये उसके राज्य से जितना मिलता है, महाराव किशोर सिंह को मिलने वाली यह आमदनी उसके बराबर होगी।

यह इकरारनामा लिखकर तैयार कर लिया गया और उसमें दोनों पक्षों के सम्मान और अधिकारों का पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया। साथ ही इस बात की चेष्टा की गयी कि एक बार दोनों पक्षों में सद्भाव कायम हो जाने के बाद जो फिर से विरोध की आग प्रज्वलित हुई थी, दूसरी बार फिर वैसा न होना चाहिए। इस प्रकार की सभी बातों को सोच-समझ कर इकरारनामे मे उनका उल्लेख करके जब सन्तोपजनक व्यवस्था कर ली गयी तो उसके बाद महाराव किशोर सिंह नाथद्वारा से चलकर कोटा में आया और बड़े समारोह के साथ जिस दिन महाराव को राजसिंहासन पर बिठाना था, उसी दिन एक भीपण पड़यंत्र का जन्म हुआ। एक आदमी लॅगड़ी दशा में वहॉ पर आया और उसने अपना नाम बिशन सिंह बताकर जाहिर किया कि जालिम सिंह के लड़के माधव सिह की आज्ञा से मुझे लॅगड़ा कर दिया गया है।

इस आदमी की आकृति और महाराव के भाई विशन सिंह की आकृति एक थी। दोनो की शारीरिक बातों में इतनी अधिक समता थी कि सहज ही राज्य के किसी आदमी को उस पर इस तरह का संदेह नहीं हो सकता था कि वह विशन सिह नहीं है। उस आदमी के इस प्रकार प्रचार करने से पहले तो कोटा के लोगों की हवा बिगड़ी। कुछ उत्तेजना बढ़ती हुई मालूम हुई। लेकिन उसके बाद बहुत जल्दी यह मालूम हो गया कि जो आदमी विशन सिंह के नाम से कोटा मे आया है, वह महाराव किशोरसिंह का भाई नही है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि महाराव किशोर सिह को बुलाकर राज सिंहासन पर बिठाने की जो चेष्टा की जा रही है, उसको नष्ट करने के लिए इस प्रकार का यह एक षड़यंत्र रचा गया है। उदयपुर के राणा का विवाह महाराव किशोर सिंह की बहन के साथ हुआ था। इसलिए वहाँ के राणा की बहुत बडी अभिलाषा यह थी कि महाराव किशोरसिंह को कोटा के सिंहासन पर बिठाया जाये।

राणा ने जब उस षड़यंत्र का समाचार सुना और यह भी सुना कि उसका प्रभाव महाराव किशोरसिंह के सिंहासन पर बैठने पर पड रहा है तो राणा ने बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी के साथ उस षड़यंत्रकारी को पकड़वाकर उदयपुर राजधानी में बुलवा लिया। उसके षड़यंत्र का रहस्य बाद में कुछ प्रकट न हुआ। लेकिन यह मालूम हो गया कि विशन सिंह के नाम से जो आदमी आया था, वह जयपुर राज्य का रहने वाला था और किसी अपराध के कारण उसको दण्ड देकर लँगडा कर दिया गया था। उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का रहस्य जाहिर होने पर उसको प्राणदण्ड दिया गया।

जो षडयंत्र रचा गया था, उसका अन्त हो गया। बड़े सम्मान और समारोह के साथ महाराव किशोरसिंह का आगमन कोटा में हुआ। राज्य की सम्पूर्ण प्रजा ने उस समय खुशियाँ मनायी। महाराव किशोरसिंह ने इस बार सिंहासन पर बैठकर उन सभी बातों को अपने हृदय से निकाल दिया, जिसके कारण उसने एक बार सिंहासन छोड़ दिया था और राज्य में भयानक विद्रोह पैदा हो गया था।

महाराव का भाई विशन सिंह राजधानी छोड़कर कोटा से बीस मील की दूरी पर अन्ता नामक स्थान में रहता था। सिंहासन पर बैठने के बाद महाराव ने कुछ ग्राम और नगर देकर विशन सिह की जागीर बढा दी।

इसके पहले एक बार और महाराव किशोरसिंह और जालिम सिंह में सद्भाव कायम हुआ था। उस समय मैं एक महीने तक कोटा राजधानी में इस अभिप्राय से रहा था कि जिससे उन दोनो के बीच का सद्भाव मजबूत हो जाए और फिर किसी प्रकार की उसमें कोई बाधा न पड़े। महाराव के सिहासन पर बैठ जाने के बाद और राज्य मे पूर्ण रूप से शान्ति कायम हो जाने के पश्चात् जालिमसिंह राजधानी से बाहर छावनी में जाकर रहने लगा। इसके बाद जालिम सिंह पाँच वर्ष तक और जीवित रहा।

कोटा के राज-सिंहासन पर जितने भी राजा बैठे थे, उनमे जालिम सिंह राजा तो न था लेकिन उसने एक राजा की हैसियत से वहाँ का शासन किया था। उसके जीवन मे अनेक विशेषतायें थीं। इसलिए कोटा राज्य के इतिहास का अन्त करते हुए जालिम सिंह के अन्तिम जीवन मे उसकी कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना जरूरी है।

जालिम सिंह के सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करने के बाद हम यह कहने का साहस करेंगे कि वह एक असाधारण पुरुष था। यही कारण था कि उसने कोटा राज्य में अपना प्रभुत्व कायम किया था। वह प्राय: कहा करता था कि अपने मन के भावों को मैं ही जानता हूँ। यह बात सही है कि वह एक साधारण पुरुष न था और इसलिए उसको समझ सकना साधारण काम न था। कोटा में इतना बड़ा अधिकार प्राप्त करने के बाद भी उसने सुख और विलासिता का जीवन कभी नहीं बिताया। वह स्वाभाविक रूप से गम्भीर था। अपने प्रभुत्व के दिनों में वह कभी बहुत प्रसन्न नहीं हुआ और भयानक से भयानक कठिनाईयों के समय भी उसको किसी ने कभी घबराते नहीं देखा। वह सुख और दुःख में, कठिनाईयों और विपदाओं में एवम् सहयोग और विद्रोह में एक सा रहता था। उसकी सब से बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें आत्म संयम था और आत्म बल था। जिसमें आत्म-बल होता है, वह भयानक कठिनाइयों में भी प्रसन्न रहता है। जालिम सिंह में इस गुण का अभाव न था।

जालिम सिंह के बहुत निकट रहकर जिसने उसको समझा है, वह जानता है कि वह आशावादी था। अपने किसी भी कार्य में वह कभी असफलता का स्वप्न नहीं देखता था। वह कहा करता था कि एक शक्तिशाली पुरुष को सदा सफलता मिलती है। असफलता मनुष्य की निर्बलता होती है। वह जल्दी किसी पर संदेह नहीं करता था। उसका विश्वास था कि मनुष्य को अपनी निर्बलता में बहुत जल्दी दूसरों पर अविश्वास पैदा होता है। उसका यह भी विश्वास था कि जो दूसरों पर विश्वास करता है उसको कभी क्षति नहीं उठानी पड़ती। सचमुच विश्वास करना मनुष्य का एक अच्छा गुण है।

जालिम सिंह अपने कर्मचारियों से काम लेना जानता था और अपने अच्छे व्यवहारों से वह उनके हृदयों पर अपना अधिकार कर लेता था। शासक का यह एक बहुत ऊँचा गुण होता है। पिछले पृष्ठों में यह लिखा गया है कि राज्य के कितने ही कर्मचारियों और अधिकारियों के साथ वह मित्रता का व्यवहार करता था। राज्य के कार्य में उसकी सफलता का यह एक बहुत बडा कारण था। उसकी बुद्धिमानी की सब से बड़ी खूबी यह थी कि वह जिन कर्मचारियों और अधिकारियों पर विश्वास करता था और उनको अपना मित्र समझता था, उनके द्वारा वह कभी नियंत्रित नहीं होता था, बल्कि उनको वह स्वयं अपने नियंत्रण में रखता था। कर्मचारियो और अधिकारियो को संतुष्ट रखने के लिए वह समय पर वेतन देता था और उनके अच्छे कामों के लिए पुरस्कार देकर उनके उत्साह को बढ़ाता था।

जालिम सिंह में बातचीत करने का एक अच्छा गुण था। अपने तर्क और सद्भाव के द्वारा वह लोगों को प्रभावित करना जानता था।

जालिम सिंह ने कोटा राज्य में खेती के कार्य में बड़ी उन्नति की थी। वह कृषि-व्यवसाय को भली प्रकार समझता था और अनाज की पैदावार को बढ़ाना जानता था। यही कारण था कि उसके पहले राज्य में खेती के द्वारा जो अनाज पैदा हुआ करता था उसमें उसके समय बहुत वृद्धि हो गयी थी। जालिम सिंह अनाज की पैदावार का महत्व समझता था और इसलिए वह राज्य की खेती के प्रति अधिक ध्यान देता था। उसके समय में कोटा राज्य में अनाज की पैदावार इतनी अधिक होती थी कि राज्य के लोग कभी अनाज का अभाव महसूस

नहीं करते थे। इतना ही नहीं बल्कि आवश्यकता पड़ने पर राजस्थान के दूसरे भागों और भारतवर्ष के अधिकांश नगरों में कोटा का अनाज जाया करता था।

जालिमसिंह में अनेक गुण आश्चर्यजनक थे। अपराधियों के साथ वह कठोर व्यवहार करता था और जिन लोगों को वह समझता था, उनकी वह पूर्ण रूप से सहायता करता था। अपने इन गुणों के अनुसार कभी-कभी वह साधु और सन्यासियों की भिक्षा का दसवाँ भाग ले लेता था और जहाँ आवश्यकता समझता था लोगों को सोने के आभूपण दान में देता था। उसने अपने राज्य के सामन्तों को निकाल कर उनकी भूमि पर अधिकार कर लिया था और दूसरे राज्यों के सामन्तों को अपने यहां आश्रय देकर उनकी सभी प्रकार सहायता की थी।

जालिम सिंह कवियों और जादूगरों पर विश्वास नहीं करता था। झूठी प्रशंसा करने वालों पर वह क्रोध करता था। इस प्रकार की अपनी प्रशंसा सुनकर वह कभी प्रसन्न नहीं होता था। कवियों की झूठी प्रशंसाओं से उसे एक प्रकार की चिढ़ थी। उसका कहना था कि इन कवियों ने अपनी इन आदतों के द्वारा न जाने कितने राजवंशों का विनाश किया है। अपनी इन्हीं आदतों के लिए कोटा से लेकर बाहर तक प्रसिद्ध था और इसीलिए भाट और कवि उसके पास कभी आते न थे।

जालिम सिंह बहुत अधिक परिश्रमी था। पच्चीस वर्ष में उसके परिश्रम को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। वह आलसी न था और जो आलस्य करते थे, उनसे वह अप्रसन्न रहता था। वह कहा करता था कि शासक को विलासी और आलसी नहीं होना चाहिए। उसका विश्वास था कि अनाज में घुन की तरह विलासिता मनुष्य का क्षय करती है इसीलिए वह स्वयं विलासिता का विरोधी था और दूसरों को विलासिता में नहीं देखना चाहता था। हर समय वह कुछ काम किया करता था और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए वह सदा शिक्षा देता था। वह कहा करता था कि एक आलसी और विलासी राजपूत अपने कर्त्तव्य और धर्म से गिर जाता है। राजवंश के लोगों को शिक्षा देते हुए वह कहा करता था कि राजा सिंहासन पर बैठकर नहीं बल्कि घोड़े पर बैठ कर राज्य की रक्षा करता है।

जालिम सिंह घोड़े पर बैठकर शिकार खेलने के लिए जाया करता था। जब उसकी दृष्टि बिलकुल निर्बल हो गयी थी और अपनी एक ऑख को वह पहले ही खो चुका था, उस समय वह पालकी में बैठकर शिकार खेलने के लिए जाता था और उसके साथ उस समय हजारों सैनिक चलते थे। शिकार पर जाने के समय अपने सामन्तों के साथ वह संकोच छोड़कर बातें किया करता था। कर्मचारियों के भीतरी भावों को जानने के लिए मौका मिलने पर वह छिप कर उनकी बातें सुना करता था। ऐसे अवसरों पर उनकी कमजोरियों को जानकर वह उनको अच्छी बाते सिखाने का प्रयास करता था।

जंगल में शिकार खेलने के बाद वह सब के साथ घने पेड़ो के नीचे बैठता था और विना संकोच के सैनिकों तथा कर्मचारियों के साथ शिकार खेलने तथा उस समय की घटनाओ पर विवाद करने में वह एक अपूर्व सुख अनुभव करता था। जालिम सिंह ऐसे अवसरो की बातचीत में सब को बाते करने का मौका देता था। उन अवसरो पर कभी-कभी हॅसी मजाक की वात आ जाती थी, उस समय वह भी खूब हॅसता था। उसके इन व्यवहारों से सैनिक और

कर्मचारी बहुत प्रसन्न होते थे, वह जब शिकार खेलने के लिए जाता था तो ऊँटों पर आटा, घी, शक्कर, तरकारी और खाने-पीने की बहुत सी चीजें साथ जाया करती थी। वह सब के साथ जंगल पहुँच कर जब शिकार खेलने चला जाता था उस समय आयी हुई सामग्री से भोजन बनाने का कार्य आरम्भ हो जाता था और शिकार खेलकर लौटने के बाद सभी लोग बैठकर भोजन करते थे। इसके बाद जालिम सिंह जंगल में बैठकर बातें करता जो उस समय राज्य के अनेक कार्यों के सम्बन्ध में वह लोगों के विचारों को जानने की कोशिश करता। उस समय खेती और दूसरे व्यवसायों के सम्बन्ध में उपस्थित लोगों के साथ बातें किया करता था।

जालिम सिंह शासन करने में बहुत कठोर था और अपराधियों को वह कभी क्षमा नहीं करता था। उसका विश्वास था कि बिना कठोर व्यवहारों के शासन की व्यवस्था कभी ठीक नहीं रह सकती। इसलिए वह इस विषय में कभी शिथिलता से काम नहीं लेता था। राज्य की दूसरी उलझनों और आपसी विरोधी बातों तथा विद्रोहों के समय भी जालिम सिंह का शासन कभी शिथिल नहीं पड़ा था। प्रत्येक परिस्थिति में वह शासन के प्रबन्ध को कभी कमजोर नहीं होने देता था। यही कारण था कि कोटा राज्य में अपराधी लोग बहुत डरा करते थे।

अच्छे और बुरे आदमियों के पहचानने की जालिम सिंह में अद्भुत क्षमता थी। वह राज्य के कर्मचारियों में कभी खराब आदमियों को नहीं रखता था। सिफारिशों पर वह विश्वास नहीं करता था। उसका विश्वास था कि राज्य का अच्छा शासन अच्छे आदमियों पर निर्भर होता है।

अपने इन सब गुणों के साथ जालिम सिंह अच्छा सैनिक और सेनापति था अनेक अवसरों पर उसने कोटा राज्य की रक्षा की और उसके गौरव को बढ़ाया। उन अवसरों पर यदि जालिम सिंह न होता तो कोटा राज्य को किस प्रकार के दिन देखने पड़ते, यह नहीं कहा जा सकता।

□

ऐतिहासिक यात्रा
मारवाड़ की तरफ

11 अक्टूबर सन् 1819 ईसवी–भारतवर्ष के अत्यन्त रोमांचकारी उदयपुर राज्य की भूमि में जब मैंने पदार्पण किया था, उस समय से लगभग दो वर्ष अब तक बीत चुके हैं। हम लोगों को कोई भी आदमी अब तक इसकी छः मील की सीमा के बाहर नहीं जान सका था। इस राज्य के प्रत्येक स्थान, मार्ग, पर्वत, शिखर, दुर्ग, देवालय, धर्मशाला, मीनार और उसके वृक्षो के साथ मेरा परिचय हो गया है। मैंने उन सबको सम्मान के साथ देखा है और राज्य के प्रत्येक मन्दिर, शिवाला और धर्मशाला को देखने में मैंने एक अद्भुत सुख का अनुभव किया है। यहाँ के समस्त टूटे-फूटे स्थानों और मुकामों का मैंने अपने नेत्रों से भली-भाँति अवलोकन किया है। ऐसा करने में मुझे अत्यधिक सुख मिला है।

मैंने इन सभी स्थानो को देख-देखकर उनकी ऐतिहासिक खोज की है। राज्य के सामन्तो से भेंट की है और उनके विषयों पर मैंने उनसे बातें की हैं। यही नहीं; सामन्तों के कर्मचारियों और उनके मन्त्रियो से भी मैंने भेंट करके उनसे भली प्रकार जानकारी ली है। मैंने उनके सब भावों और व्यवहारों को समझने की कोशिश की है। राज्य के प्रत्येक स्थान पर सम्मान के साथ मुझे सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं। मुझको किसी समय अभावों का अनुभव नहीं हुआ। जहाँ ऐसी जरूरत पड़ी है, बहुत आसानी के साथ वहाँ के लोगों के द्वारा उनकी पूर्ति हुई है। राजस्थान में उदयपुर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसकी सभी बातों को जानने के लिए मेरे साथ का प्रत्येक आदमी पहले से ही बहुत उत्सुक था और मैं स्वयं भारतवर्ष के उस प्रसिद्ध नगर को सभी प्रकार से जानना और समझना चाहता था, जो उदयपुर के नाम से विख्यात था।

इसी प्रकार यह दिन मेरे सामने आया। मैंने प्रसन्न होकर अपने सहयोगियों के साथ मेवाड़ से मारवाड़ की तरफ जाने की तैयारी की। मेवाड़ और मारवाड़ में बहुत अन्तर है। इस अन्तर को यहाँ पर स्पष्ट कर देना जरूरी मालूम होता है। मेवाड़ जितना ही सुख और सुविधाओं से परिपूर्ण है, मारवाड़ की मरुभूमि उतनी ही कष्टों और कठिनाइयों से भरी हुई है। इतना सब होने पर भी पर्यटन और अनुसंधान सम्बन्धी उत्सुकता के कारण वहाँ की कष्टपूर्ण और कठोर यात्रा हम लोगों को किसी प्रकार निरुत्साहित न कर सकी।

हमारे साथ कप्तान वाग, लेफ्टिनेन्ट केरी, डॉक्टर डंकन, पहरेदारों का एक दल और पैदल तथा सवारों की दो पलटने थीं। उदयपुर की घाटी छोड़ने के लिए हमारे साथ के सभी लोग उत्सुक थे। इसका एक कारण यह भी था कि बरसात के कारण यह घाटी स्वास्थ्य

के लिए भयानक हो जाती है। उन दिनों में झरनों और नदियों का जल उफन-उफन कर कुओं में भर जाता है और अनेक प्रकार की गन्दगी पैदा हो जाने के कारण उन कुओं के जल में काले रंग का तेल-सा तैरने लगता है। इसका फल यह होता है कि उन कुओं का जल न केवल पीने में बदजायका हो जाता है, बल्कि वह अनेक प्रकार से दूपित, अरुचिकर, अप्रिय और स्वास्थ्य को खराव करने वाला हो जाता है। उसके पीने वालों को उन दिनों में बड़ा कष्ट रहा करता है।

वहाॅ पर इन्हीं कुओं का जल पीने के काम में आता है। इन कुओं के जल को दूपित और अरुचिकर समझने के बाद भी मैं उनको शुद्ध और विकारहीन बनाने का कोई उपाय वहाॅ के लोगों को नहीं बता सका। वहाॅ के लोग इन कुओं के जल को क्षार ओर अम्ल के द्वारा शुद्ध कर लेने की कोशिश किया करते हे। उन कुओं का जल जब क्षार के द्वारा शुद्ध किया जाता हे तो वह जल किसी प्रकार भोजन बनाने और पीने के लिए वहुत कुछ काम का बन जाता है। अम्ल का प्रयोग करने से जल का दूपित अंश और विकार जल के नीचे बैठ जाते हैं। राजपूत लोग अपने मैले कपड़ों को धोने के समय साबुन का भी प्रयोग करते हैं।

12 अक्टूबर को प्रातःकाल पाॅच वजे विगुल वजा। तैयार होने के लिए यह एक आदेश था। उस बिगुल के वजते ही सभी लोग तैयार होने लगे और मैं भी अपनी तेयारी में लग गया। उस समय मैंने देखा कि पीले वस्त्र पहने हुए सैनिक वृद्ध सेनापति के सामने खड़े हैं और अश्वारोही सैनिक लाल पगड़ी बाॅधकर वड़ी तेजी के साथ पीले अॅगरखे वाॅधने, पहनने और पेटियाॅ बाॅधने में लगे हैं।

महल का नगाड़ा भी वज चुका था। वह जाहिर करता था कि सूर्यवंशी राजा जग गये हे। हम लोग तैयार होने के बाद अपने स्थानो से चलकर सूर्यद्वार पर पहुँच गये। वहाँ पर देखा कि भिण्डर, दैलवाडा, आमेट और वंशी के चार सामन्त अपनी सेनाओं के साथ तैयार खड़े हैं और राजा का आदेश पाकर हम लोगों को वहाॅ की सीमा पर पहुॅचाने के लिए तैयार हैं। राजा का यह एक अच्छा व्यवहार हम लोगो के साथ था। कुछ कठिनाइयों और आकांक्षाओं के कारण भी राज्य की सेना के साथ सीमा तक पहुँचना हम लोगो के लिए जरूरी था। इसलिए राज्य की सेना के साथ हम लोग वहाॅ से रवाना हुए और पहाडी रास्तों को हम लोगों ने धीरे-धीरे पार किया। यहाॅ तक पहुॅचा कर राज्य की सेना वापस जाने को थी। इसलिए हम लोगो ने राणा और सामन्तों को धन्यवाद देकर वहाॅ से विदा किया।

आठ वजने से पहले हम लोग तेरह मील का रास्ता तय करके उस स्थान पर पहुॅच गये। जहाॅ पर रुकने और विश्राम करने के लिए हम लोगों ने पहले से ही निश्चित कार्यक्रम बना लिया था। इसलिए वहाॅ पहुॅच कर हम लोगों ने मुकाम किया। वह स्थान मेड़ता और तुप ग्राम के बीच का था। उसके रास्ते में दोनों तरफ वहुत अच्छे वृक्ष लगे हुए हैं। उनको देखकर उस स्थान की रमणिकता का सहज ही अनुमान होता है। यहाॅ से चित्तौड़ की तरफ जाती हुई जो भूमि दिखायी देती है, वह उस स्थान की सतह से नीची है। स्थान के तीन मील उत्तर की तरफ वह स्थान है जहाॅ पर राणा और उसके सामन्त लोग शिकार खेलने के लिए जाया करते हैं। उस स्थान मे वहुत हिरण ओर बाघ पाये जाते हैं।

उस स्थान के दक्षिण में और एक मील उत्तर की तरफ बनास नदी बहती है। उस नदी में बहुत सी मछलियाँ तैरती हुई दिखायी देती हैं। उनके कारण नदी का जल देखने मे बहुत सुन्दर मालूम होता है। वहाँ से पश्चिम की तरफ तीन मील की दूरी पर विशाल उदय सागर है। कुछ कारणों से राजधानी से बाहर राणा ने यह स्थान तैयार करवाया है। यह बात जरूर है कि यह स्थान स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी मालूम होता है। लेकिन उसके तैयार कराने में केवल इतना ही कारण नहीं हैं। राज महल से इतनी दूरी पर इस स्थान के निर्माण का कुछ विशेप कारण भी है। इस स्थान को देखकर मेरे मन में अनेक प्रकार की भावनाएँ पैदा हुई। मुझे यह भी अनुभव हुआ कि राजधानी से इतनी दूरी पर इस स्थान को तैयार कराके राणा ने कम्पनी के प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए व्यवस्था की है। उसकी इस व्यवस्था में एक राजनीतिक दूरदर्शिता है, इसमें सन्देह नहीं।

पहले-पहल जब मैंने राणा से मुलाकात की तो मैंने उसको परेशान हालत में पाया। उसको देखकर और उसकी परिस्थितियों को अनुभव करके मैंने उसके साथ अपनी हमदर्दी प्रकट की। उससे उसको बहुत शान्ति मिली। उसने सहायता करने के लिए मुझसे अनुरोध किया। उसके अनुरोध को सुनकर मैंने सोचा कि यह भी अच्छा रहेगा और सहायता करने के नाम पर अनेक प्रकार से दखल देने का मुझे अधिकार रहेगा। सबसे बड़ी बात यह होगी कि ऐसा करने से राज्य के किसी व्यक्ति को सन्देह करने का मौका भी न मिलेगा।

यही हुआ भी। इस दूरवर्ती स्थान पर मुकाम मिलने के कारण राणा को अनेक प्रकार की सुविधाएँ मिलीं और उसके शासन की परिस्थितियों से हम लोगों का सम्पर्क दूर रहा। इस स्वास्थ्यपूर्ण स्थान पर रहकर हम लोगों ने सुख का अनुभव किया। कई बातों के कारण यह स्थान रमणिक मालूम हो रहा था। यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी थी। ऊँटों पर लाद-लादकर हमारा सामान यहाँ पर पहुँचाया गया और हम लोगों ने वहाँ की सभी चीजों को अपने अनुकूल बनाया।

13 अक्टूबर-उस स्थान को छोड़कर जब हम लोग रवाना हुए, उस समय सवेरा था। उस प्रातःकाल में मारवाड़ के सैकड़ों जंगली ऊँटों के चिल्लाने की आवाज सुनायी दे रही थी। उस समय कोई दूसरी आवाज हम लोगों के कानों में नहीं आती थी। लेकिन बाद में हाथियों की भयानक आवाजें सुनायी पड़ने लगी। उन हाथियों में उनके बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। वे बच्चे स्वतन्त्र रूप से इधर-उधर दौड़ते हुए कभी हम लोगों के पास आ जाते थे और कभी दूर भाग जाते थे। ऐसा मालूम होता था, मानो वे आपस में खेल रहे हैं। उनको देखकर हम लोग बहुत खुश हो रहे थे। उस समय उन हाथियों के बच्चों को देखकर और उनके चलने तथा दौड़ने से प्रसन्न होकर हम सभी लोग जोर से एक साथ हँस पड़े।

इन हाथियों के बीच में एक बच्चा आठ वर्ष का मालूम हुआ। वह अधिक ऊँचा नहीं था। लेकिन चंचल और शैतान बहुत मालूम होता था। जो लोग हम लोगों का खाना बना रहे थे, वह आठ साल का बच्चा उनके पास बार-बार जाता और उसके बाद लौटकर तेजी के साथ भागता। उसको देखकर साफ जाहिर होता था कि वह भोजन बनाने वालों के साथ शैतानी कर रहा है। उसकी इन हरकतों को देखकर मुझे आदमी के बच्चों की आदतों का स्मरण होने लगा। मैं सोचने लगा कि हम लोगों के बच्चों में भी बहुत कुछ इसी प्रकार की आदतें पायी जाती हैं।

हमको मालूम हुआ कि जिस रास्ते से हम लोगों को जाना है वह रास्ता जलमय है। मारवाड़ी पशुओं को उस रास्ते पर चलना मुश्किल दिखाई देने लगा। जिस स्थान से हम लोग चल रहे थे, वहाँ पर विभिन्न प्रकार के वहुत से वृक्ष थे और रास्ता जल से भरा हुआ था। उस रास्ते में हम लोगों को चलना पड़ा। मार्ग में वहुत से ग्राम दिखायी पड़े। ऐसा मालूम हुआ कि उनके रहने वालों का मार-पीट कर लूट लेना, झगड़ा करना और लड़ाई लड़ना ही रोजगार है। इस प्रकार की बातें उन गाँवों के सम्बन्ध में जानकर हमने न जाने क्या-क्या सोच डाला।

कुछ भी हो, जिस मार्ग से हम लोग चल रहे थे, उसमें प्रकृति का सौन्दर्य खूब दिखायी देता था। बहुत तरह के वृक्ष आँखों के सामने आ रहे थे और उनसे हम लोगों ने एक प्रकार के सुख और संतोप का अनुभव किया। इस प्रकार के रमणीक स्थान राजस्थान में ही देखने को मिलते हैं। यह वात वार-वार मेरे मन में गुजरने लगी।

जिस रास्ते से हम लोग चल रहे थे, हमारी वायीं तरफ पहाड़ों का एक ऊँचा सिलसिला था। उसे देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो उन पहाड़ों के द्वारा उदयपुर की रक्षा के लिए एक ऊँची और अटूट दीवार वनी हुई है। उस शिखर के ऊपर राताकोट का टूटा और गिरा हुआ भाग अव तक उसके प्राचीन गौरव का परिचय देता है। उसके ऊपर से चारों तरफ के दृश्य दिखायी देते हैं। हमारे पूर्व की तरफ इतना विस्तृत क्षेत्र दिखायी दे रहा था, जिसकी कहीं पर सीमा नजर नहीं आती। हम लोग देवपुर होकर आगे बढ़े। यह एक ग्राम था और सभी प्रकार से सम्पन्न था। मारवाड़ का उत्तराधिकारी भानेज* जालिम सिंह उस देवपुर का अधिकारी था। हमारे पूज्यगुरु* ने शस्त्र विद्या के समान शास्त्रों के अध्ययन में भी जो योग्यता प्राप्त की थी, उसका श्रेय जालिम सिंह को ही था। जालिम सिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी से जन्म लिया था और वह राजकुमारी राजा विजय सिंह को व्याही गयी थी। दुर्भाग्य से राजा विजय सिंह के परिवार में एक भयानक वैमनस्य पैदा हो गया और उससे असन्तुष्ट होकर जालिम सिंह अपने मामा के यहाँ जाकर रहने लगा था।

राणा ने जालिम सिंह को बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा और उसको गुजारे के लिए सम्पत्ति तथा जागीर दी गयी थी। हमारे गुरू यती ज्ञानचन्द्र ने न्याय शास्त्र, विज्ञान, ज्योतिष और अपने देश के इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था, उसे दूसरे कवियों की वहुत-सी अच्छी कवितायें जुवानी याद थीं और वह स्वयं कवि था। जयदेव की वहुत-सी कवितायें, उसने याद कर रखी थीं। उनको वह प्रायः सुनाया करता था। उसकी इस योग्यता और काव्य-प्रियता के कारण वहुत-से कवि प्रायः उसके पास आया करते थे और कई-कई दिनों तक वहाँ ठहरा करते थे।

टॉड साहव का लिखा हुआ यहाँ पर भानैज शव्द कुछ समझ में नहीं आता। इस शव्द से कुछ भ्रम पैदा होता है। इस विषय के दूसरे विद्वानों का इस प्रकार कहना है। भानैज और भागनेय दो शव्द ऐसे हैं जो एक दूसरे का भ्रम उत्पन्न करते हैं। वास्तव में भानैज भाञ्जे को कहा जाता है। टॉड साहव का अभिप्राय क्या है, यह स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। इस शव्द पर कुछ लोगों का मतभेद होने के कारण यहाँ पर इतना लिखकर स्पष्टीकरण किया गया है। जिससे पाठक कुछ सही अन्दाज लगा सके।

टॉड साहव ने अपने गुरु ज्ञान चन्द के सम्वन्ध में वहुत कुछ लिखा है और इस वात को स्वीकार किया है कि यती ज्ञान चन्द जैनमत का मानने वाला था। वह इस वर्ष तक मेरे साथ रहा और उसने सभी प्रकार मेरी सहायता की। मैं न केवल उसकी सहायता से सन्तुष्ट रहा, वल्कि उसकी योग्यता और व्यावहारिकता से मुझे सन्तोष मिला।

शिक्षा और अध्ययन के सम्बन्ध में जालिम सिंह और यती ज्ञानचन्द का एक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। उस विषय में बातचीत करते हुए ज्ञानचन्द ने कभी अपनी प्रशंसा नहीं की। वह सदा अपने आपको एक साधारण स्थान देता रहा। उसका यह तरीका उसकी विशाल आत्मा का परिचय देता है। गुरु यती ज्ञान चन्द में इस प्रकार के अनेक गुण थे, जिनसे वह सभी प्रकार की प्रशंसा का अधिकारी था। उसने मेरे इस इतिहास के निर्माण कार्य में जिस लगन के साथ सहायता की थी, उसे मैं भूल नहीं सकता।

हम लोग जिस रास्ते से चल रहे थे, वह कीचड़ से भरा हुआ था और चलने में अनेक प्रकार के कष्ट पैदा करता था। उस मार्ग में लगातार चार घन्टे तक चलकर हम लोग पुलानों के अगले शिखर पर पहुँचे। देवपुर की तरह पुलानों का भी विध्वंस हो चुका था। उसके इस प्रकार नष्ट हो जाने के कारण उसके निवासी उस नगर के उस भाग में रहते हैं, जो किसी प्रकार रहने के योग्य है और उसके रहने वालों ने अपने स्थानों को रहने योग्य बना लिया था।

पुलानों पहले एक सम्पन्न और समृद्ध नगर था, इसका सहज ही अनुमान यहाँ के देव स्थानों और मकानों के खण्डहरों को देखकर किया जा सकता है। देवपुर और बुलाना-दोनों ही पहले राणा के अधिकार में थे, जालिम सिंह की मृत्यु के बाद राणा ने इन दोनों स्थानो को भगवान कृष्ण के मन्दिर के साथ लगा दिये थे, राजमन्त्री के दाहिने हाथ रामसिंह, मेहता निन्दी के देवधान माणिक चन्द और नरसिंहगढ़ के पदच्युत राजा को यहाँ पर मैंने देखा। वह अब उदयपुर में रहा करता है। रामसिंह वैश्य जाति का एक आदर्श पुरुष है। यह बात जरूर है कि उसने मेवाड़ की सीमा के बाहर कभी जाने का अवसर नहीं पाया, फिर भी उसके साथ बातें करके यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी तरह का अच्छा आदमी जल्दी कहीं मिलेगा नहीं। वह देखने में सुन्दर है, उसका शरीर लम्बा है और शरीर के सभी अंग सुगठित तथा सुव्यवस्थित हैं। उसका रंग गोरा है। बाल काले घुँघराले हैं, उसके मुख पर गलमुच्छे बड़ी अच्छी मालूम होती हैं। वह देखने में सुन्दर और प्रिय मालूम होता है अपने अच्छे व्यवहारों के कारण उसने सभी के हृदयों पर अधिकार कर रखा है। रामसिंह सदा साफ सुथरे और अच्छे वस्त्र पहनता है। उसने ओसवाल जाति में जन्म लिया है और वह जैन धर्म को मानने वाला है।

राजस्थान में ओसवाल जाति के लोग लगभग एक लाख की संख्या में रहते हैं। ओसवाल जाति राजपूतों में अग्नि वंश में मानी जाती है। इस जाति के लोगो ने बहुत पहले हिन्दू धर्म छोड़कर जैन धर्म अपना लिया था। उस समय से ये लोग ओसवालों के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोगों का कहना है कि अग्नि वंश के परमार और सोलंकी राजपूतों ने सबसे पहले जैन धर्म को स्वीकार किया था और उस समय से वे लोग इसी जैन धर्म को मानते हैं।

माणिक चन्द भी जैन धर्मावलम्बी था। लेकिन वह युद्ध प्रिय था। उसका स्वभाव रामसिंह से बिल्कुल भिन्न था। उसका शरीर लम्बा लेकिन अत्यन्त दुबला-पतला और उसका रग काला था। मस्तक के साथ-साथ उसकी जुबान बराबर हिला करती थी। पच्चीस वर्ष तक वह अनेक प्रकार के षड़यन्त्रों में रहा। कोटा मे जालिम सिह के अतिरिक्त षड़यन्त्रो मे दूसरा कोई उसका सामना नहीं कर सका। वह शक्तावत लोगो का एक प्रधान व्यक्ति था और उस

सम्प्रदाय के राजपूतों के सरदार निन्दी पति का मन्त्री था। यही कारण था कि वह चूँन्डावत लोगों का परम शत्रु था।

माणिक चन्द ने चूॅन्डावत लोगों को नष्ट करने के लिए सभी प्रकार के पड़यन्त्र किये थे और अपने उपायों में उसने कुछ शेप नहीं रखा था। अपने शत्रुओं के सर्वनाश के लिए उसने पठानों और मराठों के साथ मेल कर लिया था और अपने पड़यन्त्रों के कारण वह एक वार कैद कर लिया गया था और उस समय जुर्माने में रुपये न दे सकने के कारण उसको भयानक कष्टों और अपमानों का सामना करना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक दूरदर्शी और बुद्धिमान पुरुप था। यही कारण था कि वह वंश के लोगों में प्रधान माना जाता था।

इसं समय माणिक चन्द की अवस्था पच्चास वर्ष की थी। वह सदा प्रसन्न रहता था, रहस्यपूर्ण बातें करता था और अपने इन्हीं गुणों के कारण वह एक बार राणा का भी प्रिय बन गया था। इसके फलस्वरूप राणा ने उसके लड़के को अपने उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर नियुक्त कर दिया था। उस लड़के के सम्बन्ध में लोगो का कहना है कि यदि वह जीवित रहता तो निश्चित रूप से वह बड़ी ख्याति पाता। उसके सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा का कारण यह था कि वह अपने पिता के समान बुद्धिमान ओर दूरदर्शी एवम् रामसिंह की तरह रूपवान था। लेकिन अपने स्वाभिमान के कारण उसने आत्महत्या कर ली थी। लोगों का कहना है कि माणिक चन्द ने किसी समय विना किसी सबव के उसका अपमान किया था ओर उस अपमान को सहन न कर उसने आत्महत्या कर ली थी।

यहॉ पर माणिक चन्द के सम्वन्ध में कुछ प्रकाश डालना वहुत आवश्यक मालूम होता है। उसने मेवाड़ राज्य से दो लाख-पचास हजार रुपये वार्पिक वसूल करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था। इस कार्य के लिए उसने जो आदमी नियुक्त किये थे, उनके अकर्मण्य तथा अविश्वासी होने के कारण उसको इस कार्य में सफलता न मिली और जितने रुपये शुल्क में उसे वसूल करके देने थे उनका छठा भाग भी वह राज्य को न दे सका। उसकी वुद्धिमत्ता को देखकर यह अनुमान किया गया था कि वह इस कार्य को सरलतापूर्वक कर सकेगा और दूसरों की अपेक्षा वह अच्छा सावित होगा। माणिक चन्द ने मेरे कैम्प के पास अपना मुकाम निश्चित करके मुझसे मुलाकात के लिए प्रार्थना की। भेंट के समय मैंने देखा कि वह वहुत अस्त-व्यस्त अवस्था में हैं। उस समय उसने प्रकट किया कि उसने कई बार मुझसे मुलाकात करने की चेप्टा की। लेकिन समय को अनुकूल न देखकर वह चुप हो जाता था।

माणिक चन्द की इन बातों को मैंने ध्यान से सुना, उसके प्रति राणा को जो अविश्वास पैदा हो गया था, उसके सम्वन्ध में वातें करते हुए उसने कहा : "जिन कर्मचारियों को रख कर मैंने शुल्क वसूल करने का कार्य आरम्भ किया था, वे कर्मचारी विश्वासी न थे, इसलिए उत्तरदायित्व के रुपये न तो मैं वमूल कर सका और न मैं राज्य को दे सका। मेरे ऊपर राज्य के जो रुपये बाकी हैं, मैं उनको अदा करूँगा।"

माणिक चन्द अपने पड़यन्त्रों के कारण बदनाम हो चुका था इसलिए उसकी वातों पर विश्वास नहीं हो सका। वह अपने वादे को पूरा कर भी न सका और इस अवस्था में यह

शाहपुरा में जाकर रहने लगा। वहाँ पर भी उसे शान्ति न मिली। इसलिए अपमानित अवस्था में विष खाकर उसने आत्महत्या कर ली।

नरसिंह गढ़ का राजा निर्वासित अवस्था में यहाँ पर रहा करता था। परमार जाति के उच्च वंश में वह पैदा हुआ था। मध्य भारत मे रहते हुए उसके वंश वालों की पन्द्रह पीढियाँ बीत चुकी हैं। उसके राज्य का नाम उमतवाडा और राजधानी का नाम नरसिंह गढ़ था। लुटेरे पिण्डारियों और मराठा लोगों ने उसके राज्य के प्रत्येक ग्राम में अधिकार कर लिया था और इसके फलस्वरूप उसकी राजधानी नरसिंहगढ़ में जब होलकर का झण्डा फहराने लगा तो उसका राजा होलकर की अधीनता में रहने के लिए मजबूर हुआ। इसके सिवा उस समय कोई दूसरा उपाय न था।

उन दिनों में होलकर और सिंधियाँ की चारों तरफ विजय हो रही थी और जिन पर उनके आक्रमण होते थे, उनको अधीनता स्वीकार करके कर देना मन्जूर करना पड़ता था। उमतवाडा के राजा ने आरम्भ में अस्सी हजार रुपये वार्पिक कर में देना स्वीकार किया था। इतना कर वसूल करने के बाद भी होलकर की सेना के अत्याचार उनके राज्य में बराबर होते रहे और लूटमार से उसकी प्रजा का विनाश बन्द न हुआ।

अनेक वर्षों के बाद सन् 1821 ईसवी में जब उस राज्य में शान्ति कायम हुई तो उस समय का राजा लगातार अफीम सेवन करने के कारण निर्बल और असमर्थ हो गया था। इसलिए वह अपने राज्य की दशा सुधारने में समर्थ न हो सका। उसका लड़का चैनीसिंह अपने पिता की तरह बुरी आदतों का शिकार नही हुआ था। इसलिए अंग्रेजी सरकार की व्यवस्था के अनुसार चैनीसिंह ने शासन करना आरम्भ कर दिया।

14 अक्टूबर–प्रात:काल होते ही हम लोगों की यात्रा आरम्भ हुई और कुछ ही दूर आगे जाने पर मालूम हुआ कि आगे का रास्ता बहुत खराब और दलदलमय है। उस रास्ते में बोझे से लदे हुए ऊँटों को ले जाने में बड़ी मुश्किल पैदा हो गयी। यहाँ की चारों तरफ की भूमि ऊँची-नीची और पथरीली है। बड़ी कठिनाई के साथ लगभग चार सौ फुट ऊँचे नाथद्वारा के शिखर को पार किया। इसके चारों तरफ लाल पत्थरों का शिखर मालूम होता है। नाथद्वारा से तीन मील की दूरी पर पूर्व की तरफ बराबर की भूमि में यह बना हुआ है। इस स्थान के दोनो तरफ छोटे-छोटे तालाब हैं और उनसे दो नहरें निकलकर नगर की ओर बहती हैं। नहरो के दोनों तरफ वृक्षों की पंक्तियाँ हैं। इन वृक्षों के कारण उस रास्ते में चलने वालों को बहुत आराम मिलता है।

हम लोगों का मुकाम नाथद्वारा के नीचे बहने वाली बनास नदी की दूसरी तरफ हुआ और वहाँ से जब हम लोग नगर की तरफ चले तो नगर के रहने वालों ने मार्ग के दोनों तरफ खड़े होकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। अंग्रेजी सरकार की सहायता से उन लोगों ने लुटेरो और अत्याचारियों से छुटकारा पाया था और उनके कन्हैया जी के मन्दिर की रक्षा हुई थी। इसलिए वे सब अंग्रेजों की प्रशंसा करने लगे।

15 अक्टूबर–अब जो मार्ग आगे आ रहा था, वह पहले से भी कठिन, दलदल से भरा हुआ और बहुत से स्थलों पर जलमग्न था। कुछ इसी प्रकार के रास्ते के कारण मैडता

नामक स्थान से हमारे वे आदमी जो बोझा लिए हुए चल रहे थे, हमसे छूट गये थे। इसलिए जहाँ पर हम लोग पहुँचे थे, वहाँ ठहरकर हम लोग उन छूटे हुए आदमियों का इन्तजार करने लगे।

इसी समय वहाँ श्रीमन्दिर के प्रधान पुरोहित ने सुराट के निवासी एक सम्पत्तिशाली मनुष्य के साथ आकर हमसे भेंट की और उसने सम्मान में एक सुनहला अंगरखा एवम् एक सोने से मढ़ा हुआ नीले रंग का दुपट्टा मुझे दिया। इसके साथ-साथ अपने देश के बहुत से स्वादिष्ट फल भी उसने मेरे सामने रखे। उस पुरोहित की तरफ से दोपहर में भोग का दूध और बहुत से मिष्ठान पदार्थ भी आए थे।

यहाँ पर लौंदी नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ के मन्दिर की अधीनता में चालीस हजार दूध देने वाली गायें हैं। कहा जाता है कि इन गायों के समान दूध देने वाली गायें भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं है। इनमें चार हजार गायों के दूध से खीर, रवड़ी , मक्खन इत्यादि बनाकर देवता को भोग लगाने के बाद सर्वसाधारण में बाँट दिया जाता है।

सुराट के उस सम्पत्तिशाली वैश्य ने जो एक मूर्ति मेरे सामने पेश की, उसकी दैविक शक्ति के सम्बन्ध में उसने बहुत-सी बातें मुझसे कहीं और उस मूर्ति की उसने बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा कि जमुना तट से जिस रथ पर श्री कृष्ण को नाथद्वारा लाया गया था, मैं उस रथ पर बैठे हुए श्री कृष्ण की पूजा करता हूँ। भगवान के भक्तों को छोड़कर किसी दूसरे को यह मूर्ति पूजा के लिए नहीं दी जाती।

भगवान ने कृष्ण का अवतार लेकर जब जिस अवस्था में जैसा श्रृंगार किया था, इस मूर्ति को उसी के अनुसार समय-समय पर श्रृंगार से सजाया जाता है। कंस को वध करने के समय धनुष बाण के साथ इस मूर्ति को दिखाया जाता है और दूसरे अवसरों पर मूर्ति का दूसरा ही रूप प्रकट किया जाता है। उस वंश के मुख से मूर्ति के सम्बन्ध में जितनी बातें निकलीं, मैं ध्यानपूर्वक उसको सुनाता रहा और उनके उत्तर में मैंने कोई भी आलोचनात्मक बात नहीं कही।

मन्दिर के प्रधान पुजारी के सम्मान के बदले में मैंने एक पत्र लिखकर उसको इस आशय का दिया कि भविष्य में अंग्रेजी सरकार के किसी कर्मचारी को यहाँ के मोरों को मारने और पीपल के वृक्षों को काटने का अधिकार न होगा। साथ ही इस पवित्र स्थान में किसी प्रकार की कोई जीव हत्या न कर सकेगा। यह सब लिखकर मैंने उस पुजारी को दे दिया और उसके दिल में असन्तोष का कोई भाव पैदा न हो, इसलिए मैंने मन्दिर के आस-पास की भूमि को छोड़कर और नदी के पार दूर जाकर भोजन के लिए मुर्गों का वध किया। यद्यपि वह स्थान मन्दिर से दूर था, फिर भी मुर्गों के पंखों को मिट्टी खोदकर उसके भीतर भली प्रकार छिपा दिया।

17 अक्टूबर–अभी तक अपने छूटे हुए आदमियों से हम लोगों की मुलाकात नहीं हुई थी इसीलिए हम लोगों के दिलों में उनके सम्बन्ध में चिन्ता हो रही थी। किसी भी दशा में उन छूटे हुए आदमियों का पता लगाना जरूरी था। इसलिए असुरवास नामक स्थान की तरफ हम लोगों ने यात्रा की। वह कोट यहाँ से आठ मील की दूरी पर था और हम लोग दोपहर के

समय वहाँ पहुँचने के लिए रवाना हुए थे। लेकिन रास्ते में ही शाम हो गयी। मार्ग में फतह नामक हमारा एक हाथी पानी में गिर गया। महावत की गलती से हाथी पानी में गिरा था। हाथी इतना बुद्धिमान होता है कि चलते हुए वह अपने पैर से मार्ग में किसी संकट की सूचना पाता है तो हाथी अपने शेष तीन पैरों से अपने आपको सम्हाल लेता है। फतह ने भी ऐसा ही किया था परन्तु महावत ने उसके संकेत पर ध्यान नहीं दिया।

उस फतेह नामक हाथी को पन्द्रह सेर आटे की रोटियाँ रोजाना शाम को दी जाती थीं। पिछली शाम को ये रोटियाँ उस हाथी को नहीं दी गयी थीं। इसलिए हाथी अपने महावत से बहुत नाराज था। उसकी यही अप्रसन्नता उसके पानी में गिरने का कारण हो गयी। उसको उठाने के लिए जो उपाय सम्भव हो सकते थे, सब किये गये। कुछ देर में हाथी उठकर खड़ा हो गया। वह शाम से ही नाराज तो था ही। खड़े होते ही उसने पीठ हिलाई, जिससे उसकी पीठ की सभी चीजें पानी में गिर गयीं।

हम लोग बनास नदी को पार करके आगे की तरफ चले। नदी का जल गहरा और काँच के समान साफ दिखाई देता है। उसके किनारे की ऊँची भूमि पर बहुत-सी घास दिखायी दे रही है। नदी के किनारे की हरी-हरी घास से लदे हुए ये कगार देखने में बड़े मनोहर मालूम होते हैं।

इस नदी के सम्बन्ध में एक जनश्रुति बहुत प्रसिद्ध है। लोग कहा करते हैं कि मुसलमानों के आने के पहले बनास नदी की देवी जल के भीतर से अपने हाथ बाहर निकाला करती थी। उस समय यहाँ के रहने वाले उसके हाथों मे नारियल दे देते थे। मुसलमानों के आने के बाद एक बार देवी ने सदा की भाँति अपने हाथों को निकाला। उस समय एक यवन ने उसके हाथो में नारियल देने के बदले मिट्टी का एक ढेला दे दिया। उस समय से देवी अब अपना हाथ नहीं निकालती।

हम सब लोग लगभग आधी रात के समय अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये।

परन्तु छूटे हुए आदमी अभी तक हमारे पास नहीं पहुँचे थे। इसलिए 17 अक्टूबर को उसी स्थान पर रुककर हमे उनका रास्ता देखना पड़ा। असुरवास एक सम्पन्न और समृद्धशाली ग्राम है। लेकिन वहाँ के निवासियो की संख्या अब पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गयी है। चारण कवि के एक संगीत से प्रसन्न होकर राणा भीम ने यह ग्राम उसको दे दिया था। जिस स्थान पर हमने मुकाम किया था, उसके पास ही एक सन्यासी का आश्रम है। वह सन्यासी मुझसे मिलने के लिए मेरे पास आया और उसके बाद मैं भी उसके पास गया।

सन्यासी लोग आम तौर पर भ्रमण किया करते हैं। मेरे पड़ौस का सन्यासी भी भ्रमणशील होने के कारण समझदार और व्यवहार कुशल हो गया था। अन्याय सन्यासियो की तरह यह सन्यासी भी गेरूए रंग के वस्त्र पहनता था, उसकी पगडी के ऊपर कमलगट्टे की बनी हुई माला लगी हुई थी। उसी तरह की एक दूसरी माला उसके हाथ में थी, जिससे वह अपने इष्टदेव का भजन कर रहा था।

उस सन्यासी ने बाते करते हुए अंग्रेजी शासन की मुझसे प्रशंसा की और कहा कि अग्रेजो की शक्ति दूसरे सभी आदमियों की अपेक्षा प्रबल होती है। उसकी इन बातो को सुनकर

मैं गम्भीरता के साथ उसकी तरफ देखता रहा। मैंने उसकी वातों को सुनकर कुछ कहा नहीं। शायद वह मुझसे कुछ सुनना भी नहीं चाहता था। उससे बातें करने के वाद मैं अपने स्थान पर लौट आया।

18 अक्टूबर–प्रात:काल होते ही हम लोगों ने यात्रा शुरू कर दी। वहाॅ से सुमैचा नामक स्थान वारह मील की दूरी पर था। जिस रास्ते से हम लोग चल रहे थे, वह घने वृक्षों से बहुत संकीर्ण हो रहा था। स्थान-स्थान पर वह कहीं टेढ़ा, कही ऊँचा कहीं बहुत नीचा था। रास्ते के दोनों तरफ खेर, कीकर ओर बबूल के वृक्ष थे। इन्हीं वृक्षों के बीच के मार्ग पर हम चल रहे थे। गोगुन्दा नामक ग्राम से होकर हम लोग शिरनाला नामक ग्राम में पहॅुच गये। विशालकाय शिखर की जड़ से जो नदी बह रही थी, गोडा ग्राम वहीं पर बसा हुआ था। नदी का आकार-प्रकार टेढ़ा देखकर हम लोगों ने अनुमान लगाया कि इस विस्तृत उपत्यका का एक ही मार्ग हो सकता है। वह विशाल स्थल दूर तक इस प्रकार फैला हुआ था, जो एक-सा नहीं था ओर उसका प्रत्येक स्थान एक मील से कम नहीं था। पहाड़ों के नीचे से यह जमीन दूर तक फैली हुई थी। पहाड़ो के ऊपर आमों के वृक्ष थे। शिखर के ऊपर के स्थान देखने में अत्यन्त मनोहर मालूम हो रहे थे।

पहाड़ों के इन स्थानों को प्रकृति ने सभी प्रकार प्रिय और आकर्पक बना दिया था। वहाँ पर जो वृक्ष थे, उनमें गूलर, सीताफल और वादाम के वृक्ष अधिक मालूम हो रहे थे। नदी के किनारे की भूमि में कई तरह के वृक्ष दिखाई दे रहे थे। उनमें आम, तेन्दू पीपल और बरगद इत्यादि के बड़े-बड़े वृक्ष दूर तक फैले हुए थे। यहाॅ के रमणीक दृश्य देखकर हम लोग प्रसन्न होते रहे। वहाँ के निवासियो ने नदी के जल को पर्वत के ऊपर पहुँचाने की चेष्टा की थी और उसमें उनको सफलता भी मिली है।

नदी का जल जो पर्वत पर पहॅुचाया जाता है, उससे वहाॅ की मिट्टी वाली भूमि में ईख, रूई और दूसरे अनाजों की खेती की जाती है। लोगों का कहना है कि वहाँ पर जो ईख पैदा होती है, वह दूसरे स्थानो की ईख से उत्तम होती है। ईख की खेती से वहाॅ के लोगों को अच्छी आमदनी हो जाती है। परन्तु तीन वर्पो से ईख की खेती में एक कीड़ा लग जाने से उनको बहुत हानि पहॅुचती है और जो आमदनी उससे हुआ करती थी, उसको बहुत क्षति पहॅुची है।

सुमैचा ग्राम तीन भागों मे विभाजित है और उसके प्रत्येक भाग में लगभग एक सौ परिवार रहा करते हे, यह ग्राम राणाराज नामक पर्वत के नीचे की भूमि पर बसा हुआ हे। मुगलो से पराजित होने पर राणा वहाँ के पहाड़ी रास्ते से भागकर घने जंगलों में चला गया था। उस समय से यह पर्वत राणा राज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सुमैचा ग्राम में प्रसिद्ध राणा कुम्भा के वशज कुम्भावत लोग रहा करते हैं। हम लोगों के पहॅुचने पर कुम्भावत सरदार अपने साथ वहुत से लोगो को लेकर मुझसे मिलने आया। उसने अपने यहाॅ की बनी हुई कुकडी मुझे भेंट मे दी। कुकडी यहाॅ का एक पहाड़ी शस्त्र है. जो तीन फुट लम्बा होता है। घी के साथ उसने बकरी के वच्चे भी मुझे भेंट मे दिये। मैंने उन राजपूतों ओर भूमिया लोगों से सम्मान के साथ भेंट की ओर उनसे मिलने की खुशी जाहिर की। उन लोगो के स्वस्थ शरीर और उनकी आकृति देखकर हम सभी लोग वहुत प्रमन्न हुए।

मेरे साथ जितने भी लोग थे, सभी ने उन राजपूतों को देखा और उनके स्वस्थ शरीर देखकर वे आपस में उनकी प्रशंसा करने लगे। वास्तव में उनके शरीरों को देखकर उनकी वीरता का सहज ही अनुमान होता था। उनकी मूंछे लम्बी थीं। उनके सरदार के सिर पर पगड़ी मस्तक की शोभा बढ़ा रही थी। सरदार के साथ बाकी जो लोग आए थे, वे सभी साधारण श्रेणी के लोग थे। वे कुरता और पायजामा पहने थे और उनके सिर पर साधारण पगड़ियाँ थीं।

पहले कलममीर के दुर्ग की रक्षा करने के लिए ये लोग नियुक्त किये जाते थे। परन्तु मराठों ने इनकी शक्तियो को इधर बहुत दिन पहले से नष्ट कर दिया है। अब ये लोग राणा की प्रजा में गिने जाते है। ये लोग राज्य के सभी कार्यों में काम आते हैं और वर्ष में निश्चित कर भी राणा को अदा करते है। इन लोगो के पूर्वजों ने जो बहादुरी के काम किये थे। मैंने उनकी प्रशंसा उन लोगों के सामने की। उस प्रशंसा को सुनकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस सुमैचा ग्राम में हमारे छूटे हुए आदमी आकर हमसे मिले। उन सबको देखकर हमें बड़ी शान्ति मिली।

19 अक्टूबर-चित्तौड़-बनास नदी के प्रवेश को छोड़ देने के बाद पहाड़ी स्थानों में रहने के लिए राणा को विवश होना पड़ा था और उस दशा में उसकी बहुत-सी प्रजा पहाड़ के नीचे की भूमि में आकर रहने लगी थी। हम लोगों ने कैलवाड़ा नगर की ओर यात्रा की। यह नगर उस समय की बहुत-सी ऐतिहासिक बातों का परिचय देता है। वहाँ पर जितने भी पर्वत और जो नदियाँ हैं, उन सबके साथ उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध है। हमने ऊपर जिस उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशंसा की है, यह स्थान भी बहुत-कुछ उसी प्रकार रमणीक है। यहाँ के पर्वत में होकर जो मार्ग जाता है, उसके बाई तरफ 'करी सरोवर' नामक एक नदी प्रवाहित होती है। पैदल चलने वाले लोग यहाँ से एक सीधे रास्ते में चलकर कैलवाड़ा नगर पहुँच जाते हैं। परन्तु वह मार्ग अत्यन्त घने जंगलों के बीच से गुजरता है। इसलिए वह सर्वथा संकटपूर्ण है; जिसके कारण कोई भी साहस मनुष्य उस रास्ते से जाने का साहस नहीं करता।

इस नदी का नाम 'करी सरोवर' क्यों पड़ा, इसको जानने के लिए मैंने कोशिश की। परन्तु उसका कुछ रहस्य मालूम नहीं हुआ। मैंने जितने भी लोगों से पूछा, कोई कुछ बता नहीं सका।

हम लोग मूर्च नामक ग्राम से होकर अपने मार्ग में बढ़े। इस ग्राम में एक राठौर सामन्त का अधिकार है। उस ग्राम के बिल्कुल पास एक छोटा-सा सरोवर और उस सरोवर के समीप एक अत्यन्त रमणीक मन्दिर बना हुआ है। उसको देखकर मैंने एक व्यक्ति से पूछा ": यह कौन-सा मन्दिर है?"

मेरे प्रश्न को सुनकर उस आदमी ने जवाब दिया : "इसका नाम सती मन्दिर है।"

उस आदमी के इस उत्तर को सुनकर मुझे सन्तोप नही मिला। मै उस मन्दिर के सम्बन्ध मे कुछ अधिक जानना चाहता था। इसलिए मैंने उस आदमी को अपने पास बुलाया और उससे मैंने मन्दिर के सम्बन्ध में अधिक जानने की कोशिश की। उस आदमी के द्वारा मालूम हुआ कि उस मंदिर को ग्राम के अधिकारी के पूर्वजो ने बनवाया था। बादशाह औरंगजेब की सेना के आक्रमण करने पर उस ग्राम के अधिकारी ने लड़कर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया और उसकी स्त्री अपने पति के मृत शरीर को लेकर चिता मे भस्मीभूत हुई थी।

उस मन्दिर में एक वीर पुरुष की अश्वारोही प्रतिमा स्थापित है। यह वह वीर पुरुष है, जो उस ग्राम का अधिकारी था और जिसने बादशाह की सेना के साथ युद्ध करके अपने प्राणों की वलि दी थी। उसके मरने पर उसकी स्त्री चिता मे बैठकर सती हुई थी। उसी के नाम से जो मन्दिर इस स्थान पर बनवाया गया, उसका नाम सती मन्दिर रखा गया।

इस गॉव के पास से दो रास्ते दो तरफ को गये हें। एक रास्त वीर गुला मार्ग से होकर जाता हें। उससे नाथद्वारा तक आसानी के साथ जाया जा सकता है। दूसरा रास्ता चिराई और प्रसिद्ध चतुर्भुज देव के पवित्र स्थान की तरफ गया है। पर्वत श्रेणी के द्वारा बाधा उत्पन्न होने से हम लोगों ने ओलद्वारा होकर कैलवाडा की तरफ चलना आरम्भ किया और कैलवाड़ा नगर से तीन मील उत्तर की तरफ मैदान में पहुँचकर हम लोगों ने मुकाम किया। उस मैदान मे आमों के बहुत-से वृक्ष थे। यह स्थान आगे चलकर विस्तृत हो गया है। इस स्थान के जंगली होने में कोई बात बाकी नहीं है। लेकिन प्रकृति ने उसको अपने हिसाब से सभी प्रकार सुन्दर बना रखा है। इसलिए उसके इस सौन्दर्य को महत्त्व देना भी आवश्यक हे। उसकी इस सुन्दरता से मैं प्रसन्न हुआ।

इस स्थान की और भी कुछ ऐसी बातें हें, जो अपनी तरफ से मुझे आकर्पित कर रही हैं। यह विस्तृत मैदान जयपुर की भूमि से एक हजार फुट और समुद्र की सतह से तीन हजार फुट ऊँचा है। इस ऊँचे मैदान के ऊपर बहुत-सी शिखर पंक्तियॉ दिखायी देती हैं। उन शिखरों में बहुत से झरने है और उन झरनो से लगातार पानी गिरता रहता है। झरनों के जल से पश्चिमी मारवाड की भूमि को उपजाऊ बनाने में वहॉ के किसानों को बड़ी सहायता मिली है। इन झरनों का जल जो पूर्व की तरफ जाता है, वह मेवाड़ के विशाल तालाबों को भरा करता है।

पहले इन झरनों के जल की व्यवस्था कुछ और थी। कांकरोली नामक सरोवर का निर्माण ऐसा किया गया था, जिससे इन सभी झरनों का जल मेवाड़ की तरफ बहा करता था और मरुभूमि की तरफ बहुत कम पानी जाता था। लेकिन इन दिनों की हालत कुछ दूसरी है। पश्चिम की तरफ अगर इन झरनो का जल न जाता तो मारवाड़ की बहुत-सी भूमि उपजाऊ न बन सकती थी।

इन दिनों में दौलत सिंह कमलमीर का शासक है। हम लोगों के आने का समाचार पाकर उसने अपनी बड़ी तैयारियों के साथ हमसे मुलाकात करने का निश्चय किया और अपने बहुत से आदमियो को लेकर हम लोगों से मुलाकात करने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ उसकी लाल पताका थी। राजा दौलत सिह घोड़े पर सवार था। करीब आने पर वह घोड़े से उतर पड़ा। मैं भी अपने घोडे से उतर कर जमीन पर आ गया। दोनो आगे बढ़े और बडे स्नेह के साथ हम दोनों ने एक दूसरे का आलिंगन किया।

दौलत सिह से भेंट करके मैं अपने घोड़े पर बैठा और उसी समय वह भी अपने घोडे पर सवार हुआ। साथ-साथ चलते हुए हम दोनो वर्तमान परिस्थितियो की बातें करने लगे। दौलत सिंह राणा भीमसिंह का एक निकटवर्ती सम्बन्धी हे। महाराज उसकी उपाधि है और राणा के दरबार में उसे अच्छा सम्मान प्राप्त है। राणा का अत्यन्त निकटवर्ती सम्बन्धी होने के कारण वह शिवधन सिंह का उत्तराधिकारी माना गया।

महाराजा दौलत सिंह में अनेक प्रकार के गुण थे। उसका स्वभाव सरल और सब को प्रसन्न करने वाला था। वह चरित्रवान था और सभी लोग उसे ईमानदार समझते थे। वह बहुत कम बातें करता था। उसके स्वभाव मे जरा भी अहंकार न था। अपने इन गुणों के कारण उसने कमलमीर का शासन प्राप्त किया था।

सन् 1818 ईसवी के फरवरी महीने में मैंने कमलमीर के दुर्ग में रहने वाली सेना का बकाया वेतन अदा करके उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। उस सेना के सैनिको की भावना को देखकर मैंने कितनी ही बातें उस समय सोच डाली। अगर उन दिनो मे उस सेना के सैनिकों का वेतन बाकी न होता और मैंने उनका बकाया वेतन अदा न कर दिया होता तो कमलमीर के दुर्ग पर हम लोगों के अधिकार करने का कोई मौका ही पैदा न होता। उन सैनिकों की दशा को देखकर मुझे अफसोस हुआ और उसके साथ आश्चर्य भी। एक सैनिक का उद्देश्य रुपये तक ही सीमित नहीं होता। किसी भी देश मे उसके सैनिको का महत्त्व इसलिए सबसे अधिक होता है कि वे लोग अपने देश की आजादी की रक्षा के लिए बलिदान होने के लिए हमेशा तैयार होते हैं। वेतन लेकर देश की रक्षा करने का कार्य बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखता। अगर उनके जीवन का उद्देश्य रुपयों तक ही सीमित रहता है तो उन सैनिकों में और देश के बाकी लोगों मे अन्तर ही क्या रह जाता है। यह बात साधारण नहीं है।

कमलमीर के दुर्ग के सैनिकों को देखकर मुझे कम आश्चर्य नहीं हुआ। उन लोगों ने वेतन के रुपयों को अधिक महत्त्व दिया और उनके दुर्ग की स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व उनके निकट न रहा। उनको जो वेतन दे, वही उनका स्वामी है और उनके वेतन के रुपये जो अदा करे, वही कमलमीर का राजा अथवा अधिकारी है। यह मनोवृत्ति सैनिकों की बहुत सकीर्ण है और किसी भी देश के लिए इस प्रकार की मनोवृत्ति वांछनीय नहीं हो सकती।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम सब लोग वहाँ के टूटे-फूटे और पुराने मन्दिरो में बैठे हुए जल पान कर रहे थे, मैंने देखा कि उस दुर्ग की सेना पश्चिमी पहाडी रास्ते से निकलकर जा रही है। मैं उस समय सेना की तरफ कुछ देर तक बराबर देखता रहा। हमारे साथ की सेना ने उस दुर्ग पर एक सप्ताह तक अधिकार रखा। उसके बाद राणा की सेना वहॉ पर आयी। उसके आने पर उस दुर्ग का अधिकार राणा की उस सेना को सौंप दिया गया।

वहॉ पर आठ दिनों तक लगातार रहकर मैं अपना काम करता रहा। वहॉ पर मुझे बहुत से ऐसे स्तम्भ मिले, जिनमे खुदे हुए प्राचीनकाल के विवरण मेरे बड़े काम के थे। मैं उन सब का संकलन आठ दिनों तक बराबर करता रहा और उस कार्य में इतने दिन कैसे बीत गये, मुझे ये बिल्कुल न जान पडा।

कमलमीर और उसका दुर्ग अनेक प्रकार की विशेषता रखता है। उसके सम्बन्ध में यहॉ पर कुछ लिखना आवश्यक जान पडता है। दुर्ग के आस-पास लोहे की तरह एक ऐसी मजबूत दीवार है, जो काफी ऊँची है और जिसको तोड़ सकना आसान नहीं है। दुर्ग के भीतर से बाणो की वर्षा करने के लिए उस दीवार मे बहुत-से ऐसे सुराख हैं, जिनका फायदा आक्रमणकारी शत्रु नहीं उठा सकता। वह दीवार अत्यन्त मजबूत पत्थरो से बनी हुई है। गोलों की वर्षा करने के लिए भी दीवार मे कई प्रकार के सुभीते हैं, जिनका लाभ पूरे तौर पर दुर्ग की सेना उठा सकती है।

उस दुर्ग की सबसे ऊँची चोटी पर अत्यन्त रमणीक बादल महल बना हुआ है। राजा और उसका परिवार वर्षा के दिनों में उसमें आकर रहा करता है। इस बादल महल से मरुभूमि का बालुकायम विस्तृत प्रान्त देखने में अत्यन्त सुन्दर मालूम होता है। कमलमीर के इस दुर्ग पर चढ़ते ही सबसे पहले एक संकीर्ण मार्ग मिलता है, उस मार्ग से कैलवाड़ा से लगभग एक मील की दूरी पर अराइनपोल नामक फाटक दिखायी देता है। उस विशाल फाटक के आगे दो फाटक और हैं, जिनका नाम हुल्लापोल और हनुमान पोल है। वे फाटक जितने सुन्दर और दर्शनीय हैं, उतने ही वे सुदृढ़ और मजबूत भी हैं। भीतर की तरफ जो फाटक बना हुआ है, उसका नाम चौंगाना पोल है।

कमलमीर का सबसे ऊँचा शिखर समुद्र की सतह से 6353 फुट ऊँचा है। इस ऊँचे शिखर से मैंने मरुभूमि के अत्यन्त दूरवर्ती दृश्य देखे हैं। वहाँ से मैंने एक पुराना जैन मन्दिर भी देखा। उस मन्दिर की बनावट बहुत प्राचीनकाल की है। उस मन्दिर के मध्य भाग में एक विशाल कमरा है, उसमें बहुत-से स्तम्भ हैं और उसके आगे का बरामदा बड़ा अच्छा बना हुआ है। इस मन्दिर की बनावट में न केवल प्राचीनता है, बल्कि हिन्दू मन्दिरों में जो निर्माण कला देखने में आती है, इसकी निर्माण कला उससे भिन्न है। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू धर्म और जैन धर्म में जो विभिन्नता है, उसी का अनुकरण करके इन दोनों प्रकार के मन्दिरों के निर्माण में भिन्नता रखी गयी।

यह जैन मन्दिर अपने पुरानेपन के साथ सादगी में भी एक विशेषता रखता है। उसकी पुरानी इमारत को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह मन्दिर ईसा से दो सौ वर्ष पहले बना होगा। हिन्दुओं के जितने भी मन्दिर देखने में आते हैं, इस मन्दिर की सभी बातें उनसे भिन्न है। हिन्दू मन्दिरों के स्तम्भ मोटे होते हैं। उनके प्रतिकूल इस मन्दिर के स्तम्भ पतले हैं और इनकी बनावट मे बडी भिन्नता है, इसी प्रकार के अन्तर अन्य बातो में भी पाये जाते हैं। बहुत सम्भव है कि यह मन्दिर चन्द्रगुप्त के वंशज राजा सम्प्रीति के समय मे बनवाया गया हो।

राजा सम्प्रीति चन्द्रगुप्त के वंश में उससे चार पीढ़ियों के बाद पैदा हुआ था। वह जैन धर्मावलम्बी था। राजा सम्प्रीति और यूनानी सैल्यूकस में मित्रता थी। सैल्यूकस बैक्ट्रिया का शासक था। मेगा स्थनीज के लेखो से भी पता चलता है कि इन दोनों मे गहरी मित्रता थी। उन्हीं लेखों से जाहिर होता है कि जैन धर्मावलम्बी राजा की एक लडकी का विवाह सैल्यूकस के साथ हुआ था। उस विवाह मे बहुत-से हाथी और कीमती पदार्थ सैल्यूकस को दिये गये थे। और सैल्यूकस ने अपनी सेना का एक दल चन्द्रगुप्त के पास उसकी अधीनता में रहने और काम करने के लिए भेजा था।*

---

* टॉड साहब ने राजा सम्प्रीति और सैल्यूकस के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सही नहीं जान पडता। दूसरे इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ने अपनी लडकी का विवाह सैल्यूकस के साथ कर दिया था। टॉड साहब ने लिखा है कि राजा सम्प्रीति चन्द्रगुप्त के वंश में उसकी चौथी पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। यह समय और भी अधिक आश्चर्य में डालता है। राजा सम्प्रीति और चन्द्रगुप्त का एक समय नहीं हो सकता। फिर टॉड साहब के लिखने में इस प्रकार की भूल कैसे हुई यह नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष के दूसरे इतिहासकारों और टॉड साहब में यहाँ पर अन्तर है। अन्य इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थों में इस बात को स्पष्ट लिखा है कि सैल्यूकस के साथ मैत्री हो जाने पर सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से अपनी लड़की का विवाह कर दिया था। इस स्थल पर दूसरे इतिहासकार सही जान पड़ते हैं।

—अनुवादक

ऊपर जिस जैन मन्दिर का उल्लेख किया गया है, उसको देखकर मालूम होता है कि यूनान के कारीगरों ने उस मन्दिर को बनाया है। यह बात सही नहीं हो सकती तो यह निश्चित है कि जिन भारतीय कारीगरों ने उस मन्दिर का निर्माण किया था, वे यूनान की कारीगरी से प्रभावित थे और उन्होंने उसी के आधार पर इस मन्दिर का निर्माण किया था।

जैनियों का यह मन्दिर पर्वत के ऊपर बना हुआ है। कदाचित् इस पर्वत की मजबूती ने बहुत समय तक इस मन्दिर को मजबूत रखने का काम किया है। अगर ऐसा न होता तो यह मन्दिर न जाने कब गिरकर मिट गया होता। लेकिन ऐसा नहीं है। पुराना और जर्जरित होने के बाद भी जैनियों का यह मन्दिर, मन्दिर के रूप में अब तक बना हुआ है।

इस मन्दिर के पास जैनियों का एक दूसरा मन्दिर भी है। वह दूसरी तरह से बना हुआ है। यह दूसरा मन्दिर तीन खण्ड का है और उसके प्रत्येक खण्ड में बहुत-से स्तम्भ बने हुए हैं। वे स्तम्भ देखने में अब भी बहुत सुन्दर मालूम होते हैं। तीन खण्ड में होने पर भी यह दूसरा मन्दिर इस प्रकार बना हुआ है कि उसके प्रत्येक खण्ड में सूर्य का प्रकाश पूरी तौर पर पहुँचता है जिससे मन्दिर के किसी भी खण्ड में अन्धकार नहीं रहता। मन्दिर के निर्माण में यह उसकी एक बड़ी खूबी है, जिसकी बहुत बड़ी प्रशंसा की जा सकती है।

दुर्ग के ऊपर और भी अनेक मन्दिर बने हुये हैं। उन सबके विवरण बहुत कुछ एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में अलग-अलग यहॉ पर लिखने की जरूरत नहीं मालूम होती। लेकिन वहॉ पर दो मन्दिर ऐसे हैं, जिनके सम्वन्ध में कुछ प्रकाश डालना जरूरी हे। यही दो मन्दिर वहाँ के मन्दिरो मे प्रमुख माने जाते हैं।

इन दोनों मन्दिरों में एक माता देवी का मन्दिर कहलाता है। यह मन्दिर देवगढ की राजमाता का बनवाया हुआ है। पहाड़ी रास्ते की तरफ ऊँचे शिखर की चोटी पर यह मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर मे छोटी और बडी देवताओ की बहुत-सी मूर्तियॉ हैं और उन सबके बीच में राजमाता की प्रतिमा है। ये सभी प्रतिमाये श्वेत संगमरमर पर बनी हुई हैं और उनमें हर एक की ऊँचाई करीब-करीब तीन फुट की है। ये सभी मूर्तियॉ इतनी खूबसूरती के साथ बनाई गयी हैं कि उनको देखकर मनुष्य अवाक् रह जाता है। मन्दिर की रचना प्रणाली बहुत प्राचीन है और साधारण होने पर भी उनमें अनोखा चमत्कार देखने को मिलता है। मन्दिर के भीतर एक बडा कमरा है। उसमें इन सब मूर्तियों के दर्शन होते हैं।

इन मन्दिरों के सामने एक मजबूत दीवार बनी हुई है। उसमे नीचे से ऊपर तक काला पत्थर लगा हुआ हे। इस दीवार के बनाने में जो काले पत्थर लगाये गये हैं उनमे प्रत्येक पत्थर में अलग-अलग देवताओं के विवरण खोदे गये है। इन पत्थरों में बहुत से राजा लोगो के विवरण भी पाये जाते हैं। अफसोस यह है कि दीवार मे लगे हुये पत्थरों में कोई एक भी समूचा नहीं रह गया है। प्रत्येक पत्थर कई-कई टुकडों मे टूट कर नीचे गिर गया हे और उनके इस प्रकार टूट जाने के कारण उन पत्थरों से कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता।

माता देवी के मन्दिर की तरह वहॉ पर एक दूसरा मन्दिर भी है और वह भी स्मारक के रूप मे बनवाया गया है। यह मन्दिर जिस स्थान पर बना हुआ है, वह अनेक बातों के

कारण स्थान अत्यन्त प्रिय मालूम होता है। उस स्थान से मारवाड़ जाने के लिए एक मार्ग दिखायी देता है। इस मन्दिर में चारो ओर स्तम्भ बने हुए हैं और उन स्तम्भों से मन्दिर के भीतर के सभी स्थल और दृश्य आसानी से देखने में आते हैं। टिभोली के मन्दिर की तरह इनका निर्माण हुआ है। मैंने शिखर के ऊपर जाकर इस मन्दिर के टूटे-फूटे भागों को देखा। मेवाड़ के प्रसिद्ध पृथ्वीराज और उसकी पत्नी ताराबाई की भस्म के ढेर का भी मैंने अवलोकन किया। उस ढेर को देखकर पृथ्वीराज के जीवन की बहुत-सी बातें मेरी आँखो के सामने घूमने लगी।

ताराबाई बदनौर के राव सुरतान की लड़की थी। राव सुरतान सोलंकी राजपूतों के बलहर राजवंश मे पैदा हुआ था। सुरतान के पूर्वज तेरहवीं शताब्दी में अनहिलवाड़ा छोड़कर मध्य भारत में चले आये थे और वहाँ पहुँचकर टंकथोड़ा एवं बनास नदी के समीपवर्ती सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। बहुत पहले प्राचीन काल में तक्षक जाति के लोगों ने इस टोड़ा राज्य को कायम किया था और उस जाति के नाम पर इसका नाम तक्षशील अथवा तक्षपुर बहुत दिनो तक रहा और इसके बाद टंक थोड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।* अफगानी लिल्ला ने उस पर अधिकार करके सुरतान को वहाँ से निकाल दिया था। इसलिए राव सुरतान मेवाड़ की सीमा पर अरावली पर्वत के नीचे वसे हुये बदनौर में आकर रहने लगा था।

राव सुरतान की लड़की ताराबाई बहुत समझदार थी। अपने पिता के भाग्य के इस पतन पर वह बहुत दु:खी रहने लगी। उसने घोड़े पर चढने और बाण चलाने का अभ्यास आरम्भ कर दिया। अफगानी सेना का मुकाबला करने के लिए जब सुरतान की सेना युद्ध के क्षेत्र में आगे वढ़ी तो ताराबाई अपने घोडे पर बैठी हुई और अपने हाथों में धनुप-बाण लिए हुए सेना के साथ-साथ चल रही थी। लेकिन उस युद्ध मे सुरतान की पराजय हुई।

इससे कुछ दिनों के बाद राणा रायमल के लड़के जयमल ने ताराबाई की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने ताराबाई के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। उस प्रस्ताव को सुनकर ताराबाई ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया : "जो बदनौर का उद्धार करेगा, मैं केवल उसके साथ विवाह करूँगी।"

जयमल ने ताराबाई की इस प्रतिज्ञा को सुना। उसने बदनौर का उद्धार करना और अफगानियो को वहाँ से निकाल देना स्वीकार कर लिया। लेकिन बदनौर से अफगानियों को निकालने के पहले ही जयमल ने ताराबाई के साथ अपना व्यवहार आरम्भ कर दिया। उसने निर्लज्जतापूर्वक ऐसे व्यवहार आरम्भ किये जो ताराबाई को और उसके पिता राव सुरतान को किसी प्रकार पसन्द नहीं आये। इसके फलस्वरूप जयमल राव सुरतान के हाथों से मारा गया।

जयमल का भाई पृथ्वीराज निर्वासित अवस्था मे उन दिनों मारवाड़ में था और उसने गोडवाडा का उद्धार करके अपने शौर्य का परिचय दिया था। इसलिए उसका पिता अब फिर उसके साथ स्नेह करने लगा था। पृथ्वीराज ने राव सुरतान के द्वारा जयमल के मारे जाने का समाचार सुना। उसने भाई जयमल की प्रतिज्ञा को पूरा करने का निश्चय किया।

---

* यहाँ के खण्डहरो में ऐसी बहुत सी चीजे पायी जाती है। जिनसे इस बात का पता चलता है कि यहाँ पर तक्षक जाति के लोग रहा करते थे। इस स्थान के चारों तरफ प्रकृति के सुन्दर दृश्य दिखायी देते हैं। यहाँ पर किसी समय बनास नदी के समीप राजकमल और कुछ दूसरे प्रासाद बने हुये थे। उनके टूटे हुये अशो को देखकर उनकी रमणीकता का अनुभव होता है। - अनुवादक

भाटों और दूसरे कवियों के द्वारा पृथ्वीराज की वीरता की ख्याति इन दिनों में दूर तक फैली हुई थी। राव सुरतान की लड़की ताराबाई ने भी उसकी वीरता की प्रशंसा सुनी थी। उसने अनेक कवियो के द्वारा जाना था कि पृथ्वीराज युद्ध करने में अत्यन्त कुशल और शूरवीर है। उसने यह भी सुना कि पृथ्वीराज घोड़े का एक अच्छा सवार है और एक अच्छे शूरवीर क्षत्रिय के गुण उसमें पाये जाते हैं।

ताराबाई ने इस प्रकार पृथ्वीराज की प्रशंसा सुन कर अपने पिता से बातचीत की और उसने उससे कहा कि अगर पृथ्वीराज अफगानियों को भगा कर बदनौर का उद्धार कर सकता है तो मैं उसके साथ विवाह कर सकती हूँ।

जयमल अपनी बात को पूरा नहीं कर सका, इस बात को समझ कर पृथ्वीराज ने अफगानों से बदनौर के उद्धार की प्रतिज्ञा की थी। इस कार्य के लिए उसने पाँच सौ अच्छे सैनिक सवारों का चुनाव किया और अफगान के विरुद्ध बदनौर पर आक्रमण करने के लिए उसने तैयारी कर ली। ऐसे अवसर पर ताराबाई ने साथ चलने और युद्ध में शामिल होने के लिए अनुरोध किया। पृथ्वीराज ने उसके इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

अपने पाँच सौ सैनिक सवारों के साथ पृथ्वीराज टोड़ा में उस दिन पहुँचा जब ताजिया उठाने की बिदनौर में तैयारी हो रही थी और राजमहल के आँगन में हसन और हुसैन-दोनों भाइयों का जनाजा रखा था। अफगान सरदार महल में कपड़े पहन कर नीचे आने की तैयारी में था। महल के बाहर ताजिये के साथ जाने के लिए बहुत से आदमियों की भीड़ थी।

पृथ्वीराज ने अपने साथ के सैनिकों को बाहर छोड़ दिया और ताराबाई तथा अपने अभिन्न मित्र संगर सरदार के साथ उस एकत्रित भीड़ में जाकर शामिल हो गया। अफगान सरदार ने महल से नीचे आकर उस भीड़ की तरफ देखा और उसने आदमियों से पूछा कि इस भीड़ में जो तीन नये घोड़े के सवार दिखायी देते हैं, वे कौन हैं?

अफगान सरदार के मुख से यह प्रश्न निकला ही था कि एकाएक पृथ्वीराज के बरछे और ताराबाई के तीर से अफगान सरदार जख्मी होकर जमीन पर गिर गया। इसके साथ ही वे तीनों भीड़ से निकल कर नगर के फाटक पर पहुँच गये। वहाँ पर एक हाथी के द्वारा पृथ्वीराज का एक साथी मारा गया। यह देखकर ताराबाई ने अपनी तलवार से उस हाथी की सूंड को काट डाला। हाथी वहाँ से तेजी के साथ भागा और इस मौके पर वे तीनों अपनी सेना में जाकर मिल गये, जो नगर के बाहर कुछ दूरी पर खड़ी थी।

पृथ्वीराज ने अपने सवारो की सेना को लेकर अफगानों पर आक्रमण कर दिया। उस समय इस युद्ध के लिए अफगान सेना तैयार न थी। इसलिए अफगान सेना के सैनिक युद्ध में ठहर न सके। वे सब के सब इधर-उधर भागने लगे। उस भगदड़ में अनेक अफगान सैनिक मारे गये। अफगान सरदार के एक भाई को पृथ्वीराज के सैनिकों ने इसी मौके पर मार डाला।

अजमेर के नवाब मूलूखाँ के अपनी फौज लेकर राजपूतों से युद्ध करने का निश्चय किया। उसकी इस खबर को पाकर पृथ्वीराज ने अपनी सेना के साथ अजमेर की यात्रा की और प्रात:काल होते ही पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच कर अजमेर मे भयानक मारकाट आरम्भ कर

दी और उसी अवसर पर उसने वितलीगढ़ को पराजित किया। राजपूतो की इस मारकाट से वदनोर से लेकर अजमेर तक हाहाकार मच गया।

पृथ्वीराज ने अफगानों से वदनौर का उद्धार किया और वहाँ का शासन राव सुरतान को सौंप दिया। इसके वाद तारावाई का विवाह पृथ्वीराज के साथ हो गया। इसके कुछ ही दिनों के वाद पृथ्वीराज को उसकी वहन का पत्र मिला। उसकी वहन अपनी ससुराल में थी और वड़ी विपद में फँसी हुई थी। उसका पति अफीम का सेवन करता था और उसको रोज वुरी तरह से अपमानित किया करता था।

वहन का पत्र पाकर पृथ्वीराज तुरन्त रवाना हुआ और सिरोही में वहन के यहाँ आधी रात को पहुँचा। वह सीधा महल में चला गया। उसका वहनोई सो रहा था। पृथ्वीराज ने अपनी बन्दूक की नली वहनोई के गले पर रखी। उसी समय उसकी नींद खुल गयी। यह दृश्य देखकर पृथ्वीराज की वहन घवरा उठी। उसने अपने भाई से क्षमा माँगी। पृथ्वीराज ने कहा कि यदि वह मेरी वहन से हाथ जोड़कर क्षमा माँगे और भविष्य में किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार न करने का वचन दे तो मैं उसे क्षमा करूँगा। उसके वहनोई ने पृथ्वीराज की इस वात को स्वीकार कर लिया और उसने वैसा ही किया, जैसा कि पृथ्वीराज ने कहा। इसके वाद पृथ्वीराज ने उसे छाती से लगाकर उसका सम्मान किया।

पृथ्वीराज पाँच दिन तक अपनी वहन के पास वना रहा। वहाँ से लौटने के समय वहनोई ने अपने बनाये हुए लड्डू रास्ते में खाने के लिए उसको दिये। पृथ्वीराज कमलमीर में रहा करता था। वहनोई के यहाँ से लोटकर और कमलमीर के पास पहुँचने पर पृथ्वीराज ने पानी पीने के समय वहनोई के दिये हुए दो लड्डू खाये। उसके वाद आगे चलते ही उसकी हालत खराव होने लगी। वहाँ से पृथ्वीराज ने कमलमीर में सन्देश भेजकर अन्तिम भेंट के लिए तारावाई को वुलाया। लेकिन लड्डुओं में मिला हुआ विप इतना तेज था कि तारावाई के आने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। तारावाई ने आकर चिता वनवाई और पति के मृत शरीर को लेकर वह चिता में जल कर राख हो गयी।

20 अक्टूबर–आज प्रातःकाल हम लोग यात्रा नहीं कर सके। आज हमें मारवाड़ की तरफ यात्रा करनी थी। जिस घाटी से होकर हमे जाना था लोगों का कहना था कि वह घाटी वडी भयानक है। लेकिन उसके साथ ही लोगो ने यह भी बताया कि हाथी और घोड़ अंकुश और चाबुक के भय से चले जाते हैं। इसलिए हम लोगों ने उसी घाटी के रास्ते से जाने का निश्चय कर लिया।

दोपहर तक खाना–पीना खत्म करके हम लोगो ने अपनी यात्रा शुरू कर दी। रवाना होने से पहले जव हम लोगों का सामान बाँधा जा रहा था, सभी लोगों में आगे के रास्ते के सम्बन्ध मे ही बाते होती रही। जब हम लोग रवाना हुए, उस समय दोपहर के तीन बज चुके थे। सवसे पहले हमारे साथ के वे लोग रवाना हुए, जो मार्ग के देखने–समझने का काम करते थे।

हम सब लोगों ने पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि रात हम लोग वहाँ पर व्यतीत करेंगे, जहाँ पर मेवाड़ और मारवाड की सीमा मिलती हैं। उस स्थान के सम्बन्ध में हम

पहले से मालूम कर चुके थे कि वह विस्तृत और अधिक चौड़ा है। रास्ता बहुत संकटपूर्ण होने पर भी हम लोग अपने निश्चय के अनुसार अभीप्ट स्थान पर समय पर पहुँच जाते, लेकिन रास्ते की खरावी के कारण बीच में ही हम लोगों को बहुत समय लग गया।

यात्रा आरम्भ करने के बाद एक मील तक हमें इतना भी चौड़ा रास्ता न मिल सका, जिससे सामान से लदा हुआ हाथी आसानी से जा सकता। उस मार्ग के दोनों तरफ ऊँची-नीची भूमि थी और स्थान-स्थान पर जल के सोते बह रहे थे। बूंदी के राजा ने हमको चैंतन्यमणि नामक एक घोड़ा दिया था। यात्रा के पहले ही मील में हमे मालूम हुआ कि पैर फिसल जाने के कारण चैतन्यमणि घोडा लुढ़क कर नीचे गिर गया है। उसकी पीठ पर कसी हुई जीन का तंग टूट गया था। उससे आगे कुछ फासले पर रसोइया दिखायी पड़ा। वह अपनी परेशानी की हालत में गिरी हुई चीजों को एकत्रित करने में लगा हुआ था और उसका ऊँट पीठ पर सामान लादने नहीं देता था।

यात्रा का अव हम एक मील किसी प्रकार पार कर सके और धीरे-धीरे चलकर दूसरे मील में हम लोग कमलमीर के दुर्ग के नीचे पहुँच गये। यहाँ पर रास्ता बहुत सीधा हो गया था। यहॉ की चट्टान पर जो बुर्ज बना था, वह जमीन की सतह से पॉच सौ फुट ऊँचा था। इस स्थान का दृश्य अत्यन्त रमणीक था। उसके चारों तरफ ऊँचे-नीचे शिखर दिखाई देते थे। पश्चिम की तरफ जाकर अस्त होने वाली सूर्य की किरणे हमारे मार्ग में पडकर थोड़ा बहुत उजाला पैंदा कर देती थीं। मार्ग में वृक्षों पर उन किरणों का जो प्रकाश पड रहा था, वह बड़ा सुहावना मालूम होता था। उस मार्ग में अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड रहा था। लेकिन उसकी वहुत-सी बातें मेरे अन्तर में एक प्रकार का अनोखा उल्लास पैदा कर रही थी। हम लोग जब यात्रा कर रहे थे उस समय शीतल वायु बडी तेजी के साथ चल रही थी।

मार्ग मे भयानक संकटों को पार करते हुए मैंने एक सप्ताह व्यतीत किया था। वे कठिनाइयॉ एक-सी नहीं थीं। कहीं पर रास्ता अत्यधिक ऊँचा और कहीं पर अधिक नीचा था। कहीं पर बहुत तंग और इतना तंग कि साथ के हाथी का निकल सकना कठिन हो जाता और कहीं पर इतना ऊबड़-खाबड़ कि आगे बढ़ना कठिन मालूम होता। इस प्रकार अनेक तरह की कठिनाइयों और संकटों का सामना करते हुए हम लोग अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे।

अपने मार्ग पर चलते हुए हम लोग अब एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहॉ पर वहुत-सा जल रुककर एक सरोवर वन गया था। साथ के एक सैंनिक को यह विश्वास हुआ कि वह इस जल को पार कर जाएगा। इसी आशा पर जल के भीतर उसने अपने घोडे को वढ़ाया और जैसे ही वह बायें हाथ की तरफ मुड़ा उसका घोडा अपने सवार के साथ जल मे डूब गया। यह दृश्य भयानक रूप से सामने उपस्थित हुआ। लेकिन थोड़ी देर तक ही यह दृश्य रहा और कुछ ही देर में वह घोड़ा जल के बाहर निकल आया।

इस स्थान का नाम हाथी दुर्रा है। मैंने सोचा कि इसी स्थान पर रहकर रात काटी जाए। लेकिन वह स्थान इस योग्य न था कि हम लोग वहॉ पर मुकाम कर सकते। स्थान बहुत तग और सीमित था। रात का समय था और अंधकार बढ़ता जा रहा था। उस भीपण अंधकार मे न तो आगे वढने की हिम्मत पड़ती थी, क्योकि रास्ता अत्यन्त अरक्षित था ओर न वह

स्थान इस योग्य था कि मुकाम किया जा सके। मजबूरी अवस्था में हम लोग नदी के किनारे का रास्ता पकड़कर धीरे-धीरे आगे की तरफ चल रहे थे। अंधकार इतना अधिक था कि कुछ दिखाई नहीं देता था। नदी के जल बहने से जो आवाज हो रही थी, वही हमारा उस समय सहारा था और उसी से हम लोगों को पथ प्रदर्शन मिल रहा था।

किसी प्रकार हम लोग आगे की तरफ बढ़ते रहे। नदी के जल की आवाज से जो हम लोगों को सहारा मिल रहा था, उसमें भी गड़बड़ी पड़ने लगी। बाहर का जल जो नदी में गिर रहा था, उसकी आवाज अधिक तेज हो जाती थी और उसके कारण हम लोगो के सामने एक नया असमंजस पैदा हो जाता था। लेकिन परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं चलतीं। उस समय हम लोग ढालू स्थान पर चल रहे थे। कुछ आगे जाने के बाद आगे का रास्ता चौड़ा मिला। विस्तार में स्थान पाने के कारण नदी का जो जल गहराई में बह रहा था, वह फैल गया था और नदी की चौड़ाई अधिक हो गयी थी।

अपने मार्ग में चलते हुए हमने आकाश की तरफ देखा, बादलों के बिना आसमान दिखायी पड़ा। आकाश में तारे चमक रहे थे। हम लोग अपने रास्ते पर चलते जा रहे थे लेकिन हम लोग चिन्ताओं से ग्रस्त थे। रास्ता भयानक जंगली था और एकाएक भयानक जंगली जानवरों का हम लोगों पर आक्रमण हो सकता था। हमें यह पहले से ही मालूम था कि मार्ग में हिंसक जानवरों का भय रहेगा। चीतों और बाघों के कारण रास्ता सुरक्षित नहीं है। यह बात हम लोगों को मालूम थी। हम लोगों की चिन्ता इतनी ही न थी। पहाड़ों पर रहने वाले लुटेरों का भय भी हम लोगों को था। जंगल में हिंसक पशुओं से भी अधिक भय उन लुटेरों का था, जो अचानक रात के अन्धकार में आक्रमण कर सकते थे। फिर भी हम लोग अपने मार्ग पर चले जा रहे थे।

कुछ आगे बढ़ने के बाद एकाएक हम लोगों को एक झाड़ी में प्रकाश दिखायी पड़ा। उस झाड़ी के पास बरगद का एक पेड़ भी था और उस पेड के नीचे घोडों के सवारों का एक दल दिखायी पड़ा। हम लोग जहाँ पर पहुँचे थे, वहाँ पर ठहर गये और अनेक साथ के आदमियों से परामर्श करने लगे। जो संकट हम लोगों को दिखायी पड़ा, उसका सही अनुमान हम लोगों को न हो सका। इस दशा में हम लोगो ने समझा कि उस बरगद के नीचे लुटेरों का एक दल है, जो अपने घोड़ों पर है। अगर उस लुटेरों के दल ने आक्रमण किया तो हम सब लोगो को मुकाबला करना होगा। इसके लिए हम लोग तुरन्त सतर्क और सावधान हो गये।

हम सब लोग अपने स्थान पर खड़े थे। अन्धकार के कारण मीलों की दूरी मार्ग संकट पूर्ण दिखायी दे रहा था। रास्ते को छोड़कर हम लोग दाहिने और बायें भी नहीं जा सकते थे। क्योंकि जंगल के हिंसक पशुओं का भय था। साथ ही यह भी भय था लुटेरों का कोई दूसरा दल कहीं हम लोगों पर एकाएक हमला न कर दे। इस प्रकार के असमंजस में हम लोग अपने स्थान पर खड़े थे और इस बात का निर्णय न कर सके कि इस भयानक समय में हम लोगो को क्या करना चाहिए।

इसी समय घोडों के उन सवारो के दल की तरफ हमने फिर एक बार देखा। जहाँ पर वह दल मोजूद था, एक अलाव जल रहा था और अलाव की आग को घेरे हुए उस दल

के लोग दिखायी दे रहे थे। ये सब सशस्त्र सैनिक और घोड़ों के सवार थे और उनकी संख्या लगभग तीस के लगभग मालूम हो रही थी। दूर से हम लोगों को यह भी अनुमान हुआ कि वे लोग आपस में बातें कर रहे हैं। लेकिन उनकी बातचीत इतनी धीरे हो रही थी कि सुनी नहीं जा सकती थी। लगातार उनकी तरफ देखने से यह भी मालूम हुआ कि वे लोग हुक्का पी रहे हैं और जब एक आदमी हुक्का पी लेता है तो वह हुक्के की नली को दूसरे आदमी की तरफ कर देता है।

उन शस्त्रधारी आदमियों को देखकर अनुमान होता था कि वे सब मरुभूमि के रहने वाले हैं। क्योंकि उनके सिर पर पंचरंगी पगड़ी थी और उनके सिर के बाल घुंघराले थे। अलाव की जलती हुई आग में यह सब दिखाई दे रहा था। उन लोगों के पास एक छोटा-सा चबूतरा भी दिखायी दे रहा था। शायद किसी अच्छे आदमी के स्मारक स्वरूप यह चबूतरा बनवाया गया है, ऐसा मालूम होता है। जो कुछ भी हो यह तो मालूम हो गया है कि वह चबूतरा बैठने के काम में आ सकता है।

मैंने लगातार शस्त्रधारी उस दल की तरफ देखा। उस दल के लोगों का एक सरदार भी उनके साथ था। उसके सिर पर पगड़ी उसके सरदार होने का दूर से परिचय दे रही थी। क्योंकि दूसरों की पगड़ी से उसकी पगड़ी कुछ विशेषता रखती थी और ऐसा मालूम होता था कि उसकी पगड़ी में सोने की एक जंजीर लटक रही है। वह सरदार हिरन के चमड़े की बड़ी पहने दिखायी दे रहा था।

उस दल की इन सभी बातों को देखने, समझने और अनुमान लगाने के बाद मैं आगे की तरफ बढ़ा और कुछ निकट जाकर मैंने उस सरदार को राम-राम किया। इसके साथ ही मैंने गनोहा सरदार का कुशल समाचार उससे पूछा। मैं इस बात को जानता था कि गनोहा का सरदार उन लोगों में बीच बहुत प्रसिद्ध है और सभी लोग उसका सम्मान करते हैं।

मेरे मुख से राम-राम सुनकर और मेरी बातों से मेरी ओर आकर्षित होकर उन लोगों ने मेरी ओर देखा। पचास वर्ष पहले गोदवारा मेवाड़-राज्य मे शामिल था। लेकिन उसके बाद वह उस राज्य में नहीं रहा। वह मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों की सीमा समझा जाता था, और वहाँ पर प्रायः भयानक दुर्घटनायें हुआ करती थीं। उन लोगों के पास पहुँचने पर मुझे अनेक बातें मालूम हुईं, यह भी मालूम हुआ कि उस स्थान पर कितने ही मृत पुरुषों के स्मारक बने हुए हैं और प्रत्येक स्मारक पर घोड़े पर चढ़े हुए और हाथ में भाला लिए हुए एक वीर पुरुष की मूर्ति है। उन स्मारकों को मैं ध्यानपूर्वक देखता रहा। प्रत्येक स्मारक की मूर्ति इस बात का परिचय देती है कि उस वीर पुरुष का इस घाटी की रक्षा करते हुए बलिदान हुआ है। प्रत्येक स्मारक पर मिती और सम्वत् खुदा हुआ है। उसको पढ़कर मालूम होता है कि उस वीर पुरुष का कब बलिदान हुआ था। इन स्मारकों से मैं बहुत प्रभावित हुआ और बड़ी देर तक उनको देखने के कारण मेरे मनोभावों में अनेक प्रकार की बातें पैदा होती रहीं।

आधी रात से अधिक समय हो चुका था। हम सभी भूखे थे। लेकिन किसी प्रकार का कोई भोजन इस समय मिलने की आशा नहीं थी। डॉक्टर डंकन और कैप्टन वौने ने हाथी की पीठ से झूल उतार ली और उसको बिछाकर उस दल के सरदार के पास वे दोनों बैठ गये।

मैं भी वहीं वैठ गया और उस दल के लोग जो आपस में वातें कर रहे थे, उनको सुनने लगा। कदाचित् आपस में इस प्रकार की वात करके वे लोग रात का समय काट रहे थे। वे आग के सहारे वैठे थे।

उन लोगों में जो वाते हो रही थीं, वे दिलचस्प थीं और सुनने में वड़ी प्रिय मालूम होती थीं उनकी वातें मुझे वहुत दिनों तक याद रहेगी। लेकिन उनका क्रम और तरीका मुझे याद न रह सकेगा। मैं जानता हूँ कि इस स्थान पर हम लोगों के आदमियों ने अनेक मौकों पर यहाँ के पहाड़ी लोगों से युद्ध किया था और उनमें से वहुतों को यहाँ पर मार डाला था। वे घटनायें अव पुरानी हो चुकी हैं। पहले का समय भी अव नहीं रह गया। इन पहाड़ियों पर रहने वाले भील लोग अव पहले की तरह लुटेरे नहीं रह गये। अव उनमें कुछ अच्छी आदतें आ गयी हैं।

अध्याय-71
माहीरवाड़ा अथवा मेरवाड़ा की यात्रा

माहीर जाति को लोग मीणा जाति भी कहते हैं। इस जाति के लोग पहाड़ों पर रहा करते हैं और पर्वत के जिस भाग में रहते हैं, वह माहीर वाडा कहलाता है। माहीर लोगों की उत्पत्ति मीणा अथवा माहीर जाति से मानी जाती है। वे लोग माहीरोत अथवा माहीरावत के नाम से प्राचीन काल में पुकारे जाते थे। कमलमीर से लेकर अजमेर तक का जो सम्पूर्ण स्थान अरावली पर्वत पर है, वह माहीरवाड़ा कहलाता है। वह स्थान लम्बाई में नब्बे मील और चौड़ाई में छः सौ बीस मील तक पाया जाता है। चौड़ाई का भाग कहीं पर कम और कही पर अधिक है। समुद्र की सतह से तीन हजार से लेकर चार हजार फुट तक वह स्थान ऊँचा है और उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। उस भूमि पर प्रकृति का जो सौन्दर्य देखने को मिलता है, वह कदाचित् कहीं अन्यत्र न मिलेगा।

यो तो माहीर जाति का वर्णन बहुत विस्तार में है। लेकिन यहाँ पर उसको अधिक विस्तार में लिखने की जरूरत नहीं है। इस दशा में उस जाति की प्रमुख और महत्त्वपूर्ण जो बातें जानने के योग्य हैं, उन्हीं को हम यहाँ लिखने की कोशिश करेंगे।

मीणा जाति कई भागों में विभाजित है। उसके चीता नामक विभाग से माहीर लोगों की उत्पत्ति मानी जाती है। मीणा लोगों में जेता नामक एक शाखा है। राजपूतो की तरह उस जाति में बहुत-सी शाखायें पायी जाती हैं। उन शाखाओं के लोग बड़े स्वाभिमान के साथ अपने पूर्वजों का वर्णन करते हैं। मीणा जाति के चीता वंश के लोग दिल्ली के अन्तिम चौहान सम्राट के पौत्र को अपना आदि पुरुष मानते हैं। चौहान राजा के भतीजे लाखा के अनल और अनूप नामक दो लड़के पैदा हुए थे। उनके साथ विवाह करने के लिए जैसलमेर के राजा ने नारियल भेजा था। उनके बाद मालूम हुआ कि उस वंश की उत्पत्ति एक वैश्या के गर्भ से हुई है। इस दशा में वे लोग अजमेर से निकाल दिये गये थे। उस के बाद वे लोग अपने मामा के यहाँ जाकर रहने लगे।

अनल का विवाह मीणा सामन्त की लडकी के साथ हुआ था और उससे चीता का जन्म हुआ। चीत्ता के वंश के लोग सदा से महीरवाड़ा में शासन करते आये थे। आमेर के उत्तरी भाग में चीत्ता के जो उत्तराधिकारी रहते थे, उनकी संख्या पन्द्रह थी। उनके बाद उनका सोलहवाँ पुरुष अजमेर के मुसलमानों के द्वारा मुसलमान बनाया गया और उसका नाम दाऊद खाँ रखा गया। उस समय से वे लोग मुस्लमानों में माने गये।

दाऊद खाँ आथून नामक गाँव में रहता था। उस गाँव के सम्बन्ध के कारण महीरीतों का सरदार आथून खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चाङ्ग, झक और राजसी नगर उसके अधिकार

में प्रधान थे। अनूप का विवाह भी एक मीणा कुमारी के साथ हुआ, उसके बुडा नामक एक लडका पैदा हुआ। बुडा के वश वाले अपने पूर्वजों की रीति-नीति पर बराबर चलते रहे। बुडार, बाहिर बाडा और मन्दिला इत्यादि नगरों में वे लोग रहा करते थे।

इन मीणा लोगों के वंश का सम्बन्ध राजपूतों के साथ था लेकिन इनके चरित्र मे राजपूतो जैसे गुण नहीं थे। वे लोग चरित्रहीनता और लूटमारी के लिए बहुत पहले से कुख्यात थे। चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि अजमेर के राजा विशाल देव ने इन मीणा जाति के लोगों का भयानक रूप से दमन किया था। उस दमन के परिणामस्वरूप उन लोगों को अजमेर की सड़कों पर पानी छिडकने का काम करना पड़ा। इन घटनाओं से मालूम होता है कि इस जाति के लोग बहुत पहले से अत्याचारी और लुटेरे थे।

मीणा जाति के राजा की शक्तियाँ जब निर्बल हो गयी थीं और उसका डर मीना लोगों को न रहा तो उसके बाद मीणा जाति के लोग मनमाने अत्याचार करने लगे। अजमेर के चौहानों के साथ जब मण्डोर के परिहारों का युद्ध हुआ था, उस समय मण्डोर राजा की तरफ से चार हजार माहीर लोग धनुप-बाण लेकर युद्ध मे गये थे। इसका वर्णन चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ में किया है। उसने लिखा है कि मण्डोर के राजा ने उन माहिर लोगों को पहाड़ी रास्ते की रक्षा करने के लिए युद्ध के समय नियुक्त किया था। मण्डोर का राजा माहीर अथवा मीणा लोगों की बहादुरी को भली प्रकार जानता था। उसे इस बात का विश्वास था कि ये लोग अपनी भयानक शक्तियो का प्रमाण देगे।

चौहानों को समाचार मिला कि मण्डोर के राजा की तरफ से पहाड़ी रास्ते की रक्षा के लिए मीणा लोग नियुक्त किये गये हैं। उनको पराजित करना आसान नहीं है। चौहानों को यह सुनकर बडा क्रोध मालूम हुआ और मीणा लोगों को पराजित करने के लिए शूरवीर काना को भेजा गया। साहसी काना अपनी सेना के साथ पहाड़ की उस दिशा की तरफ रवाना हुआ, जिस तरफ चार हजार मीणा लोग युद्ध के लिए तैयार खड़े थे।

दोनो तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ और बहादुर मीणों के बाणों से राजपूतों के सैनिक जख्मी होकर गिरने लगे। यह दशा कुछ देर तक बराबर चलती रही। मीणा लोग अपने बाणों से मार करने में जिस प्रकार प्रसिद्ध थे, वह किसी से छिपा न था। मीणा लोगो की मार देखकर शूरवीर काना अपने घोडे से उतर पड़ा और उसने शत्रुओं के साथ तलवार की लड़ाई आरम्भ कर दी। यह देखकर मीणा जाति के सरदार ने युद्ध में धनुप-बाण छोड़कर अपनी तलवार का प्रयोग किया और उसकी मार से काना एक बार विचलित हो उठा।

इस समय दोनो तरफ से भीपण मार-काट हो रही थी। मीणा सरदार के आक्रमण को देखकर साहसी काना आगे बढ़ा और मीणा सरदार को मार कर उसने जमीन पर गिरा दिया। उसके गिरते ही एक मीणा शूरवीर आगे बढ़ा और अपने सरदार का बदला लेने के लिए उसने काना पर जोर का आक्रमण किया। मीणा सरदार के मारे जाने पर राजपूतों का उत्साह बढ गया था। उस समय वे लोग अपनी भयानक शक्तियो का प्रदर्शन करते हुए आगे बढे। उस समय राजपूतो में उत्साह की वृद्धि हो रही थी। हाथियो के चिंघाडने और घोडो के हिनहिनाने की आवाजों से युद्ध का वह सम्पूर्ण स्थल गूँज उठा। उस समय राजपूतो के सामने

मीणा लोगों का ठहरना कठिन मालूम हो रहा था। इसी समय गिरनार और दूसरी सेना ने आगे बढ़कर भीषण युद्ध आरम्भ किया। इसी समय मीणा सरदार की तरफ से नाहर नामक एक योद्धा राजपूतों से युद्ध कर रहा था। प्रत्येक शूरवीर अपने हाथों मे तलवारें लिए हुए और अपने वश के देवता की जय-जयकार करते हुए युद्ध मे आगे बढ़ रहा था।

चौहान नरेश पृथ्वीराज इस समय युद्ध में मौजूद था। उसने नाहर का सामना किया। परमार वश के राजपूत अपने हाथो में तलवारें लिए हुये काले बादलों की तरह आगे बढ़ रहे थे। मण्डोर के राजा का भाई भी इस समय युद्ध कर रहा था। इसी समय परमार राजपूतो के राजा के सिर पर रखा हुआ शिरस्त्राण तलवार की चोट खाकर दो टुकडे हो गया और नीचे गिर गया। इसी समय परमार राजपूत जख्मी होकर पृथ्वी पर गिरा।

माहीर लोग सदा से अत्याचारी रहे हैं। वे आजकल जिस प्रकार उपद्रवी देखे जाते हैं, बारहवीं शताब्दी में भी वे वैसे ही थे। कई मौकों पर उनका दमन किया गया था। लेकिन अवसर पाने पर वे फिर विद्रोह करते रहे हैं।

राजपूत राजाओ के द्वारा कई बार इन मीणा लोगों का दमन हो चुका था। लेकिन मराठो के आने पर इन लोगों ने फिर से अत्याचार और उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। सन् 1821 ईसवी में दूसरे अत्याचारियों का दमन करने के साथ-साथ इन लोगों का भी दमन किया गया और उसमें बहुत बड़ी सफलता भी मिली। लेकिन कुछ कारणों से वह सफलता स्थायी रूप मे न रह सकी।

माहीर, मराठा, पिण्डारी और पठान लोगों के अत्याचार राजपूतों पर बहुत दिनों तक होते रहे। आपसी फूट, विरोध, द्वेष और विद्रोह के कारण राजपूत लोग उनको परास्त करने में असमर्थ रहे। राजपूतों के आपसी विरोध ने उनको इस योग्य नहीं रखा कि वे शत्रुओं को पराजित कर सकते। सदा हालत यही रही कि जब राजपूत राजा आक्रमणकारी शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए जाता तो दूसरा राजपूत राजा आक्रमणकारी को आश्रय देकर उसकी सहायता करता। इसका अभिप्राय यह था कि आपस में फैली हुई फूट के कारण राजस्थान के सभी छोटे और बडे राजा एक दूसरे के विध्वंस और विनाश में लगे हुए थे। उनके सर्वनाश का यही एक प्रधान कारण हुआ।

राजपूतों के आपसी वैमनस्य के कारण माहीर लोगों की शक्तियॉ प्रबल हो गयी थीं। लेकिन जब अंग्रेज सरकार ने राजपूत राजाओ का संगठन करके इन लोगों का दमन किया, उस समय आक्रमणकारियो को राजस्थान में कहीं पर भी आश्रय नहीं मिला और न उनको किसी से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त हो सकी। इसलिए आक्रमणकारियों का साहस सदा के लिए पस्त हो गया। उनके अत्याचार वहीं से खत्म हो गये।

मीणा लोगों के सम्बन्ध मे अधिक हम आगे लिखने की कोशिश करेगे। यहॉ पर संक्षेप मे कुछ प्रकाश डालकर समाप्त कर देगे। माहीर लोग अपने पूर्वजों के निर्धारित नियमो का आज तक पालन करते है। उनमे नया कोई परिवर्तन देखने मे नही आता। उन लोगो मे विधवाओं के साथ विवाह किये जाते है। विधवाओ के साथ होने वाले विवाह को उनमें 'नाथ विवाह' कहा जाता है। राजपूत लोग विवाह के समय कागली नामक एक दण्ड उनसे लिया

करते हैं और उसमें उन लोगों को रुपये देने पड़ते हैं। इस प्रकार के विवाह के समय वर के सिर पर मोर के वदले पीपल की टहनी वॉध देते हैं। विवाह में सात वार घूमने की उनमें भी प्रथा है। अर्थात् अन्न भरे हुए सात कलश नीचे-ऊपर रखकर वे फेरे डाले जाते हैं। वर और कन्या के वस्त्रों मे गाँठ वॉधकर विवाह करने की प्रणाली माहीर लोगों मे अव तक प्रचलित है और सभी लोग उनके नियमों का पालन करते हैं।

इस प्रकार की प्रथाओं में एक विशेप वात यह है कि जो माहीर लोग मुसलमान हो गये हैं, वे भी विवाह के समय इसी प्रकार के नियमों का पालन करते हैं और उनके विवाह ब्राह्मण पुरोहितो के द्वारा सम्पन्न होते हैं। उनके सामाजिक संस्कारों में मुसलमान होने के वाद कोई अन्तर नहीं आया। माहीर लोगों की यह एक विशेपता है।

इस प्रकार की वातों की खोज से मुझे मालूम हुआ है कि विधवा स्त्रियो के विवाह केवल माहीर लोगों मे ही नहीं होते थे, बल्कि अत्यन्त प्राचीन काल में ब्राह्मण और राजपूत भी विधवा स्त्रियो के साथ विवाह किया करते थे। उनके विवाहों में उस समय किसी प्रकार की रुकावट न थी। लेकिन आजकल ब्राह्मणो और राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचार नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि विधवाओ के विवाह की रुकावट प्राचीन काल मे न थी बल्कि वह बीच में किसी समय पैदा की गयी है।

गुहलोत राजपूतों के मेवाड मे राज्य का विस्तार करने के पहले वहाॅ पर जो ब्राह्मण रहते थे, उनमें विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इसके वहुत-से प्रमाण पाये जाते हैं। जिन राजपूतों में विधवा विवाह की प्रथा पायी जाती थी, वे इस स्थान के रहने वाले प्राचीन राजपूतों के वंशज थे और इन दिनों में उनको राजस्थान मे भूमिया कहा जाता है। पुराने काव्य ग्रन्थों में चिनानी, खारवार, उत्तायन और दया नामक जातियों के जो उल्लेख पाये जाते हैं, उन सब का सम्बन्ध उन्हीं लोगों के साथ था। अरावली पर्वत के वहुत से स्थानों में उन जातियो के मनुष्य अव भी पाये जाते हैं। परन्तु अव उनकी संख्या वहुत कम ह।

माहीर लोगों में विवाह का कार्य वहुत आसानी के साथ होता है और उसमें किसी प्रकार की कोई कठिनाई पैदा नहीं होती। उन लोगों मे विवाह-विच्छेद का प्रचलन भी है। यदि स्त्री-पुरुप में कुछ बिगाड़ पैदा हो जाए और ऐसे कारण पैदा हो गये हो, जिनसे वे एक दूसरे के साथ रहना न चाहें तो उनको विवाह-विच्छेद करने का सामाजिक अधिकार है। इसके लिए पति अपने दुपट्टे का कुछ भाग फाडकर स्त्री के हाथ मे दे देता है। उसके वाद उसका सम्बन्ध उसके साथ विच्छेद हो जाता है। जिस स्त्री का इस प्रकार परित्याग होता है, वह स्त्री उस दुपट्टे का टुकडा हाथ मे लेकर और अपने सिर पर जल से भरे हुए दो कलश नीचे-ऊपर रखकर जब किसी मार्ग से इच्छापूर्वक निकलती है। उस समय जो पुरुप उस स्त्री के सिर से जल के भरे हुये कलशो को उतार लेता है, उस पुरुप के साथ उस स्त्री का विवाह हो जाता है। उनमें यह एक साधारण नियम है।

विवाह विच्छेद का यह नियम मीणा लोगो के साथ-साथ जाट, गूजर, माली और वहुत-सी दूसरी जातियो मे भी प्रचलित है। माहीर वाड़ा मे रहने वाली सभी जातियों मे विवाह विच्छेद की प्रथा आम तौर से पायी जाती है।

इन लोगों में ईश्वर की पूजा और शपथ लेने की प्रथायें कुछ विचित्र सी पायी जाती हैं। मुसलमान लोग अल्लाह की कसम खाते हैं और हिन्दू ईश्वर की सौगन्ध लिया करते हैं। उसी प्रकार माहीर लोग शपथ लेने के समय सूर्य की सौगन्ध लेते हैं। उनमें से कुछ लोग इस प्रकार शपथ लेने के समय नाथ की आन कहते हैं। शपथ ग्रहण करने का उनका यह एक तरीका है, जो साधारण रूप में पाया जाता है।

जो माहीर लोग मुसलमान हो गये है, वे शूकर का माँस नहीं खाते। परन्तु दक्षिणी प्रान्त मे रहने वाले माहीर लोग बिना किसी विचार के सभी प्रकार का माँस खाते हैं। परन्तु गाय का माँस नहीं खाते। तीतर और मालेली नाम के दो पक्षियों का बोलना उन लोगो मे शकुन समझा जाता है। माहीर लोग जब लूट-मार करने के लिए अपने घरों से बाहर निकलते हैं, उस समय अगर तीतर की आवाज उनको सुनायी पड़े तो वे लोग शकुन समझते हैं और अपनी सफलता पर पूर्ण विश्वास करते हैं।

माहीर जाति के लोग सौराष्ट्र से लेकर उत्तर की तरफ चम्बल नदी तक फैले हुए हैं। माहीर वाड़ा आजकल मेवाड़ के राणा के अधिकार में हैं। जहाँ के माहीर लोग राणा का शासन नहीं स्वीकार करते, उनको दमन करने के लिए राणा ने बडी सख्ती से काम लिया है। सभी स्थानों के माहीर लोगों से कर लिया जाता है। जो लोग राणा को कर नहीं देते, उनके सरदारों को राणा के सामने लाकर पेश किया जाता है और जब वे शपथपूर्वक राणा की अधीनता को स्वीकार कर लेते हैं तो राणा की तरफ से उनके पद के अनुसार पारितोपित दिये जाते हैं। माहीर लोगों को अपनी अधीनता में लाने के लिए राणा की तरफ से जो प्रयत्न किये गये है, उनमें उसे पूरी सफलता मिली है। लेकिन कमलमीर में हमारे आने के पहले की ये सब घटनायें हैं।

21 अक्टूबर-रात बीत जाने के बाद सवेरे का प्रकाश देखकर हम सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। कप्तान वाव और डॉक्टर डंकन ने जो हाथी की झूल शीत से बचने के लिए अपने शरीरों पर लपेट रखी थी, उसको उन लोगो से अलग किया और मैं भी पालकी के भीतर से निकल कर बाहर आया। रात में पड़ने वाली ओस से बचने में पालकी ने हमारी बड़ी सहायता की। हम सभी लोग भूखे थे। इसलिए प्रकृति के रमणीक दृश्य देखने में तबीयत न लगती थी। फिर भी मैं तो यही चाहता था कि दक्षिण के भयानक पहाड़ी रास्ते से चल कर वहाॅ के लुटेरों की खोज की जाए।

एक छोटा सरदार बढबटिया नाम से सभी लोगों मे प्रसिद्ध है। वह चौहानों की दूसरी शाखा में पैदा हुआ है। उसका वंश सोनगरा कहलाता है। उसके वंश के लोगो ने कई शताब्दी तक जालोर मे राज्य किया है। यह सामन्त पहले मारवाड की अधीनता में था। किन्तु अनेक खराबियो के कारण मारवाड़ के राजा ने उसको अपने यहॉ से निकाल दिया था। उस दशा मे वह गोकुलगढ़ के दुर्ग मे आश्रय लेने के लिए चला गया। गोकुलगढ़ का दुर्ग अरावली पर्वत के ऊपर बना हुआ है।

उस दुर्ग मे पहुँच जाने के बाद सामन्त वहॉ के आस-पास के निवासियों को अनेक प्रकार से भयभीत करने लगा। वहॉ के लोग लूटमार किया करते थे। इसलिए देवगढ का सामन्त

उनकी लूट में हिस्सा लिया करता था। इसका एक कारण यह भी था कि लुटेरे उन्हीं स्थानों में लूटमार किया करते थे, जो देवगढ़ के अन्तर्गत थे और इस दशा में उन लुटेरों को किसी दूसरे सामन्त के द्वारा कैद होने का डर नहीं था। सोनगरा वंश के लोग भी इसी प्रकार का काम करते थे और उनके अत्याचार अत्यन्त भयानक थे।

एक समय की घटना है। कोई मनुष्य विवाह करके अपनी नव विवाहिता स्त्री को लिए हुए गोड़वाड़ा के रास्ते से जा रहा था। कुछ लुटेरों ने उन दोनों को पकड़ा और उन्हें गोकुलगढ़ में ले आये। जो मनुष्य विवाह करके जा रहा था, उससे दण्ड में एक लम्बी रकम माँगी गई। वह उस दण्ड को अदा न कर सका। इसलिए उसको बहुत दिनों तक कैद में रहना पड़ा। उसके बाद उन दोनों को छोड़ दिया गया। इस प्रकार लोगों को पकड़ने के लिए लुटेरों का एक दल छिपे तौर पर इधर-उधर घूमा करता था। इस प्रकार की चोरी और लूटमारी यहाँ पर बहुत दिनो से होती चली आयी है।

मारवाड़ी मित्रों के साथ इस प्रकार बातें करते हुए हम लोग अपने रास्ते पर चल रहे थे और संकटपूर्ण मार्ग से पाँच मील आगे निकल गये थे। इसके बाद गानोरा का सामन्त अपने बहुत-से आदमियों के साथ मेरे पास आया और सम्मानपूर्वक उसने मुझसे भेंट की। इस सामन्त ने बातचीत के सिलसिले में अपनी विपदाओं की एक कहानी मुझसे कही। उसकी बातों को सुनकर मैंने उसके साथ अपनी सहानुभूति जाहिर की।

हम लोग घोड़ों पर बैठे हुए उस स्थान की तरफ चलने लगे, जहाँ पर हम लोगों का मुकाम होने वाला था। रास्ते में उस सामन्त के साथ राणा और मारवाड़ के राजा के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। उसने राणा के सम्बन्ध में अनेक बातें मुझसे पूछीं। सामन्त अजित सिंह एक प्रसिद्ध आदमी है। उसकी अवस्था तीस वर्ष, लम्बा शरीर और देखने में साहसी मालूम होता है। गानोरा, गोदवारा में एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ से राणा को पहले चार हजार राठौर सेना युद्ध के समय प्राप्त होती थी। उस सेना के वेतन को स्थान पर भूमि दी जाती थी। उस भूमि से उस सेना के सैनिक अपना निर्वाह करते थे।

गानोरा का सामन्त मेवाड़ के सोलह प्रधान सामन्तों में एक था। समय की गति से उसका प्रदेश मारवाड़ में मिला लिया गया है और अब उसका राजा मारवाड़ का शासक है इस अवस्था में भी गानोरा के सामन्त की राजभक्ति मेवाड़ के राणा के प्रति इतनी अधिक है कि अभिषेक के समारोह में मारवाड़ के राजा के बदले वह अपने प्राचीन स्वामी राणा को ही आमन्त्रित करता है और राणा के द्वारा असिबन्धन का संस्कार पूरा होता है।

राणा के प्रति उसकी जो यह राजभक्ति थी वह मारवाड़ के राजा से छिपी न रह सकी। उस सामन्त से इसका बदला लेने के लिए गानोरा का दुर्ग गिरवा दिया गया। परन्तु उस सामन्त पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। आज भी उस सामन्त की यह हालत है कि राणा का दूत आकर जब उसे कोई सन्देश देता है तो वह सामन्त बड़े सामन्त के साथ राणा की आज्ञा का पालन करता है।

गानोरा के राजपूत स्वाभिमानी हैं और किसी प्रकार की विपद आने पर वे अपनी मातृभूमि की रक्षा करना जानते हैं। उनके पूर्वजों ने भी अनेक अवसरों पर अपनी बहादुरी का

परिचय दिया था। उनका प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़ा है। कहा जाता है कि उन राजपूतों के पूर्वजों ने मुगल सेना के आक्रमण करने पर संग्राम किया था और उस युद्ध में उन लोगों ने अपनी वीरता का अच्छा प्रमाण दिया था।

यह बात सही है कि आजकल गानोरा का प्रदेश मेवाड़ राज्य से अलग है। लेकिन जव कभी उसका सामन्त राणा के दरबार में आता है तो उसका उचित और आवश्यक सम्मान किया जाता है। मेवाड़ के राज्य में जब कोई उत्सव खुशी का अवसर मनाया जाता है तो राणा की तरफ से गानोरा के सामन्त को उपहार भेजा जाता है। लोग इस बात को जानते हैं कि राणा के वंश के साथ वहाँ के सामन्त का गम्भीर सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध जातीय रक्त का परिचय देता है। इसीलिए मेवाड़ के राणा के प्रति उसका अधिक आकर्षण है और उसको भी राणा की तरफ से सम्मान मिलता है। जन-साधारण में उस सामन्त को लोग मेवाड़ का भतीजा कहते हैं।

गानोरा के सामन्त ने मुझसे मिलकर बहुत सम्मान मेरे प्रति प्रकट किया। इसके साथ ही गानोरा चलने के लिए मुझे उसने बड़ी अभिलाषा के साथ आमन्त्रित किया। मैं समझता था कि उसके प्रति उसके राजा के भाव अच्छे नहीं हैं। इसलिए उसका निमन्त्रण स्वीकार करने में मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मैं सामन्त का आदर-भाव देखकर उसके निमन्त्रण को स्वीकार करना चाहता था और मैं यह भी नहीं चाहता था कि उस सामन्त के यहाँ जाने के कारण उसका स्वामी यानि मारवाड़ का राजा असंगत धारणा पैदा करे। बिना किसी कारण के मैं इस प्रकार की परिस्थिति पैदा करूँ, यह मेरी बुद्धिमानी नहीं होगी, इसलिए बहुत कुछ सोच-समझकर मैंने अपने अन्तःकरण में इस सामन्त के यहाँ न जाना ही निश्चित किया। लेकिन सीधे शब्दों में ऐसा नहीं कहा जा सकता था। यह एक स्पष्ट अशिष्टता होती। इसलिए उससे बातें करते हुए और उसके प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए मैंने उसके निमन्त्रण को अस्वीकार किया। लेकिन उसकी अन्तरात्मा को किसी प्रकार की ठेस न पहुँचे, इसलिए मैंने मार्ग की थकावट और प्रातःकाल की रवानगी का जिक्र करते हुए अत्यन्त शिष्टाचार के साथ उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया।

इस मौके पर मैंने बड़ी नम्रता और शिष्टता से काम लिया। अपनी बड़ी मजबूरी को दिखाकर मैंने सामन्त का निमन्त्रण अस्वीकार किया था। लेकिन मेरा असली भाव उस सामन्त से छिपा न रह सका। मेरा ऐसा ख्याल है कि वह इस बात को ताड़ गया कि उसके इतने आग्रह करने पर भी मैंने उसके निमन्त्रण को किसलिए नामन्जूर कर दिया है।

अपने निर्णय के अनुसार प्रातःकाल मैंने अपनी यात्रा आरम्भ की। साथ के सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक आगे की तरफ रवाना हुए। आज की यात्रा लम्बी नहीं थी और अन्त में दो मील की दूरी पर मारवाड के मैदान थे। हम लोगों ने तेजी के साथ चलकर उस मार्ग को पार करने की कोशिश की। सर्दी अधिक थी ओर अब जिस मार्ग पर हम लोग चल रहे थे, वहाँ का वातावरण बदल गया था। जिसके कारण रास्ते में चलते हुए हम लोगों को बड़ी तकलीफों का सामना करना पड रहा था। उन कठिनाइयो के समय हम लोगों के मुख से इतना ही निकलता था : "आखिरकार ये मारवाड़ के मैदान हैं।"

27 अक्टूबर–मारवाड़ के मैदानों और रेगिस्तानी भूमि पर चलने के कारण साथ के सभी आदमी रुककर विश्राम करना चाहते थे। इसलिए एक स्थान पर पहुँचकर हम लोगों ने मुकाम किया। साथ के जो आदमी पीछे रह गये थे, वे इस स्थान पर आकर मिल गये। वे सभी रास्ते की मुसीवतों का एक-दूसरे से वर्णन कर रहे थे। परन्तु किसी के मुख पर किसी प्रकार की निराशा न थी।

यहाँ पर रूपनगर का सामन्त मुझसे मिलने आया। इसके जीवन की परिस्थितियाँ भी वहुत कुछ गानोरा के सामन्त की तरह थीं। उसका प्रदेश मारवाड़ और मेवाड के वीच में ऐसा पड़ता था कि जिसमें उसको दोनों राज्यों को खुश रखना वहुत जरूरी था। इसलिए वह मेवाड़ के राणा और मारवाड़ के राजा-दोनों की आज्ञा का पालन करता था।

रूपनगर का सामन्त राणा के दूसरी श्रेणी के सामन्तों में पहले माना जाता था। जहाँ पर हमसे वह सामन्त मिलने आया था, वहाँ से उसका महल और दुर्ग दिखायी देता था। उसका दुर्ग पहाड़ के पश्चिम की तरफ है। उस दुर्ग के सामने एक मार्ग है, जो अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ है। किसी भूमि के लिए उसके स्वामी के साथ रूपनगर के सामन्त का कुछ दिनों से झगड़ा चल रहा था। रूपनगर का सामन्त उस भूमि पर अधिकार करना चाहता था। इसलिए उसे कई वार युद्ध करना पड़ा था।

रूपनगर का सामन्त सोलंकी राजपूत है और वह नाहरवाला के वंश में उत्पन्न हुआ था। प्रसिद्ध राजा सदराज के युद्ध का शंख इस समय उसके पास है।* अपने समय में सदराज एक पराक्रमी और शूरवीर राजा था। उसने अपने राज्य की सीमा का वहुत विस्तार कर लिया था। सन् 1094 ईसवी से लेकर लगभग आधी शताव्दी तक उसने अनहिलवाड़ा को अपने अधिकार में रखा था। वह शिक्षा और शिल्प का वहुत समर्थक था। उसने अपने शासनकाल में इन दोनों में वड़ी उन्नति की थी।

रूपनगर के वर्तमान सामन्त के पूर्वज बदनोर की प्रसिद्ध तारावाई के चाचा थे। तारावाई स्वभाव से जिस प्रकार वीरांगना थी, उसके अनुसार उसने एक शूरवीर के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी और अपने निश्चय के अनुसार उसने वीरात्मा पृथ्वीराज के साथ अपना विवाह किया था। यहाँ पर रूपनगर के सामन्त के जीवन की एक घटना का वर्णन करना जरूरी मालूम होता है। राणा रायमल के लड़कों में आपस की कलह बड़े भयानक रूप मे चल रही थी और दिल्ली तथा मालवा के वादशाह राणा रायमल की इन भीतरी कमजोरियो का लाभ उठाना चाहते थे। इसलिए उन दिनों में मेवाड़ का भाग्य बड़े संकट मे चल रहा था। उन दोनों वादशाहों से राणा रायमल को गोदवारा प्रान्त का खतरा था। मीणा और माहीर लोग मेवाड के मैदानों में रहा करते थे और नादोल के स्वाधीन चौहान राजा चण्ड के द्वारा उनको सभी प्रकार की सहायता मिलती थी। नादोल की चौहान सेना ने देसूरी पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज देसूरी से चौहानों का अधिकार खत्म करना चाहता था। इसके लिए उसने शुद्धगढ़ के सोलकी सामन्त से सहायता माँगी।

---

1 राजा सदराज ने 1094 ईसवी से लेकर 1144 ईसवी तक राज्य किया था।

सोलंकी सामन्त के लडके के साथ राजा चण्ड की एक लड़की ब्याही थी। इसलिए पृथ्वीराज ने जो कुछ सोचा था, उसमें एक बडी बाधा दिखाई पड़ने लगी। पृथ्वीराज किसी प्रकार देसूरी से चौहानो का अधिकार हटाना चाहता था। उसने राजनीतिक दूरदर्शिता से काम लिया और उसने सोलंकी सामन्त के साथ परामर्श करके यह निश्चय किया कि देसूरी से चौहानों का आधिपत्य हटा कर उसका अधिकार सोलंकी सामन्त को दे दिया जाएगा। उस सामन्त के साथ पृथ्वीराज का यह निर्णय हो गया।

सोलकी सामन्त भी ऐसे अवसर पर सोच-समझकर काम करना चाहता था। इसलिए कि देसूरी पर जिस चौहान राजा के साथ उसको यह युद्ध आरम्भ करना था, उसकी लड़की के साथ उसका लड़का ब्याहा था। लेकिन दूसरी तरफ उसने पृथ्वीराज के साथ जो निश्चय किया था, उसमें उसको देसूरी के अधिकार का प्रलोभन था। इस अवस्था में उसने एकान्त मे अपने लडके के साथ परामर्श किया और अपने लडके के साथ अपनी स्त्री को देसूरी मे रहने के लिए भेज दिया।

सामन्त का लड़का अपनी माता के साथ वहाँ जाकर रहने लगा। धीरे-धीरे कुछ दिन बीत गये। वहॉ पर उसको कोई मौका नहीं मिला। इन्हीं दिनों में एक और बाधा पैदा हुई। चौहान राजा चण्ड के एक लड़के के साथ बालेचा के सामन्त सागर की एक लड़की का विवाह होना निश्चित हुआ। जब यह समाचार शुद्रगढ़ के सोलंकी सामन्त के लड़के को मालूम हुआ तो उसने अपने पिता को छिपे तौर पर लिख दिया कि चण्ड के लड़के का विवाह बालेचा सामन्त की लड़की के साथ होने जा रहा है। विवाह के उस मौके पर राजा चण्ड अपने लड़के के साथ बालेचा जाएगा। उस मौके पर देसूरी पर अधिकार कर लेना बड़ी आसानी से सम्भव हो सकता है। राजा चण्ड के लडके की बाराज जाने पर मैं देसूरी के दुर्ग के ऊँचे शिखर पर आग प्रज्वलित करूँगा। उस अवसर पर आप अपनी सेना के साथ यहॉ आकर अधिकार कर ले।

इस प्रकार लडके का पत्र पाकर सोलंकी सामन्त बहुत प्रसन्न हुआ और वह सन्तोषपूर्वक अपने लडके के बताये हुए संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। इन दिनों मे उसने इस बात की पूरी तौर पर तैयारी कर ली कि अवसर आने पर वह किस प्रकार अपनी सेना को लेकर रवाना होगा और देसूरी में पहुँचकर किस तरीके से वह उस पर अधिकार करेगा।

अपनी तैयारी के साथ वह सामन्त जिस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था, उसके लिए उसको बहुत दिनो तक रूकना नही पड़ा। एक दिन एकाएक उसने देसूरी के दुर्ग के ऊपर धुऑ उठता हुआ देखा। वह तुरन्त अपनी सेना को लेकर और अरावली पर्वत से उतर कर आगे की तरफ बढा। देसूरी में दुर्ग के ऊपर जब चौहान राजा की स्त्री ने धुऑ उठते हुए देखा तो उसने अपने आदमी भेज कर जमाता से पूछा : "शिखर पर यह किस प्रकार का धुऑ हो रहा है? मेरे लडके के विवाह के लिए यहॉ से बारात गयी है और वह विवाह के बाद बहू को अपने साथ लेकर यहॉ आवेगा। इसलिए दुर्ग के ऊपर जो आग जलाई गई है, वह किसी का दाह-सस्कार सा मालूम होता है। यह लक्षण किसी प्रकार शुभ नही है।"

रानी ने जमाता से बातें करने के लिए अपना एक विश्वामी नौकर भेज दिया था। उसके बाद एकाएक उसको अपनी राजधानी मे बड़ा गडबड सुनायी पड़ा। उसे मालूम हुआ

कि उसके नगर मे सोलंकी सेना ने प्रवेश किया हैं और उसके सैनिक नगर के चारों तरफ आग लगा रहे हैं। इन बातों को सुनकर रानी बहुत घबरा उठी और वह इस बात की चिन्ता करने लगी कि इस संकट के समय क्या करना चाहिए। इसके कुछ समय बाद चौहान राजा चण्ड अपनी पुत्रवधू को लेकर अपने लड़के के साथ वापस आ गया।

राजा चण्ड ने नगर की जब यह अवस्था देखी और उसे मालूम हुआ कि मेरे बालेचा चले जाने पर सोलंकी सामन्त की सेना ने यहाँ पर आक्रमण किया है तो वह बड़ी तेजी के साथ युद्ध के लिए तैयार हो गया और सोलंकी सामन्त के सामने पहुँचकर उसने ललकारते हुए कहा : "बालेचा से लौटकर मैं आ गया हूँ। अब मैं देखूँगा कि यहाँ पर आक्रमण करने के लिए किसने साहस किया है।"

यह सुनते ही सोलंकी सामन्त आगे बढ़ा और उसने अभिमान के साथ चिल्लाकर कहा। "चण्ड कहाँ है? मेरा नाम सिंह है। मैं आज चण्ड को खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।"

इस प्रकार कहकर सोलंकी सामन्त अपने हाथ की तलवार को चमकाता हुआ वहाँ पर घूमने लगा। चौहान राजा की सेना युद्ध के लिए तैयार हो चुकी थी और दोनों तरफ से भयानक मारकाट होने लगी, उस मारकाट में राजा चण्ड का और सोलंकी सामन्त का सामना हुआ। दोनो ने एक दूसरे पर आक्रमण किया। इसके कुछ समय बाद राजा चण्ड मारा गया।

चौहान नरेश के मारे जाने पर उसकी सेना निर्बल पड़ गयी। उस दिन नगर मे पूरी अशान्ति रही। लेकिन दूसरे दिन ही परिस्थितियाँ बदल गयीं। पृथ्वीराज ने देसूरी के दुर्ग पर अपनी विजय का झण्डा फहराया। इसके बाद कई दिनों में वहाँ शान्ति कायम हुई। पृथ्वीराज ने अपने निश्चय के अनुसार देसूरी का अधिकार सोलंकी सामन्त को दे दिया और इसके लिए उसने अपने हस्ताक्षर सहित एक पत्र लिखकर दिया। उसमे उसने लिखा :

"देसूरी पर विजय के बाद गोडवाड़ा प्रदेश का अधिकार शुद्धगढ़ के सोलंकी सामन्त को दिया गया। अब इस पर सीसोदिया वंश का कोई भी व्यक्ति अधिकार नहीं कर सकता। इसलिए कि इसको मैंने दान मे देकर यह पत्र लिखा है।"

इस घटना को बीते हुए बहुत दिन हो चुके हैं। लेकिन उस समय शुद्धगढ़ के सामन्त के वश वालो के साथ चौहान राजा चण्ड के वंश वालों की जो शत्रुता पैदा हुई थी, वह आज तक उसी प्रकार चली आ रही है। इस शत्रुता मे सत्रह पीढ़ियाँ बीत चुकी हे। लेकिन उसमें कोई अन्तर नहीं आया। संसार में ऐसा अन्यत्र शायद ही कहीं दिखायी पडे।

उदयपुर की पहाड़ी भूमि और उसकी दक्षिणी सीमा की तरफ के प्रदेश की जलवायु स्वास्थ्यकर नहीं है। इसलिए सीसोदिया वंश के जो लोग वहाँ पर रहा करते हें, उनके स्वास्थ्य के मुकाबले मे चौहान राजपूतों की शारीरिक अवस्था बहुत अच्छी हैं। वहाँ के राजपूतों के शारीरिक गठन को वहाँ की दूषित जलवायु ने खराब ही नहीं किया, बल्कि उनको निर्बल भी बना दिया है और उनके शरीर के गोरे रंग को भी नष्ट कर दिया हें। वहाँ के सीसोदिया राजपूतो की सतानो पर इसका बहुत दूषित प्रभाव पड़ना चाहिए था लेकिन उससे सुरक्षित रखने के लिए जो कारण हो गया हे, वह केवल यह हे कि उनके वैवाहिक सम्बन्ध राजस्थान के दूसरे स्थानो और राज्यों में होते रहते हैं। इन सम्बन्धों के कारण उनकी सतानो पर वह दूषित प्रभाव नहीं पडता, जिसका प्रभाव होना अत्यन्त स्वाभाविक था।

अगर उन लोगो के वैवाहिक सम्बन्ध पहाड़ो पर रहने वाले चूँन्डावतों ओर गोगुन्दा के झाला लोगों में ही होते तो उनकी संतान उस अवनति से कभी वच न सकती। लेकिन वैवाहिक सम्बन्धों ने उन खराबियों से उनकी संतान की वड़ी रक्षा की है। हमें मालूम हुआ है उन सीसोदिया लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध गोड़वाड़ा के राठौरों, हाड़ौती के चौहानों और दूसरे स्थानो के राजपूतों के साथ होते रहते हैं। इसलिए वहाँ की जलवायु के दूपित प्रभाव से उनकी संतान बहुत कुछ सुरक्षित रहती है।

गानोरा का सामन्त मुझसे फिर मिलने के लिए आया था। इस वार भी वह उसी सम्मान के साथ मुझसे मिला, जिस प्रकार पहले मिल चुका था। इस वार की भेट में भी उसने मुझसे बहुत-सी बाते की और फिर चला गया। गानोरा के इस सामन्त में भी मुझे उसी प्रकार की नम्रता, शिष्टता और व्यवहार कुशलता मिली, जिस प्रकार मनुष्य के इन गुणों को राजस्थान के दूसरे सामन्तो में मैंने पाया था। जिन लोगों को इन सामन्तो के साथ वातचीत और व्यवहार करने का मौका मिला है, वे निश्चय ही उनकी प्रशसा करेंगे। मैं केवल गानोरा के सामन्त की ही नहीं, वल्कि राजस्थान के समस्त सामन्तों की प्रशंसा करता हूँ। यह वात सही है कि वे सव के सब पूरे तौर पर स्वाभिमानी हैं और अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करते हैं। लेकिन वे व्यवहार करना भी जानते हे और दूसरो का सम्मान करने मे वे अपने जिन गुणों का प्रदर्शन करते हैं, उनकी प्रत्येक अवस्था मे प्रशसा की जानी चाहिए। इसमें जरा भी अतिश्योक्ति नहीं है।

28 अक्टूबर-आज बहुत सवेरे हम लोगों ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। रवाना होने के समय ठाकुर ने अपने एक विश्वासी अनुचर को हम लोगों के साथ रवाना किया। हम लोग अरावली की शिखर माला को पार कर रहे थे। लेकिन उसके ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों से हमारी दृष्टि को कोई वाधा नहीं पहुँचती थी और अपने रास्ते मे चलते हुए हम लोग गोड़वाड़ा की उपजाऊ भूमि को दूर तक देख रहे थे। इस समय हम लोग चलते हुए गानोरा के वहुत पास पहुँच गये थे। वहाँ के दुर्ग और महल बहुत अच्छी तरह से हमको दिखायी पड़ रहे थे। अपने रास्ते से उसकी आवादी की वहुत-सी वातों को हमने देखा और समझा। उसके निवासी अधिकांश बहुत साधारण अवस्था मे हमको दिखायी दे रहे थे। उन्हें हमने ध्यानपूर्वक देखा।

गानोरा के राजपूतो ने मेवाड के राणा की अधीनता स्वीकार करके अपने प्रदेश को मेवाड राज्य मे मिला दिया था। उससे अप्रमन्न होकर मारवाड़ के राजा भीमसिंह ने गानोरा नगर को अनेक प्रकार से क्षति पहुँचाई थी। आज से वीस वर्ष पहले की यह वात है। राजस्थान में गानोरा एक ऐसा स्थान है, जिस पर अधिकार करने के लिए मेवाड के राणा ओर मारवाड़ के राजा-दोनो हो आतुर रहा करते हे।

हम सब लोग जिस समय इस प्रदेश के नदी-नालों, जलाशयों और अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्षों से भरे हुए स्थानो को पार कर रहे थे, राणा का दूत हमारे पास आया और हम लोगों से बातचीत करने लगा। उसका नाम कृष्णदास था। वह बातचीत में होशियार और बहुत समझदार था। उसकी वृद्धावस्था में चरित्र की जो सुन्दरता और योग्यता होनी चाहिए वह उसमे पूर्णरूप से थी। मै उसकी योग्यता का बहुत आदर करता हूँ और वह भी इस बात को समझता है कि मेरे हृदय मे उसके लिए बहुत ऊँचा स्थान है। मैं उससे पहले से ही परिचित हूँ ओर उसकी योग्यता तथा प्रतिभा को मानता हूँ।

इस [illegible] में आकर उसने मुझसे भेंट की। [illegible] करने के बाद उसने कुछ देर तक मुझसे बातें कीं और फिर गम्भीर होकर उसने मेरी तरफ देखकर कहा : "गोड़वाड़ प्रदेश हमको आप लौटा दीजिये।"

मैंने उसकी बात को सावधानी के साथ सुना और उसकी तरफ देखा। अपनी बात कहकर वह गम्भीर हो उठा। मैंने उसको उत्तर देते हुए कहा : "आप लोगों ने उस पर दूसरों को क्यों अधिकार करने दिया था?"

इस प्रकार कहकर मैंने उसकी तरफ एक बार देखा और उसको उत्तर देने का अवसर न देकर मैंने फिर कहा : "आधी शताब्दी तक सीसोदिया राजपूत क्यों सोते रहे और उन दिनों में उनकी तलवार कहाँ चली गयी थी। भगवान का यह नियम नहीं है कि पहाड़ों का यह निकटवर्ती प्रदेश मेवाड़ में ही मिला रहे।"

कृष्णदास गम्भीरतापूर्वक मेरी बातों को सुन रहा था। उसको समझाते हुए और उसकी बात का उत्तर देते हुए मैंने फिर कहना आरम्भ किया। प्रकृति ने मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा को अलग-अलग करने के लिए गोड़वाड़ा की प्रतिष्ठा की है। यहाँ से दोनों राज्यों की सीमा की जानकारी होती है। कदाचित् यह न्याय और निर्णय प्रकृति की ओर से हुआ है।

दूत कृष्णदास मेरी बात को सुनकर उत्तेजित हो उठा और उसने मेरी तरफ एक बार देखकर स्वाभिमान के साथ कहा : "इस प्रकार दोनों राज्यों के बीच की सीमा का [illegible] होने पर गोड़वाड़ा हम लोगो का है और वह सदा हम लोगों का होकर रहा है। प्रकृति ने गोड़वाडा के द्वारा मेवाड़ की सीमा को निर्धारित नही किया, बल्कि खाने और पीने के जितने भी अच्छे पदार्थ होते हैं, प्रकृति ने मेवाड को देखकर उसकी सीमा अलग कर दी है। इस स्थान से जब आप आगे बढेंगे तो मेवाड़ की भूमि में ये सभी फल आपको मिलेंगे, जिनको देखकर और पाकर आप प्रसन्न होंगे, लेकिन मेवाड की सीमा को पार कर जब आप मारवाड़ की तरफ जायेगे तो वहाँ की भूमि में आपको यह कुछ नहीं मिलेगा।"

यह कहकर राजा का दूत कृष्णदास मेरी तरफ देखने लगा और उसके बाद उसने एक गहरी साँस लेकर और मेरी तरफ देखकर कहा : "आँवला आँवला मेवाड़, बबूल बबूल मारवाड।"

कृष्णदास ने कुछ ठहर कर फिर कहा : "ऑवले का पका हुआ पीला फूल जहाँ तक दिखायी देता है, वहाँ तक मेवाड़ की भूमि है, मेवाड़ की सीमा को प्रकृति ने अपने आप अलग कर दिया है। उसकी सीमा का निरूपण गोड़वाड़ा के द्वारा होने की आवश्यकता नहीं हैं।"

कृष्णदास की इन बातों को मैं चुपचाप सुन रहा था। [illegible] कहा : "मारवाड के लोग अपने बबूलो का सुख भोगें, हमको उनसे कोई मतलब नहीं है, [illegible] तो आपसे अपने ऑवलों के [illegible] हमारे आँवले हमको मिलने चाहिए।"

कृष्णदास की [illegible] में सुनता रहा। [illegible]
चुप हो गया। मैंने गम्भीर [illegible]। मैं सोचने लगा [illegible]
मेवाड और मारवाड़-[illegible] छोटी-सी नहीं है। [illegible]

बढ़ते ही प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है और बबूल के पेड़ तथा जंगली घास दूर तक फैली हुई दिखायी देने लगती है।

वहाँ के सभी वृक्ष देखने में सुन्दर नहीं मालूम होते। लेकिन उनके द्वारा उपकार बहुत होता है। ऊँटों के दल के दल उन वृक्षों की पत्तियों को खाकर अपनी भूख मिटाते हैं। वृद्ध दूत कृष्णदास ने मेरी बातों के उत्तर में जो कुछ कहा, उसमें न्याय तो नहीं है, लेकिन उसमें बातचीत की खूबसूरती जरूर है। कृष्णदास को मैं पहले से जानता हूँ कि वह बातचीत करने में प्रभावशाली है। उसने दोनो राज्यों की सीमा का निर्णय करने के लिए पहाड़ को महत्त्व न देकर वृक्षों को महत्त्व दिया, इसका कारण क्या है, इस पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना जरूरी है।

कृष्णदास ने मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा का निर्णय करते हुए जिस कविता का प्रयोग किया है, वह आज की नहीं बल्कि एक पुरानी कविता है। यह कविता कब कही गयी थी, किस मौके पर कही गयी थी और उसका उद्देश्य क्या था? केवल इतनी ही बात को हम यहाँ पर दिखाना चाहते हैं। पहले कभी एक घटना घटी थी और उसी घटना के सम्बन्ध में वह कविता कही गयी थी। यद्यपि वह घटना कई ग्रन्थों मे लिखी हुई मिलती है।

वह कविता पुरानी है और बहुत दिनों से जनश्रुति के रूप में वह राजपूताने में चली आ रही है। जिस घटना का हम उल्लेख करना चाहते हैं, वह संक्षेप में इस प्रकार है। चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में चूँन्डावत शाखा के आदि पुरुष चण्ड ने मण्डोर के राजा रणमल को विश्वासघातकता के दण्ड में मार डाला था और उसकी राजधानी तथा राठौर राजपूतों के सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। वहाँ पर कई वर्ष तक उसका अधिकार रहा। मण्डोर के राजा के परिवार के लोग अरावली पर्वत की गुफाओं में जाकर रहने लगे थे। मण्डोर के राजा के उत्तराधिकारी ने जो उस समय पहाड़ी स्थान में चला गया था, कभी इस बात का अनुमान नहीं लगाया था कि उसका नाम एक वंश के आदि पुरुषो में माना जायेगा और उसको बहुत सम्मान मिलेगा एवं मण्डोर जोधपुर में मिला लिया जाएगा।

मण्डोर प्रदेश जब बहुत दिनों तक मेवाड़ राज्य में शामिल रहा तो दोनों पक्षों ने उसके विवाद को भुला दिया था। मण्डोर राज्य के उत्तराधिकारी जोधा की भेंट एक कवि के साथ हुई। उस कवि ने एक भविष्य वक्ता की हैसियत से कहा : चित्तौड़ की राजमाता के अनुरोध से राणा ने तुमको मण्डोर वापस देने का निर्णय किया है।

जोधा को मण्डोर का अधिकार मिलने के सम्बन्ध में दो प्रकार के कथानक पाये जाते हैं। मेवाड़ के इतिहास में लिखा है कि राणा ने दयालू होकर जोधा को मण्डोर राज्य वापस दे दिया। परन्तु मारवाड़ के इतिहास में लिखा है कि जोधा ने युद्ध करके अपने पैतृक राज्य का उद्धार किया। इस प्रकार के दो विरोधी उल्लेख पाये जाते हें। इन दोनों में सही क्या है, यह नहीं कहा जा सकता।

राणा ने मण्डोर के शासक चण्ड को वहाँ से चले जाने के लिए आदेश भेजा था। चण्ड ने राणा का आदेश पाकर अपने बड़े लड़के के साथ मण्डोर से प्रस्थान किया। जब वह चार मील की दूरी पर निकल गया तो उसको अचानक मण्डोर के ऊपर उजाला दिखायी पड़ा।

लेकिन चण्ड चित्तौड़ की तरफ आगे बढ़ा। उसके बड़े लड़के का नाम मंच था। उसने अप
पिता का साथ छोड दिया और मण्डोर की तरफ वापस लौटा।

रास्ते में उसने सुना कि उसके दोनों भाई मण्डोर की रक्षा करते हुए जोधा के हा
से मारे गये हैं और विजयी जोधा ने मण्डोर के दुर्ग पर अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया है
अपने दोनों भाइयों के मारे जाने और अपनी सेना के पराजित होने का समाचार पाकर मं
रास्ते से ही लौट पड़ा। मण्डोर की सीमा पर जोधा के सैनिकों ने मंच को कैद कर लिया अ
उसे जान से मार डाला।

चण्ड जिस समय अरावली पर्वत के रास्ते से गुजर रहा था, उसने मण्डोर का समाच
सुना। वह तुरन्त मण्डोर के लिए लौट पड़ा। उसके वहाँ पहुँचने पर जोधा ने उससे भेंट क
और उसने राणा का वापस दिया हुआ सन्देश चण्ड को बताया और उसके सामने जोधा
राणा का लिखा हुआ कागज दिखाया। इसके बाद जोधा ने चण्ड से कहा कि आप मण्डोर क
सीमा का निर्णय कीजिए।

जोधा की बात को सुनकर चण्ड सोचने लगा कि प्रकृति ने मण्डोर और मेवाड़ क
सीमा का निर्णय स्वयं कर दिया है। उसके सिवा और दूसरा कोई निर्णय नहीं हो सकता। च
ने प्रकृति के उस निर्णय के अनुसार कहा : "जहाँ तक पीले फूल वाले आँवले दिखायी देतें
वहाँ तक मेवाड़ की सीमा है।"

चण्ड के इस निर्णय को सुनकर कवि ने उसको अपनी कविता में कहा : "आँव
आँवला मेवाड, बबूल बबूल मारवाड़।"

चण्ड को जब मालूम हुआ कि मण्डोर का इलाका जोधा को दे दिया गया है,
वह शान्त हो गया। उसका लडका मंच आँवलों से परिपूर्ण सीमा पर मारा गया था। लेकिन क
स्थल राणा के अधिकार में आ जाने का दुःख भूल गया। मेवाड़ राज्य के दूसरे राजपूतों को
इस बात की प्रसन्नता हुई कि सीमा पर आँवलों का प्रदेश मेवाड़ राज्य में शामिल कि
गया है। मण्डोर में जितने भी पत्थर खुदे मिलते हैं, उन सभी में कवि की वह जनश्रुति पा
जाती है।

खेतों में इस समय जो फसल तैयार हुई थी, वह अमीर खाँ की सेना के द्वारा ब
कुछ नष्ट हो गयी थी। इन बर्बादियों को वहाँ के रहने वालों के मुख से मैंने सुना जिससे म
बहुत अफसोस हुआ। यह बात सही है कि इन सभी स्थानों की फसलें लुटेरों और अत्याचारि
के द्वारा नष्ट की गयी थी, फिर भी मेवाड राज्य की फसलों की अपेक्षा इन स्थानों की फस
अब भी अच्छी थीं। लोगो से बातें करने के बाद इन फसलों के सम्बन्ध में मैंने साफ-स
समझने की कोशिश की। क्योकि इन राज्यों की आमदनी का सबसे बड़ा साधन खेती
फसले ही हैं।

अरावली पहाड से निकलकर जो छोटी-छोटी नदियाँ लूनी नदी के खारे पानी
मिलती है, अपनी यात्रा करते हुये उनमे से अनेक नदियो को हम लोगों ने पार किया। मार्ग
जो बड़े-बडे ग्राम हमको मिले, वे सभी प्रजा से भरे हुये थे। यहाँ के किसानो को देखकर म
मेवाड के किसानो की परिस्थितियों का स्मरण हो आया। इस प्रदेश के किसान मेवाड़

किसानो की अपेक्षा अपनी फसलों में अधिक अनाज पैदा करते हैं। परन्तु ये लोग मेवाड़ के किसानों की तरह अच्छी हालत में नहीं दिखाई देते। इस प्रदेश में किसानों को देखकर ऐसा मालूम होता है, जैसे उनमें जीवन का बहुत बड़ा अभाव है और उनके प्राण सूख कर निर्बल पड़ गये हैं। किसानो की इस परिस्थिति को मैंने भली प्रकार समझा।

मेवाड और मारवाड की प्रजा मे इस समय जो एक बड़ा अन्तर मुझे दिखायी देता है, उसकी उपेक्षा करना किसी प्रकार अच्छा नहीं हो सकता। जिस प्रदेश के किसान अच्छी फसले पैदा करते हों और अनाज की पैदावार में जो अच्छे रहते हों उनकी परिस्थितियाँ नाजुक और निर्जीव क्यो दिखायी देती हैं, उसका स्पष्ट कारण यहाँ का शासन है।

मारवाड़ के राजा को उसके प्रधानमन्त्री ने शासन सम्बन्धी कार्यों में निर्बल और अयोग्य बना रखा है। यहाँ के राजा अपने प्रधानमन्त्री से अधिक प्रभावित हैं और इसका परिणाम यह हुआ कि प्रधानमन्त्री के द्वारा राज्य में एक अव्यवस्था चल रही हे। उसके कारण यहाँ की प्रजा सुखी और सन्तुप्ट नहीं है। मेरी समझ में इस प्रदेश की प्रजा के लिए राज्य की यह दुरवस्था प्रत्येक भाँति कष्टमय है। यही कारण है कि वहाँ के किसान अच्छी पैदावार करते हुए भी प्रसन्न नहीं दिखायी देते।

इस प्रदेश के पश्चिमी भाग में नादोल बसा हुआ है। प्राचीन काल मे अजमेर के चौहानों की एक शाखा यहाँ पर रहती थी। इस नादोल के राजपूतों के वंश से ही सिरोही के देवड़ा और जालोर के सोनगरा लोगों की उत्पत्ति हुई। उन लोगों पर राठोर राजपूतों के बहुत अत्याचार हुए हैं ओर उनके अत्याचारों को उन लोगों ने सहन कर के भी अपनी रक्षा की है। यह उनकी विशेपता है। दूसरे अलाउद्दीन ने जब यहाँ पर आक्रमण किया था तो सोनगरा वंश के राजपूतों ने साहसपूर्वक उसका मुकाबला किया था। परन्तु समझ में नहीं आता कि स्वतन्त्र राज्यों के नामों के साथ उस वंश का नाम कहीं पढ़ने को क्यों नहीं मिलता। नादोल मे छोटे-बड़े सब मिलकर तीन सो साठ नगर और ग्राम हैं, जो जोधपुर राज्य में माने जाते हैं।

सम्पूर्ण राजस्थान में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर चोहानो की वीरता के प्रमाण न पाये जाते हों। यह बात सही है कि बहादुरी में भी राजपूतों को महानता दी जाती है। लेकिन युद्ध के कौशल ओर शौर्य में चौहानो का स्थान अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है, इतिहास के विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं।

राजपूतों में जिस वंश के साथ मुझे अधिक समय तक रहने का मौका मिला है, उनके इतिहास को और उनके बहादुरी के कार्यो को मैं भली प्रकार समझ सका हूँ। इस विपय में जहाँ तक मुझको जानकारी है, मैं कह सकता हूँ कि भारतवर्प के समस्त राजपूतों में चौहानों का स्थान ऊँचा है। यही कारण है कि राजपूतों में चौहानों की प्रशंसा कवियों ने अधिक लिखी है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

चौहानो की श्रेष्ठता को स्वीकार करने के बाद भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि सम्राट पृथ्वीराज के बाद चौहानों की परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हो गया है और यह बात सही हें कि जो वीरता और बहादुरी पृथ्वीराज के समय चौहानों में पायी जाती थी, उसका एक बड़ा भाग चोहानो में नप्ट हो गया है। ऐसा होना स्वाभाविक था। यह अवस्था केवल चौहानों

की ही नहीं हुई, बल्कि संसार की अन्य जातियों में भी यही देखी जाती है। किसी समाज अथवा जाति की श्रेष्ठता उसके किसी एक व्यक्ति तक ही प्राय: सीमित रहती हे और उसके बाद वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ किसी एक स्थान में नहीं, बल्कि संसार में सर्वत्र देखी जाती हैं।

राजस्थान में जितने श्रेष्ठ पुरुष चोहानों में कवियों के द्वारा माने गये हैं, उनमे भटिण्डा का गोगा नामक चौहान भी बहुत प्रसिद्ध है। जिन दिनों में गजनी का बादशाह महमूद अपनी बड़ी सेना लेकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए आया था, उस समय शूरवीर और स्वाभिमानी गोगा अपने चवालीस लड़को को साथ लेकर उसके साथ युद्ध करने गया था। शत्रु के साथ उसने विकट संग्राम किया था ओर अपने समस्त पुत्रों के साथ वह उस युद्ध में मारा गया था। विजयी महमूद उसके बाद मरुभूमि से होकर अपनी सेना लिए हुये अजमेर मे पहुँचा और वहाँ पर उसने भयानक आक्रमण किया। अजमेर के चौहान राजपूतों ने गजनी की सेना के साथ भयानक युद्ध किया और महमूद को घायल करके पराजित किया। अभिमानी महमूद को वहाँ से भागना पड़ा।

इसके बाद बादशाह महमूद नादोल होकर नाहरवाला ओर सोमनाथ की तरफ गया। जिस समय वह अपनी विराट सेना के साथ नादोल पहुँचा, उस समय वहाँ के राजा ने आक्रमणकारी सेना के साथ युद्ध किया। नादोल में उसके प्रसिद्ध राजा लाखा के समय की खुदा हुआ मुझे एक शिलालेख मिला। उसमें लिखा हुआ हैं कि लाखा अजमेर के चौहानो की उस शाखा का आदि पुरुष हे, जो अजमेर से यहाँ आयी थी।

सन् 983 ईसवी में नादोल अजमेर को कर देता था ओर वह उसकी अधीनता में था। लाखा ने वहाँ पर जो दुर्ग बनवाया हे, वह पश्चिमी शिखर के ऊपर बना हुआ है। यह दुर्ग अत्यन्त सुदृढ़ और प्राचीन काल की तरह के शिल्प के साथ बनवाया गया हैं। उसमें पर्वत के बहुत ही मजबूत पत्थर लगे हुये हैं। वहाँ पर मुझे एक दूसरा शिलालेख मिला है। उसमें सन् 968 खुदा हे उसमे लिखा हे कि लाखा मेवाड के राजा भीमसिंह के पूर्वज आइतपुर के शक्तिकुमार का समकालीन है। वह नगर भी सम्भवत: बादशाह महमूद के पिता के द्वारा नष्ट किया गया था।

चौहान कवि ने राव लाखा की बहादुरी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि अनहलवाड़ा राज्य से लाखा को कर मिला करता था ओर यही अवस्था चित्तोड के राजा की भी थी। वह उसको कर देता था।

यहाँ पर महलों, मन्दिरों ओर दुर्गो आदि मे जितने गिरे ओर टूटे हुए अश दिखायी देते हे, उन सब के सम्बन्ध मे वर्णन करना असम्भव मालूम होता है। यहाँ की बहुत-सी बातो को देखने से यह जाहिर होता हैं कि यहाँ पर किसी समय जेन धर्म का प्रभाव था। यहाँ पर जेनियो के अन्तिम देवता महावीर का मन्दिर बना हुआ है। वह देखने मे बहुत रमणीक मालूम होता हे। इस मन्दिर के गुम्बज की बनावट बहुत प्राचीन काल से बिल्कुल मिलती-जुलती हे। उसके शिल्प को देखकर रोम के मन्दिरो के निर्माण की कला का सहज ही स्मरण हो आता है।

महावीर के मन्दिर की अनेक बातें प्रशंसा के योग्य हैं। उसकी शिल्पकारी प्राचीन होने के साथ-साथ इतनी मजबूती के साथ उसके निर्माण के समय हुई थी, जो देखने में आज भी बड़ी खूबसूरत मालूम होती है। उस मन्दिर में जो प्रतिमायें हैं, कहा जाता है कि वे सभी डेढ़ सौ वर्ष पहले नदी से निकाल कर इस मन्दिर में स्थापित की गयी थीं। यहाँ के लोगों का यह भी कहना है कि बादशाह महमूद के आक्रमण के दिनों में ये सब प्रतिमायें उसके डर से नदी में फेंक दी गयी थीं।

नादोल की बहुत-सी बातें प्रशंसा के योग्य हैं। वहाँ पर एक जलाशय है। वह बहुत बड़ा है। चने की बावड़ी उसका नाम है। लोगों का कहना है कि एक मुट्ठी चने के दानों की बिक्री के धन से यह जलाशय बनवाया गया था। विशाल होने के साथ-साथ यह बावड़ी बहुत गहरी है और उसके तल में पहुँचने के लिए मजबूत लाल पत्थरों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उस बावड़ी के आस पास की इमारत में भी लाल पत्थर लगे हुए हैं।

यहाँ पर मुझको इतिहास की कुछ प्राचीन बातें मालूम हुई। संस्कृत में लिखे हुए जो पत्र मुझे यहाँ मिले, मेरे नियुक्त किये हुए संस्कृत जानने वाले कर्मचारियो ने उन पत्रों की नकल की। ताँबे पर लिखे हुए दो पत्र भी मुझे मिले। उनमें एक अनलदेव के सम्बन्ध में सम्वत् 1218 में लिखा गया था। उसमें जो लिखा था, उसका अनुवाद इस प्रकार है : विषय-वासना से रहित क्रोध और अहंकार से परे ज्ञान के भण्डार सर्वशक्तिमान महावीर आपको प्रसन्न रखें।*

बहुत प्राचीन काल में चौहान वंश के लोग समुद्र के निकटवर्ती स्थानों में राज्य करते थे और नादोल वालों का उन पर शासन था। उन लोगों में लोहिया नाम का एक व्यक्ति था। उसके लड़के का नाम बलराज था और बलराज के लड़के का नाम विग्रहपाल था। इसी प्रकार विग्रहपाल के लड़के का नाम महेन्द्रपाल औ महेन्द्रपाल के लड़के का नाम अनल था। अनल उन दिनों में ऊपर लिखे हुए चौहानों के प्रधानो का प्रधान था। उसका प्रभाव दूर तक फैला हुआ था।

अनल के बाला प्रसाद नामक लड़का हुआ। लेकिन बाला प्रसाद के कोई लड़का न होने के कारण उसके छोटे भाई जेत्र राज को वहाँ की प्रधानता का पद मिला। जेत्रराज के पृथ्वीपाल नामक लड़का पैदा हुआ। वह महान्, पराक्रमी आर बुद्धिमान था। उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसके छोटे भाई जाल्ल को अधिकार मिला। उसके बाद मानराजा अधिकारी बना। अनलदेव उसका पुत्र था।*

मानराजा कुछ दिनो तक चौहानों का प्रधान रहा और वह अपने वंश पर शासन करता रहा। इसके बाद उसमें संसार के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। संसार का जीवन उसको व्यर्थ मालूम होने लगा। उसका विश्वास हो गया कि जीवन में दुःख भोगने के सिवा

---

* जैनियों के चौबीस धर्म के प्रचारक माने गये हैं। उनमें महावीर को जैन लोग अन्तिम समझते हैं।

* मानराजा जो जाल्ल के बाद प्रधान बनाया गया था उसका लड़का अनलदेव देव लक्ष्म में बारह पीढ़ी पहले सन 898 ईसवी में पैदा हुआ था।

और कुछ नहीं है, यह संसार कष्टमय है। वह धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया करता था और इस बात को सोचा करता था कि संसार नाशवान है। इसकी कोई बात स्थायी नहीं है। जीवन में जो कुछ दिखायी देता है, वह किसी भी क्षण नष्ट हो सकता है। माया और मोह के सिवा इसमे और कुछ नहीं है। इस प्रकार के विचारों से प्रभावित होकर उसने एक बार अपने अधीन सामन्तों के पास आदेश भेजा कि आप धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों को सदा सहायता पहुँचाने की चेष्टा करो।

मानराजा ने एक हवन का श्रीगणेश कराया और उस हवन का कार्य सम्वत् 1218 श्रावण मास शुक्ल पक्ष चतुर्दशी को समाप्त हुआ। उस समय शिव की मूर्ति को पञ्चामृत से स्नान कराया और अपने गुरु तथा ब्राह्मणों को उनकी अभिलाषा के अनुसार सोना, चाँदी अन्न और वस्त्र दान में दिये। उँगलियों में कुश की अंगूठियाँ पहनकर तिल, चावल और जल लेकर वह महावीर के मन्दिर में गया और अपने इष्ट देवता के माथे पर चन्दन लगाकर जल देने के बाद उसकी आराधना की और उससे सुन्दर गच्छ* वंश के लोगों के लिए भेंट का संकेत करते हुए पाँच मुद्रा मासिक वृत्ति निर्धारित कर दी। उसने कहा :

"मैं अपने निर्णय के अनुसार इस बात की घोषणा करता हूँ कि इस वंश का जो कोई अधिकारी होगा, वह इस वृत्ति को बराबर प्रचलित रखेगा। जो इस वृत्ति का दान करेगा, वह साठ हजार वर्ष तक बैकुण्ठ में रहेगा और जो इस वृत्ति को पूरा न करेगा, वह साठ हजार वर्ष तक नरक में रहेगा।

वहाँ पर मैंने कई एक ग्रन्थ ऐसे प्राप्त किये, जो मेरे इस कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इन ग्रन्थों में एक ग्रन्थ राजस्थान के 36 राजवंशो का विवरण देता है। एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल का वर्णन है। इस तरह यहाँ जो कई एक ग्रन्थ मिले हैं, उनमे मुझे अपने इतिहास की बहुत अच्छी सामग्री प्राप्त होती है। एक ग्रन्थ ऐसा भी मिला है, जिसमें विक्रम तथा महावीर के जन्म का वर्णन है और जैन धर्मावलम्बी नरेशों में सब से प्रसिद्ध श्रीनीक और अम्प्रोति के वंशजों का इतिहास है। महमूद, बलबन, और भारत विजयी नादिरशाह के नामो के सिक्के मुझे इस स्थान में मिले हैं।

मेरे कर्मचारी नादोल से चौहानों की मुद्रा लाये हैं और उन्होंने वह मुद्रा मुझे दी है। उसका आकार कुछ छोटा है। देखने में वह बहुत साधारण सी जान पडती है। एक सिक्के मे एक तरफ एक घोडे के सवार की मूर्ति है। दूसरे कई सिक्कों मे बैलों की मूर्तियाँ बनी हैं।

नादोल की जो यात्रा करता है, उसको परिश्रम के पुरस्कार में निश्चय ही कुछ सामग्री मिलती हैं। यहाँ पर प्राचीन काल की ऐतिहासिक सामग्री कई प्रकार की पायी जाती है। मेने स्वयं उस प्रकार की सामग्री यहाँ पर प्राप्त की है। जैनियों की प्राचीन निवास-भूमि नादोल, देसूरी और सादड़ी में पुराने सिक्के, हाथ की लिखी हुई पुरानी पुस्तकें और कुछ इसी प्रकार की दूसरी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। वहाँ के टूटे-फूटे महलों और मन्दिरो मे भी प्राचीनकाल के विवरण खोजने से मिलते हैं। जो लोग इस प्रकार की खोज का काम करना चाहते हे, उनको आबू पर्वत से लेकर मण्डोर तक यात्रा करने की जरूरत है। इस सम्पूर्ण प्रदेश मे जैन धर्मावलम्बी उन दिनों मे रहा करते थे।

---

* सुन्दर गच्छ जैनियों की चौरासी शाखाओं में एक शाखा है।

इन स्थानो की यात्रा करके बिना किसी अधिक परिश्रम के मैंने अपने काम की सामग्री प्राप्त कर ली है। इस सामग्री के संकलन में मुझे अपने कर्मचारियो से बड़ी सहायता मिली है। इस कार्य के लिए जिन पण्डितो को मंने नियुक्त किया है, वे रोजाना शाम को लौटकर मिली हुई सामग्री मुझे देते हैं। जहाँ कहीं मैं जरूरत समझता हूँ, इस सामग्री की खोज में मैं स्वय जाता हूँ। किसी कारणवश जहॉ मैं नहीं पहुँच सकता, वहाँ पर मैं अपने योग्य और विश्वासपात्र आदमियो को भेजता हूँ, यहॉ पर इन बातों को लिखने का मेरा उद्देश्य यह है कि भविष्य में जो लोग यहॉ पर अनुसन्धान का कार्य करेंगे, उनको मेरे इस वर्णन से कदाचित् बहुत कुछ मदद मिलेगी।

29 अक्टूबर-ग्यारह मील का रास्ता पार करके इन्दुरा नामक स्थान में हम लोगो ने मुकाम किया। वहाँ पर लूनी नदी प्रवाहित होती है। इसका जल नमकीन होने के कारण उसका नाम लूनी नदी पड़ा है। यह स्थान उस नदी के किनारे पर बसा हुआ है और गोड़वाड़ा राज्य की वह सीमा है। वहॉ से मेवाड़ एक तरफ और मारवाड़ दूसरी तरफ पड़ता है। इस सीमा पर खड़ा हुआ पीले आवले का वृक्ष दोनों राज्यो की सीमा का परिचय देता है। मारवाड़ की तरफ देखने से बहुत दूर तक केवल बालू के मैदान दिखायी देते हैं। मेवाड़ की दशा दूसरी ही है, उसकी तरफ से विभिन्न प्रकार के वृक्षो का दृश्य और प्रकृति का सौन्दर्य बहुत दूरी तक दिखायी देता है। इस दृश्य को देखकर मुझे कवि की कविता याद आ गयी। वह कविता मैंने राणा के दूत कृष्णदास को कई बार सुनायी थी और उसे सुनकर कृष्णदास ने कहा था : प्रकृति ने स्वयं इन दोनो राज्यों की सीमा का निरूपण कर दिया है।

जो कविता मुझे याद आई, वह इस प्रकार है :

"आखाँरा झोपड़ा,
फोगांरी वाड
बाजरारी रोटी,
मोठांरी दाल,
देखिये हो राजा तेरी मारवाड़।"

गॉव का निर्माण एक विशेपता के साथ हमने यहॉ देखा। प्रत्येक गाँव के आस-पास कॉटों का एक घेरा बना हुआ है और उस घेरे के ऊपर तक भूसे के साथ इस प्रकार ढ़का है कि वह दूर से एक दुर्ग-सा मालूम होता है। ऐसे कुछ मौके आते हैं, जब किसानों को अपने पशुओ को खिलाने की कोई चीज नही मिलती तो वे इसी भूसे को अपने पशुओं को खिलाने के काम में लाते है। इस प्रकार के अवसर या तो वर्षा के दिनों मे आते हैं अथवा उन दिनों में जब उनके खेतो मे फसल खडी होती है।

यहॉ के किसान अपने इस भूसे को सुरक्षित रखने के लिए एक खास तरीका प्रयोग मे लाते हैं। भूसे की ऊँचाई तेरह हाथ, पन्द्रह हाथ अथवा बीस हाथ बनाकर मिट्टी और गोबर से लीप देते है और उसकी रक्षा के लिए कॉटे लगा देते है। मिट्टी और गोबर लगाने से वह भूसा दस वर्प तक खराब नही होता और वह पशुओ के खाने के योग्य बना रहता है। कभी दुष्काल के पडने पर जब उनके खेत मे कोई पैदावार नहीं होती तो किसानों के पशु इसी भूसे को खाकर जिन्दा रहते हैं।

मरुभूमि में एक ही प्रकार का दृश्य देखने को मिलता है और सम्पूर्ण मरुस्थली प्रकृति की शोभा से वंचित रहती है। परन्तु लूनी नदी को पार करने के बाद यह दृश्य बदल जाता है और फिर तरह-तरह के पेड़-पौधे दिखायी देने लगते हें।

30 अक्टूबर-इक्कीस मील का मार्ग चलने के बाद हम लोग राजस्थान के प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर पाली में पहुँच गये। उस नगर के जो दृश्य आँखों के सामने से गुजरे, उनमें वे दृश्य सामने आये, जो उस नगर में होने वाले अत्याचारों की याद दिला रहे थे।

किसी समय राजपूतों के दो पक्षों में भयंकर युद्ध इस राज्य में हुआ था, उस समय दोनों पक्ष के लोग पाली नगर पर अधिकार करना चाहते थे। उस नगर के निवासी उस युद्ध से भयभीत हो गये थे और उन लोगों ने अपने नगर की रक्षा के लिए एक मजबूत और ऊँची दीवार अपने नगर के आस-पास खड़ो कर ली थी। कुछ इसी प्रकार का इरादा प्रसिद्ध व्यवसायी नगर भीलवाड़ा की सुरक्षा के लिए भी किया गया था। पाली में जो दीवार खड़ी की गयी थी उसका कुछ हिस्सा अब तक मौजूद है और उसको देखकर इस बात का स्मरण होता है कि यह दीवार पाली के किस भयंकर समय में खड़ी की गयी थी।

पाली नगर में दस हजार की संख्या में मनुष्य बसते हैं। बहुत प्राचीन काल से यह नगर वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध रहा है और इस राज्य की प्रतिष्ठा के साथ इस नगर का राजनीतिक सम्बन्ध कायम हुआ।

प्राचीनकाल में मण्डोर के राजा ने ब्राह्मणों की एक शाखा को दान के रूप में पाली नगर दिया था। उस समय से यह नगर उन ब्राह्मणों के अधिकार में रहा। सन् 1156 ईसवी में मरुभूमि के राठौर वंश का आदि पुरुष सीहा जी जब द्वारिका से गंगा तक यात्रा करके लौटा था तो वह इस पाली नगर में विश्राम करने के लिए ठहरा था।

पाली के रहने वाले ब्राह्मणों ने उस समय सीहा जी के आने का लाभ उठाना चाहा और इसलिए उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को सीहा जी के पास भेजकर प्रार्थना की कि हम लोगों को पहाड़ी मीणा लोगों से बहुत बड़ा कष्ट मिल रहा है। वे लोग हमेशा इस नगर मे आकर लूट-मार किया करते हैं।

सीहा जी ने उन ब्राह्मणो के प्रतिनिधियों की बातें सुनी और उसने पाली के ब्राह्मणों की सहायता करने का वचन दिया। उसने पहाड़ी मीणा लोगो पर आक्रमण करके उनको नष्ट-भ्रष्ट किया और पाली नगर में उनके द्वारा होने वाले अत्याचारों को सदा के लिए खत्म कर दिया। सीहा जी के द्वारा वहाँ के ब्राह्मणों का वह कष्ट तो दूर हो गया, परन्तु उनका भविष्य पहले से भी अधिक अन्धकारमय हो गया।

सीहा जी ने न केवल पहाड़ी मीणा लोगों को पराजित किया बल्कि उनको छिन्न-भिन्न करने के बाद उसने पाली नगर के सभी प्रधान ब्राह्मणों को मार डाला और पाली नगर पर अधिकार कर लिया। सीहा जी ने अपने राज्य विस्तार की अभिलाषा से प्रेरित होकर ऐसा किया।

किसी भी नगर अथवा प्रदेश की स्वतन्त्रता उसके वाणिज्य-व्यवसाय पर निर्भर होती हे। व्यवसाय से राजनीति को बल मिलता है और उसकी स्वाधीनता पर सहज ही शक्ति आक्रमण

करने का साहस नहीं करती। भीलवाड़ा, झालरापाटन और दूसरे प्रसिद्ध व्यावसायिक नगरों की तरह पाली के निवासी भी अपने नगर की व्यवस्था करने का अधिकार रखते हैं और भीलवाड़ा की तरह पाली नगर भी राज्य की तरफ से कई वातो में स्वतन्त्रता का अधिकारी है।

प्राचीनकाल से पाली नगर उत्तरी भारत का सम्बन्ध समुद्री किनारे से जोडने के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है। मस्कट, मालद्वीप, सुराट और नाऊनगर आदि व्यावसायिक नगरों से फारस, अरब, अफ्रीका और योरोप का बना हुआ माल यहाँ पर भेजा जाता है और इस पाली नगर से भारतवर्ष तथा तिब्वत का वना हुआ माल ऊपर लिखे हुये स्थानो पर भेजा जाता है। समुद्र के तट पर बसे हुए देशों से हाथी दाँत, गैंडे का चमड़ा, ताँवा, टिन, जस्ता, सूखा खजूर और पिण्ड खजूर, अरव का गोद, सुहागा, नारियल, वनात और रेशमी कपड़े, अनेक प्रकार के रग, कितनी ही औपधियाँ, गन्धक, पारा, मसाले, चन्दन की लकड़ी, कपूर, चाय, हरे रंग का काँच और औपधियाँ बनाने के लिए मोम आता है।* वहाँ से आने वाला पिण्ड खजूर इस देश में बहुत खपता है और जो वहाँ से विभिन्न प्रकार के रंग आते हैं, उनकी भी यहाँ पर वड़ी खपत होती है।

भावलपुर से सज्जी मिट्टी, आल, मजीठ, नमक, रंग, वन्दूके, पके फल, हींग, मुलतानी, छींट और सन्दूक तथा पलंगों के लिए लकड़ी आती हैं। कोटा और मालवा से अफीम ओर छींट आती है। भोज से तलवार और घोड़े भेजे जाते हैं।

पालीनगर से नमक और रेशम भेजा जाता है। इस नगर मे एक प्रकार का कागज और सूती मोटा कपड़ा वहुत महशूर है। व्यापारी लोग इन दोनों चीजों को बड़ी संख्या में दूसरे नगरों और देशों मे ले जाते हे। पाली की वनी हुई लोई वहुत प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के सभी स्थानो मे उस लोई की विक्री होती है और वे लोइयाँ चार रुपये से लेकर साठ रुपये तक जोड़े के हिसाव से विकती हैं। ओढ़नी और पगडी भी नगर की वनी हुई अच्छी समझी जाती हैं और इसीलिए उनकी खपत भी इस देश मे अधिक होती है। परन्तु ये दोनो चीजें दूसरे देशों मे नहीं भेजी जाती।

पाली नगर में जो चीजे तैयार होती है और दूसरे नगरों तथा देशों के साथ जिनका व्यापार होता हे, उनमें नमक प्रधानता रखता है। यहाँ का बना हुआ नमक बहुत अधिक दूसरे स्थानो को जाता है और उसके द्वारा इस नगर को आमदनी भी अच्छी होती है। पता लगाने के वाद मुझे मालूम हुआ है कि इस नमक से होने वाली आमदनी, राज्य की आमदनी की आधी से कम नहीं होती। यहाँ पर कई जलाशयो मे पचपद्रा, फलोदी और डीडवाना प्रमुख हैं। इन झीलो मे बहुत अधिक नमक तैयार होता है। पचपद्रा झील का विस्तार कई सौ मीलो तक है। पाली नगर मे जो नमक तैयार होता हे, उससे वर्ष में पछत्तर हजार रुपये की आमदनी होती हे। मारवाड जैसे गरीव राज्य के लिए यह आमदनी एक वडी आमदनी है।

---

* जव मैं सिंधिया के दरवार में गया था तो वहाँ के सभी लोगों ने यह वात समझ ली थी कि मैं सभी प्रकार के रोगों का इलाज करना जानता हूँ और उनके सम्बन्ध की सभी चीज मेरे पास रहती है। उस सामन्त की स्त्री को मोम की आवश्यकता थी। उसने मेरे पास अपना एक नोकर भेजा। उस सामन्त के यहाँ वह नौकर खबरदार कहलाता था। उसने आकर मुझसे मोम माँगा। मेरे पास मोम न था। इसलिए मोम देने से मुझे इन्कार करना पडा। लेकिन उस नौकर को मेरी वात का विश्वास न हुआ। उसने समझा कि मेरे पास मोम है। लेकिन मैं देना नहीं चाहता। उसकी इस हालत को समझ कर मैंने उसे हिन्दुस्तानी रबड़ का एक टुकड़ा दे दिया और वह उसको मोम समझ कर ले गया।

इस प्रदेश में वाणिज्य की जो चीजें आती हैं, उनकी रक्षा का कार्य चारण और भाट लोगों को करना पड़ता है। ये लोग आम तौर पर कवि होते हैं और अपनी कविताओं के द्वारा राजवंश की प्रशंसा का गाना गाया करते हैं। केवल इसीलिये राज्यों में इन कवियों को प्रधानता दी जाती है और वे पूज्य माने जाते हैं। कोई भी इनको नाराज नहीं करना चाहता। क्योंकि अप्रसन्न होने पर कविता करने का व्यवसाय करने वाले चारण और भाट शाप देने की धमकी दिया करते हैं और उनके शाप से सभी लोग बहुत भयभीत रहते हैं।

इन चारण और भाट लोगों का डर अधिक लोगों को रहता है कि प्रत्येक अवस्था में लोग उनको खुश करने की कोशिश करते हें। यहाँ तक कि लुटेरे लोग, जंगली कोल भील और मरुभूमि के भयानक सराई लोग भी उनके शाप से बहुत डरते हैं।

राज्य की तरफ से व्यावसायिक आने जाने वाले माल की रक्षा का कार्य इन लोगों को इसलिए दिया जाता है कि उनके भय से कोई बदमाश और लुटेरा गिरोह माल पर हमला नहीं कर सके। इस कार्य को राज्य में इतनी सफलता के साथ दूसरा कोई नहीं कर सकता, जिस सफलता के साथ ये चारण और भाट लोग कर सकते हैं। इसीलिए राज्य की तरफ से इस कार्य का भार इन्हीं लोगों को हमेशा दिया जाता हें।

इन चारणों ऑर भाटों की इस शक्ति को सभी लोग जानते हैं और सब का यह विश्वास रहता है कि इनमें किसी के साथ रहने से डर नहीं रहता। इसलिए जिन लोगों को कहीं जाना होता है तो वे अपनी और अपने माल की रक्षा के लिए राज्य के इन संरक्षकों को साथ लेकर चलते हैं। इनकी सहायता से व्यापारी लोग जालौर, साचौर और राधनापुर होकर सुराट एवम् मस्कट द्वीपों मे सुरक्षित पहुँच जाते हैं।

पाली नगर से दस मील पूर्व की तरफ पुण्य गिरी नामक एक पहाड़ है। उसके शिखर के ऊपर एक मन्दिर बना हुआ हैं। कहा जाता हैं कि सौराष्ट्र के पालिताना के एक बौद्ध ने इस मन्दिर को बनवाया था। वह बौद्ध इन्द्रजाल जानता था। लेकिन उसकी इस जानकारी को वही बौद्ध लोग मानते थे जो उस प्रदेश मे अधिक सख्या में रहा करते थे।

यहॉ पर एक पुराने मित्र के साथ मेरी भेंट हुई। वह मित्र गफ के नाम से प्रसिद्ध था। वह यहॉ के दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेश में रहने वाले सराई कोशा इत्यादि जंगली और पहाड़ी असभ्य लोगां से घोड़े प्राप्त करने के लिए घूम रहा था।

30 अक्टूबर खरेरा

31 अक्टूबर रोहिट

1 नवम्बर–लूनी नदी के उत्तरी किनारे पर सड्डुली नामक एक स्थान है। वह स्थान पाली से दूर हमारी यात्रा के मार्ग मे हे। पाली से लेकर लूनी नदी तक तीस मील की दूरी में जो ग्राम बसे हुए हैं वे बहुत टूटी-फूटी दशा मे हैं और उनमे कोई भी ऐसी बात नहीं है जो भ्रमण करने वाले को अपनी ओर आकर्पित करती हो। इस दशा में खैरेरा नामक स्थान पर हम लोगो ने मुकाम किया।

खेरेरा में नमक बनाने के दो जलाशय है। उनमे बहुत सा नमक तैयार होता है। नमक खारा होता है इसलिए उस स्थान का नाम खैरेरा पड़ा है। यहॉ पर खैरेरा और रोहिट

नाम के दो इलाके हैं और वे दोनों इलाके दो अलग-अलग सामन्तों की अधीनता में हैं। इधर कुछ दिनो से उन दोनो सामन्तो मे आपसी द्वेष की आग जल रही है। जिसके कारण वे दोनों एक दूसरे को मिटाने में लगे हुये हैं और इन परिस्थितियों के कारण उनमे जो लडाइयाँ चल रही हैं उनके फलस्वरूप रोहिट के सामन्त की दशा बहुत खराब हो गयी है। यहाँ पर एक घटना का उल्लेख जरूरी मालूम होता है।

पाइमा नामक एक व्यापारी रोहिट के इलाके में नमक का व्यवसाय करता है और उसके द्वारा बहुत-सा नमक आता है। एक-दूसरे व्यापारी के साथ उसका झगड़ा हो गया। उस झगड़े मे उसके सिर में चोट आयी। जख्मी दशा में वह परिवार के लोगो के पास गया। झगड़ा करने वाले दोनों व्यापारी भाट जाति के हैं और पाइमा भूमानिया भाटों का प्रधान है।* बोझा ढोने के लिए पाइमा के पास चार हजार पशु हैं। व्यापार न होने के दिनों में वह अपने पशुओं को लेकर दूसरे स्थानों मे चला जाता है।

पाइमा का जिस व्यापारी के साथ झगड़ा हुआ था, उसका नाम श्यामा था। श्यामा ने मौका पाकर पाइमा के बहुत से छकडों पर अधिकार कर लिया और पाइमा के सिर पर चोट पहुँचा कर उसको जख्मी कर दिया था। झगड़े का फैसला करने के लिए जब यह मुकदमा पेश किया तो उसी पक्ष की विजय हुई और श्यामा के अधिकार ले लिए गए।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि राजस्थान में चारण और भाट लोग ही व्यापारिक माल के संरक्षक बनाये जाते हैं। लेकिन अगर ये अत्याचार और अन्याय करते हैं तो वे संरक्षक के पद से हटा दिये जाते हैं। उपरोक्त पाइमा के पूर्वजों के साथ राणा अमर सिंह का एक झगडा हुआ था। वह घटना इस प्रकार है कि पाइमा के पूर्वज भाट लोगों ने अपने शुल्क को कम करने के लिए राणा अमर सिंह से प्रार्थना की। लेकिन राणा ने उस प्रार्थना को मन्जूर नहीं किया।

इस दशा में प्रार्थी भाट लोग बहुत अप्रसन्न हुए और वे लोग अपनी स्वयं की हत्याए करके राणा को ब्रह्महत्या का भय दिखाने लगे। इन भाटो का यह पुराना तरीका था और इस प्रकार का भय दिखाकर वे राज्य से उचित और अनुचित लाभ हमेशा उठाया करते थे। इस अवसर पर भी उन्होने वैसा ही किया और राणा अमर सिंह से साफ-साफ कहा कि अगर आप हमारी प्रार्थना को मन्जूर नहीं करेगे तो हम लोग आत्महत्या कर लेगें और आप ब्रह्महत्या के पापी होगे लेकिन अमर सिंह ने उनकी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

राणा के द्वारा प्रार्थना स्वीकार न होने पर भाट लोग बहुत क्रोधित हुये और उन्होने आपस मे परामर्श करके अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग किया। भाट वंश के अस्सी स्त्री पुरुषो ने राणा के महल के सामने पहुँचकर कटारों से अपनी आत्महत्यायें कीं। इसलिए कि इन ब्रह्महत्याओ का अपराध राणा को लगे, इस अपराध के कारण राणा जाति से च्युत किया जाये और मरने पर उसको नरक का भोग करना पड़े इसलिए भाटो ने अपनी हत्याये की।

इस बात को सभी जानते थे कि भाट की हत्या के पाप से मनुष्य को लोक और परलोक दोनो में नरक भोगना पड़ता है। लेकिन राणा अमर सिंह पर इसका कोई प्रभाव न

* भूमानिया नामक स्थान मे रहने के कारण उन लोगों का नाम भूमानिया भाट पडा है।

पड़ा। क्योंकि वह जानता था कि एक वार ऐसा करने से ये लोग रोजाना इस प्रकार की प्रार्थनायें किया करेंगे और किसी प्रार्थना के पूरा न होने पर ये लोग अपने इसी अस्त्र का प्रयोग करेंगे। यह समझ कर राणा अमर सिंह ने उनकी आत्महत्याओं की कुछ परवाह न की और जो भाट बाकी रह गये थे, उनको राज्य से निकाल कर उनके भूमानिया इलाके पर अधिकार कर लिया और इस बात का आदेश कर दिया कि आज के बाद एक भी भूमानिया भाट राज्य में नहीं आ सकता।

राणा अमर सिंह के उस आदेश का पालन अब तक मेवाड राज्य में होता था। लेकिन जिस समय राणा भीम सिंह ने घोषणा की कि मेवाड़ राज्य की भागी और निकाली हुई प्रजा फिर इस राज्य में रह सकती है, उस घोषणा को सुनकर भूमानिया भाट फिर मेवाड़ में आकर रहने लगे।

पाइमा के पूर्वज जिस कारण से मेवाड़ राज्य से निकाले गये थे, वह सब को मालूम है और मेवाड़ पाइमा को भली प्रकार जानता है। लेकिन अपना मतलब निकालने के लिए वह उस पुरानी घटना को भुलाये रहता है। अगर उसकी प्रार्थना कोई स्वीकार न करे तो वह उसके बदले आत्म हत्या के लिए धमकी देता रहता है और इसके लिए वह अपनी कमर में सदा तलवार बाँधे रहता है। भाटों के शाप का जिस प्रकार प्रचार है, उसको जानते हुये भला कौन आदमी उनकी हत्या का कारण बनेगा।

श्यामा के मुकदमे में उसकी विजय अधिक कर देने के कारण हुई थी। वह उस मुकदमे में विजयी तो हो गया लेकिन उसे अधिक कर न देना पड़े इसके लिए उसने राणा भीम से प्रार्थना की और जब राणा ने उसकी प्रार्थना को मन्जूर न किया तो वह अपने हाथ में कटार लेकर राजा के सामने आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो गया। राणा भीम सिंह अमर सिंह की तरह साहसी और निर्भीक न था। पाइमा की होने वाली आत्म-हत्या को सुनकर वह घबरा उठा और उस मामले मे उसने मुझको मध्यस्थ बनाया।

राणा का एक दूत इस समाचार को लेकर मेरे पास आया और उसने पूरी घटना बताकर मुझसे कहा कि इसका निर्णय करने के लिए राणा ने आपको मध्यस्थ नियुक्त किया है। इस समाचार को सुनकर राणा के दूत के साथ मैंने अपना एक नौकर भेजा और उसके द्वारा मैंने पाइमा को बुलवाया।

पाइमा के आने पर उसका मोटा ताजा शरीर मैंने देखा। वह देखने में सुन्दर और साहसी मालूम होता था। उसके आने पर मैंने उससे बातें करना आरम्भ किया और उसके मुख से पूरी घटना को सुनकर मैंने उससे कहा : "जो कोई व्यवसाय का माल लेकर मेवाड़ के राज्य के भीतर से निकलेगा, उनको राज्य को निर्धारित कर देना पड़ेगा। इसके लिए अगर आप लोग आत्म-हत्या का भय दिखाने के लिए तैयार होंगे तो उसका कोई नतीजा न निकलेगा। राज्य की तरफ से कर वसूल करने की जो व्यवस्था की गयी है और जिस पर जो कर लगाया गया है, उसके अनुसार उसको कर देना पड़ेगा। अगर आप इस नियम के अनुसार कर देने के लिए तैयार होंगे और इस बात को लिखकर स्वीकार करेंगे तो बोझा उठाने वाले आपको चालीस हजार मे पाँच सो बैलो का कर माफ कर दिया जाएगा और भूमिया में रहने के लिए आपको आज्ञा मिल जाएगी। इसके सिवा आप दूसरी कोई आशा न रखे।"

यह कहकर मैंने पाइमा की तरफ देखा और उससे फिर कहा : "अगर आपको मेरा निर्णय मंजूर है तो लिखकर दीजिए और अगर मंजूर नहीं है तो मेज पर यह कटार रखा हुआ है। आप शौक से आत्म-हत्या कर सकते हैं।"

पाइमा मेरी इन वातों को चुपचाप सुनता रहा। क्षण-भर उसके कुछ न वोलने पर मैंने फिर कहा : "राणा अमर सिंह ने भाटों के आत्म-हत्या करने पर उस वंश के वाकी भाटों को राज्य से निकल जाने का दण्ड दिया था। राणा अमर सिंह का वह आदेश आज भी राज्य में कायम है। उसके साथ-साथ मैं इतना और इस अपराध में दण्ड की मात्रा वढ़ा दूंगा कि यदि आपने मेरे इस निर्णय को न माना तो व्यावसायिक माल को ले जाने के लिए जितने छकड़े आपके पास हैं, वे सव छीन लिये जाए और आपको देश से निकाल दिया जाए। ऐसा करने के लिए में राणा भीमसिंह से अनुरोध करूंगा।"

मेरे इस निर्णय को सुनकर पाइमा काँप उठा। उसने वुद्धिमानी से काम लिया और विना किसी प्रकार की रुकावट के उसने मेरे निर्णय को मन्जूर कर लिया। इसके वाद राणा ने उसको भूमानिया में रहने की आज्ञा दे दी और उसके पाँच सौ वैलो का कर माफ कर दिया।

राणा भीमसिंह ने इसके वाद पाइमा को उसके भूमानिया प्रदेश का प्रधान नियुक्त किया और उसको वहुमूल्य वस्त्रों के साथ सोने के वाजूवन्द उपहार में दिये।

2 नवम्वर-दस मील का मार्ग पार करके हम सव लोग झालामन्ड नामक स्थान पर पहुँचे। जोधपुर वहाँ से वहुत थोड़े फासले पर है। इसलिये यहाँ पर रुक जाने का हमारा एक विशेष अभिप्राय है। उसके सम्वन्ध में हमें कुछ निर्णय कर लेना था। इसलिए इस स्थान पर हमको रुकना पड़ा। पश्चिमी देशों में किसी राज्य की ओर से आने वाले प्रतिनिधि के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह उन देशों तक ही कदाचित् सीमित हो सकता है। मरुभूमि के राज-दरवार में अंग्रेज प्रतिनिधि के साथ किस प्रकार आदर-सम्मान होगा और किस प्रकार होना चाहिए, इसको समझ वूझकर हमें आगे कदम वढ़ाना चाहिये। राजा का भेजा हुआ जो प्रतिनिधि हमारे पास आवेगा, उसका किस प्रकार हमें स्वागत करना चाहिए, यह भी हमें समझ लेने की जरूरत है।

ऐसे अवसरों पर राज-दरवारों में प्राचीन काल की निर्धारित प्रथाओं का ही पालन होता है। शायद जोधपुर में भी वैसा ही किया जाए। अथवा किसी दूसरे प्रकार का स्वागत हो, यह भी नहीं कहा जा सकता। किसी भी दशा में हमें कुछ निर्णय कर लेने की आवश्यकता है। इसलिए कि अंग्रेजी शासन की परिस्थिति विल्कुल भिन्न है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर एक व्यावसायिक संस्था के अनुचर के रूप में माना जाता है। इसलिए उसके एक प्रतिनिधि के साथ यहाँ के एक राजा का व्यवहार किस प्रकार होगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इसलिए जव तक इसका निर्णय न हो अथवा वह स्वागत हमारे सामने न आवे, उस समय तक हम इस वात को नहीं समझ सकते कि हमें भी किस प्रकार से राजा के प्रतिनिधि का स्वागत करना होगा।

सिन्धु नदी से लेकर समुद्र तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन है। लेकिन यह कम्पनी एक शासक के रूप में नहीं, वल्कि एक व्यावसायिक संस्था के रूप में प्रसिद्ध है।

राजस्थान के राज्यों की परिस्थितियाँ आज पहले की सी नहीं रह गयीं। सिंधिया और होलकर के लगातार आक्रमण के कारण इन राज्यों की मान-मर्यादा को वड़ा आघात पहुँचा है। फिर भी कम्पनी के प्रति यहाँ के लोगों की व्यावसायिक धारणा हमको अपनी परिस्थितियों को सावधानी के साथ सोचने और समझने के लिए बाध्य करती है। हमारा शासन चाहे जितने विस्तार में फैला हुआ हो और हमने यहाँ के राजाओं के प्रति कितना ही उपकार क्यों न किया हो लेकिन राजाओं की समानता करने वाले हमारे पद का निर्माण नहीं होता। इस दशा में कम्पनी के प्रतिनिधि का स्वागत किस रूप में होता है यह समझने की जरूरत है। राजपूत राजाओं की आज जो भीतरी दुरवस्थायें हैं, उन्होंने उन राजाओं को अपनी श्रेष्ठता भुला देने के लिए मजबूर कर दिया है। उनकी बढ़ती हुई दूरावस्थाओं का ही परिणाम है कि अमीर खाँ और बापू सिंधिया जैसे व्यक्ति राजपूत राजाओं के समान सम्मान पाने के लिए दावा करने लगे हैं। राजा ने स्वयं अपने प्रतिनिधि को भेजकर अमीर खाँ का स्वागत-सत्कार किया था। जो सामन्त उनके स्वागत के लिए भेजा गया था, वह कौन था और कितनी ऊँची उसकी श्रेष्ठता थी, इसका ख्याल नहीं किया गया। यह संसार है और यहाँ पर यह सदा से होता चला आया है।

किसी भी दशा में जो सम्मान इन राजाओं से मराठा सेनापति को मिला है, इससे कम किसी प्रकार संतोषजनक नहीं हो सकता। बहुत समय से जो वकील मेरे साथ रहा है, मैंने उससे अनेक प्रकार के प्रश्न किये और इस जटिल समस्या को समझने तथा सुलझाने के लिए उसको राज-दरबार में भेजा और राजधानी से पाँच मील के पहले ही इस स्थान पर मुकाम करके मैं उसका रास्ता देखता रहा। मैं स्वयं इस प्रकार के सम्मान को अधिक महत्त्व नहीं देता। लेकिन यह सम्मान मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के पद पर होने के कारण मैं वही सम्मान चाहता हूँ, जो कम्पनी के लिए योग्य और मुनासिव हो सकता है।

मैं यह समझता हूँ कि आज का व्यवहार भविष्य में दोनों के सम्मानपूर्ण अस्तित्वों की रचना करेगा। यही सोच-समझकर मैंने वकील को राजा के दरबार में भेजा है। मेरी समझ मे दोनों के सम्मान की रक्षा होनी चाहिए। राजा के दरबार में भेजे गये वकील* के द्वारा जब स्वागत के सम्बन्ध में बातचीत हो गयी और मालूम हो गया कि राजा पालकी में बैठकर कम्पनी के प्रतिनिधि के स्वागत के लिए आवेगा तो हम लोगों ने झालामंद से प्रस्थान किया और दोपहर के समय हम सब के साथ जोधपुर की राजधानी की तरफ रवाना हुए। राजा के भेजे हुए पोकरण और निमाज के दो सामन्त हमारे स्वागत के लिए राजधानी से चलकर कुछ दूर आगे आये और उन दोनो सामन्तों ने मुझसे भेंट की। मैं घोड़े से उतर पड़ा और दोनो सामन्तो से बड़े प्रेम के साथ मिला। कुशल समाचार पूछने के बाद मैं फिर घोड़े पर सवार हुआ और दोनो सामन्तो के साथ राजधानी की तरफ चलने लगा।

सन 1818 ईसवी के दिसम्बर महीने में अजमेर का सुपरिन्टेन्डेन्ट विल्डर जोधपुर के वकील की हैसियत से भेजा गया था, उस समय राजा ने बड़े सम्मान के साथ उससे भेंट की थी और स्वागत के सम्बन्ध में निर्णय किया था।

पोकरण के सामन्त का नाम सालिम सिंह है। वह मारवाड़ के सामन्तों में सबसे अधिक धनी है। उसकी जागीर का इलाका और दुर्ग मरुभूमि के बीच में है। उसका इलाका जैसलमेर के राज्य से अलग कर दिया गया है। उसका दुर्ग बहुत मजबूत है। पोकरण के सामन्त के कारण मारवाड़ का राजसिंहासन कई बार संकटों में पड़ चुका है। उसके वंश के चार व्यक्तियों ने मारवाड़ के अत्यन्त साहसी राजाओं को भी भयभीत कर दिया था।

सामन्त सालिम सिंह का परदादा देवीसिंह कुम्पावत वंश का प्रधान था और वह पाँच सौ शूरवीर राजपूतों के साथ प्रत्येक समय रहा करता था। वह अभिमानपूर्वक अपने राजा से कहा करता था : ''मारवाड़ का राज सिंहासन मेरी तलवार मे है।''

देवीसिंह के लड़के सबल सिंह ने अपने पिता का अनुकरण किया और मारवाड़ के राजा विजय सिंह को सिंहासन से उतार दिया। सबल सिंह के लड़के और उत्तराधिकारी सवाई सिंह ने राजा भीमसिंह के साथ व्यवहार करने में अपने पिता का अनुसरण किया और सन् 1806 के आरम्भ में धोंकल सिंह को मारवाड के सिंहासन पर विठाने की कोशिश की।

नागौर नामक स्थान पर अमीर खाँ ने कुम्पावत वंश के राजपूतों के प्रधान सवाई सिंह के साथ विश्वासघात किया था और उसने उसके समस्त अनुचरों के साथ-साथ उसको भी जान से मार डाला था। राजा मानसिंह ने उस दुराचारी से अपने वंश की रक्षा की और सवाई सिंह के लडके को अपने राज्य के कर्मचारियो में प्रधान का पद देकर उसका सम्मान किया। उसने अपने व्यवहारों मे उसको प्रसन्न करके सभी प्रकार से अपने अनुकूल बना लिया। सामन्त की यह बुद्धिमानी थी। अगर वह ऐसा न करता तो उसके सर्वनाश के साथ-साथ उसकी जागीर पोकरण का भी विनाश हो जाता।

पोकरण के सामन्त सालिमसिंह का संक्षेप में इतना ही जीवन चरित्र है, जिसका यहाँ पर उल्लेख करना जरूरी था। इस समय उसकी अवस्था करीब पैंतीस वर्ष की है। वह देखने में सुन्दर नहीं है। लेकिन साहसी, शूरवीर और स्वभाव का गम्भीर है। उसका शरीर कद मे लम्बा और शक्तिशाली है, उसके शरीर की बनावट सुदृढ़ होने के साथ-साथ अच्छी है। लेकिन मारवाड़ के अन्य सामन्तों की तरह उसके शरीर का रंग गोरा नहीं है।

निमाज का सामंत सुरतान सिंह पोकरण के सामन्त सालिम सिंह का मित्र है। लेकिन उसके शरीर की बनावट और दूसरी चीजे सालिम सिह से भिन्न हैं। सुरतान सिंह ऊदावत शाखा के राजपूतो का प्रधान है और अरावली पहाड़ के समीपवर्ती स्थानों मे रहने वाले चार हजार शूरवीर उसके अधिकार में हैं। उसकी जागीर में निमाज, रायपुर और चन्डावत प्रधान नगर हैं। सुरतान सिंह के जीवन की अनेक बाते बहुत अच्छी हैं। उसके शरीर का कद लम्बा और उसकी बनावट सुगठित है, रंग गोरा है। देखने मे वह वीरोचित और विनम्र मालूम होता है। उसकी बुद्धिमत्ता और सभ्यता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

सुरतान सिह सालिम सिंह का मित्र था और इस मित्रता के कारण ही सुरतान सिंह पर अनेक प्रकार की विपदाये आयी थीं। उन विपदाओं का यहाँ पर उल्लेख न तो सम्भव है और न वह बहुत आवश्यक मालूम होता है। यहाँ पर केवल इतना ही समझ लेने की आवश्यकता है कि वह अपने मित्रो का सहयोगी होने के कारण जीवन के भयानक संकटो मे पड़ गया था।

अन्यथा वह इस योग्य न था। उसने अपने जीवन में अनेक ऐसे कार्य किये थे, जिनके लिए वह सभी की प्रशंसा का अधिकारी था। परवतसर के युद्ध में पराजित होने के कारण जब मारवाड़ के राजा ने अपनी तलवार से आत्म-हत्या करने की कोशिश की थी, उस समय इसी सामन्त सुरतान सिंह ने उसके प्राणों की रक्षा की थी और जिस समय कई राज्यों की विशाल सेना ने आक्रमण करने के लिए मारवाड़ को घेर लिया था, उस समय जिन चार सामन्तों ने मारवाड़ के राजा का साथ दिया था, उनमें एक सामन्त सुरतान सिंह भी था। सन् 1803 ईसवी में जब यह शक्तिशाली सेना मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करके उसकी अपरिमित सम्पति लूटकर ले गयी, उस समय जिन चार सामन्तों ने आक्रमणकारी सेना पर हमला करके उसकी लूटी हुई सम्पत्ति को छीन लिया था उनमें एक सामन्त सुरतान सिंह भी था। उस समय इन चारों सामन्तों ने भयानक युद्ध करके और अपने प्राणों का भय छोड़कर भीषण रूप में शत्रुओं का संहार किया था।* सुरतान सिंह के जीवन में अच्छाइयाँ अनेक थीं। इसलिए उसकी मृत्यु पर समस्त राजस्थान में शोक मनाया गया।

सुरतान सिंह चरित्रवान और एक वीर पुरुष था। उसके जीवन के गुणों की प्रशंसा उसके विरोधी भी करते थे। सच बात यह है कि जिसके विरोधी प्रशंसा करें, वही मनुष्य वास्तव में प्रशंसा के योग्य है। सुरतान सिंह इसी प्रकार के आदमियों में था। मैंने जब जोधपुर की यात्रा की थी, उसके आठ महीने के बाद उसकी मृत्यु का समाचार मुझे मिला था। जिस पत्र में उसके मरने का समाचार आया था, वह निम्नलिखित है :

जोधपुर 2 आषाढ़

28 जून सन् 1820

जेठ महीने के अन्तिम दिन 26 जून को सूर्य निकलने के कुछ पहले अलीगोल और समस्त सामन्तो की सेना अर्थात् अस्सी हजार सैनिकों की सेना को सुरतान सिंह के ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा दी गयी।* वह सेना सुरतान सिंह के निवास स्थान को घेर कर तीन घड़ी तक बन्दूकों से गोलियाँ चलाती रही। उसके बाद की सुरतान सिंह अपने भाई भूरसिंह और परिवार तथा वंश के सभी लोगों के साथ हाथों में तलवारें लिए हुए निकला और उसने आक्रमण करके शत्रुओ से भयानक युद्ध किया। लेकिन उसके ऊपर यह आक्रमण उसके राजा की तरफ से हुआ था ओर राजा के पक्ष मे बहुत सी सेना थी। इसलिए दोनो भाई बड़ी देर तक युद्ध करने के बाद मारे गये। उन दोनों भाइयों के साथ नागो जी और साथ के चालीस शूरवीरों का भी अन्त हुआ। उनके सिवा सुरतान सिह के चालीस वंशज युद्ध करते हुए घायल हुए। केवल अस्सी राजपूत जो सुरतान सिंह की तरफ से युद्ध करने आये थे, बाकी बचे। वे निमाज के सामने से युद्ध छोडकर भाग गये। राजा की सेना मे चालीस सैनिक जान से मारे गये और एक सौ सैनिक युद्ध करते हुए घायल हुए। इस लडाई में नगर के बीस* आदमी भी मारे गये।

---

* पिछले पृष्ठ मे यह लिखा जा चुका है कि राणा भीमसिंह की लडकी के साथ विवाह करने के लिए यह संग्राम हुआ था और युद्ध मे अनेक प्रकार की राजनीतिक चालों से काम लिया गया था। उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर उसको संक्षेप मे लिखा गया है।

* अलीगोल का अभिप्राय है, रुहेला सेनायें। स्वतन्त्र रुहेला सैनिकों का संगठन योरोप की फौजों की तरह होता है। रुहेला लोग अत्यन्त स्वार्थी होते हैं।

* उन राजपूतों ने निमाज नगर की रक्षा बड़ी बहादुरी के साथ कई मास तक की थी। लेकिन अन्त मे उनको युद्ध क्षेत्र से भाग जाना पडा।

युद्ध का यह समाचार जब पोकरण के सामन्त को मिला तो वह उसमें शामिल होने के लिए तैयार हुआ। परन्तु कुचामन के शिवनाथ सिंह ने उसे आश्वासन दिया और अपने नगर में ही रहने के लिए उसने संदेश भेजा। फिर भी वह युद्ध-स्थल पर पहुँचने के लिए बार-बार चेष्टा करता रहा। 'वह सोचता रहा कि अपने पच्चीस सैनिकों के साथ मेरा भतीजा इस युद्ध में मारा गया है। सर्वत्र इन मारे जाने वालों की प्रशंसा हो रही है और हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उनकी तारीफ करते हैं। निश्चय ही उन लोगों को मोक्ष प्राप्त हुआ। विशनाथ सिंह, बख्तावरसिंह, रूपसिंह और अनार सिंह ने उनकी अंतिम संस्कार किया।*

सामन्त सुरतान सिंह के मारे जाने के सम्बन्ध में ऊपर लिखा हुआ पत्र मुझे मिला। अपने सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए राजपूत किस प्रकार बलिदान होते हैं, इसका अनुभव ऊपर लिखे हुये पत्र को पढ़ कर किया जा सकता है। उस युद्ध में सुरतान सिंह अपने सम्मान और स्वाभिमान के कारण ही गया था और उस समय तक युद्ध किया जब तक उसके शरीर में प्राण रहे। आक्रमण करने के लिए जो सेना उसके राजा की तरफ से आयी थी, वह अत्यन्त विशाल और शक्तिशाली थी। सामन्त सुरतान सिंह इस बात को जानता था। लेकिन एक राजपूत की हैसियत से उसके लिए यह असम्भव था कि वह युद्ध न करता और अपने प्राणों की रक्षा करने का उपाय करता। उसी का यह प्रभाव था कि जब तक वह जीवित रहा और युद्ध करता रहा, उसका एक भी आदमी न तो युद्ध से भागा और न किसी ने आत्म-समर्पण किया। जो लोग सुरतान सिंह के मारे जाने के बाद युद्ध से भागे थे, उनका एक महान् उद्देश्य था और वह यह था कि सुरतान सिंह के मारे जाने पर भागकर वे सुरतान सिंह के लड़के की रक्षा करना चाहते थे। इसलिए वे उस युद्ध से भागे थे।

□

---

* अन्तिम शूरवीर और बहादुर आदमी इस पत्र को लिखने वाला था। वह साहसी और बुद्धिमान था। उसने अपने राजा और मारवाड़ की रक्षा के लिए अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दे दी थी और अपनी स्त्री के उसने समस्त आभूषण बेच डाले थे। इसके बाद भी जब उसे भय मालूम हुआ तो वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए वहाँ से भाग गया। इस प्रकार के अनिष्ट का कारण मैं समझता हूँ कि हम लोगों का भ्रम हुआ।

अध्याय-72
मारवाड़ राज्य व जोधपुर की यात्रा

लूनी नदी को पार करने के बाद हम लोग बालू के मैदानों में पहुँच गये और वहाँ से जहाँ तक नजर जाती, बालू के मैदान दिखाई देते। हम लोग जितना ही मरुभूमि की राजधानी के करीब पहुँचते गये, बालू के मैदानों का कष्ट उतना ही हम लोगों के लिए भयानक होता गया। यहाँ पर मैंने एक बात और अनुभव की। हमारे राज्य के लोग गंगा के निकटवर्ती अच्छे भाग में जितनी तेजी के साथ चलते रहे, उतनी ही तेजी के साथ मारवाड़ के लोग इन बालू के मैदानों में चलते हुए दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहाँ के लोग इन बालुकामय मार्गो में चलने के अभ्यासी हैं। इसलिए हम लोगों की तरह इन लोगों को इन रेतीले मैदानों में चलने में कष्ट नहीं होता।

राव जोधा का बसाया हुआ जोधपुर कैसा है ? इसको देखने और जानने के लिए मेरे मन में उत्सुकता बढ़ रही थी और उसके कारण मैं रेतीले मैदानों में चलने का कष्ट कुछ भूल भी जाता था। वहॉ का दुर्ग चारों ओर घिरे हुए पहाड़ी शिखरों के बीच में बना हुआ है और जिस स्थान पर वह दुर्ग बना है, वहाँ की भूमि बहुत कुछ एक-सी और बराबर है। वह दुर्ग अपने आस-पास के सभी स्थानों से ऊँचा और मजबूत है। दूर से देखने में वह बड़ा अच्छा मालूम होता है।

दुर्ग का स्थान तीन सौ फुट से अधिक ऊँचा नहीं है। इसलिए इस दुर्ग की गणना उन दुर्गों में नहीं की जा सकती, जो पहाड़ों के ऊपर बने होते हैं। परन्तु इस दुर्ग की इतनी ऊॅचाई में भी विशेषता है। इसलिए कि यह दुर्ग मरुभूमि की रेतीली भूमि में बना हुआ है। दुर्ग के दक्षिण की तरफ उसके सबसे ऊॅचे स्थान पर राजधानी है और उत्तर की तरफ जो सबसे ऊॅचा स्थान है, उस पर राजमहल बना हुआ है। राजधानी का स्थान चारों तरफ ढालू बना हुआ है। कहा जाता है कि सन् 1706 ईसवी में जब कई एक सेनाओं ने यहॉ आक्रमण किया था, तो उन शत्रुओं के द्वारा जहाँ पर गोले बरसाये गये थे, वह स्थान नष्ट होकर टेढ़ा हो गया है और उसकी ऊँचाई लगभग एक सौ फुट ऊँची ही रह गयी है।

राजधानी में राजमहल बहुत मजबूत और देखने में सुन्दर बना हुआ है। वहाँ के बुर्जों की श्रेणियाँ दूर तक चली गयी हैं और वे बुर्ज गोल और चौकोने बने हुए हैं। राजधानी का व्यास लगभग आधा मील लम्बा है। दुर्ग में ऊपर जो रास्ता जाता है, उसमें बहुत सी दीवारें और दरवाजे हैं। पत्थर से बने हुए प्रत्येक परकोटे पर अलग-अलग सैनिकों का पहरा रहता है। वहाँ ऊपर दो जलाशय हैं। उनमें एक का नाम रानी सरोवर और दूसरे जलाशय का नाम गुलाब सागर है। गुलाब सागर दक्षिण की तरफ है। दुर्ग में जो सैनिक रहते हैं वे अपनी

आवश्यकता के लिए इसी गुलाब सागर से पानी लाते हैं। वहाँ जो परकोटे बने हैं, उनके बीच में एक कुण्ड भी है। वह कुण्ड पहाड़ को खोद कर बनवाया गया है, जो नब्बे फुट गहरा है। इस कुण्ड मे जो पानी है, वह रानी सरोवर और गुलाब सागर से लाया गया है।

वहॉ पर बहुत-से कुए भी हैं। लेकिन उनका जल अच्छा नहीं है। वहॉ पर बहुत-से मकान और महल बनवाये गये हैं और उन सबको मिलाकर वहाँ के महलों की संख्या अधिक हो गयी है। दुर्ग के पश्चिमी भाग की तरफ राजधानी छः मील तक मजबूत दीवारों से घिरी हुई है और उनके ऊपर ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बने हैं। वहाँ पर पाइकला नाम की तोपें रखी हुई हैं।

राजधानी में जाने के लिए सात मार्ग हैं और वे सिंहद्वार के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो द्वार जिस तरफ बना हुआ है, वह उस स्थान के नाम से पुकारा जाता है। राजधानी में बने हुए मार्ग बहुत मजबूत और साफ-सुथरे हैं और प्रत्येक मार्ग के दोनों तरफ मजबूत पत्थर लगे हैं। यहाँ के लोगों का कहना है कि आज से कुछ वर्ष पहले तक इस नगर में बीस हजार परिवारों के रहने के लिए स्थान था। इसका अर्थ यह है कि उस समय जोधपुर में अस्सी हजार मनुष्यों की बस्ती थी, इस समय वह संख्या बहुत अधिक जान पड़ती है। सम्भव है, पहले यहाँ पर इतने मनुष्य रहते हों।

यहाँ के रहने वालों के लिए गुलाब सागर विशेष रूप से विश्राम का स्थान है। बहुत-से लोग वहॉ पर वायु सेवन किया करते हैं। वहॉ पर एक बाग है उसमें एक प्रसिद्ध फल पैदा होता है और वह फल कुछ बातो में काबुल के अनार से भी अच्छा होता है। इस बाग में पैदा होने वाले उस फल में दाने बहुत कम और अत्यन्त छोटे होते हैं। वह बाग कागली का बाग कहलाता है। उसे दाड़िम का बाग समझना चाहिए। इस बाग के अनार बहुत स्वादिष्ट होने के कारण भारतवर्ष के बहुत-से प्रसिद्ध स्थानों में भेजे जाते हैं।

4 तारीख को जोधपुर के राजा के मन्त्री एवं राजपरिवार के अन्य लोगो ने दूसरे सिंहद्वार तक आकर हमारा स्वागत किया और प्रचलित नियमों के अनुसार नमस्कार होने के बाद कुशल समाचार के प्रश्न पूछे। इसके बाद हम सबको राजमहल की ओर ले जाया गया। महल मे मेरे स्वागत की तैयारी हो रही थी। महल की तरफ आगे बढ़ने पर मैंने देखा कि जिस रास्ते से हम लोग चल रहे थे, उसमें दोनों तरफ पंक्तिबद्ध लोग खड़े हुये थे। उनमें राजवंश के बहुत-से लोगों के बीच से होकर मैं सबके साथ आगे बढ़ा। मेरे स्वागत में जो तैयारी की गई थी और बाहर से लेकर महल के भीतर तक जिस प्रकार समस्त स्थान और मार्ग सजाये गये थे, उनकी मुझे पहले से आशा नहीं थी।

मेवाड़ के राणा के यहाँ भी मेरा स्वागत हुआ था। परन्तु उस स्वागत में इस प्रकार के वैभव का प्रदर्शन नही किया गया था। राणा के उस स्वागत में मुझे जो सरलता और स्वाभाविकता देखने को मिली थी, यहॉ का स्वागत उससे बिल्कुल भिन्न था। राठौर वंश के राजाओं ने दिल्ली के बादशाह के दाहिने हाथ बनकर बहुत दिनों तक शासन किया था। इसलिए वहाँ के प्रत्येक स्वागत के अनुष्ठान में दिल्ली के बादशाह का तर्ज अमल दिखाई देता था। हम लोगों को देखते ही सोने और चाँदी के पदक पहने हुये बहुत-से लोगों ने एक साथ 'राजराजेश्वर' कहकर जो जोरों के साथ आवाज की, उससे मेरे कानों के परदे फटने

लगे। हम लोग धीरे-धीरे आगे की तरफ बढ रहे थे और महल के अनेक कमरों को- जिनमें बहुत से आदमी दोनो तरफ खड़े हुये हम लोगों का स्वागत कर रहे थे-पार करके हम लोग राज-दरबार में पहुँचे।

हम लोगों को देखते ही मारवाड़ का राजा सिंहासन से उठकर खड़ा हुआ और आगे बढ़कर उसने सम्मानपूर्वक मुझे ग्रहण किया, जिस स्थान पर हम लोग पहुँचे थे, वह स्वागत समारोह के लिए विशेष रूप से सजाया गया था। वहाँ पर एक हजार स्तम्भ थे, जो बड़ी खूवसूरती के साथ सजाये गये थे। इन स्तम्भों के कारण राजमहल का वह स्थान सहस्त्र स्तम्भ कक्ष कहलाता है। यहाँ पर बने हुये स्तम्भ सुन्दरता और नवीनता की अपेक्षा मजवूत अधिक हैं। प्रत्येक दो स्तम्भों के बीच का फासला बारह फुट है और प्रत्येक स्तम्भ इसी दूरी पर खड़ा हुआ है। वे सभी श्रेणियों में बनाये गये हैं। इसलिए उनका क्रम देखने में बहुत प्रिय मालूम होता है।

राज दरवार की छत अधिक ऊँची नहीं है। इस स्थान के मध्य भाग में एक वेदी के ऊपर राजसिंहासन बना हुआ है और उस सिंहासन के ऊपर जो चन्दोवा लगा है, उसके नीचे चाँदी के स्तम्भ लगे हैं। राजा के दाहिनी ओर पोकरण और निमाज के दोनों सामन्त बैठते हैं। इन दोनों सामन्तों ने राजदरवार में ऊँचा पद प्राप्त किया था। दूसरे सामन्त लोग और ऊँची श्रेणी के पदाधिकारी राजसिंहासन के चारों तरफ बैठते हैं। उनके नाम यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

विष्णुराम वकील राजा के सामने और मेरे पास बैठा था। कुछ देर तक साधारण बातें होती रही। उसके बाद अनेक दूसरे विषयों पर राजा के साथ मेरी बाते हुई। वह बातचीत अनियमित और क्रमहीन थी। प्रशंसात्मक होने के साथ-साथ वे बातें किसी समस्या को लेकर न थीं। राजा ने जो कुछ भी कहा मैंने उसको ध्यानपूर्वक सुना। वह हिन्दुस्तानी भाषा में बोल रहा था। उसके बोलने की भाषा में बहुत अच्छा प्रवाह था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि दिल्ली के बादशाह के दरवार मे जितने भी राजा एकत्रित हुआ करते थे, उन सब में जोधपुर के राजा की बातचीत का ढंग बहुत अच्छा रहा होगा। वह मेरे साथ बड़ी देर तक बातें करता रहा।

राजा का शरीर न बहुत लम्बा था और न अधिक छोटा। वह मुझे अधिक गम्भीर मालूम हुआ। आरम्भ से लेकर अन्त तक मुझे अनुभव हुआ कि उसके मनोभावों में किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं हैं। उसका शरीर वीरोचित था। उसकी बहुत देर की बातो के बाद भी मैंने उसमें उस प्रताप का अनुभव न किया जिसकी सहज ही अनुभूति मुझे उदयपुर के राणा की बातचीत से हुई थी। मैं इस बात को बार-बार सोच रहा था।

राजा मानसिंह के सभी अंग सुदृढ़ और सुन्दर हैं। उसके दोनो नेत्रों से उसकी योग्यता का परिचय मिलता है। इतना सब होने पर भी उसके मन के भाव उसके सन्तोष का इजहार नहीं करते। इसका कारण यह है कि राज्य से निर्वासित होकर उसे बहुत दिनों तक कैदी की हालत में रहना पड़ा था और उन दिनो में उसके मस्तिष्क मे विकार उत्पन्न हो गये थे। ऐसा मालूम होता है कि उस समय से उसकी मानसिक दशा मे सुधार नहीं हुआ।

राजा मानसिह ने सदा अपने मान की रक्षा की थी। वह स्वाभिमानी था। लेकिन उसके जीवन की विपदाओ ने उसे कठोर और अनुदार बना दिया था। मनुष्य को विपदाओं से

जो शिक्षा मिलती है, वह दूसरों से मिलने वाली शिक्षा से बिल्कुल भिन्न होती है। कठिनाइयों में पड़कर मनुष्य को कुछ न कुछ हो जाता है। अपने जीवन की दुरवस्थाओं में राजा मानसिंह की दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकार की हो गयी थी।

कैदी जीवन से छुटकारा पाने के बाद भी राजा मानसिंह के विचारों में परिवर्तन न हुआ। बन्दी जीवन में जिन बातों का, सुविधाओं का और सौभाग्यपूर्ण अवस्थाओं का उसके निकट अभाव रहा था, उन सबके प्रति आज उसने अपनी तरफ से तिरस्कार-सा कर रखा है। जो उसकी अधीनता में काम करते हैं और राज्य के ऊँचे पदों पर नियुक्त हैं, उन सबका विनाश करने के लिए वह चुपके-चुपके एक षड़यंत्र की रचना किया करता है। उसने अब तक कितने ही लोगों का सर्वनाश किया है और जिन लोगों का विनाश हुआ है, उनमें से एक सामन्त सुरतान सिंह था, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

राठौर राजपूतों की श्रेष्ठता को समझने के लिए हमें भाटों और कवियों की कविता की जरूरत नहीं है। इसलिए कि उनके शौर्य, विक्रम और प्रताप से इतिहास के न जाने कितने पन्ने भरे हुए हैं। उनकी यह श्रेष्ठता ऐतिहासिक ग्रन्थों से कभी नष्ट नहीं हो सकती। चौहान राजपूतों की भी यही अवस्था है। राजपूतों में राठौरों और चौहानों का स्थान ऊँचा है। राठौर राजा सीहा जी के वंश से उत्पन्न होने वाले चंड और जोधा तथा उसके उत्तराधिकारी राजा मानसिंह की मान-मर्यादा पृथ्वी पर चिरकाल तक कायम रहेगी।

राजा के हाथों से इत्र और पान लेकर मैंने सम्मानपूर्वक उसको नमस्कार किया। राजस्थान के राज दरबारों में सिर पर पगड़ी बाँधे हुये और नंगे पैर बैठने की प्रथा है। साधारण लोगों के बैठने के लिए सफेद चद्दर के ऊपर एक विशाल कालीन बिछा हुआ था। मैंने देखा कि उस पर लोग जूता पहनकर नहीं बैठते। उसके बाहर लोग जूता उतार देते हैं और मोजा पहने हुये उस बिछे हुए बिछौने पर आकर बैठते हैं। ऐसे ही यहाँ का नियम है।

राजा मानसिंह ने मुझको सजा हुआ हाथी, घोड़ा, सोने और चाँदी के काम के वस्त्र और अनेक बहुमूल्य पदार्थ उपहार में दिये। इसके साथ ही जितने भी लोग मेरे साथ थे; राजा ने सबको उनकी मर्यादा के अनुसार भेंट दी।

छठी तारीख को मैंने दूसरी बार राजा से मुलाकात की। बहुत देर तक हम दोनों में बातें होती रहीं। उस समय राजा के एक विश्वासी अनुचर के सिवा वहाँ पर कोई न था। बातचीत के सिलसिले में मुझे मालूम हुआ कि राजा समझदार और योग्य व्यक्ति है और उसे अपने देश के इतिहास का अच्छा ज्ञान है। उसने अपने वंश की एक ऐतिहासिक पुस्तक मुझे दी थी। वह पुस्तक मैंने रायल एशियाटिक सोसायटी की लाइब्रेरी में दी है।

राजा अच्छा पढ़ा-लिखा आदमी है। उसने अनेक विषयों की जानकारी मुझे कराई और मेरे साथ उसने व्यक्तिगत बातें बड़ी देर तक कीं। उसका गुरु उसका मंत्री और मित्र भी था। अनेक घटनायें महत्त्वपूर्ण बन गयी हैं। उन घटनाओं को राजा के सिवा दूसरा कोई नहीं जानता। उसने अपने जिस उद्देश्य के लिए सामन्त सुरतान को मरवा डाला था, उसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है।

अभय सिंह ने अपने पिता राजा अजीत सिंह की हत्या की थी। उसके बाद मारवाड़ राज्य के दुर्दिनों का आगमन हुआ और तीन-चार पीढ़ियों के पश्चात् उस राज्य का सर्वनाश करने वाली परिस्थितियाँ अपने आप पैदा हो गयीं। अपराधों का बदला प्रकृति स्वयं मनुष्य को देती है।

पराक्रमी राजा अजीत सिंह ने बादशाह औरंगजेब के आधिपत्य से अपने पैतृक राज्य का उद्धार किया था और बादशाह औरंगजेब उसका कुछ न बिगाड सका था। उसी औरंगजेब ने राजा अजीतसिंह से बदला लेने के लिए एक षड़यन्त्र रचा। उसने अजीतसिह के बड़े लड़के को अपने षडयन्त्र में सम्मिलित किया और पापात्मा अभयसिंह ने बादशाह के द्वारा मिलने वाले प्रलोभनों में आकर अपने पिता अजीतसिंह को जान से मार डाला।

बादशाह ने अभयसिंह को गुजरात का शासक मुकर्रर किया था और अभयसिंह के छोटे भाई को राज सौंपा था। इसके बाद समय में परिवर्तन हुआ और उस परिवर्तन के अनुसार वहाँ की राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलीं। जो अपने थे, वे शत्रु मालूम होने लगे। ईर्ष्या की आग के कारण जिन्दगी का बड़ा-से-बड़ा अपराध कर्त्तव्य और एक आवश्यक कार्य के रूप में दिखायी देने लगा।

मन की दूपित भावनाओं में क्रान्तिकारी विचारों ने अधिकार जमाया। राजा मानसिंह इन दिनों में वहाँ के सिंहासन पर था। उसके सामने कठिनाइयों और विपदाओ की वृद्धि हुई। झालामन्ड में जिस समय वह अपने भाई के आक्रमण से अपनी रक्षा करने मे लगा हुआ था, अवसर पाकर भीमसिंह राज सिंहासन पर बैठ गया और उसने मारवाड़ के राजवंश का सर्वनाश करने के साथ-साथ मानसिंह को संसार से विदा करने के लिए सोच डाला। भीमसिंह के इन भावों और कार्यो के कारण मारवाड़ में विनाशकारी आग की भीपणता आरम्भ हुई और उसके कारण राज्य का जितना विनाश हो सकता था, सब एक साथ हो गया। इस विनाश से बचने के लिए जब राजा मानसिंह को कोई सुरक्षित मार्ग दिखायी न पडा तो उसने जालोर का सम्पूर्ण प्रदेश देकर अपने प्राणों की रक्षा की। मानसिंह ने मुझसे कहकर स्वयं इस बात को मन्जूर किया था : ''राठौर राजपूतो के गुरुदेव के द्वारा मेरे प्राणो की रक्षा हुई है। अन्यथा मेरे बचने की कोई आशा न थी।''

वह गुरुदेव सभी लोगो में देवनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। उसे लोग साधारण तौर पर नाथ जी कहा करते थे। उसी के द्वारा मानसिह के जीवन की रक्षा हुई, इस बात को मानसिंह ने स्वीकार किया। लेकिन यह बात कहाँ तक सही थी और गुरु देवनाथ के द्वारा मानसिंह के प्राणों के बचने में क्या रहस्य था, इसके सम्बन्ध में मानसिंह स्वयं कुछ नहीं जानता था और वह अपनी रक्षा में उस गुरुदेव की मेहरबानी को ही मानता था। इसके सम्बन्ध में मैंने समझने की कोशिश की। लेकिन लोगों के द्वारा किसी एक बात का समर्थन नहीं हुआ। जितने लोगों से मेरी बातें हुईं, उतनी ही बातें मुझे मालूम हुईं। फिर भी यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि अगर देवनाथ ने कोशिश न की होती अथवा वह न चाहता तो भीमसिंह के षड़यंत्र से मानसिंह मारा जाता और वह किसी प्रकार संसार में जीवित न रह सक था।

भीमसिंह के सामने आत्म-समर्पण करने के बाद मानसिंह ने अपनी जिन्दगी के सुरक्षित दिनों का अनुमान लगाया। लेकिन उसका यह अनुमान और विश्वास सही साबित न

हुआ। उसके सामने भयानक विपदायें दिखायी देने लगीं। उस दशा में उसने आत्महत्या करने की बात सोच डाली। लेकिन उस समय राठौर राजपूतो के गुरुदेव देवनाथ ने उसको रोका और आत्म-हत्या न करने के लिए उसने उसको बहुत-सी बाते समझाई। उसने उसको समझाया कि तुम्हारी कुण्डली मे तुम्हारी आत्म-हत्या का कोई योग नहीं है और कुण्डली से इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है कि थोड़े ही दिनों में तुम्हारी विपदाओं का अन्त हो जाएगा और बाद मे तुम्हारी ही विजय होगी।

मानसिह को गुरुदेव की इन बातो पर विश्वास हो गया। उसने आत्म-हत्या का विचार छोड़ दिया। गुरुदेव किसी प्रकार मानसिह को सुरक्षित रखना चाहता था और इसके लिए उसके पास जितने उपाय थे, सभी को वह काम में लाना चाहता था। मानसिंह को बचाने में उसका क्या उद्देश्य था, इसका स्पष्टीकरण इसके बाद आने वाली घटनाओं के द्वारा होता है।

इस विषय में यह भी मालूम हुआ कि गुरुदेव नाथ जी ने भीमसिंह को मार डालने के लिए मारण मन्त्र का जाप आरम्भ कर दिया था और अपने इस जाप की सफलता के लिए ही विष का प्रयोग करके भीमसिंह को मार डालने और मानसिंह को उसके षड्यंत्रो से उसने बचाया। उस गुरुदेव के इस कार्य को मानसिंह ने उसकी कृपा के रूप में स्वीकार किया। उसको इस बात का विश्वास हो गया कि गुरुदेव मे बहुत बडी शक्ति हैं। इसलिए वह सभी प्रकार उनके निकट अनुगृहीत हुआ।

गुरुदेव ने अपने षड्यंत्र से भीमसिंह को विष खिलाकर सफलता प्राप्त की थी। उसके बाद मानसिंह उस गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर सिंहासन पर बैठा। देवनाथ ने स्वयं उस समय राजा मानसिंह के गले मे जयमाल पहनाई। उसके बाद इसका श्रेय मानसिंह ने गुरुदेव को दिया और उसने सिंहासन पर बैठने के बाद और गुरुदेव के द्वारा जयमाल पहनने के समय हाथ जोडकर उसके उपकार को स्वीकार किया।

सिंहासन पर बैठने के बाद राजा मानसिंह ने अपने राज्य की इतनी अधिक भूमि उसके नाम कर दी, जितनी भूमि मारवाड़ के किसी प्रधान सामन्त के अधिकार मे भी न थी। उस भूमि से गुरुदेव देवनाथ को जितना कर वसूल होने लगा, उससे बहुत कम कर राज्य के अधिकार में रह गया। मिले हुए राज्य के इलाकों से देवनाथ को जो आमदनी होने लगी उसका दसवॉ अंश राज्य की आमदनी का रह गया। इससे इस बात का अन्दाज लगाया जा सकता है कि उस गुरुदेव के अधिकार में राज्य की कितनी बड़ी आमदनी राजा मानसिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद आ गयी थी।

राजा मानसिंह राज्य के सिंहासन पर था लेकिन उसके हृदय और मस्तिष्क पर गुरुदेव का अधिकार था। देवनाथ जो कुछ चाहता था, राज्य मे वही होता था, मानसिंह गुरुदेव के सकेत के बिना राज्य मे कुछ कर न सकता था। इस प्रकार उस गुरुदेव ने राजा मानसिंह को कई वर्षो तक अपने अधिकार मे रखा और राज्य की आमदनी का अधिकांश भाग उसने मन्दिरो और देवस्थानों को बनवाने में खर्च किया। उसने एक-एक करके लगातार चौरासी मन्दिर बनवाये और धर्मशालाओ का निर्माण करवाया। उन सभी धर्मशालाओ में, जो राज्य की

सम्पत्ति से बने थे, गुरुदेव के बहुत-से शिष्य लोग रहा करते थे, और राज्य का सुख भोगते हुए मनमानी करते थे। यह हालत उन मन्दिरों और धर्मशालाओ की बहुत दिनों तक चलती रही। कोई उसमे दखल नहीं दे सकता था।

न्याय किसी भी दशा में होकर रहता है। गुरुदेव देवनाथ के विपयों का प्रभाव राज्य के लोगों पर से नष्ट होने लगा और सभी लोग इन सब बातों का कारण देवनाथ को समझने लगे। धीरे-धीरे राज्य के निवासियों में असंतोष बढ़ा और वे छिपे तौर पर गुरुदेव से असंतुष्ट हो गये। इस असन्तोष में गुरुदेव के प्रति लोगों में शत्रुता का भाव पैदा हुआ। इसके साथ-साथ लोगों में इस बात का विश्वास भी बढ़ने लगा कि राजा ने इस गुरुदेव की सहायता से राजसिंहासन प्राप्त किया है इसलिये राजा गुरुदेव की अधीनता में चल रहा है। वह राज्य में होने वाले इस प्रकार के अन्यायो में कभी भी सुधार करने का साहस नहीं कर सकता।

इस प्रकार की भावनाये राज्य के न केवल निवासियो में पैदा हुई, बल्कि इससे राज्य के सामन्त लोग भी चिन्तित और पीड़ित रहने लगे। गुरुदेव के आधिपत्य के दिनों मे सामन्तो के अधिकार धीरे-धीरे नष्ट होने लगे। राजा मानसिंह के ऊपर सामन्तों का प्रभाव छिन्न-भिन्न हो गया। राज्य की इस परिस्थिति को सामन्तो ने अपनी दुरवस्था समझी और उसे बदलने के लिये वे सभी प्रकार के कार्य करने की तैयारी करने लगे। वे समझते थे कि इन दिनों मे जो कुछ राज्य में रहा है, वह अन्याय और अपराध है। इसे बदलने के लिए अगर जल्दी कोशिश नहीं कि जाती तो उसका परिणाम भयानक है।

गुरुदेव को राज्य की इस बिगड़ती हुई परिस्थिति का कुछ पता न था। उसको इसकी कोई परवाह भी न थी। राजा मानसिंह पूरे तौर पर उसके अधिकार मे था। राज्य की सम्पत्ति और आमदनी का प्रयोग वह बहुत मनमाने तरीके से करता था। राज्य के व्यापारियों और सम्पत्तिवानो का विश्वास गुरुदेव और उसके शिष्यों पर था। वे लोग इन धर्माचारियो के विरुद्ध सोचने का कभी साहस न कर सकते थे। इस का फल यह हुआ कि राज्य के खजाने के सिवा धनिकों के पास जो सम्पत्ति थी वह गुरुदेव के पास धीरे-धीरे पहुँच रही थी और देवनाथ के नेत्रों में उस सम्पत्ति का महत्व कुए और तालाबों के जल से अधिक न था।

मारवाड़ राज्य के सामन्तो का अधिकार नष्ट हो गया था। इसलिये वे लोग गुरुदेव और उसके शिष्यों के कार्यो को पूरे तौर पर अनाचार समझ रहे थे। परन्तु राजा मानसिंह के विरोध के कारण वे लोग कुछ करने का साहस न करते थे। वे समझते थे कि गुरुदेव का विरोध राजा मानसिह का विरोध है। क्योकि उसके दिल और दिमाग पर देवनाथ ने पूरा अधिकार कर रखा है। इसलिये चिन्तित होने पर भी राज्य के सामन्त चुप थे।

देवनाथ का पूरा आधिपत्य राज्य पर चल रहा था। उसके अधिकार में नौकरां की संख्या इतनी अधिक थी, जितनी बड़ी संख्या सब सामन्तो के नौकरों को मिलाने पर भी नहीं होती थी। मारवाड का राजा मानसिंह जिस ध्वजा और झण्डे के साथ निकला करता था, ठीक उसी प्रकार का वैभव गुरुदेव के साथ चलता था। वह राज्य के सामन्तो को अपनी अधीनता मे समझता था और सामन्त लोग भी उसी प्रकार उसको हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे जिस प्रकार वे सब विनम्र भाव से अपने राजा का अभिवादन करते हुए अपनी अधीनता का प्रदर्शन

किया करते थे। गुरुदेव के द्वारा सामन्तों के अधिकारों और सम्मान का जिस प्रकार विनाश हुआ था, उसे सामन्त लोग भली प्रकार समझते थे।

इस प्रकार की दुरवस्था राज्य की बहुत दिनों तक चली और उसको मिटाने का साधन भी उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ। गुरुदेव और उसके शिष्यों के अनाचारो के विरुद्ध राज्य के सामन्त पूर्ण रूप से विद्रोही थे। परन्तु राजा मानसिंह के कारण वे सोच-विचार में पड़े थे। आखिरकार एक ऐसा समय उपस्थित हुआ, ज़िसके कारण मारवाड़ राज्य की परिस्थितियाँ बदलीं। अभिमानी गुरुदेव अमीर खॉ की सेना के सैनिकों के द्वारा मारा गया। कुछ लोगों का विश्वास है कि राजा मानसिंह भी गुरुदेव के अत्याचारों से ऊबा हुआ था। लेकिन वह उससे बहुत दबा हुआ था, इसलिये उसके विरुद्ध कुछ करने का साहस न कर सकता था।

जब गुरुदेव देवनाथ अमीर खॉ के सिपाहियों के द्वारा मारा गया तब लोगों की धारणा थी कि राजा मानसिंह ने उसको बचाने के लिए कुछ भी चेष्टा न की। इसी आधार पर लोगों का विश्वास है कि देवनाथ के मारे जाने में मानसिह का भी कुछ हाथ था। यह बात कहाँ तक सही है, उसके सम्बन्ध में कोई सही बात नहीं कही जा सकती। इसके रहस्य को सही तौर पर अमीर खॉ और राजा मानसिंह के सिवा तीसरा कोई नहीं जानता था।

गुरुदेव के मारे जाने के बाद आश्चर्यजनक रूप से मारवाड़ की परिस्थितियो मे परिवर्तन आरम्भ हुआ। उस परिवर्तन में निमाज का सामन्त और उसके वंश के लोग भयानक रूप से मारे गये थे अर्थात् उन्हीं दिनों मे सुरतान पर आक्रमण किया गया था। उस आक्रमण में न केवल वह मारा गया था, बल्कि मारवाड़ के राजा मानसिंह ने राज्य के प्रधान सामन्तों को छिन्न-भिन्न करके जो भयानक परिस्थिति पैदा कर दी थी, उसका पहले से कभी किसी को अनुमान न था। इन दुर्घटनाओ के सम्बन्ध में यहॉ पर कुछ प्रकाश डालना जरूरी मालूम होता है।

सन् 1804 ईसवी में जालौर से जोधपुर आने पर मानसिंह का राज्याभिपेक हुआ था। मानसिंह से पहले राजा भीमसिंह सिहासन पर बैठा था। राजा भीमसिंह जब मरा था तो उसकी रानी गर्भवती थी। विधवा हो जाने के बाद अपने गर्भवती होने का जिक्र उसने किसी से नहीं किया और उसने पूर्ण रूप से उसे छिपाकर रखा। समय आने पर उससे जो बालक पैदा हुआ, उसे पोकरण के सामन्त सवाई सिह के पास भेज दिया गया। दो वर्ष तक बालक के सबध मे किसी को कुछ न मालूम हुआ। उसके बाद राज्य के सामन्तों को मालूम हुआ कि भीमसिह की रानी से जो बालक पैदा हुआ है, वह दो वर्प का हो चुका है। इसलिए उन लोगों ने प्रसन्न होकर और राजा मानसिंह के पास जाकर, उस बालक धौंकल सिंह का परिचय देते हुए कहा।

''मारवाड का उत्तराधिकारी बालक धौंकल सिंह है। इसलिये नगर का राज्य और अधीन प्रदेश आप उसे दे दीजिए।''

राजा मानसिंह को सामन्तों की यह बात अच्छी न लगी परन्तु उसने अपने मन के भावों को छिपाकर कहा: ''अगर बालक धौंकल सिंह भीमसिंह से पैदा हुआ है और बालक की मॉ इस बात को स्वीकार करती है तो मैं आप लोगों के इस अनुरोध को जरूर मन्जूर करूँगा।''

राजा मानसिंह की इस वात को मुनकर यह जरूरी हो गया कि धौंकल सिंह की माता इस वात को स्वीकार करे कि उससे उत्पन्न होने वाला वालक राजा भीमसिंह से पैदा हुआ है। इस वात के स्पष्टीकरण के लिये जव रानी के पास समाचार पहुँचा तो उसने वड़ी दूरदर्शिता से काम लिया और अपने वालक के प्राणों की रक्षा के लिये उसको स्पष्ट न करना ही आवश्यक समझा। वल्कि उसने इस वात को स्वीकार नहीं किया कि उससे कोई वालक पैदा हुआ है।

रानी के इस निर्णय में पोकरण के सामन्त का षड़यंत्र था। जव राज्य के सामन्तों ने रानी का उत्तर सुना तो उनको उसका विश्वास नहीं हुआ। लेकिन जव रानी स्वयं इस वात को स्वीकार नहीं करती है तो चुप हो जाने के सिवा वे लोग कर ही क्या सकते थे। जिन सामन्तों ने राजा मानसिंह से धौंकल सिंह की वात कही थी, उनको खामोश हो जाना पड़ा। रानी के इनकार करने पर मानसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई।

मारवाड़ राज्य में कई तरह से परिस्थितियाँ वदलीं। राजनीतिक सत्ता कमजोर पड़ने लगी। राज्य में लूट-मार अधिक वढ़ गयी। वाहर से आकर लुटेरों ने राज्य को लूटना आरम्भ किया और राजा मानसिंह को सिंहासन से उतार दिया। लेकिन पोकरण के सामन्त सवाई सिंह को मारवाड़ के राज्य-सिंहासन पर धौंकल सिंह को विठाने में सफलता न मिली। उसने धौंकल सिंह को जयपुर राज्य के खेतड़ी नामक प्रदेश के स्वतन्त्र सामन्त के पास इसलिये भेज दिया कि वहाँ पर वह वालक सुरक्षित रह सकेगा।

इसके कुछ दिनों के वाद मेवाड के राणा की राजकुमारी कृष्णा के विवाह के सम्वन्ध मे मारवाड़ और जयपुर में भीषण युद्ध हुआ। सामन्त सवाई सिंह ने उस अवसर का लाभ उठाने की कोशिश की। कृष्णा कुमारी के साथ विवाह करने के लिए मानसिंह ओर जयपुर के राजा का जो युद्ध हुआ था, उसको पहले लिखा जा चुका है। उस युद्ध मे उत्तरी भारत के लगभग सभी राजा लोग जो शामिल हुये थे, उसका कारण सवाई सिंह का षड़यंत्र था।

राजा मानसिंह ने सुन्दरी कृष्णा कुमारी के साथ किसी भी दशा में विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी, इसलिये मारवाड की प्रजा असंतुष्ट हो गयी थी। बड़ी वुद्धिमानी के साथ इस अवसर का लाभ सवाई सिंह ने उठाया और उसने जव समझा कि मारवाड़ की प्रजा राजा मानसिंह के विरुद्ध है तो उसने वालक धोकल सिंह के सम्वन्ध मे घोषणा की और इस वात को जाहिर किया कि धौकल सिंह, भीमसिंह का बालक है और इसलिये वह मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी है।

सवाई सिंह की इस घोषणा को सुनकर समस्त राजा लोग धौंकल सिंह के पक्ष में हो गये और उसका क्या परिणाम हुआ, इसे विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। उन्हीं दिनों में सवाई सिंह मारा गया था और गुरुदेव देवनाथ का सर्वनाश अमीर खाँ के सिपाहियों के द्वारा हुआ।

प्रारम्भिक दिनों में राजा मानसिंह को, मारवाड़ राज्य के प्रमुख व्यक्तियों, राजवंश के लोगों और सामन्तों से जो विपदायें मिली थीं, मानसिंह ने उन सब का पूरा-पूरा वदला लिया। उसका सबसे बड़ा शत्रु भीमसिंह विष के द्वारा मारा गया था। इसके बाद उसने वडी वुद्धिमानी

के साथ सामन्तों का सर्वनाश किया। आरम्भ मे सब के साथ मिलकर और अपना विश्वास कायम करके उसने एक-एक सामन्त को छिन्न-भिन्न किया और अपने शत्रुओं से बदला लेने मे उसने भयानक विश्वासघातों और अत्याचारो से काम लिया।

मनुष्य उत्पात, अपराध और अत्याचार करते-करते अपने मनुष्यत्व को खो देता है। राजा मानसिंह का इतना ही पतन नहीं हुआ, बल्कि उन पापों और अपराधों के फलस्वरूप उसका मन और मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया। उसने राज्य के अधिकांश लोगो को अपना शत्रु समझ लिया था, अब शत्रुओं के न रहने पर भी उसको प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर सन्देह रहने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से उसको आशंका मालूम होती और किसी के द्वारा भी वह अपने सर्वनाश का अनुमान करने लगता। मन के इन विकृत भावों से उसने केवल अपनी स्त्री के हाथ का बना हुआ भोजन करना आरम्भ किया और दूसरे का बनाया एवम् तैयार किया हुआ भोजन करना बन्द कर दिया।

राजा मानसिंह की विक्षिप्त अवस्था धीरे-धीरे और भी बढी। अब उसका मन राज्य के कार्य में न लगता। जीवन का प्रत्येक कार्य उसे अप्रिय और संकटपूर्ण मालूम होने लगा। इसलिये सार्वजनिक स्थानों को छोडकर वह एकान्त में रहने लगा। उसके मन के इस उन्माद को दूर करने के लिये जो उपाय सम्भव हो सकते थे, सब किये गये। लेकिन किसी से कुछ लाभ न हुआ। वह स्वर्गीय गुरुदेव देवनाथ की मृत्यु पर विलाप किया करता और अपने इष्ट देवता की अराधना किया करता। उसके मन की इस दुरवस्था में राज्य का बहुत पतन हुआ। यह देखकर उसके दरबार के प्रमुख व्यक्तियों ने परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह निर्णय किया कि राज्य के शासन का कार्य उसके लड़के को सौंप दिया जाये। इस प्रकार का निर्णय करके उन लोगो ने मानसिंह से प्रार्थना की। इसको राजा मानसिंह ने मन्जूर कर लिया और उसने अपने हाथ से अभिषेक के समय अपने लडके के मस्तक पर राजतिलक किया। उसके बाद उसका लड़का छत्रसिंह सिंहासन पर बैठ कर राज्य का शासन करने लगा।

छत्रसिह इस समय राज्यसिंहासन पर था। लेकिन अभी तक उसको शासन सम्बन्धी बातो का ज्ञान न था। संसार के व्यवहारों को समझने का उसे कोई अवसर न मिला था। अभिषेक के बाद वह राजा बन गया था। लेकिन राज्य कैसे किया जाता है, इस बात को वह समझता न था। उसमे इतना ही अभाव न था, बल्कि वह अयोग्य और नासमझ भी था। उसके आचरण अच्छे न थे। बुद्धिहीन होने के कारण उसमें दूरदर्शिता न थी। अपनी इसी अयोग्यता के कारण उसने आरम्भ से ही ऐसा काम आरम्भ किया, जो राज्य के लिये अच्छा न था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अक्षयचन्द नामक एक वैश्य को अपना मन्त्री नियुक्त किया।

सन् 1839 से 1807 ईसवी तक मारवाड राज्य की दशा सभी प्रकार खराब रही। अच्छे शासन के अभाव मे लगातार विनाशकारी दुर्घटनाओं की वृद्धि हुई, इनके फलस्वरूप मारवाड का शासन बहुत निर्बल पड गया। इन दिनो मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता भारतवर्ष में बढ़ रही थी। उसके प्रभाव मे राजस्थान के अनेक राज्य आ चुके थे। यह देखकर राजा छत्रसिह ने अंग्रेजी कम्पनी के पास सन्धि करने के उद्देश्य से अपना एक दूत भेजा। उस सन्धि का अवसर आने के पहले ही छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी।

राजा छत्रसिंह की इस आकस्मिक मृत्यु का क्या कारण हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। दूसरे लोगों के मत भी इस विषय में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोगों का कहना है कि आचरण की खराबी से उसका शरीर बहुत निर्बल पड़ गया था। इसीलिये असमय उसकी मृत्यु हुई। कुछ लोगों का कहना है कि आचरण दुर्बलता में उसने एक राजपूत लड़की का सतीत्व नष्ट करना चाहा था। उसके इस अपराध के कारण उस लड़की के पिता ने अपनी तलवार से उसको मार डाला। सही बात क्या है, इसको प्रमाणिक तौर पर कहने के लिये कुछ साधन नहीं है। जो कुछ भी हो। छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद मारवाड़ राज्य का पतन भयानक रूप से आरम्भ हुआ और राज्य में चारों तरफ अन्याय होने लगा।

राज्य की बढ़ती हुई दुरवस्था को देखकर सामन्त लोग बहुत चिन्तित हुये, बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद भी उनकी समझ में न आया कि उस दशा में क्या होना चाहिये। अन्त में सभी लोगों ने निश्चय किया कि मानसिंह के पास जाकर राज्य की सब हालत कही जाये और उसके ऊपर जोर डाला जाये कि वह फिर से राज्य का शासन हाथ में ले। इन दिनों में मैं विभिन्न प्रकार के लोगों से मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध. में बातें करता रहा। मैं जल्दी से इस बात का निर्णय करने में असमर्थ ही रहा था कि इस राज्य की इस बर्बादी का कारण क्या है। मुझे बहुत से आदमियों के द्वारा अनेक प्रकार की बातें सुनने को मिलीं। उन सबको सुनने के बाद मैं तो इसी नतीजे पर आया हूँ कि मारवाड राज्य मे किसी योग्य शासक के न होने के कारण उसकी यह दुरवस्था हो रही थी। इसके सिवा और कोई बात न थी।

राजा मानसिंह की दशा भी अभी तक अच्छी न थी। मानसिंह के उन्माद का रोग अभी तक कुछ कम न हुआ था। सिर और दाढ़ी के बाल भी उसने बहुत दिनों से नहीं बनवाये थे। इसलिये उसकी आकृति पागलों की सी हो गयी थी। परन्तु उन्माद के इन दिनों में राजा मानसिंह को अपने जीवन की रक्षा का बहुत ध्यान था। राजा छत्रसिंह के समय जो लोग राज्य के ऊँचे पदों पर थे उनके सेवक मानसिंह के पास जाकर उसकी सेवा करते थे। कहा जाता है कि उन सेवकों ने राजा मानसिंह को विष देने के लिए कई बार कोशिश की थी। लेकिन उसमे उन लोगो को सफलता नहीं मिली। यह जानकर बहुत से लोग इस बात का विश्वास करने लगे थे कि राजा मानसिंह की जिन्दगी के दिन अभी बाकी हैं, इसलिये कोई उसे अभी तक विष नहीं दे सका।

उन्माद के दिनों में भी उसके जीवित रहने का कारण यह था कि वह स्वयं अपने सम्बन्ध मे बहुत सचेत रहता था ओर किसी के हाथ का कोई भी भोजन वह न करता था। इसमे सबसे बड़ा सहारा यह था कि राजा मानसिंह का एक बहुत विश्वासी नौकर था, वह मानसिंह का इतना अधिक विश्वासी और भक्त था कि उसने अब तक राजा का साथ नही छोडा था और वह अपना लाया हुआ भोजन ही राजा को खाने देता था।

छत्रसिंह के मरने के बाद राजा मानसिंह मे बहुत परिवर्तन हुआ। उसका उन्माद जाता रहा। उसकी समझ में आ गया कि राज्य के हित के लिए उसकी तरफ ध्यान देने की आवश्यकता है। अंग्रेजी सरकार ने राजा मानसिंह की सहायता की ओर उसके शत्रुओ का पूर्ण रूप से दमन हुआ।

शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के बाद राजा मानसिंह ने समझा कि नियन्त्रणहीन राज्य सामन्तों की अराजकता के कारण है। इसलिये उसने बड़ी राजनीति से काम किया। उसने राज्य के सामन्तों के साथ बड़ी सहानुभूति प्रकट की। उसके व्यवहारों को देखकर सभी सामन्त उसका विश्वास करने लगे। दोनो तरफ से बढ़ते हुए विश्वासों के कारण यह मालूम होने लगा कि सामन्तों के साथ राजा मानसिंह का जो व्यवहार चल रहा है उससे बहुत थोड़े दिनों मे राज्य की उन्नति हो जाएगी। अपने राजा के प्रति वहॉ के सामन्तों में इसी प्रकार का विश्वास पैदा हो गया। राजा मानसिंह ने सामन्तों की स्वतन्त्रता पर कभी कोई आलोचना न की। इस तरह की बातों को देखकर मालूम होने लगा कि राजा मानसिंह ने अपने सामन्तों को सभी प्रकार के अधिकार दे रखे हैं।

जब अच्छे दिन आते हैं तो परिस्थितियॉ अपने आप अनुकूल होने लगती हैं और अच्छा अवसर बिना किसी चेष्टा के सामने आ जाता है। पोकरण के सामन्त सालिम सिंह और प्रधान मत्री अक्षयचन्द को नष्ट करने के लिए योधराज ने अपनी शक्तियों को तैयार किया। इस सघर्ष को बढ़ते हुए देखकर मानसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। वह समझता था कि इस झगड़े का लाभ अपने लिये सभी प्रकार अच्छा होगा। लेकिन उसका जो भीतरी उद्देश्य था, सालिमसिंह उसे समझ न सका। वह मानसिंह पर विश्वास करता रहा।

छत्रसिंह के शासनकाल में अक्षय चन्द मंत्री था। उन दिनों में मारवाड राज्य का शासन उसी के हाथ में था। छत्रसिंह कभी योग्य न था और उसकी अयोग्यता के कारण ही अक्षय चन्द ने सभी प्रकार के अधिकार अपने हाथो में कर रखे थे। राजा मानसिंह इस बात को समझता था कि राज्य की सारी परिस्थितियों की जानकारी सबसे अधिक अक्षय चन्द को है, इसलिये उसने अक्षय चन्द की इस जानकारी का लाभ उठाने की चेष्टा की। परन्तु उसके उन्माद के दिनों मे राज्य के जिन पदाधिकारियो ने अधिक अन्याय किया था और अनैतिक रूप से राज्य की सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली थी, राजा मानसिंह ने उन सबकी सम्पत्तियों को छीनकर अपने अधिकार मे करना आरम्भ कर दिया।

राजा मानसिंह ने इन दिनों में अपनी एक अनोखी राजनीति से काम लिया। उसने निर्णय किया कि मेरे उन्माद के दिनों में जिन्होंने अपने स्वार्थो के लिए राज्य और प्रजा का सर्वनाश किया है, उनकी हत्या करने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा होगा कि उनकी उस सम्पूर्ण सम्पत्ति को छीन लिया जाये, जो उन्होने अपने अन्यायपूर्ण कार्यो से अपने अधिकार में कर ली है। अक्षय चन्द राजनीतिज्ञ ओर दूरदर्शी था। वह राजा मानसिह की इस चाल को समझ रहा था। अंग्रेजों के साथ राजा मानसिंह की मित्रता हो जाने के कारण वह बहुत भयभीत होने लगा था। उसने अग्रेजों की तरफ से राजा मानसिंह को बहुत भड़काने की कोशिश की। राजा मानसिंह भी दिखावे मे अक्षयचन्द की हॉ मे हॉ मिलाता रहा। इसका फल यह हुआ कि अक्षयचन्द और उसके आदमी राजा मानसिंह के चंगुल मे आ गये। मानसिह ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ यह सब किया।

इन दिनों मे मारवाड़ राज्य की अवस्था बडी भयानक हो रही थी। किसी पर किसी का विश्वास न था। सम्पूर्ण राज्य मे राजनीतिक षडयंत्र फैले हुए थे। राजा मानसिंह अपने

षड़यंत्र में राज्य के आदमियों को फँसाने में बड़ी सावधानी से काम ले रहा था और अक्षय चन्द की तरफ के लोग राजा मानसिंह को अपने जाल में फँसाने की कोशिश में थे।

षडयंत्र के इन दिनों मैं मैं मारवाड़ राज्य में पहुँचा था। वहाँ जाकर मैंने राजा मानसिंह को बहुत चिन्तित और परेशान देखा। अक्षयचन्द और उसके पक्षपातियों ने एक भीषण षड़यंत्र में मानसिंह को फँसा रखा था। जो लोग राजा के शुभचिन्तक थे, अक्षयचन्द ने उनसे राजा को अलग करने की पूरी चेष्टा की थी। जो लोग अक्षयचन्द के विरोधी थे, वह उनको कैद नहीं कर सकता था, इसलिए उनके विरुद्ध उसने राजा मानसिंह को भड़काने का काम किया। वह इस प्रकार के कार्यो में बहुत होशियार था। उसकी सहायता से मानसिंह ने उन सभी लोगों से अपना बदला लिया, जिनको वह दण्ड देना चाहता था। जब राजा मानसिंह अक्षय चन्द की सहायता से अपने विरोधियों से बदला ले चुका, तब उसने मन्त्री अक्षयचन्द और उसके पक्षपातियों पर शासन की कठोरता आरम्भ की। राजा मानसिंह ने सब से पहले अक्षयचन्द और उसके समर्थक राजा के पदाधिकारियों को उनके पदों से अलग किया और उसके बाद उसने उन सबको कैद करके कारागार में बन्द कर दिया।

मन्त्री अक्षयचन्द को जब मालूम हुआ कि अब मेरे बचने की कोई उम्मीद नहीं है तो उसने राजा मानसिंह से प्रार्थना की और अपनी मुक्ति के बदले उसने अपने पास की सम्पूर्ण सम्पत्ति दे देने का वादा किया। राजा मानसिंह ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

अक्षयचन्द ने अपने अधिकार की चालीस लाख रुपये की समस्त सम्पत्ति राजा मानसिंह को दे दी। उस सम्पत्ति को लेकर मानसिंह ने अपने अधिकार में किया और मन्त्री अक्षयचन्द को मरवा डाला। इसके बाद राजा मानसिंह ने अपने राज्य में मुनादी करवा दी, कि जो आदमी राज्य के पदों से निकाले गये हैं, उनके अपराधों को क्षमा कर दिया जाएगा। इस पर दुर्ग के अधिकारी नाग जी और मल्ल जी धोंधल नामक दो आदमी-जो मारवाड़ राज्य से भाग गये थे, लौटकर राज्य में वापस आ गये और रहने लगे। छत्रसिंह के शासन काल में उन दोनों ने अपने पास बहुत-सी सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। उन दोनों के राज्य में लौट आने पर राजा मानसिंह ने उनके पास की सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली और उन दोनों को विष देकर मार डाला।

इस प्रकार विनाश और संहार करने के बाद भी राजा मानसिंह शान्त नहीं हुआ। राज्य में अन्याय करने वालो में किसी के साथ उसने रियायत नहीं की और बड़ी निर्दयता के साथ उसने उन सबका विनाश और संहार किया, जिन्होंने उसके उन्माद के दिनों में सम्पत्ति को लूट करके अत्याचार किये थे उसने उनको कैद करके कारागार में बन्द किया, उनके अधिकार की सारी सम्पत्ति उनसे छीन ली और उसके बाद भी उसने उनको जिन्दा नहीं रखा। कहा जाता है कि राजा मानसिंह ने ऐसा करके एक करोड़ रुपये अपने खजाने में एकत्रित किये।

मारवाड़ राज्य में मेरे जाने के छः महीने के बाद और अंग्रेजी सरकार के साथ मित्रता कायम होने के अठारह महीने पश्चात् राजा मानसिंह ने अपने राज्य में विनाश और संहार के ये काम किये थे। मानसिंह के इन सब कार्यों का मैं समर्थन नहीं करता। लेकिन

इस स्थान के स्मारको के बीच में अत्यन्त रमणीक स्तम्भ बने हुए हें। उनके द्वारा यह स्थान अत्यन्त सुहावना और आकर्पक हो गया है। इन स्मारकों में कुछ की बनावट मिश्र देश की शिल्प कला का स्मरण दिलाती है। यहॉ के दृश्य को देखते हुए में मारवाड़ के वीते हुए इतिहास् के सम्बन्ध में वहुत सी वाते सोचता रहा। इन स्मारकों को देखकर सहज ही कोई भी बिद्वान इस बात का अनुमान लगा सकता है कि मारवाड़ राज्य में किस प्रकार के वीरों ने जन्म लिया था। सही वात यह है कि संसार के उस समय का-जब कि राजस्थान में और विशेप कर मेवाड़ तथा मारवाड़ में इस प्रकार के वीर उत्पन्न हुए थे-इतिहास देखा जाए तो कहीं पर किसी भी देश में इस प्रकार के शूरवीरो का इतिहास पढ़ने को न मिलेगा, जैसा कि यहॉ के वीरो का इतिहास पढ़ने को मिलता है।

यहाँ पर हम मेवाड़, मारवाड और तैमूर वंश के कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीरात्माओ के नाम नीचे दे रहे हैं, उनके मुकावले में शूरवीर, राजनीतिज्ञ और रण कुशल कब किस देश में उत्पन्न हुए, क्या कोई बता सकता है? यहॉ पर जो नाम हम देना चाहते हें, वे इस प्रकार हैं:

मेवाड़	मारवाड़	दिल्ली
राणा सॉगा	राव मालदेव	वावर और शेरशाह
राणा सॉगा	राव सूरसिंह	हुमायूँ
राणा प्रतापसिह	राजा उदयसिंह	अकवर
राणा अमर सिंह	राजा गजसिंह	जहॉगीर
(प्रथम)		शाहजहॉ
राणा करण सिंह		
राणा राजसिंह	राजा यशवन्त सिंह	औरंगजेव
राणा जयसिंह	राजा अजित सिंह	फर्रूखसियर के वाद
राणा अमर सिंह		दिल्ली के सिहासन के
(द्वितीय)		लिये
		समस्त प्रतिद्वन्दी

पहले मारवाड़ के राजाओं की उपाधि राव थी। उदय सिंह से लेकर यशवन्त सिह और अजित सिंह आदि राजा बडे शूरवीर थे।

पथ-प्रदर्शन के लिये मेरे साथ राजा का एक समझदार अनुचर आया था। मैंने उससे पूछा कि: अजित सिंह की तरह उसके शूरवीर लडकों के स्मारक कहॉ है?

उसने मेरे प्रश्न को सुनकर दो स्मारको की तरफ संकेत किया। मैंने उन दोनो स्मारको की तरफ देखा। मुझे उन दोनों मे और अन्य स्मारको में बडा अन्तर दिखायी पडा। मै सोचने लगा, इस अन्तर का कारण क्या है?

राजा के अनुचर के साथ में उस स्थान पर बाते करता रहा। अभय सिह ने अपने पिता की हत्या की थी। इसलिये वह अपराधी था। परन्तु उसका शासन अच्छा गुजरा था और

उसने बड़ी योग्यता के साथ अपने राज्य का विस्तार किया था। उसके भाई बख्तसिंह को उसके कारण अपने अधिकारों से वंचित होना पडा था। इन स्मारकों में पिता की हत्या करने वाले अभय सिंह और उसके भाई बख्तसिंह-दोनों के स्मारक हैं। उन दोनों भाइयो के स्मारकों की पंक्ति में विजय सिंह का भी स्मारक है। मैंने आश्चर्यचकित होकर इस को देखा और बड़ी गम्भीरता के साथ उस पर विचार करता रहा। अभयसिंह ने अपने पिता अजितसिह की हत्या की थी और बख्तसिंह कभी अपनी योग्यता एवम् शक्ति का परिचय नहीं दे सका। परन्तु विजयसिंह ने अपने जीवन के अन्तिम समय तक जिस वीरता और कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया, उसकी पूरी प्रशंसा नहीं की जा सकती। लेकिन आश्चर्य यह है कि इन तीनो के स्मारकों को बनवाने मे किसी प्रकार का अन्तर नही रखा गया। यह बात मेरी समझ में नही आयी। एक पतित और श्रेष्ठ में अगर कोई जाति अन्तर रखना नहीं जानती तो उस जाति को धिक्कार है। इससे अधिक उसको और क्या कहा जा सकता है। ऐसे देश मे जो श्रेष्ठ और पतित का अन्तर रखना नहीं जानता और जिसकी नजरों में दोनों का मूल्य एक है, उस देश मे भविष्य मे विजयसिंह की तरह के शूरवीर पुरुष पैदा नहीं हो सकते।

विजयसिंह के तीन लड़के थे। बड़े लड़के जालिमसिंह का वर्णन इस इतिहास मे पहले किया जा चुका हे। इन तीनों लड़को के स्मारक उनके पिता विजयसिंह के स्मारक के पास बने हैं। उनके कुछ फासले पर राजा भीमसिंह और उसके भाई एवम् मारवाड के वर्तमान राजा के पिता गुमान सिंह का स्मारक है। गुमान सिंह की मृत्यु छोटी अवस्था मे ही हो गयी थी। वह भीमसिंह का बडा भाई था। इस श्रेणी के बिल्कुल अन्त मे छत्रसिह का स्मारक बना हुआ है। उसके स्मारक को देखकर मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ। अपने साथ के पथ-प्रदर्शक की तरफ देखकर मैंने पूछा: "यहाँ पर मारवाड़ के उन राजाओ के स्मारक नहीं बनवाये गये, जो छत्रसिंह के मुकाबले में बहुत श्रेष्ठ थे और जिनके स्मारक यहाँ पर बनने चाहिए थे। लेकिन उनके स्मारकों को न बनवाकर किसी ने छत्रसिह का स्मारक बनवाया है, क्या आप बता सकते हैं?"

राज्य के अनुचर ने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : "माता के प्रेम के कारण ही छत्रसिंह का यह स्मारक बनवाया गया हे।"

उस स्थान पर मुझे यह भी मालूम हुआ कि प्रत्येक महीने की अमावस्या का दिन मारवाड़ में पवित्र माना जाता है। उस दिन राजा यहाँ पर आकर इन स्मारकों को अपनी श्रद्धांजलि देता है। मैंने इस प्रकार की और भी कुछ बाते सुनी। परन्तु यहाँ आकर में जो बाते जानना चाहता था और जिनकी मे खोज में था, उनको मे जान न सका। इसका बहुत कुछ कारण राजा का भेजा हुआ अनुचर है, जो मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहा है। यह इतना योग्य नहीं है कि मेरी आवश्यकता के अनुसार सहायता कर सके और मेरे उन प्रश्नो का जवाब दे सके, जो मेरे काम के हे और जिनका सम्बन्ध यहाँ के प्राचीन इतिहास के साथ है। अगर मैंने मारवाड़ का प्राचीन इतिहास पहले से पढा न होता तो यहाँ आकर में जो जान सका हूँ, उसको भी मे समझ न सकता और मेरा यहाँ आना किसी काम का साबित न होता।

बडी सावधानी के साथ में अपने पथ-प्रदर्शक से काम ले रहा था। उसके द्वारा मुझे एक बहुत अच्छी बात सुनने को मिली। राजा अजितसिंह के मरने पर उसके मृत शरीर के

साथ उसकी चौंसठ रानियाँ चिता में बैठकर भस्मीभूत हुई थीं। इन दोनों बातों को सुनकर मैं कुछ गम्भीर हो उठा और उस अनुचर की तरफ देखकर मैं सोचता रहा। बुधसिह अजितसिंह का समकालीन और बादशाह औरंगजेब का सेनापति था। उसके बाद से करीब एक सौ बीस वर्ष बीत चुके हैं। इस लम्बे समय में बड़ा परिवर्तन हो गया है। बुधसिंह का वंशज राणा विष्णु सिंह मेरा घनिष्ठ मित्र था। सन् 1821 ईसवी में उसकी मृत्यु हुई थी। मरने के पहले उसने आदेश दिया था कि मेरी कोई स्त्री पतिभक्ति और सतीत्व का परिचय देने के लिए चिता पर न बैठे। मैं राजा विष्णु सिंह के उस आदेश का स्मरण करता हूँ और अजित सिह तथा बुधसिंह की मृत्यु के बाद उनके शव को लेकर जलने वाली उनकी रानियो की संख्या पर विचार करता हूँ। जिस प्रकार के सुधार बड़ी-बड़ी कोशिशों के बाद भी नहीं होते, वे समय आने पर अपने आप हो जाते हैं।

राजा विष्णु सिंह ने अपने पुत्र की देख रेख और रक्षा का भार मरने के पहले मुझे सोंपा था। उसके मर जाने के बाद मै बूँदी चला गया और जो भार मुझे विष्णु सिह ने सौपा था, शक्ति भर मैंने उसका पालन करने की कोशिश की।

दुर्ग के नीचे भी कुछ स्मारक बने हुए है। राव रणमल्ल, राव गागां और चन्द का स्मारक वहाँ पर देखने को मिला। इन लोगो ने परिहारों के अधिकार से मण्डोर छीन लिया था। इन तीनों राजाओं के स्मारकों से लगभग दो सौ हाथ की दूरी पर कुछ खाली स्थान पडा हुआ है। यह स्थान उन रानियों के लिये रखा गया है, जो किसी रोग से पीडित होकर मरेंगी। अब परिहार राजपूतो की राजधानी का हम कुछ वर्णन करेगे।

जिसने प्राचीन टस्कन के कर्टोना और वलटेरा जैसे नगरों को देखा है, वह जानेगा कि मण्डोर की रक्षा के लिये उसके आस-पास बनी हुई मजबूत और ऊंची दीवार ठीक उसी प्रकार की बनी है, जिस प्रकार प्राचीनकाल में नगरों की दीवारें थीं। अग्नि से उत्पन्न होने वाले चार राजपूत वंशों मे परिहारों का भी एक वंश माना जाता है। उनके इतिहास के अनुसार उनके राज्य का विस्तार भारतवर्ष में सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं के राज्य विस्तार से पहले हुआ था।*

परिहार राजपूतों का यह भी कहना है कि हम लोग काश्मीर से भारतवर्ष मे आये थे। जिन दिनों में बौद्धो के साथ शैव लोगों का धार्मिक युद्ध चल रहा था, उन्हीं दिनो मे ये लोग भारतवर्ष मे आये थे और बौद्ध लोगों से उनको प्रोत्साहन मिला था। परिहारों की इन बातों का समर्थन उनके इतिहास के द्वारा होता है।

मण्डोर राजधानी की तरफ चलने के लिये पत्थरों की सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं। वहाँ पर नागदा नाम की एक छोटी-सी नदी बहती है और मार्ग में एक विशाल बावडी बनी हुई हे। इस बावड़ी को बनाने के लिये भयानक परिश्रम करना पड़ा है। लोगों का कहना है कि पहाड के पत्थरों को काटकर यह जलाशय बनाया गया है। इस बावडी के भीतर जाने के लिए गोलाकार मे चक्करदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यह बावड़ी बहुत पुरानी हे और उसकी दीवारो मे

इस बात का समर्थन सभी इतिहासकारों के द्वारा नहीं होता। कुछ विद्वानों का कहना है कि परिहार राजपूतो के राज्य विस्तार के पहले और लगभग सैकड़ों वर्ष पहले भारतवर्ष में सूर्य और चन्द्रवशी राजा राज्य करते थे। परिहार राजपूतों के राज्य विस्तार का यह वर्णन टॉड साहब ने उन्हीं के अनुसार किया है।

गूलर जैसे दो वृक्ष पैदा हो गये हैं। उनकी जड़ें पृथ्वी में दूर तक फैली हुई हैं। परन्तु उनके द्वारा इन वृक्षों की कोई बड़ी मजबूती नहीं है। इस तरह की कितनी ही बातों ने उस प्राचीन बावड़ी को अयोग्य बना दिया है। अब उसकी कोई मरम्मत भी नहीं है।

परिहार राजपूतों के अन्तिम राजा नाहरराव ने इस बावड़ी को बनवाया था। मेरा ध्यान मण्डोर की ऊँची और मजबूत दीवार की ओर आकर्षित हुआ। उसको बने हुए कई सौ वर्ष और बीतेंगे। यह ऊँची दीवार दुर्ग की तरह मण्डोर को घेरे हुए जिस प्रकार आज खड़ी है, भविष्य मे भी खड़ी रहेगी। केवल इतने से ही इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ की यह दीवार कितनी मजबूत है।

यह दीवार शिखर की तरफ चली गयी है। उन दिनों मे लड़ाई की तोपों का आविष्कार नहीं हुआ था। इसलिये यहाँ के परिहार राजाओ ने दुर्ग के ऊपर बीचों बीच अपना महल बनावाया था। उस महल के सभी बुर्ज बहुत मजबूत बने हुए हैं और वे चौकोर हैं। उनको देखकर प्राचीन काल की अनेक बातों का अनुमान किया जा सकता है। मैंने इस बात को भली भाँति समझा।

मैं जब मण्डोर में पहुँचा तो बहुत थक गया था और थकावट के कारण ही मुझे बुखार आ गया था। इसलिये उस दीवार के सम्बन्ध में मुझे ओर जो कुछ जानना चाहिये था, नहीं जान सका। वहाँ पर परिहार राजाओं का जो महल बना हुआ है उसके ऊपर चढ़कर में पहुँचा और टूटे-फूटे भागों को देखा। वह महल अब केवल एक पुराने खण्डहर के रूप मे रह गया है। फिर भी उसको देखकर उसकी पहले की अनेक बातो का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस प्रकार के उपकरणों से वह महल बनाया गया था, उन्हीं उपकरणो से जोधपुर राजधानी का निर्णय हुआ है।

यहाँ के राजमहल के बहुत करीब अनेक देवताओं के मन्दिर अपनी गिरी हुई दशा में दिखाई देते हैं। मैंने राजमहल को बाहर से लेकर भीतर तक देखने ओर समझने की कोशिश की। यद्यपि वह बिल्कुल नष्ट हो चुका है, परन्तु उसके कितने ही कमरो का आकार-प्रकार अब भी देखने को मिलता है, उन कमरो के बाहरी हिस्सों में जो शिल्प कला देखने को मिलती है, उससे अनुमान होता है कि महल का निर्माण तक्षक अथवा बोद्ध शिल्पियों के द्वारा हुआ था।

राजमहल की दीवारो पर जो धार्मिक चित्र अंकित किये गये थे, वे यद्यपि बहुत कुछ बिगड गये हैं। फिर भी बौद्ध और जैन धर्मो के साथ उनके सम्पर्क स्पष्ट रूप में जाहिर होते हैं। महल के स्थानों में शैव लोगों का धार्मिक त्रिकोण चित्र भी देखने को मिलता है।

दुर्ग के दक्षिण-पूर्व में बना हुआ सिंहद्वार और जयतोरण अपनी सुन्दरता और रमणीकता का किसी प्रकार आज भी परिचय देता है। इस सिंहद्वार को देखकर परिहार राजपूतों की श्रेष्ठता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह सिंहद्वार किसी समय अत्यन्त सुदृढ़ और सुन्दर था, उसको देखकर यह बात आज भी जाहिर होती है। मण्डोर के प्राचीन राजाओ मे से किसी एक राजा ने अपनी विजय के स्मारक मे जयतोरण बनवाया था और उसी के आधार पर इसका यह नाम रखा था, यह बात भी जाहिर होती है। समय की कमी के कारण मैं इस जयतोरण का नक्शा नहीं बना सका इसका मुझे बार-बार ख्याल होता है।

उत्तर की तरफ मण्डोर से कुछ दूरी पर तन्हापीर का थान है। थान शब्द का अर्थ स्थान होता हैं। अजमेर मे ख्वाजा कुतुब की एक प्रसिद्ध मस्जिद है। तन्हापीर उसी कुतुब का शागिर्द था। राजस्थान मे बहुत दिनों से सिंधी और अफगानी लोग लूट मार करते आ रहे है। ये सभी लोग इसी पीर की मस्जिद में एकत्रित होते थे और राजस्थान के राज्यों मे आक्रमण करने का कार्यक्रम तैयार करते थे।

मण्डोर के उत्तर की तरफ राठौर राजाओं और उनकी रानियो के स्मारक बने हुए हैं। परिहार राजपूत राजाओ के शव कहाँ पर जलाये जाते हैं और कहाँ पर उनके स्मारक बनाये गये थे, इसको मैं जान नहीं सका। इसके सम्बन्ध मे न तो इतिहास से कुछ पता चलता है और न कुछ जनश्रुति के द्वारा ही मालूम होता है। राजधानी के पूर्व और उत्तर-पूर्व की तरफ प्रकृति ने एक ऐसा घेरा बना दिया है, जो राजधानी के लिये किसी सुदृढ़ दुर्ग से कम नहीं है। वहाँ पर नगर के बहुत से लोग घूमने, विश्राम करने और प्राकृतिक शोभा का दर्शन करने के लिए प्राय: जाया करते हैं।

हम लोग जिस रास्ते से होकर ऊपर चढ़कर गये थे, उसी रास्ते से होकर हम लोग पंचकुंड की तरफ आगे बढ़े। रास्ते में अनेक प्रकार के मनोहर दृश्य देखने को मिले। उनमे प्राचीन काल के बने हुए पुराने महलो के भी कुछ स्थान थे। उस मार्ग के नीचे के भाग मे दो सिहद्वार हैं। वहाँ अच्छे जल का एक जलाशय भी है। उन सिंहद्वारो मे एक से होकर आगे चलने पर विस्तृत जंगल दिखायी देता है और वहाँ के लम्बे-चौड़े मैदान में अनेक महल देखने को मिलते हैं। दूसरे सिंहद्वार से होकर चलने पर वह स्थान मिलता है, जहाँ पर मारवाड़ राज्य के शूरवीर राठौरो की प्रस्तर प्रतिमायें स्थापित हैं।

वहाँ के इन सभी रमणीक दृश्यो को देखकर मन मे अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। मैं वहाँ पर कुछ देर के लिये रुककर कितनी ही बातों को सोचने लगा। मैंने वहाँ पर एक गुफा के भीतर मण्डोर के प्रसिद्ध राजा नाहरराव के स्मारक में बनी हुई एक वेदी को देखा। नाहरराव अरावली पर्वत के भयानक स्थान पर चौहानों के साथ युद्ध करते हुए मारा गया था। चन्द कवि ने नाहरराव की श्रेष्ठता और वीरता पर बहुत-सी कवितायें लिखी हैं और उन कविताओ मे कवि ने उसकी बड़ी प्रशसा की है।

नाहरराव के स्मारक की देखभाल और उसके दूसरे कार्यो के लिये एक नाई रखा गया है। जो निरन्तर वहाँ पर रहकर अपना कार्य करता है। उस स्मारक का कोई भी कार्य नाई को क्यो सौपा गया, इसको मैं समझ नहीं सका। मैं इस प्रश्न को बड़ी देर तक सुलझाता रहा। इसके सबंध में जो उलझन मनोभावो मे थी, उसको सुलझाने के लिये मुझे कोई साधन नहीं मिला। इसलिये मुझे यह समझकर सन्तोष कर लेना पड़ा कि नाई लोग राजपूतों के यहाँ घरों का सभी कार्य करते हैं। कदाचित् इसीलिये इस स्मारक के कामों को करने के लिये नाई नियुक्त किया गया है। यह तो मेरे मस्तिष्क की उपज है। परन्तु इसका और कारण क्या है इसको न कोई जानता है और न मुझे कोई बताने वाला मिल सका।

यहाँ पर एक मन्दिर बना हुआ है, इस मन्दिर मे नौ मूर्तियाँ हैं। यहाँ के लोगो का कहना है कि लका से आकर रावण ने मण्डोर के राजा की लड़की के साथ विवाह किया था।

उन्हीं दिनों में यह मन्दिर बना था और ये मूर्तियाँ इस मन्दिर में स्थापित की गयी थीं। नागदा नाम की जो यहां पर एक छोटी सी नदी बहती है, उसके सम्बन्ध में भी यहाँ पर एक जनश्रुति है। लेकिन यहॉ के लोग उस श्रुति को बड़े विस्तार में कहते हें इसीलिए वह लिखी नहीं जा सकती। यहॉ पर एक झरना है, उसके पास ही पृथ्वीराज और उसकी स्त्री ताराबाई का स्मारक बना हुआ है।

उस मार्ग से कुछ दूरी पर चलने से एक विस्तृत मैदान मिलता है। उस मैदान को चारों ओर से घेरे हुए एक मजबूत दीवार बनी हुई है। हम लोग जब उस विस्तृत मैदान में पहुॅचे तो पहाड के ऊपर एक विशाल कमरा दिखाई पड़ा। जैनियों के मन्दिर की तरह उस कमरे में बहुत-से स्तम्भ बने हुए हैं और उन स्तम्भों के ऊपर कमरे की मजबूत छत बनी हुई है। उस कमरे के भीतर मारवाड़ शूरवीर राजाओं की प्रतिमायें लगी हुई हैं। प्रत्येक मूर्ति अपने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित और घोड़े पर चढ़ी हुई वनवाई गयी हैं। इन मूर्तियों की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि वे पत्थरों को काटकर बनवायी गयी हैं। उनकी ऊॅचाई एक मनुष्य की ऊॅचाई से कुछ अधिक है।

इन मूर्तियों को बनाने में यद्यपि किसी प्रकार की कारीगरी से काम नही लिया गया। परन्तु उनमें वीरता का भाव है। उनको देखने से साहस, तेज और शोर्य का सहज ही आभास होता है। इन वीरों के मूर्तियो के साथ एक बात और है। उन राजाओं के जो प्रिय ओर विश्वासी सामन्त थे, उनकी मूर्तियॉ भी उनके साथ ही रखीं हें। प्रत्येक सामन्त के हाथ में तलवार और ढाल है। उसकी पीठ पर धनुप-बाण और कटार लटक रही है। ये सभी मूर्तियाँ देखने में सुन्दर मालूम होती हैं। जिन शूरवीरों की ये प्रतिमायें हैं, उनकी शरीर का गठन कैसा था, इस बात को मैं नहीं जानता। सम्भव है, वे राजा और सामन्त इसी प्रकार सुगठित शरीर के रहे हों अथवा मूर्ति-निर्माताओ ने अपनी इच्छा से इन मूर्तियों को यथाशक्ति सुन्दर और आकर्पक बनाया हो। इसमे सही क्या है, मैं नहीं जानता।

उस कमरे में प्रवेश करते ही सबसे पहले गणेश जी की मूर्ति दिखायी देती है। उस मूर्ति के पास रणदेव के दो पुत्रो की मूर्तियॉ है और वे गणेश जी की मूर्ति के दोनो तरफ स्थापित हैं। इन दोनो मूर्तियो में प्रत्येक का नाम भीरू है। गणेश जी की मूर्ति के आगे चण्डमण्ड और कङ्कालो देवी की मूर्तियॉ हैं। काली देवी की मूर्ति भी वहॉ पर स्थापित है। वह मूर्ति भयङ्कर काली और उसका एक पैर महिपासुर की छाती पर और दूसरा पेर सिंह की पीठ पर है। काली देवी की मूर्ति अपने दोनो हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिये है। वहॉ पर कुछ और भी मूर्तियॉ है और उनमें एक मूर्ति राठौरों के गुरुदेव नाथ जी की है। नाथ जी के एक हाथ में माला और दूसरे हाथ मे धर्मदण्ड है।

घोडे पर चढ़े हुए मल्लीनाथ की मूर्ति भी वहॉ पर दिखायी देती है। उसके एक हाथ में भाला है और तरकस घोड़े के पीछे लटक रहा है। उसकी स्त्री पद्मावती भोजन से भरे हुए पात्र को हाथ मे लेकर मल्लीनाथ के युद्ध क्षेत्र से लौटने की प्रतीक्षा कर रही है। मल्लीनाथ जब युद्ध मे मारा जाता है तो उसकी पत्नी पद्मावती अपने पति क शव के साथ चिता में बैठकर जल जाती है।

ऊपर जिन मूर्तियों का उल्लेख किया गया है, उनके सिवा कृष्ण काली की प्रतिमा भी है, वह घोड़े पर सवार है। इस प्रतिमा को यहाँ के लोग प्रभु जी की प्रतिमा कहते हैं। मारवाड के बहुत से कवियो ने प्रभु जी की प्रशसा मे कवितायें लिखी हें ओर वे समय-समय पर अपने प्रभु जी की कविताओं को गा-गा कर सुनाया करते हैं। इससे उन कवियों को वडी प्रशंसा मिलती है। अनेक चित्रकार प्रभु जी का चित्र बनाकर मारवाड़ के देहातो मे रहने वाले लोगो को दिखाते हं ओर ग्रामीण लोग भक्ति भावना से प्रेरित होकर चित्र दिखाने वालो को दान में धन देते हैं।

प्रभु की मूर्ति के पीछे प्रसिद्ध वीर रामदेव की प्रतिमा हे। रामदेव के सम्मान में राजस्थान के प्रत्येक ग्राम मे पूजा करने की वेदी का निर्माण किया गया है। सम्पूर्ण राजस्थान मे रामदेव राठोर को बडी ख्याति मिली थी और आज तक राजस्थानी लोग उस पर अपनी आस्था रखते हैं।

इसके पश्चात् मैंने हड़बू सांखला की मूर्ति देखी। वह अत्यन्त स्वाभिमानी था ओर जिन दिनो मे जोधा अपने राज्य से निर्वासित होकर दिन व्यतीत कर रहा था। हडबू सांखला ने उन दिनो मे उनकी बडी सहायता की थी। चित्तौड के राणा का मण्डोर पर अधिकार हो जाने पर उसने उद्धार के लिए बड़ा प्रयत्न किया था। उसकी प्रतिमा भी मैंने यहाँ पर देखी।

आगे बढने पर मैंने प्रसिद्ध गोगा चोहानों की प्रतिमा देखी। सुलतान महमूद के भारतवर्ष में आक्रमण करने पर स्वाभिमानी ओर शूरवीर गोगा चौहान ने उसकी विशाल सेना के साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में अपने सैंतालिस पुत्रों के साथ स्वाधीनता की रक्षा करते हुए गोगा चोहान मारा गया था। यह युद्ध शतद्र नदी के निकट हुआ था। मैंने गोगा की प्रतिमा को सम्मान पूर्वक कुछ देर तक देखा। सब के अन्त में गहिलोत राजपूत मधुमङ्गल नामक प्रसिद्ध सूरमा की प्रतिमा को मैंने देखा।

इन समस्त शूरवीरो की प्रतिमाओ को देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। वहां की प्रत्येक प्रतिमा का दर्शन मानो मेरे शरीर मे शक्ति की बिजली दोड़ा रहा था। बडी गम्भीरता के साथ मैं इन प्रतिमाओं को देखता रहा। प्रत्येक मूर्ति के साथ उसके जीवन का जो इतिहास है, वह मेरी ऑखों के सामने घूम रहा था। इन शूरवीरो की मूर्तियों की स्थापना करके इस देश मे शक्ति और शौर्य कायम रखने की चेष्टा की गयी हे।

ऊपर जिस कमरे का वर्णन किया गया हे, उसके पास ही एक दूसरा कमरा है। दोनो की बनावट एक है। पहले कमरे की अपेक्षा दूसरा कमरा बडा है। "तेंतीस कोटि देवताओं का स्थान" के नाम से दूसरा कमरा प्रसिद्ध हे। इस दूसरे कमरे मे जो देवताओ की मूर्तियॉ हैं, वे सभी पत्थर की बनी हुई हें और उनके आकार कई प्रकार के हैं। छोटी और बडी आकार मे सभी प्रकार की मूर्तियॉ वहॉ पर देखने को मिलती हैं। वहॉ की कुछ मूर्तिया का यहॉ उल्लेख करना आवश्यक है। इसीलिये उनके सम्बन्ध मे नीचे लिखा जाता है।

इस कमरे में सब से पहले ब्रह्मा की मूर्ति है। भारतवर्ष के लोग ब्रह्मा को सृष्टि कर्त्ता मानते हैं। दूसरी मूर्ति सात घोडो की एक सवारी पर है। वह सूर्य की मूर्ति है। उसके पास रामचन्द्र और सीता की प्रतिमा देखने को मिलती है। उसके पश्चात् गोपियो से घिरे हुए कृष्ण

की मूर्ति है। इन सब के बाद महादेव की प्रतिमा है, वह विशाल आकार-प्रकार में है। उसके पास ही महादेव की सवारी में काम आने वाले साँड़ की प्रतिमा है। इन सब के साथ-साथ इस कमरे में लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति है।

इस बड़े कमरे में जितनी भी प्रतिमायें हैं, बहुत अच्छे पत्थरों से बनी हुई हैं और हिन्दुओं के ग्रन्थों में उनके जिस प्रकार वर्णन किए गए हैं, उसी रूप में शिल्पियों ने उनको तैयार किया है। सभी मूर्तियाँ देखने में प्रिय मालूम होती हैं।

इस बड़े कमरे और उसकी मूर्तियों को देखने के बाद मैं राजा अजित सिंह के बाग और महल को देखने गया। वह महल अत्यन्त सुन्दर और अनेक प्रकार की सुविधाओं के साथ बना हुआ है। उसकी बहुत-सी बातें अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हैं। महल के भीतर छोटे और बडे बहुत कमरे हैं। वे कमरे विभिन्न प्रकार से बने हुए हैं। सभी कमरों में स्तम्भ हैं और प्रत्येक स्तम्भ निर्माण में शिल्पियों ने अपनी अद्‌भुत योग्यता का परिचय दिया है। वे सभी स्तम्भ सुन्दरता के साथ-साथ दृढ़ता भी रखते हैं। महल में जितनी भी दीवारें हैं, उनमें बहुत श्रेष्ठ शिल्पकारी देखने को मिलती है। महल की ये सभी बातें अत्यन्त आकर्षक और प्रशंसनीय हैं।

महल के अन्त:पुर में जहॉं स्त्रियॉं रहती हैं, उन स्थानों में अत्यन्त बारीक बुनावट के कपड़े के बने हुए परदे पड़े हुए हैं। इन परदों का कदाचित् उद्देश्य यह है कि महल में आने वाला कोई बाहरी व्यक्ति उन स्त्रियों को देख न सके। इसके साथ ही महल के अन्त:पुर का भाग अत्यन्त रमणीक बना हुआ है। उस सम्बन्ध में अगर यह कहा जाये कि सम्पूर्ण महल में अन्त:पुर का भाग सबसे अधिक अच्छा है तो अतिशयोक्ति न होगी।

राजा अजितसिंह का बाग अधिक बड़ा नहीं है। लेकिन वह जिस दीवार से घिरा हुआ है, वह दीवार बहुत मजबूत बनी हुई है। बाग गरमी के दिनों में भी बहुत शीतल रहता है। वहॉं पर अनेक प्रकार के जलाशय हैं और कृत्रिम झरनों से बराबर पानी निकला करता है। इस प्रकार जलाशयों और झरनों के कारण वह बाग गर्मियों में भी शीतल और विश्राम के लिये बहुत अच्छा रहता है। राजा अजितसिंह का यह बाग अपनी बहुत सी अच्छाइयों के लिये प्रसिद्ध है। यहॉं पर उसकी कुछ बातों का जिक्र करना आवश्यक जान पडता है।

इस बाग में अनेक प्रकार के वृक्ष हैं और वे सभी फल देने वाले हैं। कुछ ऐसे वृक्ष भी हैं, जो देखने में बहुत बड़े हैं। परन्तु उनके फलों की कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। छोटे वृक्षों में स्वर्ण चम्पक नाम के कुछ पेड़ हैं, जिसकी सुगन्धि बहुत तीव्र और असह्य होती है। यदि उसके फूलों को लेटने के पलंग पर रखकर सोया जाये तो उसकी तेज सुगन्ध से मस्तक मे पीडा होने लगती है।

इस बाग में अनार के बहुत से वृक्ष हैं। उनके साथ-साथ सीताफल के भी अनेक वृक्ष यहॉं पर पाये जाते हैं। यहॉं पर बहुत से वृक्ष केले के हैं। इन पेडों के बड़े-बड़े पत्तों के हिलने से शीतल वायु मिलती है। मोगरा, चमेली और रातरानी के फूलों की सुगन्धि से बाग सदा सुहावना बना रहता है। फूल वाले वृक्षों में बारह मासा नाम के कुछ पेड यहाँ पाये जाते हैं। यह वृक्ष वर्ष के बारह महीनो में बराबर खिला करता है। इसीलिये इस वृक्ष को बारह मासा

का पेड़ कहा जाता है। इन पेड़ों से जो फूल खिलते हैं, उनसे बाग हमेशा शोभायमान रहता है। यह बाग मुझे बहुत प्रिय मालूम हुआ और उसमें कुछ देर तक विश्राम करने से मुझे बड़ा सुख मिला।

इस बाग की अनेक चीजे सुन्दर, आकर्षक, शोभायमान और उपयोगी है। मण्डोर की राजधानी में खोज और अनुसन्धान के लिये आया हुआ एक अंग्रेज अपनी थकावट के समय इस बाग में पहुॅच कर किस प्रकार शान्ति और सुख का अनुभव करता है, समझदार पाठक इसका अनुमान लगा सकेंगे। वह अपने अनुसन्धान के कार्य में लगा हुआ है। उसके नेत्रों के सामने आम के बड़े-बडे वृक्ष खडे है। पास ही तिन्दू का एक विशाल वृक्ष है। कहा जाता है कि परिहार राजपूतो के अंतिम राजा नाहरराव के सामने अपने इन्द्रजाल का प्रदर्शन करते हुए किसी एक ऐन्द्रजालिक ने इस वृक्ष के अस्तित्व को कायम किया था। यह भी कहा जाता है कि इस वृक्ष की शाखा से गिरने के कारण उस ऐन्द्रजालिम की मृत्यु हो गयी थी।* इस वृक्ष की लम्बी डालियो पर बन्दर निर्भीकता के साथ चढते और उन पर कूदते एवम् विहार करते हैं। उस वृक्ष के पास जाकर मैंने देखा कि उसके नीचे दो राठोर राजपूत सोये हुए है और पास ही, उनके दोनो घोडे बॅधे हैं।

मण्डोर के पास जो पर्वत है, उसमे बहुत सी गुफायें हैं। उन गुफाओ में तपस्वी और सन्यासी लोग रहा करते हैं। उनके सम्बन्ध मे मैंने लोगो से अनेक प्रकार की बातें सुनी। ये गुफाये अत्यन्त सकीर्ण और इतने छोटे स्थानों में बनी हुई है कि उनमे किसी प्रकार वायु नहीं पहुॅच सकती। मुझे इन बातों को सुनकर बहुत आश्चर्य मालूम हुआ कि उनमे रहने वाले तपस्वी और सन्यासी लोग बिना वायु के किस प्रकार जीवित रहते हैं। सायंकाल हो जाने के कारण अपने मुकाम पर लौट आने का समय हो चुका था। इसलिये वहॉ से लौटने के पहले मं उस स्थान पर फिर गया, जहॉ पर मारवाड के शूरवीरो की प्रतिमायें हैं। उन सबके सामने खडे होकर मैने श्रद्धापूर्वक उन प्रतिमाओ के दर्शन किये और फिर उनको प्रणाम करके मे अपने मुकाम पर लौट आया।

13 नवम्बर-राजा मानसिंह ने अपने महल मे आज भोजन करने के लिये मुझे आमन्त्रित किया था। इसलिये अपनी नई पोशाक में मै राजपूत राजा का आतिथ्य प्राप्त करने के लिये गया। राजा ने मुझसे एक अनुरोध किया था, वह अनुरोध कुछ अजीब-सा था। राजा ने अपने महल में भोजन तैयार करने के लिए मेरे खानसामा को इसलिये बुलाया था कि मुझे देशी भोजन पसन्द नही आयेगा और उससे मेरा न तो पेट भरेगा और न मै सन्तुष्ट हो सकूॅगा। सिन्धिया ने कैम्प में यह जरूर कहा था कि महाराष्ट्रीय भोजन के साथ-साथ मै अपने देश का भोजन किया करता था। लेकिन राजा मानसिह के यहॉ मुझे अपने देश के भोजन की जरूरत नही थी। इसलिये राजा मानसिह के पास मैने कहला भेजा कि आपके महल मे मै केवल जोधपुर का ही भोजन करूॅगा और उससे मै पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो सकूॅगा।

---

* बादशाह जहॉगीर ने अपनी आत्म कथा लिखी थी। उस पुस्तक में जहॉगीर की जीवनी थी। उसका अनुवाद विद्वान मेजर प्राइस साहब ने किया है। जिन लोगो ने उस ग्रन्थ को पढ़ा है। वे जानते होगे कि ऐन्द्रजालिक लोग अपने इन्द्रजाल से बड़े-बडे अद्‌भुत कार्य करके दिखलाते हैं और बात की बात में किसी पेड़ मे फल पैदा करके लोगों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।

इसके साथ ही मंने यह जरूर किया कि अपने यहाँ की टेवुल-कुर्सी और अपने पीने की शराव मैंने राजा मानसिंह के महल में भेज दी। मेरे महल में पहुँचने पर राजा ने वड़े सम्मान के साथ मुझे ग्रहण किया और भोजन करने के लिए वह मुझे लेकर महल के भीतर की तरफ चला। भोजन-घर में पहुँचकर मैंने देखा कि पुलाव, मॉस और मिष्ठान खाने की वहुत-सी चीजें तैयार करायी गयी हैं। मेरे पहुँचने पर भोजन की वे सभी चीजें चाँदी के पात्रों मे परोसी गयीं। उन चीजों को देखकर यह आभास होता था कि वे सभी स्वादिष्ट और खाने में वहुत अच्छी होगी। शिखर के उत्तरी भाग में भोजन-घर वना हुआ था और उसका नाम मान महल रखा गया हे। राज दरवार की तरह इस मान महल में भी वहुत से स्तम्भ वने हुए हैं। मुझे मालूम हुआ कि शीतकाल के आने पर वहाँ से अस्सी मील दूर कमलमीर के दुर्ग का ऊपरी भाग दिखायी देता है।

16 नवम्बर-आज का दिन राजा मानसिंह से भेंट करने के लिए पहले से ही निश्चित हो चुका था। राजा मानसिंह ने मेरे कैम्प के पास ही अपना कैम्प भी लगाया था। उसका खेमा वहुत लम्बा चौड़ा और लाल रंग का था। वह देखने में एक महल की तरह विशाल और वड़ा था। उसके चारों तरफ कपड़े की एक दीवार सी वनी हुई थी और उसके वीचो वीच राज-सिंहासन रखा था। उस राज-सिंहासन के ऊपर छत्र लगाया गया। दोपहर के वाद लगभग तीसरे पहर महल और दुर्ग मे एक साथ जोर का कोलाहल मचा। नगाड़े के वजने की जोरदार आवाजें कानों मे आने लगी। राज्य की तरफ से मुनादी की गयी थी कि आज महाराज फिरंगी वकील से मुलाकात करने जायेगे।"

जव मुझे मालूम हुआ कि मुलाकात करने के लिये राजा अपने पूरे वैभव के साथ आ रहा हे तो मैं भी अपने आदमियो के साथ राजा से भेंट करने के लिए तैयार हुआ और अपने घोड़े पर चढ़कर मैं आगे की तरफ वढ़ा। कुछ दूर मार्ग में जाकर मैंने राजा मानसिंह से मुलाकात की और कुशल समाचार उससे पूछकर में अपने मुकाम पर लौट आया।

इसके वाद अपने मुकाम पर राजा के आने पर मैंने अत्यनत सम्मान के साथ उससे मुलाकात की। राजा के आने पर मेरे साथ के सैनिकों ने अपने हथियारों को नीचा करके उसके प्रति सम्मान प्रकट किया। यह देखकर राजा को वडी प्रसन्नता हुई। राजा मानसिंह ने एक घंटे तक मेरे यहाँ वैठकर वातें की। इसके वाद जव वह लौटकर जाने के लिये तैयार हुआ तो मेने हीरे और रत्नों के आभूपण, सुनहले काम के वस्त्र, वहुमूल्य शाल और कीमती चीजें एवम् उन्नीस ढाले राजा को भेट में दीं। इनके साथ-साथ इंगलैंड के वने हुए कुछ हथियार, एक दूरवीन और कुछ दूसरी चीजें भी मैंने उसको उपहार में दीं। भेंट की इन चीजों के साथ-साथ मैंने एक सजा हुआ हाथी और एक घोड़ा भी राजा को दिया। अपने यहाँ से विदा करते समय मैंने वड़े सम्मान के साथ उसको सलाम किया और उसने मुझसे हाथ मिलाया।

17 नवम्बर- मारवाड से आज मेरे विदा होने का दिन था। इसलिये मैं राजा मानसिंह के पास गया। इस अन्तिम मुलाकात में राजा के साथ वहुत देर तक मेरी वातें होती रहीं। वातचीत करते हुए मैंने राजा को विश्वास दिलाया कि आप अपने पुरुपार्थ, विक्रम और चरित्र वल से अपनी समस्त कठिनाईयो पर विजय प्राप्त करेंगे। राजा मानसिंह ने अपनी जिन परिस्थितियों

का जिक्र मुझ से किया, उनका उत्तर देते हुए मैंने कहा कि जिन लोगों ने आपके और आपके राज्य के साथ विश्वासघात किया है और आपके उन्माद के दिनों में अनैतिक लाभ उठाया है, उनको दण्ड देना पड़ेगा। उसके लिये सदा आपको तैयार रहना चाहिये। यह आपका कर्त्तव्य है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। आपने यही किया भी है और आवश्यकता के अनुसार भविष्य मे भी आपको यही करना पड़ेगा। शासक मे यह सभी गुण होने की जरूरत है। शासक साधु और महात्मा नही होता। सफल शासन के लिये इस प्रकार के उन सभी गुणो की जरूरत होती है, जो उसके शासन को कायम रख सके। आप में इस प्रकार की योग्यता और प्रतिभा है, इस बात को मै भली प्रकार जानता हूँ।

मारवाड़ के अतीत और वर्तमान परिस्थितियों के सम्वन्ध में मेंने राजा मानसिंह से सभी प्रकार की बातें की और अपनी उन बातो में मैंने उससे कहा : "जिसका हृदय निर्वल होता है, वह शासन नहीं कर सकता और ऐसे व्यक्ति के शासन मे अनाधिकारी,अयोग्य तथा गैर-जिम्मेदार लोग नाजायज लाभ उठाते हैं। आपके शासन काल में ऐसा समय वीत चुका है और उस समय अनेक लोगों ने ऐसा ही किया है। आपने अपनी इन परिस्थितियों को पूर्ण रूप से समझा है और विश्वासघातियो, अत्याचारियो और विरोधियो को उचित दण्ड दिया हैं। आपके लिये ऐसा करना जरूरी था। मेरा विश्वास है कि वह समय अब आ गया है, जब आप मारवाड़ राज्य मे सफलता पूर्वक शासन करेगे और आपके शासन मे अंग्रेजी सरकार आपकी सहायता करेगी।"

विदा होने के सयम राजा मानसिह ने अपने पूर्वजों की एक तलवार, एक कटार और एक ढाल मुझे दी। वह तलवार अगणित शत्रुओ का अब तक संहार कर चुकी थी और भविष्य मे भी वह ऐसा ही करती रहेगी।

बहुत देर तक बाते करने के बाद और राजा के दिये हुए उपहार को स्वीकार करने के बाद मैने राजा मानसिंह और मारवाड़ की राजधानी जोधपुर को सम्मानपूर्वक नमस्कार किया। इसके बाद राजा की तरफ देखता हुआ मै उससे विदा हुआ। रवाना होने के पहले पत्र-व्यवहार करने के लिये मैने राजा से अनुरोध किया था, वह आरम्भ हुआ। लेकिन थोडे समय के बाद वह बन्द हो गया।

□

अध्याय-73
राजा अजीतसिंह की हत्या

19 नवम्बर–यहाँ से छः मील की दूरी पर बसे हुए नान्दला स्थान के लिए हम लोग रवाना हुये। राजधानी छोड़ते ही हमको दो मील का रास्ता भयानक बालू से भरा हुआ मिला। इस रास्ते में चलने वालों को जो असुविधा और कठिनाई मालूम होती है, उसे भली प्रकार हम लोगों ने अनुभव की। राजधानी से दो मील तक निकल आने के बाद का रास्ता बदल गया। उसमें लाल रंग के पत्थर इस प्रकार उभरे हुए थे कि चलने मे यात्रियों को बालुकामय भूमि की अपेक्षा बहुत कुछ आराम मिलता था।

लगभग आधा रास्ता हमने पानी और कीचड़ से भरा हुआ पार किया। यह पानी उस जलाशय से आता था, जिसको मारवाड़ के राजसिंहासन के अभिलाषी धौंकल सिंह की माता शिखावती ने बनवाया था। यह एक छोटा सा सरोवर था। रानी शिखावती के नाम से उसका नाम शेखावती तालाब रखा गया था। रानी शिखावती ने शेखावती तालाब के पास एक धर्मशाला बनवायी थी। उसमें उसने हनुमान जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। वहाँ पर रानी के नाम का एक पत्थर लगा हुआ है।

झालामन्ड से जोधपुर राजधानी जाते समय हमने जोगिनी नाम की नदी को पार किया था। वह नदी मण्डोर के करीब नागदा नदी के साथ मिल कर लूनी नदी में गिरती है। हम जहाँ पर पहुँचे थे, वहाँ पर हमने फिर नदी को पार किया। नदी के किनारे से कुछ दूरी पर कुछ कुए बने हुए हैं। उन्ही कुओं का पानी उस ग्राम के रहने वाले अपने काम में लाते हैं। वहाँ पर हमे दो कुए देखने को मिले। उनमें काफी जल है। लेकिन साफ नही है। उन कुओं की गहराई पृथ्वी की सतह से लगभग चार फुट है। नान्दल ग्राम में एक सौ पच्चीस घरो की आबादी है और यहाँ पर आहोर के सामन्त का अधिकार है। यहां पर एक सूखा तालाब भी है। उसमें जल बिलकुल नहीं है। उसके करीब कुछ स्मारक बने हुए हैं। मैंने उन स्मारको के पास जाकर देखा। जिसका जो स्मारक था, उस पर उसका नाम लिखा हुआ है। उन नामों से जाहिर होता है कि ये स्मारक प्रसिद्ध व्यक्तियों के नही हैं। फिर भी मैं उन स्मारकों को बडी देर तक देखता रहा।

नान्दल से लगभग बारह मील की दूरी पर बीसलपुर नामक ग्राम है। यह रास्ता भी गहरी बालू से भरा हुआ है। एक ऊँची भूमि के ऊपर बीसलपुर ग्राम की बस्ती है। उस ग्राम मे जितने भी घर हैं, करीब-करीब एक से बने हुए है। घरों की दीवारों पर भूसी से मिली हुई मिट्टी ऐसे ढंग से लगी हुई है, जो देखने मे बड़ी अच्छी मालूम होती है।

इन्दुरा ग्राम की तरह बीसलपुर भी मजबूत और कॉटेदार कोट से घिरा हुआ है। यहाँ की बहुत-सी बातों को देखने से मालूम होता है कि यह ग्राम पहले कभी एक अच्छा

नगर था। कहा जाता है कि भूकम्प के आने से यह ग्राम बिलकुल नष्ट हो गया था। उसके बाद यहाँ की हालत सुधर नही सकी। इसीलिये वह आज तक एक साधारण ग्राम के रूप मे दिखायी देता है। इस ग्राम में इस समय भी गिरी हुई दशा मे जो फाटक देखने को मिलता है, उससे भी जाहिर होता है कि यह ग्राम पहले किसी समय एक कस्बा अथवा नगर की मर्यादा में था। इसके समर्थन में और भी अनेक प्रमाण यहाँ पर देखने को मिलते हैं। इस ग्राम का कोट यद्यपि इन दिनों में बहुत कुछ नष्ट हो गया है, परन्तु फिर भी वह इस ग्राम की प्राचीन विशालता का प्रमाण देता है। यहाँ पर खुदा हुआ कोई पत्थर हमको नहीं मिला। इस ग्राम के निवासी अपने काम के लिये निकटवर्ती एक तालाब से पानी लाते है।

21 नवम्बर-बीसलपुर से दस मील की दूरी पर पाँचकुल्ला अथवा बिचकुल्ला नामक एक ग्राम है। वहाँ पहुँच कर चुरी नामक नदी की दूसरी तरफ हम लोगों ने मुकाम किया। यहाँ की मिट्टी हमें बड़ी अच्छी मालूम हुई। वह बालू की तरह लाल रंग की है। नदी के किनारे के खेतों में जो अनाज पैदा होता है, उसमें गेहूँ और जौ की पैदावार अच्छी होती है। यहाँ की जमीन मे बबूल और नीम के एक-दो वृक्ष भी दिखायी पड़े।

इस ग्राम में आजकल सौ घरो से अधिक की बस्ती नहीं है। लेकिन पहले यह ग्राम बहुत सम्पन्न अवस्था मे था। यहॉ के पुराने आदमी इस ग्राम की समृद्ध अवस्था की तारीफ करते हुए बहुत-सी बातों का वर्णन करते है। मैंने उनको ध्यानपूर्वक सुना। यहाँ पर मुझे शिलालेख का एक टुकड़ा मिला। उसमे सिर्फ 'सोनङ्ग का लड़का 1224 सम्वत्' लिखा है। लुटेरे पठानों ने आक्रमण करके इस ग्राम को सभी प्रकार नष्ट कर दिया है। भाटी सामन्त की जीविका के रूप मे यह ग्राम राज्य की तरफ से दिया गया है। नदी के किनारे से कुछ फासले पर जो कुए बने हुए हैं, अपने काम के लिये इस ग्राम के रहने वाले उन्हीं से जल लाते हैं।

22 नवम्बर-यहॉ से आठ मील की दूरी पर पीपल्या नगर बसा हुआ है। बालू से भरी हुई वहॉ की जमीन काली है। वहॉ के लोग उसे धामुनी कहते हैं। पीपल्या नगर मे लगभग डेढ सौ मकानों की आबादी है। यहॉ पर जो लोग रहते हैं, उनमे एक तिहाई लोग जैन सम्प्रदाय को मानने वाले हैं। इस इलाके में प्रमुख रूप से ओसवाल जाति के लोग व्यवसाय करते हैं। यहाँ पर दो सौ माहेश्वरी वैश्य भी रहते हैं और वे शैव धर्मावलम्बी हैं।

यहॉ का व्यवसाय बहुत अच्छा है। पीपल्या नगर के बने हुए छींट के कपडे बहुत पसन्द किये जाते हैं और वह बड़ी मात्रा में तैयार भी होता है। इसका अनुमान केवल इसी बात से किया जा सकता है कि तीन सौ से अधिक व्यवसायी केवल यहॉ की छींट का ही व्यवसाय करते हैं। पीपल्या नगर का व्यवसाय छींट के कपड़े तक ही सीमित नहीं है। यहॉ पर और भी कई चीजो का व्यवसाय होता है।

निमाज के सामन्त की मृत्यु का वर्णन पहले किया जा चुका है। यह पीपल्या नगर उसी के इलाके का एक हिस्सा है। निमाज के सामन्त के एक प्रतिष्ठित पूर्वज का एक स्मारक यहां बना हुआ था। आक्रमणकारी मराठो ने उसका एक बड़ा हिस्सा नष्ट कर दिया है। मारवाड़ के इतिहास को पढ़ने से मालूम होता है कि ईसा मसीह के बहुत पहले परमार वंश के राजा गन्धर्व सेन ने पीपल्या नगर को बसाया था। यहॉ पर लम्क्षी देवी का एक मन्दिर है। उसमें मुझे

एक शिलालेख मिला। उसमें गहलोत वंश के रावल विजय सिंह और दैलझी राजपूत के नाम खुदे हुये हैं। यह शिलालेख मेवाड़ के इतिहास की कुछ बातों का समर्थन करता है। गहलोत वंशी राजपूत चौबीस भागों मे विभाजित हैं, उस विभाजन के अनुसार उनकी चौबीस शाखायें मानी जाती हैं और उनमें पिपलिया नाम की एक शाखा है। पिपलिया लोगों के अधिकार करने के बाद इस स्थान का नाम पीपल्या नगर पडा है। इस शिलालेख से भी इस बात का समर्थन होता है।

पीपल्या नगर में बहुत-से कुए और उनकी गहराई साठ फुट से लेकर अस्सी फुट तक है। यहाँ पर एक बडा तालाब है और उसका नाम है साँपू सरोवर। इस सरोवर का पानी बहुत साफ है। इस सरोवर के सम्बन्ध में एक जनश्रुति मुझे सुनने को मिली है। कहा जाता है कि पाली वंश का पीपा नामक एक ब्राह्मण था। वह इस सरोवर के पास रहने वाले एक सर्प को रोजाना दूध पिलाया करता था। वह सर्प तक्षक जातीय था। वह साँप उस ब्राह्मण के दूध को पीकर रोजाना सोने के दो टुकड़े उसको दिया करता था।

पीपा ब्राह्मण इससे बहुत खुश रहा करता था। कुछ दिनों के बाद अपने नगर से बाहर जाने के लिए उसे विवश होना पड़ा। उस दशा में उस ब्राह्मण ने अपने लड़के को सब बातें समझाई और अपने स्थान पर उस साँप को दूध पिलाने का कार्य सौंप कर वह ब्राह्मण अपने नगर से बाहर चला गया। जाने से पहले ब्राह्मण ने दूध पिलाने के सम्बन्ध में सभी बातें भली प्रकार समझाई थीं। लेकिन उसके चले जाने पर उसका लडका सोचने लगा कि अगर मैं इस साँप को मार डालूँ तो इसके पास जितना सोना है, सब का सब मुझे एक साथ मिल जाएगा।

ब्राह्मण के लड़के ने बहुत कुछ सोच-समझ कर उस साँप के पास का सम्पूर्ण सोना एक साथ लेने की कोशिश की। अपने पिता के बताने के अनुसार वह दूध लेकर साँप को पिलाने गया और वह साँप जैसे ही पास आकर दूध पीने लगा, ब्राह्मण के लडके ने बड़ी तेजी के साथ उस के सिर पर एक लाठी मारी। उस साँप के चोट तो लगी, लेकिन वह मरा नहीं। साँप तेजी के साथ भाग कर अपने बिल मे घुस गया। यह देख कर ब्राह्मण का लडका चिन्तित हुआ और वहाँ से लौटकर घर आने पर उसने अपनी माता से वह घटना बतायी। उसे सुनकर उसकी माता भी चिन्तित हो उठी।

ब्राह्मणी यह सोच कर घबराने लगी कि हमारे लड़के से चोट खाने के बाद भी वह साँप मरा नहीं है। इसलिये वह साँप बदला लेगा और इससे मेरे लड़के के लिये एक खतरा पैदा हो गया। उसने बहुत पहले न जाने कितने लोगों से सुन रखा था कि साँप अगर चोट खाकर बच जाये तो वह बदला लेता है। इस विश्वास के अनुसार उसने सोच-समझ कर यह निश्चय किया कि कल सवेरा होते ही अपने लड़के को उसके पिता के पास भेज दूँगी। इसके लिये उसने एक बैल और साथ में जाने वाले एक आदमी का प्रबन्ध कर लिया। चिन्ता और भय के मारे ब्राह्मणी को रात में नींद नहीं आयी। प्रातःकाल होते ही वह अपने लडके को जगाने के लिये उस स्थान पर गयी, जहाँ पर उसका लड़का रात को सोया था।

ब्राह्मणी के मनोभावों में भय और चिन्ता तो थी ही। उसने वहाँ पहुँचते ही देखा कि वहाँ पर उसका लडका नहीं है और उसके स्थान पर साँप सो रहा है। यह देखते ही उसकी

घबराहट का ठिकाना न रहा। उसी समय नागौर गया हुआ उसका पति लौट कर आ गया। उसने अपनी स्त्री से पूरी घटना सुनी। उसने बुद्धिमानी से काम लिया और सॉप को मारने के बजाय पहले की तरह उसने दूध पिलाना आरम्भ किया। ब्राह्मण की इस भक्ति से प्रसन्न होकर सॉप अपने अधिकार का समस्त सोना निकाल कर ब्राह्मण के पास लाया और उसे दिखाकर सॉप ने कहा : "यह समस्त सोना आज मैं तुमको सौंपता हूँ। तुम आज से इसके मालिक हो। लेकिन इसे पाकर तुम कोई ऐसा कार्य करना, जिससे मेरा कोई स्मारक बन सके।"

सॉप के दिये हुए समस्त सोने को लेकर पीपा ब्राह्मण ने अपने अधिकार में किया और उस सम्पत्ति से सॉप के स्मारक में उसने "सॉपू सरोवर" नामक एक बड़ा तालाब बनवाया। इस सरोवर के सम्बन्ध में पीपल नगर के लोग इस प्रकार की कथा कहा करते हैं। उन्हीं के द्वारा मैंने भी इस फैली हुई जनश्रुति को सुना।

पीपल्या नगर में एक कुण्ड है। उस कुण्ड का नाम लक्षफुलानी है। अत्यन्त प्राचीन काल में मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत फुलैरा नामक एक स्थान था और उसमें लक्षफुलानी का अधिकार था। लोगो का कहना है कि बहुत पहले लक्षफुलानी को बड़ी ख्याति मिली थी और समुद्र के करीब तक उसने अपने राज्य का विस्तार किया था। लूनी नदी से सिन्धु तक यात्रा करने के दिनों में मैंने बहुत से स्थानों पर लक्षफुलानी का नाम सुना है।*

23 नवम्बर– पीपल्या नगर से माद्रीय नामक स्थान दस मील की दूरी पर है। वहाँ जाने के लिये जो रास्ता है, वह सभी प्रकार अच्छा है। लेकिन सम्पूर्ण रास्ता सुनसान रहता है। यह ग्राम औसत दर्जे का है। न तो वह बहुत अच्छा है और न बहुत खराब है। इस ग्राम में एक तालाब है। उसका जल अच्छा है। वहॉ के निवासी उस तालाब के जल को काम में लाते हैं।

24 नवम्बर–आठ मील के फासले पर झुरुण्डा नामक गॉव बसा हुआ था । हमारे आगे का सम्पूर्ण रास्ता धीरे–धीरे बदलता जा रहा था। इसके पहले बालू के जिस मार्ग मे हमें चलना पड़ा था, वह अब बिलकुल बदल गया था। आगे का मार्ग लगातार रेतीला और पथरीला हमें मिल रहा है। मार्ग में हमें वे सभी वृक्ष मिलते रहे, जो यहॉ पर पाये जाते हैं। यह मार्ग ऊँचाई पर होने के कारण जन साधारण मे गासुरियापाल के नाम से प्रसिद्ध है और यहॉ पर एकाएक किसी शत्रु के आक्रमण का मुकाबला करने एवम् वाणिज्य कर वसूल करने के लिये राजा की सेना रहा करती है।

मेडता वंश का शक्तिशाली कुचामन का सामन्त गोपाल सिंह झुरुण्डा नामक स्थान का अधिकारी है। इस गॉव में डेढ सौ घरो की आबादी है। अन्यान्य गॉव की तरह यहॉ के कृषक भी जाट वंश के हैं। वहॉ पर बने हुए स्मारकों को मैंने देखा। उन स्मारकों में एक पर बदन सिंह का नाम खुदा हुआ है। वह कुचामन के शासक का सरदार था। मेडता के युद्ध मे

* लक्षफुलानी के सम्बन्ध में एक जनश्रुति बहुत पहले से चली आ रही है उस जनश्रुति को लोग कविता मे कहा करते हैं जो इस प्रकार है:

कुशपगढ सुरजपुरा, बासुकगढ और तक्ष।
अन्धानिगढ जगरपुरा, जो फुलगढाई लक्ष।

इस कविता से जाहिर है कि तक्षक वंशीय लक्षफुलानी के अधिकार मे कविता में वर्णित छ. नगर थे।

फ्रांसीसी सेनापति डी. वाइन के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया था। स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए जिस प्रकार वदन सिंह ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया था, उसकी स्मृति को कायम रखने के लिए यह स्मारक बनवाया गया है, जिसे देखते ही उसके जीवन का वीरोचित वलिदान मेरे नेत्रों के सामने एकाएक चित्र वनकर दिखायी देने लगा।

मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने वदन सिंह से झुरुण्डा का इलाका छीन लिया था। किस लिये छीन लिया था इसका कारण नहीं मालूम हो सका। उस दशा में वदन सिंह जयपुर राज्य मे चला गया ओर वहॉ पहुँचकर उसने वहॉ के राजा की शरण ली। जयपुर के राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया ओर राजपूत राजाओं में प्रचलित प्रथा के अनुसार उसने वदन सिंह को सम्मान पूर्ण स्थान देकर नियुक्त किया। जयपुर में वदन सिंह को कुछ नयापन नहीं मालूम हुआ। वह सम्मान पूर्वक अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगा।

वदन सिंह स्वाभिमानी राजपूत था। उसने जयपुर राज्य में रहकर थोड़े दिनों में अपनी शक्तियॉ सम्पन्न वना लीं। इन्हीं दिनों में उसकी जन्मभूमि पर मराठों का आक्रमण हुआ। वदन सिंह को उसका समाचार मिला। मराठों के इस आक्रमण को सुनकर वह चिन्तित ओर पीड़ित हो उठा। राजा विजय सिंह ने वदन सिंह को उसके अधिकार से वञ्चित किया था और वह अपनी असहाय अवस्था में जयपुर राज्य में आया था। इसलिये राजा विजयसिंह के प्रति उसकी भावनायें अच्छी न थीं। लेकिन जब उसने सुना कि मराठों ने एक विशाल सेना लेकर राजा विजयसिंह के विरुद्ध आक्रमण किया है तो वह विजयसिंह की शत्रुता का भाव भूल गया। उसके मन मे अपने पूर्वजों की मर्यादा का भाव उत्पन्न हुआ। किसी भी दशा में इस विपद के समय उसने राजा विजय सिंह की सहायता करने का निश्चय किया।

वदन सिंह ने अपने साथ चलने के लिए एक सौ पचास सैनिक सवारों को तैयार किया और उनको लेकर वह अपनी जन्मभूमि एवम् राजा विजयसिंह की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये जयपुर से रवाना हुआ। संयोगवंश वह अपने पूर्वजों के प्रदेश में पहुॅच न सका और मार्ग में ही मराठा सेना के साथ उसका मुकावला हो गया। मराठों की विशाल सेना के सामने वदनसिंह के डेढ़ सौ सवार सैनिकों की मामूली हस्ती थी। परन्तु स्वाभिमानी वदन सिंह ने इसकी कुछ भी परवाह न की ओर उसने साहसपूर्वक मराठों के साथ मार्ग में ही विना किसी तेयारी के युद्ध आरम्भ कर दिया।

राजपूत सेनिकों की संख्या वहुत थोड़ी थी। फिर भी वे सवके सब अपने हाथों में नंगी तलवारें लिये शत्रु-सेना में घुसे और कुछ समय तक उन्होने भयानक मारकाट की। लेकिन मराठा सेना के द्वारा उनका संहार हुआ। वदन सिंह के शरीर में कितने ही घाव हो गये थे। लेकिन वह किसी प्रकार अपनी जन्मभूमि पहुॅच गया। राजा विजय सिंह को इस प्रकार वदन सिह का आना ओर शत्रुओं के साथ उसका युद्ध करना मालूम हुआ तो वह वहुत प्रसन्न हुआ ओर उसने झुरुण्डा का इलाका वदन सिंह के वंशवालो को दे दिया। उसने इस वात का भी आदेश दिया कि आवश्यकता पड़ने पर इस प्रदेश की रक्षा वदनसिंह के वश के लोग ही करेंगे। झुरुण्डा की वार्षिक आमदनी सात हजार रुपये हे।

वदन सिंह के स्मारक के पास मैंने एक दूसरा स्मारक देखा। उसमें प्रताप का नाम लिखा हुआ था। प्रताप एक शूरवीर राजपूत था और अपने प्रदेश की स्वाधीनता के लिये उसने मुगल वादशाह औरंगजेव की सेना के साथ युद्ध किया था। मुगलो की सेना वहुत वडी थी। इसलिए उसके मुकावले में राजपूतों की पराजय हुई ओर युद्ध करता हुआ प्रताप मारा गया।

25 नवम्बर–यहाँ से दस मील दूरी पर इन्दुवर नामक एक ग्राम है। वहाँ पर दो सौ घरों की आवादी है। उस गाँव के सभी कृषक जाट वंश के हैं। मैंने अभी तक इन जाटों के सम्वन्ध में वहुत कम लिखा हैं। जाट लोग स्वाभाविक रूप से परिश्रमी होते हैं। उनको स्वतन्त्रता प्रिय हे। उनके शरीर मजवूत ओर बलवान होते हैं। जाट लोग कृपि कार्य को अधिक महत्व देते हैं। उनके शरीर का रंग प्राय: काला होता हे।

मारवाड़ के राजा ने सिन्ध के भूतपूर्व अधिकारी को उसकी जीविका के लिये यह इन्दुवर ग्राम दिया था। सिन्ध का वह अधिकारी कालोरा जाति का है और वह अपने को पारसी वतलाता है। वलोचिस्तान के नमूरी लोगों के साथ मिल जाने से उसके वंशवालों की संख्या अधिक हो गयी है। नमूरी लोग अपने आपको अफगानी कहते हैं। लेकिन वे लोग मध्य एशिया के रहने वाले जिट लोगों में से हैं।

26 नवम्बर–यहाँ से आठ मील की दूरी पर मेड़ता नामक एक स्थान है। एक चोड़ा मैदान पार करके हम लोग मेड़ता में पहुँचे। वहाँ से दक्षिण की तरफ लगभग पच्चीस मील की दूरी पर अरावली पर्वत के शिखर दिखायी पड़ते हें। पशिचम की तरफ बहुत ऊँची-नीची भूमि दूर तक चली गयी हे। यहाँ की भूमि वहुत उपजाऊ है। लेकिन जल गहराई में होने के कारण उससे खेती के कार्य को कोई फायदा नहीं पहुँचता। जो खेत वस्ती के पास हैं, उनमें ज्वार, मक्का और तिल अधिक पैदा होता हे।

मेड़ता एक ऊँची भूमि पर वसा हुआ है। इसलिये देखने में वह रमणीक मालूम होता है। औरंगजेब वादशाह ने यहाँ के एक विशाल हिन्दू मन्दिर को नष्ट करके उस स्थान पर मस्जिद वनवाई थी। वह मस्जिद यहाँ के अन्य सभी हिन्दू मन्दिरों से ऊँची है। वादशाह औरंगजेब ने यहाँ पर जो मस्जिद बनवाई हे, उसमें फारसी और हिन्दी में लिखवा कर पत्थर लगवाये गये हैं और उनके द्वारा इस वात की हिदायत दी गई है कि कोई भी इस मस्जिद में किसी प्रकार का अत्याचार न करे। लेकिन इस प्रकार के पत्थर किसी हिन्दू मन्दिर में लगे हुए हमें देखने को नहीं मिले।

यहाँ के रहने वालों का कहना है कि मारवाड राज्य के लोभी धौंकल सिंह ने अत्याचारी पठानों की सहायता की थी और अमीर खाँ को प्रसन्न करने के लिए ही उसने इस प्रकार के पत्थर उस मस्जिद में लगवाये थे? धौंकल सिंह को अपनी इस खुशामद का कोई फल न मिला। अमीर खाँ उसकी कमजोरी को समझता था। समय आने पर उसने धौंकल सिंह को तरवाद किया और भयानक रूप से उसकी सेना का उसने संहार किया। एक मतलबी और सिद्धान्तहीन मनुष्य का जिस प्रकार सर्वनाश होता है, ठीक उसी प्रकार धौंकल सिंह का विनाश हुआ। इस प्रकार की घटनाएँ पहले वर्णन की जा चुकी हे।

मण्डोर के राव दूधा ने मेड़ता को वसाया था और उसके लडके मालदेव ने मालकोट नाम का दुर्ग वनवाया था।* मेड़ता प्रदेश में तीन सौ साठ ग्राम शामिल थे। उन सवको मिला कर सम्पूर्ण मेड़ता प्रदेश मालदेव से उसके लड़के जयमल को मिला था। राठौर राजपूतों की

* मालदेव के सिवा राव दूधा के तीन लडके और थे। पहले लडके का नाम रायमल ओर दूसरे का नाम वीरसिह था, जिसने मालवा में अजमेरा नामक राज्य कायम किया था। वह राज्य अव तक उसके वंशजों के अधिकार मे हैं। राव दूधा के तीसरे लडके का नाम रत्नसिह था, जो मीरावाई का पिता था और मीरावाई मेवाड़ राज्य के प्रसिद्ध राणा कुम्भा को व्याही गई थी। इस प्रकार मालदेव को मिला कर राव दूधा के चार लड़के थे।

एक प्रसिद्ध शाखा मेड़ता प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हुई और उस शाखा के राजपूत मैड़तियॉ राठौरों के नाम से विख्यात हुये।

बादशाह शेरशाह के आक्रमण करने पर जयमल ने उसके साथ युद्ध नहीं किया। उसके इस अपराध पर उसके पिता मालदेव ने उसको मण्डोर से निकाल दिया था। उस दशा में जयमल ने मेवाड़ के राणा के यहॉ जाकर शरण ली। राणा ने उसको बड़े सम्मान के साथ अपने यहॉ आश्रय दिया और अपने राज्य का एक प्रदेश बदनोर उसके जीवन निर्वाह के लिये उसे दे दिया। जयमल मण्डोर से निकाला गया था। लेकिन राणा से उसको बदनोर का प्रदेश मिला, वह मण्डोर की अपेक्षा अधिक उपजाऊ और अनेक बातों में अच्छा था। राणा के इस उपकार का बदला जिस प्रकार जयमल ने दिया, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है, यह घटना संक्षेप मे इस प्रकार है:

बादशाह अकबर ने अपनी शक्तिशाली और विशाल सेना लेकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। उस समय जयमल ने उसके साथ भयानक युद्ध किया था। उस युद्ध में जयमल मारा गया था। लेकिन उसका शौर्य देखकर शत्रु ने आश्चर्य किया था ओर बादशाह की तरफ से शूरवीर जयमल का स्मारक बनवाया था। इतिहासकार अबुलफजल, हर्बर्ट और बर्नियार आदि विद्वान यात्रियो ने अपने ग्रन्थो में जयमल की बहुत प्रशंसा लिखी है।

लार्ड हेस्टिंग्स उसका बड़ा प्रशंसक था। उसने जयमल की वीरता की बहुत सराहना की थी और जयमल के वंशज बदनोर के वर्तमान सामन्त से जयमल की बहादुरी के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा था। सचमुच जयमल इसी योग्य था। मेवाड़ के राणा ने उसको अपने यहॉ आश्रय देते हुए जो उसके साथ उपकार किया था। उसका बदला देते हुए जयमल राणा से मुक्त हुआ। लेकिन जिस चित्तौड़ के लिये युद्ध करते हुए जयमल बलिदान हुआ था, चित्तौड़ उससे कभी भी उऋण न हो सकेगा।

मेड़ता नगर मे बहुत से सुदृढ़ बुर्ज बने हुए हैं और सम्पूर्ण नगर मजबूत पत्थरों के कोट से घिरा हुआ है। उसका पश्चिमी भाग मिट्टी से और पूर्व की तरफ का सम्पूर्ण हिस्सा मजबूत पत्थरों से बनाया गया है। इस नगर के अधिकाश भीतरी हिस्से टूटे-फूटे हैं। इस नगर में बीस हजार मनुष्यो के रहने के लिए घर है। यहॉ पर धनिकों के पक्के और मजबूत मकान और महलों के साथ-साथ गरीबों के कच्चे मकान और दरिद्रो की झोपड़ियां भी है। नगर के दक्षिण-पश्चिमी भाग में दुर्ग बना हुआ है। उसकी लम्बाई दो मील से अधिक है। दुर्ग के पूर्व और पश्चिम की तरफ छोटे-छोटे तालाब हैं। नगर के भीतर बहुत से कुए हैं। लेकिन जल किसी का अच्छा नहीं है। मेडता के आस-पास दूधसार, वाइजपा, दुराणी और धनगोलिया इत्यादि कई बडे-बडे जलाशय हैं।

मेडता के मैदानो मे बहुत-से स्मारक बने हुए हे। जिन शूरवीर राजपूतो ने मराठों के आक्रमण करने पर अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए युद्ध किया था और अपने प्राणों की बलि दी थी, उन सबके इस विस्तृत मैदान मे स्मारक बने हुए है। किन परिस्थितियों मे राठौर राजपूतों की एकता नष्ट हुई थी, उनपर जिन परिस्थितियों में मराठो के आक्रमण हुये और आक्रमणकारी शत्रुओ ने मारवाड में प्रवेश किया एवम् जिन परिस्थितियों में मारवाड़ी

राजपूतों की शक्तियाँ निर्बल पड़ीं, इतिहास की इन रोमांचकारी घटनाओं के स्मरण के साथ-साथ इन स्मारकों के दर्शन करना उचित मालूम होता है।

राजा अजित सिंह के मारे जाने का वर्णन संक्षेप में पहले लिखा जा चुका है। दिल्ली मे सैयद बन्धुओं ने बादशाह फर्रूखसियर को सिंहासन से उतार कर दूसरों को उस पर बिठाने का जो एक नाटक शुरू किया था, उन्हीं दिनों में सैयद बन्धुओं की कूटनीति के फलस्वरूप राजा अजित सिंह अपने ही एक लड़के के द्वारा मारा गया था। अजित सिंह मुगल दरबार में अपने लडके अभयसिंह को छोड कर अपनी लड़की के साथ राज्य की तरफ आ रहा था। मुगल दरबार में सैयद बन्धुओं के कारण एक बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी। उस दरबार में सैयद बन्धुओं का प्रभाव था और वे मुगल सिंहासन पर उसी को बिठाने के पक्ष मे थे, जो सैयद बन्धुओं के हाथ की कठपुतली बन कर काम करना चाहता था। जो ऐसा नहीं कर सकता था, वह अधिकारी होते हुए भी दिल्ली के मुगल सिंहासन पर नहीं बैठ सकता था।

उस दरबार में सैयद बन्धुओं का इतना अधिक प्रभाव था कि कोई भी उनका विरोध नहीं कर सकता था। साम्राज्य के सभी नवाब और राजा उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे। परन्तु राजा अजित सिंह के सामने जब इस प्रकार का अनुचित और अयोग्य मसला पेश हुआ तो उसने बड़े साहस के साथ समर्थन करने से इनकार किया। सैयद बन्धुओ ने जब अजित सिंह का इस प्रकार विरोध देखा तो वे उसी समय से उसके शत्रु बन गये और उसके इस विरोध का निष्ठुर बदला लेने की उन्होंने तैयारी की। राजा अजित सिंह को सैयद बन्धुओ के विश्वासघात का कुछ पता न था। वह एक ईमानदार और स्वाभिमानी राजपूत था। किसी के षड्यंत्र का समर्थन करना वह अपना कर्त्तव्य न समझता था।

उस समय सैयद बन्धुओं ने राजा अजित सिंह से कुछ न कहा। वह दिल्ली दरबार में अपने लड़के अनूपसिंह को छोडकर जैसा कि ऊपर लिखा गया है-राज्य मे चला गया। सैयद बन्धु अपने बढते क्रोध में अजित सिंह को उसके विरोध का तुरन्त बदला देना चाहते थे। इसलिये उन्होने अभय सिंह को बुलाकर कहा: "तुम अगर अजितसिंह को जान से मार डालो तो तुमको मारवाड़ के राज सिंहासन पर बिठाया जाएगा, अन्यथा मारवाड़ राज्य नष्ट कर दिया जाएगा।"

अभयसिह ने सैयद बन्धुओ के मुख से इस आदेश को सुना। परन्तु अपने पिता अजित सिंह को मार डालने का उसमें साहस नहीं हुआ। उसने ऐसा करने से जब इनकार किया तो सैयद बन्धुओ ने उससे पूछा: "माँ-बाप की शाखा अथवा भूमि की शाखा?" सैयद बन्धुओ ने अभयसिह से जो प्रश्न किया, उसका अर्थ यह है कि राजपूत लोग भूमि के अधिकार को सबसे अधिक महत्व देते हैं और उसके लिये वे भयानक कार्य भी कर सकते हैं। फिर तुम्हारे इनकार करने अथवा इस प्रकार का उत्तर देने का क्या अभिप्राय है।

राजकुमार अभयसिह सैयद बन्धुओं के प्रभाव में आ गया। उसके मनोभावो मे मारवाड के राजसिंहासन का प्रलोभन पैदा हुआ। सैयद बन्धुओं के द्वारा कही गयी बात उसके दिल मे धीरे-धीरे घर करने लगी। मैं राजपूतो का प्रशंसक हूँ। अनेक स्थानो पर मैंने राजपूतो के चरित्र की महानता को स्वीकार किया है। यहाँ पर किसी राजपूत के पतन को स्वीकार करते हुए मेरे

हृदय को एक आघात पहुँच रहा है। परन्तु जिन राजपूतों के चरित्र को मैं प्यार करता हूँ, उनके चरित्र से भी प्रिय और अधिक प्रिय सत्य हे, में किसी भी दशा में सत्य को छिपाना नहीं चाहता। मैंने ऐसा कभी नहीं किया और भविष्य में भी कभी ऐसा न करूँगा।

राजा अजितसिंह के बारह लड़के थे। उनमें अभयसिंह और बख्तसिंह-दोनों भाई बड़े थे। दोनों भाई बूँदी की राजकुमारी से उत्पन्न हुये थे। बख्तसिंह राज्य में अपने पिता के पास था। बड़े भाई अभयसिंह ने एक पत्र लिखकर उसके पास भेजा। उसमें उसने लिखा : "अगर तुम पिता को जान से मार डालो तो मैं तुमको नागौर का सम्पूर्ण प्रदेश-जिसमें पॉच सौ पचपन नगर और गॉव हैं-दे दूँगा और तुम उस प्रदेश में राजा की उपाधि लेकर स्वतन्त्र रूप से शासन कर सकोगे।

बड़े भाई अभयसिंह का यह पत्र बख्तसिंह को मिला। उसको पढने के बाद उसके दिल में किस प्रकार के विचार उत्पन्न हुये, यह बताया नहीं जा सकता। लेकिन वह अपने बड़े भाई के लिखने के अनुसार काम करने के लिये तैयार हो गया। नागौर प्रदेश के शासन के अधिकार ने उसके हृदय को एक बार भी पिता की हत्या करने से विचलित नहीं किया। वह अजितसिंह की हत्या करने के लिये तैयार हो गया। किसी प्रकार बख्तसिंह की माता पर उसका भाव जाहिर हो गया। उसने अपने पति से कहा :"मैं बख्तसिंह का विश्वास नहीं करती। तुम उससे सावधान रहना और किसी भी समय एकान्त में तुम उससे न मिलना।"

राजा अजितसिंह ने रानी के मुख से इन शब्दो को सुना। वह साहसी और शक्तिशाली था। उसे विश्वास नहीं हुआ कि मेरा लड़का मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है। बख्तसिंह अपने बड़े भाई के पत्र को पाने के बाद समय और संयोग की ताक में रहने लगा। महल के जिस कमरे में अजितसिंह सोया करता था, उससे जुड़े हुए कमरे में बख्तसिंह सोया करता था। वह जिस अवसर की प्रतीक्षा में था, उसके लिये उसे अधिक दिन व्यतीत नहीं करने पड़े। एक दिन रात को जब राजा अजितसिंह सो गया था, रात अधिक हो जाने के कारण महल में सन्नाटा हो गया था। सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर सो रहे थे, रात का भीषण अन्धकार चारों तरफ फैला हुआ था। अजित सिंह के साथ उसकी रानी सो रही थी। उस अन्धकार में बख्तसिंह अपने कमरे से निकला और दबे पॉव वह अजितसिंह के कमरे में पहुॅच गया। विस्तर के नीचे अजित सिंह की रखी हुई तलवार को उसने बड़ी सावधानी के साथ निकाल लिया और उस तलवार से अपने पिता की हत्या कर डाली। एकाएक बख्तसिंह की मॉ की नींद टूट गयी। उसे अपने लड़के से जिस वात की आशंका थी, वह उस समय चरितार्थ हो गयी। उसने देखा कि बख्तसिंह ने अपने पिता को जान से मार डाला। वह जोर के साथ चीत्कार करती हुई रो उठी। रानी के रोने की आवाज सुनते ही महल के सभी लोग जाग पड़े। सभी लोग दौड़कर वहाँ पर आये। बख्तसिंह ने पिता के कमरे को वड़ी मजबूती के साथ वन्द कर दिया था। वह दरवाजा किसी प्रकार खोला गया। सभी ने भीतर जाकर देखा। अजित सिंह की मृत्यु हो चुकी थी और उसके शरीर से निकले हुए रक्त से उसके सभी कपड़े भीगे हुए थे। रक्त चारपाई से निकलकर कमरे में एकत्रित हो रहा था। बख्तसिंह की मॉ एक तरफ बैठी रो रही थी।

हत्यारा बख्तसिंह अजितसिंह को मारकर महल की सबसे ऊँची छत पर चला गया और ऊपर जाने के पहले उसने सभी दरवाजों को बन्द कर दिया था। ये दरवाजे इस प्रकार बन्द किये गये थे कि उनको तोड़ने और खोलने में रात का बाकी सम्पूर्ण भाग समाप्त हो गया। सवेरा होने पर बख्तसिंह ने महल की छत से सब के देखते-देखते बड़े भाई अभयसिंह के भेजे हुए पत्र को फेंकते हुए कहा : "मैंने अपने मन से कुछ नहीं किया। पिता को जान से मार डालने के लिये भाई अभय सिह का यह पत्र मुझे मिला था।" बख्तसिंह का फेंका हुआ पत्र पढ़ा गया और सभी लोगों ने उस आदेश को पढा जो अभयसिंह के द्वारा पिता को मार डालने के लिए बख्तसिंह को मिला था। सभी अवाक् थे। स्त्री-पुरुषो के नेत्रों से ऑसू निकल-निकल कर गिर रहे थे।

अजित सिंह के मारे जाने पर उत्तराधिकारी अभयसिंह सिंहासन पर बैठेगा और अब वही यहाँ का राजा है, यह सोचकर राज्य के समस्त कर्मचारी और पदाधिकारी शान्त हो गये। राजपूतों में राजभक्ति सदा से रही है। इसी भावना के कारण अजित सिंह की हत्या को वहाँ के लोगों ने भूलकर अभयसिंह के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना मुनासिब समझा। राजा अजित सिंह के चोरासी रानियाँ थीं। वे सभी अजित सिंह के शव के साथ चिता पर बैठीं और सती हो गयी।

अजित सिंह स्वाभिमानी और प्रभावशाली शासक था, राज्य की प्रजा पर उसका पूरा अधिकार था और समस्त प्रजा उसके प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट करती थी। अजित सिंह की इस प्रकार मृत्यु से मारवाड के समस्त स्त्री-पुरुषों को वेदना पहुँची थी, राज्य के सरदारों और सामन्तों ने अपने राजा अजितसिंह के लिये बहुत अधिक विलाप किया था। लोगों का कहना है कि राज्य की सम्पूर्ण प्रजा अजित सिंह पर स्नेह रखती थी। राजभक्ति के कारण मारवाड़ की प्रजा ने अभयसिंह के अपराधों को भुला दिया। लेकिन मारवाड़ का इतिहास अभयसिंह के इस अपराध को क्षमा न कर सकेगा। संसार जब तक मारवाड़ राज्य का इतिहास पढ़ेगा, अभयसिंह को अपराधी समझेगा और पिता के हत्यारे के रूप में उससे घृणा करेगा। इसको कोई रोक नहीं सकता।

अभयसिंह ने सैयद बन्धुओं के जाल में फँसकर बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और पिता की हत्या का अपराधी उसने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को बनाया। परन्तु इस हत्या से बहुत दूर रहने के बाद भी लोगों के नेत्रों में वही हत्यारा साबित हुआ। कवियों ने अजित सिंह की हत्या के बाद जो कवितायें लिखीं, उनमें उन्होंने अभयसिंह को ही अपराधी माना। इस विषय में एक कवि की लिखी हुई कविता की चार पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं:

बख्त, बख्त बाइरा,
क्यों मारा अजमाल।*
हिन्दुयानी को सेवरा,
तुर्कानी का साल।

अजित का अर्थ अजेय मानकर कवि ने यहाँ अजमल शब्द का प्रयोग किया है।

कविता की इन पंक्तियों का अर्थ है: "अरे वख्त तूने असमय अजमल की हत्या क्यों की। वह हिन्दुओं का संरक्षक और मुसलमानों के लिये शाल की तरह था।"

अजित सिंह के बाद अभयसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा और सैयद बन्धुओं की तरफ से वह गुजरात का शासक बनाया गया। राजसिंहासन पर बैठने के बाद जैसा उसने लिखकर अपने छोटे भाई बख्तसिंह से वादा किया था, उसने उसको नागौर प्रदेश का अधिकार दे दिया। बहुत दिनों से मुगल साम्राज्य डांवा-डोल हो रहा था। आपसी मतभेदो और विरोधों के कारण दिन पर दिन मुगलों की शक्तियॉ क्षीण होती जा रही थीं। अभयसिंह नीति कुशल, अवसरवादी और दूरदर्शी था। उसने बीण महल, सांचार और इस प्रकार के कितने ही सम्पन्न नगरों को-जो गुजरात में शामिल थे मारवाड़ राज्य में मिला लिया और छोटे भाई बख्तसिंह को जालौर प्रदेश का अधिकार भी दे दिया।

अभयसिंह ने मारवाड़ राज्य में शांति रखने की चेष्टा की और वहां की प्रजा भी राजभक्ति के कारण सिर न उठा सकी। परन्तु अपराध तो अपराध होता है। किसी के कुछ विरोध न करने पर भी अपराध फलता-फूलता है और प्रकृति के नियमों के अनुसार अपराधी को दण्ड मिलता है। पिता की हत्या के अपराध में अभयसिंह को मारवाड़ में दण्ड देने वाला कोई न था परन्तु वह सुरक्षित न रह सका। मारवाड़ में असन्तोप, द्वेप और फूट की आग भीतर ही भीतर सुलगने लगी।

राजा अजित सिंह के कई लड़के थे। मंक्षेप मे उनके सम्वन्ध में यहाँ कुछ लिखना जरूरी है। अजित सिंह के लडकों में एक लड़के का नाम देवीमिंह था। वह चम्पावत वंश के प्रधान महासिंह के द्वारा गोद लिया गया था। इसलिये कि महासिंह के कोई लड़का न था। देवीसिंह उन दिनों में वीणा महल का अधिकारी था। वहॉ के लोगों की रक्षा कोलियों के अत्याचारो से जब वह न कर सका तो देवी सिंह ने पोकर्ण का प्रदेश लेकर उसके बदले मे वीणा महल दे दिया। सबलसिंह, सवाई सिह और नीमाज का सामन्त सालिमसिंह देवीसिंह के वंशज थे।

अजित सिंह के एक लड़के का नाम आनन्दसिंह था। वह स्वतंत्र ईडर के महाराज के द्वारा गोद लिया गया था। मारवाड़ के राजा के पुत्र न होने की अवस्था में आनन्द सिंह का उत्तराधिकारी मारवाड राज्य का अधिकारी होना चाहिए, परन्तु राठोर राज्य में एक दूसरी ही प्रथा पायी जाती है। छोटा भाई अगर किसी दूसरे स्वतंत्र राज्य में गोद लिया जाता है तो मारवाड़ के राजसिंहासन पर उसके वंशजों का अधिकार रहता है। लेकिन अगर वह अपने राज्य के किसी सामन्त के द्वारा गोद लिया जाये तो मारवाड के राजसिंहासन पर उसका और उसके वंशजों का कोई अधिकार नहीं रहता। राज्य के किसी सामन्त के द्वारा गोद लिये जाने पर उसका पैतृक अधिकार नष्ट हो जाता है और वह केवल उसी सामन्त के प्रदेश का अधिकारी रह जाता है, जिसने उसको गोद लिया है। इस प्रकार महासिंह के द्वारा गोद लिए जाने के कारण मारवाड़ के सिंहासन पर देवीसिंह का कुछ भी अधिकार न रहा।

जिन दिनो में अभयसिंह मारवाड़ का अधिकारी हुआ और वह उसके राजसिंहासन पर बैठा, ठीक उन्हीं दिनों मे मुगल शासन की सत्ता बडी तेजी के साथ नष्ट हुई। इस अवसर

का लाभ उठाकर अभयसिंह ने मुगल साम्राज्य के अनेक प्रदेशो को अधिकार मे लेकर मारवाड राज्य में मिला लिया। इसके वाद उसकी मृत्यु हो गयी और उसके मरने पर उसका लड़का रामसिंह मारवाड के सिंहासन पर वेठा।

बख्तसिंह उन दिनो में नागौर का शासक था और रामसिंह के अभिषेक समारोह का यहाँ पर उल्लेख करना जरूरी है, उससे राजपूतों की मनोवृत्ति का पता चलता हे। रामसिंह वख्तसिंह का भतीजा था। इसलिये उसके अभिषेक के समय उसका आना आवश्यक था क्योंकि नागौर मारवाड़ राज्य का एक प्रदेश था ओर मारवाड़ के राजा की तरफ मे वख्तसिंह को वहाँ के शासन का अधिकार मिला था। लेकिन रामसिंह के अभिषेक के समय वख्तसिंह स्वयं नहीं आया और उपहार की सभी चीजे उसने वृढी धाय के द्वारा भेज दी।

उस अभिषेक में वख्तसिह के न आने का क्या कारण था, इसका कहीं पर स्पष्टीकरण नहीं हुआ। अभिषेक के समय जब नागौर की धाय उपहार लेकर उपस्थित हुई तो रामसिंह के हृदय को वहुत आघात पहुँचा। उसने नागौर से उपहार लाने वाली धाय से कहा :"इस अभिषेक में उपहार पहुँचाने के लिए चाचा साहव को क्या कोई दूसरा आदमी नहीं मिला था।"

धाय से रामसिंह के भाव छिपे नहीं रहे। अपनी वात कहकर भी रामसिंह चुप नहीं रहा। उसने जरा भी शिष्टाचार का व्यवहार नहीं किया। अपने यहाँ से उसने उस धाय को वापस भेज दिया और वख्तसिंह के भेजे हुए उपहारों को भी उसने उसी के साथ लौटा दिया। रामसिंह ने यही नहीं किया, वल्कि उसने धाय के द्वारा वख्तसिंह के पास सन्देश भेजा। उस सन्देश में उसने कहा : "चाचा साहव जालोर का प्रदेश तुरन्त वापस कर दें मेरा यह आदेश है।"

धाय लोटकर अपने साथ उपहार लिये हुए नागौर पहुँची तो उसने वख्तसिंह से सभी वातें कहीं। धाय का रामसिंह ने अपमान किया था। इसलिये उसने रामसिह के विरुद्ध कहने में कुछ वाकी न रखा और रामसिंह ने जालौर लौटाने के लिये जो सन्देश भेजा था, उसने वह भी वख्तसिंह से कहा। वख्तसिह को सन्देश सुनकर अच्छा नहीं मालूम हुआ। परन्तु उसने वुद्धिमानी से काम लिया और रामसिंह के सन्देश के उत्तर में उसने कहला भेजा :"जालौर और नागौर-दोनों प्रदेश आपके आदेश पर निर्भर हैं।" संक्षेप में वख्तसिंह ने इतना ही उत्तर भेजा।

वख्तसिह को रामसिंह के अभिषेक में आना चाहिये था। उसके प्रदेश मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत थे और सम्बन्ध मे वह रामसिंह का चाचा भी था। फिर वह क्यों नहीं गया, यह नहीं कहा जा सकता ओर न मारवाड के इतिहास में यह वात कहीं प्रकट होती है। परन्तु रामसिंह को वख्तसिंह का न आना किसी प्रकार वर्दाश्त नहीं हुआ इसलिये उसने जो कुछ किया ओर वख्तसिंह के पास जो सन्देश भेजा, वह ऊपर लिखा जा चुका है। अगर वख्तसिंह ने अपनी धाय को दूत वनाकर न भेजा होता और स्वयं उपस्थित न होने पर भी किसी सुयोग्य प्रतिनिधि को उसने भेजा होता, साथ ही उसने अपनी अनुपस्थिति का कारण रामसिंह को जाहिर किया होता तो वहुत सम्भव था कि रामसिंह को इस प्रकार का व्यवहार न करना पड़ता, जैसा कि उसने किया।

प्रत्येक अवस्था में दोनों राजपूत थे और एक राजपूत इस प्रकार के अवसर पर जो कुछ कर सकता हे, वख्तसिंह और रामसिह ने वही किया। यह वही वख्तसिह है, जिसने

अपने वडे भाई के आदेश पर अपने पिता को धोखे से रात को सोते हुए जान से मार डाला था। नागौर प्रदेश का शासन अधिकार दे देने के लिये उसे वड़े भाई अभयसिंह ने लिखा था। लेकिन नागौर पाने का प्रलोभन ही वख्तसिंह के मनोभाव में न था। वह राजा अजितसिंह का एक प्यारा लड़का था और जव बख्तसिंह की मॉ ने उससे सावधान रहने के लिए अजित सिंह को सचेत किया था, उस समय अजित को जरा भी विश्वास न हुआ था कि जो लड़का मुझसे पैदा हुआ हे, वह विश्वासघात करके मुझे मार डालेगा। उसने सहज स्वभाव से अपनी रानी को उत्तर देते हुए कहा था: ''क्या वह मेरा लड़का नहीं है?''

राजा अजितसिंह के इन शब्दों में अपने लड़के के प्रति कितना वड़ा विश्वास था। फिर भी वख्तसिंह ने उस पर आक्रमण किया और सोते हुए उसको मार डाला। वख्तसिंह का चरित्र क्या था, इसको समझने के लिये यह घटना ही काफी हैं। रामसिंह अभयसिंह का लड़का था ओर अभय सिंह ने सैयद वन्धुओं के कहने से शूरवीर और प्रतापी राजा अजित सिंह को मरवा डाला था। अजित सिंह अभयसिंह और वख्तसिंह का पिता था। रामसिंह उसी अभयसिंह का लड़का था। जिसने विना किसी कारण के ओर सेयद बन्धुओं के कहने से अपने जीवन का इतना वडा अपराध किया था। उस बीती हुई घटना के सम्वन्ध में यहॉ पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं हैं। अभिपेक में वख्तसिंह के न जाने ओर धाय के द्वारा उपहार भेजने एवम् इसके वदले में रामसिंह के द्वारा सन्देश भेजने के परिणामस्वरूप क्या हुआ, उसका वर्णन नीचे किया जाता है।

रामसिंह मारवाड़ के राजसिंहासन पर वैठ चुका था। उसके व्यवहारों में शिष्टाचार का अभाव था। वह इस बात को भी न जानता था कि अपने अधीन सामन्तों के साथ मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिये। मारवाड राज्य में जितने भी सामन्त थे, उनमें अहवा का सामन्त कुशलसिंह सवसे योग्य और प्रधान माना जाता था। वह चम्पावत वंश का था। उसका शरीर कद में छोटा लेकिन शक्तिशाली था। रामसिंह और उसके बीच साधारण वातों के सिलसिले में एक मनमुटाव पैदा हो गया। रामसिंह में दूसरों का उपहास करने की आदत थी। लेकिन उपहास करना उसे आता न था। इसलिये उसकी वातचीत सहज ही अप्रिय हो जाती थी।

अपने इस स्वभाव के कारण रामसिंह ने एक वार कुशल सिंह को गुरजी कह कर सम्वोधित किया। गुरजी राजस्थानी भापा में कुत्ते को कहा जाता है। रामसिंह ने कुशलसिंह के लिये इस शब्द का प्रयोग केवल अपनी आदतों के कारण किया। उसको सुनकर सामन्त कुशलसिह ने तेजी के साथ उत्तर दिया-''यह गुरजी आक्रमण करके सिंह के टुकड़े-टुकड़े कर सकता है।''

सामन्त का यह उत्तर रामसिंह को अच्छा न मालूम हुआ। लेकिन उस समय वह कुछ न बोला। परन्तु यहीं से दोनों के दिलो में अन्तर पड़ गया। इसके वाद उन दोनों के वीच एक घटना और घटी। दोनो एक दिन मण्डोर के जंगल में घूम रहे थे। वहॉ पर तरह-तरह के वृक्षो को देखते-देखते रामसिंह ने एक वृक्ष की तरफ संकेत करके कुशलसिंह से प्रश्न किया : ''इस पेड का नाम क्या है?''

जब मनोभावो मे किसी प्रकार का द्वेप होता है तो एक साधारण वात भी कडवी वनकर मनुष्य के मुख से निकलती है। सामन्त कुशलसिंह ने राजा रामसिंह के प्रश्न का उतर

देते हुए कहा : ''राजपूत जाति में जिस प्रकार मैं श्रेष्ठ हूँ, उसी प्रकार यह वृक्ष भी यहाँ के अन्य वृक्षो में श्रेष्ठ माना जाता है। यह वृक्ष चम्पा है। चम्पा का वृक्ष उत्तम होता है।''

सामन्त कुशलसिंह के इस प्रकार उत्तर देने का यहॉ पर कोई तुक न था। लेकिन रामसिंह के प्रति उसकी भावनाये दूपित थीं। इसलिये वह उनको सम्हाल कर कोई अच्छा उत्तर न दे सका और उसने जो कुछ कहा, उसे सुनकर रामसिंह क्रोधित हो उठा। उसने कहा : ''अभी मैं इस श्रेष्ठ वृक्ष को उखाडकर फेंक देता हूॅ। मारवाड़ राज्य में चम्पा नाम का कोई वृक्ष नहीं रह सकता।''

कुशलसिंह ने रामसिंह के इस जवाब को सुना। उसने कुछ उत्तर न दिया। लेकिन भीतर ही भीतर क्रोध से वह तमतमा उठा। उस दिन की बात यहीं पर समाप्त हो गयी और मण्डोर के जंगल से दोनों कुशल पूर्वक वापस चले आए।

मारवाड के सामन्तों में कुशलसिंह की तरह कुन्नीराम भी एक प्रधान सामन्त था। वह आसोप प्रदेश का सामन्त था और उसने राजपूतो की कुम्पावत शाखा में जन्म लिया था। कुन्नीराम साहसी और युद्ध कुशल था। परन्तु उसकी मुखावृत्ति अच्छी न थी। एक दिन राजा रामसिंह ने बातचीत करते हुए कुन्नीराम को बूढ़ा बन्दर कह दिया। यह सुनकर कुन्नीराम ने अपना अपमान अनुभव किया और उसने राजा रामसिंह को उत्तर देते हुए कहा: ''जिस समय यह बन्दर नाचेगा आपको बड़ा आनन्द मालूम होगा।''

सामन्त कुन्नीराम ने इस प्रकार रामसिंह को उत्तर दिया। परन्तु स्वाभिमानी सामन्त दरबार मे बैठा न रह सका। उसने आहवा के सामन्त कुशलसिंह की तरफ देखा। दोनों सामन्त एक साथ अपने स्थानो से उठे और दरबार से निकलकर चले गये। वे दोनो सामन्त नागौर मे पहुँचे और अनेक प्रकार के परामर्श करके युद्ध की तैयारी करने लगे।

उस समय नागौर मे बख्तसिंह नहीं था। लेकिन कुछ ही समय मे वह अपनी राजधानी मे आ गया। उसने दोनों सामन्तो से रामसिंह की बातें सुनी। उसने सोचा कि इन बातों के फलस्वरूप जो होने जा रहा है, वह मारवाड राज्य के भविष्य के लिये अच्छा नहीं है। यह सोच-समझ कर बख्तसिंह ने दोनों सामन्तों को समझाने की चेष्टा की और कहा कि मैं आप लोगो का मध्यस्थ बनकर इस झगड़े को निपटाने के लिये तैयार हूॅ। मेरा विश्वास हे कि यह विवाद जो बढा हुआ है, वह शान्त हो जाएगा। परन्तु अपमानित सामन्तों ने बख्तसिंह की बात को स्वीकार नहीं किया और उसी समय दोनों सामन्तो ने आवेश के साथ बख्तसिंह से कहा : ''हम लोग रामसिंह को अपना राजा समझ कर कभी उसके दर्शन नहीं करेगे,आपकी बातो को सुनकर हम दोनों इतना ही कर सकते हैं कि आप मारवाड के सिंहासन पर बैठने के लिये तैयार हों। हम लोग सभी प्रकार से आपकी सहायता करेगे। लेकिन अगर आपने हमारी बात न मानी तो हम लोग सदा के लिये मारवाड राज्य छोड़ देंगे।''

बख्तसिंह किसी प्रकार मारवाड मे इस प्रकार का उत्पात नहीं चाहता था। उसने उत्तेजित सामन्तो को बार-बार समझाने की चेष्टा की। वह समझता था कि जो विवाद राजा और सामन्तों मे पैदा हुआ है, वह किसी प्रकार अच्छा नहीं साबित होगा। जिन दिनो मे बख्तसिंह इस विवाद को शान्त करने की कोशिश मे लगा था, रामसिंह ने अपनी अयोग्यता का एक

और नया परिचय दिया। उसने सुना था कि सामन्त कुशलसिंह और कुन्नीराम-दोनों सामन्त राज दरबार से रूठकर चले गये हैं और वे हमारे विरुद्ध नागौर में तैयारी कर रहे हैं। उसे विश्वास हो गया कि इसमें नागौर के शासक बख्तसिंह का षड्यंत्र है। इसलिये उसने अपने चाचा बख्तसिंह को एक पत्र लिखकर भेजा कि आप फौरन जालौर का प्रदेश वापस कर दें।

रामसिंह का यह पत्र बख्तसिंह को मिला। उसे उसने पढ़ा परन्तु उसे किसी प्रकार का क्रोध नहीं आया और उस पत्र का उत्तर देते हुए उसने रामसिंह को लिखकर भेजा-"मैं किसी भी परिस्थिति में अपने राजा के साथ विवाद बढ़ाने का साहस नहीं रखता। अगर आप यहाँ आ सकें तो मैं जल से भरा हुआ घड़ा लेकर आप से भेंट करूंगा।"*

बख्तसिंह के टेढ़े वाक्यों और पत्रों से भी रामसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ। बख्तसिंह जो नहीं चाहता था, वह परिस्थिति उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। दोनों ओर से युद्ध के बाजे बजे और तेजी के साथ लड़ाई की तैयारी हुई। मेड़ता के विस्तृत मैदान में दोनों अपनी-अपनी सेनायें लेकर पहुँच गये। मारवाड़ के लोगों में मेड़ती राजपूत अधिक साहसी और शूरवीर समझे जाते हैं। वे सभी रामसिंह की सेना में जाकर एकत्रित हुये। रिया, बुदसु, मिथरी, खोलर, भरावर, अलनिवा, जुसुरी, बामरी, भुरुण्डा, दुरह और चन्दारुण के सामन्त अपनी सेनायें लेकर युद्ध के लिये रवाना हुये। जोधपुर के राजभक्त सामन्त अपनी-अपनी सेनाओं के साथ युद्ध क्षेत्र में दिखाई देने लगे। लाण्डू और निम्बी इत्यादि कुछ प्रदेशों के सामन्त विरोधी पक्ष में जाकर मिल गये। लेकिन खैरोवा, गोविन्दगढ़ और भाद्राजून जैसे प्रदेशो के प्रसिद्ध सामन्त राजा के प्रति अपने कर्त्तव्य को न भूले। उन्होंने राज्य का नमक खाया था। इसलिये उससे उद्धार होने के लिये उन सामन्तों ने निश्चय किया। कुछ सामन्तों ने आपसी युद्ध में शामिल होना उचित न समझ कर तटस्थ रहने का निर्णय किया।

रामसिंह अपने साथ पाँच हजार शूरवीर राजपूतों को लेकर युद्ध में पहुँचा था। उसका विवाह राजा भोज की लड़की के साथ हुआ था। इसलिये राजा भोज की तरफ से पाँच हजार सैनिकों की एक सेना युद्ध में रामसिंह की सहायता के लिये आयी थी। उस सेना ने राजधानी के बाहर मुकाम किया। वहाँ पर भोजपुरी राजपूतों के जो खेमे लगे थे और जिसमें रामसिंह की रानी स्वयं मौजूद थी,उसके ऊपर एक कौवा आकर बोलने लगा। उसका बोलना रानी के विश्वास के अनुसार अपशकुन का सूचक था। इस प्रकार के अपशकुन की शान्ति का उपाय भी वह जानती थी। रानी ने हाथ में बन्दूक लेकर उस कौवे को मार कर गिरा दिया।

रामसिंह अपने दूरवर्ती खेमे में बैठा हुआ था। वह स्वभावत: क्रोधी था। उसने अचानक बन्दूक की आवाज सुनी। उसे क्रोध आ गया और बन्दूक की उस फायरिंग को उसने अपना अपमान समझा। इसलिये उसने आवेश के साथ आदेश किया कि जिसने बन्दूक की यह आवाज की है, उसे पकड़ कर मेरे सामने ले आओ। उसके आदेश को सुनकर उसके नौकर उठे और उन लोगों ने बडी नम्रता के साथ उससे कहा: महाराज बन्दूक की फायरिंग करने वाला और कोई नहीं है। स्वयं रानी साहिबा ने अपनी बन्दूक से यह फायरिंग की है।

---

* सीथियन लोगों में राज्याभिषेक के समय जल से भरे हुए कलश को लेकर जाने की प्रथा है। बख्तसिंह के उत्तर में उसी प्रथा की समानता जाहिर होती है।

रामसिंह को रानी का नाम सुनकर भी सन्तोप न मिला। अपने वढ़ते हुए क्रोध में उसने आदेश दिया: "रानी से जाकर कहो कि वह हमारे राज्य से फौरन निकल जाए और वह जहॉ से आयी हैं, वहीं चली जाए।"

पति के इस आदेश को सुनकर रानी वहुत दु:खी हुई। लेकिन वह अपने स्वामी के कल्याण के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगी। अपने पति से भी उसने क्षमा प्रार्थना की। लेकिन रामसिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया। जव किसी प्रकार पति का क्रोध शान्त नहीं हुआ तो उसने दु:खी होकर कहा: "विना किसी अपराध के आप मुझे इस प्रकार का दण्ड दे रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा और आपके मस्तक से मारवाड़ का राज मुकुट उतार दिया जायेगा।"

यह कहकर रानी अपने पिता के राज्य से आये हुए पाँच हजार सैनिकों की सेना को लेकर और युद्ध क्षेत्र को छोड़ अपने पिता के राज्य को चली गयी। इस युद्ध के लिये जो सेनायें रामसिंह के पक्ष में युद्ध करने के लिये आयी थीं, उनमें से भोजपुरी सेना के चले जाने से रामसिंह की सैनिक शक्ति कमजोर पड़ गयी। नीमाज, रायपुर और राऊस की सेनायें किडसिर के ठाकुर की अधीनता में वख्तसिंह के झण्डे के नीचे पहुॅच गयी और समस्त चम्पावत और कुम्पावत राजपूतों के साथ मिल गयीं। रामसिंह के पक्ष में एकत्रित सेनायें सव मिलाकर भी वख्तसिंह के पक्ष की सेनाओ से कम थी। लेकिन रामसिंह के मारवाड़ के गजा होने के कारण उनका साहस विरोधी सेनाओं की अपेक्षा प्रवल था। मेड़ता के इस मैदान में रामसिंह ने अपनी सेना का मुकाम किया था और वह वख्तसिंह का रास्ता देख रहा था। उसकी सेना ने जहाँ पर मुकाम किया था, वह मुकाम माता जी का स्थान कहलाता है। वहॉ पर आद्यशक्ति का एक मन्दिर हैं। कहा जाता हे कि यह मन्दिर और उसके भास का जलाशय पाण्डवों का वनवाया हुआ है।

वख्तसिंह ने सव से पहले अपनी सेना में युद्ध के वाजे वजवाये और उसने तोपों की मार आरम्भ कर दी। इसके साथ ही साथ रामसिंह के गोलन्दाजों ने भी तोपों की मार आरम्भ की। सम्पूर्ण दिन तोपों की मार में वीत गया। क्रमश: युद्ध की परिस्थिति भयानक होती गयी। इस युद्ध मे सभी राजपूत थे और दोनों पक्षों की तरफ से जितने भी लोग युद्ध कर रहे थे, सभी एक वंश और एक जाति के थ। इस युद्ध में भाई के विरुद्ध भाई और मित्र युद्ध कर रहे थे। सभी की नाड़ियो में एक ही रक्त था। फिर भी वे एक दूसरे का सर्वनाश करने के लिये उस युद्ध क्षेत्र मे एकत्रित हुये थे।

शाम होते-होते एक घटना के साथ युद्ध वन्द हुआ। वह घटना इस प्रकार है-युद्ध क्षेत्र के पास वाजीपा नाम का एक तालाव है। उसके किनारे पर एक दादूपंथी सन्यासी का आश्रम है। कहा जाता हे कि राजा सूरतसिंह ने इस आश्रम को वनवाया था। इस समय युद्ध के लिए दोनो पक्षों की ओर से जहॉ पर सेनायें खड़ी थीं, उसके मध्य भाग में यह आश्रम वना हुआ है। इस आश्रम मे वावा कृष्णदास अपने शिष्यों के साथ रहता था। युद्ध आरम्भ होते ही शिष्य लोग आश्रम से भाग गये। परन्तु वावा कृष्णदास आश्रम मे ही मौजूद रहा। शिष्यों ने भागने के लिए उससे भी कहा था। परन्तु उसने आश्रम से भागने का इरादा नहीं किया। शिष्यो

के चले जाने पर युद्ध करने वाले सैनिकों ने भी आश्रम से निकल जाने के लिए बाबा कृष्णदास से कहा। लेकिन उसने आश्रम नहीं छोडा और सैनिकों को जवाब देते हुए उसने कहा: "अगर तोप के गोले से ही मेरी मृत्यु का होना लिखा है तो उसे कोई मिटा नहीं सकता और अगर ऐसा नहीं है तो तोप के गोलों से मुझे कोई क्षति नहीं पहुँच सकती।"

बाबा कृष्णदास के इस उत्तर को सुनकर सैनिक चुप हो गये। पूरे दिन गोलों की वर्षा होती रही और उन गोलों से बाबा का आश्रम और उसकी पुष्पवाटिका बिलकुल नष्ट हो गयी। परन्तु बाबा के शरीर को जरा भी आघात नहीं पहुँचा। कहा जाता है कि गोलों की इस भीषण वर्षा के समय कृष्णदास बिना किसी भय के अपने आश्रम में बैठा रहा।

सायंकाल होते ही बाबा कृष्णदास ने युद्ध बन्द करने के लिए दोनो पक्ष के लोगों के पास संदेश भेजा। इसके बाद युद्ध बन्द हो गया और दोनों पक्ष के सैनिक युद्ध क्षेत्र से हट गये। इस प्रकार उस दिन जो युद्ध आरम्भ हुआ था, सायंकाल तक समाप्त हो गया।

दूसरे दिन सवेरा होते ही फिर दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारियाँ हुई। राजा रामसिंह अपनी सेना लेकर आगे बढा और उसने अपने चाचा बख्तसिंह पर आक्रमण किया। इस समय दोनो तरफ से तोपों में आग लगायी गयी। उनका धुआं चारो तरफ फैलकर ऊपर की तरफ उठा और उस धुएँ से युद्ध का सम्पूर्ण स्थान अन्धकारमय हो उठा।

इसके कुछ ही समय बाद चम्पावत राजपूत सैनिक शत्रु की तरफ आगे बढे। रामसिंह के पक्ष के शूरवीर मेडतीय राजपूत अपनी राज भक्ति का परिचय देते हुए शत्रुओं की ओर बढे और उन लोगो ने अपने साथ के सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा: "हम लोग युद्ध में या तो विजयी होंगे अथवा बलिदान होकर स्वर्ग की यात्रा करेंगे।" उनके इन वीरोचित शब्दों को सुनकर राजपूतों का उत्साह कई गुना बढ़ गया। इसके साथ ही युद्ध भीषण रूप में आरम्भ हुआ और शूरवीर राजपूतों ने अपने शत्रुओं पर भयानक मार आरम्भ की।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि मारवाड़ के राजपूतों में मेडता के लोग अधिक साहसी और रण कुशल माने जाते हैं। इस युद्ध मे वहाँ के जो राजपूत सैनिक आये थे, इस युद्ध मे उन्होने शत्रुओं का भीषण संहार किया। बख्तसिंह के साथी चम्पावत लोगों ने मेड़ता के राजपूतों के साथ कठिन युद्ध किया और एक बार उन्होंने अपनी भयानक तलवारों के बल से मेडतीय राजपूतो को युद्ध क्षेत्र में भयभीत कर दिया।

इस समय युद्ध-क्षेत्र में चारों तरफ से भयानक मार हो रही थी। तोपों की भयानक आवाज के साथ-साथ तलवारो की झंकार से कानो के परदे फट रहे थे। युद्ध के क्षेत्र में सैनिकों के कटे हुए शरीर बडी संख्या में दिखायी देने लगे। इस भयानक संग्राम में कोई भी पक्ष पीछे हटने की स्थिति में न था। दोनों पक्ष के लोग अपने-अपने शत्रुओं के संहार का निश्चय करके आगे बढ रहे थे। अभी तक युद्ध के परिणाम का अनुमान लगा सकना किसी के लिए सम्भव नहीं मालूम होता था।

युद्ध की इस परिस्थिति में मेडतीय राजपूतों का सरदार शेरसिह मारा गया। उसके गिरते ही उसका भाई अपनी सेना के साथ आगे बढा और उसने शत्रुआं के साथ भीषण युद्ध आरम्भ किया। इसी समय अहवा का शूरवीर सामन्त मारा गया। यह देखकर दोनों पक्ष की

ओर से युद्ध ने भयंकर रूप धारण किया। बहुत से सैनिक जान से मारे गये और बड़ी संख्या में दोनों पक्षो के लोग घायल होकर गिर गये। परन्तु किसी पक्ष की सेना ने पीछे हटने का इरादा नहीं किया।

बख्तसिंह की सेना बड़ी थी। इसलिए वह शत्रुओं में जिस तरफ रामसिंह को देखता, उसी तरफ आगे बढ़कर वह उस पर आक्रमण करने की कोशिश करता। इस युद्ध में मेड़तीय सैनिकों ने अपनी बहादुरी का परिचय दिया और जब तक वे सब के सब मारे नहीं गये, बख्तसिंह को उन्होने आगे नहीं बढ़ने दिया। रामसिंह के पक्ष में सैनिकों की संख्या कम थी। मेडतीय वीरों के मारे जाने पर रामसिंह का पक्ष निर्बल हो गया। इस दशा में बख्तसिंह की सेनायें आगे बढ़ी। रामसिंह की सेनायें अपनी बढती हुई निर्बलता में पीछे की तरफ हटने लगी। मिथरी के सामन्त का अधिकारी युद्ध करते हुए मारा गया। वहाँ का सामन्त युद्ध करते हुए अपने लड़के के साथ बलिदान हुआ।

मिथरी के सामन्त के पुत्र की घटना अत्यन्त रोमांचकारी है। इसलिए यहॉ पर संक्षेप में उसको हम लिखने का प्रयास करते है। मेड़ता के मैदानों में होने वाले इस युद्ध में बहुत पहले मिथरी के सामन्त के इसी लडके का जयपुर राज्य के निरूमा के सामन्त की लड़की के साथ विवाह निश्चित हुआ था। इस युद्ध के दिनों में मिथरी-सामन्त का लड़का अपना विवाह करने के लिए निरूमा गया था, जिस समय उसका विवाह संस्कार हो गया था, उसने सुना कि शत्रुओ की सेनाय युद्ध में बढ़ रही है, इसी समय हाथ में बंधे हुए कंकण को खोलकर वह बाहर निकला और घोड़े पर बैठकर वह युद्ध के लिए मेड़ता की तरफ रवाना हुआ।

उस समय में रामसिंह का पक्ष निर्बल पड रहा था। मिथरी के सामन्त का लड़का वहॉ पहुॅच गया और उसने शत्रुओ के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। उस दिन युद्ध में उसने अपने असीम पौरुप का परिचय दिया। परन्तु दूसरे दिन युद्ध करते हुए वह मारा गया। मारवाड़ के कवियो ने मिथरी सामन्त के उत्तराधिकारी की वीरता का वर्णन अपनी बहुत-सी कविताओ में किया है। विवाह-मण्डप के नीचे से मिथरी के सामन्त कुमार के चले आने पर निरूमा के सामन्त की नवविवाहिता कुमारी भी अपने नगर से रवाना हुई। लेकिन युद्ध स्थल पर पहुॅचते ही उसे मालूम हुआ कि उसका पति मारा गया है तो उसी समय उसने चिता बनवाई और अपने पति के शव को लेकर वह सती हो गयी।

जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ था, वहॉ जाकर मैंने उस सामन्त के लडके का स्मारक खोजा परन्तु वहॉ पर मुझे उसका कोई स्मारक देखने को नहीं मिला।

मेड़ता के इस युद्ध में रामसिंह के पक्ष की सेनाओं ने बहुत समय तक युद्ध करके अपनी बहादुरी का परिचय दिया। लेकिन अंत मे उनकी पराजय हुई और उसके पक्ष के लोगों ने मंजूर किया कि शत्रुओं के गोलों की वर्पा से हमारी हार हुई है। राजभक्त सामन्त शेरसिह ने अपने साले अहवा के सामन्त को बहुत समझाया था कि तुम रामसिंह के विरुद्ध युद्ध में न जाओ। परन्तु उसकी बात को अहवा के सामन्त ने किसी प्रकार नहीं माना। इस दशा में शेरसिंह ने आदेश के साथ अपने साले से कहा था: ''अच्छी बात है। बख्तसिंह का पक्ष लेकर रामसिंह को परास्त करने में तुम अपनी शक्ति को उठा न रखना।''

अहवा के सामन्त को उसकी यह बात अच्छी न लगी। इसलिये उसका उत्तर देते हुए उसने निर्भीकता के साथ कहा था : "अपने पक्ष के लिये कोई भी अपनी शक्ति को उठा नहीं रखता।"

साले और बहनोई में इस प्रकार की बातचीत मेड़ता के इस युद्ध के पहले हुई थी। उसके बाद युद्ध की तैयारी हुई और उस संग्राम में दोनो ने अलग-अलग पक्षों का समर्थन किया और एक दूसरे के विरुद्ध इस प्रकार वे लड़े कि फिर वे एक दूसरे को देख न सके। इस युद्ध की सबसे बड़ी विशेपता यह थी कि इसमें लड़ने वाले दोनों पक्षों के लोग एक दूसरे के सगे थे।

यह युद्ध मेड़ता से कुछ दूरी पर जिस विस्तृत मैदान में हुआ था, उसके निकट कोई छोटा या बडा ग्राम नहीं है। उस विस्तृत भूमि पर ज़हाँ पर यह युद्ध हुआ था, युद्ध में मारे जाने वाले वीरों के अब केवल स्मारक देखने को मिलते हैं। जो राजपूत जिस श्रेणी का था, उसका स्मारक उसी श्रेणी का बनवाया गया है। लेकिन स्मारक, एक स्मारक होता है, चाहे वह छोटा हो, अथवा बडा। मैंने वहाँ पर बने हुए स्मारकों को देखा और बीस स्मारकों के लिखे हुए पत्थरों की मैंने नकल ले ली। उन पत्थरों पर जो कुछ लिखा है, उनसे राजपूतों की वीरता का परिचय मिलता है।

इस युद्ध में पराजित होने के बाद रामसिंह ने मेड़ता नगर में जाकर आश्रय लेने का निश्चय किया। परन्तु शत्रु की विशाल सेना से मैड़ता में सुरक्षित रहने और बच सकने का उसको विश्वास न हुआ। इसलिये अब उसके सामने प्रश्न यह था कि बख्तसिंह की शक्तिशाली सेना से अपनी रक्षा कैसे की जाये। उसके सामने अपने सम्मान और प्राणों का भय था। इसलिये उसने सभी प्रकार की बातें सोच डाली।

उन दिनों में मराठों की शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं। रामसिंह ने उनकी सहायता लेकर अपने चाचा बख्तसिंह को परास्त करने का निश्चय किया ओर अपनी बची हुई सेना को लेकर वह दक्षिण चला गया। उज्जैन नगर में पहुँचकर उसने मराठा सेनापति जयअप्पा सिंधिया से मुलाकात की और बख्तसिंह को पराजित करने के लिये वह सेनापति सिंधिया से परामर्श करने लगा।

युद्ध से रामसिंह के भाग जाने के बाद बख्तसिंह अपनी सेना को लेकर जोधपुर में पहुँचा और मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर उसने अपने राजा होने की घोपणा की। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि रामसिंह सहायता के लिये मराठों के पास गया है। इसलिये उसने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया और वह जयपुर राज्य की तरफ इस इरादे से रवाना हुआ कि वहाँ से रामसिह के ससुर जयपुर के राजा मराठों के आने पर किसी प्रकार की सहायता न दे सकें।

उन दिनों में ईश्वरी सिंह जयपुर का राजा था। वह बख्तसिंह की वीरता से भली भाँति परिचित था। इसलिए जब बख्तसिंह ने उससे मुलाकात की और सारी बातें उसने उसके सामने रखीं तो ईश्वरी सिंह के सामने एक विपम परिस्थिति पैदा हो गयी। ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिये? वह इस बात का निर्णय न कर सका। उसके सामने एक भयानक समस्या थी।

बडे असमंजस में पड़कर उसने एक रास्ता निकाला और बख्तसिंह की समस्या को सुलझाने के लिए उसने निश्चय कर लिया। स्वर्गीय अजित सिह का एक लड़का ईडर का शासक था। उसकी एक लडकी ईश्वरी सिंह को ब्याही थी। ईश्वरी सिंह अपनी उस रानी के पास गया और महल में बैठकर उसने परामर्श किया।

ईश्वरी सिंह स्वर्गीय अजित सिंह की हत्या का बदला लेना चाहता था और अपने दामाद रामसिंह के अधिकारो की रक्षा भी करना चाहता था। उसने रानी से बातें करते हुए कहा- ''मेरे सामने एक विकट समस्या है। इस समय रामसिंह और बख्तसिंह के बीच में भयानक संघर्ष है। में जिसका समर्थन करूँगा, उसी के पक्ष में मुझे युद्ध करना पड़ेगा। इसलिये कि युद्ध के द्वारा ही इन दोनो की समस्या का निर्णय हो सकता है। अगर मैं बख्तसिंह का विरोध करता हूँ तो में सफलता की आशा नहीं करता ओर अगर मैं रामसिंह का समर्थन करता हूँ तो समाज मुझे क्या कहेगा। इसलिये कि पिता की हत्या कराने के वाद अभयसिंह मारवाड़ के सिहासन पर बैठा था और उसके बाद उस राजसिंहासन पर अधिकार रामसिंह को प्राप्त हुआ। इस दशा में में इन दोनों में से किसी के पक्ष का समर्थन नही करना चाहता। इसके लिये मुझे क्या करना चाहिये। जिससे मुझे किसी प्रकार का आघात न पहुँचे। इस संकट से मुक्ति पाने के लिये एक मात्र तुम्हीं मेरी सहायक हो सकती हो।''

बड़ी देर तक परामर्श करने के वाद निश्चय हुआ कि विष को विष के द्वारा ही नष्ट किया जाता है। अपराधी के साथ अपराध करना किसी प्रकार अधर्म नहीं है। इस निर्णय में एक सकेत था। उसको समझ कर ईश्वरी सिंह ने उसको स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसको कुछ शान्ति मिली।

ईश्वरी सिंह की यह रानी ईडर की राजकुमारी थी और वह बख्तसिंह की भतीजी थी। अपने पति के जीवन में पैदा हुए संकट को दूर करने के लिये उसने जो निर्णय किया था उसके लिये उसने तैयारी की और उसके बाद भेंट करने के लिए उसने अपने चाचा बख्तसिंह के पास सन्देश भेजा। बख्तसिंह इस समय जिस स्थान पर मौजूद था, वह स्थान मेवाड़, मारवाड़ और आमेर-तीनो राज्यों की सीमा के बीच में पड़ता था। बख्तसिंह ने अपने पास भतीजी को आने और भेंट करने के लिये अनुमति दे दी। ईश्वरी सिंह की रानी अपने साथ कुछ बहुमूल्य वस्त्रो को लेकर और उनको उपहार में देने के लिये चाचा से भेंट करने के लिये रवाना हुई।

बख्तसिंह से भेंट करके उसकी भतीजी के जाते ही उसको भयानक रूप से ज्वर आ गया और शक्तिशाली बख्तसिंह को उस ज्वर ने क्षण भर में विह्‌ल कर दिया। बख्तसिंह की इस दशा को देखकर तुरन्त वैद्य बुलाया गया। उसने आकर बख्तसिंह को देखा और उसने कहा· ''आपको स्वस्थ करने के लिये किसी भी औपधि में शक्ति नहीं है।''

राठौर राजा बख्तसिंह ने वैद्य के मुख से इस बात को सुनकर कहा: ''क्या तुम मुझको स्वस्थ नहीं कर सकते? अगर मेरे रोग को दूर करने की शक्ति तुममें नहीं है तो फिर तुम मेरी दी वृत्ति का उपयोग क्यो करते हो? तुम्हारी चिकित्सा का फिर कौन-सा उपयोग हो सकता है।''

बख्तसिंह के मुख से इस आलोचना को सुनकर वैद्य ने राजा के खेमे के पास जमीन मे एक गड्ढा खोदा और उसमें जल भर दिया। इसके वाद उसमें उसने अपनी एक औपधि